







लघुपाराशरी-सिद्धान्त



लघुपाराशरी-सिद्धान्त

लेखक

मेजर एस० जी० खोत

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली :: पटना :: वाराणसी

भारतीय संस्कृति के प्रमुख प्रकाशक एवं पुस्तक-विक्रेता
प्रधान कार्यालय : ४१ यू० ए० बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली-७
शाखाएं : (१) चौक, वाराणसी-१ (उ० प्र०)
(२) अशोक राजपथ, पटना-४ (विहार)

प्रथम संस्करण : वाराणसी १९७६

मूल्य : रु० ४०.००

सुन्दरलाल जैन, मोतीलाल वनारसीदास, बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली-७
द्वारा प्रकाशित तथा शान्तिलाल जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस, ए-४५, फेस-१,
इन्डस्ट्रियल एरिया, नारायण, दिल्ली-२८ द्वारा मुद्रित ।

विद्वानों का अभिप्राय

पद्मभूषण
सूर्यनारायण व्यास
डाक्टर आफ लेटर्स

फोन : ३५८
भारती भवन
उज्जैन, मालवा।

"लघु पाराशरी दशा पद्धति" अथवा विंशोत्तरी दशा के नाम से प्रख्यात पद्धति का भारतीय ज्योतिष में ऊँचा स्थान है। पाराशर की इस पद्धति का उपयोग भारतीय ज्योतिषवेत्ता फल प्रतिपादन के लिए प्राचीनकाल से करते आ रहे हैं। विंशोत्तरी पद्धति तर्कसंगत तथा अनुभव-सिद्ध है। उसके निर्देशों के आधार पर फलादेश प्राप्त करने की विधि भी कठिन नहीं है।

लघु पाराशरी का रचनाकाल जैसे अतीत के अज्ञात गर्भ में छिपा पड़ा है, वैसे ही उसके आधारभूत सिद्धान्त भी अन्धकार में हैं। शताब्दियों से इस पद्धति का उपयोग होता आया है और उसे समय की कसौटी पर खरा पाया गया है। किन्तु समय बीतने के साथ उसके ऊपर नया प्रकाश पड़ने के स्थान पर, अनेक अनावश्यक और अनुचित बातें उसमें आकर जुड़ गईं। कृतज्ञ ज्योतिषविदों द्वारा उसका स्वरूप निखारे जानेके स्थान पर विंशोत्तरी पद्धति भ्रान्तियों के भार से बोझिल हो उठी।

अचरज की बात है कि किसी ज्योतिषविद ने आज तक न तो इन भ्रान्तियों को दूर करने का बीड़ा उठाया और न उन सिद्धान्तों के विश्लेषण का कोई प्रयास किया जिन पर यह बहुप्रयुक्त पद्धति आधारित है। विंशोत्तरी दशा के वैज्ञानिक मूल क्या हैं? ग्रहों की क्रम गणना के आधार क्या हैं? ग्रहों के दशा वर्ष की आधार-भूमि क्या है? राहु तथा केतु ग्रह नहीं हैं, फिर भी उन्हें ग्रह मानकर पद्धति में शामिल क्यों किया गया है? यह तथा ऐसे अनेक प्रश्न हैं जिनपर प्रकाश डालने और जिनका तर्क सम्मत एवं शास्त्रीय समाधान करने का किसी ने कभी प्रयास नहीं किया।

हर्ष की बात है कि ज्योतिष शास्त्र के विद्वान मेजर श्री० गो० खोत ने इस अभाव की ओर अपना ध्यान दिया। प्रस्तुत पुस्तक "लघु पाराशरी सिद्धान्त" इस अभाव की पूर्ति की दिशा में उनका अभिनन्दनीय प्रयास है।

पैंतालीस वर्षों के ज्योतिष अध्ययन, मनन और अनुसंधान की अमूल्य पूंजी श्री खोत के पास है। अगाध ज्ञान के साथ उनका उचित तार्किक एवं

विज्ञान सम्मत दृष्टिकोण का दुर्लभ गुण भी विद्यमान है। इसलिए उनकी रचना "लघु पाराशरी सिद्धान्त" न सिर्फ विंशोत्तरी पर लदी भ्रान्तियों को दूर करने में सफल हुई है, वल्कि पद्धति के मूल सिद्धान्तों का विश्लेषण एवं स्पष्टीकरण करने में भी कामयाव रही है। विंशोत्तरी दशा से सम्वन्धित प्रश्नों के संतोपजनक उत्तर श्री खोत ने इस पुस्तक में दिये हैं। "पाराशरी" को उन्होंने अपने इस प्रयास से एक नई गरिमा के साथ भारतीय ज्योतिष साहित्य में ऊँचे पद पर पुन:स्थापित कर दिया है।

लघु पाराशरी के प्रत्येक संस्कृत श्लोक के साथ उसके हिन्दी, मराठी तथा गुजराती टीकाकारों द्वारा दिये गये भाष्य तथा अपनी अर्थपूर्ण टिप्पणियाँ देकर लेखक ने ग्रन्थ को और उपयोगी वना दिया है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेजर खोत की यह रचना ज्योतिप शास्त्र के जिज्ञासुओं, विद्वानों तथा अनुसंधानकर्ताओं, सभी के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

इस अद्वितीय पुस्तक के प्रणेता को सुन्दर सफल प्रयास के लिए अनेक साधुवाद।

३-१२-७२ (सू० ना० व्यास)

राजज्योतिषीं प० विष्णुदत्त शास्त्री

आयुर्वेदाचार्य, ज्योतिष शास्त्री, ज्योतिष तीर्थ, ज्योतिष शिरोमणि
खगोल-विज्ञान कार्यालय, बम्बई

श्रीमान मेजर श्री गो० खोत महोदय का 'लघु पाराशरी सिद्धान्त' नाम का ग्रन्थ बनने से केवल हिन्दी भाषा को ही लाभ हुआ है ऐसा नहीं, खोत महोदय ने जगत के सब सिद्धान्तों के सामने एक गहन विचारणीय विषय उपस्थित कर दिया है और उस विचार की दिशा भी अनेक प्रकारों से स्पष्ट कर दी है। श्री खोत महोदय का लिखा लघु पाराशरी सिद्धान्त नाम का ग्रन्थ देखकर मुझे अत्यन्त संतोष होता है। आपका यह काम अमानुष और अलौकिक है। इस ग्रन्थ को लिखने की पद्धति बहुत ही हृदयाकर्षक है। इससे ज्योतिष फलित से अभिरुचि रखने वाले समस्त व्यक्तियों को बड़ा लाभ होगा। विषय गंभीर है पर उन्होंने खूब ही सरल समझाने का प्रयत्न किया है। मुझे तो यह ग्रन्थ हृदय धन की तरह प्रिय है। शुद्ध बुद्धि के विद्वान इसमें की विचार पद्धति से अवश्य ही बहुत प्रसन्न होंगे। हिन्दी पाठकों को सुगमता से विषय समझ में आवे इस हेतु श्री खोत महोदय ने हिन्दी भाषा में अनुपलब्ध अनेक पाश्चात्य सिद्धान्तों का इस ग्रन्थ में सरलता से विवेचन किया है और जगह-जगह नक्शे, कोष्टक लिखकर कठिन विषय को भी सुगम करने का प्रयत्न किया है।

इस ग्रन्थ के निर्माण होने से इस ग्रन्थ के विषय में प्राचीन काल से जो विचार परम्परा चली आ रही है उसमें बड़े महत्व की क्रांति होगी ऐसा मैं समझता हूं। आशा है कि इसका शीघ्र ही भविष्य में अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनुवाद होगा और जो इस ग्रन्थ में जो सिद्धान्त श्री खोत महोदय ने रखे हैं उनसे फलित ज्योतिष से अभिरुचि रखने वालों को शोधन कार्य में सहायता मिलेगी। विद्वानों द्वारा इस ग्रन्थ का आदर से आलोचन करना और राजा महाराजाओं तथा धनिकों द्वारा इसके भाषान्तरादि होने में सहायता करना योग्य होगा। इति शम्।

बम्बई — **राज ज्योतिषी विष्णु दत्त शास्त्री**

ता० २१-१२-१९७२

आभार प्रदर्शन

इस ग्रंथ की प्रेस पाण्डुलिपि तैयार करने के लिए निम्नलिखित महानुभावों का सहकार्य प्राप्त हुआ है, जिसके लिए मैं कृतज्ञ हूं। इसी प्रकार जिन महानुभावों ने इसे प्रकाशित करने में समय-समय पर सूचना एवं सलाह दी है उनका भी कृतज्ञ हूं।

श्रीमान. एस. एस. लौंढ़े सगे. एजन्ट स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, इन्दौर
श्रीमान सेठ शालिग्रामजी गुप्ता, एम. ए. इन्दौर
मिसेस, श्रीमती आदर्शकुमारी, भारती, एम. ए. इन्दौर
श्रीमान ओमप्रकाश गुप्ता, बी. ई. इन्दौर
श्रीमान जांभेकर, डी. एम. ई. ई.
डॉक्टर. बी. एल. धारपुरे, एम. एस.सी. पी. एच. डी.
श्रीमान महेन्द्र जोशी, इन्दौर

इसी प्रकार श्री परमपूज्य गुरुजी पद्मभूषण सूर्यनारायण व्यास (डॉक्टर ऑफ लेटर्स), राजज्योतिषी पंडित विष्णुदत्त शास्त्री, ज्योतिषाचार्य, आयुर्वेदाचार्य, तर्क तीर्थ, बम्बई और डॉक्टर प्र. ना. कवठेकर एम. ए. (संस्कृत, हिन्दी), पी. एच्. डी०, साहित्याचार्य, प्रिन्सिपल-संस्कृत महाविद्यालय इन्दौर जिन्होंने अपना कीमती समय खर्च करके इस ग्रंथ पर अपना अमूल्य अभिप्राय दिया है, उनका कृतज्ञ हूं।

लेखक

विषयानुक्रमणिका

लघुपाराशरी-आयुर्दाय अध्याय ३. (मारकाध्याय)

लघुपाराशरी-अन्तर्दशाध्याय ४.

परिशिष्ट

क्रमांक		विषय	पृष्ठ संख्या

विंशोत्तरी दशाविचार—दशाफल

प्रारंभिक परिचय

ग्रहों के प्रसिद्ध नाम

ग्रहों के प्रसिद्ध नाम	अंग्रेजी में नाम	अरबी फारसी नाम	पर्यायवाची संस्कृत शब्द
सूर्य	Sun	शम्स आफताब फारसी खुरशेद	आदित्य, अहस्कर, अर्क, अर्यमा अरुण, अहर्पति, अंशुमाली, अब्जिनीपति, इन, ईषांपति, उष्णरश्मि, कर्मसाक्षी, ग्रहपति, ग्रहराज, चण्डांशु, चित्रभानु, छायानाथ, जगच्चक्षु, तीक्ष्ण-दीधिति, तमिस्रहा, तेजसांराशि, तरणि, तपन, दिवाकर, द्युमणि, त्रयीतनु, दिनकर, दिनमणि, दिनेश, दिनकृत, धामनिधि, प्रभाकर, पूषण, पद्माक्ष, पतंग, भग, भानु, भास्वत्, रवि, लोकबन्धु, विभाकर, ब्रघ्न, विभास्वत्, विकर्तन, विरोचन, विभावसु, विवस्वान्, सूर, सविता, सहस्रांशु, सप्ताश्व, हेलि, हरिदश्व, हंस, द्वादशात्म, भास्कर, मार्तण्ड, मिहिर, मित्र, दीप्तरश्मि ।
चन्द्रमा	Moon (Cynthia)	कमर फारसी माह	अब्ज, इन्दु, कलानिधि, कुमुदबांधव, ग्लौ, चन्द्र, क्षपाकर (छपाकर), जैवातृक, द्विजराज, नक्षत्रेश, निशापति, निशाकर, पर्व, मृगांक, मयंक, राकेश, रजनीश, विधु, मनोज, सुधांशु, शुभ्रांशु, सोम, शशि, शशांक, शीतरश्मि, शशधर, सुधाकर, हिमांशु, हिमकर, शीतांशु, कलेश, उडुपति, तारापति, तारेश, हिमगु ।

ग्रहों के प्रसिद्ध नाम	अंग्रेजी में नाम	अरबी फारसी नाम	पर्यायवाची संस्कृत शब्द
मंगल	Mars	मरीक मर्रीख फारसी बेहराम,	अंगारक, आर, आवनेय, कुज, क्रूरदृक्, भौम, भूसुत, वक्र, लोहितांग, क्षितिज, अवनिज, क्रूरनेत्र, धराज, क्षितिनंदन (पृथ्वी के पर्यायवाची शब्दों में—नंदन, पुत्र, सूनु, इत्यादि शब्द जोड़ने पर जो शब्द बनेंगे वे सब मंगल के पर्यायवाची शब्द होंगे)
बुध	Mercury	उतारद फारसी तीर	इन्दुसुत, चन्द्रपुत्र, चान्द्रि, चन्द्रात्मज, ज्ञ, बोधन, वित्, सौम्य, रोहिणेय, शान्त, श्यामगाव, अतिदीर्घ, हेम्न, तारातनय, तारासूनु (चन्द्रमा के पर्यायवाची शब्दों के साथ—पुत्र, तनय, आत्मज, इत्यादि जोड़ने पर बुध के अनेक शब्द होंगे)
गुरु	Jupiter	मुश्तरी फारसी अहूरमज़्द	आंगिरस, अंगिरा, आर्य, इज्य, गीष्पति, गुरु, धिषण, चित्रशिखण्डिज, जीव, सुराचार्य, वाचस्पति, सुरगुरु, सूरि, प्रशांत, देवगुरु, त्रिदिवेशवन्द्य,
शुक्र	Venus	जुहरी फारसी नाहीद	उशना, आस्फुजित, कवि, काव्य, भार्गव, भृगु, भृगुसुत, दैत्यगुरु, सित, सूनु, अच्छ, काण, दानवेज्य, असुर-पूजित,
शनि	Saturn	जुहल फारसी केदवान	असित, आर्कि, कोण, छायात्मज, मंद, मांदि, शनैश्चर, सूर्यसूनु, सूर्यपुत्र, रविज, यम, पंगु, अर्कपुत्र, सौरि, नील, भास्करि (सूर्य के पर्यायवाची शब्दों के साथ पुत्र, ज आदि जोड़कर जो शब्द बनेंगे वे)

ग्रहों के प्रसिद्ध नाम	अंग्रेजी में नाम	अरबी फारसी नाम	पर्यायवाची संस्कृत शब्द
राहु	Dragon's Head (Node)	रास	अंगु, तम, विधुन्तुद, स्वर्भानु, सैंहिकेय, अभि, कृष्णांग, कपिलास, दीर्घ, असुर, सर्प, फणि, आगव ।
केतु	Dragons Tail (Node)	जनब	ध्वज, शिखि, सहुपुच्छ
वरुण	Uranus (Herschel)	×	×
वारुणी	Neptone	×	×

नोट :—मंगल–भूमिसुत, बुध—चन्द्रपुत्र तथा शनि—सूर्यपुत्र माना गया है ।

सूर्य को ग्रहपति, चन्द्रमा को तारापति (नक्षत्र), बृहस्पति को इन्द्र तथा देवताओं का गुरु, शुक्र को दैत्यों का गुरु—ऐसा कहते हैं ।

राशियों के नाम

राशि का प्रसिद्ध नाम	अंग्रेजी नाम	पर्यायवाची संस्कृत शब्द	फारसी नाम	अरबी नाम
मेष	Aries (Ram)	अज, करण, क्रिया, एडक, छाग, छगल (मेठू, उरभ्र, अणीयु, वृष्णि, अम्बु (ये गाडर-मेठे के नाम हैं) प्रथम, वस्त, विश्व, आद्य ।	वरे	हमल
वृषभ	Taurus (Bull)	वृषभ, तावुरी (उक्षण, भद्र, बलीवर्द, गो, वृषभ (ये वैल के नाम हैं) ।	गव्व	सोर
मिथुन	Gemini (Twins)	जितुम, नृयुक् (द्वंद्व, युग्म) यम	दोपेकर	जौंजा
कर्क	Cancer (Crab)	कुलीर, कर्कट, आटक, इन्दु	खरचंग	सरतान
सिंह	Leo (Lion)	लेय, कंठीरव (मृगेन्द्र, पंचास्य, हर्यक्ष, केसरी, हरि, वनराज ये सिंह के नाम हैं) ।	शीर	असद
कन्या	Virgo (Virgin)	पाथोन (अंगना) अबला, तन्वी, रमणी, तरुणी, कुमारी ।	खुशे	सम्बला
तुला	Libra (Scale)	जूक, (वणिक), तौलि, घट	तराजु	मीजां
वृश्चिक	Scorpio (Scorpion)	कौर्प्य, अलि, द्रुण (कीट), अष्टम, कौर्पि ।	कच्चदुम	अकख
धनु	Sagittarius (Centaur-bowman)	चाप, तौक्षिक, धन्घी, शरासन ।	कमान	कोस

राशि का प्रसिद्ध नाम	अंग्रेजी नाम	पर्यायवाची संस्कृत शब्द	फारसी नाम	अरबी नाम
मकर	Capricorn (Crocodile)	मृग, आकीकेरो (अकिकर) व्रक, नक्र, एन ।	बोझ	जद्दी
कुंभ	Aquarius (Watercarrier)	घट, हृद्रोग, घटस्तोय, धरामिधान ।	दुल्ल	दलू
मीन	Pisces (Fishes)	अन्यभ, झप, अन्त्यभ, क्रिया, रिष्फ. मत्स्य, पृथुरोम ।	माही	दुत

राशि = Sing of Zodiac ऋक्ष संधि--Cusp

नक्षत्र, आकृतियाँ, तारक संख्या और उनके पर्यायवाची शब्द

नक्षत्र	नक्षत्र संख्या	नक्षत्र की आकृतियाँ	नक्षत्रों की तारक संख्या	नक्षत्रों के पर्यायवाची शब्द	
अश्विनी	१	घोड़े के मुख के समान	३	तुरंग, दस्र, अश्वियुग, हय	
भरणी	२	योनि समान	३	यम, कृतांत, याम्य	२७ रेवति, १ अश्विनी--इन दो नक्षत्रों की संधि का एक प्रहर प्रमाण = गंडांत
कृत्तिका	३	तेज वस्तरे के समान	६	हुताशन, अग्नि, बहुला	
रोहिणी	४	शकट के समान	५	विधि, विरंचि, शकट	
मृगशीर्ष	५	हिरन के मस्तक समान	३	सौम्य, चन्द्र, अग्रहायणी, उडुव	

नक्षत्र	नक्षत्र संख्या	नक्षत्र की आकृतियाँ	नक्षत्रों की तारक संख्या	नक्षत्रों के पर्यायवाची शब्द	
आर्द्रा	६	मणि समान	१	तारका, रौद्र	
पुनर्वसु	७	घर के समान	४	अदिति, सुरजननी	
पुष्य	८	बाण के समान	३	तिष्य, अमरेज्य	
आश्लेषा	६	चक्र के समान	५	अहि, भुजंग, श्लेषा	६ आश्लेपा, १२ मघा--इन दो नक्षत्रों की संधि का एक प्रहर प्रमाण = गंडांत
मघा	१०	घर के समान	५	पितृ, जनक	
पूर्वा फाल्गुनी	११	मंच के समान	२	भाग्य, फाल्गुनी	
उत्तरा फाल्गुनी	१२	शय्या समान	२	अर्यमा, उत्तरभग	
हस्त	१३	हाथ के पंजे के समान	५	भानु, अरुण, अर्क	
चित्रा	१४	मोती के समान	१	त्वष्टा, सुरवर्धकी	
स्वाती	१५	प्रवल के समान	१	मरुत्, वात, समीरण, वायु, समीर	
विशाखा	१६	तोरण के समान	४	द्विदैवतं, इन्द्रानिक शुर्यभ	
अनुराधा	१७	भात के ढीग के समान	४	मैत्र	

नक्षत्र	नक्षत्र संख्या	नक्षत्र की आकृतियाँ	नक्षत्रों की तारक संख्या	नक्षत्रों के पर्यायवाची शब्द	
ज्येष्ठा	१८	कुंडल के समान	३	कुलिशतारा, शतमुख, सुरस्वामी	१८ ज्येष्ठा, १६ मूल--इन दो
मूल	१६	सिंह पुच्छ के समान	११	असुर, कृत, भुज	नक्षत्रों की संधि का एक प्रहर = गण्डांत
पूर्वाषाढ़ा	२०	हाथी दाँत के समान	२	पय, सलिल, जल, तोय	ज्येष्ठा, मूल--इनकी संधि का एक घटिका काल = अभुक्त मूल
उत्तराषाढ़ा चतुर्थ चरण	२१	त्रिकोण के समान	३	अभिजित्	
उत्तराषाढ़ा	२१	मंच (पलंग) समान	२	विश्व	
श्रवण	२२	तीन पाँववाले वामन के समान	३	श्रोणा, विष्णु, हरि, श्रुति	
धनिष्ठा	२३	मृदंग के समान	४	श्रविष्ठा, वसु	
शतभिषा	२४	वर्तुल (गोल) समान	१००	प्रचेता, शततारका, वरुण	
पूर्वाभाद्रपदा	२५	मंच (खाट) के समान	२	अजैकपाद, अजपात्, पूर्वप्रोष्ठपात्	
उत्तराभाद्रपदा	२६	जुड़वे समान	२	अहिर्बुध्न्य, उत्तरा प्रोष्ठपात्	
रेवती	२७	मृदंग के समान	३२	पूषा, प्रोष्ठा	

नक्षत्रों की तारक संख्या "मुहूर्त चिंतामणि" ग्रन्थ में दी हुई हैं, इस संख्या में क्वचित् मतभेद से फरक मालूम देता है।

भावों के प्रसिद्ध नाम

भावों के प्रसिद्ध नाम	अंग्रेजी में नाम	पर्यायवाची संस्कृत शब्द	भावों पर से मालूम होनेवाले विषय-जातक परिणाम के अनुसार
प्रथम	House of ascendant	लग्न, उदय, आद्य, तनु, जन्म, विलग्न, होय	शरीर का वर्ण, आकृति, लक्षण, यश, गुण, स्थान, सुख-दुःख, प्रवास, तेज, बल ।
द्वितीय	II House	स्व, कुटुम्ब, वाक्, अर्थ, मुक्ति, नयन	धन, नेत्र, मुख, विद्या, वचन, कुटुम्ब, भोजन, पैतृकधन, कुटुम्ब ।
तृतीय	III House	दुश्चिक्य, विक्रम = पराक्रम, सहोदर, सहज, वीर्य, धैर्य	भ्राता पराक्रम, साहस, कण्ठ, स्वर, श्रवण, आभरण, वस्त्र, धैर्य, बल, मूल, फल
चतुर्थ	IV House	सुख, पाताल, वृद्धि, हिबुक, क्षिति, मातृ, विद्या, चतुष्टय, तुर्य, वेश्म, यान, अम्बु, गेह, बन्धु, मित्र	विद्या, माता, सुख, गो, बन्धु, मनोगुण, राज्य, यान, भूमि, गृह, हृदय
पंचम	V House	धी, बुद्धि, पितृ, नंदन, पुत्र, देवराज, पंचक	देवता, राजा, पुत्र, पिता, बुद्धि, पुण्य, यात्रा, पुत्र-प्राप्ति, पितृ विचार (सूर्य से)
षष्ठ	VI House	रोग, अंग, शस्त्र, भय, रिपु, क्षत	रोग, शत्रु, व्यसन, व्रण, घाव (मंगल से भी विचार करना)
सप्तम	VII House	जामित्र, द्यून, काम, गमन, कलत्र, संपत, अस्त	संपूर्ण यात्रा, स्त्री सुख, पुत्र, विवाह (शुक्र से भीविचार करना)
अष्टम	VIII House	आयु, रन्ध्र, रण, मृत्यु, विनाश	आयु (शनि से भी विचार करना)
नवम	IX House	धर्म, गुरु, शुभ, तप, नव, भाग्य, अंक	भाग्य, प्रभाव, गुरु, धर्म, तप शुभ (गुरु से भी विचार करना)
दशम	X House Mid–Heaven	व्यापार, मेषूरण, मध्य, मान, ज्ञान, राज, आस्पद, कर्म, ख, व्योम	आज्ञा, मान, व्यापार, भूषण, निद्रा, कृषि, प्रब्रज्या, आगम, कर्म, जीवन, जीविका, वृत्ति, यश, विज्ञान, विद्या,
एकादश	XI House	उपान्त्य, भव, आय, लाभ	संपूर्ण धन प्राप्ति
द्वादश	XII House	व्यय, अन्त्यग	लम्बीसफर, दुर्गति, शयन, विभव, वित्तक्षय,व्यय, शैय्या, स्वप्न, निद्रा (शनि राहु से भी विचार करना)

केन्द्र	१-४-७-१०	स्थान हैं
त्रिकोण	५-९	स्थान हैं
पणफर	२-५-८-११	स्थान हैं
आपोक्लिम	३-६-९-१२	स्थान हैं
चतुरस्र	४-८	स्थान हैं
उपचय	३-६-१०-११	स्थान हैं
पीडर्क्ष	१-२-४-५-७-८-९-१२	स्थान हैं

अंक और उसके पर्यायवाची शब्द

अंक	अंग्रेजी में संज्ञा	अंग्रेजी अंक	पर्यायवाची शब्द संस्कृत में
०	Zero	0	ख, शून्य, अभ्र
१	One	1	क, इन्द्र, चन्द्र, धरा, क्षिति, भूमि, विधु, इला, भू
२	Two	2	अक्षि, नेत्र, पक्ष, श्रोत्र, नयन, यम, कर, भय
३	Three	3	राम, वह्नि, अग्नि, गुण, लोभ, पावक, ग,
४	Four	4	युग, वेद, कृत, अर्णव, पयोधि, अब्धि, विना, शक्र.
५	Five	5	शर, बाण, चाप, इषु, भूत, वायु, लेप, अर्थ,
६	Six	6	शास्त्र, रस, तर्क, अंग, ऋतु आदि
७	Seven	7	मुनि, अश्व, शैल, भूधर, आक्, गिरि, आग, अद्रि, स्वर
८	Eight	8	वसु, नाग, गज
९	Nine	9	नग, नन्द, खेट, ग्रह, अंश, अंक, रत्न
१०	Ten	10	दिग्, हरित्, कुम्भ, पंक्ति, आशा, दिग्पाल
११	Eleven	11	रुद्र, ईश, शिव
१२	Twelve	12	अर्क, मास, इन, स्फुट, दिनेश, (सूर्य के पर्यायवाची शब्द)
२०	Twenty	20	नख, विंशति, विंश
२५	Twenty Five	25	तत्त्व
३०	Thirty	30	त्रिंश

जैमिनीय सूत्रों में प्रयुक्त क, ट, प आदि संख्या चक्र

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ		
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न		
प	य	ब	भ	म							
फ	र	ल	व	श	प	स	ह	ज्ञ	क्ष	व	

अंकानां विलोमतो गतिः

उदाहरण अंक :—

मुनि[7] चाप[5] = ५७ (७५ नहीं)
नंद[9] बाण[5] = ५९ (९५ नहीं)
वसु[8] शास्त्र[6] = ६८ (८६ नहीं)
नंद[9] वेद[4] = ४९ (९४ नहीं)
नेत्र[2] चाप[5] = ५२ (२५ नहीं)
वह्नि[3] शास्त्र[6] = ६३ (३६ नहीं)
वसु[8] बाण[5] = ५८ (८५ नहीं)
मख = म – ५, ख – २ = २५ (५२ नहीं)
सह = स – ७, ह – ८ = ८७ (७८ नहीं)
लव = ल – ३, व – ४ = ४३ (३४ नहीं)

इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये। इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग भृगु-संहिता में जातक के फल घटनाओं से वर्षों के लिए किया गया है। कुछ अन्य ग्रन्थों में भी इसी प्रकार का प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं अंकों के पर्यायवाची उपर्युक्त शब्दों के पर्यायवाची अन्य शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। शब्दों के पर्यायवाची शब्द अमरकोष में से दिये हैं।

संकेत और चिह्न परिभाषा

संकेतः—

भाव—(क) यदि १, २, ३, ४ इत्यादि कोई संख्या किसी भी ग्रह के पूर्व अंकित हो तो वहाँ वह संख्या भाव की सूचक है।

उदाहरणार्थ—१ सूर्य = लग्नस्थ सूर्य
८ सूर्य = अष्टमस्थ सूर्य

(ख) भावों के अथवा गृहों के अधिपतियों के संकेत भावों के नाम के प्रथम अक्षर से होते हैं। जैसे---ल = लग्नेश, द्वि = द्वितीयेश, तृ = तृतीयेश इत्यादि। परन्तु कुण्डली के प्रथम भाव को लग्न, अष्टम भाव को अष्टम अथवा रन्ध्र, नवम भाव को नवम तथा भाग्य, एकादश भाव को आय, द्वादश भाव को व्यय इन नामों से भी सम्बोधित किया गया है। जैसे एकादश भाव के अधिपति को 'आयेश' ऐसी संज्ञा मिली है।

(ग) केन्द्रेश = लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थान के स्वामी। मारकेश = द्वितीय-सप्तम स्थानों के स्वामी।

(घ) द्वादश भावों की संज्ञा सामान्य ग्रन्थों में दी हुई है। इनको "गृह" भी कहते हैं। परन्तु इन ग्रन्थों के भावों की शुभाशुभ संज्ञा ही सिर्फ है। उस भाव पर से किस बात का विचार होता है---यह जातक फलादेश का विषय है।

ग्रह—(क) ग्रहों का संकेत उनके प्रथमाक्षर से किया गया है उदाहरणार्थ— सू = सूर्य, चं = चन्द्रमा, मं = मंगल इत्यादि।

(ख) प्रसंगवश के = केन्द्रेश, त्रिक = त्रिषडायेश, त्रि = त्रिकोणेश, मा = मारकेश, स = सदोष ग्रह (त्रिषडायेश) नि = निर्दोष षडायेश के अतिरिक्त त्रिकोणेश।

(ग) ग्रहों राशियों का कोई भी अलग संकेत नहीं है। राशि संकेत के लिये ग्रहों के आगे संख्या पर "रा" लिखा जाता है अथवा वैसे ही छोड़ दिया जाता है। अं से अंश उसके चिह्न संख्या (अंक) पर '°' इस प्रकार, क – कला संकेत, ' वि – विकला संकेत, " व – वर्ष, मा – महीने, दि – दिन, घं – घंटे, मि – मिनिट, से – सेकेन्ड।

ग्रहों के राश्यादि स्पष्ट में राशि को एक अंक कम करके लिखा जाता है, उदाहरणार्थ—

(१) चन्द्र स्पष्ट—५।१०°।१५'।३०" = चन्द्र कन्या राशि में दस अंश, पन्द्रह कला और तीस विकला पर था। यहाँ पर राशि के ५ अंक को छठी राशि मानने की प्रथा है। इसका अर्थ है कि चन्द्रमा पाँचवीं राशि पूर्ण करके छठे राशि के १० अंश पर था। गणना करने के लिये यही उपयुक्त है।

वर्षादि–(क) वर्षादि का अर्थ है—वर्ष, महीने, दिन, घटी, पल।

उदाहरणार्थ—वर्षादि ५।३।२०।१०।१५ = पाँच वर्ष, तीन महीने, बीस दिन, दस घटी तथा १५ पल।

(ख) ग्रहों की दशाओं में—वर्ष, महीने, दिन इनका मान सौर वर्ष, महीने, दिन इनसे है।

उदाहरणार्थ—सम्वत् २०२०।२।१५ = सम्वत् २०२० के मिथुन राशि के १५ अंश पर सूर्य था। इसे सौर ज्येष्ठ की पन्द्रहवीं तिथि अथवा सूर्य प्रविष्टे मिथुन गतांश पन्द्रह ऐसा भी कहते हैं।

(ग) भारतीय पंचांगों में वर्ष का अर्थ निरयन सौर वर्ष है। उसका मान ३६५ दिन, १५ घटी, ३१ पल, ३० विकला (विपल) है। विकल्प से अंग्रेजी मान ३६५ दिन, ६ घण्टे, ९ मिनिट, ८.९७ सेकेण्ड ऐसा है। जन्म समय में इतने (धन) जोड़ने से जातक के प्रथम वर्ष की समाप्ति तथा द्वितीय वर्ष का आरम्भ होता है। उस समय जो लग्न या जो ग्रह स्पष्ट हो वह जातक के द्वितीय वर्ष के प्रवेश की ताजिक कुण्डली होगी। इस प्रकार प्रत्येक वर्ष का मान बढ़ता जाता है।

जातक—जिस किसी व्यक्ति की जन्म कुण्डली पर विचार किया जाता है, उस कुण्डली का वह व्यक्ति जातक होता है।

ताजिक पद्धति—जन्म कालीन कुण्डली के स्थायी ग्रहों के द्वारा उसके भाग्याभाग्य की जानकारी प्राप्त करने की जो रीति होती है उसे जातक-फलादेश कहते हैं। वार्षिक कुण्डली से फलों की जानकारी प्राप्त करने की रीति को ताजिक पद्धति कहते हैं।

नक्षत्र पद्धति—नक्षत्रों से उनके स्वामियों के सामयिक फलादेश की रीति को नक्षत्र-पद्धति कहते हैं। इन पद्धतियों में से विंशोत्तरी एक दशा पद्धति है।

गोचर पद्धति—जिस किसी भी समय पर किसी जातक का विचार करते समय ग्रहों द्वारा जो उसका विचार किया जाता है उसे गोचर-पद्धति कहते हैं।

शुभफल नहीं देता—इस ग्रंथ में जब तक किसी भी ग्रह को अथवा ग्रह के योगज-फलों को पाप-फलद (अशुभ फल देने वाला) नहीं कहा जाता तब तक उस ग्रह को अनिष्ट या पाप-फलद (पाप फल देने वाला) नहीं समझना। जहाँ ऐसा कहा गया है कि "अमुक ग्रह का योग शुभफल नहीं देता" न दिशंति शुभं नृणाम् "वहाँ इसका अर्थ ऐसा समझना चाहिये कि वह ग्रह शुभ फल नहीं देता और पाप-फल भी नहीं देता अर्थात् उसका फल सम होता है।

कारक नहीं—योगजफल कोष्ठक या सारणी में कहीं-कहीं ग्रहों के सामने "कारक नहीं" ऐसा लिखा है वहाँ उसका अर्थ ऐसा है कि वे ग्रह इस ग्रंथ के संज्ञानुसार "कारक" तो है परंतु लेखक के मत में वे दशा-प्रसंगों में परस्पर दशान्तर्दशा में शुभ फल नहीं देंगे ।

सौम्य तथा शुभ ग्रह—(अ) जातक ग्रन्थों में सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु ये क्रूर ग्रह माने गये हैं । पापयुक्त बुध तथा क्षीण चन्द्रमा भी पापी होते हैं । चन्द्र, बुध, शुक्र, वृहस्पति ये सौम्यसंज्ञक ग्रह हैं । परन्तु इस ग्रंथ में क्रूर ग्रह पापी नहीं होते अथवा शुभ भी नहीं होते । सब ग्रह इस ग्रंथ की परिभाषा तथा कुंडली स्थित ग्रहों की परिस्थिति पर शुभ या पापी ठहराये जाते हैं ।

उदाहरणार्थ—जातक ग्रंथों में मंगल क्रूर ग्रह है परन्तु इस ग्रंथ के अनुसार कर्क लग्न की कुण्डली को मंगल ग्रह दशमेश और पंचमेश होने से दशा-प्रसंग में कारक बनता है और शुभ होता है । वही मंगल कन्या लग्न के लिये तृतीयेश होने से पापी होता है । जातक फलादेश के अनुसार उच्चस्थ वृहस्पति शुभ ग्रह होता है । परन्तु वृषभ लग्न की कुण्डली को वह अष्टमेश और एकादशेश होने से दशामें परम पापी बनता है; अथवा मिथुन लग्न की कुण्डली को सप्तमेश होने से मारक होता है । लेखक ने कोष्ठक (सारणी में) मारकेशों की दो श्रेणी बनाई हैं । एक श्रेणी में उन ग्रहों का समावेश किया है जो ग्रह मृत्यु तो देते नहीं परन्तु मरण-तुल्य अवस्था और अरिष्ट फल देते हैं । और दूसरी श्रेणी में उन ग्रहों का समावेश है जो ग्रह दशांतर्दशा में मृत्यु देते हैं ।

जो अरिष्ट फल देते हैं, उन्हें लेखक ने 'मारकेश मात्र' ऐसा कहा है और मृत्यु देने वाले ग्रहों को 'मारक-मारकेश' ऐसी संज्ञा दी है ।

(आ)—इस ग्रंथ के अनुसार ग्रह अपनी दशा में जो फल देते हैं उनका संबन्ध जातक के जीवन में परिवर्तित अवस्था से होता है । जिस जातक के जन्म ग्रह अथवा नक्षत्र उत्तम होते हैं, उसे लोग "नक्षत्री जीव" ऐसा सम्बोधन करते हैं । उसके जीवन में घटने वाली अशुभ घटनाओं का प्रभाव लोगों की दृष्टि में अक्षुण्ण होता है । ग्रहों की दशाओं के द्वारा जातक के "अच्छे बुरे दिनों" का बोध होता है । इसलिए जन्मकालीन ग्रहों के बल और दशा देने वाले ग्रह इन दोनों के फल, इस ग्रंथ में शुभाशुभ संज्ञा जो कही गई है उनके अनुरोध से आंकने पड़ते हैं ।

(इ)—इस ग्रंथ में ग्रह जहाँ अकेले बैठे होते हैं उन्हें और योगज फलों को केवल शुभ अशुभ, पाप, मारक ऐसा कहा है, परन्तु वे पापी या शुभग्रह जातक के जीवन में किस प्रकार से किस बाजू से उसे प्रभावित करेंगे या कौन से अर्थ द्वारा वे शुभ या पापी हैं अथवा उनका फल किस प्रकार से मिलेगा इन

सबका उल्लेख इस ग्रंथ में नहीं किया गया है। इसी प्रकार मारकेशों के अरिष्ट फल जातक के लिये किस दिशा से या प्रकार से प्राप्त होंगे, यह भी स्पष्ट नहीं किया गया है। इस ग्रन्थके आखिरी श्लोक में नवमेश-दशमेश इनके अन्योन्याश्रित योग को राजयोग ऐसा कहा है और उनके फल मनुष्य को "विख्यात और विजयी" मिलेंगे ऐसा कहा गया है। परंतु यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि वे फल उसग्रह की दशान्तर्दशा में मिलते हैं या वे उसके जन्मज-फल हैं अथवा ये फल उसके स्वयं के व्यक्तित्व हैं। जातक ग्रंथों में नवम गृह को धर्म तथा दशम गृह को कर्म स्थान माना गया है। इस ग्रंथ में भी इन भावों को वैसा ही मानकर उक्त नवमेश-दशमेश इनके अन्योन्याश्रित योग के धर्म स्थान के फलों को "विख्यात" और कर्म स्थान के फलों को "विजयी" ऐसा कहा गया है। इस पर से, जिन-जिन भावों पर से जीवन की बातों का विचार किया जाता है, उन-उन भावों के अधिपति यदि योगकारक हों तो उन-उन स्थानों के अनुरोध से वे-तत्तत् फल (शुभाशुभ) देंगे, ऐसा संकेत मिलता है।

उदाहरणार्थ :—वृषभ, मिथुन, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु लग्नों की कुण्डलियों में आयेश (लाभेश) यह विशुद्ध पापी ग्रह है और उसने यद्यपि दूसरे शुभग्रह से सम्बन्ध किया तो भी वह शुभग्रह नहीं होता। ऐसी स्थिति में इस कुडंली के जातक को आयेश की (लाभेश की) दशा आई तो वह दशा द्रव्यप्राप्ति के सम्बन्ध में बाधक बन जाती है। इस प्रकार कर्क लग्न के जातक को मंगल ग्रह स्वयं शुभ है। यह ग्रह यदि दूसरे किसी ग्रह से सम्बन्ध नहीं करे तो वह अपनी दशा में शुभान्तर में साधारणतः जातक को कर्म तथा वृद्धि इनके सम्बन्ध में शुभफल देगा तथा उसे उसके दशान्तर में पुत्र का सहयोग प्राप्त होगा। परन्तु यदि इस मंगल का सम्बन्ध किसी दूसरे ग्रह से हो तो उससे सम्बन्धित गृह के स्वामी के अनुरोध से शुभफलों के परिणामों में अन्तर पड़ेगा।

(ऊ) कुण्डली के दो ग्रहों का परस्पर सम्बन्ध साधारणतः चार भावों का सम्बन्ध होता है इसलिए सम्बन्ध की अनेक परिस्थिति के कारण ग्रहों के योगज फलों की दिशा का मूल्यांकन करना कठिन होता है। इसलिए लेखक का मत है कि "कारक" ग्रहों की दशा में "अच्छे दिन" तथा "पापी" ग्रह की दशा में "बुरे दिन" मारकेश की दशा में शारीरिक अरिष्ट से लेकर मृत्यु तक फल मिलेगा, ऐसा समझना उत्तम होगा।

योगज (योगकारक)—यह शब्द सर्वत्र वापरने में आया है। योगज फल याने शुभफल, योगकारक ग्रहों के योगज फल, राजयोग के फल इत्यादि समझना।

परस्पर विरोधी वाक्य—इस ग्रंथ में यदि कहीं भी ग्रह के फल को शुभ और दूसरी परिस्थिति में उसे अशुभ कहा गया हो तो वह फल तारतम्य से होगा ऐसा समझना चाहिये। ऐसी स्थिति में लेखक ने वहाँ "संदिग्ध" ऐसा शब्द डाला है। स्पष्टीकरण में ग्रहों के फलों का अनुमान लगाते समय कहीं-कहीं परस्पर विरोधी वाक्य अथवा अंक (संख्या) आई हो तो पाठक कृपा करके इसकी सूचना लेखक को देंगे, ऐसी आशा है।

कुछ विशिष्ट संकेत या चिह्न व्यवहार में आये हैं, उनका बोध

= इस चिह्न का अर्थ है—"अर्थात्"। उदाहरण—सूचं = अर्थात सूर्य और चन्द्रमा आपस में सम्बन्ध करते हैं।

× दो ग्रहों के बीच में जहाँ पर × ऐसा चिह्न होगा, वहाँ उसका अर्थ है कि "यदि वे दोनों ग्रह परस्पर सम्बन्धित हों" ग्रहों के परस्पर सम्बन्धों की व्याख्या इस ग्रंथ में दी है। इसके सिवा परिशिष्ट क्रमांक देखिये। उदाहरणार्थ :—सू × चं इसका अर्थ ऐसा है कि "यदि सूर्य और चन्द्र परस्पर सम्बन्ध करते हों"

\+ ग्रह के आगे + ऐसा चिह्न हो और उसके आगे कोई भी संख्या दी गई हो तो वहाँ + का अर्थ उस ग्रह के शुभत्व से है। वहाँ + शुभ का बोधन और + के बाद की संख्या शुभत्व के परिणामों की संख्या है।

उदाहरणार्थ :—योगज-फल कोष्ठक में (सारणी में) जहाँ पर श + सू = + ९ इस प्रकार का उल्लेख है वहाँ उसका अर्थ है कि उस कुण्डली में शनि तथा सूर्य इनके योगजफल शुभ हैं और उन शुभों की संख्या ९ है। वैसे देखा जाय तो प्रत्येक लग्नकुण्डली के शुभ योगों की गुणसंख्याओं की चरम सीमा भिन्न-भिन्न है परन्तु साधारणतः सभी योगों के शुभ-फलों की चरमसीमा + १७ तक है और पाप फलों की –१७ तक अंकित की गयी है। + ० से + ४ तक समफल, तथा + ४ से + १७ तक क्रमशः शुभ-फलों की उत्तरोत्तर वृद्धि समझनी चाहिये। उसी प्रकार ० से –४ तक अशुभ फलों का समफल, तथा –४ से –१७ तक उत्तरोत्तर पाप-फल समझना चाहिये।

± जहाँ पर ग्रहों के फलों की संख्या + के नीचे—ऐसी रेखा हो, तो उसका अर्थ है "उक्त अन्तर दशा के अन्त में अशुभ फ़ल प्राप्त होगा".

उदाहरण —योगज फ़ल प्रसंग में मिथुन लग्न की कुण्डली में बु + वृ = ± ११ लिखा होगा वहाँ उसका अर्थ यह है कि वृहस्पति मारकेश है इस-

लिए बुध की महादशा में वृहस्पति की अन्तर्दशा + ११ शुभफल देकर उत्तरोत्तर अन्तर्दशा के अन्त तक अशुभफल मिलता रहेगा ।

— जहाँ पर दो ग्रहों के बीच में—ऐसा चिन्ह होगा वहाँ—इसका अर्थ है कि "असम्बन्ध" अथवा "यदि ये परस्पर सम्बन्धित नहीं हों तो"

। जहाँ पर दो ग्रहों के बीच । खड़ी रेखा हो वहाँ उसका अर्थ "अन्तर्दशा से" है ।

उदाहरणार्थ—सू । चं–याने सूर्य की महादशा में चन्द्रमा का अन्तर ।

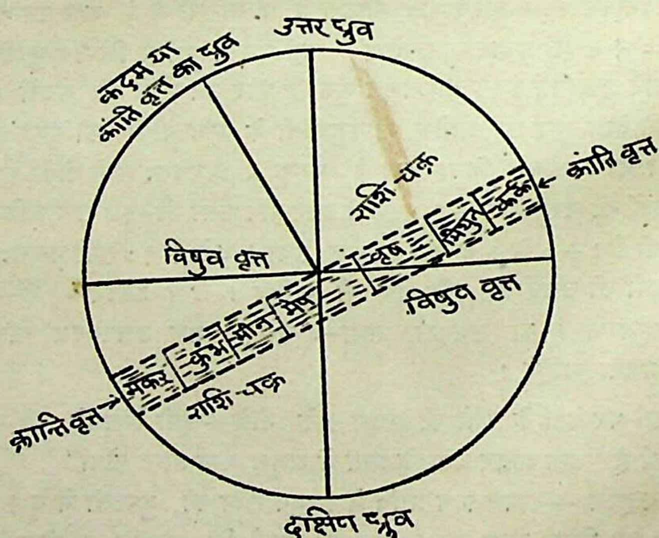
/ जहाँ पर दो ग्रहों के बीच में इस प्रकार की टेढ़ी रेखा हो तो उसका अर्थ "दृष्टि से" है । इस ग्रंथ में ग्रहों के दृष्टिसम्बन्ध के नियम अन्य जातक ग्रंथों में दिये हुए जातक ग्रन्थों से भिन्न हैं ।

उदाहरण—सू/चं = सूर्य पर चन्द्रमा की दृष्टि

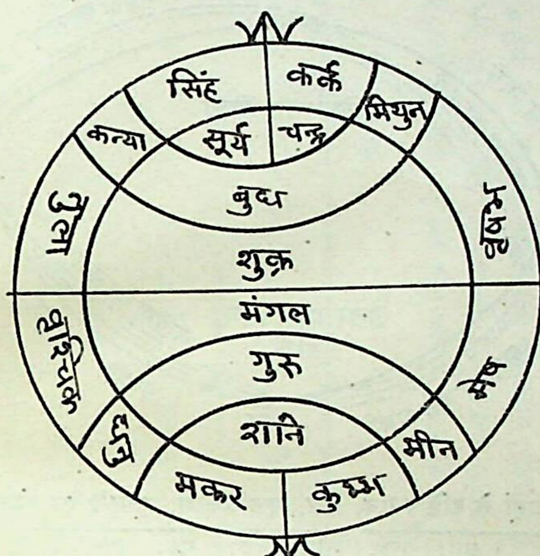
जस ग्रह के आगे ' इस प्रकार का चिन्ह होगा उसका अर्थ "अथवा" ऐसा है ।

उदाहरण :—सू, चं = सूर्य अथवा चन्द्रमा ।

विषुव वृत्त, क्रांति वृत्त, राशिचक्र, ध्रुव-चक्र

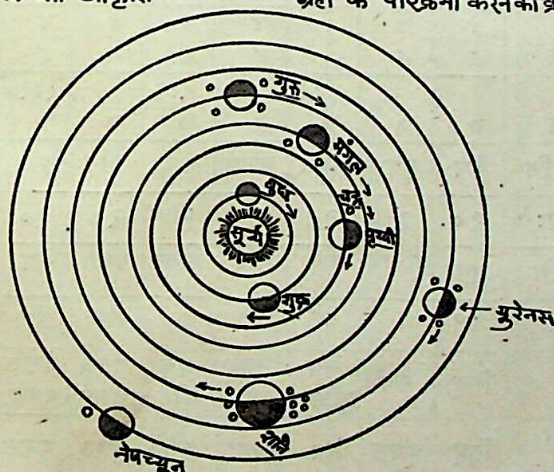


सिंहस्याधिपतिर्भानुश्चन्द्रश्च कर्कटेश्वरः। मेषवृश्चिकयोर्भौमः कन्यामिथुनयोर्बुधः।२८।
धनुर्मीनयोर्देवेज्यः शुक्रो वृषतुलेश्वरः। शनिर्मकरकुंभेश इत्येते राशिनायकाः॥

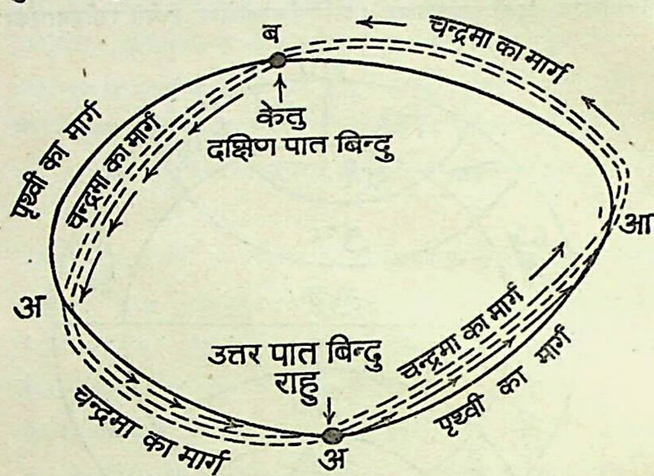


राशि और ग्रहों का सम्बन्ध-चक्र

ग्रहमाला की आकृति ग्रहों के परिक्रमा करनेका क्रम



राहु और केतु की स्थिति इस प्रकार गगन-मण्डल में है--



ग्रह :—

ग्रहों के दृष्टि स्थान, क्षेत्र, मूलत्रिकोण, इत्यादि का कोष्टक

	सूर्यः	चन्द्रः	भौमः	बुधः	गुरुः	शुक्रः	शनिः	राहुः	केतुः
एक पाद दृष्टि स्थान	३ १०	३ १०	३ १०	३ १०	३ १०	३ १०	०	३ १०	३ १०
द्विपाद दृष्टि स्थान	५ ९	५ ९	५ ९	५ ९	०	५ ९	५ ९	५ ९	५ ९
त्रिपाद दृष्टि स्थान	४ ८	४ ८	०	४ ८	४ ८	४ ८	४ ८	४ ८	४ ८
संपूर्ण दृष्टि स्थान	७	७	४।८ ७	७	५।९ ७	७	३।१० ७	७	७
उच्च क्षेत्राणि	मेष	वृषभ	मकर	कन्या	कर्क	मीन	तुला	मिथुन	धनु
उच्च भागाः	१०	३	२८	१५	५	२७	२०	०	०
नीच क्षेत्राणि	तुला	वृश्चिक	कर्क	मीन	मकर	कन्या	मेष	धनु	मिथुन
नीच भागाः	१०	३	२८	१५	५	२७	२०	०	०
स्वक्षेत्राणि	सिंह	कर्क	मेष वृश्चिक	मिथुन कन्या	धनु मीन	वृषभ तुला	मकर कुम्भ	कन्या	मीन
मूल त्रिकोण स्थानानि	सिंह	वृषभ	मेष	कन्या	धनु	तुला	कुम्भ	०	०

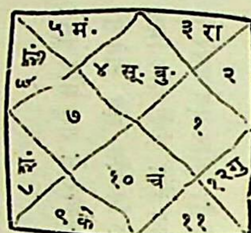
अथ ग्रहाणां मित्र सम शत्रु कोष्टकम्

ग्रहाणां नाम	सूर्य	चन्द्र	मंगल	वुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु केतु
मित्र ग्रहा:	चं. मं. गु.	सू. वु.	सू. गु. चं	सू. रा. शु.	सू. चं. मं.	बु. रा. श	बु. रा. शु.	बु. शु. श.
समग्रहा:	बु	मं. शु. गु. श	शु. श	मं. श. गु.	श. रा.	गु. मं.	गु	गु
शत्रुग्रहा:	श. रा. शु	रा.	बु. रा.	चं.	बु. शु.	सू. चं. मं.	सू. चं. मं.	सू. चं. मं.

ग्रहों के तात्कालिक शत्रु-मित्रत्व कोष्ठक

कुण्डली में ग्रह एक दूसरे से २,३,४,१०,११,१२ इन स्थानों में हो तो वे तत्काल मित्र होते हैं; और एक दूसरे से १,५,६,७,८,९ इन स्थानों में हो तो वे तत्काल शत्रु होते हैं। जो ग्रह निसर्गतः मित्र और तात्कालिक मित्र होंगे, उन्हें अति मित्र समझना। जो निसर्गतः शत्रु होकर तात्कालिक शत्रु होगें, उन्हें अति शत्रु समझना। तात्कालिक मित्र होकर निसर्गतः सम होंगे तो उन्हें मित्र समझना। जो तात्कालिक शत्रु होकर निसर्गतः सम होंगे उन्हें शत्रु समझना। और जो ग्रह एक प्रकार से शत्रु और दूसरे प्रकार से मित्र हों तो उन्हें सम समझना।

नैसर्गिक मित्रता के बारे में जानकारी निम्नलिखित कुण्डली पर से समझ पड़ेगी—



तात्कालिक मैत्री चक्र

	सू	चं	मं.	बु.	गु.	शु.	श.
मित्र	मं शु	गु. श.	सू. बु शु. श	मं शु	चं.	सू. मं बु. श.	चं.मं. शु
शत्रु	चं बु गु. श	सू. मं. बु. शु.	गु चं	सू. चं. गु. श.	सू. मंबु शु. श.	चं. गु.	सू. बु गु.

पंचधा मित्र ग्रह

	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
अधिमित्र	मंगल	०	सूय	शुक्र	चन्द्र	बुध शनि	शुक्र
मित्र	०	गुरु शनि	शु. श.	मंगल	०	मंगल	०
सम	चं.गु.शु.	सू. मं.	चं.गु.बु.	सूर्य	सू. मं.	सूर्य	बुध, मं.
शत्रु	बुध	मं. शु.	०	गु. श.	शनि	गुरु	गुरु
अधिशत्रु	शनि	०	०	चंद्र	बु. शु.	चन्द्र	सूर्य

स्पष्ट ग्रह साधन

किसी भी ग्रह को स्पष्ट करना याने इष्टकाल में गगन-मण्डल में वह कितने अंशादि पर है यह गणित की सहायता से सिद्ध करना है—इस विधि को ग्रहों को चालन देना भी कहते हैं। प्रत्येक पंचांग में दाहिनी तरफ के कोने में कुंडली दी हुई होती है उस पर प्रत्येक पूर्णिमा और अमावस्या के सूर्योदय के स्पष्ट ग्रह दिये हुए होते हैं; उन अंकों के नीचे उस ग्रह की गति के अंक भी दिये हुए होते हैं। उसी गति पर से निम्नलिखित रीति के अनुसार चाहे जिस समय के स्पष्ट ग्रह तैयार किये जाते हैं। तथापि यह रीति स्थूलमान की है। इसकी अपेक्षा ग्रहलाघव पर से तैयार किये हुए ग्रह अधिक सूक्ष्म होते हैं परन्तु उसका गणित बहुत कठिन है। अस्तु, चन्द्रमा को छोड़कर अन्य सब ग्रहों की स्पष्ट करने की रीति एक ही है। आजकल तो प्रत्येक पंचांग में सूर्योदय के स्पष्ट ग्रह दिये हुए होते हैं, इन पर से इष्टकाल के स्पष्ट ग्रह करना सुलभ हो गया है।

रीतिः—जिस स्थान का स्पष्ट ग्रह तैयार करना हो उस जगह जो पंचांग प्रचलित हो उसी का उपयोग करना चाहिए। जिस समय के स्पष्ट ग्रह करना हो उस समय से लेकर पूर्णिमा अथवा अमावस्या के सूर्योदय तक दिनों की गणना करनी चाहिये। अँकों को सीमित रखने के लिए पूर्णिमा अथवा अमावस्या इन दोनों में से जो दिन समीप हो वह लेना चाहिए। जितने दिन, घटी, पल आदि होंगे उनको ग्रहों के गति के अंकों से गुणा करना चाहिए। ये अंक गति के कला-विकला होते हैं। इसलिये उनकी विकला करने के पश्चात् ही गुणा करना चाहिए। जो गुणाकार आवेगा उसे एक दिन के पलों से अर्थात् ३६०० से भाग देना चाहिए और बाद में उनके अंश, घटी, पल आदि कर लेना चाहिये। यदि पिछले पक्ष के कोष्ठक में से ग्रह गति लेकर उदाहरण किया गया हो तो उस ग्रह के अंकों में ये अंक जोड़ने चाहिये और यदि वर्तमान पक्ष के कोष्टक पर से ग्रह गति लेकर गणित किया हो तो उन अंकों में से ऋण याने कम कर देना चाहिए। पंचांग के ग्रह राश्यात्मक होते हैं अर्थात् राशि, अंश, कला, विकला होते है और गणितान्तर किया हुआ गुणाकार तो सिर्फ अंशात्मक है; याने अंश, कला, विकला हैं, इसलिये परस्पर धन या ऋण करते समय राशि के नीचे ० (शून्य) और अंशों के नीचे अंश लिखना चाहिये। किसी का जन्म पूर्णिमा अथवा अमावस्या को सूर्योदय के समय हुआ हो तो पंचांगस्थ स्पष्ट जो होंगे वे ही उसके जन्म काल के स्पष्ट ग्रह हैं। आगे उदाहरण के द्वारा एक, दो ग्रह स्पष्ट करके वताये हुए हैं, उसी प्रकार अन्य सब ग्रह भी स्पष्ट करने चाहिये। चन्द्रमा स्पष्ट करने की रीति निराली है वह भी आगे दी गयी है। राहु की गति सदैव विलोम होती है इसलिये पंचांगस्थ स्पष्ट ग्रहों में जोड़ने के वजाय राहु का चालन सदैव घटाना चाहिये और वजा वाकी के जगह मिलाना चाहिये। वैसे ही कोई भी ग्रह वक्री हो तो उसकी गति भी विलोम होती है, इसलिये वक्री ग्रह का उदाहरण सदैव राहु के समान करना चाहिये।

उदाहरण पहला—

शके १८३२ वैशाख कृष्ण पक्ष २ शुक्रवार तारीख २७ मई १९१०, इस दिन दोपहर में १ बजकर ३७ मिनट पर एक व्यक्ति का जन्म हुआ है। इस का स्पष्ट सूर्य करना है। इस दिन सूर्योदय ५ बजकर २५ मिनट पर है याने सूर्योदय से लेकर इस व्यक्ति का जन्म ८ घण्टे १२ मिनिट पर हुआ है। अब ८ घण्टे १२ मिनट इनके घटी, पलादि करना चाहिये; इसलिए ८ × २॥ =

२० घटिका और १२ × २।। = ३० पल अर्थात् शुक्रवार को सूर्योदय से लेकर २० घटी, ३० पल इतने समय पर जन्म हुआ। इस जगह पूर्णिमा समीप है इसलिए पिछले पक्ष के कोष्टक पर से गति लेकर उदाहरण करना चाहिये। प्रथम दिन गिनने पर पूर्णिमा का सम्पूर्ण दिन, प्रतिपदा का सम्पूर्ण दिन, द्वितीया का सम्पूर्ण दिन और तृतीया के २० घटी ३० पल पर जन्म हुआ है इसलिए ३ दिन, २० घटी, ३० पल इतना समय हुआ। (नोट—जिस समय पिछले पक्ष के कोष्टक के ग्रह गति पर से अगले दिन का ग्रह तैयार करना हो उस समय उस पक्ष का अन्तिम दिन सम्पूर्ण हिसाब में लेना चाहिये। परन्तु अगले दिन के ग्रह गति पर से पिछले दिन का ग्रह तैयार करते समय उस पक्ष का दिन हिसाब में नहीं लेना चाहियें, कारण पंचांगस्थ ग्रह गति उस दिन के सूर्योदय के समय की है, इसलिए दिन-गणना एक जगह सूर्योदय से और दूसरी जगह सूर्योदय पर्यन्त गिननी चाहिये, यह ध्यान में रखना चाहिये।)

यहाँ पर इसे सूर्योदय की गति से गुणना है। सूर्य की गति ५७ कला २० विकला है इन सबकी विकला करने पर ५७ × ६० = ३४२० + २० = ३४४० विकलात्मक एक दिन की सूर्य की गति हुई। अब ३ दिन, २० घटी और ३० पलों के सबके पल करने पर ३ × ६० = १८० घटी + २० = २०० घटी × ६० = १२००० पल + ३० = १२०३० पल हुए। इसको ३४४० से गुणा करके दिन की ६० घटिका के पल ६० × ६० = ३६०० से भाग देने पर इसका भागाकार पलात्मक आवेगा उसके राशिअंश आदि करके वे अंक पञ्चांग के राश्यादि अंकों में मिलाने पर इष्ट काल का सूर्य स्पष्ट आवेगा। नीचे उदाहरण दिया है—

१२०३० × ३४४०

÷ ३६००)४१३८३२००(११४९५
शेष १२०० प्रति विकला छोड़ो

÷ ६०)११४९५(
भागाकार १९१ बाकी
३५ विकला ÷ ६० =
३ अंश बाकी ११ कला
उत्तर = ३ अं ११ क. ३५ वि.

पूर्णिमा के पंचांग से स्पष्ट सूर्य

रा.	अं.	क.	वि.
१	९	२६	३१
०	३	११	३५
१	१२	३८	६

यह वैशाख कृष्ण तृतीया का स्पष्ट सूर्य हुआ। त्रैराशिक रीति से यह उदाहरण करते आता है। जैसे एक दिन की याने ३६०० पल को यदि ३४४०

विकला गति है तो ३ दिन २० घटी ३० पल अर्थात् १२०३० पलों की कितनी ? वस्तुतः इसी रीति से उपरोक्त उदाहरण किया है पिछले पक्ष के कोष्टक के गति पर से अगले दिन के ग्रह को चालन देने का यह एक उदाहरण है। अब वर्तमान पक्ष के कोष्टक के गति पर से पिछले दिन का ग्रह तैयार करने का एक और उदाहरण दिया जाता है।

उदाहरण दूसरा :— शके १८३२ वैशाख कृष्ण १२ शनिवार को दोपहर ११ बजकर ३५ मिनट पर किसी एक व्यक्ति का जन्म हुआ है उस समय का स्पष्ट सूर्य करना है। इस दिन का सूर्योदय ५ बजकर २५ मिनट पर है अर्थात् सूर्योदय से ६ घण्टे १० मिनट पर याने (६ × २।। और १० × २।।) १५ घटी २५ पल पर जन्म हुआ है। इसलिए उस समय से लेकर अमावस्या तक दिन गिनने पर अमावस्या मंगलवार को है इसलिए अहोरात्रि की घटी ६० इनमें से जन्म पूर्व की शनिवार की १५ घटी २५ पल कम करदी = ४४ घटी ३५ पल इतनी शनिवार की जन्म पश्चात् की शेष घटी हुई। अब रविवार और सोमवार ये दो सम्पूर्ण दिन और शनिवार की ४४ घटी ३५ पल मिलाकर २ दिन, ४४ घटी, ३५ पल इतना जन्म समय से लेकर अमावस्या के सूर्योदय तक इष्टकाल हुआ। इस समय सूर्य कितने अंश पर था यह सिद्ध करना है। एक दिन की सूर्य की गति ५७ कला और ११ विकला है इन सबकी विकला करने पर जैसे ५७ × ६० = ३४२० + ११ = ३४३१ विकला हुई। इस संख्या से २ दिन ४४ घटी ३५ विकला अर्थात् (२ × ६० = १२० + ४४ = १६४ × ६० = ९८४० + ३५ पल) कुल मिलाकर ९८७५ पल इसको गुणा करके एक दिन के पल ३६०० इनसे भाग देने पर–उत्तर पलात्मक आवेगा। उसे ६० से भाग देकर उसके अंशादि बनाकर पञ्चांगस्थ सूर्य के अंकों में से ऋण करना (घटाना) ताकि इष्टकाल का सूर्य हो ? नीचे उदाहरण करके बताया है।

९८७५ × ३४३१
÷ ३६००) ३३८८११२५ (
९४११
शेष १५२५ प्रति विकला छोड़ो

÷ ६०) ९४११ (
भागाकार १५६ बाकी
५१ विकला ÷ ६०
अंश २ शेष ३६ कला ऋण

अमावस्या पञ्चांग सूर्य

रा०	अ०	क०	वि०
१	२२	४८	८
– ०	२	३६	५१
१	२०	११	१७

यह वैशाख कृष्ण १२ शनिवार दोपहर का स्पष्ट सूर्य हुआ। अब कुछ

पञ्चांगों में प्रत्येक दिन के प्रातःकाल के ग्रह दिये हुए होते हैं उस पर से इष्ट-काल के ग्रह किस प्रकार से सिद्ध करने चाहिये, वह दिया जाता है—

जिस पञ्चांग में रोज के सूर्योदय के स्पष्ट ग्रह दिये हुए होते हैं वहाँ आज का सूर्योदय का ग्रह और आनेवाले कल के सूर्योदय के ग्रह को घटाने से ग्रह की एक दिन की गति मिलती है, उपरोक्त उदाहरण में दिया हुआ जन्म समय लेकर मंगल का स्पष्ट तैयार करना हो तो प्रथम मंगल का गति प्रमाण निकालना होगा इसलिए—

	रा०	अं०	क०	वि०
वैशाख कृष्ण १४ चौदस का मंगल =	२	२७	४९	४८
वैशाख कृष्ण १३ तेरस का मंगल =	२	२७	१३	२६
	०	०	३६	२२

इसलिए इन सबकी विकला करने से जैसे ३६ × ६० = २१६० + २२ = २१-८२ विकला होती हैं। अब सूर्योदय से १५ घटी २५ पला पर जन्म हुआ है। इसलिए इन सब के पल करने से (१५ × ६० = ९०० + २५ = ९२५) ९२५ पल होते हैं। इन पलों से मंगल की गति की याने उपरोक्त बताये अनुसार २१८२ से गुणा करके उस गुणाकार को एक दिन के पलों से भाग देने से भागाकार पलात्मक आवेगा। उसकी घटी अशांदि करके वह संख्या या अंक दूसरे दिन के स्पष्ट ग्रहों में से घटाने पर अथवा पिछले दिन के स्पष्ट ग्रहों में मिलाने से स्पष्ट मंगल होगा। नीचे उदाहरण दिया है :—

२१८२ × ९२५
÷ ३६००) २०१८३५०(
५६० शेष
२३५०

÷ ६०) ५६०
९ शेष २०
कलाविकला घटावे

दूसरे दिन का मंगल

रा०	अं०	क०	वि०
२	२७	४९	४८
०	०	९	२०
२	२७	४०	२८

तो यह वैशाख कृष्ण तेरस १३ का दोपहर का १५ घटी २५ पलों का स्पष्ट मंगल हुआ। इसी प्रकार से चन्द्रमा को छोड़कर अन्य सब ग्रहों को स्पष्ट करना चाहिये।

भयात-भभोग साधन

चन्द्रमा की नाक्षत्रिक गति सम नहीं है, इसलिये वह किसी नक्षत्र की ६० घटी में से कभी कम और कभी अधिक नक्षत्र भी भोग लेता है। प्रत्येक पंचांग में आगे की घटी व पल लिखे होते हैं, इन घटी पलों से तात्पर्य यह होता है कि अमुक दिन चन्द्रमा को लिखी हुई घट्यादि भोगनी हैं याने ६० में से शेष घट्यादि इससे पूर्व हैं, याने उन्हें वह भोग चुका है।

पंचांग में तिथि के आगे नक्षत्र दिये हुए होते हैं और उस नक्षत्र के आगे उस नक्षत्र के घटी, पल दिये हुए होते हैं। उदाहरणार्थ संवत् २०२६ फाल्गुन शुक्ल पक्ष २ द्वितीया, सोमवार इस पंक्ति के सामने 'उ' लिखा है। अर्थात् उस दिन उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र चल रहा है और उसके आगे संख्या लिखी है—१६।३५ अर्थात् १६ घटी ३५ पल तक उस दिन चन्द्रमा उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र पर रहेगा, इसके पश्चात वह अगले नक्षत्र रेवती में प्रवेश करेगा।

अब यदि ६० घटी में से १६ घटी ३५ पल बाकी निकाले तो शेष ४३ घटी २५ पल रहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि फाल्गुन शुक्ल द्वितीया से पहिले चन्द्रमा उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र को ४३ घटी २५ पल तक भोग चुका हैं।

भयात—इष्ट काल में चन्द्रमा किसी नक्षत्र का जितना भाग जितने समय में भोग चुका है, उस काल को भयात कहते हैं।

भभोग—चन्द्रमा जिस दिन एक नक्षत्र विशेष में जितनी देर रहता है उसे नक्षत्र का भभोग काल कहते हैं। उपर्युक्त उदाहरण में ४३ घटी २५ पल भयात तथा १६ घटी, ३५ पल भभोग काल माना जायगा।

भयात-भभोग-साधन—भयात-भभोग साधन में इष्टकाल, जन्म नक्षत्र तथा गत नक्षत्र की जरूरत पड़ती है।

(१) यदि किसी दिन इष्ट काल से जन्म नक्षत्र के घटी पल कम हों तो वह जन्म नक्षत्र गत तथा उसके आगे का नक्षत्र वर्तमान नक्षत्र कहलाता है।

(२) परन्तु यदि किसी दिन इष्टकाल से जन्म नक्षत्र के घटी पल अधिक हों तो उस जन्म नक्षत्र से पहिले का नक्षत्र गत तथा वर्तमान नक्षत्र जन्म नक्षत्र कहलाता है।

पूर्व उदाहरण में उक्त (२) के अनुसार इष्टकाल २५।८ है और संवत् २०२६ के फाल्गुन शुक्ल द्वितीया को उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र १६।३५ ही है, अतः इस काल से जन्म नक्षत्र के घटी पल कम हैं, अतः यह उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र "गत नक्षत्र" कहलायेगा तथा इसके आगे का नक्षत्र रेवती उस बालक

का जन्म नक्षत्र कहलायेगा। परन्तु यदि उस दिन किसी का इष्टकाल १२।१७ होता तो इष्टकाल के घटी पल उस दिन के नक्षत्र उत्तराभाद्रपदा के घटी पलों से कम होते, फल वरूप इस उत्तराभाद्रपदा का नक्षत्र पूर्वाभाद्रपदा 'गत नक्षत्र' होता और तब यह उत्तराभाद्रपाद नक्षत्र 'जन्म नक्षत्र' कहलाता।

(३) गत नक्षत्र के घटी पलों को ६० में से घटा कर दो स्थानों पर रखना चाहिये। एक स्थान पर इष्टकाल को जोड़ देने से भयात होता है तथा दूसरे स्थान पर वर्तमान जन्म नक्षत्र के घट्यादि जोड़ देने से भभोग होता है। ऊपर का ही उदाहरण लें। उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र का मान १६।३५ है तथा इष्टकाल २५।८ है। इष्टकाल के घटी पलों से उत्तराभाद्रपद नक्षत्र के घटी पल कम हैं, अतः उत्तराभाद्रपद नक्षत्र ही "गत नक्षत्र" कहलायेगा। उक्त (३) के अनुसार इस गत नक्षत्र के घटयादि १६।३५ को ६० में से घटाकर दो स्थानों पर रखा—जैसेः—

६०	६०
–१६।३५	–१६।३५
४३।२५	४३।२५ (आगामी नक्षत्र रेवती
इष्टकाल जोड़ा २५।८	१४।२४ के घटी पल जोड़े)
०८।३३ भयात्	५७।४९ भभोग

इष्टकाल जोड़ने से ६८।३३ हुए। ६० घटी से अधिक होने पर ६० का घट्यादि में भाग दिया, अतः शेष ८।३३ ही रहे, अतः ८।३३ भयात तथा ५७।४९ भभोग हुआ।

विशेषः—यहाँ यह वात ध्यान में रखनी चाहिये कि भयात ६० घटी से अधिक नहीं होता, परन्तु भभोग ६७ घटी से अधिक होने पर ही उसमें ६० का भाग देना चाहिये अर्थात् भभोग का मान ६७ घटी हो सकता है। यों भयात हमेशा भभोग से कम ही होता है।

अब ऊपर के उदाहरण से निम्न बातें स्पष्ट हुईः—इष्टकाल–२५।८; भयात–८।३३; भभोग–५२।३९; गत नक्षत्र–उत्तराभाद्रपद, वर्तमान नक्षत्र–रेवती

वस्तुतः उस दिन २५।८ इष्टकाल पर जन्म लेने वाले बालक का नक्षत्र रेवती था और उसके ८ घटी ३३ पल बीत चुके थे।

नक्षत्र ग्रह कोष्टक (सारणी) को देखें तो रेवती नक्षत्र का स्वामी बुध है, जिसके कुल दशा वर्ष १७ हैं। अतः बालक का जन्म बुध की महादशा में हुआ था।

चन्द्र स्पष्ट करने की रीति

चद्रमा की गति को फलित–ज्योतिष शास्त्र में दशा का आधार माना गया है। सभी आर्ष दशापद्धतियों का सम्वन्ध चन्द्र-नक्षत्र से ही है। चन्द्रमा जिस विभाग में अर्थात् जिस नक्षत्र के विभाग में होता है उस विभाग द्वारा ग्रहों के दशा वर्ष निश्चित किये जाते हैं। विंशोत्तरी दशा १२० वर्ष की है और वह १२० वर्षों का काल खंड नक्षत्र मंडल का एक-तृतीयांश भाग है। चन्द्रमा जब किसी एक विशिष्ट नक्षत्र से ९ नक्षत्र पूर्ण करके १० वें नक्षत्र में प्रवेश करता है तब विंशोत्तरी दशा की १२० वर्षों की एक आवृत्ति पूर्ण होती है। फिर वह दूसरे ९ ग्रहों की आवृत्ति में प्रवेश करता है। इस प्रकार उसकी तीन आवृत्ति पूर्ण होने पर ३६० वर्ष पूरे होते हैं। एक भचक्र ३६०° अंशों का होता है और चन्द्रमा का संपूर्ण नक्षत्रों के एक भ–चक्र का मान भी ३६०° अंशों का होता है इस प्रकार चन्द्रमा जब एक अंश (१°) चलता है तो विंशोत्तरी दशा का एक वर्ष पूणं होता है, इसे निरयन सौर वर्ष कहते है। इस दृष्टि से चन्द्रमा की१° एक अंश की गति विंशोत्तरी दशा के एक सौर वर्ष इतनी है। चन्द्रमा जब पृथ्वी की परिक्रमा की १६०५ आवृत्ति पूर्ण कर लेता है तव उतने ही समय में पृथ्वी भी सूर्य की १२० बार परिक्रमा कर लेती है और सूर्य तथा चन्द्रमा उतने समय में अपना फेरा पूर्ण करके याने एक आवृत्ति के ठीक १२० वर्ष पूर्ण होने पर पुनः अपने अपने उसी नक्षत्र में आते हैं और इसी प्रकार दशारम्भ की चान्द्र तिथि और दशा समाप्ति की चन्द्र तिथि एक होती है। इसकी गणना इस प्रकार है:—

चन्द्रमा की १६०५ आवृत्ति = ४३८२८.६ दिन; सूर्य की १२० आवृत्तियाँ ४३८३०.२ दिन—इस प्रकार चन्द्रमा तथा सूर्य ये दोनों १२० सौर वर्षों के बाद जिस नक्षत्र में आरम्भ में थे उसी अपने-अपने नक्षत्र में पुनः वापिस आते हैं। एक निरयन सौर वर्ष में ३७१.२ तिथियाँ होती हैं। १२० निरयन सौर वर्षों में ४४५२० तिथियां हो जाती हैं। जो कि १४८४ चान्द्र मास के बराबर हैं। और इसलिए निरयन १२० वर्षों बाद सूर्य और चन्द्रमा ये एक दूसरे से परस्पर उसी स्थिति में वापिस आते हैं। अर्थात् इष्ट समय की तिथि १२० वर्षों के बाद फिर वही होती है और सूर्य और चन्द्रमा का भी वही नक्षत्र

होता है । इस प्रकार विंशोत्तरी दशा एक प्रकार से चन्द्र नक्षत्र मण्डल की त्रिकोण दशा है । जातक के जन्म समय चन्द्रमा का जो नक्षत्र होगा उस नक्षत्र से ९ वें नक्षत्र में विंशोत्तरी दशा की समाप्ति होती है । ९ वाँ नक्षत्र आदि नक्षत्रों का त्रिकोण हैं । उसका अपना स्थान स्वयं से १२०° एक सौ बीस अंशों पर है । इस दृष्टि से जन्म कुण्डली के स्पष्ट चन्द्रमा में १२० एक सौ बीस अंश मिलाने पर जो राशि स्पष्ट होगी वह जातक की विंशोत्तरी दशा की एक सीमा है ।

चन्द्रमा की नाक्षत्रिक गति सम नहीं है, इसलिए वह किसी नक्षत्र की ६० घटी में से कभी कम तथा कभी अधिक नक्षत्र भी भोग लेता है । प्रत्येक पंचांग में नक्षत्र के आगे घटी व पल लिखे होते हैं । चन्द्रमा जिस दिन किसी एक विशिष्ट नक्षत्र में जितने समय रहता है उसे उस नक्षत्र का भभोग काल कहते हैं । इष्ट काल में चन्द्रमा उस नक्षत्र का जितना भाग जितने समय में भोग चुका होता है उस काल को भयात या भभुक्त कहते हैं उस नक्षत्र का शेष रहा हुआ भाग अर्थात् जितना समय उसे भोगना शेष है उसे भभोग कहते हैं । चन्द्रमा स्पष्ट करने के लिए भयात भभोग इनका उपयोग किया जाता है । इसी भयात भभोग पर से विंशोत्तरी दशाक्रमों के ग्रहों के भुक्त भोग्य दशाकाल तैयार किये जाते हैं । दशा का आरम्भ जन्म कालीन नक्षत्र जो होता है उस नक्षत्र के आरम्भ से माना जाता है । उस नक्षत्र का भयात उस जातक के पूर्व जन्म में व्यतीत हुआ दशा-वर्षादि काल होता है । और उस नक्षत्र का भोग्य काल उस जातक के जन्म कालीन समय से आरम्भ होता है ।

नक्षत्रों के भभोग व भुक्त काल से स्पष्ट चन्द्रमा और दशा वर्ष निकालने की क्रिया इस प्रकार है—जातक के जन्म समय या इष्टकाल में जो नक्षत्र विद्यमान रहता है उसके पीछे का (उससे पहिला) नक्षत्र जो होता है उसे गत नक्षत्र के नाम से सम्बोधित करते हैं । नक्षत्र का आरम्भ अश्विनी से होता हैं । गत नक्षत्र को १३°-२०' तेरह अंश २० कला से गुणा करने पर चन्द्रमा का गत नक्षत्र स्पष्ट होता है । अब वर्तमान नक्षत्र का भभोग काल १३°-२०' तेरह अंश बीस कला इतना सम्पूर्ण होता है । उस भोग काल का चन्द्रमा ने कितना काल भोग लिया है उस काल का इतना नक्षत्र मान भुक्तांश होता है । भुक्तांश तथा गत नक्षत्र का स्पष्ट इन दोनों का जोड़ करने से जो संख्या आती है वह संख्या चन्द्रमा की स्पष्ट कालीन राश्यादि स्पष्ट होती है । एक नक्षत्र का मान १३°-२०' याने ८००_कला है, चन्द्रमा यदि इष्टकालीन किसी एक नक्षत्र में ६० घटी भोगता है तो एक घटी में ८००/६० कला वह भोगेगा । इस अनु-

पात से भुक्तकाल का समय तुल्य अंशादिक मान लाने पर तथा उसे गत नक्षत्र मान में जोड़ देने से स्पष्ट चन्द्रमा तैयार होता है ।

चन्द्र स्पष्ट करने की रीति

जिस समय का चन्द्रना स्पष्ट करना हो उस समय तक, उस दिन का जो नक्षत्र हो, उस नक्षत्र के आरम्भ से जितनी घटी और पल गत हुई हों, उन सबके पलादि करके उनको ६० से गुणा करके उस गुणाकार को उस नक्षत्र के आरम्भ से समाप्तिपर्यंत की कुल घटी और पलों का पलादि करके उससे भाग देना चाहिये जो भागाकार उपलब्ध होगा वे अंश होगें, शेष संख्या की कला और विकला करना चाहिये । बाद में ये अंशों के अंक, उस दिन के नक्षत्र के पूर्व जितने नक्षत्र गत हुए हों उस गत नक्षत्र के अनुक्रम को ६० से गुणा करके ६ नो से भाग देना चाहिये । जो उत्तर आयेगा वह अंशात्मक होगा । ये अंश तीस से अधिक हों तो ३० से भाग देकर उनको राश्यादि बनाना-तव स्पष्ट चन्द्रमा हुआ ऐसा जानना । वैसे ही ४८००० इस संख्या को नक्षत्र की घटियों से भाग देने पर चन्द्रमा की गति भी प्राप्त होती है ।

उदाहरण :—शके १८३२ वैशाख कृष्ण १३ तेरस रविवार प्रातः ६ बजकर १३ मिनट पर जन्म हुआ है । उस दिन सूर्योदय ५ बजकर १३ मिनट पर है अर्थात् सूर्योदय से ४८ मिनटों पर याने २ घटी पर जन्म हुआ है । उस समय का चन्द्रमा स्पष्ट करना है । शनिवार को अश्विनी नक्षत्र ४४ घटी ७ पल था बाद में भरणी नक्षत्र आया, अहोरात्रि की ६० घटी इसमें से घटाने से याने अश्विनी नक्षत्र ४४ घटी ७ पल = १५ घटी ५३ पल ये शनिवार के भरणी नक्षत्र की घटी हुई । रविवार को २ घटी पर जन्म हुआ इसलिए २ घटी जोड़ने से भरणी नक्षत्र के आरम्भ से इष्टकाल तक १७ घटी ५३ पल व्यतीत हुई । इनके पल करने से १७ × ६० = १०२० + ५३ = १०७३ पल होते हैं। रीति के अनुसार इसे गुणा किया तो १०७३ × ६० = ६४३८० हुए। अब इस गुणाकार को भरणी नक्षत्र के कुल घटी और पलों से भाग देना है इसलिए शनिवार को भरणी नक्षत्र की १५ घटी ५३ पल और रविवार को भरणी नक्षत्र की ३६ घटी ५६ पल है याने आरम्भ से समाप्ति तक कुल ५५ घटी ५२ पल भरणी नक्षत्र है । इसके पल करने से ५५ × ६० = ३३०० + ५२ = ३३५२ पल भरणी नक्षत्र में चन्द्रमा था । अब ६४३८० इस संख्या को ३३५२ इस संख्या से भाग देने से, नीचे भागाकार किया है उसके अनुसार :—

३३५२)६४३८०(१९ अंश
६९२×६०=४१५२०

३३५२)४१५२०(१२ कला
१२९६×६०

३३५२)७७७६०
६६४—२३ विकल होते हैं

अब भरणी नक्षत्र के पहिले एक ही नक्षत्र गत (बीत चुका है) हुआ है इसलिए ३ रीति के अनुसार १×६०=६० अंश इसमें उपरोक्त भागाकार के अंक जोड़ने पर उस संख्या को २ से गुणा करके ९ से भाग देना है इसलिए:-

अं० क० वि०
६०—०—०
+१९—१२—२३
७९—१२—२३
×२
÷ ९)१५८-२४-४६=
१७ अंश ३६ कला ५ विकला हुए

यहाँ पर ३० से कम अंश हैं यसलिए ० राशि १७ अंश ३६ कला और ५ विकला इतना चन्द्र स्पष्ट हुआ राशि शून्य होने से अर्थात् मेष राशि में चन्द्रमा है ऐसा अर्थ हुआ इस प्रकार चन्द्रमा स्पष्ट करना चाहिये।

यहाँ पर १७ अंशों के बदले ४७ अंश होते तो ४७—३०=१ रा, १७ अंश, ३६ क, ५ वि इतना स्पष्ट चन्द्र होता।

लग्न-साधन

इष्ट काल में सूर्य का क्रान्तिवृत्त मार्ग में का जो बिन्दु पूर्व क्षितिज पर उदय पाता हो उसे ही लग्न ऐसी संज्ञा है। मेष राशि के आरम्भ से उस लग्न बिन्दु पर्यन्त का जो अन्तर होता है वही स्पष्ट लग्न होता है। जिस दिन के जिस समय का स्पष्ट लग्न निकालना हो तो उस दिन के सूर्योदय से लेकर उस इष्टकाल पर्यन्त का काल सिद्ध करके आगे चलकर गणित के सूलभता की दृष्टि से उस काल को पलों मैं परिवर्तन करके एक तरफ रख देना चाहिये। बाद में उस इष्ट काल का स्पष्ट सूर्य सायन करके उसमें से पूर्ण राशि का अंक अलग निकालना चाहिये और अंश, कला विकला को ३० अंशों में से घटाना चाहिये। इस प्रकार जो शेष रहता है उसे उस चालू राशि का भोग्यांश कहते हैं कारण सूर्य जिस सायन राशि में होता है उस सायन राशि के सूर्य ने भोगने को रहा हुआ वही शेष अंशादि भाग होता है। फिर उसी राशि के स्वोदय पलों में से उस भोग्यांशों के कितने पल आने हैं वह त्रैराशिक द्वारा निकालना चाहिये। जो पल आवे वे उस राशि के भोग्य पल होते हैं। इसके बाद पूर्व में इष्ट काल के तयार करके रखे हुए पलों में से घटाना चाहिये। (इष्ट काल बहुत कम होने पर ये भोग्यांश पल ऋण नहीं

हो सकेंगे। तब उस समय सूर्य जिस सायन राशि में हो उस राशि के स्वोदय पलों पर से इष्ट काल के पलों के अंशादि लाकर वे सायन स्पष्ट सूर्य में जोड़ कर जो पल होंगे तो वही सायन स्पष्ट लग्न होता है।) और शेष पलों में से उस राशि के अगले राशि के स्वोदय क्रमशः घटाना चाहिये। इस प्रकार से स्वोदय घटाते घटाते जिस राशि का स्वोदय घट नहीं सकेगा वही राशि लग्न (पूर्व क्षितिज पर उदय पाने वाली राशि) होती है। फिर उस राशि के स्वोदय पलों पर से शेष बचे हुए पलों का त्रैराशिक से अंशादि निकालना चाहिये तब सायन स्पष्ट लग्न होता है।

अब उदाहरणार्थ :—शके १८७५ साल में चैत्र शुक्ल १३ तेरस, शनिवार को संध्या समय स्टेण्डर्ड टाईम के अनुसार ५ बजकर २१ मिनट पर तारीख २८ मार्च १९५३ के दिन बम्बई शहर में एक व्यक्ति का जन्म हुआ है। उस दिन सूर्य का उदय काल स्टेण्डर्ड टाईम ६ बजकर ३७ मिनट है। उस समय से लेकर संध्या समय ५ बजकर २१ मिनट तक १० घण्टे ४४ मिनट इतना समय होता है। इनको घटि, पल में परिवर्तन करने से २६ घटी ५० पल इतना जन्म दिन का सूर्योदय से जन्म काल तक का जो समय सिद्ध हुआ, इसी को पत्रिका के गणित में 'इष्टकाल' कहते हैं। गणित के सुलभता के लिये उनको पलों में परिवर्तन करने से १६१० पल होते हैं। जन्म समय का स्पष्ट सूर्य ११ राशि १४ अंश, १६ कला, ६ विकला सिद्ध होता है। उसमें पंचांग के अयनान्श, २३ अंश, ११ कला, १९ विकला मिला देने से सायन स्पष्ट सूर्य ० राशि, ७ अंश, ३० कला, २५ विकला इतना होने से वह सूर्य प्रथम मेष राशि में है कारण इसमें राशि का ० अंश होने से सूर्य ने एक भी राशि पूर्ण भोगी नहीं है और उस राशि के ७ अंश, ३० कला २५ विकला इतना उसका भोग है ऐसा सिद्ध हुआ। ये अंश, कला, विकला, ३० अंशों में से घटाने के बाद २२ अंश, २९ कला, ३५ विकला शेष रहते हैं। ये मेष राशि के भोग्यांश हैं। इस मेष राशि के बम्बई के स्वोदय पल सिद्ध करने पर २३८ होते हैं। अब इनमें से भोग्यांश के कितने पल आते हैं। उसको त्रैराशिक द्वारा इस तरह सिद्ध किया है। मेष राशि के ३० अंशों के यदि कुल मिलाकर २३८ पल होते हैं तो ३२३९/१४४ इतने भोग्यांश के कितने आवेंगें? इसका उत्तर १७८ पल और २७ विपल आते हैं अथवा उन भोग्यांशों को उस राशि के स्वोदय पलों से गुणा करके ३० से भाग देने पर भी इतना ही उत्तर आता है। इन पलों और विपलों को पूर्व में इष्टकाल की जो १६१० पल तयार करके रखी हैं उनमें से घटाने से बाकी १४३१ पल ३३ विपल शेष बची। इनमें से मेष

राशि के आगे की वृषभ राशि के स्वोदय पल २६६ में से घटा देने से बाकी ११६५ पल ३३ विपल रहते हैं। इनमें से मिथुन राशि के स्वोदय पल ३०८ घटाने से शेष ८५७ पल और ३३ विपल रहते हैं। इनमें से आगे के कर्क राशि के स्वोदय पल ३३६ घटाने से बाकी ५२१ पल ३३ विपल रहते हैं। इसमें से सिंह राशि के स्वोदय पल ३३२ घटा देने से शेष १८९ पल ३३ विपल रहते हैं। इनमें से कन्या राशि के ३२० पल ऋण नहीं हो सकते इसलिये कन्या यही सायन लग्न आता है। अब कन्या के स्वोदय पर से शेष बचे हुए १८९ पल ३३ विपल इतने समय के लिये कितने अंश, कला, विकला आते है। यह त्रैराशिक से निकालना चाहिये अर्थात् ३२० पल जब कन्या राशि के ३० अंश उदय पाते हैं तो $\frac{३५६९१}{३०}$ पलों को कितने होंगे ? इस त्रैराशिक का उत्तर कन्या राशि के १७ अंश ४६ कला १३ विकला आता है अथवा इस रीति से घटाते-घटाते शेष बचे हुए पलों को ३० से गुणा करके उस राशि के उदय पलों से भाग देने पर भी इतना ही उत्तर आता है। यह सायन लग्न हुआ। इसमें से तत्कालीन अयनांश २३ अंश ११ कला १९ विकला घटा देने पर सिंह राशि के २४ अंश ३४ कला ५४ विकला इतना निरयन लग्न हुआ।

इस प्रकार जन्म काल का लग्न सिद्ध करते वख्त महत्त्व के नियम ध्यान में रखने चाहिये—वे ऐसे हैं कि जिस स्थान में जन्म हुआ हो उस स्थान का स्पष्ट सूर्योदय से लेकर जन्म समय तक का इष्टकाल चाहिये और उसी स्थान के राशि के स्वोदय सिद्ध करके उसका उपयोग इस लग्न साधन गणित में करना चाहिये। इस प्रकार करने से जन्म लग्न सूक्ष्म बना सकते हैं।

लग्न, भाव व ग्रह इनका विवेचन/ग्रहों की दृष्टि

फलित ज्योतिष की प्रचलित परिपाटी के अनुसार जातक—लग्न वह राशि है जो जन्म कालिक इष्ट पर जातक के पूर्व क्षितिज पर स्पर्श कर रही हो। उस राशि का जितना अंश क्षितिज में स्पर्श कर रहा हो, वह लग्न स्फुट होगा। समस्त राशियाँ पूर्व क्षितिज से ऊपर दृश्य गोल में उदित होते दीख पड़ती हैं, जिस प्रकार सूर्य उदित होते दीख पड़ता है। इसलिये इष्टकाल में जिस किसी राशि का जितना अंश पूर्व क्षितिज से ऊपर जा चुका होता है वही उस समय का लग्न-स्फुट होता है। सूर्य राशियों में गमन करता है और राशियों में ही रहता है। इसलिये सूर्योदय काल में सूर्य जिस राशि के जितने अंश पर होगा उस समय जातक का लग्न-स्फुट सूर्य-स्फुट तुल्य होगा। और उस समय की सूर्य राशि ही लग्न राशि होगी। राशियाँ वर्तुलाकार हैं इसलिये उनके

किसी भी अंग का किसी भी स्थान से समानान्तर समय पर क्षितिज पर आना सम्भव नहीं। समस्त बारहों राशियों के अंश ३६० होते हैं और २४ नाक्षत्रिक घण्टों में यह ३६० पूरा हो जाता है। इस गणना के अनुसार राशि का एक अंश लगभग ४ मिनट का होता है और ३०° अर्थात् एक राशि का दो घण्टा उदित काल होता है। पर चुँकि राशियाँ (क्रांतिवृत्त) वर्तुलाकार हैं इसलिये पृथ्वी के प्रत्येक स्थान से राशि का उदयमान भिन्न-भिन्न होता है। इस अन्तर को चरान्तर कहते हैं। पृथ्वी के प्रत्येक अक्षांश पर राशियों के उदयमान में अन्तर जानने के लिये स्वदेशीय पंचांगों में चर सारणी तथा उसके उपयोग की रीति दी रहती है। काशी के पंचांगों में चर से शुद्ध किया गया काशी के राशियों का उदयमान दिया रहता हैं जिस पर से इष्टकाल के लग्न-स्फुट का पता लग जाता है। पत्रों में सायन तथा निरयन लग्न सारणी भी दी जाती है।

भाव या गृह खगोलीय परिभाषा है। जातक का लग्न-स्फुट स्थान जातक के पूर्व क्षितिज तथा क्रान्तिवृत का सम्पात है। इस सम्पात पर जो राशि होगी वह उस समय का जातक का लग्न होगा। लग्न-स्फुट स्थान से ऊपर पश्चिम की ओर १८०° तक आकाश का दृश्य गोल है तथा उसके आगे १८०° अदृश्य गोल है तथा लग्न-स्फुट से १५° ऊपर पश्चिम अर्थात् जातक के पूर्व क्षितिज से १५° ऊपर दृश्य गोल में तथा १५° नीचे (क्षितिज से नीचे) अदृश्य गोलार्द्ध में जातक का प्रथम भाव है। इसका दूसरा अर्थ यह है कि लग्न स्फुट में १५° घटाने से तथा १५° जोड़ने से प्रथम तृतीय भाव की सीमा हो जाती है। फिर उसमें ३०° जोड़ते चले जाने से द्वितीय, भाव बनता जाता है। इस गणना के अनुसार लग्न की राशि तथा प्रथम भाव दोनों समान वस्तु नहीं रहते। लग्न बिन्दु पर यदि किसी राशि का भाग १५° हो तो वह राशि प्रथम भाव में पूरी अट जायगी अर्थात् ऐसी दशा में लग्न राशि तथा प्रथम भाव ये दोनों एक ही हो जायेंगे। लग्न-स्फुट यदि १५° से कम हुआ तो वह जितने अंश कम होगा उतने अंश की उससे पश्चिम की राशी प्रथम भाव (दृश्य गोलार्ध) में आ जायेगी। यदि लग्न-स्फुट १५° से अधिक हुआ तो प्रथम भाव में उससे पूर्व की राशि अदृश्य गोलार्ध में आ जायेगी और लग्न का १५° से अधिक वाला अंश दृश्य गोलार्ध में द्वादश भाव में चला जायेगा। इस तरह किसी राशि के १५° लग्न-स्फुट के अतिरिक्त अन्य सभी दशाओं में भाव तथा राशि स्फुट एय नहीं रहता। प्रत्येक भाव में दो राशियों के हिस्से आ जाते हैं। फलादेश में भावों का अपना निज कोई स्वामी नहीं होता। उनका स्वामी वहीं होता है जो राशि उस भाव में हो पर

चूंकि एक भाव में दो राशियों का भाग लगा रहता है इसलिये प्रत्येक भाव के दो राशियों के दो स्वामी होने चाहिये। पर फलित में ऐसा नहीं माना जाता है। लग्न-स्फुट से तीस अंश पर जो राशि-स्फुट हो उसे ही भावाधिपति मानते हैं चाहे वह स्फुट १° का हो। किसी एक जातक का लग्न स्फुट १° मेष हो और दूसरे का २६° मेष हो तो भावों की गणना के अनुसार प्रथम जातक के भाव में दृश्य गोलार्द्ध में क्षितिज से ऊपर मेष का १° तथा मीन का अन्तिम १४° लगा होगा तथा अदृश्य गोलार्द्ध में मेष का १४°चला गया होगा। जबकि दूसरे जातक के प्रथम भाव में मेष का अन्तिम १६° तथा वृषभ के आरम्भ का १४° रहेगा फिर भी दोनों जातकों के प्रथम भाव का स्वामी मेष राशि का ही स्वामी (मंगल) माना जाता है। इस प्रकार की भाव-स्फुटी की परिपाटी आर्ष नहीं है। जैमिनि ऋषि भावस्फुट को नहीं मानते। उनका समस्त फलादेश केवल राशि वश है। जन्म समय जो राशि पूर्व क्षितिज में लगी हो वही जातक का लग्न है। यहाँ लग्न-स्फुट चाहे जितना अंश का हो। इसलिये जैमिनि ऋषि की फलादेश परिपाटी अधिक वैज्ञानिक है। वह नक्षत्र मण्डल से ही सम्बन्ध रखती है।

पाश्चात्य ज्योतिषी लग्न बिन्दु से ३०° नीचे अदृश्य गोलार्द्ध में प्रथम भाव की सीमा मानते हैं। यह ३०° विषुवांशी में होता है। इस परिपाटी के अनुसार प्रथम भाव का आरम्भ तथा षष्ठ भाव का अन्त जातक का पूरा अदृश्य गोलार्द्ध है तथा सप्तम भाव के आरम्भ से लेकर द्वादश भाव के अन्त तक पूरा दृश्य गोलार्द्ध है। लग्न बिन्दु से लेकर लग्न के प्रथम अर्द्ध भाग पर जाकर समाप्त हो जाता है। इस प्रकार दो परिपाटियों की भाव (गृह) सीमा भिन्न-भिन्न है। पाश्चात्य परिपाटी में भी वही दोष है जो भारतीय में। वहाँ भी एक भाव में दो-दो राशियाँ आ जाती हैं। इसके अतिरिक्त यदि कोई दूसरी भाव स्पष्ट की परिपाटी भी अपनाई जावे तो भी उपरोक्त दोष होगा ही क्योंकि भौगोलिक मिश्रित खगोलीय परिभाषा में नक्षत्रों की परिभाषा पूरी-पूरी अटाई नहीं जा सकती तथा नक्षत्र गोल तथा खगोल की परिस्थितियाँ फलादेश में समान्तर नहीं की जा सकती इसलिये लेखक का मत है कि भाव (गृह) स्पष्ट की परिपाटी ग्रहों की संधि में जाना आदि बातें आकाशीय दृष्टि से समीचीन नहीं। उसका मत है कि लग्न स्पष्ट राशि ही प्रथम भाव है। लेखक के इस मत से तथ्य यह है कि सभी ग्रह पृथ्वी पर अपनी रश्मि (ओज) राशियों या नक्षत्रों के ओज के साथ देते रहते है। फलित ज्योतिष में प्रत्येक भाव के साथ जातक के जीवन की विशिष्ट परिस्थितियों

का सम्बन्ध भी जोड़ा गया है। प्रथम भाव से शरीर का, द्वितीय से पैतृक धन वा कुटुम्ब का, तृतीय से भाई तथा पराक्रम का, चतुर्थ से मातृ सुख आदि का, पंचम से सँतान, विद्या, बुद्धि बल आदि का विचार किया जाता है। इसका विचार जातक ग्रंथों में सविस्तार किया गया है। पर नक्षत्र दशा पद्धति में उपरोक्त भावों के अधिपति से उपरोक्त भाव का विचार नहीं किया गया है उसमें केवल शुभ अशुभ संज्ञा दी गयी है। विंशोत्तरी दशा पद्धति में एकादश स्थान का स्वामी पापी है। इसका यह अर्थ नहीं कि एकादश स्थान का अधिपति आय का सर्वदा नाश करने वाला है। जातक फलादेश में एकादश गृह मे यदि कोई ग्रह उच्चस्थ हो या उसका अधिपति उच्चस्थ वा स्वगृही हो तो आय का योग करता है। पर विंशोत्तरी दशा में उसका अधिपति यदि त्रिकोणेश से सम्बन्ध न करे तो वह अपनी दशा में अनिष्ट फल ही देता है चाहे वह स्वगृही वा उच्चस्थ ही हो। इसलिये जातक फलादेश परिपाटी में भावों का जो भाव-तुल्य फल होता है, दशा परिपाटी में उसका फल दूसरे प्रकार का इष्ट वा अनिष्ट रीति से होता है। जातक फलादेश प्रकार से स्थायी फलादेश है और दशा फलादेश तात्कालिक शुभाशुभ फलादेश है। वहै अनुकूल तथा विपरीत वातावरण का द्योतक मात्र है। इसलिये जातक पद्धति में भावों की संज्ञाओं के अनुसार भावों का फल होता है पर ऐसा दशा पद्धति में नहीं है। इसलिए दशा पद्धति में लग्न को प्रथम भाव, लग्न से दूसरी राशि को द्वितीय, इस तरह से मानना चाहिये। वहाँ संधि की कल्पना करना समीचीन नहीं। सारांश यह है कि लघु-पाराशरी जहाँ लग्न, द्वादश, पंचम आदि भावों की संज्ञा है उन्हें लग्न राशि को प्रथम, उससे दूसरी को द्वितीय आदि मानना चाहिए प्रचालित भाव-स्फुट परिपाटी के अनुसार नहीं। उस ग्रंथ में कहा भी गया है कि "संज्ञां ब्रूमो विशेषतः" अर्थात् प्रसिद्ध प्रचलित परिपाटी से भिन्न इस ग्रंथ की संज्ञाये हैं। भावों की कल्पना ज्योतिष फलादेश का आधार बन गई है। समस्त जातक फलादेश पद्धतियों में इसकी अनिवार्य मान्यता है। इसलिये इसकी विवेचना आवश्यक है। आधुनिक भारतीय परिपाटी के अनुसार जातक प्रथम भाव की सीमा लग्न बिंदु से ऊपर नीचे १५° तक है। अधः यामोत्तर वृत उसके चतुर्थ भाव का मध्य भाग तथा यामोत्तर वृत या मध्याह्न रेखा उसके दशम भाव का मध्य भाग है। पाश्चात्य भाव गणना के अनुसार प्रथम भाव पूर्ण क्षितिज से नीचे ३०° तक अधः यामोत्तर वा मध्य रात्रि रेखा उसके चतुर्थ पंचम भाव की संधि, यामोत्तर वृत्त या मध्याह्न रेखा उसके दशम एकादश भाव की संधि तथा लग्न स्फुट स्थान वा पूर्वीय क्षितिज द्वादश तथा प्रथम भाव की संधि

है। लेखक के मत से जो (जैमिनीय मत है) जातक के पूर्व क्षितिज (गर्भ क्षितिज) तथा क्रान्ति संपात पर रहनेवाली तात्कालिक राशिका ३०° का विस्तार ही प्रथम भाव है। अर्थात् किसी भी लग्न विन्दु पर रहनेवाली पूरी राशि उस समय का वह प्रथम भाव है, वह चाहे दृश्य गोल में लग्न विन्दु से ऊपर जितने भी अंश जाये वा अदृश्य गोल में उसका जहाँ तक फैलाव हो।

इन तीन गणनाओं में से उपरोक्त दो गणनाणों में भाव व गृह उसके जन्म कालिक पृथ्वी परत्व से आकाशीय स्थिर स्थान है। अर्थात् नियत स्थान है पर राशि उसमें चर हैं। जैमिनीय मतानुकूल स्थान (भाव) चल है उसमें राशि का स्थान अर्थात् नक्षत्र गोल का स्थान स्थिर है। जहाँ ग्रहों का खगोलीय स्थान (भाव) परत्व से ही फलादेश कहना या जानना हो वहाँ भाव गणना के अनुसार तथा जहाँ ग्रहों का फल भावों के अधिपति के अनुसार जानना हो वहाँ राशि को ही भाव मानकर फल जानना चाहिये। दशा पद्धद्धि में ग्रहों का किसी विशिष्ट भाव में रहने मात्र ही का फल नहीं माना जाता' वहाँ राशियों के स्वामियों का विशेष विचार किया जाता है। इसलिये वहाँ राशि प्रधान है। भाव-सीमा प्रधान नहीं है। ग्रह एक दूसरे के स्थान तथा दृष्टि सम्बन्ध से सम्बन्धित होते हैं। विंशोत्तरी दशा पद्धति में जहाँ सप्तम, द्वादश, त्रिकोण, चतुरष्ट मान कहा है उसका तात्पर्य विचाराधीन ग्रह से उससे सम्बन्ध करने वाले ग्रह की अंशात्मक दूरी से है। उसकी गणना इस प्रकार समझनी चाहिये।

सप्तम दृष्टिः—ग्रह स्पष्ट से १८०° जोड़कर जो राश्यादि स्पष्ट हो उस राश्यादि स्पष्ट वाली राशि विशेष में जो ग्रह बैठा हो वह विचारणीय ग्रह से सप्तम कहा जायगा। ऐसी स्थिति में वे परस्पर दृष्ट कहे जायेंगे।

तृतीय दृष्टिः—विचारणीय ग्रह से स्फुट में ६०° जोड़ने पर जो राश्यादि स्पष्ट हो, उस राशि में जो कोई ग्रह बैठा हो वह विचारणीय ग्रह से तृतीयस्थ दृष्ट कहा जायगा। इसी प्रकार चतुः का अर्थ दृष्टा ग्रह से ९०° दूर वाली राशि, पंचम = १२०°, नवम—२४०°, दशम = २७०°, अष्टम—२१०° दशा में ग्रहों के स्थान सम्बन्ध राशि सम्बन्ध हैं, प्रचलित भाव—सम्बन्ध नहीं। जो ग्रह एक ही राशि में होते हैं वे स्थान-सम्बन्धित होते हैं।

लघुपाराशरी विंशोत्तरी दृष्टिचक्र

शनि स्पष्ट	+	६०	=	दृष्ट राशि	द्रष्टा से तृतीय
शनि स्पष्ट	+	२७०	=	दृष्ट राशि	द्रष्टा से दशम
मंगल द्रष्टा	+	९०	=	दृष्ट राशि	द्रष्टा से चतुर्थ
मंगल द्रष्टा	+	२१०	=	दृष्ट राशि	द्रष्टा से अष्टम
वृहस्पति द्रष्टा	+	१२०	=	दृष्ट राशि	द्रष्टा से पंचम
वृहस्पति द्रष्टा	+	२४०	=	दृष्ट राशि	द्रष्टा से नवम
कोई ग्रह	+	१८०	=	दृष्ट राशि	द्रष्टा से सप्तम

॥ श्री ॥

॥ ॐ सूर्याय नमः ॥

लघुपाराशरी

अथ संज्ञाध्यायः

सिद्धान्तमौपनिषदं शुद्धान्तं परमेष्ठिनः ।
शोणाधरं महः किञ्चिद्वीणाधरमुपास्महे ॥ १ ॥

अर्थः—श्रुतियों का सिद्धान्त, प्रजापति का शुद्ध अन्तःपुर, बिम्वाफल के समान लाल अधरवाले और वीणा धारण करनेवाले, किसी तेज की मैं आराधना करता हूँ । तात्पर्य यह है कि, ग्रन्थकार सरस्वती देवी की उपासना करने के लिये कहते हैं कि वह वेदान्तों का सिद्धान्त है, ब्रह्मा की गृहिणी है, उसका अधर अत्यन्त लालवर्ण का है और वीणा धारण किये है, इससे उसकी आराधना मंगल है ।

वयं पाराशरीं होरामनुसृत्य यथामति ।
उडुदायप्रदीपाख्यं कुर्मो दैवविदां मुदे ॥ २ ॥

अर्थः—मैं पाराशर महर्षि के होरा-शास्त्रको अपनी मति के अनुसार विचारकर ज्योतिषियों के आनन्द के लिये नक्षत्रों के फलों को सूचित करने वाले 'उडुदायप्रदीप' ग्रन्थ को सम्पादन करता हूँ ।

स्पष्टीकरण—पाराशरी होरा शास्त्र, फलित ज्योतिष का एक वृहद् तथा मान्य ग्रन्थ है । यह ग्रन्थ पाराशर ऋषि के नाम पर प्रसिद्ध है । होरा शब्द 'अहोरात्र' शब्द का लघुरुप है । अहोरात्र इस शब्द का पहिला अक्षर 'अ' और अन्तिम अक्षर 'त्र' इन दो अक्षरों का लोप होकर 'होरा' यह शब्द सिद्ध हुआ है ऐसा कई विद्वानों का मत है, परन्तु वह शब्द कैसे भी सिद्ध हुआ क्यों न हो, फिर भी पूर्वजन्म में जो कुछ अच्छे या बुरे कर्म घटित हुए होंगे उनका इस जन्म में भोगनेवाला परिणाम इस होरा शास्त्र से अच्छी प्रकार से मालूम पड़ता है । 'अहो' इस शब्द का अर्थ हैं दिन, 'रात्र' इसका अर्थ है रात्रि; इन दोनों के योग के कारण दिन-रात शब्द बनता है । यहाँ 'अहो' का 'हो' अक्षर और रात्रि का 'रा' अक्षर लेकर 'होरा' शब्द बना है, जिस शास्त्र में या ग्रन्थ में

दिन रात या चौबीस घण्टों की सर्वकालीन घटनाओं का आकाशीय पिण्डों के परत्व से विवेचन किया जाता है वह ग्रन्थ 'होरा ग्रन्थ' हैं।

उडुदायप्रदीप, इसका अर्थ है कि आकाशीय पिण्डों द्वारा फलों पर प्रकाश डालने वाला ग्रन्थ। उपरोक्त श्लोक में 'वयं' शब्द बहुवचन है जिसके कारण उन सब दैवज्ञों का बोध होता है जो विंशोत्तरी दशाक्रम में विश्वास रखते हैं और जिन्होंने ऐसी दशा में गवेषणा करके इस ग्रन्थ की रचना में साहाय्य किया हुआ है, वे। इस कारण से ग्रन्थकार ने इस रचना में अपना नाम न देते हुए 'वयं' शब्द का प्रयोग किया है। कारण इस ग्रन्थ का प्रतिपादित विषय स्वतंत्र ऐसा नहीं है। यह एक प्रकार से विनय तथा निरहंकार भाव का उदाहरण भी है। पाराशरी होराशास्त्र में प्रतिपादित जो अनेक दशापद्धतियाँ हैं उन दशाओं में चन्द्रनक्षत्र दशाक्रम जो है वह उडुदायप्रदीप नामक फलित ज्योतिष ग्रन्थ का भाग है और उसी को विंशोत्तरी दशा ऐसा कहते हैं।

फलानि नक्षत्रदशाप्रकारेण विवृण्महे।
दशा विंशोत्तरी चात्र ग्राह्या नाष्टोत्तरी मता॥ ३॥

अर्थः—हम इसमें नक्षत्रदशा के अनुसार ही शुभ-अशुभ फल कहते हैं। इस ग्रंथानुसार फल कहने में विंशोत्तरी दशा ही ग्रहण करनी चाहिये। अष्टोत्तरी दशा यहाँ ग्राह्य नहीं है।

स्पष्टीकरणः—पाराशर होराशास्त्र में तथा सभी प्रामाणिक ज्योतिषिक फलादेशों के ग्रंथों में मनुष्य के भाग्याभाग्य, शुभाशुभ प्रसंग और घटनाओं की जानकारी होनेके लिए अनेक प्रकार की पद्धतियों को स्वीकार किया गया है। इन सब पद्धतियों में सर्व प्रसिद्ध पद्धति वह है जिसके द्वारा जन्मकुण्डली परसे जातक का फलादेश कहा जाता है।

कुण्डलियों के आधार पर जो फलादेश कहा जाता है, वे पद्धतियां निम्न लिखे अनुसार प्रसिद्ध हैं।

(१) जातक-पद्धति

जन्मकालीन कुण्डली में ग्रहों की उस कुण्डली के लग्न से जो द्वादश स्थान हैं उन स्थानों में जो ग्रह होते हैं उनके, अथवा उन ग्रहों के जो पारस्परिक सम्बन्ध रहते हैं उनके अनुरोध से जो फलित कहा जाता है उसे **जातक-पद्धति** कहते हैं, यह एक सर्व सामान्य जातक-पद्धति है। इष्टकाल में सूर्य के क्रांति वृत्त मार्ग में जो बिन्दु पूर्व क्षितिज पर उदय पा रहा हो उसे ही 'लग्न' ऐसी संज्ञा है। मेष राशि के प्रारम्भसे उस लग्न बिन्दु तक जो अन्तर होता है, वही स्पष्ट-लग्न

होता है। जिस मनुष्य की कुण्डली पर से फलादेश का विचार किया जाता है उसे उस कुण्डली का जातक कहते हैं। जन्म समय जातक की कुण्डली में जिस राशि में चन्द्रमा होता है उस राशि को जातक की जन्म राशि कहते हैं। जन्म समय जिस नक्षत्र में चन्द्रमा होता है उस नक्षत्र को जातकका जन्म नक्षत्र कहते हैं। इसी नक्षत्र से विविध दशाओं का आरम्भ होता है।

(२) गोचर-पद्धति

किसी भी जातक के सम्बन्ध में सामयिक-फलों की जानकारी के लिए उस समय गगन-मण्डल में जिस प्रकार से ग्रहों का भ्रमण हो रहा हो उन भ्रमणों पर से जो फलित कहा जाता है, उसे गोचर पद्धति कहते हैं। इस पद्धति में जातक का जन्म-लग्न सदैव वही होता है। परन्तु कुण्डली के फलों का निर्देशन करते समय प्रत्येक ग्रह को उस-उस राशि में बैठाना पड़ता है और फिर उस समय के ग्रहों के स्थान और उनके परस्पर सम्बन्ध को ध्यान में लेकर फलित कहा जाता है। इस पद्धति में समयानुसार कुण्डली बदलती जाती है। यह सब में सुलभ पद्धति है। जन्मलग्न या चन्द्रमा से वर्तमान समय के ग्रह कौन सी राशियों में गगन-मण्डलस्थ भ्रमणवशात् आते हैं यह देखकर उसके अनुसार निश्चित किये हुए शुभाशुभ फलादेश इस पद्धति में कहे जाते हैं। काल-निर्णय की कोई भी पद्धति ली जावे तो उसको गोचर के साथ अवश्य लेना पड़ता है। परन्तु यह पद्धति स्वतन्त्र रूपसे अपूर्ण है। जन्म कुण्डली के स्थान और उन स्थानों में के ग्रह ये एक प्रकार के विकार जनक (Sensitive) बिन्दु हैं, उस बिन्दु पर जिस समय शुभ या अशुभ ग्रह भ्रमण करते हैं उस समय उन बिन्दुओं को चालना प्राप्त होती है और इस प्रकार उन ग्रहों के योगों के अच्छे या बुरे गुणों के सदृश शुभाशुभ फल प्राप्त होते हैं। इस पद्धति का प्राचीनत्व अपूर्व है; यही पद्धति अथर्ववेद की नाक्षत्र पद्धति है। इसमें जन्म-नक्षत्र से गोचर के ग्रहों के नक्षत्र की गणना करके उसके अनुसार उनके फलों का वर्णन किया जाता है। सब मिला कर २७ नक्षत्र हैं। उन नक्षत्रों को तीन बराबर हिस्सों में बाँट दिया गया है इस प्रकार प्रत्येक हिस्से में नौ-नौ नक्षत्रों का एक भाग और कुल मिला कर तीन भाग होते हैं। ये भाग निम्नलिखित अनुसार ठहराये गये हैं।

'जन्मसम्पद्विपत्क्षेमः प्रत्वरः साधकस्तथा।
नैधनो मित्रवर्गश्च परमो मैत्र एव च॥

प्रथम–उत्पत्तिकर, दूसरा–संपत्कर, तीसरा–विपत्तिदायक, चौथा–क्षेमकर,

पाँचवां–प्रमाण दर्शक, छठा–साधकता दर्शक. सातवां–मृत्युदायक, आठवां–मित्र प्राप्ति दर्शक और नवां–परममित्र रूप, इस प्रकार से अनुक्रम निश्चित किया है । नौ नक्षत्रों का एकक्रम पूर्ण हुवे बाद इसी क्रमसे दशवें नक्षत्र से फिर शुरुआत करनी पड़ती है । इसी पद्धति पर वर्तमान राशि-गोचर पद्धति आई हुई है । थोड़ी सूक्ष्मता से विचार किया जावे तो कुण्डली के ६।८।१२ ये स्थान सदैव अशुभ ही माने गये हैं, जन्म लग्न से या जन्म राशि से छठे राशि के आरम्भ में तीसरा याने बिपत्तिकर (विपत्तिदायक) नक्षत्र आता है, आठवें राशि के आरम्भ में दूसरे क्रम में का सातवां अथवा नैधन नक्षत्र आता है । बारहवें राशि के आरम्भ में पच्चीसवां अर्थात् तीसरे क्रम में का सातवां याने पुन: नैधन नक्षत्र आता है । ये सब नक्षत्र अशुभ दर्शक हैं, यही स्थिति शुभ योगों की भी है । जन्मस्थ लग्न या चन्द्रमा पर से पाँचवीं नवीं राशि त्रिकोण राशि होने से शुभ होती है । इस राशि के आरम्भ में जन्म अगर कर्म नक्षत्र अर्थात् शुभ नक्षत्र आते हैं । यह नाक्षत्र-पद्धति राशिगोचर से भी अधिक महत्व की है । राशि ३० अंशों की होती है और नक्षत्र १३° अंश २०′ कला का होता है, याने एक राशि में २$\frac{१}{४}$ नक्षत्र आते हैं अर्थात् नक्षत्र यह राशि की अपेक्षा सूक्ष्मतर भाग होने के कारण फलादेश में भी अधिक सूक्ष्मता आती है । फलादेश में जितनी अधिक सूक्ष्मता आवे उतनी अच्छी होती है । इस पद्धति का प्रचार होना अति आवश्यक है ।

(३) ताजिक-पद्धति

जन्म समय की कुण्डली सूर्य के सूक्ष्मांश कलात्मक स्थिति पर निर्धारित या अवलम्बित होने के कारण उसी बात पर विशेष महत्व देकर प्रतिवर्ष सूर्य जब ठीक उसी जगह जिस समय आता है उस समय की कुण्डली तैयार करते हैं । अर्थात् जातक का जन्म जिस सौर-तिथि को होता है उस समय उससे प्रत्येक निरयन-सौर-वर्ष की समाप्ति और दूसरे वर्ष का आरम्भ-ऐसे समय की जो कुण्डली बनाई जाती है उसे वार्षिक-कुण्डली कहते हैं । जिस समय का किसी जातक का जन्म हुआ हो उस समय से ठीक ३६५ दिन, १५ घटी, ३१ पल, ३० विपल पर जो लग्न आता हो और उस समय गगन-मण्डल में ग्रहों की भ्रमणवशात् जो स्थिति हो उसे वार्षिक-कुण्डली कहते हैं । यह कुण्डली उसी खास वर्ष के लिये मानकर उस पर से इस पद्धति द्वारा फलादेश कहा जाता है । इसी प्रकार प्रत्येक वर्ष की कुण्डली बनानी पड़ती है । इसके आधार पर जो फलित कहा जाता है उसे वर्ष-फल कहते हैं । इस पद्धति में मुँथा नामक

एक कल्पित ग्रह माना गया है, जो प्रत्येक वर्ष एक राशि आगे बढ़ता जाता है। इस वार्षिक-पद्धति का आशय ऐसा है कि पृथ्वी जब एक बार सूर्य की परिक्रमा करके वापिस फिर से उसी नक्षत्र स्थान में आती है उस वक्त जातक के आयुष्य का एक वर्ष पूर्ण होकर वह दूसरे वर्ष में प्रवेश करता है। दूसरे वर्ष के प्रवेशारम्भ के समय की जो कुण्डली बनती है वह उसके आनेवाले दूसरे वर्ष के शुभाशुभ फलों की द्योतक है। इस पद्धति में तत्त्व तो बराबर हैं और उनके अनुसार बहुत कुछ अनुभव भी प्राप्त होता है तथापि लेखक के मत में इसमें दो मुख्य दोष हैं। पहिला दोष तो इस प्रकार का है कि वर्ष-कुण्डली पर से निर्णय लेते समय जन्म-कुण्डली के तरफ दुर्लक्ष्य होता है। बबल के झाड़ से आम्र फल प्राप्त नहीं हो सकते। जब मूल में जमीन में ही पानी का स्रोत न हो तो कुएं में पानी कैसे आ सकता है? इस तरह जो बात जन्म-कुण्डली में है ही नहीं वह वर्ष-फल कुण्डली में कैसे आ सकती है? यदि इस प्रकार का फलादेश कहा जावे तो वह सत्य नहीं उतरेगा। इतना होने पर भी सिर्फ वर्ष-कुण्डली पर से ही चाहे जैसा फलादेश कहने में आता है, वैसा न करके यदि जन्म कुण्डली पर से ही ऐसा फलादेश कहा जावे तो उसका बहुत कुछ उपयोग होगा। दूसरा दोष इस पद्धति के सम्बन्ध में इस प्रकार है कि बहुत बार वर्ष उत्तम होते हुए भी फल अति अशुभ मिलता है। लेखक के अनुभव में इसका कारण उस समय दिन वर्ष पद्धति से अशुभ योग चालू रहते हैं—यह है। दिन वर्ष पद्धति, यह पाश्चात्य पद्धति अपने दूसरे ढंग की है। इस पद्धति में पृथ्वी जब अपने धूरे पर एक बार भ्रमण कर लेती है उस वक्त जातक के भाग्य का एक वर्ष पूर्ण हुआ ऐसा मानते हैं और इसे दिन वर्ष पद्धति ऐसा भी कहते हैं। पाश्चात्य देशों में इसी पद्धति का प्रचार है। इन दोनों का मत आर्ष नहीं होता।

(४) राशि फलादेश पद्धति

यह पद्धति जैमिनि ऋषि की है। जन्म समय जो ग्रह जिस राशि में हो उस प्रकार से राशि के स्वभावानुसार जो फलित वर्णन किया जाता है वही जैमिनीय-फलादेश है। इस पद्धति में लग्न को विशेष महत्व नहीं है। इस पद्धति में राशि और नक्षत्रों की दशा होती है। यह मत आर्षमत है। अति प्राचीन समय में सिर्फ चान्द्रनक्षत्रों पर से ही फलित कहा जाता था।

(५) नक्षत्र-दशापद्धति

चन्द्र-नक्षत्र दशा को ही नक्षत्र-दशा कहते हैं। जन्म समय चन्द्रमा जिस नक्षत्र में होता है वही जातक का जन्म-नक्षत्र होता है। एक नक्षत्र का

राशिमान १३° अंश २०′ कला का होता है। जन्म समय चन्द्रमा जितने समय जन्म-नक्षत्र में रहता हैं उसे भभोग कहते हैं। और उस भभोग में से चन्द्रमा जितना समय उस नक्षत्र का भोग चुका है उसे भयात कहते हैं। जितना समय उस चन्द्रमा को भोगना शेष रहता है उसे भोग्य कहते हैं। नक्षत्र संख्या २७ मानी गई है और उसका प्रारम्भ अश्विनी नक्षत्र से होता है ऐसा माना गया है। इस दशा पद्धति में प्रत्येक नक्षत्र का स्वामी ग्रह होता है। जन्म समय जो चन्द्र-नक्षत्र होता है उस नक्षत्र से दशा का आरम्भ होता है।

प्रत्येक नक्षत्र का एक स्वामी (ग्रह) होता है। उस स्वामी का दशामान निर्धारित वर्षों में होता है। इसलिये जन्म-कालीन नक्षत्र जन्म समय जितना भोग लिया होगा उस अनुपात से उसके स्वामी की भी दशा भोग चुकी होती है। शेष रही हुई दशा का आरम्भ जन्मकालीन निरयन-सौर वर्ष के सौर मास की तिथि तथा सूर्य से होता है। वह दशा समाप्त होने पर आगे के दूसरे नक्षत्र की दशा का प्रारम्भ होता है। वर्तमान नक्षत्र के स्वामी की दशा उसके निर्धारित वर्ष पूर्ण होने तक रहती है। इस प्रकार सब दशाक्रम आगे बढ़ता जाता है।

चन्द्र-नक्षत्र दशा कई प्रकार की है। इनमें विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी तथा योगिनी दशा प्रसिद्ध हैं। और वर्तमान समय में इन दशाओं का प्रयोग किया जा रहा है। जैमिनीय की नवमांश दशा लगभग कालचक्र दशा के समान है और वह आयुर्दाय प्रसंग में अति उपयुक्त और उपयोगी है। परन्तु इन दोनों दशाओं का प्रचलन कहीं भी देखने में नहीं आता। कदाचित् बहुत थोड़े ज्योतिषी लोगों को इन दशाओं के प्रयोग का ज्ञान होगा।

अष्टोत्तरी दशा पश्चिम, दक्षिण, गुजरात इत्यादि प्रान्तों में, योगिनी दशा पंजाब, कश्मीर इत्यादि प्रान्तों में तथा विंशोत्तरी भारत के उत्तर और दक्षिण भागों में विशेष प्रचलित है। अष्टोत्तरी मत के अनुसार परम आयु १०८ वर्ष तक मानी गई है। विंशोत्तरी मत के अनुसार १२० वर्ष तथा योगिनी दशा में ३६ वर्ष की एक आवृत्ति होती है। विंशोत्तरी दशा में २७ नक्षत्रों के ९ ग्रह स्वामी हैं। वहां सम्पूर्ण नक्षत्रों की पूर्ण दशा ३६० वर्ष की होती है और वह तीन आवृत्तियों में समाप्त होती है। प्रत्येक ग्रह तीन नक्षत्र का स्वामी होता है। अपने नक्षत्र से दसवें नक्षत्र का फिर से वही स्वामी होता है। नव नक्षत्रों के निर्धारित वर्ष कुल १२० वर्ष होते हैं। और इन १२० वर्षों में नौ ९ ग्रहों की दशा की एक आवृत्ति पूर्ण होती है। इस दशा क्रम

का आरम्भ कृत्तिका नक्षत्र से माना गया है। कृत्तिका नक्षत्र का स्वामी सूर्य है लेकिन जातक की दशा उसके जन्म-नक्षत्र से ही आरम्भ होती है।

अष्टोत्तरी दशा में २८ नक्षत्र माने गये हैं। इनमें अभिजित नक्षत्र को जोड़ा गया है। अभिजित नक्षत्र का स्थान उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के अन्तिम तथा श्रवण नक्षत्र का आरम्भ इनके बीच में है। इस दशा पद्धति में सिर्फ आठ ग्रहों को ही स्थान दिया गया है। इस दशा में केतु को स्थान नहीं है। सिर्फ ८ ग्रहों पर ही दशा निर्धारित की गई है। इन आठ ग्रहों की आवृत्तियों का योग तुलनात्मक नहीं है। सम्पूर्ण २८ नक्षत्रों के निर्धारित दशावर्षों का कुल योग ३९६ वर्ष आता है। इस दशा में नक्षत्र स्वामी का क्रम भी नहीं है। विंशोत्तरी दशा में एक क्रम है वो ९ नक्षत्र के स्वामी ९ ग्रह हैं और जिस नक्षत्र का जो स्वामी है उससे दसवें नक्षत्र का फिर से वही स्वामी होता है। अष्टोत्तरी दशा में इस प्रकार का क्रम बिलकुल नहीं है। इस और अन्य कारणों की वजह से लघुपाराशरी में अष्टोत्तरी दशा को मान्यता नहीं दी गई है। अष्टोत्तरी दशा में अभिजित नक्षत्र जो अधिक जोड़ा गया है वह केवल भगवान रामचन्द्र जी के आदरार्थ है। कारण इस राशि के भाग में प्रभु श्री रामचन्द्रजी का जन्म हुआ था, वह भाग शुभ माना गया है और उसका स्वामी बृहस्पति है।

तीनों दशाओं की एक पृथक सारणी दी है और वह तुलनात्मक है, इस सारणी पर से मालूम होगा कि इन तीनों दशाओं में आपस में कोई भी प्रकार से सामंजस्य नहीं है तथा तीनों का आधार भी भिन्न-भिन्न है। चन्द्र नक्षत्रों का पूर्ण भचक्र भोगने के लिये अष्टोत्तरी दशा में ३९६ वर्ष, योगिनी में ११ वर्ष तथा विंशोत्तरी में ३६० वर्ष लगते हैं। चन्द्र भचक्र से अष्टोत्तरी के आठ ग्रह, तथा योगिनी दशा के आठ ग्रह इन सबकी पूर्ण आवृत्ति नहीं होती परन्तु विंशोत्तरी दशा में ९ ग्रहों की क्रमशः तीन आवृत्ति पूर्ण होती हैं।

विंशोत्तरी ग्रह दशाओं के शुभाशुभ फलों का ज्ञान होने के लिए यह ग्रन्थ (उडुदायप्रदीप) प्रस्तुत है.परन्तु अष्टोत्तरी ग्रह दशाओं के फलों की जानकारी के लिये कोई भी पृथक ऐसा ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। इसलिये अष्टोत्तरी दशा के फल विंशोत्तरी दशा के ग्रहों के अनुसार कहना अवैज्ञानिक होगा। एक ही समय में अष्टोत्तरी तथा विंशोत्तरी ग्रहों की दशा जातक की कुण्डली में एक ही होना आवश्यक नहीं है और यदा कदाचित् यदि इन दोनों पद्धतियों के अनुसार एक ही ग्रह की दशा आती हो तो भी उस ग्रह के पूर्ण दशा वर्ष एक समान नहीं रहेंगे, इसलिये लघुपाराशरी ग्रन्थ के अनुसार विंशोत्तरी तथा अन्य किसी भी

दशा पद्धति से लाये हुए ग्रहों के फल कहना समीचीन नहीं होता। योगिनी दशा में मुख्यत: ग्रहों की दशा नहीं है। परन्तु मंगला, पिंगला इत्यादि कल्पित योगिनी इनकी दशा मानी गयी है और तत्तत् नामों के अनुसार फलदायी कही गई है। तन्त्रशास्त्र में योगिनी की चर्चा है कदाचित् उन्हीं की यह दशा हो सकती है। ये योगिनी जगत की आठ जगन्नियन्त्रिका शक्तियां हैं। और वे मनुष्य के भाग्य में और फलदातृत्व प्रसंगों में नियन्त्रण करती हैं। कुछ भी हो, योगिनी दशा के सम्बन्ध में कोई भी विस्तृत प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। प्रचलन में जो फलादेश कहा जा जाता है उसका सारांश पंचांगों में दिया होता है।

विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी, योगिनी, दशाचक्र

संख्या	नक्षत्र	अष्टोत्तरी नक्षत्र स्वामि	दशा वर्ष	विंशोत्तरी नक्षत्र स्वामी	दशा वर्ष	योगिनी दशा	स्वामी	दशा वर्ष	अंग्रेजी में नाम
१	अश्विनी	शुक्र	२१	केतु	७	भ्रामरी	मंगल	४	बीटा एरैटिस
२	भरणी	शुक्र	२१	शुक्र	२०	भद्रिका	बुध	५	४१ एरैटिस
३	कृत्तिका	सूर्य	६	रवि	६	उल्का	शनि	६	ईटा टारी
४	रोहिणी	सूर्य	६	चन्द्र	१०	सिद्धा	शुक्र	७	आल्डिवरान
५	मृगशीर्ष	सूर्य	६	मंगल	७	संकटा	केतु	८	सावडा ओरायन
६	आर्द्रा	चन्द्र	१५	राहु	१८	मंगला	चन्द्र	१	ग्यामा जेमिनोरम
७	पुनर्वसु	चन्द्र	१५	वृहस्पति	१६	पिंगला	सूर्य	२	पोलक्स
८	पुष्य	चन्द्र	१५	शनि	१९	धान्या	वृहस्पति	३	डेल्टा काक्री
९	आश्लेषा	चन्द्र	१५	बुध	१७	भ्रामरी	मंगल	४	झीटाहैड्री
१०	मघा	मंगल	८	केतु	७	भद्रिका	बुध	५	रेग्युलस
११	पूर्वाफा०	मंगल	८	शुक्र	२०	उल्का	शनि	६	थीरालियोनिस
१२	उत्तरा फा.	मंगल	८	रवि	६	सिद्धा	शुक्र	७	डेनिबोला

संख्या	नक्षत्र	अष्टोत्तरी नक्षत्र स्वामी	दशा वर्ष	विंशोत्तरी नक्षत्र स्वामी	दशा वर्ष	योगिनी दशा	स्वामी	दशा वर्ष	अंग्रेजी में नाम
१३	हस्त	बुध	१७	चन्द्र	१०	संकटा	केतु	८	डेल्टा कार्व्ही
१४	चित्रा	बुध	१७	मंगल	७	मंगला	चन्द्र	१	स्थायका
१५	स्वाति	बुध	१७	राहु	१८	पिंगला	सूर्य	२	आर्कट्यूरस
१६	विशाखा	बुध	१७	वृहस्पति	१६	धान्या	वृहस्पति	३	आल्फालिब्रा
१७	अनुराधा	शनि	१०	शनि	१९	भ्रामरी	मंगल	४	डेल्टा स्कार्पी
१८	ज्येष्ठा	शनि	१०	बुध	१७	भद्रिका	बुध	५	अंटारिस
१९	मूल	शनि	१०	केतु	७	उल्का	शनि	६	लाम्बडा स्कार्पी
२०	पूर्वाषाढ़ा	वृहस्पति	१९	शुक्र	२०	सिद्धा	शुक्र	७	लाम्बडा साजिटारी
२१	उत्तराषाढ़ा	वृहस्पति	१९	रवि	६	संकटा	केतु	८	पाय साजिटारी
२२ —	अभिजित	वृहस्पति	१९	+	+	+	+	+	व्हीगा
२३ २२	श्रवण	वृहस्पति	१९	चन्द्र	१०	मंगला	चन्द्र	१	आल्टेर
२४ २३	धनिष्ठा	राहु	१२	मंगल	७	पिंगला	सूर्य	२	आल्फा डेल्फिनी
२५ २४	शतभिषा	राहु	१२	राहु	१८	धान्या	वृहस्पति	३	लाम्ब्डा अॅक्वेरियस
२६ २५	पूर्वाभाद्रपदा	राहु	१२	वृहस्पति	१६	भ्रामरी	मंगला	४	मार्काब
२७ २६	उत्तराभाद्रपदा	शुक्र	२१	शनि	१९	भद्रिका	बुध	५	आल्फेनिब
२८ २७	रेवती	शुक्र	२१	बुध	१७	उल्का	शनि	६	म्युपिशियम
			योग ३६६ वर्ष		योग ३६० वर्ष			योग वर्ष १११	झीटा पिशियम

इस प्रकार हमारा सम्पूर्ण राशि चक्र (Zodiac) २७ नक्षत्रों में (Lunar-mansions) विभक्त है।

महर्षि पाराशर ने पूर्ण भ-चक्र को २७ नक्षत्रों में या ९ नक्षत्रों के मुख्य तीन विभागों में विभक्त किया है। इसकी आवृत्ति १२० वर्ष की मानी है। इन्हीं १२० वर्षों में ही ९ ग्रहों की दशा भुक्त होती है।

२७ नक्षत्रों को तीन विभागों में बाँटने से प्रत्येक भाग में ९ नक्षत्र स्थापित होते हैं। इनके स्वामी ९ ग्रह माने गये हैं और उन ९ ग्रहों का क्रम सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, राहु, वृहस्पति, शनि, बुध, केतु तथा शुक्र इस प्रकार रखा है। दशा का प्रारंभ कृत्तिका नक्षत्र से माना गया है और उस नक्षत्र का स्वामी सूर्य है। इस क्रम से प्रथम आवृत्ति में कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुष्य, आश्लेषा, मघा और पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र रखे गये हैं इनके स्वामी सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, राहु, वृहस्पति, शनि, बुध, केतु तथा शुक्र हैं। इस आवृत्ति को 'जन्म-नक्षत्र-आवृत्ति' कहते हैं। इसके उपरान्त नक्षत्रों की द्वितीय आवृत्ति उत्तरा फाल्गुनी से आरंभ होकर पूर्वाषाढा नक्षत्र में समाप्त होती है। इनके स्वामी पुनः क्रमशः सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, राहु, वृहस्पति इत्यादि होते हैं। इस आवृत्ति को 'अनु-जन्म नक्षत्र आवृत्ति' कहते हैं।

इसी प्रकार तृतीय आवृत्ति उत्तराषाढा नक्षत्र से शुरू होती है और भरणी नक्षत्र में समाप्त होती है। इनके स्वामी उसी क्रम से सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, राहु, इत्यादि होते है। इस आवृत्ति को 'जन्म नक्षत्र आवृत्ति' ऐसा कहते हैं।

इस प्रकार जिस नक्षत्र का जो स्वामी होता है, तो उसी नक्षत्र में दसवाँ नक्षत्र पुनः आता है अतः उस नक्षत्र का भी वही स्वामी होता है।

महर्षि पाराशर ने ग्रहों के दशावर्ष इस प्रकार निर्धारित किये हैं।

सूर्य	चन्द्रमा	मंगल	राहु	वृहस्पति	शनि	बुध	केतु	शुक्र	वर्ष
६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०	

कृ	रो	मृ	आ	पुन	पुष्य	आश्ले	म	पूफा	प्रथम आवृत्ति	जन्म नक्षत्र
उफा	ह	चि	स्वा	वि	अनु	ज्ये	मू	पूषा	द्वितीय आवृत्ति	अनुजन्म नक्षत्र
उषा	श्र	ध	शत	पूभा	उभा.	रे	अश्वि	भ.	तृतीय आवृत्ति	त्रिजन्म नक्षत्र
सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	वृ०	शनि	बुध	केतु	शुक्र	–	नक्षत्र स्वामी
६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०	–	दशा वर्ष

बुधैर्भावादयः सर्वे ज्ञेयाः सामान्यशास्त्रतः ।
एतच्छास्त्रानुसारेण संज्ञां ब्रूमो विशेषतः ॥४॥

अर्थः—सामान्य ग्रंथों पर से भाव, राशि, इत्यादि की जानकारी ज्योतिः शास्त्रज्ञों से जानना चाहिये । इस ग्रंथ में तो जो विशेष संज्ञा हैं वह शास्त्र के अनुरोध से कहते हैं ।

स्पष्टीकरणः—तिथि, वार, योग, करण, नक्षत्र, राशि, मास, अयन, ऋतु, ग्रह, ग्रहों की सामान्य जानकारी, भाव इत्यादि, आवश्यक ज्ञान प्रत्येक ज्योतिष-शास्त्रज्ञ को होना चाहिये। यह यहाँ पर संपूर्ण जानकारी देने से ग्रंथ के पृष्ठों में अकारण वृद्धि होने के भय से ग्रंथकार यहाँ पर अधिक विवरण करना नहीं चाहता । बुधैर्ज्ञेया इस पद पर से ग्रंथकार स्पष्ट सूचना देता है कि यह ग्रंथ नये पढ़नेवाले विद्यार्थियों के लिए नहीं है परन्तु ज्योतिष-शास्त्र की साधारण जान-कारीवाले प्रगतिशील अभ्यासकों के लिए रचा गया है । कुण्डली के सम्बन्ध में जो सामान्य ज्ञान होना आवश्यक है उसका उपयोग इस ग्रंथ का अभ्यास करने के लिए लगाना जरूरी है और जिनको यह सामान्य ज्ञान होगा उनके लिए ही फलितोपयोगी ऐसा ग्रंथ कहा गया है। ज्योतिष-शास्त्र के फलित-जातक ग्रंथों में लग्न, द्वादश भाव, राशि, नवग्रह इनके सम्बन्ध में ग्रहों के फल कहे गये हैं और ग्रहों को उनके स्वभाव पर से शुभ, अशुभ, क्रूर, पापी, इत्यादि ठहराया गया हैं । उन ग्रंथों में गृह,भाव, गृहों की परिभाषा तथा संज्ञा वगैरः जो दिये गये है वे सबके सब उसी प्रकार से इस ग्रंथ में ग्रहण किये गये हैं। परन्तु ग्रहों के शुभाशुभत्व का निर्णय मात्र उन ग्रंथों के संज्ञानुसार इस ग्रंथ में ग्रहण नहीं किया गया है । इतना ही नहीं इस ग्रंथ में ग्रहों की दृष्टि भी अन्य ग्रंथों से भिन्न हैं । अन्य ग्रंथों में जिन ग्रहों को क्रूर माना गया है वे ही ग्रह इस ग्रंथ में विशेष परिस्थिति में शुभ ग्रह भी हो जाते हैं। इसलिए जातक-फलादेश और दशा फलादेश इन दोनों में समानता नहीं दिखाई देगी। ग्रंथांतर प्रसिद्ध सूर्य, मंगल आदि क्रूर ग्रहों के फल इस ग्रंथ में दी गई संज्ञा और परिभाषा इन पर ही निर्धारित करना पड़ेगा। लेखक का ऐसा मत है कि जन्मतः मनुष्य की जो प्रवृत्ति, पारिवारिक स्थिति, मनुष्य का स्तर, अधिकार वगैरः होते हैं उनसे कुण्डली में के ग्रहों का निगडित सम्बन्ध है और फलादेश कहते समय कुण्डली में जो ग्रह होंगे उन्हें विशेष महत्त्व देना पड़ता है, कारण ग्रहों के स्थान और भिन्न राशियों में उनका अस्तित्व, उनकी दृष्टि, उनके होनेवाले योग इत्यादि बातें विचार में लेकर ही बाद में फलादेश कहना पड़ता है। सारांश इन सब बातों पर ही फला-देश अवलम्बित होता है ।

मनुष्य जब समाज की कर्मभूमि पर अवतीर्ण होता है तब उसे अपने जन्मत: अधिकारों को तथा सुविधाओं को सुरक्षित रखने के लिये और समाज में आगे आने के लिए अथवा अपना जीवन निर्माण करने के लिये संघर्ष करना पड़ता है, परिस्थितियों से जूझना पड़ता है; उसे अनेक बाधाओं तथा विघ्नों में से पार करना पड़ता है । समाज में विचरण करते समय बहुत बार ऐसा समय आता है जब उसकी शक्ति को, प्रवृत्ति को, अनायास ही यश प्राप्त होता है और वह अपना उद्देश्य सिद्ध करके आगे बढ़ता जाता है। परन्तु कभी-कभी तो उसे प्रयत्न करने पर, उद्योग वगैर: करने पर भी यश प्राप्त नहीं होता और जीवन में पीछे हटना पड़ता है। उस समय मनुष्य को अपना अनुकूल या प्रतिकूल काल कौन-सा है यह मालूम करने के लिए ग्रहों की दशा पद्धति को स्वीकार करना पड़ता है। अपने से प्राग् जन्म में जो कुछ भी अच्छे या बुरे कर्म घटे होंगे उनका इस जन्म में कौन-सा परिणाम भोगना पड़ेगा, यह दर्शानेवाला आदर्श याने पत्रिका है । परन्तु पत्रिका परसे इस जन्म का भोगनेवाला परिणाम जो भी समझ में आ जावे फिर भी वह इस जन्म के आयुष्य में किस समय भोगना पड़ेगा, यह काल निर्णय समझना अत्यन्त आवश्यक होता है । अपने प्राचीन ज्योतिष ग्रन्थों में दशा साधन इसीलिये कहने में आया है ।

एक तरफ तो मनुष्य के जन्म कालीन स्थित ग्रह उसके प्रारब्ध के सूचक बनकर उसे जन्मत: सुविधा या असुविधा प्रदान करते हैं और दूसरी तरफ उसकी कुण्डली के वही ग्रह चल-स्थिति में जब होते हैं तब उसके भावी जीवन में अनुकूल तथा प्रतिकूल ऐसी परिस्थितियाँ निर्माण करते रहते हैं । इस प्रकार जन्म-कालीन जिन ग्रहों के द्वारा मनुष्य के समस्त जीवन का जो एक स्थायी अस्तित्व निर्धारित करके रखा हुआ होता है, वे ही ग्रह दशा पद्धति में उनसे भिन्न ऐसे विलक्षण प्रभाव उसके जीवन में उत्पन्न करते रहते हैं । किसी भी कुण्डली का फलादेश तभी बराबर पूर्ण हो सकता है जब उस कुण्डली के जन्म कालीन ग्रहों का फलादेश और उन ग्रहों की दशाओं में प्राप्त होनेवाले फल तथा गोचर ग्रहों के फल इन सबका समन्वय किया जा सके, अन्यथा फलादेश अपूर्ण रहता है। फला-देश कहते समय इन सब बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है, इसी दृष्टि से इस ग्रंथकारने उक्त श्लोक में स्पष्ट किया है कि ज्योतिष को विंशोत्तरी दशा का फलादेश कहने के लिए अन्य जातक-ग्रंथों में कहे हुए ग्रहों के भाव फलों की भी जानकारी कर लेनी चाहिये । इस ग्रथ द्वारा तो विशेष फलादेश की जानकारी मिल सकेगी ।

अन्य जातक-ग्रथों में से संक्षिप्त जानकारी इस पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट के रूपमें दी है उसे अवश्य पढ़ना चाहिये ।

फलित ज्योतिष में प्रत्येक भाव के साथ जातक के जीवन की विशिष्ट परिस्थितियों का सम्बन्ध भी जोड़ा गया है। प्रथम भाव से शरीर का, द्वितीय से पैतृक धन वा कुटुम्ब का, तृतीय से भाई तथा पराक्रम का, चतुर्थ से मातृ सुख, भवन ग्रादिका, पंचम से सन्तान, विद्या, बुद्धिवल ग्रादिका विचार किया जाता है। इसका विचार जातक-ग्रंथों में सविस्तर किया गया है। पर नक्षत्र-दशा पद्धति में उपरोक्त भावों के ग्रधिपति से उपरोक्त भाव का विचार नहीं किया गया है, उसमें केवल शुभ-ग्रशुभ संज्ञा दी गयी है। विंशोत्तरी दशा पद्धति में एकादश स्थान का स्वामी पापी है इसका ग्रर्थ यह नहीं है कि एकादश स्थान का ग्रधिपति ग्राय का सर्वदा नाश करनेवाला है। जातक फलादेश में एकादश गृह में यदि कोई ग्रह उच्चस्थ हो या उसका ग्रधिपति उच्चस्थ या स्वगृही हो तो ग्राय का योग करता है पर विंशोत्तरी दशा में उसका ग्रधिपति यदि त्रिकोणेश से सम्बन्ध न करे तो वह ग्रपनी दशा में ग्रनिष्ट फल ही देता है चाहे वह स्वगृही या उच्चस्थ क्यों न हो। इसलिये जातक-फलादेश पद्धति से जिस ग्रह का फल जिस भाव के फल के ग्रनुसार होता है दशा पद्धति में वह ग्रशुभ होकर उसी भाव के ग्रनुरूप ही फल को देगा, ऐसा नहीं है। इसलिये जातक फलादेश परिपाटी में भावों का जो भाव तुल्य फल होता है, दशा परिपाटी में उसका फल दूसरे प्रकार का इष्ट वा ग्रनिष्ट रीति से होता है। जातक फलादेश एक प्रकार से स्थायी फलादेश है ग्रौर दशा फलादेश तात्कालिक शुभाशुभ फलादेश है। वह ग्रनुकूल तथा विपरीत वातावरण का द्योतक मात्र है। इसलिये जातक-पद्धति में भावों की संज्ञाग्रों के ग्रनुसार भावों का फल होता है पर ऐसा दशा पद्धति में नहीं है। इसलिये दशा पद्धति में लग्न को प्रथम भाव, लग्न से दूसरी राशि को द्वितीय, इस तरह से मानना चाहिये। वहाँ संधि की कल्पना करना समीचीन नहीं है। सारांश यह है कि लघुपाराशरी में जहाँ लग्न, द्वादश, पंचम ग्रादि भावों की संज्ञा है उन्हें लग्न राशि को प्रथम, उससे दूसरी को द्वितीय ग्रादि मानना चाहिए, प्रचलित भाव-स्फुट परिपाटी के ग्रनुसार नहीं। इस ग्रंथ में कहा भी गया है कि 'संज्ञां ब्रूमो विशेषतः' ग्रर्थात् प्रसिद्ध प्रचलित परिपाटी से भिन्न इस ग्रंथ की संज्ञायें है।

भावों की कल्पना ज्योतिष-फलादेशका ग्राधार बन गई है। समस्त जातक फलादेश पद्धतियों में इसकी ग्रनिवार्य मान्यता है इसलिये इसकी विवेचना ग्रावश्यक है। ग्राधुनिक भारतीय परिपाटी के ग्रनुसार जातक के प्रथम भाव की सीमा लग्न बिन्दु से ऊपर-नीचे १५° ग्रंश तक है। ग्रधः यामोत्तर वृत्त उसके चतुर्थ भाव का मध्य भाग तथा यामोत्तर वृत्त या मध्याह्न रेखा उसके दशम भावका मध्य भाग है।

पाश्चात्य भावगणना के अनुसार प्रथम भाव पूर्व क्षितिज से नीचे ३०° अंश तक, अधः यामोत्तर या मध्य रात्रि रेखा उसके चतुर्थ पंचम भाव की संधि, यामोत्तर वृत्त या मध्याह्न रेखा उसके दशम एकादश भाव की संधि, तथा लग्न स्फुट स्थान वा पूर्वीय क्षितिज द्वादश तथा प्रथम भाव की सन्धि है। लेखक के मत से जो (जैमिनीय मत है) जातक के पूर्व क्षितिज (गर्भ क्षितिज) तथा कांति सम्पात पर रहनेवाली तात्कालिक राशि का ३०° अंश का विस्तार ही प्रथम भाव है। अर्थात् किसी भी समय लग्न बिन्दु पर रहनेवाली पूरी राशि उस समय का वह प्रथम भाव है, वह चाहे दृश्य गोल में लग्न बिन्दु से ऊपर जितने भी अंश जाये वा अदृश्य गोल में उसका जहाँ तक फैलाव हो।

इन तीनों गणनाओं में से उपरोक्त दो गणनाओं में भाव व गृह उसके जन्मकालिक पृथ्वीपरत्व से आकाशीय स्थिर स्थान है। अर्थात् नियत स्थान है पर राशि उसमें चर है। जैमिनीय मतानुकूल स्थान (भाव) चल है उसमें राशि का स्थान अर्थात् नक्षत्र गोल का स्थान स्थिर है। जहाँ ग्रहों का खगोलीय स्थान (भाव) पर से ही फलादेश कहना या जानना हो वहाँ भाव गणना के अनुसार तथा जहाँ ग्रहों का फल भावों के अधिपति के अनुसार जानना हो तो वहाँ राशि को ही भाव मानकर फल जानना चाहिये। दशा-पद्धति में ग्रहों का किसी विशिष्ट भाव में रहने मात्र ही का फल नहीं माना जाता, वहाँ राशियों के स्वामियों का विशेष विचार किया जाता है। इसलिये वहाँ राशि प्रधान है। भाव-सीमा प्रधान नहीं है।

पश्यन्ति सप्तमं सर्वे शनिजीवकुजादयः।
विशेषतश्च त्रिदशत्रिकोणचतुरष्टमान् ॥ ५ ॥

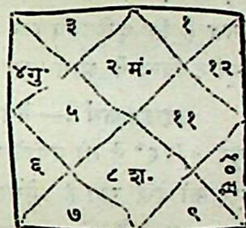
अर्थ :—सम्पूर्ण ग्रह जिस स्थान में बैठे हों, उससे सप्तम स्थान को देखते हैं। इनमें शनि-तीसरे और दशवें, गुरु-नवम व पंचम और मंगल चतुर्थ-अष्टम स्थानों को विशेष करके देखते हैं।

स्पष्टीकरण :—सब ग्रहों की सातवें स्थान पर पूर्ण दृष्टि होती है ऐसा कहा है। अर्थात् शनि, गुरु, मंगल, इन ग्रहों को प्रथम कही हुई सप्तम दृष्टि तो है ही परन्तु इनकी ऊपर कहे हुए अनुसार और दो स्थानों पर भी पूर्ण दृष्टि होती है। ग्रह जिस स्थान में होता है उस स्थान का फल तो वह देता ही है पर जिस स्थान पर उसकी पूर्ण दृष्टि होती है उस स्थान का भी फल देता है, अर्थात् ग्रहों का स्थान महात्म्य जितना है उतना ही दृष्टि-माहात्म्य भी है। पूर्ण दृष्टि का फल विशेषतः मिलता रहता है ऐसा अनुभव

है। (अन्य ग्रन्थों में जो चरण-दृष्टि याने पाद-दृष्टि कही हुई है, उसको इस ग्रन्थ में स्वीकार नहीं किया गया है) ।

अन्य जातक ग्रन्थों में त्रि-दश की (३-१०) पाद दृष्टि, त्रिकोण की (५-९) अर्द्ध दृष्टि; तथा चतुरष्टा (४-८) की त्रिपाद दृष्टि मानी गयी है परन्तु इस ग्रन्थ में इन दृष्टियों को क्रमश: शनि, गुरु तथा मंगल इनके लिये पूर्ण दृष्टि मानी गयी है, यहाँ पर पाद-दृष्टि को मान्यता नहीं दी गयी है।

उक्त श्लोक में सप्तम-त्रिदशादि पदों का प्रयोग केवल सप्तमादि स्थान स्थित ग्रहों के लिये ही किया गया है। सप्तमादि राशियों के लिये नहीं। कुछ टीकाकारों का मत है कि ग्रह अपने स्थान से सप्तम स्थानों को (राशियों को) भी देखता है, परन्तु लेखक का ऐसा मत नहीं है। इस ग्रन्थ में सर्वत्र ग्रहों की दशाओं का वर्णन है, राशियों की दशाओं का नहीं। यदि कोई एक राशि किसी एक ग्रह से दृष्ट हो और उस दृष्ट राशि में कोई भी ग्रह बैठा न हो तो उस दृष्ट राशि के स्वामी पर द्रष्टा ग्रह का कुछ प्रभाव पड़ सकता है क्या ? ऐसा इस ग्रन्थ में कहीं भी कोई प्रसंग नहीं है।



उदाहरणार्थ :—वृषभ लग्न की कुण्डली में यदि मंगल लग्नस्थ, शनि सप्तमस्थ, वृहस्पति तृतीयस्थ तथा सूर्य नवमस्थ हो तो मंगल और शनि तथा सूर्य वृहस्पति परस्पर दृष्ट होकर परस्पर सम्बन्धित होंगे, वे योग कारक कहे जायेंगे। अब सिंह राशि और धनु राशि मंगल से दृष्ट मानी जावे तो उन राशियों के स्वामी सूर्य, गुरु पर मंगल का प्रभाव मानना पड़ेगा। परन्तु ऐसा इस ग्रन्थ के अनुसार नहीं है। जातक-फलादेशों में स्वामियों से दृष्ट राशि क्षेमकर ऐसी मानी गयी है परन्तु यहाँ इस प्रकार का फलादेश अप्रासंगिक है।

जैमिनीय-शास्त्र में दशायें राशियों पर निर्धारित होती हैं इसलिये वहाँ पर कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार प्रत्येक राशि कोई अन्य राशि को देखती है फिर द्रष्टा और दृष्ट इन दोनों राशियों में कोई भी ग्रह न हो तो भी चलेगा। जिस नियम के अनुसार एक राशि दूसरी राशि को देखती है उसी नियम के अनुसार किसी भी राशि में स्थित ग्रह दूसरी राशि में स्थित ग्रह को देखता है। वहाँ राशियों को ही प्रधानता है, राशियों के स्वामियों को नहीं है। यहाँ पर राशियों के स्वामियों की अथवा गृह-स्वामियों की (ग्रहों की) प्रधानता है, केवल राशियों की नहीं। वहाँ राशियों का राशियों से सम्बन्ध है तो

यहाँ भावों से राशियों का, तदुपरान्त राशियों के स्वामियों का और अन्ततः भावेश का भावेश के साथ ही सम्बन्ध रहता है।

क्रान्तिवृत्ताश्रित बारह राशियों के स्वभाव, उनमें स्थित आकाशीय तारागणों (नक्षत्र समूह) के अनुसार निर्धारित किये गये हैं। यह स्वभाव अथवा प्रभाव तारागणों का सामूहिक प्रभाव है इसलिये एक-विशेष (जिसका विस्तार ३०° अंश है) एक इकाई (one unit) है, जब एक राशि किसी दूसरी राशि को देखती है ऐसा माना जाता है तब उसका ऐसा अर्थ होता है कि द्रष्टा राशि द्रष्टा राशि से ३०° अंश नामक एक एक राशि इतनी दूर है, यहाँ पर अन्तर का मापदण्ड ३०° अंशों की एक इकाई का (one unit) है। परन्तु ग्रहों के सम्बन्ध इस प्रकार कह नहीं सकते। ग्रह तो गगन-मण्डल में बिन्दुवत् हैं। जब एक ग्रह दूसरे ग्रह को देखता है तब उनके अन्तर का मापदण्ड अंशात्मक होता है। यदि इस माप को राश्यात्मक (३०° अंश) मापदण्ड में परिणत करने को कहा जाय तो एक भी कुण्डली में द्रष्टा और दृष्ट ग्रहों के अन्तरों में कोई भी सामंजस्य नहीं बैठेगा। इसलिये लेखक का मत है कि दृष्टि-विचार में अन्तर का मापदण्ड अंशात्मक होना चाहिये और दृष्टि-बिन्दु के आस-पास की सीमा ही दृष्टि की सीमा होनी चाहिये।

उदाहरणार्थ :—मेष लग्न की कुण्डली में यदि मंगल स्पष्ट ४/२° है तथा गुरु ०/२९° है तो उपरोक्त श्लोक के साधारण अर्थ के अनुसार मंगल ग्रह गुरु को देख रहा है ऐसा माना जावेगा। अब एक दूसरे मेष राशि के लग्न की कुण्डली में मंगल स्पष्ट ४/२९° तथा वृहस्पति ०/२° हो तब भी यहाँ पर भी मंगल ग्रह वृहस्पति को देख रहा है ऐसा माना जावेगा। परन्तु इन दोनों परिस्थितियों में प्रथम कुण्डली में मंगल से वृहस्पति २३७° दूरी पर है जबकि दूसरी कुण्डली में मंगल वृहस्पति से १८०° अंश दूरी पर है, मंगल का ठीक सप्तम दृष्टि-बिन्दु उससे १८०° अंश दूरी पर है। क्या यह तर्क सम्मत होगा कि इन दोनों भिन्न-भिन्न स्थितियों में इन दोनों का योगफल एक समान होगा ?

लेखक के मतानुसार लघुपाराशरी में ग्रहों की दृष्टि-सीमा इस प्रकार की होनी चाहिये।

१. सप्तम दृष्टि बिन्दु = ग्रह स्पष्ट + १८०° →सब ग्रहों के लिये

२. { तृतीय दृष्टि बिन्दु = ग्रह स्पष्ट + ६०°
दशम ,, ,, = ,, ,, + २७०° } →शनि की दृष्टि

३. { पंचम दृष्टि बिन्दु = ग्रह स्पष्ट + १२०°
नवम ,, ,, = ,, ,, + ९०° } →गुरु की दृष्टि

४. { चतुर्थ दृष्टि बिन्दु = ग्रह स्पष्ट + ९०° ; अष्टम „ „ = „ „ + २१०° } → मंगल की दृष्टि

इस दृष्टि-बिन्दु के आस-पास अर्थात् कुछ आगे या कुछ पीछे इस प्रकार उस दृष्टि की सीमा होनी चाहिये। यदि १५° अंश आगे और १५° पीछे तक रखी जावे तो अनुपयुक्त नहीं होगी। वास्तविक दृष्टि की सीमा निर्धारित करना अनुभव का विषय है, इस पर विचार और शोध करना चाहिये। जो दृष्ट ग्रह द्रष्टा के दृष्टि बिन्दु से जितने नजदीक होगा उतनी उस द्रष्टा ग्रह की उस पर तीव्र तथा प्रभावशाली दृष्टि होगी। दूर हो तो दृष्टि निर्बल रहेगी।

ग्रहों के स्फुट सायन हों अथवा निरयन हों, दृष्टि-गणना में कुछ अन्तर नहीं पड़ता। इसलिये जहाँ तक एक ग्रह का दूसरे ग्रह से दृष्टि सम्बन्ध का प्रश्न है—तो ग्रह सायन हो या निरयन हो कुण्डली में समान दृष्टि-फल देगा। अन्तर सिर्फ स्थानाधिपति का ही हो सकेगा।

पाश्चात्य-फलित के अनुसार ग्रहों की सारणी नीचे दी है

इसे अंग्रेजी में अॅस्पेक्ट Aspect कहते हैं।

ग्रहों का दृष्ट स्थान		अँग्रेजी में नाम	संकेत	दृष्टि का साधारण फल
ग्रह स्फुट	+ ३०°	Semi Sextile	⊻	उत्तम
„ „	+ ४५°	Semi Square	∠	निकृष्ट
„ „	+ ६०°	Sextile	✻	उत्तम
„ „	+ ९०°	Sequare	□	निकृष्ट
„ „	+ ७२°	Quintine	Q	मध्यम
„ „	+ १२०°	Trine	△	उत्तम
„ „	+ १३५°	Ses Qui Quadrate	⊏⊐	निकृष्ट
„ „	+ १४४°	Bi Quintile	±	साधारण
„ „	+ १५०°	Quincunx	▽▽ V	निकृष्ट
„ „	+ १८०°	Opposition	◡◡	निकृष्ट

उपरोक्त दृष्टि-चक्र सब ग्रहों के लिये है। सब ग्रहों की दृष्टि-सीमा १८०° अंश है। उसके वाद में जो ग्रह होते हैं वे द्रष्टा के बदले दृष्ट होते हैं।

उदाहरणार्थः—सूर्य से शनि ३००° अंश दूरी पर है तो शनि द्रष्टा और सूर्य दृष्ट होगा। और यह शनि की दृष्टि सूर्य पर १२०° अंश की होगी और इसका संकेत शनि △ सूर्य (Trine Aspect) ऐसा होगा।

जैमिनीय मत के अनुसार दृष्टि-चक्र

द्रष्टा राशि	दृष्ट राशि
१	५–८–११
२	४–७–१०
३	६–९–१२
४	२–१२–८
५	१–१०–७
६	९–१२–३
७	११–२–५
८	१०–१–४
९	१२–३–६
१०	२–५–८
११	१–४–७
१२	३–६–९

उदाहरणार्थ :—मेष राशि–सिंह, वृश्चिक तथा कुम्भ राशि को देखती है। यदि मेष राशि में कोई ग्रह हो और सिंह व कुम्भ राशि में भी होगा तो मेषस्थ ग्रह सिंहस्थ ग्रह को देखेगा, यहाँ ग्रहों की दृष्टि के नियम भी राशि के दृष्टि के नियमों के आधीन हैं। उनका अपना खुद का ऐसा कोई भी स्वतन्त्र दृष्टि-नियम नहीं होता।

अन्य ग्रंथों में दिये हुए दृष्टि के चक्र

योग = २० एक पाद, द्विपाद, त्रिपाद दृष्टि, सम्पूर्ण, अर्ध, तृतीय, चतुर्थ, सप्तम, वगैरः दृष्टि।

भाव →	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
सू. चं. बु. शु.	×	×	५	१५	१०	×	२०	१५	१०	५	×	×
मंगल	×	×	१०	२०	५	×	१५	२०	५	१०	×	×
वृहस्पति	×	×	५	१५	२०	×	१०	१५	२०	५	×	×
शनि	×	×	२०	१०	१५	×	५	१०	१५	२०	×	×

ग्रह एक दूसरे के स्थान तथा दृष्टि सम्बन्ध से सम्बन्धित होते हैं। विंशोत्तरी दशा पद्धति में जहाँ सप्तम, द्वादश, त्रिकोण, चतुरष्ट मान कहा है उसका तात्पर्य विचाराधीन ग्रह से उससे सम्बन्ध करनेवाले ग्रह की अंशात्मक दूरी से है। उसकी गणना इस प्रकार समझनी चाहिये—

सप्तम दृष्टि—ग्रह स्पष्ट से १८०° अंश जोड़ कर जो राश्यादि स्पष्ट हो उस राश्यादि स्पष्टवाली राशि विशेष में जो ग्रह बैठा हो वह विचारणीय ग्रह से सप्तम कहा जायगा। ऐसी स्थिति में वे परस्पर दृष्ट कहे जायेंगे।

तृतीय दृष्टि——विचारणीय ग्रह से स्फुट में ६०° अंश पर जो राश्यादि स्पष्ट हो, उस राशि में जो कोई ग्रह बैठा हो वह विचारणीय ग्रह से तृतीयस्थ दृष्ट कहा जायगा।

इसी प्रकार चतुःका अर्थ द्रष्टा ग्रह से ६०° अंश दूरवाली राशि, पंचम–१२०° अंश, नवम–२४०° अंश, दशम–२७०° अंश, अष्टम–२१०° अंश। इसकी तालिका नीचे दी जाती है।

लघुपाराशरी विंशोत्तरी दृष्टि चक्र

शनि स्पष्ट	+	६०	=	दृष्ट राशि	द्रष्टा से	तृतीय
शनि स्पष्ट	+	२७०	=	दृष्ट राशि	द्रष्टा से	दशम
मंगल स्पष्ट	+	९०	=	दृष्ट राशि	द्रष्टा से	चतुर्थ
मंगल स्पष्ट	+	२१०	=	दृष्ट राशि	द्रष्टा से	अष्टम
वृहस्पति स्पष्ट	+	१२०	=	दृष्ट राशि	द्रष्टा से	पंचम
वृहस्पति स्पष्ट	+	२४०	=	दृष्ट राशि	द्रष्टा से	नवम
कोई ग्रह स्पष्ट	+	१८०	=	दृष्ट राशि	द्रष्टा से	सप्तम

सर्वे त्रिकोणनेतारो ग्रहाः शुभफलप्रदाः।
पतयस्त्रिषडायानां यदि पापफलप्रदाः॥६॥

इस श्लोक का अर्थ टीकाकारों ने अलग-अलग प्रकार से किया है—

(१) कोई भी ग्रह यदि त्रिकोण (१।५।६) का स्वामी हो तो शुभ फलदायक होता है। तथा यदि त्रिषडाय (३।६।११) का स्वामी हो तो पाप फलदायक होता है।

(१) त्रिकोण के स्वामी शुभ फल देते हैं और ३।६।११ त्रिषडाय के स्वामी अशुभ फल देते हैं। परन्तु इस स्थान के अधिपति (याने ३।६।११ स्थान के) यदि उसी समय त्रिकोण के अधिपति भी हों, तो वे अशुभ फलदायक होते हैं।

अलग-अलग टीकाकारों के इस श्लोक के सम्वन्ध में अभिप्राय इस प्रकार हैं——

श्री पण्डित सीताराम झा——का कहना इस प्रकार है——

इससे यह सिद्ध होता है कि स्वाभाविक पाप ग्रह भी त्रिकोण पति हो तो शुभ होता है तथा स्वाभाविक शुभ यदि त्रिकोणपति हो तो अत्यन्त विशिष्ट शुभदायक होता है। इसी प्रकार स्वाभाविक शुभ यदि त्रिषडायपति हो तो

पाप फ़लदायक होता है, तथा स्वाभाविक फलप्रद त्रिषडायपति होने से अत्यन्त पाप फलदायक होता है। जो पूर्व श्लोक की टीका में स्पष्ट कहा गया है। यहाँ त्रिकोण में लग्न की भी गणना है। इसी अभिप्राय से 'त्रिकोणनेतारः' बहुवचनान्त पाठ भी है। यदि केवल पंचम, नवम, दो ही स्थान आचार्य का अभिप्रेत रहता तो 'लग्नाद्व्ययद्वितीयेशौ' इत्यादि के समान 'त्रिकोणनेतारौ' ऐसा द्विवचनान्त ही पाठ रखा जाता। तथा तीन स्थान से ही त्रिकोण शब्द सार्थक हो सकता है। आचार्य ने स्वयं भी आगे—'लग्नाधीशोऽपि चेत् स्वयम्' इत्यादि लग्नेश को शुभ ही कहा है। तथा तीन-तीन स्थानों के समान गुण हैं जो आगे सयुक्तिक वर्णित हैं। इसलिये त्रिकोण शब्द से १।५।९ तीनों स्थान ग्राह्य हैं। केवल ५।९ ग्रहण करना असङ्गत है।

त्रिकोणेश के शुभ होने में युक्ति वचन—

विद्या-धर्मौ गृहे चेत् स्तस्तदा क्रूरोऽपि साधुताम्।
व्रजेदतीव साधुत्वं साधुश्चेदिति दृश्यते॥
शरीरं च वशे यस्य स साधुः सद्भिरुच्यते।
लग्नं शरीरमाख्यातं तस्मात् तदधिपः शुभः॥
नवमो धर्मभावोऽस्ति विद्याभावश्च पञ्चमः।
तस्मात् तदाधिपत्येन ग्रहाः सर्वे शुभप्रदाः॥

घर में विद्या और धर्म का प्रचार होने से क्रूर भी साधु हो जाता है, साधु तो अत्यन्त साधु हो जाता है। एवं जिसके वश में अपना देह रहता है वह भी साधु कहलाता है। इसलिये देह भाव (लग्न) और विद्या भाव (पञ्चम) तथा धर्म भाव (नवम) इन तीनों स्थान के आधिपत्य से ग्रहों में भी साधुता हो जाना समुचित ही है।

तथा त्रिषडाय पति के पापत्व होने में युक्ति वचन—

आयः पराक्रमो वाऽपि शत्रुर्वाऽपि गृहे तदा।
साधोरपि खलत्वं स्यादिति लोकेऽपि दृश्यते॥
तस्मात् स्वभावतः सौम्याः पापा वा गगनेचराः।
त्रिषडायाधिपत्येन सर्वे पापफलप्रदाः॥

जिस किसी के घर में सदा आय (लाभ) हो, अथवा विशेष पराक्रम हो, या शत्रु हो तो स्वभाव से साधु होते हुए भी उसमें क्रूरता आ ही जाती है, ऐसा देखा जाता है। इसलिये तृतीय (पराक्रम), षष्ठ (शत्रु), एकादश (आय) स्थानों के आधिपत्य से शुभग्रह में भी क्रूरता हो जाना उचित ही है।

इससे दशाफल के विषय में (१।५।९) त्रिकोण स्थान शुभ और त्रिषडाय (३।६।११) ये तीन स्थान अशुभ सिद्ध हुए।

पण्डित रामेश्वर भट्ट टीकाकारने--इस प्रकार अर्थ किया है—

'सम्पूर्ण ग्रह त्रिकोण अर्थात् नवम पंचम के स्वामी होने से शुभ फल देते हैं और जो तीसरे, छठे और एकादश के स्वामी हों तो अशुभ फल देते हैं।

'विद्यारत्न' पण्डित माधव प्रसाद व्यास—इन्होंने इस प्रकार अर्थ किया है—

'पाप ग्रह भी यदि पंचम और नवम स्थान में रहते हैं तो शुभ फल देनेवाले होते हैं और यदि शुभ ग्रह भी तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थान में होवें तो अशुभ फल देनेवाले होते हैं। तात्पर्य यह है कि सब ग्रह स्वभाव से ही शुभ फल देनेवाले होते हैं। परन्तु यदि पाप ग्रह भी पंचम और नवम स्थान में रहते हैं तो वे भी शुभफल देते हैं। शुभ ग्रह तो शुभ फल देते ही हैं। शुभ ग्रह यदि तृतीय षष्ठ, एकादश स्थान में होवें, तो वे भी अशुभ फल देते हैं, पाप ग्रह तो अशुभ-फल देते ही हैं।'

राज-ज्योतिषी पं चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री—इनका कहना है कि—

सूर्यादि सम्पूर्ण ग्रह त्रिकोण अर्थात् लग्न से पंचम और नवम भाव के स्वामी होकर शुभ फल देनेवाले होते हैं। यदि ये ही अर्थात् सूर्यादि समस्त ग्रह लग्न से तीसरे, छठे या ग्यारहवें भवन के स्वामी हों तो ये सभी ग्रह अशुभ फल देनेवाले होते है।

सज्जनरंजनी टीकाकार—के अनुसार त्रिकोण का नेतृत्व नौ ९ ग्रह भी कर सकते हैं कारण 'भुवन दीपक' नामक ग्रंथ में इस प्रकार कहा है कि कन्या राशि राहु का गृह है और मिथुन राशि उसकी उच्च राशि है, यदि नवम या पंचम स्थानों में कन्या राशि होवे तो राहु को भी त्रिकोण का स्वामी मानना चाहिये और फिर त्रिकोण का स्वामी होने के कारण से राहु को भी शुभ मानना पड़ेगा, ऐसी स्थिति में एक राशि (कन्या) के दो स्वामी—एक बुध और दूसरा राहु—होंगे (अन्य टीकाकार यह मानने को तैयार नहीं हैं। इसके अलावा ज्योतिष का ऐसा सम्प्रदाय भी नहीं है)।

उक्त टीकाकार कहते हैं कि तीसरे, छठे और ग्यारहवें स्थानों के स्वामी पापी होते हैं। परन्तु यदि तीसरे स्थान का स्वामी तृतीय में, छठे स्थान का स्वामी षष्ठ में अथवा एकादश स्थान का स्वामी लाभ-स्थान में हो तो वह पाप फलद नहीं होता।

यह एक विशिष्ट बात यहाँ टीकाकार ने कही है। इसका आधार इस प्रकार है कि अपनी-अपनी उच्च राशि में ग्रह 'दीप्त' और अपनी स्वराशि में

'स्वस्थ' ऐसा कहा जाता है। शास्त्रांतर में स्वस्थ ग्रह की दशा का शुभ वर्णन किया हुआ है। अपने खुद के घर में ग्रह बली होता है और वह पाप फल (अनिष्ट फल) कैसे दे सकता है ? फलदीपिका नामक ग्रंथ में अध्याय ६ श्लोक १५ में ऐसा कहा है कि यदि ग्रह अपनी राशि में हो तो उसकी दशा में किसी बड़े व्यक्ति की कृपा या सहायता द्वारा जातक बहुत धनोपार्जन करता है, उसके घर में लक्ष्मी निवास करती है, जातक को खुद को प्रभुत्व प्राप्त होता है अर्थात् स्वराशि में स्थित ग्रह की दशा में जातक खुद बड़ा आदमी बनता है। जो वस्तु जीवन के गत (भूत) काल में नष्ट हुई हो या उसका अपहरण हुआ हो तो उसकी पुनः प्राप्ति होती है, नया घर या भूमि प्राप्त होती है। इसी ग्रंथ के अध्याय २० श्लोक ३० में कहा है कि ग्रह की दशा का विचार करना हो तो वह यदि अपनी उच्च राशि में हो तो पूर्ण शुभ फल देता है, अशुभ फल नहीं देता, यदि स्वगृह का हो और अच्छे स्थान में हो तो तीन-चतुर्थांश शुभ फल देता है और अशुभ स्थान में हों तो एक चतुर्थांश अशुभ फल देता है। इसी अध्याय के श्लोक ४।७ तथा १२ इनमें कहा है कि यदि तृतीय स्थान का स्वामी बलवान् हो तो प्रसन्नता और संतोषजनक संवाद सुनने को मिलते हैं। भाइयों वगैरः की अनुकूलता तथा प्रेम प्राप्त होता है। पराक्रम की वृद्धि होती है। ऐसा मनुष्य सद्गुणी होता है, लोग उसका आश्रय लेते हैं अर्थात् उसके हाथ के नीचे अनेक व्यक्ति होते हैं और वह सेनापति या तत्सम किसी उच्च पद पर होता है।

यदि षष्ठेश बलवान् होकर षष्ठ स्थान में हो अर्थात् षष्ठ स्थान का स्वामी षष्ठ में हो तो जातक पराक्रम द्वारा शत्रुओं पर विजय पाता है, अतिलक्ष्मीवान् होता है, उसका स्वास्थ्य अच्छा रहता है, वह उदार वृत्तिवाला होता है, उसे कोई भी दबा नहीं सकता यह शुभ फल षष्ठेश की दशा का है।

यदि एकादश स्थान का स्वामी लाभ में स्वगृह में, शुभ दृष्ट हो तो जातक को ऐश्वर्य प्राप्ति बिना अड़चनों के होती है, इष्ट बन्धुजनों का समागम, अनेक दास, नौकर, चाकर इत्यादि की प्राप्ति होती है। संसार में उसे सुख-सौभाग्य प्राप्त होता है और उसका एकादश स्थान के स्वामी की दशा में महान् उदय होता है।

ये उक्त बातें सज्जन रंजनी टीकाकार ने फलदीपिका ग्रंथ के आधार पर कही हैं कि तृतीयेश-तृतीय में, षष्ठेश-षष्ठ में, तथा एकादशेश-लाभस्थान में हो तो इन ग्रहों को पापी ऐसी संज्ञा नहीं होती। सज्जन रंजनी टीकाकार का मत है कि ऊपर जो व्याख्या कही है वह तृतीय स्थान का स्वामी तृतीय में,

षष्ठ स्थान का स्वामी षष्ठ में अथवा एकादश स्थान का स्वामी एकादश स्थान में हो तो पापी नहीं होता, परन्तु इस सामान्य नियम का एक अपवाद ऐसा है कि यदि वृश्चिक लग्न हो और मंगल षष्ठाधीश षष्ठ स्थान में हो तो वह शुभ फल नहीं देता।

जो टीकाकार कहते हैं कि त्रिकोणेश यदि त्रिषडायाधीश भी हो तो वह शुभ नहीं होता इस प्रकार की व्याख्या करना नहीं सही है कारण कर्क लग्न का वृहस्पति षष्ठ (धनु) तथा नवम (त्रिकोण) मीन राशि का स्वामी होता है इनमें एक स्थान त्रि, षट्, आय वर्ग का है और दूसरा स्थान त्रिकोण वर्ग का है, परन्तु फिर भी कर्क लग्न के वृहस्पति को शुभ ही माना गया है, किन्तु कन्या लग्न की कुण्डली में त्रिकोण (पंचम स्थान) में मकर राशि होने से और षष्ठ स्थान में कुंभ राशि होने से इन स्थानों के स्वामी शनि को अशुभ ही माना गया हैं। बराहमिहिर के मतानुसार जब एक ग्रह दो कारणों से विरुद्ध धर्म का होता है--याने एक कारण से शुभ फल देनेवाला हो और दूसरे कारण से अशुभ फल देने वाला हो–तो ऐसी परिस्थिति में वह ग्रह दोनों स्थानों के फलों का नाश करता है। लेखक के मत में उपरोक्त उदाहरणों में शनि और गुरु ये त्रिकोणाधीश होकर त्रिषडायाधीश भी हैं इसलिये दोनों ही सदोष हैं।

सुश्लोक शतक ग्रंथ के टीकाकारों में से एक टीकाकार का ऐसा कहना है कि : "इस ग्रंथकार ने तथा अन्य टीकाकारों ने, सबने एक मत से पंचम और नवम स्थानों के स्वामी को शुभ माना है। संस्कृत में नवम स्थान को भी "शुभ" ऐसी संज्ञा दी गई है। इन कारणों से त्रिकोणेश के शुभत्व के सम्बन्ध में वैमत्य नहीं है। टीकाकारों के मतों के अनुसार सातों के सातों ग्रह त्रिकोणेश होने पर शुभ हो सकते हैं। राहु और केतु ये कोई भी राशि के स्वामी न होने से त्रिकोणेश नहीं हो सकते। त्रिकोणेश यह पद उनको लागू नहीं हो सकता नैसर्गिक शुभ अथवा पाप कोई भी ग्रह त्रिकोणेश होने पर शुभत्व का अधिकारी बनता है। यदि पाप ग्रह भी त्रिकोणेश होने से शुभ माना जाता है तो शुभ ग्रहों के बारे में कहना ही क्या है कारण वे तो अधिक ही शुभ होंगे।

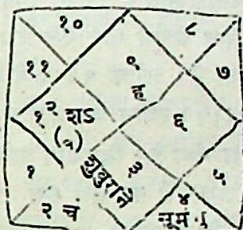
यदि सातों के सातों ग्रह त्रिषडायाधीश हों अर्थात् उनमें से कोई तीसरे, छठे या एकादश स्थान के अधिपति हों तो उन्हें अशुभ या पापी समझना पड़ेगा, चूंकि शुभग्रह भी तीसरे छठे, ग्यारहवें स्थानों के स्वामी होने पर पापी माने जाते हैं तो पाप ग्रह यदि त्रिषडायाधीश हों तो वे अधिक ही पापी होंगे।

फलित-विकास—इस ग्रंथ के टीकाकार **श्री रामयत्न ओझाजी** का मत है कि "यदि इस प्रकार अर्थ किया जावे कि त्रिकोणेश--सब ग्रह शुभ और पाप-यदि शुभ फल देनेवाले होते हैं और उसी समय वे त्रिषडायाधीश भी हों तो पाप-फलद होते हैं—तो उनमें महान् दोष इस प्रकार का उत्पन्न होता है कि सूर्य और चन्द्रमा के अतिरिक्त अन्य सब ग्रहों की दो-दो राशियाँ होती हैं और किसी भी लग्न का त्रिकोणेश कभी भी तृतीय और एकादश स्थान का स्वामी हो ही नहीं सकता, सिर्फ कर्क, कन्या और मकर लग्नों की कुण्डलियों में क्रमश: गुरु, शनि और बुध ये त्रिकोण के स्वामी होते हैं और साथ ही साथ वे षष्ठ स्थान के भी स्वामी होते हैं कर्क लग्न का गुरु नवम (त्रिकोण) स्थान और षष्ठ स्थान का स्वामी होता है, कन्या लग्न का शनि-पंचम (त्रिकोण) और षष्ठ स्थान का स्वामी होता है और मकर लग्न के किये बुध नवम (त्रिकोण) और षष्ठ स्थान का स्वामी होता है। यदि ग्रंथकार का यही अभिप्राय होता तो उसको सिर्फ ऐसा ही कहना चाहिये था कि त्रिकोणेश यदि षष्ठेश भी हो तो वह पाप फलद होगा। इस प्रकार कहता तो चल सकता था। इसलिये सब त्रिकोणेश शुभ होते हैं किन्तु वे यदि त्रिषडायाधीश भी हों तो शुभ नहीं होते—ऐसे अर्थ करना समीचीन नहीं होगा। इसका वास्तविक अर्थ ऐसा है कि त्रिकोणेश शुभफलद होते हैं और त्रिषडायाधीश पाप-फलद होते हैं अर्थात् त्रिकोण स्थान शुभ और तीसरा छठा और ग्यारहवाँ स्थान पाप-फलद है, कन्या लग्न का शनि त्रिकोणेश और षष्ठेश होने से पापफलद ही है।"

मराठी टीकाकार स्वर्गीय वि. गो. नवाथे, पण्डित रघुनाथशास्त्री पटवर्धन—थे उक्त श्लोक का अर्थ ऐसा करते हैं कि "सप्तग्रह यदि त्रिकोण के अधिपति हों याने पंचम, नवम स्थान के अधिपति हों तो शुभ-फल उत्पन्न करते हैं, और ३-६-११ इन स्थानों के स्वामी हों तो वे अशुभफल देते हैं। त्रिकोण के स्वामी यदि पाप ग्रह हों तो भी वे शुभफल देते हैं और ३-६-११ इन स्थानों के स्वामी यदि शुभ ग्रह भी हों तो भी वे पापफल ही देते हैं बुध, गुरु, शुक्र और पूर्णचन्द्र ये शुभग्रह हैं और रवि, मंगल, शनि और क्षीणचन्द्रमा ये पाप ग्रह हैं।"

मराठी (महाराष्ट्र) टीकाकार स्वर्गीय ह. ने. काटवे के विचार इस प्रकार हैं—ग्रंथकारने पंचम स्थान और नवम स्थान के अधिपति शुभफल देते हैं ऐसा कहा है पर उपरोक्त स्थानों के अधिपति किस स्थान में बैठने से शुभ-फल देते हैं इसके सम्बन्धमें मात्र कुछ भी कहा नहीं है। कल्पना करो कि इन त्रिकोण स्थानों के अधिपति यदि ३-६-८-१२ स्थानों में स्थित हों तो शुभफल

मिलेगा क्या ? कारण जातक पारिजात का ग्रंथकार कहता है कि "भाग्येशो मारकस्थेषु जातभाग्यं निरर्थकम्" उसी प्रकार पराशरी का वचन भी इसी प्रकार है कि "भाग्येशो सहजे वित्ते सदा भाग्यानुचिंतन:" तृतीय स्थान जिस प्रकार मारक स्थान है उसी प्रकार "सप्तमं द्वितीयस्थानं मारकस्थानमुच्यते" यह पाराशरी में का वचन है। उदाहरण—जन्म तारीख २४ जुलाई १९०८, जन्म समय सायं ५ बजे, जन्म स्थान-यवतमाल, लग्न धनु, अष्टम स्थान में सू. मं. गु. ये तीन ग्रह हैं इनमें गुरु लग्नेश, मंगल-पंचमेश और सूर्य भाग्येश ये तीनों त्रिकोण स्थान के अधिपति हैं, इनके क्या फल मिले होंगे ? इनमें से पहला त्रिकोण स्थान लग्न है, इस स्थान का अधिपति गुरु अष्टम में होने से इनका



स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता। दूसरा त्रिकोण पंचम स्थान का अधिपति मंगल अष्टम में होने से इनका शिक्षण पूर्ण नहीं हो सका परन्तु संतति खूब हुई। तीसरा त्रिकोण ९ स्थानका अधिपति सूर्य अष्टम में होने से इनकी प्रथम पत्नी जब तक जीवित रही साधारणत: स्थिति ठीक थी द्वितीय विवाह जब से हुआ तब से भाग्योदय नष्ट हुआ पूर्वार्जित पैतृक धन (रोकड़) सब हाथ से चला गया, मकान लड़कों के नाम पर करना पड़ा धंधा ठीक से चला नहीं और उदर निर्वाह की चिंता निर्माण हुई। अब यदि इस श्लोक का दूसरा अर्थ इस प्रकार से लिया गया तो—"त्रिकोणों के स्वामी शुभफल देते हैं और ३-६-११ इन स्थानों के स्वामी अशुभ फल देते हैं परन्तु इन स्थानों के अधिपति यदि उसी समय त्रिकोणों के भी स्वामी हों तो अशुभफल नहीं देते। उदाहरणार्थ—कर्क लग्न से गुरु षष्ठेश और भाग्येश होता है, यह गुरु षष्ठेश भी हुआ तो भी वह नवम स्थान का स्वामी है इसलिए इसकी ग्रंथकार द्वारा राजयोग में गणना की गई। यह तो ठीक है पर यदि यही गुरु ३-६-८-१२ इन स्थानों में बैठे तो वह शुभ फल नहीं देगा यह स्पष्ट है। यथार्थ में त्रिकोणाधिपति का महत्त्व कब है ? जब वह त्रिकोण अथवा केन्द्र में बैठा हो तब। अगर ऐसा नहीं हो तो महत्त्व नहीं है।

भरवदत्त ने दूसरा अर्थ लिया है और श्री सीताराम झा, पंडित महेश्वर शर्मा इन्होंने मेरे सरीखा ही अर्थ किया है।

लेखक के मतसे कर्क लग्न के लिये यद्यपि गुरु नवमेश है इसलिये शुभ माना गया है और उसकी राजयोग में गणना भी की गई है फिर भी वह षष्ठेश होने के कारण से सदोष है।

श्री विनायक शास्त्री का कहना है कि—लग्न को भी त्रिकोण में गिनना चाहिये ।

गुजरात के टीकाकार उत्तमराम मयाराम ठक्कर—इनके अनुसार पंचम-नवम त्रिकोण के स्वामी शुभ ग्रह अथवा पाप ग्रह हों तो वे सब शुभ फल देनेवाले होते हैं इसके विपरीत वे ग्रह यदि ३।६।११ स्थानों के स्वामी हों तो वे सब अशुभ फल देते हैं। सर्वे पद से शुभ और पाप ग्रह दोनों का समावेश होता है। श्लोक १५ वें के अनुसार कोई भी ग्रह त्रिकोण का स्वामी बनकर यदि ३।६।११ स्थान का भी स्वामी बनता हो तो वह दूषित होता है इस प्रकार कहा गया है। त्रिषडाय याने ३।६।११ स्थान हैं। हिन्दी टीकाकारों ने छठे श्लोक के उत्तरार्ध का अर्थ इस प्रकार जो किया है कि—त्रिषडायपति जो पाप ग्रह हों तो वे अशुभ फल देनेवाले होते हैं परन्तु यदि शुभ ग्रह हों तो शुभ फल देनेवाले होते हैं।—यह अर्थ बराबर नहीं है। ग्रन्थकार का आशय है कि विशेष नियम का निर्देश इस श्लोक के उत्तरार्ध में किया गया है और वह यह है कि त्रिकोणाधिपति शुभ-फलदायी हो कर जो वे त्रिषडाय के स्वामी बनते हों तो वे शुभ के बदले दूषित बनते हैं यह विशेष नियम के तरह दर्शाया है।

शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या उडुदायप्रदीप के गुजराथी में भाषांतर कर्ता—इनके अनुसार "जो सूर्यादि सर्व ग्रह त्रिकोण के अधिपति याने पंचम अथवा नवम स्थान के अधिपति हों तो अशुभफल देनेवाले होते हैं।

उनका कहना है कि ग्रंथकर्ता ने इस श्लोक में सामान्य रीति से सब ग्रहों का अमुक स्थान के आधिपत्य परत्वेन सामान्य फल दिया है परन्तु विचार करने से उसमें से इस प्रकार का सारांश निकल सकता है कि यदि सब ग्रहों में पापग्रह याने रवि, मंगल, शनि और क्षीणचन्द्रमा ये त्रिकोण के याने नवम, पंचम स्थानों के अधिपति हों तो शुभफल देनेवाले होते हैं और उसी प्रकार तीसरे, छठे अथवा ग्यारहवें स्थान के अधिपति यदि शुभग्रह-याने बुध, गुरु, शुक्र और पूर्ण-चन्द्रमा-हों तो वे अशुभफल देते हैं।

इस प्रकार से शुभाशुभ ग्रहों का विवेचन किया जावे तो फल कथन की मान्यता अधिक उचित मालूम देती है। कारण, ग्रंथकार ने सामान्यतः सब शुभ अथवा अशुभ ग्रह अमुक स्थान के अधिपति होने से एक समान ही फल देते हैं यह सम्भव नहीं मालूम देता और उसी प्रकार सब ग्रह दूसरे अमुक स्थानों के अधिपति होने के कारण से अशुभफल ही देते हैं, यह भी सम्भव नहीं है।

इस पर भी उपरोक्त शुभाशुभं ग्रहों का विभाग कर स्थानों का भी विभाग

करके फल कथन किया तो फल कथन अधिक प्रमाण में मिलेगा यह स्वाभाविक है और इस प्रकार मानना भी अधिक उचित होगा।

कई लोग इस श्लोक का अर्थ करते हैं कि" त्रिकोण याने नवम अथवा पंचम (शुभफल देनेवाले अर्थात् शुभ ग्रह) स्थानों के अधिपति यदि तीसरा, छठा. अथवा ग्यारहवां स्थान के भी अधिपति हों तो अशुभफल देनेवाले होते हैं" परन्तु यह अर्थ बराबर वैठता है ऐसा नहीं लगता। अर्थात् ऊपर प्रमाणे अर्थ संगति मानना अधिक उचित है।

स्पष्टीकरण और खुलासा—श्री विनायक शास्त्री और पंडित सीताराम झा के अनुसार त्रिकोण में लग्न की भी गणना करनी चाहिये यह उचित है। उपरोक्त सब टीकाकारों का कथन और उन्होंने इस श्लोक के सम्बन्ध में जो अपने विचार और अभिप्राय प्रकट किये हैं उन सबको ध्यान में लेकर ऐसा स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि:—सूर्य और चन्द्रमा को छोड़कर शेष प्रत्येक ग्रह दो-दो राशियों के स्वामी होते हैं। उनकी एक राशि समपद की होकर दूसरी राशि विषम पद की होती है। उसी प्रकार कुण्डली के द्वादश स्थान भी सम और विषम पद के होते हैं। उनके त्रिकोण स्थान अर्थात् प्रथम, पंचम, नवम ये सब स्थान विषम पद के होने चाहिये जब लग्न विषम पद का हो। यदि लग्न समराशि का हो तो पंचम और मवम स्थान भी समपदों की राशियों में होने चाहिये। त्रिकोण के स्वामी कभी भी तृतीय और एकादश स्थानों के स्वामी हो ही नहीं सकते, इसलिये उपरोक्त श्लोक का भावार्थ इस प्रकार लिया जावे कि "त्रिषडायाधीशों के अतिरिक्त त्रिकोणों के स्वामी शुभफल देते हैं" तो प्रतिवादी पक्ष को यह शंका उत्पन्न हो सकती है कि यदि त्रिकोणाधीश षष्ठ स्थान को छोड़कर अन्य त्रिषडाय-स्थानों के अर्थात् तृतीय और एकादश स्थानों के अधिपति हो ही नहीं सकते तो ग्रंथकार ने इस श्लोक में "पतयस्त्रिषडायानां" ऐसा क्यों कहा?' "पतयः षष्ठभावस्य" ऐसा क्यों नहीं कहा? इसका समाधान ऐसा है कि इस श्लोक में "पतयस्त्रिषडायानां यदि पापफलप्रदाः" ऐसा कहने से इस श्लोक के द्वारा दो अर्थों की सिद्धि होती है। एक तो यह कि जिस प्रकार से समस्त त्रिकोणाधिपति शुभ हैं उसी प्रकार समस्त त्रिषडायाधिपति पापफल देनेवाले हैं। श्लोक में "पतयस्त्रिषडायानां" वाक्य न होकर यदि "पतयः षष्ठभावस्य" होता तो तृतीय तथा एकादश स्थानों के पापत्व बोध के लिये ग्रंथकार को एक पृथक् श्लोक की रचना करनी पड़ती।

इस श्लोकमें 'यदि' शब्द त्रिषडायाधीशों के पापत्व बोध के सम्बन्ध में प्रयुक्त हुवा हुआ है इस प्रकार समझा जावे तो अर्थ का अनर्थ होगा, उस परिस्थिति

में इस श्लोक का अर्थ ऐसा होगा कि 'किसी की भी कुण्डली में यदि त्रिषडाया-धीश पापफलद हो तो उस कुंडली के समस्त त्रिकोणाधिपति शुभ फल देनेवाले होंगे' ऐसी परिस्थिति असम्भव होने के कारण से 'यदि' इस शब्द का उपरोक्त सरीखा अर्थ करना असंगत है। इसलिये श्लोक में दिये गये 'यदि' शब्द का आशय ऐसा है कि त्रिकोणाधिपति शुभ हैं परन्तु यदि वह त्रिषडायाधीश (षष्ठेश) हुआ तो ऐसा त्रिकोणाधीश शुभफल देनेवाला न होकर पापफल देनेवाला होगा। त्रिकोणेश का शुभत्व तो उसके षष्ठेश न होने में ही है। इस श्लोक में त्रिकोणेश का शुभत्व और त्रिषडायाधीश का पापत्व इनका अन्य ग्रहों से सम्बन्ध न होने के प्रसंग के बारे में है। यदि ये परस्पर सम्बन्ध करेंगे या केन्द्रेश इत्यादियों से सम्बन्ध करें तो वे कौन से प्रकार के फल देने में समर्थ होंगे इसका वर्णन इस ग्रंथ के योगाध्याय में किया गया है। इस अध्याय में तो द्वादशस्थानों के उनके स्वामियों के शुभत्व, पापत्व का वर्णन वे अकेले हों तो किस प्रकार के होंगे इस प्रसंग के विषय में है।

सुश्लोक शतक ग्रंथ दक्षिण भारत में लिखा गया है और वह लघुपाराशरी पर ही आधारित हैं। इस ग्रंथ के संज्ञाध्याय में श्लोक १४ इस प्रकार है—

केन्द्रकोणाधिपो यो हि स भवेत् त्रिषडायपः ॥१४॥
दोषयुक् स तु विज्ञेयः पाराशरमुनेर्मतम् ।

अर्थात् यदि केन्द्र या त्रिकोण इनका स्वामी तीसरे, छठे तथा ग्यारहवें स्थान का स्वामी हो तो उसे पाराशर मुनि के मत के अनुसार दोष-युक्त (दोष-सहित) समझना चाहिये।

न दिशन्ति शुभं नृणां सौम्याः केन्द्राधिपा यदि ।
क्रूराश्चेदशुभं ह्येते प्रबलाश्चोत्तरोत्तम् ॥ ७ ॥

अर्थ :—सौम्य ग्रह (शुभग्रह—बुध, गुरु, शुक्र, पूर्णचन्द्र) यदि केन्द्र के अधिपति हों तो मनुष्य को शुभफल नहीं देते हैं और क्रूर ग्रह याने अशुभ ग्रह— (क्षीणचन्द्र, पापयुत बुध, रवि, शनि, मंगल) यदि केन्द्र के अधिपति हों तो, वे अशुभ फल नहीं देते हैं। ये अधिपति उत्तरोत्तर क्रम से बली हैं।

पण्डित सीताराम झा—मध्यपाराशरी सहिता लघुपाराशरी के भाषांतर और टीकाकार कहते हैं कि—यदि शुभग्रह (गुरु, शुक्र, पूर्णचन्द्र) केन्द्र (४-७-१०) के अधिपति हों तो प्राणियों को शुभ दशाफल नहीं देते। तथा पापग्रह (क्षीण-चन्द्र, पापयुत बुध, रवि, शनि, मंगल) यदि केन्द्र (४-७-१०) के स्वामी हों तो अपने स्वभावानुसार पापफल नहीं देते। अर्थात् केन्द्राधिपति होने से शुभग्रह में पापत्व, और पापग्रह में शुभत्व आ जाता है। ये उत्तरोत्तर क्रम से बली हैं।

अर्थात्-लग्नेश से पञ्चमेश, पञ्चमेश से भी नवमेश बली है। तथा तृतीयेश से षष्ठेश, षष्ठेश से भी एकादशेश वली है। एवं चतुर्थेश से सप्तमेश और सप्तमेश से भी दशमेश वली है ॥ ७ ॥

पहले त्रिकोण के ही गुण कहे गये हैं, अतः त्रिकोण ही में लग्न को गृहीत हो जाने से यहाँ केन्द्र पद से शेष (४-७-१०) तीन स्थान का ही ग्रहण करना युक्ति संगत है। इसमें युक्ति वचन—

येषां गृहे सुखं राज्यं धनं चाऽपि वराङ्गना।
विस्मरन्ति स्वभावं स्वं ते हि तल्लग्नमानसाः॥
तस्मात् तदाधिपत्येन शुभा नैव शुभं फलम्।
पापाः पापफलं नैव दिशन्तीति परिस्फुटम्॥

जिसके घर में सर्वदा स्थिर सुख वा स्थिर सुन्दरी स्त्री रहती है, वह उसी में दत्तचित्त रहकर अपने स्वभाव को भूल जाता है, यह विषय प्रत्यक्ष संसार में देखने में आता है। अतः सुख (४) स्त्री (७) राज्य (१०) इन केन्द्र स्थानों के स्वामी होकर शुभग्रह भी अपना शुभफल देना और पापग्रह भी अपना पाप-फल देना भूल जाते हैं। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है केन्द्राधिप न शुभफल देता है और न अशुभफल देता है।

पण्डित रामेश्वर भट्ट-लघुपाराशरी के भाषांतर और टीकाकार कहते हैं कि— "जो केन्द्र के स्वामी शुभग्रह हों तो मनुष्यों को शुभफल नहीं देते हैं और पापग्रह हों तो शुभफल देते हैं, और ये त्रिकोण, केन्द्र तथा तीसरे, छठे और एकादश के स्वामी उत्तरोत्तर प्रबल हैं अर्थात् पञ्चमेश से नवमेश, तृतीयेश से षष्ठेश और षष्ठेश से एकादशेश प्रबल है और लग्नेश से चतुर्थेश, चतुर्थेश से सप्तमेश और सप्तमेश से दशमेश प्रबल है।

केन्द्र त्रिकोण के स्वामी कहने से यह स्पष्ट हुआ कि राहु, केतु का ग्रहण नहीं किया गया, उनका फल राशिपरत्वेन और अन्य ग्रहों के सम्बन्धानुसार होता है। पापग्रह-सूर्य, मंगल, शनि,क्षीणचन्द्रमा और सूर्य युक्त बुध है।"

व्याकरणाचार्य-विद्यारत्न पण्डित माधव प्रसाद व्यास संशोधिता और टीका-कार उडुदायप्रदीप (लघुपाराशरी के) कहते हैं कि—'सौम्य ग्रह अर्थात् चं. बु बृ और शुक्र यदि प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थान के स्वामी होवें तो मनुष्यों को शुभफल नहीं देते। परन्तु यदि क्रूर अर्थात् सूर्य, मंगल, शनि यदि केन्द्र के स्वामी हों तो अशुभफल नहीं देते। इन पञ्चम और नवम स्थान के, तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थान के और प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थान के स्वामियों में पूर्व-पूर्व स्थान के स्वामियों से उत्तर-उत्तर के स्वामी ग्रह प्रबल

होते हैं (अर्थात् पञ्चम के स्वामी से सप्तम का स्वामी प्रबल होता है। तृतीय के स्वामी से षष्ठ का स्वामी प्रबल होता है। षष्ठ के स्वामी से एकादश स्थान का स्वामी प्रबल होता है। केन्द्र के स्वामियों में भी इसी प्रकार प्रथम के स्वामी से चतुर्थ का, चतुर्थ के स्वामी से सप्तम का और सप्तम के स्वामी से दशम का स्वामी प्रबल होता है। इसमें जो ग्रह प्रबल होता है उसी के अनुसार शुभ और अशुभफल होता है"।

राज-ज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री मथुरा—लघुपाराशरी के भाषांतरकार और टीकाकार कहते हैं कि—"चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र यदि ये शुभ ग्रह केन्द्र अर्थात् लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम भाव के स्वामी हों तो ये अपना शुभ फल नहीं देते, प्रत्युत अशुभ फल देते हैं और यदि सूर्य, मंगल, शनैश्चर ये क्रूर ग्रह केन्द्र के स्वामी हों तो ये अपना अशुभ फल नहीं देते प्रत्युत शुभ फल देते हैं।

बलाबल के विषय में अभी तक बताये हुए स्थानों में त्रिकोणेश से त्रिषडायेश और त्रिषडायेश से केन्द्रेश प्रबल होता है। इसमें भी त्रिकोण में पंचमेश से नवमेश प्रबल होता है; तृतीयेश से षष्ठेश तथा षष्ठेश से लाभेश प्रबल होता है। इसी प्रकार लग्नेश से चतुर्थेश चतुर्थेश से सप्तमेश और सप्तमेश से दशमेश प्रबल होता है।"

सुश्लोकशतक नामक ग्रंथ के ग्रंथकार लिखते हैं कि "अब केन्द्राधिपतियों को लीजिये। सामान्यतः जो पापी समझे जाते हैं वे केन्द्राधिपति होने से शुभ माने जाते हैं और जो सामान्यतः शुभ होते हैं अर्थात् नैसर्गिक शुभ ग्रह, केन्द्राधिपति होने से पाप हो जाते हैं। लग्न की अपेक्षा चतुर्थेश बली है; चतुर्थेश की अपेक्षा सप्तमेश अधिक बली और सप्तमेश से भी अधिक बली दशमेश होता है। इसी प्रकार दोनों त्रिकोणेशों में—पञ्चमेश तथा नवमेश में–नवमेश अधिक बली होता है। और त्रिषडायेशों में भी उत्तरोत्तर बली होते हैं—तृतीयेशसे अधिक बली षष्ठेश, षष्ठेश से अधिक बली एकादशेश।"

उद्योतकार कहते हैं कि सौम्य ग्रह चन्द्रमा, बुध, शुक्र आदि—यदि लग्न चतुर्थ, सप्तम या दशम के स्वामी हैं तो शुभ नहीं होते अर्थात् शुभग्रह भी केन्द्र के अधिपति होने के कारण शुभफल प्रदान नहीं करते और क्रूर-नैसर्गिक ग्रह सूर्य, मंगल, शनि आदि केन्द्राधिपति हों तो अशुभफल प्रदान नहीं करते, शुभ फल ही प्रदान करते हैं त्रिकोणपतियों की अपेक्षा त्रिषडाय और त्रिषडायेश की अपेक्षा केन्द्रेश प्रबल है।

श्री सज्जन रंजनी टीकाकार—केन्द्र के स्वामी का विवेचन करते हुए कहते हैं कि—"पूर्ण चन्द्रमा, वुध, गुरु तथा शुक्र यदि केन्द्र के स्वामी हों तो शुभफल नहीं देते किन्तु अशुभ फल ही देते हैं। क्रूर ग्रह—क्षीण चन्द्रमा, सूर्य, मंगल तथा शनि—यदि केन्द्र के स्वामी हों तो अशुभ फल नहीं देते। ऐसा कैसे हो सकता है—इसमें शंका नहीं करनी चाहिये। यहाँ यह व्यवस्था है कि—यदि शुक्ल पक्ष में जन्म हो, मेष लग्न हो तो मंगल तथा शनि सत्फल देने वाले होते हैं, चन्द्रमा और शुक्र असत्फल देने वाले होते हैं। वृषभ लग्न हो तो सूर्य, मंगल, शनि-उत्तम फल देते हैं, शुक्र अशुभ फल देने वाला है मिथुन में जन्म के लिये केन्द्राधिपतियों में से कोई शुभफल देने वाला नहीं है। कर्क, तुला और मकर लग्न हो तो मेष लग्न में जो व्यवस्था है वही समझनी चाहिये। सिंह, वृश्चिक, कुंभ लग्न हो तो वृषभ लग्न के समान फल समझना चाहिये। कन्या, धनु, मीन लग्न हो तो मिथुन लग्न वालों के लिये जो केन्द्रेश की स्थिति है (अर्थात् पापी) वही होगी।

इससे क्या निष्कर्ष निकला ? यह कि द्विस्वभाव लग्न में जन्म लेने वालों की अपेक्षा शुक्ल पक्ष में चर लग्न में जन्म लेने वाले अधिक भाग्यशाली और उनसे भी अधिक भाग्यशाली कृष्ण पक्ष में चरलग्न में उत्पन्न जातक—उनसे भी अधिक भाग्यशाली स्थिर जन्म वाले जातक—इस प्रकार केन्द्राधिप पाप होता है। यह लक्षण बताये जाने से जो ग्रह (केन्द्राधिप) शुभ है वह भी पाप फल ही देता है।

इस प्रकार द्विस्वभाव लग्न में जन्म लेने वालों को बुध और गुरु की दशा सदैव अशुभ फल देने वाली होती है। कभी सत्फल देने वाली नहीं होती और पापी (नैसर्गिक) की दशा प्राकृतिक रूप से शुभ फल देने वाली नहीं होती है। इसलिये द्विस्वभाव लग्न वाला सर्वदा दुखी रहे यह बात नहीं है। यह केवल पूर्व पक्ष है। ऐसा क्यों नहीं है ? क्योंकि विशेष कथन यह है कि यदि केन्द्राधिपति केन्द्र में हो (प्रथम का स्वामी प्रथम में, चतुर्थ का स्वामी चतुर्थ में, सप्तम का स्वामी सप्तम में और दशम का स्वामी दशम में) तो यह अविचारित रमणीय है अर्थात् इतना सुन्दर है कि उसमें विचार की भी आवश्यकता नहीं है—विना विचारे तत्काल कह सकते हैं कि बहुत सुन्दर है, शुभ है। यदि पाप ग्रह केन्द्र में स्वगृही हों तो विचारित-रमणीय है; अर्थात् विचार करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि वह स्वगृही पाप ग्रह केन्द्र में सुन्दर है। इस तरह शुभ ग्रह केन्द्र में अपने घर में हो तो बहुत सुन्दर, अन्य केन्द्र में हो तो पहिले की अपेक्षा कम सुन्दर परन्तु सुन्दर ही समझना चाहिये।

यदि शुभ (नैसर्गिक ग्रह) केन्द्राधिप-पणफर या आपोक्लिम (पणफर-२,५, ८,११ स्थान और आपोक्लिम-३,६,९,१२ स्थान हैं) में हो तो शुभफल प्रदान नहीं करता । पाप ग्रह (नैसर्गिक) यदि केन्द्र में स्वगृही हो तो विचार करने में सुन्दर, यदि पणफर या आपोक्लिम में हो तो अशुभ फल नहीं देता ! लग्नेश (पाप ग्रह) लग्न में ही हो तो शुभफल देता है । दशमेश (नैसर्गिक पाप ग्रह हो) दशम में हो तो शुभ फल देता है । चतुर्थेश (पाप ग्रह) चतुर्थ में हो तो चतुर्थ भाव सम्बन्धी पूर्ण शुभफल नहीं देता किंचित् न्यूनता शुभफल में करता है । सप्तमेश (पापी) सप्तम में हो तो बहुत विवाह करता है । प्रबल सप्तमेश (पापी) सप्तम में हो तो भार्या पत्नी और भर्ता (पति) में स्नेह की कमी रहती है । इसी प्रकार त्रिकोणेशों का नैसर्गिक शुभत्व और नैसर्गिक पापत्व का प्रतिषेध करके उनमें शुभत्व का आरोप करते हैं कि त्रिकोणेश शुभ ही फल देते हैं ।

श्रीविनायकशास्त्री—के अनुसार त्रिकोण में लग्न की भी गणना करनी चाहिये । त्रिपडायपति के नैसर्गिक शुभत्व या पापत्व का प्रतिषेध नहीं करते अर्थात् त्रि, षट् आय पति यदि नैसर्गिक शुभ हैं वे शुभ ही रहेंगे । यदि नैसर्गिक पापी हैं तो पाप फलद ही होंगे । त्रिकोणेश दोनों ही शुभ हैं इस कारण पंचमेश की अपेक्षा नवमेश अधिक शुभ है । शुभ ग्रहों में जब उत्तरोत्तर प्रबल कहा जावे तो शुभता में प्रबलता कहनी चाहिये । पाप ग्रह में जब प्रबलता कही जावे तो पापत्व में प्रबलता समझनी चाहिये ।

शुभता में केन्द्रेश की अपेक्षा त्रिपडायेश प्रबल होते हैं और त्रिपडायेश की अपेक्षा त्रिकोणेश विशेष शुभ होते हैं ।

कुछ टीकाकारों के मत के अनुसार 'केन्द्राधिपति उत्तरोत्तर बलवान् होते हैं और केन्द्राधिपति शुभफल नहीं देते, इस प्रकार की जो भी स्थिति ग्रंथ में कही गयी है फिर भी अनेक ग्रंथों का मत है कि दशम स्थान का स्वामी शुभग्रह हो अथवा पापग्रह हो उसका धंधा और उद्योग के सम्बन्ध में स्थान और राशि धर्मानुसार ही अच्छा फल मिलता है । सामान्य शास्त्र के अनुसार केन्द्राधिपति सौम्यग्रह (चन्द्र, बुध, बृहस्पति, शुक्र) शुभफल देते हैं परन्तु इस शास्त्र के अनुसार वे यदि त्रिकोणेश न हों तो शुभफल नहीं देते इसी प्रकार क्रूर ग्रह केन्द्राधिपति सामान्य शास्त्र के अनुसार पापफल देते हैं परन्तु यदि वे त्रिपडायाधीश हों तो इस शास्त्र के अनुसार अशुभफल नहीं देते । तथा फलपरिणाम प्रसंग में वे क्रमशः उत्तरोत्तर बली होते हैं ।

श्री रामयत्न ओझाजी (फलित-विकास) का मत इस प्रकार है—

श्री विनायक शास्त्री (वैताल शास्त्री) आगे कहते हैं कि सब त्रिकोणाधिपति (चाहे नैसर्गिक शुभ हों या नैसर्गिक पापी) शुभ होते हैं। ३-६-११ के स्वामी यदि (नैसर्गिक) पापी हों तो पापफलद होते हैं और शुभफल नहीं देते। केन्द्र के स्वामी शुभफल नहीं देते इसका अर्थ केवल इतना ही है कि यहाँ शुभफल का प्रतिषेध किया है पापफल का आरोप नहीं। किसी के लिए यह कहना कि शुभफल नहीं देता और यह कहना कि पापफल देता है—इन दोनों कथनों में महान् भेद है। शुभग्रह केन्द्र का स्वामी हो तो शुभफल नहीं देता तो इसका पापफल देता है अर्थ करने से तो अर्थ का अनर्थ हो जावेगा। इसी प्रकार नैसर्गिक पापी केन्द्र का स्वामी होने से अशुभफल नहीं देता एतावन्मात्र कहा है इसका अर्थ भी यही है कि पापत्वका प्रतिषेध मात्र किया है। शुभत्व का आरोप नहीं।

मान लीजिये कि भूमध्यरेखा के ऊपर उत्तर है और नीचे दक्षिण है। अब यदि भूमध्य रेखा पर कोई स्थान है तो हम कहते हैं कि यह उत्तर में नहीं है—परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि यह दक्षिण में। इसी प्रकार ऊपर कहे हुए कथन को लागू करना चाहिये।

"अब केन्द्रों को लीजिये"—यदि यह अर्थ करें कि केन्द्र के स्वामी शुभग्रह हों तो अशुभ नहीं होते, तो इस अर्थ में एक महान् दोष उपस्थित होता है। वह यह कि यह कथन शास्त्र वर्णित शुभाशुभ फलदायकता के विरुद्ध पड़ता है। लग्न, चतुर्थ, सप्तम तथा दशम की केन्द्र संज्ञा है। लग्न से शरीर का विचार किया जाता है। चतुर्थ से माता, बन्धु गृह सुख आदि का विचार करते हैं। सप्तम से पुरुष की कुण्डली में पत्नी का और स्त्री की कुण्डली में पति का तथा दशम से भाग्य, पिता, व्यवसाय आदि का। शास्त्रान्तरों में प्रसिद्ध है कि किसी भाव का स्वामी शुभ ग्रह हो, भाव शुभयुत तथा शुभ दृष्ट हो तो, शुभता होती है और भाव का स्वामी पाप ग्रह हो भाव पापयुत, पाप दृष्ट हो, तो अशुभता होती है। इसलिए यदि यह अर्थ करें कि केन्द्र का स्वामी शुभ ग्रह हो तो अशुभ करेगा और यदि पापग्रह हो तो शुभ करेगा, तो यह समीचीन नहीं होगा।

इसलिये वास्तविक अर्थ यह है कि सौम्यग्रह यदि केन्द्राधिप हों तो शुभफलद होंगे। पापग्रह यदि केन्द्राधिप हों तो पाप फलद होंगे। तब यदि—

(१) सौम्य केन्द्राधिपति, तीसरे, छठे या ग्यारहवें के भी मालिक होने के कारण शुभफल नहीं करते;

(२) क्रूर भी केन्द्राधिप, त्रिकोणेश भी होने के कारण शुभफल देता है।

(३) क्रूर केन्द्राधिप यदि त्रिषडायेश भी हो तो अशुभफलद है।

जैसे कि कर्क या सिंह लग्नवाली कुण्डलियों में चतुर्थ दशमाधीश (कर्क लग्न में चतुर्थेश, सिंह लग्न में दशमेश) शुक्र क्रम से लाभ, तृतीयाधीश (कर्क लग्न को लाभेश, सिंह लग्न को तृतीयेश) होने से पापी होता है। कर्क लग्न में मंगल दशम तथा पंचम का स्वामी होने से तथा सिंह लग्न में चतुर्थ तथा नवम का मालिक होने से शुभ होता है। मकर तथा कुम्भ लग्न वाले जातकों के लिये (मकर के लिये) पञ्चम और दशम का स्वामी होने से तथा (कुम्भ के लिए) चतुर्थ तथा नवम का स्वामी होने से शुक्र शुभ है।

मकर लग्न के लिए चतुर्थ और लाभ का स्वामी होने से तथा कुम्भ लग्न के लिए दशम तथा तृतीय का स्वामी होने से मंगल पाप फलद है।

इस सबसे निष्कर्क यह निकला कि यदि सौम्य ग्रह के केन्द्राधिप होने से शुभफलद नहीं होता तो अशुभ भी नहीं होता। केन्द्राधिप होने से पाप अशुभफल नहीं करता तो शुभफल भी नहीं करता। इस प्रकार केन्द्र स्वामियों के नैसर्गिक शुभ होने से उनका शुभत्व और केन्द्र स्वामियों के नैसर्गिक पाप होने से उनका पापत्व स्फुट है। लग्नेश से चतुर्थेश प्रवल, उससे सप्तमेश अधिक प्रबल और दशमेश सर्वाधिक बली होता है।

यह जो वचन है कि कुम्भ लग्न वाले को मंगल पापफल करता है और कर्क लग्न वाले को शुभफल करता है, यह प्रकट करता है कि पापग्रह केन्द्रेश विना त्रिकोणेश हुए शुभ नहीं होता। मूल पाराशरी में कुज शब्द आया है जिसका अर्थ बहुत से लोग कुत्सित जन्मा या पापी करते हैं। अन्य कुज को पाप का उपलक्षण मानते हुए यह तर्क करते हैं कि बात मंगल के लिए कही गई है वह शनि को भी लागू होनी चाहिये।

शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या गुजराथी भाषा के टीकाकार इस प्रकार कहते हैं--ग्रंथकार ने यहाँ सामान्य रीति से सौम्यग्रह केन्द्र के अधिपति हों तो शुभफल नहीं देते पर अशुभफल देते हैं और क्रूर ग्रह अशुभफल नहीं देते पर शुभफल देते हैं—इस प्रकार कहा है। परन्तु विशेष विचार करने पर यह सम्भव नहीं मालूम होता, कारण कि यदि केन्द्र का अधिपति होकर शुभ ग्रह हो और वह स्वगृही या उच्च का हो अथवा शुभ अंशी हो तो वह अशुभफल देगा यह संभव नहीं मालूम होता और उसी प्रकार कोई क्रूर ग्रह केन्द्र में पड़ा हो और नीचका हो या बलवान् न हो तो शुभ फल देगा यह भी सम्भव नहीं है। परन्तु सब ग्रह अपने-अपने प्रभाव के अनुसार ही फल देने वाले होते हैं—यह स्वाभाविक है। यदि शुभग्रह नीचका हो अथवा निर्वल होकर केन्द्रमें हो तो अशुभ फल देने वाला हो सकता है। उसी प्रकार कोई पापग्रह शुभग्रह से युक्त अथवा

दृष्टियुक्त हो तो उसकी शुभफल देने की सम्भावना रहती है बाकी नहीं तो हर एक ग्रह अपनी प्रकृति के अनुसार शुभाशुभ फल दिये वगैर रहना सम्भव नहीं है। फिर पापग्रह भी कैसा केन्द्र में बैठा है यदि नीच का है अथवा निर्बल है तो क्या वह अशुभफल देने वाला नहीं होता ? देने वाला होता ही है। तव फिर उस रीति के अनुसार सामान्यतः केन्द्र में शुभ ग्रह अशुभफल देगा और अशुभ ग्रह शुभफल देगा ऐसा मानना उचिन नहीं लगता, बाकी यह बात कि संबंध, दृष्टि, संयोग वगैरः के द्वारा ग्रहों में उनके अनुसार शुभाशुभ प्रकृति में फेरफार होता ही है फिर ग्रह अपनी प्रकृति के विरुद्ध फल देगा इसमें संशय नहीं है। शेष विचार अन्य टीकाकारों के समान ही है।

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर गुजराती भाषा के टीकाकार के विचार भी अन्य टीकाकारों के अनुसार ही हैं।

स्वर्गीय पंडित रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन, स्वर्गीय **ह० ने० काटवे,** स्वर्गीय **वि० गो० नवाथे** इन सबके विचार एक समान होकर श्लोक के अनुसार ही हैं।

स्पष्टीकरण—

टीकाकारों के उपरोक्त कथनानुसार सबसे यही निष्कर्ष निकलता है कि यदि सौम्य ग्रह केन्द्राधिपति होने से शुभफलद नहीं होते तो वे अशुभ भी नहीं होते। पापग्रह केन्द्राधिप होने से अशुभ फल नहीं करता तो शुभफल भी नहीं देता। इस श्लोक में त्रिकोण के शुभत्व और त्रिषडाय के पापत्व का वर्णन किया गया हैं। अव यह श्लोक पूर्व श्लोक का अनुगामी तथा उसका पूरक ऐसा होता है। पहिले श्लोक में कहा है कि कोई भी ग्रह, फिर यह ग्रन्थान्तर प्रसिद्ध सौम्य हो अथवा क्रूर हो, वह त्रिषडायाधीश हो तो पापी होता है और त्रिकोणेश हो तो (यदि वह षष्ठेश न हो तब) शुभफल देता है। पूर्व श्लोक में ग्रहों के त्रिषडायाधीश अथवा त्रिकोणेश होने का फल कहा गया है, परन्तु सूर्य या चन्द्रमा को छोड़कर शेष सव ग्रहों की दो-दो राशियाँ हैं। तव ग्रहों की अपनी दूसरी राशि का क्या फल होगा, इसका वर्णन इस श्लोक में किया गया है। अस्तु शास्त्रकार ने इस श्लोक द्वारा स्पष्ट किया है कि सौम्य ग्रह यदि केन्द्रेश हों तो उनको शुभ फल देने के लिए त्रिकोणाधीश होना आवश्यक है और उसी तरह क्रूर केन्द्रेश ग्रहों को अशुभ फल देने के लिए त्रिषडायाधीश होना आवश्यक है। वह शुभाशुभ फल उनके केवल केन्द्रेश होने में नहीं। इस श्लोक में "यदि" शब्द इस बात का द्योतक है कि समस्त केन्द्रेश केवल केन्द्र के अधिपति होने से शुभ भी नहीं होते और अशुभ भी नहीं होते। प्रत्युत इस श्लोक में और पूर्व (पहिले) श्लोक में वर्णन की हुई परिस्थिति में ही शुभाशुभ फल देते हैं। इस

बात को अधिक स्पष्ट करना हो तो ग्रंथकार ने उदाहरण के बतौर आगे चलकर एक और श्लोक की रचना की है और वह यह है 'कुजस्य कर्मनेतृत्वप्रयुक्ता शुभकारिता। त्रिकोणस्यापि नेतृत्वे न कर्मेशत्वमात्रतः ॥१२॥" कर्क लग्न की कुण्डली में मंगल केन्द्रेश (दशमेश) है। ग्रंथान्तर प्रसिद्ध यह क्रूर ग्रह है। उसका फल भी क्रूर होना चाहिये। परन्तु इस शास्त्रकार के अनुसार वह त्रिकोणेश होने के कारण शुभ हुआ। उसका यह प्रभुत्व केन्द्रेश होने के कारण से नहीं प्रत्युत त्रिकोणेश होने के कारण से ही है। इस पर से यह लक्षित होता है कि केन्द्र का खुद का अपना कोई भी गुण-दोष ऐसा कुछ भी नहीं है। न तो वह शुभ है और न ही अशुभ।

लग्न यह केन्द्र तथा त्रिकोण इन दोनों का आद्यस्थान है। इसलिए लग्नेश (केन्द्रेश) खुद त्रिकोणश भी होने के कारण शुभ है। परन्तु यदि वह षष्ठेश हुआ तो त्रिपडायाधीश होने के कारण अशुभ होगा। वृश्चिक लग्न की कुण्डली में लग्नेश मंगल षष्ठेश भी है। इसलिए वह शुभ नहीं है। परन्तु उसका पापत्व मिथुन लग्न की कुण्डली के षष्ठेश-एकादशेश मंगल की अपेक्षा बहुत कम है। अथवा सिंह लग्न की कुण्डली के सप्तमेश-षष्ठेश शनि की अपेक्षा कम है। यदि लग्नेश की दूसरी राशि केन्द्र में ही हो तो वह शुभ होगा। मिथुन लग्न की कुण्डली में वुध लग्नेश-चतुर्थेश, कन्या लग्न की कुण्डली में वुध लग्नेश-दशमेश होता है। वह केन्द्रेश तथा त्रिकोणेश होने के कारण से शुभ है। इसी तरह धनु और मीन लग्न की कुण्डली में वृहस्पति भी शुभ है।

चतुर्थ तथा दशम स्थान केन्द्र का द्वितीय तथा चतुर्थ स्थान है और समपद हैं। उसका कोई भी अधिपति चाहे वह सौम्य-ग्रह हो या क्रूर ग्रह हो लग्न के अतिरिक्त चतुर्थ अथवा दशम (केन्द्र) का स्वामी हुआ तो वह न तो शुभ होगा और न अशुभ ही होगा। इसलिए लग्नेश सूर्य अथवा चन्द्रमा हो तो वह शुभ है पर चतुर्थेश और दशमेश हो तो वह न तो शुभ होगा और न ही अशुभ होगा। चन्द्रमा सौम्य ग्रह है और वह चतुर्थेश अथवा दशमेश होने पर भी शुभ नहीं होता परन्तु लग्नेश होने पर वह त्रिकोणाधिपति होकर शुभ होता है। इसी प्रकार सूर्य क्रूर ग्रह है और वह चतुर्थेश-सप्तमेश या दशमेश होने पर पाप फल नहीं देता। कारण, वह त्रिषडायाधीश नहीं होता 'न दिशन्ति शुभं नृणां सौम्या केन्द्राधिपा यदि। क्रूराश्चेदशुभं ह्येते' श्लोक का यह उदाहरण है। सिंह, तुला तथा कुम्भ लग्नों की कुण्डलियों में क्रमशः मंगल, शनि, शुक्र ये चतुर्थेश होते हैं और उनकी दूसरी राशि त्रिकोण में होती है इस कारण से ये केन्द्रेश शुभ होते हैं। सप्तम स्थान केन्द्र का तृतीय स्थान है और विषम-पद

है, इस शास्त्र के अनुसार उसे मारक-स्थान ऐसी संज्ञा है और उसके स्वामी को मारकेश कहते हैं। मारक-प्रसंग में सप्तम स्थान का स्वामी यदि सौम्य ग्रह हो तो वह उत्तम नहीं होता, सप्तम स्थान विषम-पद होने से उसका कोई भी स्वामी त्रिकोणाधिपति नहीं हो सकेगा इसलिये कोई भी सप्तमेश शुभफलद नहीं हो सकता, फिर वह चाहे सौम्य ग्रह हो या क्रूर ग्रह हो।

सप्तमेश सिर्फ षष्ठेश हो सकता है और वह तृतीय अथवा एकादश स्थानों का स्वामी नहीं हो सकता, षष्ठेश होने पर वह पापी होता है, अष्टमेश होने पर वह शुभ नहीं होता प्रत्युत अनिष्टकारी होता है। सप्तम स्थान का स्वामी सिर्फ षष्ठेश और अष्टमेश हो सकता है और वह त्रिकोणाधिपति या त्रिषडायाधीश कभी हो नहीं सकता, शनि को छोड़कर कोई भी ग्रह सप्तम स्थान का स्वामी होकर षष्ठ या अष्टम स्थान का स्वामी नहीं हो सकता इसलिये शनि को छोड़कर सब सप्तमेश न तो शुभ हैं और नहीं अशुभ हैं। पर मारक-प्रसंग में सौम्य ग्रह (सप्तमेश) अशुभ ही है, सारांश यह है कि साधारणतः सब सप्तमेश उत्तम फल देने वाले नहीं होते, योगज-फल तारतम्यसे मिलता है। "प्रबलाश्चोत्तरोत्तरम्" इसका अर्थ ऐसा है कि त्रिकोणान्तर्गत लग्नसे पंचम, पंचम से नवम स्थान अधिक शुभ है। त्रिषडायान्तर्गत तृतीय स्थानसे षष्ठ, षष्ठ से एकादश अधिक शुभ है इसी प्रकार केन्द्रान्तर्गत लग्न से चतुर्थ, चतुर्थ से सप्तम और सप्तमसे दशम अधिक बली है।

उदाहरणार्थ :—वृश्चिक लग्न की कुण्डली में चतुर्थेश शनि तृतीयेश होता है और वह पापी है। पर इसकी अपेक्षा कर्क लग्न की कुण्डली में चतुर्थेश शुक्र-एकादशेश होने से शनि से अधिक पापी है अथवा सिंह लग्न की कुण्डली में षष्ठेश-सप्तमेश शनि यह दशमेश-तृतीयेश शुक्र से कहीं अधिक पापी है। मिथुन लग्न की कुण्डली में षष्ठेश-एकादशेश मंगल पूर्णतः पापी है, उसमें कोई भी शुभत्व नहीं है। वृश्चिक लग्न की कुण्डली में अष्टमेश-एकादशेश बुध पूर्णतः पापी है (यदि वह अष्टमस्थ न हो तो) अष्टमस्थ-अष्टमेश को, अष्टमेश होने के कारण से उसके दोषों का निवारण होता है इसके लिये इस ग्रंथ में अलग से श्लोक है।

केन्द्र में सबसे बली स्थान दशम स्थान है और त्रिकोण में नवम स्थान है। वृषभ लग्न की कुण्डली में दशमेश शनि-नवमेश भी है। यहां दशमेश प्रबल केन्द्रेश तथा प्रबल त्रिकोणेश होने के कारण से उस शनि को प्रबल-प्रभुत्व प्राप्त हुआ है। इस कारण वह अकेला ही सर्वोत्कृष्ट शुभ ग्रह हुआ है। चतुर्थेश-पंचमेश ग्रह की अपेक्षा दशमेश-पंचमेश अधिक बली और शुभ है। दशमेश-पंचमेश के बनिस्वत दशमेश-नवमेश अधिक शुभ है। सिंह लग्न की कुण्डली में

शुक्र और शनि दोनों केन्द्रेश-त्रिषडायाधीश हैं इनमें शुक्र दशमेश होकर तृतीयेश है तथा शनि सप्तमेश होकर षष्ठेश है, तृतीय स्थान पापत्व में तृतीय श्रेणी का तथा षष्ठ स्थान द्वितीय श्रेणी का पाप स्थान है अर्थात् तृतीय की अपेक्षा षष्ठ स्थान अधिक पापी है। उधर केन्द्र-दशम स्थान से सप्तम स्थान न्यून बली है। अस्तु, उपरोक्त शुक्र-शनि में बलाबल की दृष्टि से शुक्र से शनि अधिक पापी है। इस प्रकार वृश्चिक लग्न की कुंडली में मंगल तथा शनि ये दोनों पापत्व में समान हैं। कारण, मंगल लग्नेश (केन्द्रेश) होकर स्वयं त्रिकोणेश भी है इस कारण से उसका पापत्व शनि से कम है क्योंकि लग्न-स्थान त्रिकोणान्तर्गत भी है। अन्य लग्नों की कुंडलियों में केन्द्राधिपति के पापत्व की तुलना नहीं करते बनेगी। किसी भी कुंडली में एक से अधिक कोई भी त्रिकोणेश त्रिषडायाधीश नहीं हो सकता इस कारण वहाँपर पापत्व की श्रेणी की आपस में तुलना करना सम्भव नहीं है। किसी भी कुंडली में पापी केन्द्रेश तथा पापी त्रिकोणेश इन दोनों में से एक दूसरे से अधिक पापी कौन है इस विवाद का निर्णय मात्र स्पष्ट है। पापी केन्द्रेश की अपेक्षा पापी त्रिकोणेश सर्वदा पापत्व में कम पापी है। जैसे कर्क लग्न की कुंडली में शुक्र अथवा शनि इनकी तुलनात्मक दृष्टि से त्रिकोणेश बृहस्पति कम पापी है। मकर लग्न की कुण्डली में बुध यह मंगल की अपेक्षा अधिक पापी है।

विशेष खुलासा—कुंडलियों में चारों केन्द्र और नवम-पंचम त्रिकोण स्थान अत्यन्त महत्त्व के होने से केन्द्र से पंचम व नवम स्थान भी महत्त्व के हैं और उन्हें अलग-अलग संज्ञा है। ज्योतिष-शास्त्र में उन्हें त्रिकोण कहते हैं। चार केन्द्र होने के कारण से कुंडली में चार त्रिकोण बनते हैं।

पहिला त्रिकोण—प्रथम स्थान, पंचम स्थान व नवम स्थान है। इसे "पुरुष त्रिकोण" कहते हैं यह अति महत्त्व का त्रिकोण है।

दूसरा त्रिकोण—सप्तम स्थान-एकादश स्थान व तृतीय स्थान-है इसे "प्रकृति त्रिकोण" कहते हैं।

तीसरा त्रिकोण—दशम स्थान-द्वितीय स्थान व षष्ठ स्थान-है इसे "ऐश्वर्य त्रिकोण" कहते हैं।

चतुर्थ त्रिकोण—चतुर्थ स्थान-अष्टम स्थान व द्वादश स्थान-है इसे "वैराग्य-त्रिकोण" कहते हैं।

इन चारों त्रिकोणों का उपयोग कुंडलियों का दर्जा निश्चित करने के लिये हो सकता है। मेषवृश्चिकयोर्भौमः शुक्रो वृषतुलाधिपः। बुधः कन्यामिथुनयोः

कर्काधीशस्तु चन्द्रमाः ॥ धनुर्मीनाधिपो जीवः शनिर्मकरकुम्भयोः । सिंहस्याधिपतिः सूर्यो राश्यधीशा इमे स्मृता ॥"

राशि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
स्वामी	मं	शु	बु	चं	सू	बु	शु	मं	गु	श	श	गु

केन्द्र त्रिकोण के स्वामी कहने से यह स्पष्ट हुआ कि राहु केतु का ग्रहण नहीं किया गया, कारण उनका फल राशिपरत्वेन और अन्य ग्रहों के सम्बन्धानुसार होता है। पापग्रह :—सूर्य, मंगल, शनि, क्षीणचन्द्र और पापयुक्त बुध (सूर्य बुध)।

लग्नाद्व्ययद्वितीयेशौ परेषां साहचर्यतः।
स्थानान्तरानुगुण्येन भवतः फलदायकौ ॥८॥

अर्थ :—लग्न से दूसरे और बारहवें स्थान के स्वामी दूसरे ग्रहों के साहचर्य से शुभाशुभ फलदायक होते हैं। उसी प्रकार वे स्वस्थानों के सिवाय अन्य स्थानों में हों तो उस स्थान के शुभाशुभ अनुसार फलदायक होते हैं।

जब दूसरे और बारहवें स्थान के स्वामी शुभ ग्रहों से योग करते हैं तब वे शुभ फलदायक होते हैं और अशुभ ग्रहों से योग करते हैं तब वे अशुभ फल उत्पन्न करते हैं।

उसी प्रकार मित्र क्षेत्र में हों तो मित्र द्वारा शुभ फल देते हैं और शत्रु गृह में हों तो शत्रु द्वारा अशुभ फल प्राप्त कराते हैं। इसी तरह दीप्तादि अवस्था के अनुसार वे फलदायक होते हैं। दीप्तादि ग्रहों के फल अन्य ग्रंथों में कहे गये हैं फिर भी वे परिशिष्ट के रूप में इस पुस्तक के अन्त में दिये हैं।

स्वर्गीय वि० गो० नवाथे—भाषान्तर और टीकाकार इस प्रकार कहते हैं—लग्न से दूसरे और बारहवें स्थानों के स्वामी अन्य ग्रहों के साहचर्य से शुभाशुभ फलदायक होते हैं। उसी प्रकार वे स्वस्थानों के सिवाय अन्य स्थानों में हों तो उस स्थान के अनुरूप शुभाशुभ फलदायक होते हैं।

स्वर्गीय पंडित रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन भी उपरोक्त अभिप्राय के अनुसार ही कहते हैं।

स्वर्गीय श्री ह० ने० काटवे के विचार और अभिप्राय इस प्रकार हैं—लग्न से धन और व्यय स्थान के स्वामी (फिर वे शुभ हों या अशुभ हों)

दूसरे ग्रहों से युक्त होकर जिस स्थान में बैठे हों तो उस स्थानानुरूप और उस स्थान में के राशि के गुणानुगुणों के अनुसार फलदायक होते हैं—इस प्रकार का अर्थ सब टीकाकार दे रहे हैं। पर इस श्लोक में दिये हुए शब्द 'परेषां' का अर्थ समाधानकारक नहीं लग पा रहा है। परेषां इसमें मूल शब्द 'पर' ऐसा है। तब 'पर' इसकी षष्ठी विभक्ति का रूप परेषां होता है। इस जगह व्यंजन 'ष' है इसका अर्थ एक दूसरे से इस प्रकार होता है। और अन्य टीकाकारोंके मतानुसार 'दूसरे ग्रह से युक्त' ऐसा मान्य किया तो श्लोक में दिये हुए शब्द 'परेषां' के बदले 'परेशानाम्' ऐसा शब्द होना चाहिये था 'परेशानाम्' या ने पर + ईश होता है। 'पर' याने दूसरा अर्थात दूसरा + ईश याने स्वामी परन्तु श्लोक में व्यंजन 'ष' है और न कि 'श' है, इसपर से इस श्लोक का अर्थ जिस प्रकार टीकाकार देते हैं वैसा नहीं होता वह तो नीचे लिखे अनुसार लेना पड़ता है। अर्थात 'धनेश और व्ययेश एक दूसरे के साथ युति करके कुंडली में कहीं भी शुभ स्थानों में बैठे हों तो उस स्थानानुरूप और उस स्थान में जो राशि है उस राशि के गुणानुगुणानुसार फलदायक होते हैं।

इसलिये 'साहचर्यतः' इसका अर्थ 'युति' ही लेना पड़ता है, वैसे ही इस ग्रंथकारने इस सम्पूर्ण ग्रंथ में सिर्फ केन्द्र कोणाधिपति इन दोनों का ही विचार किया है—तीन ग्रहों की युति का विचार कहा ही नहीं है। नहीं तो धनेश और व्ययेश इन दो में से किसी एक को छोड़ने का प्रसंग आता है, यदि तीन ग्रहों का विचार करने लगें तो अनवस्था प्रसंग प्राप्त होता है। इसलिये इन सबका विचार करके इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार लेना चाहिये 'लग्न से धन और व्यय स्थान इन दोनों के भी स्वामी (फिर वे शुभ हों अथवा अशुभ) इनकी एक दूसरे के साथ युति होकर, वे जिस स्थान में बैठे हों उस स्थानानुरूप और स्थानों में जो राशि हो उसके गुणानुगुणों के अनुसार फलदायक होते हैं। इस ग्रंथकार की विशेष बुद्धिमत्ता कहीं चमकी होगी तो वह इसी श्लोक में चमकती हुई दिखायी पड़ती है। कारण कि 'धन स्थान तो बलवत्तर मारक स्थान है और व्यय स्थान ये मारक नहीं होने से ग्रंथकार ने इसे साधारण अशुभ स्थान माना है। इन दोनों अशुभ स्थानों के अधिपति एकत्र होकर केन्द्र त्रिकोण में यदि अन्य शुभ स्थानों में बैठे हों तो शुभ फल देते हैं' यही ग्रंथकार को कहना है परन्तु यह कहना याने इतनी सामान्य बात नहीं है कारण यह बात शास्त्र के विरुद्ध है। कारण दो अशभ स्थानों के स्वामी एकत्र होकर कहीं भी बैठें तो वे शुभ फल कैसे देंगे ? ऐसी

सहज ही में शङ्का निर्माण होती है। इसलिये यह योग स्वतंत्र और विशेष करके दिया गया है। नहीं तो यहाँ पर दूसरा अर्थ "लग्न से दूसरे और बारहवें स्थान के अधिपति अन्य ग्रहों से युक्त होकर किसी भी स्थान में बैठें तो उस स्थानानुरूप और स्थान के राशि के गुणानुगुणों के अनुसार फ़लदायक होते हैं" ऐसा अर्थ किया तो भी चल नहीं सकता, ऐसा अर्थ ग्रन्थकार को कहना है यह मालूम नहीं पड़ता, इसलिए मैंने (टीकाकार ने) जो अर्थ किया है वही सही है। धनेश और व्ययेश ये दूसरे ग्रह से युक्त होकर जिस स्थान में बैठें उस स्थानानुरूप और उस स्थान की राशि के गुणानुगुणों के अनुसार फलदायक होंगे पर इन तीन ग्रहों के फल बराबर नहीं मिलते इस सम्वन्ध में उदाहरण देता हूँ––

वीर वामनराव जोशी की कुंडली में मेष लग्न होकर लग्न में ही गुरु (व्ययेश) शुक्र (धनेश), शनि (दशमेश) इन तीनों का योग हुआ है पर इस योग के सांसारिक दृष्टि से अच्छे फल नहीं प्राप्त हुए, कारण इन्हें पुत्र संतति नहीं है, पैसा कमाना ही नहीं (ऐसा कहना पड़ता है)। पर इस योग के कारण इनको लोगों में (समाज) अत्यन्त मान-सम्मान मिला। दूसरा उदाहरण स्वर्गीय भाटे वुवाका है। इनका लग्न कुंभ था, व्ययेश और धनेश गुरु और शनि होते हैं और यह युति तृतीय स्थान में थी। परन्तु इसमें षष्ठेश चन्द्रमा भी था इस योग के कारण से यह युति निष्फल हुई थी, इनका महाराष्ट्र में कीर्ति और नाम वहुत अधिक हुआ, इन्हें पैसा मिला और वह उन्होंने खर्च भी कर डाला। पुत्र संतति इन्हें कोई नहीं हुई। मृत्यु के समय इन्हें ४०,००० चालीस हजार रुपये का कर्ज देना था ऐसा सुनने में आया। आगे तीन-चार उदाहरण और भी देता हूं, मेरे मत में व्ययेश-धनेश इनकी युति होकर सब प्रकार से सुखी लोगों की कुंडलियाँ देता हूं।

(१) एक 'क्ष' व्यक्ति, लग्न वृश्चिक-धनेश गुरु और व्ययेश शुक्र इन दोनों की युक्ति धन स्थान में थी, इस व्यक्ति की वाल अवस्था और तारुण्य अवस्था दारिद्र्यावस्था में व्यतीत हुई और उमर के ३२ वर्ष से मृत्यु के दिन तक इन्होंने १ करोड़ रुपये की स्टेट बनाई।

(२) एक 'क्ष' व्यक्ति-लग्न धनु-धनेश शनि और व्ययेश मंगल सप्तम स्थान में थे, इसके जीवन भर तक एक ही पत्नी थी, संतति भी खूब थी, उमर के २६ वर्ष तक दारिद्र्यावस्था थी, बाद में स्वतन्त्र व्यवसाय शुरू किया, उस व्यवसाय में लाखों रुपये कमाये और सब प्रकार से सुखी रहा।

(३) नामदार डॉक्टर बाबा साहेब जयकर रिटायर्ड प्रिव्ही कौन्सिल जज्ज—इनका धनु लग्न था इनके धन स्थान में शनि मंगल की याने धनेश और व्ययेश की युति थी। इनको इसका क्या फल मिला यह वाचकों ने देख लेना चाहिये।

(४) नागपूर के सुप्रसिद्ध एक अँडव्होकेट का लग्न वृश्चिक है। गुरु शुक्र युति पंचम स्थान में है। इनकी संतति सुशिक्षित है। खुद विद्वान् हैं बुद्धिमान् है। इन्हें पैसा भी खूब मिला। ये अत्यंत लोक प्रिय हैं

(इस श्लोक में "स्थानान्तरानुगुण्येन" ऐसा शब्द है, इसका खुलासा निम्न संस्कृत विवरण में दिया है—वह देखिये)।

स्थानान्तरानुगुण्येन = अत्र स्थानान्तरानुगुण्यं षड्विधम्। तेषां नामानि—गुणा-नुगुण-सहायक-पोषकायुक्ति-प्रकारकाः। विचाराश्रयीभूतग्रहो यस्मिन् भावे वर्तते तस्य नाम गुणः १. तत्सम्बन्धी ग्रहो यस्मिन् भावे वर्तते स अनुगुणः २. विचाराश्रयीभूतः ग्रहो यद्भावाधिपतिः स सहायकः ३. तत्सम्बन्धिग्रहो यद्राश्यधिपः स पोषकः ४. विचाराश्रयीभूतग्रह राशीशो यस्मिन् राशौ भवेत् स युक्तिकः ५. तत्सम्बन्धितग्रहाधीशो यद्राशौ तिष्ठेत् स प्रकारकः ६, एवमत्र लग्नाद् व्ययद्वितीयेशौ = जन्म लग्नाद् द्वादशद्वितीयेशौ, उक्तरीत्या फलदायकौ भवतः।

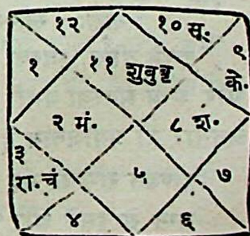
छैः प्रकार—१ गुण, २ अनुगुण, ३ सहायक, ४ पोषक, ५. युक्ति, ६ प्रकारक।

१ ला : विचारार्थ आश्रयीभूत ग्रह जिस भाव में होता है उसे गुण,
२ रा : उससे सम्बन्ध करने वाला ग्रह जिस भाव में होता है उसे अनुगुण,
३ रा : विचारार्थ आश्रयीभूत ग्रह जिस भावका अधिपति होता है उसे सहायक,
४ था : उसका सम्बन्धिक ग्रह, जिस राशि का अधिपति होता है उसे पोषक,
५ वां : विचाराश्रयी ग्रह की राशिका ईश जिस राशि में हों, उसे युक्ति कहते हैं।
६ वां : उसके सम्बन्धिक ग्रह का अधीश जिस राशि में हो—उसे प्रकारक कहते हैं वाचकों ने इसका अर्थ लगा लेना चाहिये।

स्वर्गीय श्री० ह० ने काटवे ने जो उपरोक्त ६ छैः प्रकार कहे हैं उस विषय में ज्योतिषाचार्यतीर्थ, पंडित श्री सीताराम झा के विचार इस प्रकार हैं—

"कितने टीकाकार—अनुगुण से-चार प्रकार का सम्बन्ध ग्रहण करते हैं—यथा सहवास सम्बन्ध १. परस्पर राशि स्थिति सम्बन्ध २. परस्पर दृष्टि सम्बन्ध ३. साधर्म्य सम्बन्ध ४। तथा कोई ६. प्रकार के अनुगुण कल्पना करते हैं। यथा—विचारणीय ग्रह जिस भाव में हो १. उसके सम्बन्धी जिस भाव में हों २. विचारणीय ग्रह जिस भावका स्वामी हो ३. इसका सम्बन्धी ग्रह जिस राशि में हो ४. विचारणीय ग्रहाश्रित राशि का स्वामी जिस भाव में हो, ५. तत्सम्बन्धी ग्रह जिस राशि में हो ६। परञ्च इस प्रकार परम्परा सम्बन्ध कल्पना करना असङ्गत है। क्योंकि स्वभाव में हेरफेर तीन ही प्रकार से हो सकता है—(१) जिस प्रकार स्वभाव वाले का सहवास हो, (२) जिस प्रकार घर (खानदान) वाला हो (३) जिस प्रकार के स्थान में हो। और जिससे दर्शन भी नहीं उसका स्वभाव किस प्रकार आ सकता है। इसलिये "साहचर्य से साथ रहने वाला ग्रह और स्थानान्तर से (द्वितीयेश और व्ययेश का) दूसरा स्थान ही ग्रहण करना आचार्य का अभिप्राय है। इन्होंने आगे चलकर इस श्लोक का अभिप्राय इस प्रकार दिया है।" लग्न से द्वादशेश तथा द्वितीयेश दूसरे ग्रहों के साहचर्य से तथा अपने स्थानान्तर (अन्य स्थानों) के अनुसार ही शुभ अथवा अशुभ दशा फल को देते हैं। इससे सिद्ध है कि व्ययेश और धनेश स्वभावानुसार शुभाशुभ फल नहीं देते। जिस प्रकार के शुभ या अशुभ स्थान में रहते हैं, तथा जिस प्रकार के शुभ या अशुभ भावेश के साथ रहते हैं, अथवा जिस दूसरे स्थान के स्वामी हों वह राशि जैसा शुभ या अशुभ भाव में हो तदनुरूप ही शुभ या अशुभ फल देते हैं। भावार्थ यह है कि द्वितीयेश के साथ जो ग्रह रहता है वह तदनुसार ही फल देता है। यदि कोई ग्रह साथ में न हो तो जिस स्थान का स्वामी हो तदनुसार ही फल समझना। तथा दूसरे स्थान का स्वामी नहीं हो, यथा रवि अथवा चन्द्रमा, तो जिस भाव में बैठा हो तदनुसार ही फल देता है। यदि किसी से योग नहीं हो, तथा अन्य स्थान का स्वामी भी नहीं हो और अपने स्थान ही में हो तो इस हालत में अपने स्वभावानुसार ही शुभ या अशुभ फल को देता है।

उदाहरणार्थ जन्मलग्न कुण्डली—



इस कुण्डली में द्वादशेश शनि है। उसके साथ (सहचर) कोई ग्रह नहीं है, अतः साहचर्यानुरूप फल का वाध हो गया। इस हालत में शनि का जो स्थानान्तर (द्वितीय स्थान) कुम्भ है वह लग्न में पड़ता है अतः "स एव शुभसन्धाता लग्ना-

धीशोऽपि चेत् स्वयम्" आगे के इस वचन से लग्न शुभ स्थान है, तथा लग्न शुभ ग्रहों से युक्त है, अतः द्वादशेश (शनि) की दशा अन्तर्दशा में सत्कार्य में व्यय होना निश्चित हुआ। एवं द्वितीयेश (वृहस्पति) के सहचर (साथ में) बुध और शुक्र दो हैं, इन दोनों में शुक्र बली है; शुक्र नवमेश (त्रिकोणपति) तथा चतुर्मेश (केन्द्रपति) हैं—तो भी बली त्रिकोणपति होने के कारण शुभ ही हुआ अतः वृहस्पति अपनी दशा में सन्मार्ग से धन की वृद्धि कराएगा ऐसा निश्चित हुला। इसमें युक्ति वचन—

धनेशस्य व्ययेशस्य यादृक् सहचरो जनः।
तादृशं च धनं तस्य तादृशश्च व्ययो भवेत्॥
तस्माद् व्ययद्वितीयेशौ परेषां साहचर्यतः।
शुभं वाप्यशुभं नृणां दिशतः स्वदशाफलम्॥

जो धन का मालिक (धन रखने वाला) है उसके साथ यदि पापी (दुष्ट, चोर आदि) रहता है तो उसके धन को समय पाकर नष्ट कर देता है। यदि उसके साथ कोई साधु (शुभचिन्तक) रहता है वह समय पर उसके धन को बढ़ाने और बचाने में अवश्य सहायक होता है। इसी प्रकार धनेश का भी साहचर्यानुरूप फल देना युक्ति सङ्गत है। तथा जो लोग व्ययशील हैं उनके साथ जैसे साधु या पापी लोग रहते हैं, अथवा जैसे खानदान के, अथवा जैसे स्थान में रहते हैं उसी प्रकार व्यय करते हैं। इसी प्रकार व्ययभावेश के साथ जिस प्रकार का शुभ या अशुभ ग्रह हो, अथवा यादृश स्थानान्तर का स्वामी हो या यादृश स्थान में हो तादृश शुभ या अशुभ मार्ग से व्यय कराता है।

तथा दीप्तादि अवस्था के भेद से भी फल में विशेषता होती है, यथा—

दीप्तः स्वस्थः प्रमुदितः शान्तो दीनोऽतिदुःखितः।
विकलश्च खलः कोपी, नवधा खेचरो भवेत्॥
उच्चस्थः खेचरो दीप्तः स्वस्थः स्वर्क्षेऽधिमित्रभे।
मुदितो, मित्रभे शान्तः समभे दीन उच्यते॥
शत्रुभे दुःखितः प्रोक्तो विकलः पापसंयुते।
खलः खलगृहे ज्ञेयः कोपी स्यादर्कसंयुतः॥ स्पष्टार्थं॥

इनमें दीप्त, स्वस्थ, प्रमुदित और शान्त अवस्था वाले ग्रहों की दशा शुभ और अन्य अवस्था वालों की दशा अशुभ होती है। परञ्च यह अन्य ग्रन्थों के अनुसार ही प्रयोजनीय है। इस ग्रन्थ के अनुसार नहीं।

पण्डित रामेश्वर भट्ट टीकाकार का कहना है—

लग्न से दूसरे और बारहवें स्थान के स्वामी दूसरे कारक ग्रहों के साथ

बैठने से और अपने मित्रशत्रु के स्थान में बैठने से शुभाशुभ फलदायक होते हैं। इनके विचार में भी दीप्तादि अवस्था के भेद से फलोंमें विशेषता होती है, जैसा कि ऊपर कहा गया है।

विद्यारत्न पण्डित माधव प्रसाद व्यास इस प्रकार अर्थ करते हैं—

जन्म लग्न से द्वितीय द्वादश स्थान के स्वामी दूसरे ग्रहों के सम्बन्ध में उनके स्थान के अनुसार शुभ और अशुभ फल देते हैं। अर्थात् द्वितीयेश और द्वादशेश शुभ और अशुभ ग्रह के सम्बन्ध से और मित्रस्थान के होने से मित्र द्वारा और शत्रु स्थान के होने से शत्रु द्वारा शुभ और अशुभ फल देते हैं। इसी भांति दीप्त आदि पूर्वोक्त ग्रहों का शुभाशुभ फल होता है।

राज-ज्योतिषी श्री चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री मथुरा—इस प्रकार अर्थ करते हैं—

जन्म लग्न से दूसरे तथा बारहवें भवन के स्वामी अन्य ग्रहों के साथ योग करते हुए जैसे स्थान में अथवा मित्र, शत्रु क्षेत्र में बैठते हैं वैसा ही फल करते हैं अर्थात् शुभ ग्रह के साथ होने से शुभ एवं अशुभ ग्रह के साथ होने से अशुभ, मित्र क्षेत्र में होने से मित्र के द्वारा तथा शत्रु क्षेत्र में होने से शत्रु क्षेत्र द्वारा ये दोनों ग्रह अलग-अलग शुभ, अशुभ फल के देने वाले होते हैं।

श्री शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या—सनातन धर्म मार्तंड—टीकाकार कहते हैं—

"लग्न से द्वितीय तथा बारहवें स्थान के स्वामी दूसरे ग्रहों के साहचर्य से शुभ अथवा अशुभ फल को देने वाले होते हैं और उसी प्रकार यदि वे अपने स्थान में न होकर अन्य स्थान में हों तो उस स्थान के अनुसार शुभाशुभ फल देने वाले होते हैं" इस पर से इस तरह मानने में आता है कि द्वितीय और द्वादश स्थान के अधिपति जिस प्रकार के शुभ अथवा पापग्रह से सम्बन्धित हों उस प्रकार शुभ अथवा अशुभ फल देने वाले होते हैं। याने यदि शुभ ग्रह के साथ हों तो शुभ फल और अशुभ ग्रह के साथ हों तो अशुभ फल देने वाले होते हैं। और उसी प्रकार स्थान के गुणों के अनुसार भी वे शुभाशुभ फल देने वाले होते हैं। अर्थात् वे मित्र के स्थान में हों तो मित्र द्वारा वे शुभ फल देते हैं। यदि शत्रु के स्थान में हों तो शत्रु द्वारा अशुभ फल देने वाले होते हैं और उसी प्रकार मित्र या शत्रु स्थान में हों तो उनके शुभाशुभता द्वारा भी अधिकांश से शुभाशुभ फल को देने वाले होते हैं।

इसी प्रमाणे ये ग्रह दीप्तादि अवस्थाओं के अनुसार भी शुभाशुभ फल को देने वाले होते हैं। दीप्तादि ग्रहों के फल ग्रन्थांतर में दिये गए हैं।

श्री उत्तमराम मयाराम ठाकुर बी० ए० एल० एल० बी०-हस्त विज्ञान के कर्ता और लघु पाराशरी के भाषांतरकार और टीकाकार कहते हैं कि—

"जन्म लग्न से दूसरे और बारहवें स्थान के स्वामी जब अन्य स्थानों के स्वामी के साथ अथवा अन्य स्थानों के साथ सम्बन्ध करते हों तो वे स्थानके शुभकारित्व प्रमाणें फल देते हैं"।

"शुभाशुभकारित्व" इस पद का अर्थ छठे और सातवें श्लोक में दर्शाये अनुसार समझना चाहिये। इस श्लोक के अर्थ की उत्पत्ति नीचे प्रमाणे है : द्वितीय और द्वादश स्थान के स्वामी श्लोक २४ और २५ प्रमाणें मारकधर्मी हैं और उस कारण से उनके फल अशुभ होते हैं परन्तु इस श्लोक के अनुसार द्वितीय और द्वादश स्थान के स्वामी दूसरे किसी ग्रह के साथ सम्बन्ध करते हों अथवा उनको किसी अन्य स्थान का आधिपत्य मिलता हो तो फल में फेरफार होता है। वह इस प्रकार कि दूसरा सम्बन्ध करने वाला कारक ग्रह खुद के स्थान का जो शुभाशुभ फल देता है वही फल उससे सम्बन्ध करने वाले द्वितीय और द्वादश स्थान के अधिपति द्वारा मिलते हैं। यदि द्वितीय और दादश स्थान के अधिपति अन्य ग्रह के साथ सम्बन्ध न करते हों परन्तु दूसरे राशि के अधिपति हों तो दूसरे राशि के अधिपति के तरीके जो शुभाशुभ फल मिलता हो वही फल द्वितीय और द्वादश के स्वामी का समझना चाहिये। यदि द्वितीय और द्वादश स्थान के स्वामी दूसरे राशि के स्वामी न बनते हों अथवा अन्य कोई ग्रह के साथ सम्बन्ध न ही करते हों तो वे अशुभ फल देते हैं, यह स्थिति सूर्य और चन्द्रमा द्वितीय और द्वादश स्थान के स्वामी हों तब बन सकती है। कारण इन दोनों ग्रहों को एक ही राशि का स्वामित्व प्राप्त है। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि पाराशरी प्रमाणे सूर्य और चन्द्रमा मारक नहीं बनते, पर दोष रहित बनते हैं इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं है। इसपर से यह सारांश है कि द्वितीय और द्वादश के अधिपति तरीके सूर्य व चन्द्रमा प्राणनाश नहीं करते पर कष्ट आदि देते हैं (श्लोक २३ देखिये), तो फिर वे क्या अशुभ फल देते हैं? इस शंका का समाधान यह है कि वे मारक नहीं बनते इसलिये प्राणनाश नहीं करते पर द्रव्यनाश, क्लेश, चिन्ता, कष्ट इत्यादि पापफल देते हैं।

पाराशरी नियम के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा इनको अष्टम स्थान के अधिपति तरीके श्लोक ११ में बताये प्रमाणें अष्टम स्थान के अधिपति होने का दोष नहीं बताया यह लिखा हुआ है, इसी प्रकार सूर्य और चन्द्रमा द्वितीय और द्वादश स्थान के स्वामी बनते हों तो वे दोष रहित होते हैं—ऐसा स्पष्ट उल्लेख नहीं है।

ऐसा होंने के कारण सूर्य या चन्द्रमा द्वितीय एवं द्वादश स्थान के स्वामी बनने से मारक अर्थात् प्राणनाशक नहीं बनते हैं पर द्रव्यनाश, क्लेश, आदि पापफल देते हैं।

इस ग्रन्थ में कोई भी भाव का स्वामी किस भाव में बैठा है इस पर विलकुल निर्णय करने में नहीं आया है यह बात खास ध्यान में रखनी चाहिए। इसलिए द्वितीय या द्वादश स्थान का स्वामी शुभ अथवा अशुभ स्थान में बैठा हो तो उस पर से ऐसा निर्णय करना नहीं चाहिये, खास यह ध्यान में रखना चाहिये कि यहां तो द्वितीय और द्वादश भाव के स्वामी दूसरे ग्रहों के साथ सम्बन्ध करते हों अथवा दूसरे ग्रहों के साथ बैठे हों तो अन्य स्थान के अधिपति के अनुसार शुभाशुभ फल समझना चाहिये। इस 'शुभाशुभकारित्व' पद का अर्थ समझना है, 'अन्य स्थान से सम्बन्ध करता हो'—यह जो अर्थ में बताया है उसका अर्थ यह है कि दूसरे अन्य स्थान का स्वामी बनता हो—

द्वितीय और द्वादश भाव के स्वामी यदि तीसरे, छठे या ग्यारहवें स्थान के स्वामी हों तो उनका पापफल ठहराया गया है। त्रिकोणपति याने पंचम और नवम स्थान के स्वामी यदि द्वितीय या द्वादश स्थान के स्वामी हों तो वे शुभफल देते हैं, परन्तु इतना खास ध्यान में रखना चाहिये कि त्रिकोण के स्वामी यदि पाप ग्रह के साथ सम्बन्ध करते हों तो ८वें श्लोक में दिये हुए नियम के प्रमाण से वे पापग्रह बनते हैं। तात्पर्य यह है कि पंचम-नवम त्रिकोण के स्वामी द्वितीय या द्वादश स्थान के स्वामी हों और यदि वे पापग्रह के साथ सम्बन्ध न करते हों, तब शुभ होते हैं और यदि पापग्रह के साथ सम्बन्ध करते हों तो पापग्रह बनते हैं।

केन्द्राधिपति द्वितीय या द्वादश भाव के स्वामी जब बनते हैं तब वे सिर्फ कुम्भ या मकर लग्न की कुण्डलियों में ही बनते हैं, इनके सिवाय अन्य लग्न की कुण्डलियों में नहीं बनते। इस प्रकार की कुण्डली में याने मकर और कुम्भ लग्न की कुण्डलियों में शनि लग्नेश होता है। वह यद्यपि पापग्रह है फिर भी ऊपर दर्शाये अनुसार इस ग्रन्थ के विशिष्ट नियम प्रमाणे शुभफल देने वाला है। परन्तु ७वें श्लोक में बताये हुए नियम को विधि वाक्य न समझ कर सिर्फ निषेध रूप में उसका अर्थ लेना चाहिये। ७वें श्लोक के अर्थ प्रमाणे द्वितीय और द्वादश भावों के स्वामी होने सें शुभफल देने वाले होते हैं तात्पर्य यह है कि—मकर और कुम्भ लग्न की कुण्डली में लग्न का स्वामी शनि विशिष्ट नियम प्रमाणे पापग्रह होकर भी शुभ बनता है और ७वें श्लोक का अर्थ करने में जो कहा है कि वह सिर्फ निषेधरूप है, विधिरूप नहीं है, ऐसा जो अर्थ करने मैं

आता है तो शनि द्वितीय या द्वादश स्थान का स्वामी होने से उसे दूषितपन नहीं लगता, वहाँ पर उन कुण्डलियों में शनि शुभफल देने वाला समझना चाहिये।

उद्योत टीकाकार द्वितीयेश और द्वादशेश ये जिस प्रकार के ग्रह के साथ बैठे हों वैसे ही होते हैं। यदि शुभग्रह के साथ हों तो शुभ फल। यदि अशुभ ग्रह का साहचर्य हो तो अशुभ फल। जिस भाव में बैठे हों उसी भाव के द्वारा अपना फल दिखाते हैं। यदि मित्र के स्थान में बैठा हो तो मित्रादि द्वारा धन प्राप्ति। यदि शत्रु आदि के स्थान में बैठा हो तो शत्रु द्वारा अशुभ फल। यह विचार करते समय ग्रह किस अवस्था में है यह भी विचार कर लेना चाहिये। ग्रहों की अवस्था को नौ भेदों में बाँटा गया है। जैसे दीप्त, मुदित, वग़ैरः। जैसी राशि में ग्रह हो, दीप्त, स्वस्थ आदि इनके अनुसार द्वितीयेश व्ययेश का फल कहना चाहिये।

सज्जन रंजनी टीकाकार के अनुसार जातक-शास्त्र के (यथा दीप्त, स्वस्थ आदि राशियों में ग्रह की स्थिति) अन्य नियमों को लागू न कर, केवल किस भावेश के साथ (शुभ भावपति के साथ या पाप भावेश के साथ) ग्रह बैठा है और द्वितीय द्वादश के अतिरिक्त, किस अन्य भाव का स्वामी ग्रह है––इसी आधार पर द्वितीयेश या व्ययेश शुभ है या अशुभ इसका निर्णय करना चाहिये।

श्री विनायक शास्त्री (वैताल-शास्त्री) की व्याख्या इस प्रकार है––सब भावों के विचार में द्वितीय भाव को (उस उस भाव में द्वितीय––उस उस भाव का धन हुआ) धनभाव होने के कारण शुभ माना जाता है और व्यय–बारहवें भाव को (उस उस भाव से बारहवाँ––उसका व्यय भाव हुआ) व्यय होने के कारण से अशुभ माना जाता हैं, यह सामान्य शास्त्रसिद्ध है। आगे कहा भी है कि लग्न से अष्टम स्थान, भाग्य का व्यय (नवम स्थान से बारहवाँ) होने के कारण शुभ नहीं होता। अब लग्न से द्वितीय और व्यय के विषय में बताते हैं। लग्न से दूसरे और बारहवें के स्वामी (i) दूसरों के साहचर्य तथा (ii) स्थानान्तरानुगुण से––फलदायक होते हैं––अर्थात् शुभ या अशुभ होते हैं, स्वभावतः द्वितीयेश शुभ और व्ययेश अशुभ यह नियम जो ऊपर बनाया गया है––यहाँ लागू नहीं करना चाहिये। द्वितीय तथा व्यय का जो स्वभाव है उसका यहाँ प्रतिषेध किया गया है।

अब (i) साहचर्य और (ii) स्थानान्तरानुगुण इसकी व्याख्या करते हैं। सहचर––किसी के साथ रहने अर्थात् किसी स्थान में बैठने को सहचर कहते हैं। इस दृष्टि से व्ययेश या द्वितीयेश त्रिकोण में बैठे तो शुभ, यदि पापी ग्रह की राशि में तीसरे, छठे, ग्यारहवें बैठे तो पाप, यदि पापग्रह की राशि में केन्द्र में

बैंठे तो पापी नहीं। यदि वह शुभग्रह की राशि में तीसरे, छठे या ग्यारहवें बैंठे तो शुभ। यदि वह शुभग्रह की राशि में केन्द्र में बैंठे तो शुभ नहीं।

साहचर्य का अर्थ राशिस्थितिवश ऊपर बताया गया है। दूसरा अर्थ साहचर्य का हुआ कि जैसे भावाधिप के साथ बैंठा हो वैसा फल अर्थात् द्वितीयेश तथा व्ययेश का जैसे भावाधीश से योग हो वैसा फल। अर्थात् त्रिकोणेश के साथ बैंठे तो शुभ, पापी त्रि, षट्, आय के स्वामी के साथ बैंठे तो पाप। शुभ त्रिषडायाधीश के साथ बैंठे तो शुभ, पाप केन्द्रेश के साथ बैंठे तो पापत्व नहीं। शुभ केन्द्रेश से योग हो तो शुभत्व नहीं। अष्टमेश के साथ बैंठे तो पापत्व।

स्थानान्तरानुगुण का अर्थ है कि द्वितीयेश या व्ययेश का जो अन्य स्थान (दूसरी राशि जिस भाव में पड़ी हो) उसके गुणके अनुसार। अर्थात् यदि अन्य स्थान शुभ है तो शुभ, पाप है तो पाप। जैसे मिथुन लग्नके लिये शुक्र व्ययेश तथा पंचमेश हुआ, व्ययस्थान (वृष) के अतिरिक्त शुक्र की दूसरी राशि तुला पंचम (त्रिकोण) स्थान में पड़ती है इसलिये शुभ हुआ। अथवा मेष लग्न के लिये द्वितीयेश शुक्र सप्तम (तुला) का भी स्वामी हुआ, इसलिये स्थानान्तरगुण से पापी हुआ। इसी प्रकार और लग्नों का भी समझना जैसे कि कर्क लग्न में सूर्य द्वितीय स्थान का स्वामी होता है, किन्तु सूर्य की एक राशि ही होती है इसलिये इसका स्थानान्तर न होने से सूर्य सम हुआ। शुक्र पाप है--किंचित् शुभ भी। मंगल योग कारक है। शनि पाप है। बुध व्ययेश तथा तृतीयेश होने से शुभ (श्री विनायक शास्त्री के मत से तृतीय, षष्ठ, एकादश का मालिक होने से पाप नहीं होता यह बता चुके हैं) यहाँ मंगल में शुक्र का अन्तर किंचित् शुभ फलप्रद है। मंगल में बुध का अन्तर शुभ है। सूर्य का अन्तर भी शुभ फलप्रद है।

सूर्य का स्थानान्तर नहीं होता इसलिये सूर्य में बुध समफल देने वाला होगा। मेष लग्न में सूर्य त्रिकोणेश होता है इसलिये शरीर आदि के लिये शुभप्रद है। सप्तमेश शुक्र शरीर आदि के लिये अशुभकर है। चन्द्रमा माता के लिये शुभकर है, शुक्र माता के लिये अशुभकर है (ऊपर मेष लग्न की कुंडली में शुक्र को अशुभ क्यों कहा गया? क्यों कि चतुर्थ स्थान से गिनने पर शुक्र चतुर्थेश का एकादशेश हुआ)।

पाराशर मतानुसार भावफल कथन की यह युक्ति उत्तम है, इसी प्रकार द्वितीय और व्यय यह अपनी स्वाभाविक वृत्तिके अनुसार सम स्थान हुए न शुभ न पाप। यदि सूर्य अपनी (सिंह) राशि में या चन्द्रमा अपनी (कर्क) राशि में यहाँ हो, या राहु या केतु यहाँ अकेले हो तो एकाकी तथा समस्थान में बैठने से न शुभ फल देंगे न अशुभ फल अर्थात् समफल देंगे। यह समफल केवल भाग्योपचय, अपचय के विशेष में कहा गया है। द्वितीय स्थान में बैठने से जो उनको मारकत्व प्राप्त होगा—उसका निराकरण इस समन्वय फलादेश में नहीं होता। शुभता के साथ भी मारकता रहती है (जैसे वृश्चिक लग्न में द्वितीयाधिपति पंचमाधिपति वृहस्पति को अथवा वृष लग्न में द्वितीयेश पंचमेश बुध को)

स्पष्टीकरण

धनेश और व्ययेश स्वभावत: न पापी हैं, न शुभ—अर्थात् सम हैं। किन्तु सूर्य और चन्द्रमा को छोड़कर अन्य सब ग्रह दो-दो स्थानों के स्वामी हैं। इसलिये कर्क तथा कन्या लग्न की कुण्डली में सूर्य क्रमश: द्वितीयेश तथा व्ययेश और मिथुन तथा सिंह लग्न की कुण्डली में चन्द्रमा क्रमसे द्वितीयेश तथा व्ययेश होगा। पर दोनों ग्रह अन्य भवनों के स्वामी न होने से सम समझे जायेंगे और जिन स्थानों में होंगे उस स्थान के अनुसार शुभाशुभत्व प्राप्त होगा। यदि अच्छे स्थान में अच्छे भवन के स्वामी के साथ बैठेंगे तो शुभ, यदि खराव स्थान में खराव ग्रह के साथ बैठेंगे तो अशुभ—यही इनकी व्यवस्था है।

सूर्य और चन्द्रमा के अतिरिक्त अन्य ग्रह दो स्थानों के स्वामी होते हैं। ऐसी स्थिति में यदि कोई ग्रह द्वितीयेश होकर शुभस्थान का स्वामी हो तो शुभ और द्वितीयेश होकर अन्य अशुभ स्थान का स्वामी हो तो पाप। जैसे वृश्चिक लग्न की कुण्डली में वृहस्पति द्वितीयेश तथा पंचमेश होने के कारण शुभ और कुम्भ लग्न की कुण्डली में द्वितीयेश व एकादशेश होने के कारण पाप। इसी प्रकार व्ययेश यदि अन्य शुभ स्थान का स्वामी हो तो शुभ, जैसे तुला लग्न की कुण्डली में बुध व्ययेश तथा नवमेश होने से, मेष लग्न की कुण्डली में वृहस्पति व्ययेश तथा नवमेश होने से शुभ होता है। किन्तु व्ययेश दूसरे अशुभ स्थान का स्वामी हो तो अशुभ—जैसे मीन लग्न की कुण्डली में एकादशेश शनि व्ययेश होता है या कर्क लग्न की कुण्डली में व्ययेश बुध तृतीय होता है—पापी हैं अर्थात् ये पाप फल देंगे।

पिछले दो श्लोकों में त्रिकोण, त्रिषडाय तथा केन्द्र इनके गुण-स्वभाव का वर्णन किया गया है। अब इस श्लोक के द्वारा द्वादश तथा द्वितीय स्थानों के गुणों की चर्चा की गई है। इन स्थानों के स्वामी इन स्थानों के अधिपति होने

से कोई भी शुभाशुभ गुण इनमें नहीं होते हैं। प्रत्युत ये जिन ग्रहों के साथ होंगे या इनकी दूसरी राशि जिस स्थान में होगी उसके अनुरूप इनका शुभत्व या पापत्व होता है। पूर्व श्लोकानुसार केन्द्रेश का शुभत्व अथवा पापत्व उसकी दूसरी राशि पर अवलंबित रहता है। परन्तु द्वितीयेश—द्वादशेश इन ग्रहोंका शुभत्व अथवा पापत्व उनकी दूसरी राशिके अतिरिक्त दूसरे ग्रहों के साहचर्य पर भी आश्रित हैं, कारण कि प्रत्येक जातक की कुण्डली में द्वितीयेश द्वादशेश के साथ सहयोग करने वाले ग्रह भिन्न-भिन्न होंगे। इसपर से द्वितीयेश-द्वादशेश इनके गुण किसी भी एक श्लोक पर से निर्धारित करते आना सम्भव नहीं है।

द्वितीयेश या द्वादशेश किसी भी कुण्डली में यदि त्रिषडायाधीश हों तो वे पापी होंगे और त्रिकोणेश होंगे तो शुभ होंगे। जब वे अन्य ग्रह के साथ सम्बन्ध नहीं करेंगे तब तथा उनसे जो ग्रह सहयोग करेगा उसका भी उनपर प्रभाव गिरेगा। अब प्रश्न ऐसा उठता है कि इस प्रकार तो सब ग्रहों के साथ होने की सम्भावना है। परस्पर सम्बन्ध करने से सब ग्रहों में योगज फल होता है तो यदि द्वितीयेश-व्ययेश भी किसी ग्रह से सम्बन्ध करेंगे तो तदनुसार उनका भी योगज-फल मिलना चाहिये। इसका समाधान ऐसा है कि इस ग्रंथ के "योगाध्याय" में केन्द्राधिपति तथा त्रिकोणाधिपति इनके परस्पर-सम्बन्ध के कारण से ही "कारक-फल" निर्माण होता है और अन्य किसी भी स्थानों के अधिपतियों से सम्बन्ध होवे तो कारक फल नहीं मिलता। अस्तु द्वितीयेश-व्ययेश यदि त्रिषडायाधीश हों और उनका यदि कोई त्रिकोणेश से सम्बन्ध हुआ तो उनको" कारकत्व प्राप्त नहीं हो सकता, कारकत्व सिर्फ उन्हीं त्रिषडायाधीशों को प्राप्त होता है जो केन्द्रेश होकर त्रिकोणेश के साथ सम्बन्ध करते हों अथवा त्रिकोणेश होकर केन्द्रेश भी हों।

उदाहरण—मिथुन लग्न की कुण्डली में चन्द्रमा द्वितीयेश होता है और वह किसी भी अन्य स्थान का स्वामी नहीं हो सकता। यदि चन्द्रमा द्वितीय स्थान में ही हो और अन्य किसी भी ग्रह से सम्बन्ध नहीं करता हो तो वह सिर्फ मारकेश होगा। मारक प्रसंग में अनिष्टकारी तथा अन्य प्रसंग में वह समफलद होगा। यही चन्द्रमा यदि पंचमेश शुक्र से सम्बन्ध करेगा तो शुभ-मारकेश होगा परन्तु "कारक" नहीं बन सकता। इसी प्रकार कर्क लग्न की कुण्डली में व्ययेश-बुध (जो त्रिषडायाधीश भी है) किसी के साथ सम्बन्ध करने से "कारक" नहीं बन सकता। सिंह लग्न की कुण्डली में चन्द्रमा तथा बुध, कन्या लग्न की कुण्डली में सूर्य, धनु और मीन लग्न की कुण्डलियों में शनि, मकर लग्न की कुण्डली में बृहस्पति, कुम्भ लग्न की कुण्डली में बृहस्पति,

मीन लग्न की कुण्डली में शनि—इनको "कारकत्व" प्राप्त नहीं हो सकेगा कारण वे केन्द्रेश नहीं हैं और त्रिकोणेश भी नहीं हैं। इसके विपरीत वृषभ लग्न की कुंडली में द्वितीयेश-पंचमेश बुध यदि नवमेश-दशमेश से सम्बन्ध करेगा। कन्या लग्न की कुण्डली में द्वितीयेश-नवमेश-शुक्र लग्नेश-दशमेश बुध से सम्बन्ध करेगा; तुला लग्न की कुण्डली में द्वितीयेश-सप्तमेश मंगल यदि चतुर्थेश-पंचमेश शनि से सम्बन्ध करेगा अथवा बुध से सम्बन्ध करेगा; वृश्चिक लग्न की कुण्डली में द्वितीयेश-पंचमेश वृहस्पति यदि शनि या चन्द्रमा से सम्बन्ध करेगा; धनु लग्न की कुण्डली में द्वादशेश-पंचमेश मंगल यदि नवमेश सूर्य या बुध-वृहस्पति से सम्बन्ध करेगा; मकर लग्न की कुण्डली में द्वितीयेश-लग्नेश शनि यदि शुक्र या चन्द्रमा से या बुध से सम्बन्ध करेगा, कुम्भ लग्न की कुण्डली में शनि यदि किसी केन्द्रेश या त्रिकोणेश से सम्बन्ध करेगा; मीन लग्न की कुण्डली में मंगल यदि बुध-वृहस्पति-चन्द्रमा इनसे सम्बन्ध करेगा तो ये द्वितीयेश-व्ययेश "कारक" बन सकते हैं।

केन्द्राधिपति—द्वितीय और द्वादश स्थानों का स्वामी सिर्फ कुम्भ और मकर लग्नों की कुण्डलियों में ही होता है। इनको छोड़कर अन्य लग्नों की कुण्डलियों में केन्द्राधिपति-द्वितीयेश या द्वादशेश नहीं बन सकता। उपरोक्त लग्नों में शनि पाप ग्रह होतें हुए भी उपर्युक्त निर्दिष्ट किये अनुसार और इस ग्रंथ के नियमों के अनुसार लग्नेश शनि (पाप ग्रह) होता है और शुभफल देने वाला होता है। परन्तु ७ वें श्लोक में कथन के अनुसार उन नियमों के विधि वाक्य न लेकर सिर्फ निषेध रूप में उसका अर्थ किया जावे तो लग्नेश शनि द्वितीय-द्वादश स्थान का स्वामी होने से शुभ फल देगा। तात्पर्य यह है कि मकर और कुम्भ लग्न का स्वामी विशिष्ट नियमों के अनसार पाप ग्रह होकर भी शुभ बनता है। यह जो कहा गया है वह सिर्फ निषेध रूप से ही है, विधि रूप से नहीं। इस प्रकार का अर्थ यदि करने में आवे तो शनि द्वितीय-व्यय स्थानों का स्वामी होने से उसे अशुभत्व प्राप्त नहीं होता। वहाँ पर उन कुण्डलियों में शनि को शुभ फल देने वाला समझना।

श्री ठक्कर और श्री विनायक शास्त्री के अभिप्राय विचारार्थ लेना उचित हैं। दीप्तादि अवस्थाओं के अनुसार ग्रहों का शुभाशुभ फल पुस्तक के अंत में परिशिष्ट रूप में दिया है।

भाग्यव्ययाधिपत्येन रन्ध्रेशो न शुभप्रदः।
स एव शुभसंधाता लग्नाधीशोऽपि चेत्स्वयम् ॥ ९ ॥

अर्थः—अष्टमस्थान भाग्यस्थान का व्ययस्थान है, इसलिये अष्टमेश शुभ फल देने वाला नहीं होता, परन्तु वही अष्टमेश यदि लग्नेश भी हो तो शुभ फल उत्पन्न करता है।

विद्यारत्न पंडित माधवप्रसाद व्यास—कहते हैं कि—

अष्टम स्थान का स्वामी यदि नवम स्थान, बारहवें स्थान का स्वामी होवे तो शुभ फल देने वाला नहीं होता परन्तु यदि अष्टम स्थान का स्वामी लग्नेश होवे तो शुभफल देता है। कोई आचार्य कहते हैं कि अष्टम स्थान से जो अष्टम होवे उसका स्वामी रन्ध्रेश होता है, इस भाँति तृतीयेश भी रन्ध्रेश होकर बारहवें स्थान का स्वामी होवेगा, और तब वह भी अशुभ फल कारक होवेगा। और अष्टमेश द्वादशेश होकर अशुभ फल देता है वैसे ही तृतीयेश भी देवेगा। जैसे कर्क लग्न होवे तो बुध रन्ध्रेश होता है और मकर लग्न में बृहस्पति होता है। यदि तृतीयेश रन्ध्रेश नहीं होता तो द्वादशेश भी नहीं होगा।

राजज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री—इस प्रकार कहते हैं—

अष्टम स्थान भाग्य स्थान का व्यय स्थान होने से अष्टम भवन का स्वामी शुभ फल देने वाला नहीं होता है, किन्तु अष्टमेश यदि स्वयं लग्न का भी स्वामी हो तो वह शुभ फल का देने वाला होता है। यह योग मेष लग्न की कुण्डली में भौम से और तुला लग्न की कुण्डली में शुक्र से ही पाया जाता है।

पंडित सीताराम झा—इस प्रकार कहते हैं—

भाग्य-भाग्य का व्ययाधिप (व्ययकारक) होने के कारण अष्टमेश शुभप्रद नहीं होता है। यदि वह लग्न का भी स्वामी हो तो अशुभ होने पर भी शुभ-फल का संघटन कराता है। अथवा अष्टमेश स्वयं (अष्टमेश मात्र) हो अर्थात् दूसरे स्थान का स्वामी न हो तो भी शुभ कारक होता है।

यहाँ "लग्नाधीशोऽपि" (लग्न का स्वामी भी हो) इस (अपि शब्द) का अभिप्राय है कि त्रिकोण (१।५।९) शुभ स्थान कहे गये हैं इनमें "प्रबला-श्चोत्तरोत्तरम्" इस वचन से (५,९) की अपेक्षा लग्न दुर्बल है उसका भी स्वामी होने से अष्टमेश यदि शुभ कारक होता है तो फिर अष्टमेश ही यदि पंचमेश अथवा नवमेश भी हो तो बात ही क्या है ? इससे स्पष्ट हुआ कि अष्टमेश अशुभ कारक है, यदि वह किसी त्रिकोण स्थान का भी स्वामी हो तो शुभकारक भी हो जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि अष्टमेश यदि त्रिषडायादि अशुभ स्थान का भी स्वामी हो तो विशेष अशुभकारक होता है। तथा यदि किसी दूसरे स्थान का स्वामी न हो तो सामान्य अशुभकारक होता है। इसीलिये आगे रवि और चन्द्रमा में अष्टमेशत्व दोष प्रबल नहीं कहा गया है।

यहाँ यह आशंका होती है कि—यदि भाग्य के व्ययाधिप होने के कारण अष्टमेश में अशुभत्व हुआ—तो धन के व्ययाधिप होने से लग्नेश भी क्यों नहीं अशुभ है ? इस प्रकार सब भाव अशुभ हो सकते हैं ?

इसका समाधान इस प्रकार है कि—सब व्यय की अपेक्षा भाग्य का व्यय कष्टकारक होता है। इसके प्रमाण में कुन्ती का वाक्य महाभारत में—

"भाग्यवन्तं प्रसूयेथा मा शूरान् मा च पण्डितान्।
शूराश्च कृतविद्याश्च वने सीदन्ति मत्सुताः॥"

इत्यादि भाग्य की प्रशंसा पुराणादिकों में भरी है इसलिये अष्टमेश में विशेष अशुभत्व सूचना के लिये—"भाग्यव्ययाधिपत्य" हेतु कहा गया है।

तथा—इस ग्रंथ में व्ययाधिपत्य हेतु से भी भावेशों में शुभत्व और अशुभत्व माने गये हैं। यथा—

(१) धन का व्ययाधिप लग्नेश है—धन शरीर रक्षा के हेतु व्यय करने के लिये ही होता है, इसलिए यदि लग्नेश अपने धन का व्ययकारक हुआ तो उचित ही हुआ इसलिये शुभ है।

(२) तृतीय-सहज, पराक्रम तथा आयुः स्थान है—उसका व्ययाधिप (द्वितीयेश) आयु के व्ययकारक होने से अशुभ और मारक हुआ।

(३) चतुर्थ सुखस्थान है उसका व्ययाधिप तृतीयेश होता है इसलिये सुख का व्ययकारक होने से तृतीयेश अशुभ कहा है।

(४) पंचम विद्यास्थान है—उसका व्ययाधिप चतुर्थेश है, वह यदि शुभ होकर विद्या का नाशकारक हुआ तो अनुचित है, पापी होकर विद्या का नाशकारक हुआ तो उचित ही है। अतः शुभ ग्रह चतुर्थेश अनुचितकर्ता (अशुभकारक), और पापग्रह चतुर्थेश उचितकर्ता (शुभकारक) समझा गया।

(५) षष्ठ शत्रुस्थान है उसका व्ययाधिप पंचमेश है, वह शत्रु का नाशकारक होने के कारण शुभ कहा गया है।

(६) सप्तम स्त्रीस्थान है, व्ययाधिप षष्ठेश है वह स्त्री का व्ययकारक होने के कारण अशुभ है।

(७) अष्टम आयुः स्थान है—उसका व्ययकारक होने से सप्तमेश मारक कहा गया है।

(८) नवम भाग्यस्थान है, उसका व्ययकारक होने के कारण अष्टमेश अशुभ कहा गया है।

(९) दशम कर्म स्थान है। कर्म संसार में बन्धन है, अतः (संसार-बंधन)

का व्ययकारक होने से नवमेश अपवर्ग (सर्वोत्कृष्ट पदार्थ) दायक है इसलिये शुभ कहा गया है।

(१०) एकादश लाभस्थान है। उसका व्ययाधिप दशमेश यदि शुभ ग्रह होकर लाभ (आगम) का व्यय (हानि) कारक हुआ तो अनुचित-कारक होने से अशुभकारक कहा गया, और दशमेश पापग्रह होकर लाभ (स्वाभीष्ट पापफल की प्राप्ति) का नाशकारक हुआ तो अपने उचित कर्तव्य के कारण शुभकारक कहा गया है।

(११) द्वादश व्यय स्थान है। उसका व्ययाधिप एकादशेश है। वह व्यय का नाश करने (व्यय नहीं होने देने) के कारण कष्टकारक होता है क्योंकि आमद करानेवाला यदि खर्चा नहीं करने दे तो अन्न-वस्त्र भी मिलना कठिन होता है। अतः एकादशेश अशुभ कहा है।

(१२) लग्न के व्ययाधिप की उपपत्ति (युक्ति) कही जा चुकी है।

इस प्रकार के विवेक से भी स्पष्ट सिद्ध है कि त्रिकोण (१।५।९) के स्वामी शुभकारक और त्रिषडाय (३।६।११) के स्वामी पापकारक हैं। तथा केन्द्र (४।७।१०) के स्वामी शुभग्रह हों तो अशुभकारक, पापग्रह हों तो शुभ-कारक होते हैं। तथा (२।१२।८) के स्वामी साहचर्य और स्थानान्तर के अनुरूप फल देते हैं। एवं भावेशों में ४ प्रकार के तात्कालिक स्वभावगुण सिद्ध हुए।

इसी से "प्रबलाश्चोत्तरोत्तरम्" इसकी भी युक्ति सिद्ध होती है। जैसे—धन के व्यय करने में कोई बहादुरी नहीं है। अतः लग्नेश सामान्य बली, उसकी अपेक्षा शत्रु या रोग के नाश करने में बल का प्रयोजन होता है, इसलिये लग्न से पंच-मेश बली सिद्ध हुआ। तथा शत्रु के नाश करने की अपेक्षा से कर्म (संसार बन्धन) को हटाने में विशेष बल की आवश्यकता होती है; अतः पंचमेश की अपेक्षा नवमेश बली सिद्ध हुआ।

एवं सामान्य सुख (४) के व्यय से सामान्य कष्ट होने के कारण तृतीयेश सामान्य बली। उसकी अपेक्षा स्त्री (७) के व्यय में विशेष कष्ट होने के कारण तृतीयेश से षष्ठेश बली हुआ। इसकी अपेक्षा व्यय का व्यय करने (रोक देने) से तो भोजनाच्छादन भी बन्द होने से अत्यन्त कष्ट होता है, इसलिये षष्ठेश से भी एकादशेश बली समझा गया है। इस प्रकार द्वितीयेश से द्वादशेश, द्वादशेश से भी अष्टमेश बली है। तथा चतुर्थेश से सप्तमेश और सप्तमेश से दशमेश बली सिद्ध होता है।

अष्टमेश के अशुभत्व में प्रमाण श्लोक—

"भाग्ये दृढे सर्वसुखं करस्थं भाग्ये विनष्टे सकलं विनष्टम् ।

भाग्यव्ययाधीशतया हि तस्मात् प्रोक्तोऽष्टमेशोऽत्यशुभो मुनीन्द्रैः ॥

स्पष्टार्थ । तथा लग्नेश के शुभत्व के प्रमाण में श्लोक--

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनं धनादयस्तस्य भवन्ति पोषकाः ।

सदा सुखीच्छैव शरीररक्षितुस्ततोऽत्र सौम्यः कथितो विलग्नपः ॥

स्पष्टार्थं ॥"

श्री पण्डित रामेश्वर भट्ट--टीकाकार इस प्रकार अर्थ कहते हैं ।

"भाग्य जो नवम स्थान उससे द्वादश स्थान का स्वामी अर्थात् लग्न से अष्टम घर का स्वामी शुभफल नहीं देता है। परन्तु वही अष्टमेश लग्नेश भी हो तो अच्छा फल देता है, जैसे मेष लग्न में मंगल और तुला लग्न में शुक्र ॥"

श्री सुश्लोक-शतक के टीकाकार का अभिप्राय इस प्रकार है ।

"अष्टमेश लग्नेश भी हो तो शुभ होता है । जैसे मेष लग्न में अष्टमेश के साथ-साथ लग्नेश होने से मंगल या तुला लग्न में लग्नेश शुक्र अष्टमेश है और शुभ होता है। परन्तु यहां अष्टमाधिपति, लग्नाधिपति न हो—जैसे वृषभ लग्न में वृहस्पति (अष्टमेश-एकादशेश) खल (दुष्ट या पाप) होता है।

यदि सूर्य या चन्द्रमा अष्टमेश हो तो वह पाप नहीं होता, शुभ ही होता है। यदि अष्टमेश नवमेश एक ग्रह हो तो वह खल (दुष्ट या पाप होता) है। जैसे मिथुन लग्न में शनि ही अष्टम और धर्म (नवम) का स्वामी है, वह पाप है ।

यहाँ अष्टमेश का निर्णय करना है—किन स्थितियों में वह शुभ होता है और किन स्थितियों में पाप। पाराशरी सिद्धान्त के अनुसार भाग्यस्थान या धर्मस्थान का जो व्यय (बारहवाँ–नवम स्थान से गिनने से बारहवाँ स्थान हुआ) है उसका स्वामी शुभ नहीं होता, किन्तु लग्नाधीश होने से यह दोष नहीं होगा ।

सज्जन रंजनी टीकाकार के अनुसार किसी भाव का व्ययाधीश उस भाव का (जिसके बारहवें का वह स्वामी है) नाशकर्ता होता है, इस सिद्धान्त को सब भावों पर (उनके बारहवें मालिक पर) लागू करना चाहिये। उदाहरण के लिये लग्नेश की दशा में धन स्थान (द्वितीय का व्यय), द्वितीयेश की दशा में भाई, बहन, पराक्रम, बल (तृतीय स्थान का व्यय), तृतीयेश की दशा में माता, वाहन, भू-सम्पत्ति, (चतुर्थ स्थान का व्यय), चतुर्थेश की दशा में पुत्र, विद्या, बुद्धि (पंचम भाव का व्यय), पंचमेश की दशा में शत्रु, रोग, ऋण (षष्ठ भाव का व्यय), षष्ठेश की दशा में स्त्री, काम (सप्तम भाव का व्यय), सप्तमेश

की दशा में आयु (अष्टम भाव का व्यय), अष्टमेश की दशा में भाग्य (नवम भाव का व्यय), नवमेश की दशा में पिता (दशम भाव का व्यय), दशमेश की दशा में लाभ (एकादश भाव का व्यय), एकादशेश की दशा में व्यय भोग, शयन सुख (द्वादश भाव का व्यय) और द्वादशेश की दशा में शरीर स्वास्थ्य (प्रथम भाव का व्यय), इन सब का व्ययस्थान।

तुला और मेष लग्न को अष्टमेश का दोष नहीं होता। वृश्चिक, वृषभ लग्नों के लिये षष्ठेश का दोष नहीं होता, क्योंकि इन लग्नों में लग्नेश ही दुःस्थानाधिपति होता है। सूर्य और चन्द्रमा को अष्टमेश होने का दोष नहीं होता। इस कथन का अभिप्राय यह है कि और ग्रहों को अष्टमेश होने का महान् दोष है वह दोष सूर्य और चन्द्रमा को नहीं होता किन्तु अति मन्दतर दोष (अल्प दोष) तो होता ही है। यह गुरु आज्ञा सम्प्रदाय सिद्ध है।

श्री विनायक शास्त्री (वैताल शास्त्री) कहते हैं कि जब पापतम अष्टमाधिपत्य दोष का भी लग्नेश परिहार करता है तो षष्ठेशत्व और केन्द्रत्व के दोष को भी दूर करेगा, क्योंकि षष्ठेशत्व और केन्द्रत्व का दोष अष्टमेशत्व के दोष से अल्प है। यदि केन्द्र और त्रिकोण का स्वामी एक ही ग्रह हो तो योगकारक होता है, इसी सिद्धान्त के अनुसार लग्नेश योगकारक होने की वजह से (क्योंकि लग्न केन्द्र भी है और त्रिकोण भी है), त्रिकोणेशों से भी शुभतर है; केवल लग्नेश ही अष्टमेशत्व के दोष का निवारण करता है। त्रिकोणेश यदि अष्टमेश है तो वह अष्टमेश होने के दोष को दूर नहीं करता। इस सिद्धान्त से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं—

(१) कुम्भ लग्न वाली कुण्डली में पंचमेश (अष्टमेश) बुध दोषयुक्त (दोष सहित) होता है।

(२) सिंह लग्न की कुण्डली में पंचमेश-अष्टमेश वृहस्पति भी दोषयुक्त होता है।

उद्योतकार का वही मत है जो सुश्लोक शतक टीकाकार का है।

श्री विनायक शास्त्री के मतानुसार भी सूर्य और चन्द्रमा को अष्टमेश होने का अल्प दोष होता ही है। इस कारण इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये, या समझना चाहिये कि अष्टमेश होने से सूर्य चन्द्र शुभ हो जाते हैं। जैसे लग्नेश षष्ठेश भी हो तो थोड़ा दोष रहता ही है, इसी प्रकार सूर्य को त्रि, षट्, आय का स्वामी होने का दोष भी अल्प होता है।

पंडित रामयत्न ओझाजी (फलित-विकास) यह विशेष कहते हैं कि अष्टमेश यदि त्रिकोणेश होकर अष्टम में ही स्थित हो तो शुभ है। अन्य ग्रह तो अष्टमा-

धिपति होकर अन्य भाव के स्वामी भी होते हैं किन्तु धन और मकर इन दो कुण्डलियों में चन्द्र और सूर्य क्रमश: अष्टम के मालिक होते हैं। इनके विषय में क्या व्यवस्था अन्य टीकाकारों ने की है ?

देखा गया है कि सूर्य और चन्द्रमा अष्टमेश जब होते हैं तब उनकी दशा में बहुत से लोगों की भाग्यहानि होती है। मारक, क्लेश आदि भी प्राप्त होते हैं इसलिए यह पक्ष आदरणीय नहीं है कि सूर्य अथवा चन्द्रमा इनको अष्टमेश का दोष नहीं होता। इससे यही अर्थ करना चाहिये कि सूर्य यदि सिंह राशि में अष्टम में हो या चन्द्रमा कर्क राशि में हो तो अष्टमेश का दोष नहीं रहता।

केन्द्रकोणाधिपो यो हि स भवेत् त्रिपडायप: ।।१४।।
दोषयुक् स तु विज्ञेय: पाराशरमुनेर्मतम् । — सुश्लोक-शतक
केन्द्राधिप: शुभश्चेत् स्यात्स एव त्रिषडायप: ।।१५।। — संज्ञाध्याय
पाप एव स विज्ञेय: पापश्चेच्छोभन: स्मृत: । — श्लोक १४-१५

अर्थात् यदि केन्द्र या त्रिकोण का स्वामी तीसरे, छठे या ग्यारहवें का स्वामी हो तो पाराशरमुनि के मत से उसे दोषयुक् (दोष सहित) समझना चाहिये। यदि नैसर्गिक शुभग्रह केन्द्रेश तीसरे, छठे या ग्यारहवें का मालिक हो तो शोभन (सुन्दर या अच्छा) है। इस सम्बन्ध में अन्य मतों की व्याख्या पहिले की जा चुकी है।

स्वर्गीय वि० गो० नवाथे-टीकाकार इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार करते हैं—

अष्टम स्थान भाग्यस्थान का व्ययस्थान है इसलिये अष्टमेश शुभफल उत्पन्न नहीं करता। परन्तु यही अष्टमेश यदि लग्न का स्वामी भी हो तो शुभफल उत्पन्न करता है। मेप लग्न होने पर लग्नस्वामी और अष्टमेश मंगल होता है। उसी प्रकार तुला लग्न होने पर लग्नेश और अष्टमेश शुक्र होता है। कोई लोग अष्टम स्थान से जो अष्टम स्थान है याने लग्न से तृतीय स्थान—उसका भी स्वामी शुभफल उत्पन्न नहीं करता और वही लग्न स्वामी भी हो तो शुभ फल उत्पन्न करता है, ऐसा अर्थ करते हैं। परन्तु तृतीय स्थान और लग्न का एक ही स्वामी कभी भी नहीं हो सकता, इसलिये दूसरा अर्थ करना गलती होगा।

स्वर्गीय श्री रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन के अनुसार—

यहाँ पर भाग्य स्थान से १२वाँ स्थान याने अष्टम स्थान और उसके स्वामी का फल अनिष्ट कहा गया है, इस पर से किसी ने यह शंका नहीं करनी चाहिये कि प्रत्येक स्थान से १२वाँ स्थान अशुभ है क्या ? पर वस्तुस्थिति उस प्रकार की नहीं है। कारण दशम स्थान का बारहवाँ स्थान नवम स्थान (भाग्य

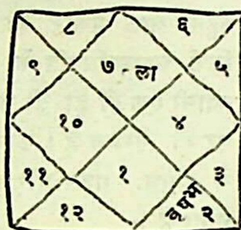
स्थान) हैं। परन्तु भाग्याधिपति दशम या केन्द्र में हो तो राजयोग कि बहुना श्रेष्ठ प्रकार का ऐश्वर्य योग माना गया है। इसलिये उक्त नियम सिर्फ अष्टमाधिपति के लिये ही है। तथापि अष्टम और नवम स्थान का स्वामी एक ही हो तो मात्र फरक पड़ेगा। ऐसा योग सिर्फ मिथुन लग्न होने पर ही सम्भव है। कारण, उस लग्न की कुण्डली में अष्टम व नवम स्थान में क्रमश: मकर और कुम्भ राशियाँ आती हैं और उसका स्वामी शनि होता है।

स्वर्गीय श्री ह० ने० काटवे—इनका कहना है कि भाग्य स्थान का व्यय स्थान याने लग्न से अष्टम स्थान, इसका स्वामी शुभफल नहीं दे सकता परंतु जब अष्टम स्थान का स्वामी यदि लग्नेश भी हो तो वह शुभफल देता है। अष्टमेश और लग्नेश एक ही ग्रह होने के लिए दो लग्न हैं—एक मेष और दूसरा तुला। मेष लग्न में अष्टम स्थान में वृश्चिक राशि आती है इसलिये दोनों राशियों का स्वामी मंगल होता है और तुला लग्न में अष्टम स्थान में वृषभ राशि आती है। इसलिये दोनों राशियों का स्वामी शुक्र होता है, मेष लग्न को मंगल क्वचित् ही शुभ फल दे सकेगा परन्तु तुला लग्न को शुक्र शुभ फलदायक होता है ऐसा मुझे मालूम दिया है। इसलिये मुझे यह श्लोक ठीक नहीं जचता।

लघुपाराशरी के टीकाकार शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या—(गुजराती भाषा के टीकाकार) का कहना है कि इस श्लोक पद से यह मानने में आता है कि जिसका मेष लग्न हो उसे अष्टम स्थान का स्वामी शुभफल देने वाला होता है कारण जब लग्न मेष होता है तब अष्टम स्थान में वृश्चिक राशि होती है और "मेषवृश्चिकयोर्भौमः" इस नीति के अनुसार मेष और वृश्चिक राशियों का स्वामी एक ही होता है अर्थात् अष्टम स्थान का जो अधिपति मंगल वही लग्न का भी अधिपति होता है और वहाँ पर ग्रंथकार के कहने के अनुसार शुभ फल देने वाला होता है। इसी प्रकार जिसका तुला लग्न होता है उसे भी अष्टम स्थान का अधिपति लग्नेश होता है कारण तुला लग्न होने पर अष्टम स्थान में वृषभ राशि होती है और "शुक्रो वृषतुलाधिपः" इस रीति प्रमाणे अष्टम स्थान वृषभ का जो वही तुला लग्न का अधिपति होता है। इसलिये ग्रंथकार के आशय अनुसार तुला लग्न के लिये अष्टमेश शुक्र शुभफलदायी होता है। नहीं तो अन्यत्र भाग्य के व्यय स्थान का स्वामी होने पर शुभफल नहीं देता, नीचे दी हुई कुंडलियों पर से स्पष्ट रीति से ध्यान में आ सकेगा।

शुभफल देने वाली अष्टमेश कुण्डलियाँ





उपरोक्त कुंडली प्रमाणे ग्रंथकार के अनुसार आठवें स्थान का अधिपति जो वृश्चिक राशि का स्वामी मंगल वही मेष लग्न का अधिपति होने से शुभ फल देने वाला होता है। उसी प्रकार दूसरी कुण्डली में आठवें स्थान का अधिपति जो वृषभ राशि का स्वामी शुक्र है वही तुला लग्न का स्वामी होने से शुभ फल देने वाला होता है। इन्हीं कुंडली वालों को अष्टमेश शुभ फल देने वाला होता है। अन्यथा वह शुभ फल नहीं देता। कोई लोग ऐसा अर्थ करते हैं कि "अष्टम स्थान से जो अष्टम स्थान याने लग्न से तृतीय स्थान, उसका स्वामी शुभ फल नहीं देता, परन्तु वह तृतीय यदि लग्नेश भी हो तो उत्तम फल देता है। यह अर्थ सही नहीं है कारण मूल श्लोक में से इस प्रकार का अर्थ निकलना सम्भव नहीं है कारण मूल श्लोक में "अष्टमेश यह भाग्य स्थान का स्वामी होने से शुभ फल नहीं देता ऐसा जो कहा है उस पर से अष्टम स्थान से अष्टम स्थान याने लग्न से तीसरा स्थान ऐसा अर्थ नहीं निकलता और वह अनादरणीय है इसमें शंका नहीं है।"

श्री उत्तमराम भयाराम ठक्कर गुजराती भाषा के टीकाकार कहते हैं कि—आठवें स्थान में वृश्चिक अथवा वृषभ राशि होती है तब उसका स्वामी मंगल अथवा शुक्र ये लग्न के भी अधिपति बनते हैं। इसलिये उनका अष्टम भाव का दोष नहीं लगता और वहाँ मंगल और शुक्र शुभ समझना चाहिये। उसी प्रकार अष्टम स्थान में कर्क या सिंह राशि होती है तो उनके स्वामी चन्द्रमा और सूर्य होने से वे अशुभ फल नहीं देते, तात्पर्य यह है कि सूर्य और चन्द्रमा शुभ फल देने वाले नहीं होते पर उनका अशुभत्व नष्ट हो जाता है, इस प्रमाणे वृश्चिक, वृषभ, कर्क और सिंह ये चार राशियाँ अष्टम स्थान में होती हैं उनके सिवाय बाकी की आठ राशियाँ अष्टम स्थान में होवें तो उनके स्वामी अशुभ फल देने वाले समझना।

स्पष्टीकरण—लेखक स्वर्गीय वि० गो०नवाथे और शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या के उस अभिप्राय से सहमत है जिसमें उन्होंने कहा है कि

कई लोग ऐसा अर्थ करते हैं कि "अष्टम स्थान से जो अष्टम स्थान याने लग्न से तृतीय स्थान, उसका स्वामी शुभ फल नहीं देता, परन्तु वह तृतीयेश यदि लग्नेश भी हो तो उत्तम फल देता है—यह अर्थ करना सही नहीं है" इसी प्रकार का अर्थ विद्यारत्न पण्डित माधवप्रसाद जी व्यास ने भी कहा है। लेखक के मत अनुसार उपर्युक्त अर्थ सही नहीं है कारण तृतीय स्थान और लग्न का एक ही स्वामी कभी भी नहीं हो सकता।

इस ग्रन्थकार ने पूर्व श्लोकों में केन्द्र, त्रिकोण, त्रिषडाय, द्वितीय तथा व्यय भावों के गुण वर्णन करने के पश्चात् इस श्लोक में अष्टम स्थान के गुणों की चर्चा की है। अन्य स्थानों की अपेक्षा इस अष्टम स्थान का विलक्षण गुण होने से ग्रंथकार को एक पृथक् श्लोक की रचना करनी पड़ी, रन्ध्रेश यदि लग्नेश भी हो और लग्न में ही बैठा हो अथवा अष्टम स्थान में ही बैठा हो, तभी उसे शुभत्व प्राप्त होता है, अन्यथा नहीं प्राप्त होता। यहाँ पर तो ग्रह किस स्थान में बैठा है इसीका विशेष महत्त्व है। इस पर से यह भी लक्षित होता है कि किसी भी कुण्डली में अष्टम स्थान का स्वामी लग्न और अष्टम स्थान को छोड़कर अन्य किसी भी स्थान में बैठा हो तो वह शुभ नहीं होता, प्रत्युत वह जिस भाव में बैठता है उस भाव का नाश करता है। लेखक को भी स्वतः को ऐसा ही अनुभव आया है। रन्ध्रेश केन्द्रेश होकर यदि किसी भी पापी त्रिकोणेश से सम्बन्ध करता हो तो रन्ध्रेश होने के कारण से उसे कारकत्व प्राप्त नहीं हो सकता। "धर्मकर्माधिनेतारौ रन्ध्रलाभाधिपौ यदि। तयोः सम्बन्धमात्रेण न योगं लभते नरः" ॥ इस श्लोक का यही तात्पर्य है। इसकी व्याख्या यथास्थान में की गई है। सारांश यह है कि स्वगृह में लग्नेश-अष्टमेश शुभ है, अन्यत्र स्थिति में वह अशुभ ही है। कोई भी ग्रह स्वगृह में बैठने के कारण से अथवा उसके अन्यत्र बैठने के कारण से कौन सा फल प्राप्त होगा इस बारे में पृथक्तः ऐसा कोई भी विवेचन इस ग्रंथ में किया हुआ नहीं है। परन्तु जहाँ योग कारक (योगज) सम्बन्ध की व्याख्या की गई है इस पर से ऐसी जानकारी मिलती है कि केन्द्रेश—त्रिकोणेश इनका सम्बन्ध हुआ हो तो उनमें से कोई एक तो भी स्वगृह में होना चाहिये अथवा केन्द्र और त्रिकोण इनके बीच परस्पर सम्बन्ध होना अनिवार्य है। यह एक नियम इस ग्रंथ का है, जैसे "निवेशिनां व्यत्ययेन तावुभौ धर्मकर्मणोः। एकत्रान्यतरो वाऽपि वशेश्चेद् योगकारकौ ॥ इस प्रकार लग्नेश—अष्टमेश यदि लग्न में (केन्द्र-त्रिकोण) अथवा अष्टम स्थान में होकर किसी भी त्रिकोणेश से उसका सम्बन्ध होता हो तो उसे कारकत्व

प्राप्त हो सकता है अन्यथा वह यदि त्रिषडायाधीश होकर किसी भी त्रिकोणेश से सम्बन्ध करे तो वह स्वतः योग कारक नहीं होगा और वह त्रिकोणेश भी योग कारक नहीं होगा कारण योग कारक याने जब कोई दो ग्रह आपस में सम्बन्ध करके योग कारक बनते हों और उन दोनों में से एक ग्रह अष्टमेश हो तो उसका योग कारकत्व भंग होता है। साधारणतः अकेला अष्टमेश (यदि वह अष्टमस्थ न हो तो) अनिष्टकारी होता ही है। जिस प्रकार भाग्य स्थान से द्वादश स्थान (रंध्र) भाग्य का व्यय कारक है उसी प्रकार अष्टम स्थान का द्वादश स्थान (सप्तम स्थान) आयुका व्यय कारक है। लग्न से अष्टम स्थान तथा तृतीय स्थान इसको आयु-स्थान कहा गया है। इस स्थान से द्वादश स्थान को (लग्न से द्वितीय तथा सप्तम) मारक-स्थान माना गया है। इस पहलू से विचार करने से नवम स्थान यह कर्म स्थान का व्ययस्थान मानना चाहिये। परन्तु यह युक्ति-संगत नहीं है कारण केन्द्र और त्रिकोण स्थान तो शुभत्व के सुरक्षित स्थान हैं और त्रिषडाय तथा अष्टम स्थान ये पाप-स्थान हैं। इसलिये इनके विषय में ऐसा कह सकते हैं कि तृतीय स्थान यह सुख स्थान का व्यय-कारक, षष्ठस्थान यह पत्नी स्थान का व्ययकारक तथा एकादश स्थान यह व्यय स्थान का व्यय कारक, अर्थात् आय-कारक है। नवम-पंचम स्थानों के विषय में सामान्यतः ऐसा कह सकते हैं यदि वे षष्ठेश होने से पापी हुए तो कर्म तथा सुख में बाधा उत्पन्न कर सकते हैं। शुभ हुए तो कर्म के फल स्फुटित होंगे तथा सुखों की वृद्धि होगी।

इस सम्बन्ध में पंडित सीताराम जी झा और स्वर्गीय पंडित रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन के विचारों से लेखक सहमत है।

उदाहरण—मिथुन लग्न की कुण्डली में भाग्येश शनि रन्ध्रेश है इसलिए वह भाग्य का व्ययकारक है। यदि वह दशमेश वृहस्पति से सम्बन्ध करे तो योगाध्याय में दिये हुए श्लोकानुसार योगकारकत्व होना चाहिये पर वैसा होता नहीं। ग्रंथकार ने कहा है कि "**धर्मकर्माधिनेतारौ रन्ध्रलाभाधिपौ यदि**। तयोः सम्बन्धमात्रेन न योगं लभते नरः।" यहाँ पर नवमेश, रन्ध्रेश है और कर्मेश नवमेशाधिप से लाभाधिप है। अगले सूत्र में इस श्लोक का एक अपवाद है—"**नाष्टमेशत्व दोषस्तु सूर्याचन्द्रमसोर्भवेत्**"—सूर्य और चन्द्रमा को अष्टमेश (रन्ध्रेश) होने का दोष नहीं होता। सूर्य और चन्द्रमा अष्टमेश होने पर अन्य किसी भी स्थान के अधिपति हो ही नहीं सकते, इसलिये वे पापी नहीं होते अथवा शुभ भी नहीं होते। इस श्लोक में सिर्फ इतना ही कहा गया है कि सूर्य और चन्द्रमा को अष्टमेश दोष नहीं होता। इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि

वे शुभ हैं सूर्य और चन्द्रमा यदि अष्टमेश होकर अष्टमस्थ हों तभी वे शुभ हो सकते हैं। धनु और मकर लग्नों की कुण्डलियों में इस प्रकार की स्थिति होती है और वह अन्य कोई भी लग्नों में नहीं होती। तात्पर्य यह है कि सूर्य और चन्द्रमा शुभ फल देनेवाले नहीं होते पर उनका अशुभत्व नष्ट हो जाता है। आठवें स्थान में वृश्चिक या वृषभ राशि होती है तब उन राशियों के स्वामी लग्नेश भी होते हैं। इस प्रकार वृषभ, कर्क, सिंह और वृश्चिक इन चार राशियों को छोड़कर अन्य राशियां अष्टम स्थान में हों तो उनके स्वामी अशुभ-फल देने वाले होते हैं।

पण्डित रामयत्न ओझा जी के अभिप्राय से लेखक सहमत है कि "देखा गया है कि सूर्य या चन्द्रमा अष्टमेश जब होते हैं तब उनकी दशा में बहुत से लोगों की भाग्य हानि होती है। मारक, क्लेश, आदि भी होते हैं इसलिये यह पक्ष आदरणीय नहीं है कि सूर्य अथवा चन्द्रमा इनको अष्टमेश होने का दोष नहीं होता। इससे यही अर्थ करना चाहिये कि सूर्य यदि सिंह राशि में हो या चन्द्रमा कर्क राशि में अष्टम स्थान में हो तो अष्टमेश का दोष नहीं रहता।" इससे यह सारांश निकाल सकते हैं कि सूर्य और चन्द्रमा को अष्टमेश होने का अल्पदोष तो होता ही है। इस कारण इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये कि अष्टमेश होने से सूर्य, चन्द्र शुभ हो जाते हैं। जैसे लग्नेश षष्ठेश भी हो तो वह सदोष होता ही है इसी प्रकार चंद्र, सूर्य को त्रि, षड्, आय का स्वामी होने से भी अल्प दोष होता है और वे सदोष होते हैं।

केन्द्राधिपत्यदोषस्तु बलवान् गुरुशुक्रयोः।
मारकत्वेऽपि च तयोर्मारकस्थानसंस्थितिः॥ १०॥
बुधस्तदनु चन्द्रोऽपि भवेत्तदनु तद्विधः।
न रन्ध्रेशत्वदोषस्तु सूर्याचन्द्रमसोर्भवेत्॥ ११॥

अर्थः—(शुभ ग्रह) केन्द्राधिपति होने का दोष गुरु और शुक्र के सम्बन्ध में विशेष है। ये ग्रह केन्द्राधिपति होकर मारक स्थान में हों (या इन स्थानों के अधिपति हों) तो बलवान् मारक बनते हैं॥१०॥

केन्द्राधिपत्य दोष शुक्र की अपेक्षा बुध का कम और बुध की अपेक्षा चन्द्रमा का कम होता है। उसी प्रकार सूर्य और चन्द्रमा को अष्टमेशत्व का दोष नहीं होता॥ ११॥

पंडित सीताराम झा–टीकाकार का अभिप्राय इस प्रकार है—

भाष्य—"शुभ ग्रहों का केन्द्राधिपत्य दोष जो कहा गया है वह गुरु और शुक्र का बलवान् होता है। तथा शुभ ग्रहों के मारकत्व (सप्तमेशत्व) होने

पर भी गुरु, शुक्र में ही विशेषकर मारकत्व दोष होता है। तथा केन्द्रेश होकर मारक स्थान में रहना भी गुरु शुक्र का ही विशेष दोष-कारक होता है। इन दोनों से न्यून दोष तथा मारकत्व बुध में, बुध से भी न्यून चन्द्रमा में होता है। तथा अष्टमेशत्व दोष जो कहा गया है वह सूर्य और चन्द्रमा में बलवान् (प्रबल) नहीं होता है। अर्थात् सामान्य अष्टमेशजन्य दोष तो रहता ही है। ॥ १०-११ ॥

शुभ ग्रहोंका केन्द्राधिपति होना अशुभकारक सिद्ध हो चुका है, इसलिये चार शुभग्रहों में गुरु और शुक्र में विशेष शुभत्व होने के कारण विशेष दोष होना उचित ही है; क्योंकि विशेष स्वच्छ वस्तु में ही दाग विशेष दिखलाई पड़ता है। बुध कदाचित् पापग्रहों के साथ होने से पाप भी हो जाता है, इतलिये गुरु, शुक्र से बुध में दोष अल्प कहा गया है। चन्द्रमा पूर्ण रहने पर शुभ और क्षीण होने पर पाप कहलाता है, इसलिये बुध से भी न्यून दोष चन्द्रमा में कहा गया है।

अष्टमेश को दोषयुक्त होने पर भी शुभस्थान का स्वामी होने से शुभ कहा गया तो सिद्ध हुआ कि अशुभ स्थान का स्वामी होने पर ही विशेष अशुभकारक होता है। तथा जो अष्टमेश दूसरे स्थान का स्वामी न हो; उसमें उक्त दोष बलवान् नहीं हो सकता है। ऐसे केवल रवि और चन्द्रमा ही हैं जो अष्टमेश होकर स्वयं अष्टमेश मात्र रहते हैं, इसलिये इन दोनों में अष्टमेशत्व-दोष प्रबल नहीं होता है।

पण्डित रामेश्वर भट्ट—टीकाकार इन श्लोकोंका अर्थ इस प्रकार करते हैं।

"बृहस्पति शुक्रको केन्द्र का स्वामी होना अत्यन्त दोषकारक है और वे ही गुरु शुक्र मारक स्थान में बैठे हों तो मारक फल देने में बलवान् होते हैं ॥१०॥ पूर्व श्लोक से यह निश्चित हो गया कि बुध और चन्द्रमा को केन्द्र का दोष नहीं, तथापि विशेषकर कहते हैं कि बृहस्पति, शुक्र की अपेक्षा बुध को कुछ कम दोष है और उसी प्रकार बुध से चन्द्रमा थोड़े दोष का भागी है। "भाग्य-व्ययाधिपत्येन" जो अष्टमेश के विषय में कह आये हैं उसका अपवाद कहते हैं कि सूर्य और चन्द्रमा को अष्टमेश का दोष नहीं है॥ ११ ॥

राज-ज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री—इस प्रकार अर्थ करते हैं—

बृहस्पति और शुक्र का केन्द्र स्वामी होना (श्लोक संख्या ७ शुभग्रहों के लिये यह अशुभ माना गया है) अत्यन्त दोषकारक है। यदि ये दोनों या इनमें से कोई एक भी ग्रह मारकस्थान में स्थित हो तो मारकफल देने में भी बली जाने। ग्रंथकार ने मारक स्थान का विवेचन अगाड़ी श्लोक संख्या २३ में किया है और

उसके फल का निर्णय यहीं से प्रारम्भ कर दिया है। यह कहाँतक समुचित है, विद्वज्जन ध्यान दें ॥ १० ॥

पूर्वोक्त केन्द्राधिपत्य दोष वृहस्पति और शुक्र की अपेक्षा बुध को कम है और बुध से भी चन्द्रमा को कम होता है, श्लोक संख्या ९ में जो सब ग्रहों के लिए अष्टमेश दोषी बताया गया है वह सूर्य और चन्द्रमा के लिये नहीं होता ॥ ११ ॥ यहाँ पर यह भी ध्यान में रखने की बात है कि इस विषय में अन्य ग्रंथकारों का मत "अष्टमाधीशचन्द्रस्य दशा मृत्युकरी स्मृता" ऐसा भी पाया जाता है।

विद्यारत्न पण्डित माधव प्रसाद व्यास–टीकाकार इस प्रकार से अर्थ करते हैं—

केन्द्राधिपति दोष अर्थात् प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थान के स्वामीपन का दोष गुरु और शुक्र के विषय में प्रवल होता है और मारक स्थान में अर्थात् द्वितीय और सप्तम स्थान में उन दोनों का रहना भी और मारकों से इन दोनों में प्रवल मारकता बताता है ॥ १० ॥ केन्द्र का स्वामी बुध, वृहस्पति और शुक्र से कम दोषवाला होता है और केन्द्र का स्वामी चन्द्रमा बुध से कम दुष्ट होता है। अर्थात् बुध में मारकशक्ति वृहस्पति और शुक्र से कम है और चन्द्रमा में बुध से भी कम है। परन्तु सूर्य और चन्द्रमा को, अष्टम स्थान के स्वामीपन का दोष नहीं छूता है। अर्थात् ये दोनों मारक नहीं होते ॥ ११ ॥

स्वर्गीय श्री वि० गो० नवाथे टीकाकार इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार करते हैं—

गुरु और शुक्र यदि केन्द्र के अधिपति हों, तो वे अत्यन्त अशुभ फल उत्पन्न करते हैं। उसी प्रकार वे द्वितीय और सप्तम स्थानों के अधिपति हों तो बलवान मारक होते हैं ॥ १० ॥ मेष लग्न हो तो दूसरे और सातवें स्थान का अधिपति शुक्र होता है, यह शुक्र अपनी दशा या अंतर्दशा में मारक होता है। वह जब २।७ इन स्थानों में होता है तब मनुष्य की निश्चयपूर्वक मृत्यु देता है। वृहस्पति द्वितीय और सप्तम स्थान का स्वामी कभी भी नहीं हो सकता। मिथुन लग्न हो तो सप्तम व दशम स्वामी वृहस्पति होता है। उसी प्रकार वह कन्या लग्न के लिये चतुर्थ और सप्तम इन स्थानों का अधिपति होता है, उस समय (उसके दशांतर्दशा के समय) मनुष्य को मृत्यु देता है ॥ १० ॥

केन्द्राधिपत्य दोष शुक्र से कम बुध को है और बुध से कम चन्द्रमा को है। उसी प्रकार सूर्य और चन्द्रमा को अष्टमेशत्व का दोष नहीं होता ॥ ११ ॥

बुध और चन्द्रमा जब मारक स्थान के स्वामी होते हैं तब भी शुक्र की अपेक्षा बुध का और बुध की अपेक्षा चन्द्रमा का दोष कम होता है। धनु लग्न में अष्टम स्थान का स्वामी चन्द्रमा होता है, नवें श्लोक में अष्टम स्थान का स्वामी शुभ फल उत्पन्न नहीं करता ऐसा कहा है उसको रवि और चन्द्रमा इनका अपवाद है। ये शुभ फल उत्पन्न करते हैं॥ ११॥

स्वर्गीय श्री ह० ने काटवे–टीकाकार इस प्रकार कहते हैं—

केन्द्राधिपत्य दोष गुरु और शुक्र को अधिक प्रमाण में लागू होता है और ये केन्द्राधिपति होकर यदि मारक स्थान (द्वितीय और सप्तम) में बैठे हों तो उनका मारकत्व का दोष अधिक प्रमाण में दिखाई पड़ता है, अब हम विचार करें—गुरु को केन्द्राधिपति होने के लिये मिथुन, कन्या, धनु व मीन ये ही लग्न होना चाहिये। इसमें मेरे (टीकाकार के) मत में मिथुन, धनु इन लग्नों को विद्या और ज्ञान के सम्बन्ध में शुभ फल देनेवाला होता है, पर संतति के बारे में अनिष्ट फल देनेवाला होता है। कन्या लग्न को विद्या के सम्बन्ध में साधारण अशुभ फल देता है और मीन लग्न के लिये दोनों प्रकार की सम्भावना होती है और यही गुरु मिथुन और कन्या लग्न को धन स्थान में याने प्रथम मारक स्थान में हो तो अधिक मात्रा में अशुभ फल देनेवाला होता है। मिथुन और धनु लग्न की कुंडली में सप्तम स्थान में हो तो शुभ फल दे सकता है। धनु और मीन लग्न को साधारण अशुभ फ़ल दाता होता है और कन्या और मीन लग्न की कुंडली में सप्तम स्थान में हो तो साधारण अशुभ फल देता है। शुक्र को केन्द्राधिपति होने के लिये वृषभ, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ के लग्न चाहिये इनमें वृषभ लग्न की कुंडली में प्रथम केन्द्र का अधिपति होता है, कुम्भ लग्न की कुंडली में चतुर्थ में, वृश्चिक लग्न की कुंडली में सप्तम में और सिंह लग्न की कुंडली में दशम में—शुक्र की राशि आती है। इनमें वृषभ और कुम्भ लग्नों के लिये शुक्र अशुभ फल नहीं देता (उपरोक्त नियम का यह अपवाद ठहरता है), सिंह और वृश्चिक लग्नों के लिये साधारण अशुभफल देता है। सिंह लग्न के लिये धन व सप्तम इन स्थानों में अति अशुभ और नुकसान कारक फ़ल देता है। अवशेष रहे तीनों लग्नों के लिये साधारण शुभ फल देता है तो सप्तम स्थान में अधिक अशुभ फल देता है। अब तुला राशि केन्द्र में आने के लिये मेष, कर्क, तुला और मकर लग्न होना चाहिये। इनमें से मेष और मकर लग्नों को शुक्र शुभ फ़ल दे सकता है इसमें मेष लग्न में धन स्थान में साधारण शुभ फल देगा तो सप्तम में स्वराशि में भी अशुभ फ़ल देगा, मकर लग्न में धन स्थान में अशुभ फल देगा तो सप्तम स्थान में शुभ फल देगा। कर्क लग्न को साधारण

अशुभ फल देता है और यही धन स्थान में हो तो अधिक अशुभ फल द्रव्य के सम्बन्ध में देगा और सप्तम स्थान में साधारण शुभ फ़ल देगा। तुला लग्न के लिये, इस ग्रंथकार ने एक स्पेशल नियम दिया है (देखो—"भाग्यव्ययाधिप" यह श्लोक) इसमें तुला लग्न के लिये शुक्र शुभ फल देता है परन्तु मेरे (टीकाकार) अनुभव में ठीक बैठा नहीं है और बैठता नहीं है। इस जगह मारक स्थान कौन से और बलवान मारक स्थान कौन से होते हैं यह नहीं कहा है "द्वितीयं सप्तमं स्थानं मारकस्थानमुच्यते। जाया कुटुम्वकाधीशौ मारकौ परिकीर्तितौ। पुनर्मारकयोर्मध्येह्युत्तरं वलवत्तरम्" धन स्थान और सप्तम स्थान ये मारक स्थान हैं। इनमें से वलवत्तर स्थान धन स्थान ही है, गुरु शुक्र के वाद बुध और उसके वाद चन्द्रमा इनको भी केन्द्र दोष लागू पड़ता है, रवि व चन्द्रमा इनको अष्टमेशत्व का दोष नहीं होता ॥१०॥

पिछले (१०) श्लोक में गुरु शुक्र के केन्द्र दोष कहे गये। इस श्लोक (११) में वुध और चन्द्रमा का केन्द्र दोष कहा गया है। गुरु के अनुसार वुध को केन्द्राधिपत्य प्राप्त होने के लिये मिथुन, कन्या, धनु और मीन ये लग्न होने चाहिये। इनमें मिथुन, कन्या व धनु इन लग्नों को वुध शुभ फलदाता होता है; इतना ही नहीं प्रसंग पर राजयोग निर्माण करता है ऐसा कहा है और मीन लग्न को अशुभ फल देता है ऐसा कहा है। इसी प्रकार चन्द्रमा को केन्द्रत्व प्राप्त होने के लिए मेष, कर्क, तुला और मकर ये लग्न होने चाहिये। इनमें भी मेष, कर्क, तुला इन लग्नों को चन्द्रमा अशुभ होता है ऐसा द्वादश लग्नों को होनेवाले शुभाशुभ विवेचन में कहीं भी कहा हुआ नहीं है। सिर्फ मकर लग्न को "कुजजीवेंदवः पापाः शुभौ भार्गवचन्द्रजौ ॥" अशुभ होता है ऐसा इस श्लोक द्वारा कहा है, उक्त श्लोक के वाद द्वादश लग्नों के शुभाशुभ विवेचन में विरोधक लिखकर इस ग्रंथकार ने हरताल पोती है यह आश्चर्य की वात है। रवि और चन्द्रमा एक राश्यधिपति होने के कारण इनको दोष नहीं लगता ॥११॥

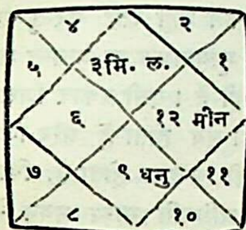
पंडित शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या—गुजराती भाषा के टीकाकार कहते हैं—गुरु और शुक्र ये दोनों ग्रह यदि केन्द्र के याने १–४–७–१० स्थान के अधिपति हों तो वे अत्यन्त अशुभ फल देनेवाले होते हैं और जो वे दोनों मारक स्थान में याने द्वितीय अथवा सप्तम (२–७) में बैठे हों तो वे बलवान मारक होते हैं। अर्थात् वे खास करके मनुष्य को विघातक होते हैं—मृत्युदायक होते हैं ॥१०॥

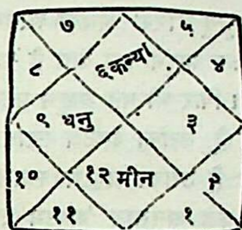
पिछले श्लोक में (१०) गुरु और शुक्र को जो-जो केन्द्राधिपत्य दोष तथा मारकत्व दोष कहा गया है वह दोष बुध को उनसे कम और उसी प्रकार बुध से चन्द्रमा को कम मानने में आया है और आठवें स्थान के आधिपत्य का जो दोष (९वें श्लोक में) कहा हुआ है वह दोष सूर्य और चन्द्रमा को मानने में नहीं आया है ।।११।।

जब १–४–७–१० स्थानों में धनु अथवा मीन राशि हो तब गुरु केन्द्राधिपति गिना जाता है और उसी प्रमाणे इन चार स्थानों में वृषभ तथा तुला राशि हो तब शुक्र को केन्द्राधिपति गिना जाता है और उसी रीति के अनुसार जब कभी केन्द्र के अधिपति तरीके गुरु अथवा शुक्र आये हुए होते हैं, तब वे अशुभ फल देनेवाले होते हैं। इस प्रकार केन्द्राधिपति एक ही कुंडली में दो (केन्द्रों) का बृहस्पति ही होता है और शुक्र कभी भी कुंडली में एक ही केन्द्र का स्वामी हो सकता है। अब मारक के सम्बन्ध में देखिये. गुरु सामान्य रीति से किसी भी कुण्डली में द्वितीय और सप्तम स्थान का (मारक स्थान) स्वामी नहीं हो सकता परन्तु जब मिथुन लग्न होता है तब वह सप्तम और दशम केन्द्र का स्वामी होता है, इस प्रकार वह केन्द्राधिपति भी होता है और साथ-साथ मारक स्थान का स्वामी भी होता है। जब कन्या लग्न होता है तब चतुर्थ और सप्तम स्थानों का (केन्द्रों का) स्वामी होता है, यह तब भी केन्द्राधिपति होकर सप्तम मारक स्थान का भी स्वामी होता है। और द्वितीय (मारक स्थान) का स्वामी तो जब वृश्चिक लग्न हो तब सिर्फ उसी स्थान का स्वामी होता है। (केन्द्र का स्वामी नहीं होता) परन्तु जब गुरु सप्तम स्थान—मारक का अधिपति होता है तब वह मारक स्थान का अधिपति और उसी प्रकार केन्द्राधिपति भी होने के कारण से श्लोक में कहे अनुसार फल देता है याने गुरु की दशा अन्तर्दशा में मनुष्य को मृत्यु भी लाता है अथवा अनेक प्रकार से दुःखदायक स्थिति उत्पन्न करता है।

इसी प्रकार से शुक्र एक साथ ही दो मारक स्थानों का अधिपति होने के लिये मेष लग्न होना चाहिये। क्योंकि वह द्वितीय और सप्तम इन दोनों मारक स्थानों का स्वामी (वृषभ और तुला राशि का स्वामी) होता है। इस प्रकार शुक्र भी मारकस्थानाधिपति और केन्द्राधिपति दोनों बन सकता है। ऐसी परिस्थिति में शुक्र अपनी दशा अन्तर्दशा में मनुष्य को मृत्युदायक होता है और केन्द्राधिपति तरीके वह अत्यन्त हानिकारक स्थिति भी उत्पन्न करता है, इसका स्पष्ट खुलासा करने के लिये नीचे कुण्डलियाँ दी हैं।

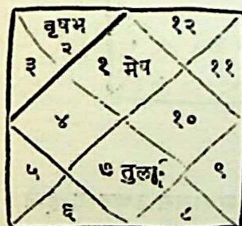
गुरु के मारकत्व तथा केन्द्राधिपतित्व दोष की कुण्लियाँ





इन दोनों कुण्डलियों में सप्तम स्थान में धनु और मीन राशि होने से गुरु इन मारक स्थानों का अधिपति बनता है और साथ ही साथ पहिली कुण्डली में सप्तम और दशम स्थान का अधिपति और दूसरी कुण्डली में चतुर्थ और सप्तम स्थान (याने केन्द्रों का) धनु और मीन इन राशियों का स्वामी होने से केन्द्राधिपति भी बनता है। इस प्रकार जिन स्थानों का वह मारक स्थान का स्वामी बनता है तो मृत्यु देनेवाला होता है और जब वह सिर्फ केन्द्राधिपति होता हैं तब अत्यन्त अशुभ फल देता है।

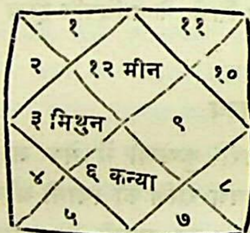
शुक्र का मारकत्व तथा केन्द्राधिपतित्व



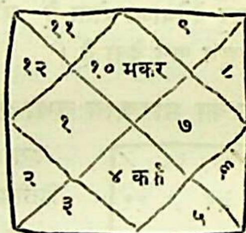
इस प्रमाणे तीसरी कुण्डली में मेष लग्न होकर द्वितीय स्थान में वृषभ राशि का स्वामी और सप्तम स्थान में तुला राशि का स्वामी शुक्र होकर वह मारक होता है और वह मनुष्य को मृत्युकारक बनता है। उसका मृत्युकारक और सामान्यत: अन्य रीति सें केन्द्राधिपति तरीके होने से अत्यन्त अशुभ फल देनेवाला होता है। अब श्लोक ११ के अनुसार जब मीन लग्न होता है तब चौथे और सप्तम स्थानों में मिथुन और कन्या राशि होने से उसका स्वामी बुध होने से वह मारक स्थानाधिप सप्तम स्थान का और केन्द्राधिपति चतुर्थ स्थान का अधिपति तरीके माना जाता है और जिस प्रकार गुरु और शुक्र को मृत्युदायक तथा अत्यन्त अशुभ फलदायक केन्द्राधिपत्य दोष कहा है उससे कम अशुभ फल बुध का होता है, याने बुध केन्द्राधिपति और मारक स्थान का अधिपति होने पर भी खास मृत्युदायक बनता नहीं और अत्यन्त अशुभ फल-दायक भी नहीं बनता। इसी प्रकार चन्द्रमा को मारक स्थान का अधिपति होने के लिए मकर लग्न हो तो वह सप्तम स्थान का स्वामी बनता है और इस प्रकार सप्तम स्थान की कर्क राशि का होकर मारकाधिपति होता है।

अथवा १-४-७-१० स्थानों में कर्क राशि हो तो चन्द्रमा केन्द्राधिपति बनता है परन्तु मृत्यु कारक अथवा अत्यन्त अशुभ फल नहीं देता परन्तु वह बुध से भी बहुत कम अशुभ-फल देता है याने यह भी मृत्युदायक या अत्यन्त अशुभ फल नहीं देता। फिर भी वह अशुभ फल तो देता ही है। इसी प्रकार जिसका मकर लग्न होता है उसका अष्टम स्थान का स्वामी सूर्य होता है और जिसका धनु लग्न होता है उसका अष्टम स्थान का स्वामी चन्द्रमा होता है, पिछले नवम श्लोक में कहे अनुसार 'अष्टम स्थान का अधिपति भाग्य भवन के व्यय-स्थान का अधिपति होने से शुभ फल नहीं देता' जो दोष कहा गया है वह दोष सूर्य तथा चन्द्रमा को अष्टमाधिपति होने पर नहीं होता। याने ये ग्रह अष्टमाधिपति होने पर भी अशुभ फल नहीं देते पर शुभफल ही देते हैं।

मारकेश तथा केन्द्राधिपति तरीके रहनेवाला बुध



मारकेश तथा केन्द्राधिपति केन्द्र तथा अष्टमेश सूर्य



अष्टमेश तरीके चन्द्रमा



श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर इन्होंने लघुपाराशरी ग्रन्थ की गुजराथी भाषा टीका लिखी है। उनके विचार श्लोक १० और ११ पर इस प्रकार हैं—

'क्रूर ग्रह याने शनि, मंगल और सूर्य यदि केन्द्र के स्वामी हों तो शुभफल देते हैं परन्तु वे यदि अन्य दूषित (अशुभ) स्थानों के भी स्वामी हों तो उस भावानुरूप अशुभ फल देते हैं। उदाहरणार्थ—केन्द्राधिपति ३-६-११ स्थानों के स्वामी अथवा २-७ इन मारक स्थानों के स्वामी या ८ और १२ स्थानों के स्वामी भी हों तो अशुभ होते हैं।

इसी प्रकार केन्द्रों के स्वामी क्रूर ग्रह याने शनि और मंगल ये अन्य भावों के (राशि के) स्वामी हों तो शुभफल देते हैं। जैसे तुला लग्न की कुण्डली में

चतुर्थस्थान का स्वामी शनि पंचम स्थान का भी स्वामी होता है और तब वह शुभफल देता है। सूर्य सिर्फ एक ही राशि का स्वामी होने से दूसरे अन्य स्थान का स्वामी होना सम्भव नहीं है।

सप्तम स्थान को केन्द्र ऐसी संज्ञा है परन्तु वह मारक-स्थान है। इसका स्वामी यदि सूर्य हो तो वह अशुभ होता है। तात्पर्य यह है कि सूर्य यदि लग्न, चतुर्थ तथा दशम स्थान का स्वामी हो तो ऊपर वर्णन किये अनुसार केन्द्राधिपति होने से शुभ होता है और उसी नियमानुसार वह शुभफल देता है। चन्द्रमा का क्षीणत्व और अक्षीणत्व जिस प्रकार का हो उस प्रकार वह शुभ या अशुभ होता है, क्षीण चन्द्रमा भी सूर्य सरीखा एक ही राशि का स्वामी होने से वह यदि लग्न, चतुर्थ या दशम स्थान का स्वामी हो तो शुभ फल देता है। अब शेष रहे हुए ग्रहों में से गुरु और बुध इन दोनों में से जो कोई एक केन्द्र का स्वामी हो तो उसकी अपनी दूसरी राशि भी केन्द्र में ही आती है। इसलिये गुरु और बुध इनको केन्द्राधिपति होने का दोष यदि कोई लगता हो तो वह सप्तम स्थान का अधिपति होने के कारण से ही लगता है, कारण सप्तम स्थान केन्द्रस्थान होने के साथ मारक स्थान भी है। तात्पर्य यह है कि गुरु और बुध केन्द्राधिपति होने से मूल सिद्धान्त के अनुसार शुभफल नहीं दे सकते। परन्तु वे दूसरे केन्द्र के शुभ भावों के यदि स्वामी होते हों तो उनको उपर्युक्त नियम लागू नहीं होते अर्थात् उनको अन्य कोई भी दोष नहीं लगता हो तो वे शुभफल देते हैं। ऊपर कह चुके हैं कि गुरु और बुध की एक राशि जब केन्द्र में होती है तब उसकी दूसरी राशि भी केन्द्र में होती है, इसलिये अन्य दोषों के सम्बन्ध में जो ऊपर निर्देशित किया गया है वह अर्थात् सप्तम स्थान के सम्बन्ध में है और वे ग्रह यदि इस स्थान के स्वामी नहीं हों तो शुभफल देते हैं। मकर और कुम्भ लग्न की कुण्डलियों में शुक्र केन्द्र तथा त्रिकोण का अधिपति होता है इसलिये वह शुभफल देता है। परन्तु तुला लग्न की कुण्डली में शुक्र लग्न और अष्टमस्थान का स्वामी होता है पर उस शुक्र को अष्टमेश का अपवाद होने के कारण से वह शुभफल देता है अर्थात् अशुभफल नहीं देता। इनको छोड़कर अन्य लग्नों के कुण्डलियों में शुक्र जब कभी केन्द्राधिपति होता हो तो वह अशुभ होता है और अशुभफल देता है। केन्द्राधिपति यह द्वितीय व द्वादश भावों का स्वामी सिर्फ कुम्भ और मकर लग्न की कुंडलियों में ही हो सकता है। इनको छोड़कर अन्य किसी भी लग्न की कुंडली में ग्रह केन्द्राधिपति होकर साथ ही द्वितीय और द्वादश स्थान का भी स्वामी हो ही नहीं सकता। मकर और कुम्भ लग्नों की कुण्डलियों में लग्नेश शनि पाप-

ग्रह होते हुए भी उपर्युक्त निर्दिष्ट किये अनुसार इस ग्रंथ के नियमों के अनुसार शुभफल देनेवाला होता है। परन्तु सातवें श्लोक में कथन के अनुसार उन नियमों को विधिवाक्य न लेकर सिर्फ निषेधरूप में उसका अर्थ लिया जाय तो ७वें श्लोक के अर्थ के अनुसार द्वितीय-द्वादश स्थान का स्वामी होने से भी शुभफल देता है, तात्पर्य यह है कि मकर और कुंभ लग्न का स्वामी विशिष्ट नियमों के अनुसार पाप ग्रह होकर भी शुभ बनता है। यह जो कहा गया है वह सिर्फ निषेध रूप से ही है विधि रूप से नहीं। इस प्रकार का अर्थ यदि करने में आवे तो शनि द्वितीय-द्वादश स्थानों का स्वामी होने से उसे अशुभत्व प्राप्त नहीं होता। वहाँ पर उस कुंडली में शनि को शुभफल देनेवाला समझना चाहिये।

लघुपाराशरी में लग्नेश के शुभाशुभ के विषय में कोई भी खास निर्देश नहीं दिया गया है इसका कारण ऐसा है कि योगकारक निर्णय करने के लिये चतुर्थ और दशम भावों को ही मुख्य केन्द्रस्थान माना गया है। लग्न बलवान केन्द्र नहीं होने से उसके स्वामी के विषय में ऐसा कोई भी निर्देशन नहीं दिया गया है। उसी प्रकार सप्तमभाव मारक स्थान होने से उसका भी बल नष्ट होता है।

अष्टम स्थान में जब वृश्चिक या वृषभ राशि होती है तब उसका स्वामी मंगल अथवा शुक्र—यह लग्न का भी स्वामी होता है इसलिये उसको अष्टम भाव का दोष नहीं लगता। वहाँपर मंगल और शुक्र शुभ समझना। उसी प्रकार अष्टम स्थान में कर्क या सिंह राशि हो तो उसका स्वामी चन्द्रमा और सूर्य होता है इसलिये वह भी अशुभफल नहीं देता। तात्पर्य यह है कि सूर्य और चन्द्रमा शुभफल देनेवाले नहीं होते परन्तु उनका अशुभत्व नष्ट होता है।

इसी प्रकार वृश्चिक, वृषभ, कर्क और सिंह—इन चार राशियों में से कोई भी राशि अष्टम स्थान में होवे तो उनको छोड़कर अन्य आठ राशियों में से कोई भी राशि अष्टम स्थान में होवे तो उन राशियों के स्वामी अशुभफल देनेवाले होते हैं, इस प्रकार समझना।

द्वितीय और सप्तम ये मारकस्थान हैं। इनमें से द्वितीय मुख्य मारक स्थान है। इस पर से प्राधानतः उपर्युक्त विचार किया गया है। मारकेश अन्य स्थानों के स्वामी होकर जब शुभ स्थानों के अर्थात् नवम, पंचम के भी स्वामी हों तो उनको मारकेश का दोष नहीं लगता और वे राजयोगकारक बन सकते हैं और इस ग्रंथ के तीसरे और चौथे अध्यायों में दर्शाये नियमों के अनुसार वे दशान्तर्दशा में उत्तम फल देते हैं।

इस ग्रंथ में वर्णन किये अनुसार ही फलादेश ध्यान में रखना चाहिये। परन्तु जिस प्रकार अन्य ग्रंथों में ज्योतिषाचार्यों के कहे अनुसार यदि यहां भी राजयोग बनते हों तो उन नियमों में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आ सकती। तात्पर्य यह है कि अन्य आचार्यों के दर्शाये अनुसार यदि राजयोग यहां भी बनता हो तो उस राजयोग को स्वीकार करना या मान्यता देना। इसके उपरान्त इस ग्रंथ के नियमों के अनुसार भी जो राजयोग बनते हों उनका तो स्वीकार करना ही है। सारांश यह है कि इन दोनों पद्धतियों को भिन्न-भिन्न समझना।

स्पष्टीकरण

मारक प्रसंग में गुरु और शुक्र को सप्तमेश हो तो दोष है, ऐसा कहा हुआ है। वह दोष वे ग्रह मारक स्थान में बैठे हों तो अधिक प्रबल होता है। इसीलिये उस दोष का परिमार्जन होना असंभव है। जैसा कि अन्य टीकाकारों के विवेचन में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सप्तम स्थान मारक स्थान है, केन्द्रस्थान है और विषम-पद का है। त्रिकोण स्थान भी विषम-पद का है। इसी कारण से कोई भी त्रिकोणाधिपति सप्तमेश हो ही नहीं सकता इसलिये ऐसा सप्तमेश शुभ है, यह भी कहना ठीक नहीं है। इसलिये इस ग्रंथ में कहा है कि गुरु, शुक्र, बुध तथा चन्द्रमा ये मारकेश होकर केन्द्रेश हों तो इनको शुभत्व प्राप्त नहीं होगा। यह बात क्रूरग्रह (सूर्य, मंगल, शनि) इनके लिये नहीं है। इन क्रूर ग्रहों को सप्तमेश (मारकेश) होने का दोष नहीं रहता।

उदाहरण—मेष लग्न की कुण्डली में सप्तमेश शुक्र द्वितीयेश भी है और प्रबल मारकेश है। मिथुन लग्न की कुण्डली में वृहस्पति सप्तमेश होकर दशमेश है वृश्चिक लग्न की कुंडली में सप्तमेश शुक्र व्ययेश है। धनु लग्न की कुण्डली में सप्तमेश बुध दशमेश है। मीन लग्न की कुण्डली में सप्तमेश बुध चतुर्थेश है। कन्या लग्न की कुण्डली में सप्तमेश वृहस्पति चतुर्थेश है। इनमें से कोई भी ग्रह त्रिकोणेश नहीं है और वह हो भी नहीं सकता। कोई भी क्रूर ग्रह सप्तमेश होकर केन्द्राधिपति हो नहीं सकता अर्थात् क्रूर ग्रह सप्तमेश होकर अन्य केन्द्र का स्वामी होना असंभव है। इसलिये क्रूर ग्रह को केन्द्राधिपति होने का दोष नहीं हो सकता।

गुरु और बुध इन दोनों में से जो कोई एक केन्द्र का स्वामी हो तो उसकी अपनी दूसरी राशि भी केन्द्र में ही आती है और यह द्विस्वभाव (३-६-९-१२) राशि के लग्नों में ही संभव होता है। इसीलिये गुरु और बुध इनको केन्द्राधिपति होने का दोष यदि कोई लगता हो तो वह सप्तम स्थान का अधिपति

होने के कारण से ही लगता है क्योंकि सप्तम स्थान केन्द्र स्थान होने के साथ मारक स्थान भी है। तात्पर्य यह है कि गुरु और बुध केन्द्राधिपति होने से मूल सिद्धान्त के अनुसार शुभ फल नहीं दे सकते। परंतु वे दूसरे केन्द्र के शुभ भावों के यदि स्वामी हों तो उनको उपर्युक्त नियम लागू नहीं होते। अर्थात् उनको दूसरा अन्य कोई भी दोष नहीं लगता हो तो वे शुभ फल देते हैं। वैसे ही गुरु और बुध सप्तम केन्द्र को छोड़कर अन्य केन्द्र में अपनी स्वराशि में बैठे हों तो उन्हें केन्द्राधिपत्य दोष नहीं होता, प्रत्युत वे केन्द्राधिपति होने पर भी शुभ फल देते हैं। जैसे ग्रंथांतर में पंच महापुरुष योगों में गुरु, बुध, शुक्र ये केन्द्र में अपनी स्वराशि में उत्तम योग फल प्रदान करते हैं।* शुक्र यह शुभ ग्रह जब सप्तमेश होता है तब वह द्वितीयेश और द्वादशेश हो सकता है। यह सिर्फ मेष और वृश्चिक लग्नों में ही संभव है, अन्य लग्नों में नहीं। चंद्रमा सप्तमेश होने पर सप्तम स्थान में ही होता है। चंद्रमा के विषय में एक विशेष बात यह है कि चन्द्रमा का क्षीणत्व और अक्षीणत्व जिस प्रकार का हो उसी प्रकार से वह शुभ या अशुभ होता है। याने चन्द्रमा पापी होकर केन्द्राधिपति हो तो अशुभ फल नहीं देता यदि वह पापी न हो तो शुभ फल नहीं देता, चूंकि सौम्य ग्रह केन्द्राधिपति होकर सप्तमेश भी हो तो मारकेश होते हैं इसलिये मारक-प्रसंगों में इनका केन्द्राधिपति होना दोष युक्त कहा गया है। ये सौम्य ग्रह त्रिकोणेश होकर किसी भी क्रूर केन्द्राधिपति से सम्बन्ध करें तो ऐसा सम्बन्ध उत्तम राजयोग होता है। क्रूर ग्रह शनि, मंगल, सूर्य ये केन्द्र के स्वामी हों तो अशुभ फल नहीं देते।

सप्तमेश (केन्द्रेश) यदि किसी भी त्रिकोणेश से सम्बन्ध करता हो तो ऐसा सप्तमेश योग कारक होता है। परन्तु मारक-प्रसंगों में वह मारक ही होता है। एक श्लोक में कहा है कि **"आरम्भो हि राजयोगस्य भवेन्मारक-भुक्तिषु। प्रथयन्ति तारतम्यं प्रत्यशो योगकारिणः॥"** सप्तमेश और त्रिकोणेश के सम्बन्ध होने पर जो राजयोग होता है तो त्रिकोणेश की महादशा में तथा सप्तमेश की अंतर्दशा में आरंभ में राजयोग के फल प्राप्त होते हैं और बाद में मारक फलों की प्रधानता रहती है। उदाहरणार्थ—मेष लग्न की कुंडली में सप्तमेश व द्वितीयेश शुक्र यदि नवमेश-द्वादशेश वृहस्पति से सम्बन्ध करे तो वृहस्पति की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा जब आवेगी तब अवश्यमेव मारक फल होगा। यहाँ शुक्र द्विधा मारकेश है।

---

* पृष्ठ ७९ पर दिया हुआ स्पष्टीकरण भी देखें।

सूर्य और चन्द्रमा को अष्टमेशत्व का दोष नहीं होता, वे अष्टम स्थान में हों तो शुभ भी नहीं होते और न अशुभ ही, तो वे शुभ होते हैं। यह सिर्फ धनु और मकर लग्नों की कुंडलियों में सम्भव है, इस सम्वन्ध में पिछले श्लोक में सूर्य और चन्द्रमा का अष्टमेश होने के विषय में विवेचन किया गया है वह पढ़ना चाहिये।

इस पर से श्लोक १०–११ के नियमानुसार और लघुपाराशरी ग्रंथानुसार ऐसा सिद्ध होता है कि, शत्रुग्रह यदि—

(१) शुभ ग्रह हों यदि केन्द्र के स्वामी होकर स्वराशि में हों तो शुभ फल देते हैं।

(२) परन्तु केन्द्र के स्वामी यदि मारक स्थान के स्वामी हों या मारक स्थान में हों तो मारक फल ही प्राप्त होगा।

(३) केन्द्र के स्वामी यदि शुभ स्थान में हों (५–९) या इनके स्वामियों के साथ सम्वन्ध करते हों तो योग कारक होते हैं और शुभ फल देते हैं।

(४) केन्द्र के स्वामी अशुभ स्थानों में हों तो अशुभ फल देते हैं।

(५) शुभ ग्रह सप्तमेश (केन्द्रेश) होकर किसी भी केन्द्रेश से सम्बन्ध करे तो योगकारक होता है और अपनी अन्तर्दशा में प्रारम्भ में शुभ फल और वाद में मारक फल देता है दशवें श्लोक के द्वितीय चरण का अर्थ करते समय किसी विद्वान ने कहा है कि "केन्द्राधिपति यदि मारक स्थान के स्वामी हों" और कोंई विद्वान् ने कहा है कि यदि "केन्द्राधिपति मारक स्थान में वैठे हों" इस प्रकार द्वितीय चरण के अर्थ में एकवाक्यता नहीं है। लेखक का मत है कि केन्द्राधिपति मारक स्थान के स्वामी होकर मारक स्थान में वैठे हों" इस प्रकार का अर्थ सयुक्तिक और उचित है। सामान्यतः सभी टीकाकार यही अर्थ करते हैं कि शुभ ग्रह यदि केन्द्राधिपति हो तो वे दोषयुक्त होते हैं और गुरु, शुक्र से बुध का दोष कम है और बुध से चन्द्रमा का दोष कम है। परन्तु इस अर्थं में स्वाभाविकता यह होती है कि यदि सभी शुभ ग्रह चारों केन्द्रों में से किसी भी केन्द्र के स्वामी होने से दोषयुक्त हो जाते हैं तो लग्नेश के सन्वन्ध में जो इतना अच्छा शुभ फल कहा गया है कि वह अनिष्ट स्थान अष्टम का स्वामी होने पर भी शुभ फल देता है तो यह सब हेतुवाद व्यर्थ हो जाता है, इसलिये यही अर्थ सयुक्तिक और उचित है कि शुभ ग्रह यदि सप्तम स्थान के स्वामी हों, तो वृहस्पति सबसे अधिक मारक, शुक्र उससे कम मारक, बुध उससे कम और सप्तमेश यदि चन्द्र हो

तो सबसे कम मारक होता है। बुध और चन्द्रमा केन्द्राधिपति होने से कम दोषयुक्त होते हैं इसका कारण यह है कि बुध शुभ ग्रहों के साथ होने से शुभ और पाप ग्रहों के साथ होने से पापी होता है और चन्द्रमा का शुभत्व और पापत्व के ऊपर निर्भर रहता है, चन्द्रमा यदि पापी हो तो वह केन्द्राधिपति होने के नाते अशुभ फल नहीं देता है।

कुजस्य कर्मनेतृत्वप्रयुक्ता शुभकारिता।
त्रिकोणस्यापि नेतृत्वे न कर्मेशत्वमात्रतः ॥१२॥

अर्थः—मंगल केवल दशम स्थान का स्वामी हो तो वह शुभ फल-दायक नहीं होता, परन्तु जब वह त्रिकोण का भी अधिपति हो, तभी शुभ फल उत्पन्न करता है ॥१२॥

पंडित श्री रामेश्वर भट्ट टीकाकार इस प्रकार से अर्थ करते हैं—

"मंगल दशम स्थान का स्वामी हो तो शुभ फल देता है परन्तु वह त्रिकोण का भी स्वामी होगा तो शुभ फ़ल देगा, केवल दशमेश होने से नहीं देगा, यह योग केवल कर्क लग्न में मिलेगा" ॥१२॥

विद्यारत्न पंडित माधवप्रसाद व्यास टीकाकार इस प्रकार कहते हैं "मंगल तभी शुभ फल देनेवाला होता है जब वह पंचम-नवम स्थान का स्वामी होकर दशम स्थान का स्वामी होता है। केवल दशम स्थान का स्वामी होने से ही मंगल शुभ फल का दाता नहीं होता। यह योग उसी की ग्रह कुंडली में पड़ता है जिसका जन्म कर्क लग्न में होता है कारण यह है कि कर्क लग्न से वृश्चिक पंचम और मेष दशम पड़ता है और मंगल उनका स्वामी है।

पाराशरी में इसी प्रसंग से ग्रहों का शुभ होना, अशुभ होना और योग कारक होना स्पष्ट रीति से लिखा गया है। संक्षेप से कुछ लिख दिया जाता है। शनि, बुध और शुक्र पाप ग्रह हैं और वृहस्पति, शुक्र शुभ ग्रह हैं परन्तु केवल योग से ही शनि और वृहस्पति शुभ फल देनेवाले नहीं होते। वृहस्पति का पापग्रह होना परतन्त्रता से है यह बात निश्चित है। यदि शुक्र मारक होता है तो वह आप ही अशुभ कर्तृक है। इन दोनों के संग से और-और ग्रह भी पाप ग्रह हो जाते हैं। यह फल मेष राशि में जिसका जन्म होता है उसका है।

राज-ज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री—टीकाकार इस प्रकार कहते हैं—क्रूर ग्रहों का केन्द्रपति होना जो श्लोक संख्या ७ में कहा गया है जिसके

अनुसार दशम भवन केन्द्र का स्वामी मंगल शुभ फल का करनेवाला होता है। वह उसी हालत में अपना शुभ फल करता है जब त्रिकोण अर्थात पंचम भवन का भी स्वामी हो, केवल दशम भवन का स्वामी मंगल शुभ फल नहीं देता, यह योग केवल कर्क लग्न की कुंडली में ही पाया जाता है, अन्यत्र नहीं। मंगल के लिए यह विशेष नियम बताया नया है और किसी भी क्रूर ग्रह के लिए नहीं है।

ज्योतिषाचार्य-तीर्थ पण्डित सीताराम झा टीकाकार इस प्रकार कहते हैं—भाष्य कुज (नैसर्गिक पाप ग्रह) के कर्मेश (केन्द्रेश) होने में जो शुभ-कारिता पीछे कही गई है, वह त्रिकोणपति होने से ही समझना; केवल केन्द्रेश होने से ही नहीं अर्थात केवल केन्द्रेश मात्र होने से उसका स्वाभाविक पापत्व मात्र नष्ट होता है, अतः केन्द्राधिपति होकर यदि त्रिकोणपति भी हो जावे तो उसमें शुभत्व आ जाता है। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि स्वाभाविक पाप ग्रह यदि केन्द्रपति होकर त्रिषडायपति भी हो तो पापकारक ही होता है ॥१२॥

युक्ति वचनम्—

केन्द्रेशत्वेन पापानां शुभत्वं प्रतिपादितम्।
ततोऽत्र कुजशब्देन पाप एव प्रबोधितः ॥
तथैव कर्मशब्दोऽपि केन्द्रस्थानोपलक्षकः।
धर्मशब्दस्तथा ज्ञेयस्त्रिकोणपदबोधकः ॥
केन्द्रेशत्वेन पापानां पापत्वं चैव नश्यति।
तदा कोणाधिपत्येन शुभत्वं तस्य संस्फुटम् ॥

पाप ग्रहों में केन्द्राधिपत्य होने से इतना ही शुभत्व आता है कि वह अपने पाप फल को नहीं देता है, उस हालत में यदि वह किसी त्रिकोण स्थान का स्वामी हो तो उसमें शुभ फलत्व होना उचित ही है ॥१२॥

स्वर्गीय पंडित रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन मराठी टीकाकार इस प्रकार कहते हैं—पूर्व में ७वें श्लोक में पाप ग्रह को केन्द्राधिपत्व हो तो अशुभ फल प्राप्त नहीं होता और दशम स्थान में तो बहुत ही शुभ फलदायक होता है, ऐसा सामान्य नियम कहा गया है। परन्तु भौम के विषय में विशेष नियम कहा हुआ है। भौम प्रथम, चतुर्थ और सप्तम इन तीनों स्थानों में से कोई भी स्थान का अधिपति हो तो वह शुभ फल देनेवाला होता है और दशम केन्द्र स्थान का अधिपति भौम होकर उसे त्रिकोणाधिपत्व हो तो वह मंगल शुभ

फल देता है । सिर्फ दशमाधिपत्व यदि भौम को हो और त्रिकोणाधिपत्व नहीं हो तो वह भौम शुभ फल देनेवाला नहीं होता है ऐसा इस ग्रंथकार का मत मालूम पड़ता है । ऐसा योग जन्म समय कर्क लग्न हो तो होता है कारण दशम मेष और पंचम स्थान वृश्चिक इन राशियों का स्वामी भौम ही होता है ।

स्वर्गीय श्री वि० गो० नवाथे मराठी टीकाकार इस प्रकार कहते हैं—मंगल यदि सिर्फ दशम का अधिपति हो तो शुभ फलदायक नहीं होता । परन्तु जब वह त्रिकोण का भी अधिपति हो, तब शुभ फल उत्पन्न करता है । सातवें श्लोक में पाप ग्रह केन्द्र के अधिपति हों तो वे अशुभ फल उत्पन्न नहीं करते, ऐसा कहा है । मंगल पाप ग्रह है, तथापि वह जब सिर्फ दशम का अधिपति होता है तब वह शुभ फल उत्पन्न नहीं करता, परन्तु वह त्रिकोण और दशम का भी स्वामी होता है, तब अच्छे फल उत्पन्न करता है । कर्क लग्न हो तब मंगल पंचम (त्रिकोण) और दशम इन दोनों स्थानों का अधिपति होता है, इसलिये यह उत्तम फल उत्पन्न करनेवाला जानना ।

स्वर्गीय श्री ह० ने० काटवे—मराठी टीकाकार इस प्रकार कहते है—मङ्गल दशमेश होकर उसी समय त्रिकोण अधिपति भी हो तो शुभफलदाता होता है, पर केवल दशमस्थान का अधिपति होकर त्रिकोण का अधिपति भी न हो तो शुभफल नहीं दे सकता । उपर्युक्त श्लोक के नियमानुसार मङ्गल की इस प्रकार की स्थिति बनने के लिए कुम्भ लग्न होना आवश्यक है । कारण कुम्भ लग्न के लिये दशम स्थान में वृश्चिक राशि होती है और तृतीय स्थान में मेष राशि होती है । यद्यपि मङ्गल यहाँ कर्मेश होता है फिर भी तृतीय का त्रिषडाय-पति–अधिपति होता है इसलिये अशुभ फल देता है । परन्तु कुज इस शब्द का अर्थ कुछ टीकाकारों ने 'कुज शब्देन पापग्रहो वेद्यः । (कुत्सितं जन्म यस्यासौ कुजः इति विग्रहग्रहात्) पापग्रह ऐसा अर्थ किया है । यदि ऐसा अर्थ ग्राह्य किया जावे तो यही श्लोक शनि को भी लागू होता है । उदाहरणार्थ—वृषभ लग्न को शनि दशमेश होकर नवम इस बलवत्तर त्रिकोण का अधिपति होता है, इसलिये इसकी राजयोग में गणना की गयी । परन्तु मेष लग्न को दशमेश होकर फिर लांभस्थान का (त्रिषडायपति) होता है इसलिये इसकी गणना अशुभ ग्रहों में की गयी है , श्री भैंरवदत्त सरीखे कुछ टीकाकारों ने यह श्लोक सिर्फं मङ्गल के लिये ही कहा गया है ऐसा कथित किया है, वैसे ही सिंह लग्न के लिये शुक्र कर्मेश होता है और तृतीयेश भी होता है इसलियें मङ्गल के अनुसार ही इसको भी मानना पड़ेगा ।

श्री शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पण्ड्या गुजराती टीकाकार कहते हैं कि पूर्व में ७वें श्लोक में इस प्रकार कहने में आया है कि 'क्रूर ग्रह यदि केन्द्र में पड़ा हो तो वह अशुभ फल नहीं देता पर शुभफल देता है' इसपर से यह माना जाता है कि मंगल पापग्रह है और वह दशम स्थान में अर्थात् केन्द्र में बैठा हो तो अशुभ फल नहीं दे सकता है। परन्तु इसके अपवाद रूप में ग्रन्थकार ने यह श्लोक लिखा है, वह यह कि पापग्रह केन्द्र में १-४-७-१० स्थानों में हो तो अशुभ फल नहीं देता, परन्तु मङ्गल यदि दशन स्थान हो तो अशुभ फल नहीं देता ऐसा समझना नहीं। परन्तु मङ्गल यदि दशम स्थान में रहने के साथ त्रिकोण स्थान का अधिपति हो तो शुभफल देता है। (यहाँ पर त्रिकोंणाधिप तरीके दशम स्थान का अधिपति मङ्गल होता है तब नवम स्थान का अधिपति नहीं बन सकता अर्थात् नवम स्थान को छोड़ कर त्रिकोण में केवल पंचम स्थान ही लिया है, कारण कि दशम स्थान का स्वामी जब मङ्गल होता है तब कर्क लग्न होगा और दशम स्थान में मेष राशि और पंचम स्थान में वृश्चिक राशि होगी और उन दोनों राशियों का स्वामी मङ्गल ही बनता है। पर नवम और दशम स्थान का स्वामी वह नहीं हो सकता)।

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर—गुजराती टीकाकार इस प्रकार कहते हैं। कर्क और कुम्भ लग्न की कुण्डजियों में मङ्ग दशम का स्वामी बनता है। कर्क में दशम स्थान में मेष राशि और पंचम स्थाान में वृश्चिक राशि होने से मङ्गल दशम और पंचम (त्रिकोण) दोनों का स्वामी होने से इस श्लोक के अनुसार शुभ होता हैं।

कुम्भ लग्न की कुण्डली में दशम स्थान में वृश्चिक और तृतीय स्थान में मेष राशि होती है, इसलिये मङ्गल दशम स्थान का स्वामी तो बनता है परन्तु त्रिकोण का स्वामी नहीं बनता। तृतीय स्थाान का अधिपति बनने से मंगल शुभफल देनेवाला नहीं बनता पर तृतीय स्थान का अशुभफल देनेवाला बनता है, इस प्रकार समझना—यह इस श्लोक का तात्पर्य है।

इस श्लोक का आशय यह है कि नैंसर्गिक पापग्रह केन्द्र का स्वामी बनता है तो वह पापफल देता है, लेकिन वह त्रिकोण का स्वामी भी बनता हो तो त्रिकोण का स्वामी बनने शुभफल देता है (श्लोक १५ प्रमाणे)।

स्पष्टीकरण:—

पूर्व में इस ग्रन्थ के सातवें श्लोक में पापग्रह को केन्द्राधिपत्व हो तो अशुभ फल प्राप्त नहीं होता और दशम स्थान में तो बहुत ही शुभफलद होता है—

ऐसा सामान्य नियम कहा गया है। परन्तु भौम के विषय में यहाँ पर एक विशेष नियम कहा गया है। भौम प्रथम, चतुर्थ और सप्तम केन्द्रों का स्वामी हो तो अशुभ फल नहीं देता, केवल दशम स्थान का स्वामी होने से शुभफल नहीं मिलता।

कर्क लग्न की कुण्डली में दशमेश मङ्गल (क्रूरग्रह) को जो शुभत्व प्राप्त है वह उसके केन्द्रेश होने के कारण से न होकर प्रत्युत उसके त्रिकोणेश होने के कारण से है। यह श्लोक (१२) 'सर्वे त्रिकोणनेतारो ग्रहाः शुभफलप्रदाः। पतयस्त्रिषडायानां यदि पापफलप्रदाः।।' तथा 'न दिशन्ति शुभं नृणां सौम्याः केन्द्राधिपा यदि। क्रूराश्चेदशुभं ह्येते प्रवलाश्चोत्तरोत्तरम्।।' इन दोनों श्लोकों का उदाहरण है। इस श्लोक द्वारा (१२) ग्रन्थकार ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि कोई भी क्रूर ग्रह केन्द्रेश जब तक त्रिकोणेश न हो तो शुभ नहीं होता। अन्य सब ग्रन्थों में (ग्रन्थान्तर) मङ्गल (भौस) क्रूर ग्रह है। वह दशमेश होकर यदि दशम स्थान में हो तो शुभ माना गया है। परन्तु इस ग्रन्थ के अनुसार वह (केन्द्रेश) यदि त्रिकोणेश नहीं होता हो तो शुभ नही हो सकता। सामान्य शास्त्रानुसार सब क्रूर केन्द्रेश पाप-फलद (पापफल देनेवाले) तथा सब सौम्य-ग्रह शुभ-फलद (शुभफल देनेवाले) होते हैं। पर इस ग्रन्थ के अनुसार दशा-प्रसंग में सिर्फ वही ग्रह शुभ होंगे जो त्रिकोणाधिपति हों और वे ही क्रूर ग्रह पापी होंगे जो त्रिषडायाधीश हों।

उदाहरणार्थ—कर्क लग्न की कुण्डली में चतुर्थेश शुक्र सौम्य ग्रह है परन्तु वह एकादश स्थान का स्वामी (आयेश) होने के कारण से पापी होता है। तथा दशमेश मंगल क्रूर ग्रह है और वह पंचमेश होने के कारण शुभ होता है। मकर, कुम्भ लग्नों की कुण्डलियों में केन्द्रेश मंगल त्रिषडायाधीश होने के कारण से पापी होता है तथा केन्द्रेश शुक्र (सौम्य ग्रह) त्रिकोणाधिपति होने से यहाँ शुभ है।

सामान्य शास्त्रानुसार केन्द्रेश चन्द्रमा शुभ तथा सौम्य ग्रह है और सूर्य क्रूर ग्रह है परन्तु इस शास्त्र के अनुसार वह न तो शुभ है और न पापी ही है। परन्तु इन ग्रहों ने यदि केन्द्राधिपति से सम्बन्ध किया तो वे शुभ होते हैं।

लग्न की गणना त्रिकोण स्थान में होती है कारण त्रि (तीन) कोण के सिवाय त्रिकोण बन नहीं सकता, लग्न त्रिकोणान्तर्गत होने से कन्या लग्न की कुण्डली में दशमेश बुध लग्नेश होने के कारण से, धनु लग्न की कुण्डली में वृहस्पति लग्नेश होने के कारण से शुभ हैं। मीन लग्न की कुंडली

में दशमेश वृहस्पति लग्नेश होने के नाते शुभ होता है और इन्हीं कुंडलियों में चतुर्थेश-सप्तमेश सौम्य वृहस्पति; सप्तमेश-दशमेश सौम्य बुध, चतुर्थेश-सप्तमेश बुध सम होकर भी मारकेश होते हैं और मारक प्रसंग में वे पाप फल देते हैं कारण कि वे त्रिषडायाधीश नहीं होते। अष्टमेश के सम्बन्ध में पूर्व में विवेचन किया गया ही है और वहाँ कहा गया है कि त्रिषडायाधीश हुए बिना अष्टमेश पापी होता है, वह अष्टमेश यदि स्वगृह में होकर लग्नेश भी हो तो शुभ होता है।

यद्यद्भावगतौ वापि यद्यद्भावेशसंयुतौ।
तत्तत्फलानि प्रबलौ प्रदिशेतां तमोग्रहौ ॥१३॥

अर्थः—राहु और केतु जिन-जिन भावों में (स्थानों में) बैठे होते हैं अथवा जिन-जिन भावों के अधिपतियों के साथ बैठे होते हैं, तब उन-उन भावों के अथवा उन-उन अधिपतियों के द्वारा मिलनेवाले जो फल होंगे, वे-वे फल अधिकता से प्राप्त होते हैं।

स्वर्गीय श्री त्रि० गो० नवाथे मराठी टीकाकार इस प्रकार कहते हैं—राहु और केतु ये किसी भी राशि के अधिपति नहीं हैं इसलिये ये ग्रह कौन से फल उत्पन्न करते हैं, यह यहाँ पर कहा गया है। ग्रंथकार ने यह बात स्पष्ट रूप से निर्देशित नहीं की है। कारण राहु और केतु यदि चन्द्रमा के साथ हों अथवा सूर्य के साथ हों तो चन्द्र और सूर्य जो फल देंगे उसमें ये अड़चनें पैदा मात्र करेंगे, उनके फलों की वृद्धि नहीं होगी। जिस किसी के सप्तम स्थान में राहु हो तो निश्चय ही उसकी प्रथम स्त्री जीवित नहीं रह सकती। पंचमस्थ राहु गर्भपात अपत्य नाश करेगा। सारांश यह है कि ये ग्रह सौख्यवर्धक नहीं होकर सौख्य हानि करनेवाले हैं, ऐसा अनुभव है। ये ग्रह जब ३।६।१२ स्थानों में होते हैं तब मात्र ये फलों की वृद्धि करते हैं। तीसरे स्थान में पराक्रमी होता है। छठें स्थान में शत्रु नाश पाते हैं और बारहवें स्थान में सद्व्यय होता है।

स्वर्गीय श्री रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन मराठी टीकाकार—इस प्रकार कहते हैं। राहु और केतु वास्तविक ग्रह नहीं हैं वे तो छाया ग्रह हैं। जब वे अन्य ग्रहों से युक्त होते हैं तभी उनका फलादेश लेना चाहिये अन्यथा नहीं लेना चाहिये। राहु और केतु इनके फल वे जिन स्थानों में हों उतने ही स्थानों सम्बन्धी और जिन ग्रहों से युक्त हों उन ग्रहों के स्थान के सम्बन्धी उनके फल होते हैं। दोनों ही पाप ग्रह हैं, जिस स्थान में होते हैं उस स्थान के सुखों

का नाश करते हैं; वे यदि दूसरे ग्रहों से युक्त हों तो उसी ग्रह के ग्रनुसार उनके भी फल समझना। उपर्युक्त श्लोक में इन ग्रहों को "प्रवलौ" याने वलवान ऐसा विशेषण जो लगाया गया है वह बिलकुल ठीक है कारण राहु व केतु के फल ग्रति तीव्र स्वरूप में देखने को मिलते हैं।

सुश्लोक शतक के टीकाकार कहते हैं कि जिस भाव में ग्रह रहता है उस भाव का ग्राश्रय लेकर ग्रह ग्रपने फल देता है। राहु ग्रौर केतु जिस भाव में हों उसके ग्रनुसार फल देते हैं। दूसरी बात यह है कि तमोग्रह (इन्हें छाया ग्रह भी कहते हैं क्योंकि ये प्रकाशमान ग्रह नहीं हैं) जिस ग्रह के सम्वन्धी हों उसका फल देते हैं। सम्वन्धी किसे कहते हैं—यह ग्रागे चार प्रकार का सम्वन्ध वतलाने के प्रकरण में कहेंगे। परन्तु राहु ग्रौर केतु के सम्वन्ध की व्याख्या करते हुए सुश्लोक शतककार ने केवल दो ही प्रकार का सम्वन्ध कहा है (१) जिस ग्रह के साथ राहु, केतु हों (२) जिस ग्रह के सप्तम में राहु- केतु हों। यह उल्लेख करना ग्रावश्यक है कि पाराशरी के ग्रन्य व्याख्याकारों ने राहु-केतु का सहावस्थान (एक साथ ग्रन्य ग्रहों के साथ वैठना) सम्वन्ध तो माना है परन्तु राहु केतु का दृष्टि सम्वन्ध (कोई इनको देखे या ये किसी ग्रन्य ग्रह को देखें) नहीं माना है। मूल पाराशरी में शब्द ग्राया है "यद्यद्भावगतौ" जिसका **उद्योतकार** ग्रर्थ करते हैं कि जिस ग्रह का जो-जो भाव—वह ग्रह जो फल करेगा वही उस भाव में बैठा राहु या केतु करेगा। इसका ग्रर्थ यह हुग्रा कि मान लीजिये मिथुन में राहु बैठा हो तो मिथुन ग्रौर कन्या दोनों का स्वामी वुध है इसलिये राहु चाहे मिथुन में बैठा हो चाहे कन्या में—इनके स्वामी वुध के ग्रनुसार राहु फल करेगा। प्रायः ग्रह दो राशियों का स्वामी होता है। मिथुन ग्रौर कन्या का स्वामी वुध है इसलिये राहु चाहे मिथुन में बैठा हो चाहे कन्या में—इनके स्वामी वुध के भाँति राहु भी द्विस्थानाधिपतित्व—मिथुन ग्रौर कन्या दोनों के स्वामी वुध का भी फल करेगा। इस प्रकार किसी ग्रह की एक राशि में बैंठने पर भी दोनों राशियों का (ग्रौर दोनों राशियाँ लग्न से जिस भाव में पड़ी हों–उन भावों का) ग्राधिपत्य का फल राहु को दिया गया।

परन्तु टीकाकार यह ग्रर्थ नहीं करते। उनके हिसाव से "यद्यद्भावगतौ" जिस भाव में राहु या केतु हों उस भाव का फल राहु, केतु देगा। उदाहरण के लिए तुला लग्न हो नवम में मिथुन में राहु पड़ा हो तो केवल नवम का फल राहु देगा। मिथुन के स्वामी बुध की राशि कन्या से-या कन्या के

आधिपत्य से राहु का कोई सरोकार नहीं । यह सज्जन रंजनी टीकाकार का भी मत है ।

श्री विनायक शास्त्री ने भी यही अर्थ किया है–जिस-जिस भाव में राहु-केतु हों उस-उस भाव का तथा जिस भावेश के साथ हों उसका फल, प्रबल रूप से राहु और केतु देते हैं । जिस-जिस भावेश के साथ हों यह अर्थ प्रायः सभी मानते हैं इसमें मतभेद नहीं है । श्री विनायक शास्त्री यह भी कहते हैं कि ये पाप ग्रह हैं इसलिये तीसरे, छठें या ग्यारहवें भाव में बैठने से पाप होंगे परन्तु ज्योतिषियों के अनुसार पाप ग्रह कहीं तो बैठे होंगे-उनका तीसरे, छठे, ग्यारहवें में बैठना उत्तम है । शास्त्रीजी कहते हैं कि यदि राहु या केतु त्रिकोण में बैठे हों तो शुभ, व्यय या द्वितीय में बैठे हों तो सम, अष्टम में बैठे हों तो अतिपाप, लग्न में बैठे हों तो शुभ । जिस स्थान में राहु व केतु बैठें उसके अनुरूप फल तो करते ही हैं—जिस भावेश के साथ हों उसके अनुसार भी राहु-केतु शुभ या अशुभ फल करते हैं । कारक के साथ बैठें तो कारक, मारक के साथ बैठें तो मारक । जिस भावेश के साथ बैठें-उस ग्रह के गुण, प्रकृति, स्वभाव, भावेश जन्य फल को ग्रहण कर लेते हैं ।

श्री शास्त्री तुलजा शंकर धीरज राम पंड्या (गुजराथी टीकाकार)—इस प्रकार कहते हैं—

सामान्य रीति से विचार करने पर राहु व केतु इनकी किसी भी राशि के अधिपति के समान गणना नहीं की गयी है और सामान्यतः उनके फल "राहुकेत्वोः फलं सर्वं मन्दवत्कथितं बुधैः" याने राहु और केतु के फल सब विद्वान जनों ने शनि के फल सरीखे कहे हैं या शनि सरीखे मानने में आये हैं । इस ग्रन्थकार के अनुसार (लघुपाराशरी ग्रंथकार) तो राहु और केतु जिस-जिस भाव में हों उस-उस भाव के अनुसार अथवा जिस भावेश के साथ हों उस भावेश के फलों के अनुसार फल देनेवाले होते हैं— इस प्रकार ग्रंथकार ने कहा है । परन्तु इस कथन के अनुसार सम्पूर्ण फल इसी रीति से ऐसा ही फल मिलना शक्य (सम्भव) नहीं दिखाई पड़ता । कारण कि राहु या केतु चन्द्रमा अथवा सूर्य के साथ हों तो चन्द्रमा व सूर्य के समान फल नहीं दे सकेंगे । यदि राहु सप्तम स्थान में हो तो स्त्री के बारे में अनिष्ट फल उत्पन्न किये बिना रहेगा नहीं वह स्त्री की मृत्यु करा देगा उसी प्रकार पंचम स्थान में हो तो संतति के सम्बन्ध में अनिष्ट फल देगा गर्भपात या छोटे बालक का नाश करेगा । इस प्रकार इन स्थानों में वह अनिष्ट फल ही देगा । और इसी तरह बहुत प्रकार के अनिष्ट

फल देते हुए पाये गये हैं। बहुत से विद्वानों के अनुसार राहु और केतु ये तृतीय, षष्ठ अथवा एकादश स्थानों में हों तो उन स्थानों के फलों की वृद्धि करते हैं। यदि ये तृतीय में हों तो मनुष्य को पराक्रमी बनाते हैं, षष्ठ स्थान में हों तो शत्रु का नाश करते हैं और बारहवें स्थान में हों तो धन के सम्बन्ध में सद्व्यय करवाते हैं, इस प्रकार से ये ग्रह शुभफल देते हुए भी दिखाई पड़ते हैं। इस पर से राहु और केतु ये भावों के अनुसार अथवा भावेशों के अनुसार फल देते हैं ऐसा विचार के अंत में खास तौर पर दिखाई नहीं पड़ा है। अमुक स्थान में हो या अमुक ग्रह की स्थिति प्रमाणे या अमुक भावेशों के अनुसार ही फल देंगे ऐसा मात्र कहना सम्भव नहीं है। इसलिये जिस प्रकार से ग्रंथकार ने लिखा है उसी के अनुसार सामान्य रीति से शनि के समान फल राहु केतु के माने गये हैं परन्तु कई बार योग परत्वे विशेष शुभाशुभ फल मिलते हुए दिखाई दिये हैं। इनके सम्बन्ध में बहुत से योगों के फल "जातकी" नामक ग्रन्थ में दिये हुए हैं वे देखने पर खाली होगी। इस ग्रन्थ में लिखा है कि अमुक स्थान में राहु हो और अमुक स्थान में यदि अमुक ग्रह हो तो अमुक जाति का शुभाशुभ फल मिलेगा। इस ग्रन्थ के श्लोक ९२ में कहने में आया है कि "राहु यदि मेष, वृषभ अथवा कर्क लग्न में पड़ा हो तो वह जिस प्रमाण से राज्य प्रसन्न व्यक्ति के सौ अपराध दूर होते हैं उसी प्रमाणे वह सब प्रकार की पीड़ा दूर करता है" इस पर से राहु का भाव से या भावेश से सम्बन्ध हो तो फल मिलते हैं इतने पर ही अवलंबित रहना उचित नहीं होगा।

कुछ ज्योतिषी राहु को राशि होती है अथवा उसे उच्च-नीच राशियाँ हैं ऐसा नहीं मानते और कुछ ज्योतिषी यह मानते हैं कि राहु को राशि होती है और उसकी उच्च-नीच राशियाँ भी हैं और इस कथन का प्रमाण जो "जातकी" ग्रन्थ में दिया है वह इस प्रकार है—

कन्या राहुगृहं प्रोक्तं राहूच्चं मिथुनं स्मृतम्।
राहोर्नीचं धनुः प्रोक्तं केतोः सप्तममेव च॥

कन्या राशि राहु की स्वगृह राशि मानी गयी है याने कन्या राशि का स्वामी राहु है और उसी प्रकार मिथुन राशि राहु की उच्चराशि मानी गयी है और धनु उसकी नीच राशि है। इस प्रकार राहु की सप्तमराशि याने मीन राशि केतु की स्वराशि मानी गयी है। उसी प्रकार राहु की उच्चराशि मिथुन है और उसकी सप्तमराशि धनु केतु की उच्चराशि मानी गयी है और धनु-राशि की सप्तम राशि मिथुन केतु की नीच राशि है। कुछ मतों के अनुसार

राहु की मिथुन व कन्या राशि उसकी स्वराशि है और केतु की धनु और मीन स्वराशि हैं

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर गुजराथी टीकाकार इस प्रकार कहते हैं—

'राहु और केतु इनको ग्रहों सरीखा मानने में नहीं आता, उन्हें उपग्रह सरीखा मानते हैं। सर्वमान्य जो मुख्याचार्यों के ग्रन्थ हैं उनमें राहु, केतु, उनकी स्वराशि मूलत्रिकोण राशि, उच्चनीच राशि, ग्रह, मित्रता, बलाबल प्रकरण वगैरह जो मुख्य प्रकरण हैं उस बाबत कुछ भी निर्देश नहीं दिया है, उन ग्रंथों में तो सात ग्रह और उनकी १२ बारह राशियों के सम्बन्ध में ही सिर्फ निर्देश है। इस पर से यह सिद्ध होता है कि ज्योतिषाचार्यों ने उनके प्रमाणभूत ग्रन्थों में राहु और केतु को स्वामित्व नहीं दिया है।

विद्यारत्न पंडित-माधवप्रसाद व्यास टीकाकार (हिन्दी भाषा के) कहते हैं— राहु केतु जिस-जिस स्थान में रहें वा जिस जिस स्थान के स्वामी के साथ रहें तो प्रबल होने पर भी उन-उन स्थानों के स्वामी ग्रहों का ही फल करते हैं। अर्थात् वे दोनों स्वतंत्र शुभ या अशुभ नहीं करते किन्तु शुभ और अशुभ ग्रह के फल में सहायता करते हैं।

पंडित रामेश्वर भट्ट—हिन्दी टीकाकार—कहते हैं कि—

राहु केतु जिस-जिस ग्रह के भाव में बैठे होंय, अथवा जिस जिस भाव के स्वामी के साथ बैठे होंय, उसी के अनुसार विशेष करके फल देते हैं।:

राज-ज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री हिन्दी टीकाकार-कहते हैं कि—

प्रबल राहु केतु जिस भावेश से युक्त हों वा जिस भाव में स्थित हों, उसी के समान फल देते हैं।

ज्योतिषाचार्य-तीर्थ पंडित सीताराम झा हिन्दी टीकाकार—कहते हैं कि—

"प्रबल होने पर भी राहु और केतु जिस-जिस भावमें और जिस-जिस भावेश के साथ रहते हैं उसी के अनुसार शुभ या अशुभ फल देते हैं॥ १३॥

अत्र युक्तिवचनम्—

विमर्दकत्वादर्केन्द्वोः प्रबलावित्युदीरितौ।
बिम्बाभावाच्च तौ स्वं स्वं फलं नो दातुमर्हतः॥

राहु और केतु ग्रहण के द्वारा सूर्य और चन्द्र के विमर्दक होने के कारण प्रबल और पाप ग्रह भी माने गये हैं, तो भी आकाश में अपने बिम्ब के अभाव होने के कारण स्वातन्त्र्य से अपने स्वभावानुसार फल नहीं दे सकते हैं। कारण

कि आकाशस्थित ग्रह और नक्षत्रों के बिम्ब के परस्पर सम्बन्ध से ही पृथ्वी-स्थित शरीरधारियों को शुभाशुभ फल प्राप्त होता है। राहु और केतु तो सूर्य और चन्द्रमा के मार्ग के सम्पात (संयोग) प्रदेश रूप, बिम्बहीन हैं, अतः जिस समय जिस राशि में अथवा जिस भावेश के साथ रहते हैं उसी राशि अथवा भावेश के बिम्ब के स्वभावानुसार शुभ या अशुभ फलकारक कहे गये हैं।

चन्द्रमा का भ्रमणमार्ग पृथ्वी के भ्रमणमार्ग को जिन दो जगहों पर छेदता है, उनमें एक छेदन विन्दु को राहु और दूसरे को केतु ऐसा कहते हैं। राहु से ठीक सातवें स्थान में केतु सदैव रहता है (स्थान में याने राशि में) राहु और केतु जिन स्थानों में होते हैं उनके शुभाशुभ फल दाक्षिणात्य आचार्यों ने प्रमुखता से कहे हैं। उत्तराचार्यों में 'वराहमिहिर' और 'कल्याण वर्मा' इन्होंने अपने ग्रन्थों 'वृहज्जातक' और 'सारावली' में राहु केतु को अधिक प्राधान्य नहीं दिया है। परन्तु वालारिष्ट प्रकरणों में उनकें बारे में निर्देश दिया है। सारावली ग्रन्थ में कहा है कि 'राहुः केतुश्च द्राविड़े' इन वचनों द्वारा ऐसा कहने में आया है कि दाक्षिणात्य आचार्यों ने राहु केतु को अधिक प्रधानता प्रदान की है। इस ग्रन्थ में (लघुपाराशरी) और इसी प्रकार पाराशरी होराशास्त्र में राहु और केतु इनको दशाधिपति माना गया है। परन्तु इस ग्रन्थ के १३वें श्लोक के अनुसार राहु और केतु के भावगत शुभाशुभफलों के वारे में सिर्फ इतना ही निर्देशन करने में आया है कि वलवान राहु-केतु जिस-जिस भाव में बैठे हों अथवा जिस-जिस भावेश के साथ युक्त हों, तो उस उस भाव के अनुसार अथवा उस-उस भावेश के अनुसार फल देते हैं इसलिए कौन से भाव में हों तब या कौन से भावेश के साथ राहु केतु होने पर उनको बलवान कहना चाहिये ऐसा प्रश्न उपस्थित होता है, इसलिए पाराशर होरा-शास्त्र में एक श्लोक उस श्लोक से सम्बन्धित इस प्रकार का है।—

यद्यद्भावगतौ वापि यद्यद्भावेशसंयुतौ।
तत्तत्फलानि प्रबलौ प्रदिशेतां तमोग्रहौ ॥१३॥

अर्थः—राहु और केतु जिस-जिस भाव में (स्थान में) हों या जिस-जिस भाव के अधिपति के साथ हों, उस-उस भाव के या उस-उस अधिपति के द्वारा प्राप्त होनेवाले जो फल हों उनके अनुरूप राहु और केतु मात्र फल देते हैं। 'मात्र' कहने का आशय यहाँ इतना ही है कि भाव अथवा भाव के स्वामी जो शुभ या अशुभ फल देते हैं उतना ही फल राहु केतु देते हैं, इससे अधिक या

कम फल नहीं देते, ऐसा समझना। अब कौनसे भावत्व शुभ समझना चाहिये, उस सम्बन्ध में इस प्रकार विचार वृहत् पाराशरी ग्रन्थ में है—

चन्द्रभानू विना सर्वे मारका मारकाधिपाः।
षष्टाष्टमव्ययेशास्तु राहुः केतुस्तथैव च ॥

अर्थः—सूर्य और चन्द्रमा को छोड़कर अन्य सब ग्रह मारक स्थानों के स्वामी हों तो मारक होते हैं तथा ६।८।१२ स्थानों के स्वामी और राहु केतु भी (२।७ मारक स्थान में हों तो) मारक बनते हैं। इनमें लग्न को छोड़ा जाय तो चतुर्थ और दशम ये केन्द्र स्थान हैं और पंचम नवम ये त्रिकोण स्थान हैं। इन चार स्थानों को शुभ भाव माना है। राहु और केतु ये स्वभावतः पापी ग्रह हैं। इस कारण से वे यदि उपर्युक्त केन्द्र और त्रिकोण स्थानों में हों तो वे अकेले शुभफल देंगे ऐसा नहीं है परन्तु उपर्युक्त भावों में बैठे हों याने ४-१०-५-९ भावों में पड़े हों तो और यदि उन भावों के स्वामी शुभग्रह हों अथवा अन्य भावों के स्वामी शुभग्रह होकर उन स्थानों में राहु और केतु के साथ बैठे हों अथवा उन भावों में पड़े हुए राहु और केतु शुभग्रहों से दृष्टि-सम्बन्ध करने वाले हों—तो शुभफल देते हैं और उसी प्रकार ४-१०-५-९ स्थानों में राहु और केतु हों परन्तु उन स्थानों के स्वामी पापग्रह हों, अथवा वे अन्य भावों के स्वामी पापग्रह होकर राहु और केतु के साथ पड़े हों अथवा उन पापग्रहों के साथ राहु और केतु इनका सम्बन्ध हुआ हो तो वे राहु और केतु अशुभफल देते हैं। इस प्रकार का लघु पाराशरी और उसी प्रकार से पाराशरी होरा इस ग्रन्थ में राहु केतु के विषय में सिद्धान्त है। उपर्युक्त कहे अनुसार राहु और केतु इन्हें राशियों के स्वामी के समान मुख्य ग्रन्थों में आचार्यों ने इन्हें प्रमाणभूत नहीं गिना है परन्तु अन्य ग्रन्थों के संकीर्ण प्रकरणों में कहीं-कहीं उन्हें राश्यधिप समान मानकर गौणपद दिया है। इसका भी हम विचार करें।

पाराशरी होराशास्त्र-दशाप्रकरणों में राहु और केतु का उच्च, नीच, मूल-त्रिकोण और स्वगृह, निम्नलिखित अनुसार माना हैं। उसी प्रकार सर्वार्थचिन्तामणि, जातकाभरण, जैमिनीयसूत्र इन ग्रन्थों में निम्नलिखित श्लोकों में कहे अनुसार उन्हें राशियों के स्वामित्व जो दिये गये हैं, वे मानने में आये हैं।

पाराशरी—राहोस्तु वृषभं केतोर्वृश्चिकं तुंगसंज्ञकम्। मूलत्रिकोणं कर्कश्च युग्मचापं तथैव च ॥ कन्या च स्वगृहं प्रोक्तं मीनं च स्वगृहं स्मृतम्। तद्दाये बहुसौख्यं च धनधान्यादिसम्पदाम् ॥

सर्वार्थ चिन्तामणि--राहोर्वृषोऽथ केतोस्तु वृश्चिकं तुंगसंज्ञकम् । मूलत्रिकोणं कर्कश्च क्रियं मित्रभमुच्यते ।। एतत्सप्तमराशिस्तु केतोर्मूलत्रिकोणभम् ।।

जातकाभरण--कन्या राहुगृहं प्रोक्तं राहूच्चं मिथुनं स्मृतं । एतत्सप्तमराशिस्तु केतोश्चैवं तथैव च ।।

जैमिनीय सूत्र--नाथान्ताः समाः प्रायेण ।

निम्नलिखित कोष्ठक पर से ध्यान में आवेगा कि उपर्युक्त आचार्यों ने राहु केतु के लिए जो राशियों की योजना की है, वे राशियाँ इस प्रकार समझना कि राहु, वृषभ, मिथुन, कर्क और कन्या इन चार राशियों में पड़ा हो तो उसे शुभ मानकर बलवान समझना चाहिये और उसी प्रकार केतु, वृश्चिक, धनु, मकर और मीन इन राशियों में से किसी भी राशि में हो तो उसे शुभ मानकर बलवान समझना । सिर्फ इतना ध्यान में रखना चाहिये कि ये दोनों किसी पापग्रह से युक्त तो नहीं हैं, इस पर से मुख्य सिद्धान्त ऐसा निकलता है कि राहु-केतु शुभस्थान अर्थात् ४-५-९-१० इनमें होकर पापग्रहों से युक्त और दृष्ट नहीं होना चाहिये और वे यदि शुभग्रहों से युक्त वा दृष्ट हों तो निश्चयपूर्वक शुभफल देनेवाले होते हैं । राहु और केतु इनकी राशियों के विषय में अनिश्चयात्मकता दिखाई देती है और पाराशरी होराशास्त्र में विरोधाभासयुक्त वचन मालूम पड़ते हैं ।

उदाहरणार्थ—पाराशरी होराशास्त्र में 'शयनाद्यवस्थाफलं' प्रकरण में कहा है कि मेष, वृषभ, मिथुन और कन्या राशि में केतु हो तो वह धन और समृद्धि देनेवाला होता है और अन्य राशियों में हो तो रोगों की वृद्धि करनेवाला होता है—

आधार	उपग्रह	उच्चराशि	मूलत्रिकोण-राशि	स्वराशि	मित्र राशि
पाराशरी	राहु	वृषभ	मिथुन,	कन्या	—
	केतु	वृश्चिक	कर्क, धनु	मीन	—
सर्वार्थ चिन्तामणि	राहु	वृषभ	कर्क	—	मेष
	केतु	वृश्चिक	मकर	—	तुला
जातकाभरण	राहु	मिथुन	—	कन्या	—
	केतु	धनु	—	मीन	—
जैमिनीय सूत्र	राहु	—	—	कुम्भ	—
	केतु	—	—	वृश्चिक	—

उपर्युक्त कोष्ठक में पाराशर ने राहु को जिस राशि में शुभ माना है उसी

राशि में 'शयनाद्यवस्था फल' प्रकरण में केतु को शुभ कहा है। यह विरुद्ध वाक्य है।

इस ग्रन्थ में राहु की महादशा में अन्तर्दशा प्रकरण में ऐसा कहा है कि

कुलीरे वृश्चिके चैव कन्यायां चापगेऽपि वा।
तद्भुक्तौ राजसम्मानं वस्त्रवाहनभूपणम् ॥

राहु, कर्क, वृश्चिक, कन्या, धनु राशि में हो तो राजसम्मान, वस्त्र और अलङ्कार देता है और उपर्युक्त कोष्ठक में केतु, वृश्चिक धन, मीन राशि में शुभफल देनेवाला माना है। यह विरोधाभास है। इसके उपरान्त पाराशरी में कारकांश कुण्डली के बारहवें भाग का फल जो कहा है वह इस प्रकार है—

मेषेऽथ धनुषि वापि कारकांशे व्यये शिखी।
शुभग्रहेण सन्दृष्टे कैवल्यपदमाप्नुयात् ॥

मेष, धनु और मीन राशि में शुभग्रह से दृष्ट ऐसा केतु हो तो कैवल्यपद प्राप्त करा देता है। ऐसा कहा है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट दिखाई देता है कि राहु और केतु को राशियों के स्वामित्व देने में परस्पर विरोधी वाक्य हैं, उनमें उस विषय में पाराशरी होराशास्त्र में प्रधानतः निर्देश किया हुआ मालूम नहीं देता। इसलिए इनके राशियों के स्वामित्व के सम्बन्ध में मान्यता रखना उचित नहीं है परन्तु इस ग्रन्थ के १३वें श्लोक के अनुसार राहु और केतु को जो भाव और शुभाशुभ ग्रहों के सम्बन्ध से शुभाशुभ मानने का सिद्धान्त जो ऊपर कहा हुआ है वही यथार्थ है।

स्पष्टीकरण :—

जिस तरह विषुव तथा क्रान्ति इन दो बड़े वृत्तों के दो सम्पात स्थानों को क्रमशः सायन मेषादि तथा सायन तुलादि सम्पात (अयन) कहते हैं उसी प्रकार क्रान्तिवृत्त तथा चन्द्रमार्ग वृत्ति के दो सम्पातों को राहु और केतु ऐसा कहते हैं। अर्थात् चन्द्रमा का भ्रमण मार्ग पृथ्वी के भ्रमणमार्ग को जहाँ दो स्थानों पर छेदता है, उनमें से एक छेदनबिन्दु को राहु और दूसरे को केतु कहते हैं। सायन मेषादि सम्पात वह स्थान है जहाँ से सूर्य भूमध्यरेखा (विषुववृत्त) से उत्तर की तरफ जाते हुए दिखाई देता है इसी तरह राहु क्रान्तिवृत्त में वह चन्द्रमार्ग तथा पृथ्वीमार्ग का सम्पात स्थान है जहाँ से चन्द्रमा क्रान्तिवृत्त से उत्तर की तरफ होने लगता है अर्थात् चन्द्रमा का शर उत्तर की तरफ होने लगता है।

इसके विपरीत जहाँ से सूर्य विषुववृत्त से दक्षिण की तरफ होने लगता है वह स्थान सूर्य का सायन तुलादि सम्पात है और इसी प्रकार क्रान्तिवृत्त में जहाँ से चन्द्रमा दक्षिणशर होने लगता है वह केतु सम्पात है। अर्थात् वास्तव में राहु और केतु, जिस स्थान से सूर्य पृथ्वी तथा चन्द्रमा के कक्षावृत्तों से उत्तर की ओर चलता है उस विन्दु को राहु तथा जिस सम्पात स्थान से चन्द्रमा क्रान्तिवृत्त से दक्षिण की ओर गमन करता है, उस विन्दु को केतु माना गया है। इस प्रकार यह तो स्पष्ट हो गया कि राहु और केतु ठोस ग्रह नहीं, अपितु गगनमण्डल में चन्द्र-गमन को ठीक प्रकार से समझने के लिए दो निर्धारित विन्दु हैं जिन्हें राहु और केतु कहा जाता है। ये दोनों केवल कल्पित ग्रह हैं क्योंकि ये पार्थिव नहीं है, केवल वायवीय हैं, परन्तु इतना होने पर भी गगन-मण्डल में इनका स्थान तो सुरक्षित है ही। राहु और केतु इन दो छेदन विन्दुओं में से राहु को ही महत्त्व है। गणित में केतु का गणित नहीं होता। राहु का ही गणित किया जाता है। राहु से १८० अंशोंपर (६ राशि) अंतर (दूरी) पर सदैव केतु होता है अर्थात् मेष राशि में राहु हो तो तुला राशिपर केतु होना ही चाहिये। केतु को राहु को छोड़कर कहीं भी भटकते नहीं पाया जाता। चन्द्रमा जब राहु या केतु इनके बीच में आता है तब वह क्रांतिवृत्त पर होता है और उस वक्त उसका शर शून्य होता है। चन्द्रमा के उत्तर विषुवांश का जहाँ से आरंभ होता है, वही राहु और दक्षिण विषुवांश का जहाँ से आरंभ होता है वहीं केतु है। किसी भी ग्रहण के समय चन्द्रमा राहु केतु में या उसके निकट ही होता है। वह राहु केतु में ही होना चाहिये ऐसा नहीं है। चन्द्रमा का शर शून्य अथवा बहुत ही थोड़ा हो तभी ग्रहण संभव होता है। अस्तु,

सायन सम्पात विन्दु क्रांति वृत्त में ५०°–२६" पचास कला और २६ विकला इतने वार्षिक विलोम राशि से चल रहा है। उसी प्रकार राहु और केतु भी विलोम गति से १९° उन्नीस अंश वार्षिक गति से चल रहे हैं। सायन सम्पात का एक भचक्र भ्रमण का काल (समय) करीब-करीब २६,००० छब्बीस हजार वर्षों का है जब कि राहु केतु का केवल १९ वर्षों का है। सायन के दोनों सम्पात तथा राहु केतु इनके राश्यादि स्पष्ट सदैव परस्पर एक दूसरे से १८०° दूरी पर होते हैं और इनकी गति सदैव विलोम रहती है।

राहु केतु स्थानों पर (सम्पात पर) जब चन्द्रमा आता है तब पृथ्वी पर (तम) ग्रहण की स्थिति उत्पन्न होती है। इसी दृष्टि से राहु तथा केतु को तम अथवा छाया ग्रह माना है वास्तविक वे अन्य ग्रहों के समान ठोस ग्रह नहीं है।

इन दोनों तम (छाया) ग्रहों को अपनी खुद की ऐसी कोई भी राशि नहीं है। क्रांतिवृत्त की (पृथ्वी के प्रदिक्षणा मार्ग की) जिस मार्ग पर छाया पड़ती है उस समय की वही उनकी राशि होती है इसलिए कहा गया है कि तमो ग्रह जिस राशि में (भाव में) हों तो उसके अनुरूप फल देते हैं। उस सयय वे उस भाव के अधिपति होते हैं। उनके साथ जो ग्रह होगा उस ग्रह के गुणों के तारतम्य से उनका फल मिलेगा। राहु या केतु के साथ यदि कोई भी ग्रह नहीं हो तो वे जिस स्थान में होंगे उस भावानुरूप फल देते हैं। इस कारण से राहु यदि अकेला त्रिकोण में हो तो शुभ, अष्टम में हो तो भी शुभ (कारण अष्टमेश यदि अष्टमस्थ हो तो शुभ माना गया है), केन्द्र में हो तो सम, द्वितीय-सप्तम में हों तो मारकेश, द्वादश में हो तो सम परन्तु व्ययकारक होता है। त्रिषडाय में हो तो पापी होता है। ग्रंथांतर में (अन्य ग्रंथों में) राहु को क्रूर तथा अशुभ माना गया है केतु को सम अथवा शुभ माना गया है।

योगज-फल-विचार (योगकारक-फल) में राहु केतु जब केन्द्र में होकर त्रिकोणेश से सम्बन्ध करते हैं तब योग कारक होते हैं। परन्तु यहाँ पर सम्बन्ध की व्याख्या "संयुती" शब्दान्तर्गत ऐसी ही करनी चाहिये। यहाँ दृष्टि-सम्बन्ध विहित नहीं। राहु केतु का अन्य ग्रहों से सम्बन्ध सिर्फ उनके साथ रहनेवाले ग्रह के साथ ही मानना पड़ेगा। अपनी खुद की कोई राशि न होने से उनका किसी भी दूसरे ग्रहों से सम्बन्ध, सिवाय स्थान सम्बन्ध के अन्य दूसरे श्रेणी का सम्बन्ध नहीं हो सकता। राहु और केतु यदि सप्तम अथवा द्वितीय स्थान में हों तो उन्हें मारकेश मानना चाहिये या नहीं इस बाबत इस ग्रंथ में कोई भी स्पष्ट श्लोक दिया हुआ नहीं है। सौम्य ग्रह बुध, वृहस्पति, शुक्र, चन्द्र ये सप्तमेश होते हैं तब मारकेश होते हैं परन्तु यदि क्रूर ग्रह मारकेश (सप्तम) हों तो उनके मारक फल नगण्य माने गये हैं। इस न्याय रीति से राहु (क्रूर) ग्रह को मारकेश के दोष से मुक्त होना चाहिये ऐसा लेखक का मत है, परन्तु यदि सप्तमस्थ अथवा द्वितीयस्थ राहु केतु के साथ सौम्य ग्रह द्वितीयेश अथवा सप्तमेश हो तो राहु केतु निश्चय ही मारकेश होंगे।

उदाहरणार्थः—मेषलग्न की कुण्डली में सप्तमस्थ अथवा द्वितीयस्थ केतु यदि शुक्र के साथ हो तो निश्चयपूर्वक वह प्रबल मारकेश होगा और यदि वह अकेला ही हो तो साधारण मारकेश, तुलेश या वृषेश इस नाते से हो सकता है। वृषभ लग्न की कुण्डली में राहु अथवा केतु यदि मंगल के साथ हो तो वह नाम मात्र मारकेश होगा और यदि वह बुध, के साथ हो तो वह तृतीय-श्रेणी का

मारकेश होगा। मिथुन लग्न की कुण्डली में सप्तमस्थ राहु अथवा केतु यदि किसी भी ग्रह के साथ नहीं होगा फिर भी वह मारकेश वृहस्पति के गृह का स्वामी होगा। उस गृह में यदि वृहस्पति वैठा भी हो तो भी राहु या केतु प्रवल मारकेश बनेगा इसमें संशय नहीं है।

राहु-केतु त्रिकोण में किसी भी त्रिषडायाधीश के साथ हों तो वे त्रिकोण + त्रिषडाय इनके मिश्रित वलावल के अनुरोध से फल देंगे। सारांश यह है कि इस शास्त्र के अनुसार राहु और केतु इनको सदैव स्वगृह में ही समझना चाहिये। "यदि केन्द्रे त्रिकोणे वा निवसेतां तमोग्रहौ। नाथेनान्यन्तरेणापि सम्वन्धात् योगकारकौ" इस श्लोक के अनुसार केन्द्रकोणस्थ राहु केतु यदि अन्य केन्द्र त्रिकोणेशों से सम्बन्ध करेंगे तो वे योगकारक (विशेष शुभफल दाता) होते हैं।

इस श्लोक के सम्बन्ध में गुजराती भाषा के टीकाकार श्री शास्त्री तुलजा शंकर धीरजराम पण्ड्या और श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर के विचार और अभिप्राय जो ऊपर दिये है वे पढ़ने योग्य हैं।

संज्ञा प्रकरण का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ। इस समाप्त हुए अध्याय में ग्रहों के शुभत्व तथा पापत्व, उनके गृह-स्वामित्व के अनुरोध, ये कहे गये हैं। वे ग्रह अकेले हो किस प्रकार से शुभ या अशुभ होते हैं, इसकी जानकारी कही गयी है। अव वे ही ग्रह यदि किसी भी अन्य गृह-स्वामी से सम्वन्ध करें तो उनके शुभत्व में अथवा पापत्व में कैसे और किस प्रकार के परिवर्तन होते हैं इस सम्वन्ध का विवेचन आगे आनेवाले योगाध्याय प्रकरणों में की गयी है।

●

॥ अथ राजयोगाध्यायः ॥

केन्द्रत्रिकोणपतयः संबन्धेन परस्परम् ।
इतरैरप्रसक्ताश्चेद्विशेषफलदायकाः ॥१४॥

अर्थ :—वे केन्द्र और त्रिकोणपति जिनकी अपनी दूसरी राशि भी केन्द्र और त्रिकोण को छोड़कर अन्य स्थानों में नहीं पड़ती हो, तो वे यदि परस्पर सम्बन्ध करें तो उनके योगज-फल (योगकारक फल) विशेष शुभ होते हैं।

पंडित सीताराम झा हिन्दी टीकाकार इस प्रकार कहते हैं—

भाष्य—केन्द्रेश और त्रिकोणेश में परस्पर सम्बन्ध हों इस हालत में यदि दूसरे स्थान (केन्द्र त्रिकोण से भिन्न स्थान) के स्वामी से सम्बन्ध (सहवास आदि) न हो तो विशेषकर शुभ फलदायक होते हैं। अर्थात् यदि दूसरे स्थान के स्वामी से भी सम्बन्ध हो तो सामान्य रूप से शुभकारक होते हैं। यह विशेष शब्द के प्रयोग से ही सिद्ध होता है। पूर्व संज्ञाध्याय में सिद्ध हो चुका है कि केन्द्रेश (सुख ४, स्त्री ७, राज्य १० स्थान के स्वामी) अपने स्वभाव को भूल जाते हैं उस हालत में उन (केन्द्रेश) का जैसे स्वभाववाले ग्रहों से सम्बन्ध होगा वैसा ही फल देंगे। अतः यदि केन्द्रेश को केवल विद्याधिकारी (पंचमेश) या धर्माधिकारी (नवमेश) या इन दोनों से ही सम्बन्ध हो तो अवश्य विशेष शुभ फल देगा। यदि किसी दूसरे ३, ६ आदि (पापस्थानाधीश) से भी सम्बन्ध होगा तो सामान्य रूप से फल देगा।



उदाहरण—केन्द्र (४।७।१०) में चतुर्थेश (सुखेश) शुक्र को पंचमेश बुध और नवमेश शुक्र से सहवास सम्बन्ध है। इसलिये शुक्र योगकारक हुआ तथा लग्न में है इसलिये लग्नेश (शनि) से भी सम्बन्ध हुआ, अतः अपनी दशा में शुक्र पूर्ण सुखप्रद होगा तथा सप्तमेश (सूर्य) को लग्नेश से अन्यतर स्थान और दृष्टि सम्बन्ध है, लग्नेश द्वादशेश भी है अतः सूर्य की दशा में साधारण रूप से स्त्री का सुख होगा तथा दशमेश मंगल नवमेश के स्थान में है इसलिये मंगल की दशा में राज्यवृद्धि अवश्य होनी चाहिये।

युक्ति वचनम्—

विस्मरन्ति स्वभावं स्वं जाया-राज्य-सुखाधिपाः ।
शुभसम्बन्धतस्तेषां शुभत्वमुचितं स्मृतम् ।।

स्त्री, राज्य, सुख (७।१०।४) के अधिकारी अपने स्वभाव को भूल जाते हैं, अतः केवल शुभ (१।५।९) स्थान के स्वामी के सम्बन्ध होने से विशेष शुभत्व उचित ही कहा गया है। यदि उस केन्द्रेश को दूसरे से भी सम्बन्ध होगा तो सामान्य शुभत्व होगा। इसी से कहा है "इतरैरप्रसक्ताश्चेत्" यदि दूसरे से सम्बन्ध न हो।

पंडित श्री रामेश्वर भट्ट टीकाकार कहते हैं—केन्द्र और त्रिकोण के स्वामी आपस में सम्बन्ध करते हों और तृतीय, षष्ठ, एकादश स्थानों के स्वामियों से सम्बन्ध न हो, तो विशेष फल के देनेवाले होते हैं।

सम्बन्ध चार प्रकार का है—१–अन्योन्य राशि स्थित अर्थात् क्षेत्र सम्बन्ध २–परस्पर दृष्टि सम्बन्ध, ३–अन्यतर दृष्टि सम्बन्ध, ४–सहावस्थान लक्षण। अन्योन्य राशि स्थित सम्बन्ध उसे कहते हैं कि जैसे मेष या वृश्चिक का सूर्य हो और भौम सिंह का हो तो सूर्य और भौम का क्षेत्र सम्बन्ध हुआ। २–परस्पर दृष्टि सम्बन्ध वह है जैसे मेष में मंगल हो और तुला का सूर्य हो अर्थात् प्रत्येक ग्रह का सप्तम देखना। ३ अन्यतर दृष्टि सम्बन्ध वह है जैसे सिंह का मंगल हो और मीन राशिपर स्थित सूर्य को पूर्ण देखता हो और सूर्य भौम को न देखे अर्थात् एक ग्रह देखता हो एक न देखता हो। ४ सहावस्थान लक्षण वह है कि एक राशि में ही ग्रह मिले बैठे हों जैसे सूर्य भौम दोनों वृषराशि के हों। ये चारो सम्बन्ध पूर्व-पूर्व बली हैं।

विद्यारत्न पंडित माधवप्रसाद व्यास—टीकाकार कहते हैं कि यदि तृतीय, षष्ठ, एकादश और अष्टम स्थान के साथ सम्बन्ध न रखते हुए प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और दशम भाव के स्वामी, पंचम और नवम भाव के स्वामी के साथ सम्बन्ध रखते हों तो वे विशेष फल देनेवाले होते हैं। केन्द्र और त्रिकोण के स्वामियों का सम्बन्ध चार प्रकार का होता है। प्रथम एक का दूसरे के स्थान में रहना, द्वितीय एक की पूर्ण दृष्टि दूसरे पर होना, तृतीय दोनों में से एक की पूर्ण दृष्टि होना परन्तु दूसरे की दृष्टि न होना और चतुर्थ एक ही स्थान में दोनों का रहना। १–जैसे मेष या वृश्चिक राशि में सूर्य होवे और सिंह में मंगल हो तो दोनों का सम्बन्ध होता है, २–मेष राशि में मंगल रहे और तुला में सूर्य तो दोनों की दोनों पर पूर्ण दृष्टि रहती है, ३–सिंह राशि का मंगल मीन

राशि के सूर्य को देखता है परन्तु सूर्य मंगल को नहीं देखता, ४–सर्य और मंगल दोनों का वृषभ राशि में होना—इन चारों सम्बन्धों में पहिला-पहिला सम्बन्ध अगले-अगले से बलवान् होता है। इसी भाँति और-और राशि स्वामियों का सम्बन्ध समझना।

राजज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि केन्द्र अर्थात् लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम भवन के स्वामी ग्रहों में से कोई ग्रह त्रिकोण अर्थात् पंचम और नवम भवन के स्वामी ग्रहों में से किसी ग्रह के साथ सम्बन्ध करते हों किन्तु अन्य किसी ग्रह से इनका सम्बन्ध न हो तो ऐसी अवस्था में ये ग्रह अधिक शुभ फल देनेवाले होते हैं।

स्वर्गीय वि० गो० नवाथे (मराठी टीकाकार) कहते हैं—यदि केन्द्र और त्रिकोण इन स्थानों के स्वामी एक दूसरे के साथ सम्बन्ध करें और यदि वे ३।६।११ इन स्थानों के अधिपति न हों, तो वे राजयोग करनेवाले होते हैं। सम्बन्ध चार प्रकार का है—१–अन्योन्यराशि स्थित सम्बन्ध जैसे मंगल सिंह राशि में और सूर्य मेष या वृश्चिक राशि में हो तब उनमें अन्योन्य राशि स्थित सम्बन्ध है ऐसा कहते हैं। २–परस्पर दृष्टि सम्बन्ध—जैसे मेषस्थ मंगल तुला राशि के सूर्य को देखता है और सूर्य मंगल को देखता है। ३–अन्यतर दृष्टि सम्बन्ध जैसे सिंह राशि का मंगल मीन राशि के सूर्य को देखता है परन्तु उस सूर्य की मंगल पर दृष्टि नहीं होती; ४–सहावस्थान सम्बन्ध—जैसे मंगल और सूर्य वृषभ राशि में एकत्र हैं, तो यह सम्बन्ध होता है। ये सम्बन्ध उत्तरोत्तर बलवान् हैं।

स्वर्गीय पंडित रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) कहते हैं कि—प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, दशम, नवम और पंचम इन स्थानों के अधिपति जो होंगे उनका परस्पर सम्बन्ध होवे तो योग होता है और इस योग पर उत्पन्न मनुष्य को अत्यन्त शुभ फल प्राप्ति होती है। परन्तु पूर्वोक्त सम्बन्ध कर्तृक ग्रहों का तृतीय, षष्ठ, लग्न और अष्टम इन स्थानों के अधिपतियों के साथ मात्र नहीं होना चाहिये। यदि इनसे सम्बन्ध हो तो वे अत्यन्त शुभ फल देनेवाले नहीं होते।

यह श्लोक अति महत्त्व का है। केन्द्र और त्रिकोण इनके अधिपतियों का परस्पर सम्बन्ध इतने प्रकार से सम्भव है—

(१) कोई भी ग्रह एक केन्द्र और एक त्रिकोण का स्वामी होना चाहिये, इसमें २ भेद हैं।

(i) वह ग्रह केन्द्र या त्रिकोण में होना चाहिये अथवा

(ii) वह ग्रह केन्द्र या त्रिकोण को छोड़कर अन्य स्थान में होना चाहिये। सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों एक ही राशि के स्वामी हैं अर्थात् यह योग सूर्य चन्द्रमा का होना सम्भव नहीं है। अन्य ग्रहों में से बुध और बृहस्पति ये जिन राशियों के स्वामी होते हैं वे राशियाँ एक केन्द्र में और दूसरी केन्द्र में हो नहीं सकतीं, बुध और बृहस्पति एक केन्द्र के स्वामी हों तो वे दूसरे केन्द्र के स्वामी भी होते हैं; त्रिकोण के नहीं हो सकते। अब शेष रहे हुए ग्रह मंगल, शुक्र और शनि इनका ही यह योग सम्भव है।

कर्क लग्न हो तो मंगल पंचम और दशम स्थानों का स्वामी होता है।
मकर लग्न हो तो शुक्र पंचम और दशम स्थानों का स्वामी होता है।
सिंह लग्न हो तो मंगल चतुर्थ और नवम स्थानों का स्वामी होता है।
तुला लग्न हो तो शनि चतुर्थ और पंचम स्थान का स्वामी होता है।
वृषभ लग्न हो तो शनि नवम और दशम स्थान का स्वामी होता है।

(२) एक स्थान का स्वामी दूसरे के स्थान में होना—इनमें भेद चार हैं—

(अ) केन्द्र का स्वामी केन्द्र में होना

(आ) त्रिकोण का स्वामी त्रिकोण में होना

(इ) त्रिकोण का स्वामी केन्द्र में होना अथवा

(ई) केन्द्र का स्वामी त्रिकोण में होना

(३) केन्द्र का स्वामी और त्रिकोण का स्वामी इनका एकत्र योग होना–इसमें दो भेद हैं।

(i) यह योग केन्द्र या त्रिकोण में होना।

(ii) यह योग केन्द्र अथवा त्रिकोण छोड़कर अन्य स्थान में होना, इस प्रकार से सब ग्रहों का समावेश हो सकता है।

पहिला प्रकार सिर्फ मंगल, शुक्र और शनि के पुरता ही था, वैसा यह नहीं है। केन्द्र-त्रिकोण के मुख्य योग और उनके भेद अनेक हो सकते हैं वे तारतम्य से जानना।

(४) केन्द्र के स्वामी की त्रिकोण के स्वामी पर या त्रिकोण के स्वामी की केन्द्र के स्वामी पर दृष्टि होना, इसमें भेद २ हैं—

(i) ये स्वामी केन्द्र या त्रिकोण में होना अथवा

(ii) केन्द्र अथवा त्रिकोण को छोड़कर अन्य स्थान में होना

इन चार प्रकारों में से कोई एक प्रकार भी हो तो वह विशेष फल देने-वाला होता है। सिर्फ इनमें से एक अथवा अनेक प्रकार होकर यदि अन्य ग्रहों से योग न हो तो अति उत्तम, पर अनिष्ट ग्रहों से योग हो तो फलों में उतनी न्यूनता होती है।

स्वर्गीय श्री ह० ने० काटवे, मराठी टीकाकार, इस प्रकार कहते हैं—

"केन्द्र का अधिपति और त्रिकोण का अधिपति ये अशुभ स्थान के अधिपति से सम्बन्ध न रखते हुए आपस में ही सम्बन्ध रखें तो विशेष फलदायक होते हैं; बाकी के अन्य टीकाकारों ने परस्पर सम्बन्ध चार प्रकार से होता है ऐसा बताने का प्रयत्न किया है वह श्लोक नीचे देता हूँ—

अथ तावत् सम्बन्धाश्चतुर्विधाः।

उक्तं च--

"व्यत्यस्ताश्रयसम्बन्धश्चान्योन्यालोकसम्भवः।
एकस्य राशौ संस्थित्या तदीशालोकनादपि ॥१॥
सहवासाश्च सम्बन्धा इत्येते स्युश्चतुर्विधाः।
अत्रापि पूर्वपूर्वाः स्युः सम्बन्धा बलवत्तराः" ॥२॥

(इस श्लोक का अर्थ उपर्युक्त चार सम्बन्ध जो कहे गये हैं उसी के समान होने से पुनः वह यहाँ नहीं दिया है)।

राजयोग-कारक योग—नवम और दशम, चतुर्थ और पंचम।

१—नवमाधिपति और दशमाधिपति दशम में होना।
२— ,, ,, नवम में होना।
३—नवमाधिपति दशम में होना और दशमाधिपति नवम में होना।
४—नवमेश नवम में और दशमेश दशम में होना।
५—चतुर्थेश चतुर्थ में और पंचमेश पंचम में होना।
६—चतुर्थेश पंचम में और पंचमेश चतुर्थ में होना।
७—चतुर्थेश पंचमेश—पंचम में होना।
८— ,, ,, —चतुर्थ में होना।
९—चतुर्थेश नवमेश—दशम में होना।
१०— ,, ,, —नवम में होना।
११— ,, ,, —चतुर्थ में होना।
१२— ,, ,, —पंचम में होना; चतुर्थेश नवम में, नवमेश दशम में होना।
१३—पंचमेश दशमेश—चतुर्थ में होना।

१४-पंचमेश दशमेश--पंचम में होना ।

१५. ,, ,, --दशम में होना ।

१६. ,, ,, --नवम में होना ।

१७. पंचमेश दशम में और दशमेश पंचम में होना ।

क्वचित् योग निम्नलिखित अनुसार मानते हैं ऐसा दिखाई पड़ता है ।

१८. लग्नेश-भाग्येश (यह भी केन्द्र त्रिकोण पति का योग है) नवम में होना (मकर लग्न को छोड़कर) मेरे मत में अति शुभ योग है ।

१९. लग्नेश-भाग्येश--पंचम में होना

२०. लग्नेश पंचमेश--पंचम में होना

२१. ,, ,, --नवम में होना

२२. सप्तमेश भाग्येश--सप्तम में होना } ये योग मेरे मत में अतिश्रेष्ठ श्रेणी के हैं

२३. ,, ,, --नवम में होना

२४. ,, नवम मे और नवमेश सप्तम में होना

निम्नलिखित दो त्रिकोणाधिपति यही योग करते हैं । इनमें केन्द्रों का सम्वन्ध नहीं है ।

२५. पंचमेश-नवमेश--पंचम में होना

२६. पंचमेश-नवमेश--नवग में होना

२७. पंचमेश नवम में और नवमेश पंचम में होना ।

उपर्युक्त सव शुभयोगों को किसी भी अनिष्ट स्थान के अधिपति का सम्वन्ध (युति और प्रतियोग) नहीं होना चाहिये । यदि सम्वन्ध हो तो विशेष फल नहीं मिलेगा ।

इस श्लोक में सम्वन्ध चार प्रकार के होते हैं १. अन्योन्यराशि स्थिति सम्वन्ध, २. परस्पर दृष्टि सम्वन्ध, ३. अन्यतर दृष्टि सम्वन्ध, ४. सहावस्थान सम्वन्ध । इनमें से सहावस्थान और अन्योन्य राशि स्थिति सम्बन्ध इन दोनों सम्बन्धों को छोड़कर शेष दो सम्बन्ध राजयोग कारक नहीं वन सकते, कारण परस्पर दृष्टि सम्वन्ध यह प्रतियोग है और अन्यतर दृष्टि सम्वन्ध यह षड़ाष्टक योग होता है इसलिये राजयोग-प्रसंग में ये योग इस ग्रंथकार ने कहे हुए हैं यह कल्पना करना गलत होगा । इसलिए मैंने जो दिये हैं, वे ही सिर्फ सम्वन्ध राजयोग में आते हैं शेष योग नहीं आते ।

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराती टीकाकार) कहते हैं--

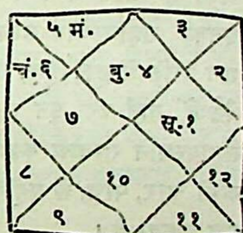
एक केन्द्र का या एक त्रिकोण का स्वामी शुभ होकर दूसरे केन्द्र के या त्रिकोण के शुभ स्वामी के साथ सम्वन्ध करता हो तो वह सम्वन्ध शुभफल-

दायक बनता है। परन्तु इस श्लोक में तो उस प्रकार से बननेवाले शुभयोग के विषय में निर्देश करने में नही आया है। पर विशेष फलदायक याने प्रबल राजयोग करनेवाले नियमों का निर्देश करने में आया है अर्थात् इस ग्रंथ की महत्ता ऐसी है कि ज्योतिष-समुद्र में से तारतम्य निकालकर सचोट याने सत्यता सिद्ध विशिष्ट नियम ही सिर्फ वर्णन किये हैं। राजयोग उत्पन्न करने के लिये केन्द्र-त्रिकोण के स्वामियों का परस्पर सम्बन्ध अवश्य होना चाहिये यह सम्बन्ध बनने पर कोई अशुभ ग्रह राजयोग करनेवाले ग्रह के साथ आकर युक्त हो जावे तो अशुभ ग्रह के अशुभत्व के कारण से राजयोग कारक राजयोग कायम रहता है, उसमें बाध नही आता। मात्र इतना समझना चाहिये कि यह राजयोग कारक ग्रह अशुभ ग्रह से युक्त होने पर उसके राजयोग का शुभ फल बहुत ही थोड़े अंशों में कम हो जाता है, पर राजयोग तो कायम रहता है।

शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पण्ड्या (गुजराती टीकाकार)––ऊपर लिखे हुए अनुसार ही श्लोक का अर्थ देकर और चार प्रकार के सम्बन्धों की व्याख्या देकर उनके उदाहरण निम्नलिखे अनुसार देते हैं।

१. अन्योन्य राशि स्थित सम्बन्ध की कुण्डली

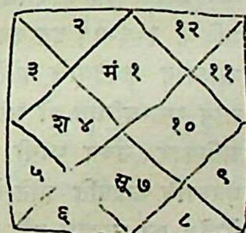
इस कुण्डली में मंगल सूर्य के गृह में है याने सिंह राशि मे हैं और सूर्य मंगल के गृह में याने मेष राशि में है। इसी प्रकार चन्द्र कन्या राशि में याने बुध के गृह में है और बुध कर्क राशि में है याने चन्द्रमा के गृह में है इस प्रकार यह "अन्योन्यराशि स्थित" सम्बन्ध हुआ इसी प्रकार हर एक ग्रह के बारे में समझना चाहिये।



२. परस्पर दृष्टि सम्बन्ध की कुण्डली

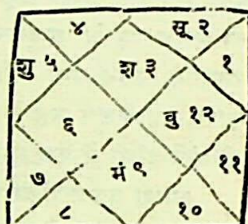
परस्पर दृष्टि सम्बन्ध का अर्थ ऐसा है कि एक ग्रह परस्पर दूसरे ग्रह को अपनी पूर्ण दृष्टि से देखता हो तो यह सम्बन्ध बनता है।

सब ग्रह अपने सप्तम स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं इस रीति के अनुसार सप्तम स्थान में सूर्य होकर वह अपनी पूर्ण दृष्टि से लग्न में स्थित मंगल को देखता है। उसी प्रकार मंगल भी अपनी (सप्तम) पूर्ण दृष्टि से सप्तमस्थ सूर्य को देखता है। इसी प्रकार मंगल को अपनी चौथी और अष्टम दृष्टि भी होती है। इस रीति के अनुसार चौथे स्थान में शनि



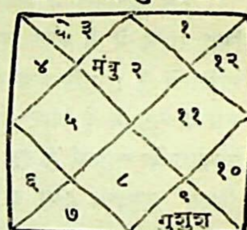
बैठा है उसको मंगल पूर्ण दृष्टि से देख रहा है और शनि को भी अपनी तृतीय और दशम दृष्टि होती है। उस रीति के अनुसार शनि भी मंगल को दशम पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। इस प्रकार मंगल सूर्य को और सूर्य मंगल को और मंगल शनि को और शनि मंगल को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं—इसे परस्पर दृष्टि सम्बन्ध कहते हैं। इसी प्रकार हरएक ग्रह का सम्बन्ध समझना चाहिये।

३. अन्यतर दृष्टि सम्बन्ध की कुण्डली



अन्यतर दृष्टि सम्बन्ध की इस कुण्डली में दशम स्थान में बुध बैठा हुआ है उसे शनि दशम दृष्टि से देखता है पर बुध शनि को नहीं देखता। इसी प्रकार शनि शुक्र को तृतीय दृष्टि से देखता है पर शुक्र शनि को नहीं देखता। मंगल दशमस्थ बुध को चतुर्थ दृष्टि से देखता है पर बुध मंगल को नहीं देख सकता।

४ सहावस्थान सम्बन्धी कुण्डली



सहावस्थान सम्बन्ध की इस कुण्डली में वृषभ लग्न है और लग्न में मङ्गल और बुध बैठे हैं इनका सहावस्थान सम्बन्ध हुआ है। इसी प्रकार धनु राशि में गुरु, शुक्र, शनि ये तीन ग्रह एक साथ बैठे हैं यहाँ पर इन तीन ग्रहों का एकत्र सम्बन्ध सहावस्थान सम्बन्ध कहाता है, इसी प्रकार कभी-कभी चार, पाँच, छै ग्रहों का भी सहावस्थान सम्बन्ध बन सकता है।

स्पष्टीकरणः—

यदि केन्द्र और त्रिकोण के स्वामी एक दूसरे के साथ सम्बन्ध करें और यदि वे ३-६-११ इन स्थानों के अधिपति न हों तो वे विशेष फलदायक अर्थात् राजयोग करनेवाले होते हैं। जो ग्रह ३-६-११ या ८ स्थान के स्वामी के साथ असम्बन्धित हो और किसी केन्द्र के अधिपति से सम्बधित हो तो राज्य, अधिकार, उच्च पदवी आदि देनेवाला होता है। यद्यपि चन्द्र, बुध, शुक्र, बृहस्पति केन्द्रपति होने के नाते पापी हैं—ऐसा जो भी कहा है तथापि ऐसे केन्द्रेश का सम्बन्ध यदि किसी त्रिकोणेश से होता है तो ऐसा केन्द्रेश भी राजयोग देनेवाला होता है। परन्तु साथ ही साथ यह भी ध्यान में रहे कि उस केन्द्रेश का सम्बन्ध ३-६-११ या ८ इन स्थानों के किसी भी अधिपति से नहीं

होना चाहिये। अर्थात् इस श्लोक के अनुसार केन्द्र और त्रिकोण के स्वामी, तीन, छै, एकादश या अष्टम स्थान के स्वामी नहीं होने चाहिये।

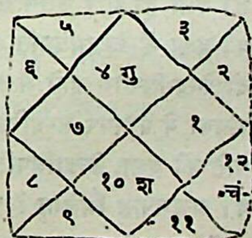
उपर्युक्त श्लोक १४ में तो सिर्फ उस केन्द्राधिपति और त्रिकोणाधिपति के परस्पर सम्बन्ध की चर्चा की गयी है जिनकी अपनी दूसरी राशि केन्द्र या त्रिकोण में ही पड़ती है। जो केन्द्राधिपति या त्रिकोणाधिपति, केन्द्र और त्रिकोण के अतिरिक्त अन्य स्थानों के स्वामी हों अथवा उनमें से एक केन्द्र या त्रिकोण का भी स्वामी हो और दूसरे केन्द्र त्रिकोण को छोड़कर अन्य त्रिषडाय याने ३-६-११ आदि पापस्थान का स्वामी हो और ये दोनों परस्पर सम्बन्ध करें तो उनके फल की चर्चा तो अगले श्लोक (श्लोक १५) में की गयी है क्योंकि ३-६-११-८ स्थान का स्वामी यदि त्रिकोण का स्वामी हो तो वह दोष-युक्त होता है। यहाँ तो सिर्फ ऐसे ग्रहों के फल विशेष शुभ कहे गये हैं, जो निर्दोष हैं।

यद्यपि ३-६-११ का स्वामी, केन्द्र का भी अधिपति हो तो ऐसा केन्द्रेश दोषयुक्त होता है फिर भी दोषयुक्त होने पर भी उसका सम्बन्ध यदि किसी त्रिकोण के स्वामी के साथ हो तो ऐसे सम्बन्ध के गुणों के प्रभाव के कारण वह ग्रह राज, अधिकार, पदवी, उन्नति आदि देनेवाला होता है। इस श्लोक में तो ऐसे ग्रहों के सम्बन्ध में समावेश नहीं है।

परस्पर सम्बन्ध का अर्थ ऐसा है कि जिन दो ग्रहों के सम्बन्ध का विचार किया जाता है यदि वे परस्पर सम्बन्धित हों तभी योगकारक फल परस्परों की दशान्तर्दशाओं में होगा, अन्यथा नहीं होगा। अर्थात् कोई ग्रह दूसरे ग्रह के साथ दृष्टि सम्बन्ध करता है और वह दूसरा ग्रह यदि पहिलेवाले द्रष्टा ग्रह से सम्बन्ध नहीं करता हो तो ऐसी परिस्थिति में वह ग्रह अपना योगकारक फल (योगज-फल) नहीं देगा।

योग करनेवाले तीन ग्रह या उससे अधिक ग्रह हों और उनमें से पहिला दूसरे से, दूसरा तीसरे से परस्पर सम्बन्ध करता हो और तीसरा यदि पहिले से सम्बन्ध न करता हो तो इन तीनों का (परस्पर दशान्तर्दशाओं) में योगकारक फल (योगज-फल) नहीं मिलेगा।

उदाहरणार्थ:—



चन्द्रमा, गुरु और शनि इन तीनों में से चन्द्रमा और गुरु का परस्पर राशि व स्थान सम्बन्ध है और गुरु का शनि से परस्पर दृष्टि सम्बन्ध है, शनि का चन्द्रमा से एकतर दृष्टि सम्बन्ध हुआ है (अर्थात् अन्यतर दृष्टि-सम्बन्ध) इस प्रकार चन्द्रमा, गुरु और शनि ये सम्बन्धित हुए हैं, यहाँ पर चन्द्रमा का गुरु

से सम्वन्ध है और गुरु का शनि से सम्वन्ध है और शनि का चन्द्रमा से सम्वन्ध है परन्तु चन्द्रमा का शनि से सम्वन्ध नहीं हुआ है । इसलिये यहाँ पर सम्वन्ध के दो प्रकार हुए हैं, वे इस तरह हैं कि एक प्रकार चन्द्र-गुरु और दूसरा गुरु-शनि है, तो फिर प्रथम प्रकार के अनुसार चन्द्रमा की महादशा में गुरु का अन्तर और शनि के प्रत्यन्तर इनके बीच में जो शुभफल प्राप्त होता था वह दूसरे प्रकार में याने चन्द्रमा की महादशा में और गुरु की अन्तर्दशा में ही सीमित रहेगा ।

दो ग्रहों के परस्पर सम्वन्ध के कारण उत्पन्न योगफल का आंकण तो कठिन नहीं है, परन्तु जहाँ पर दो से अधिक ग्रह परस्पर सम्वन्ध करते हैं तो उनके योगकारक फलों का (योगज-फलों का) आंकण करना अति कठिन होता है । इस शास्त्र के दशा-फल प्रसङ्गों में ग्रहों की महादशा, अन्तर तथा प्रत्यन्तर दशा तक ही विचार किया गया है । इसके आगे की सूक्ष्म प्राण-अन्तर्दशाओं को नगण्य समझकर छोड़ दिया गया है । यहाँ पर 'अन्त' शब्द के लिए अन्तर अथवा भुक्ति शब्दों का प्रयोग और प्रत्यन्तर के लिये 'दशाद्वयी मध्यागत' वाक्य का प्रयोग किया गया है । यथा—'स्वदशायां त्रिकोणेशभुक्तो केन्द्रपतिः शुभम् । तेषामन्तर्दशास्वेव दिशन्ति स्वदशाफलम् ।।' 'दशाद्वयीमध्यगतं सदयुग् शुभ-कारिणाम् ।'

लेखक का मत है कि दो ग्रहों से अधिक ग्रह जहाँ पर परस्पर सम्वन्ध कर रहे हों वहाँ उनमें से दो-दो ग्रहों की एक इकाई बना लेनी पड़ेगी और दो-दो ग्रहों की इकाई ग्रहों की परस्पर दशान्तर्दशाओं में उनके द्वारा उत्पन्न योगकारक फलों की (योगज-फलों की) प्रधानता माननी पड़ेगी और तीसरा सम्बन्धित ग्रह जो है उसके अपने गुणों के अनुसार सम्वन्धित ग्रहों के प्रत्यन्तर में उसके फलों का आंकण करना पड़ेगा । महादशा और अन्तर्दशा की प्रधानता तो शास्त्र सम्मत है ही । इस शास्त्र के श्लोक में कहा गया है कि "स्वदशायां त्रिकोणेशभुक्तौ केन्द्रपतिः शुभम्" अर्थात् जब केन्द्रेश की दशा हो और उससे सम्वन्धित त्रिकोणेश का अन्तर हो या त्रिकोणाधिपति की दशा में केन्द्राधिपति का अन्तर हो तो वह शुभ होती है । कल्पना करो इन दो केन्द्र-त्रिकोण ग्रहों में अष्टमेश, एकादशेश आदि स्थानों का भी सम्वन्ध हो अथवा ये परस्पर सम्वन्धित हुए हों, तो क्या त्रिकोणाधिपति की दशा, केन्द्राधि-पति की दशा, केन्द्राधिपति के अन्तर में अष्टमेश के प्रत्यंतर के कारण शुभफलों का अशुभफल मिलेगा ? इसका उत्तर ऐसा है कि किसी भी ग्रह की महादशा में दूसरे ग्रह की अन्तर दशा प्रधान होती है और प्रत्यंतर गौण होता है । कारण

यह है कि सब योगकारक या शुभकारक ग्रहों में सात अन्य ग्रहों का प्रत्यंतर और प्रत्यंतर में सूक्ष्म दशा तो साथ ही साथ भुक्त होती रहती है और तब प्रत्यंतर या सूक्ष्म दशाधीश पापी हो तो उस सब से मूल के महादशाधीश तथा अंतर्दशाधीशों के योगजफलों में यदि परिवर्तन माना जावे तो मूलदशा और अन्तर्दशाओं के फलों की कोई भी सार्थकता नही रह सकेगी।

उदाहरण :—मेष लग्न की कुण्डली में पंचम, नवम अथवा चतुर्थ स्थानों में पंचमेश, नवमेश, चतुर्थेश क्रमशः सूर्य, गुरु, और चन्द्रमा ये एकत्र बैठे हों तो वे परस्पर सम्बन्धित होने से सभी कारक होने चाहिये और उन्होंने विशेष शुभ-फल भी देना चाहिए। इनसे यदि कोई चौथा पापी ग्रह भी सम्बन्ध करे तो ऐसी स्थिति में इन तीन या चार ग्रहों में से दो दो ग्रहों की एक इकाई करके फलों का आंकण करना पड़ेगा **"तत्तद्भुक्त्यनुसारेण दिशेयुर्योगजं फलम्"**। इस श्लोक के आधार पर यहाँ इस प्रकार गणना करनी पड़ेगी। (१) सूर्य में चन्द्रमा का, चन्द्रमा में सूर्य का अन्तर; (२) गुरु में चन्द्रमा-चन्द्रमा ने गुरु का अन्तर; (३) सूर्य में गुरु का, गुरु में सूर्य का अन्तर;—परस्पर सम्बंधित ग्रहों की आपस की दशांतर्दशाओं में योगकारक फल अर्थात् एक की महादशा दूसरे की अन्तर्दशा में फल मिलेगा।

केन्द्रेश और त्रिकोणेश दो प्रकार के हैं। एक वे हैं जिनकी अपनी दोनों राशियाँ केन्द्र, त्रिकोण में ही पड़ती हैं। और दूसरे वे हैं जिनकी अपनी दूसरी राशि त्रिषडाय (३-६-११), अष्टम, द्वितीय, द्वादश (८-२-१२) स्थानों में से किसी एक स्थान में पड़ती हो। उपरोक्त श्लोक में **"इतरैरप्रसक्ताश्चेत्"** वाक्य का प्रयोग इस प्रकार के केन्द्र त्रिकोणाधिपतियों के लिए किया गया है जिनकी कि अपनी दूसरी राशि त्रिषडाय, अष्टम, स्थानों में नहीं पड़ती हो। ऐसे ग्रह निर्दोष होते है। इस अर्थ की पुष्टि अगले श्लोक के द्वारा (श्लोक १५) भी होती है, जिसमें कहा गया है कि **"केन्द्रत्रिकोणनेतारौ दोषयुक्तावपि स्वयम्"** माने वे केंद्र त्रिकोण पति जो स्वयं दोष युक्त हों अर्थात् जिनकी अपनी दूसरी राशि त्रिषडाय, अष्टम में है।

इतरैरप्रसक्त केन्द्रत्रिकोणाधिपति की अर्थात् निर्दोष ग्रहों की सूची

लग्न	भावेश	ग्रह	ग्रहों का योगजफल
मेष	चतुर्थेश	चन्द्रमा	चं + सू = + १०
	पंचमेश	सूर्य	शु + गु = ÷ १०

लग्न	भावेश	ग्रह	ग्रहों का योगजफल
	सप्तमेश – द्वितीयेश	शुक्र	सू + गु = + १३
	नवमेश – द्वादशेश	गुरु	चं + शु = ÷ ५
			चं + गु = + ११
			शु + गु = ÷ १०
वृषभ	चतुर्थेश	सूर्य	श + बु = ÷ १७
	नवमेश – दशमेश	शनि	सू + श = + १३
	द्वितीयेश – पंचमेश	बुध	सू + बु = ÷ ८
मिथुन	लग्नेश – चतुर्थेश	बुध	बु + गु = ÷ ११
	सप्तमेश – दशमेश	गुरु	बु + शु = + १३
	द्वादशेश – पंचमेश	शुक्र	
कर्क	लग्नेश – लग्नेश	चन्द्रमा	चं + मं = + १६
	पंचमेश – दशमेश	मंगल	
सिंह	लग्नेश – लग्नेश	सूर्य	सू + मं = + १५
	चतुर्थेश – नवमेश	मंगल	
कन्या	लग्नेश – दशमेश	बुध	बु + गु = + १२
	चतुथश – सप्तमेश	गुरु	बु + शु = ÷ १६
	द्वितीयेश – नवमेश	शुक्र	शु + गु = – १०
तुला	चतुर्थेश – पंचमेश	शनि	श + मं = + ११
	सप्तमेश – द्वितीयेश	मंगल	श + बु = + १५
	द्वादशेश – नवमेश	बुध	श + चं = + १२
	दशमेश – दशमेश	चन्द्रमा	मं + बु = + १०
			बु + चं = + ११
वृश्चिक	द्वितीयेश – पंचमेश	गुरु	गुरु + शु = ÷ ६
	सप्तमेश – द्वादशेश	शुक्र	चं + गु = ÷ १३
	नवमेश – नवमेश	चन्द्रमा	शु + चं = ÷ १८
	दशमेश – दशमेश	सूर्य	सू + चं = +

लग्न	भावेश	ग्रह	ग्रहों का योगजफल
धनु	लग्नेश – चतुर्थेश	गुरु	गु = + ७
	द्वादशेश – पंचमेश	मंगल	गु + मं = + १३
	सप्तमेश – दशमेश	बुध	गु + बु = ÷ ११
	नवमेश – नवमेश	सूर्य	गु + सू = + १४
			मं + बु = ÷ १०
			मं + सू = + १३
मकर	द्वितीयेश – लग्नेश	शनि	श + शु = + १६
	पंचमेश – दशमेश	शुक्र	श + चं = ÷ ९
	सप्तमेश – सप्तमेश	चन्द्रमा	शु + चं = ÷ १३
कुंभ	द्वादशेश – लग्नेश	शनि	श + शु = + १२
	चतुर्थेश – नवमेश	शुक्र	श + सू = + ९
	सप्तमेश – सप्तमेश	सूर्य	शु + सू = + १२
मीन	लग्नेश – दशमेश	गुरु	गु + बु = ÷ १२
	चतुर्थेश – सप्तमेश	बुध	गु + चं = + १५
	पंचमेश – पंचमेश	चन्द्रमा	गु + मं = + १६
	द्वितीयेश – नवमेश	मंगल	मं + चं = + १३
			मं + बु = ÷ १०
			चं + बु = ÷ ९

जिनके नीचे–इस प्रकार की लाइन दी है वे मारक भी हैं।

\+ इसका अर्थ है कि 'सम्बन्ध' तथा अंकों के पूर्व + धन या योग का चिह्न–इस संख्या का अर्थ है कि शुभ गुण संख्या। इनकी चरम सीमा + १७ तक निर्धारित है।

उपरोक्त सूची में लेखक ने निर्दोष केन्द्रेश-त्रिकोणेशों में द्वितीयेश और द्वादशेशों को भी शामिल किया है क्योंकि यहाँ पर द्वितीयेश–द्वादशेश इनकी दूसरी राशि केन्द्र या त्रिकोण में पड़ती है। और जब ये किसी दूसरे निर्दोष केन्द्रेश या त्रिकोणेश से परस्पर सम्बन्ध करेंगे तो उन्हें "परेषाँ साहचर्यंतः" इस न्याय द्वारा निर्दोष-योगत्व प्राप्त होगा। उपरोक्त सूची में द्वितीयेश–सप्तमेश गुरु, शुक्र, बुध, चन्द्रमा मारकेश भी हैं (सूची में उनके नीचे–ऐसा चिह्न दिया

हैं)। इनका जब सम्बन्धित ग्रहों की दशा में अन्तर आवेगा तब वे मारक-फल देंगे और कारक से मारक बनेंगे। मारकेश के अन्तर में प्रथम कारक-फल, तत् पश्चात् मारकेश का फल मिलेगा। जहाँ मारकेश गुरु है वहाँ उसके मारकत्व की गुण-संख्या ऋण (–) होगी। शुक्र में गुरु की अपेक्षा मारकत्व का दोष न्यून है।

निम्नलिखित सूची में निर्दिष्ट ग्रह स्वतः खुद योगकारक हैं। कारण वे केन्द्र तथा त्रिकोणेश इन दो के स्वतः स्वामी हैं। इनका किसी भी अन्य केन्द्र और त्रिकोण के अधिपति से यदि सम्बन्ध न भी हो तो भी ये स्वराशिस्थ हों तो स्वयं योगकारक होते हैं। यदि स्वराशिस्थ न हों तो कारकत्व में न्यूनता होगी।

ये ग्रह स्वतः केन्द्रेश और त्रिकोणेश दोनों हैं—

वृषभ लग्न	नवमेश–दशमेश	शनि	+११
मिथुन लग्न	लग्नेश–चतुर्थेश	बुध	+२
कर्क लग्न	पंचमेश–दशमेश	मंगल	+१०
कर्क लग्न	लग्नेश–लग्नेश	चन्द्रमा	+६
सिंह लग्न	चतुर्थेश–नवमेश	मंगल	+९
कन्या लग्न	लग्नेश–दशमेश	बुध	+९
तुला लग्न	चतुर्थेश–पंचमेश	शनि	+८
धनु लग्न	लग्नेश–चतुर्थेश	गुरु	+७
मकर लग्न	पंचमेश–दशमेश	शुक्र	+१०
कुम्भ लग्न	चतुर्थेश–दशमेश	शुक्र	+९
मीन लग्न	लग्नेश–दशमेश	गुरु	+९
मीन लग्न	पंचमेश–पंचमेश	चंद्रमा	+६

केन्द्र त्रिकोणपति से निर्दोष त्रिकोणपत्ति के सम्बन्ध का कोष्टक

कर्क लग्न	मंगल + चंद्र	=	+१६
सिंह लग्न	मंगल + सूर्य	=	+१५
तुला लग्न	शनि + बुध	=	+१५
धनु लग्न	गुरु + सूर्य	=	+१४
	गुरु + मंगल	=	+१३
मकर लग्न	शुक्र + शनि	=	+१६
कुम्भ लग्न	शुक्र + शनि	=	+१५
मीन लग्न	गुरु + चंद्र	=	+१५
	गुरु + मंगल	=	+१६

उपरोक्त योग उस उस लग्न की कुण्डली के सर्वोत्कृष्ट योग हैं और वे निर्दोष हैं। इनमें मारक फलों का संपर्क बिलकुल नहीं है। ये उक्त ग्रह स्वयं योगकारी 'कारक' हैं। ये यदि स्वराशि में हों तो इन्हें पूर्ण 'कारक' मानना पड़ेगा कारण केन्द्रेश और त्रिकोणेश इनके कारकत्व का परस्पर सम्बन्ध तभी सिद्ध होता है जब उनमें से कोई एक केन्द्र या त्रिकोण स्थान में अपने स्वराशि में स्थित हो।

उपर्युक्त ग्रहों से यदि किसी भी अन्य निर्दोष केन्द्र त्रिकोणपति का परस्पर सम्बन्ध होवे तो ऐसा योग उनकी परस्पर दशान्तर्दशाओं में सिर्फ कर्क, सिंह, तुला, धनु, मकर, कुंभ और मीन लग्नों की कुंडलियों में ही संभव है।

सदोष केन्द्र त्रिकोणाधीशों की दशाओं में और उपरोक्त कोष्टक में के शुभग्रहों की अन्तर्दशाओं में उस प्रकार का शुभफल नहीं होगा कारण कि मूलदशा सदोष केन्द्र वा त्रिकोणपति की होती है इसलिये।

जो ग्रह तृतीय, षष्ठ, एकादश और अष्टम स्थान के स्वामी से सम्बन्धित नहीं हो और वही ग्रह किसी केन्द्र के अधिपति से सम्बन्धित हो तो वह राज्य (अधिकार उच्च पदवी) देनेवाला होता है।

यद्यपि चंद्र, बुध, बृहस्पति और शुक्र ये केन्द्रेश होने पर इस शास्त्र के अनुसार पापी हैं, ऐसा कहा गया है तथापि ऐसे केन्द्रेश का सम्बन्ध किसी भी त्रिकोणेश से होता हो तो वह केन्द्रेश भी राज्य देने वाला होता है। परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिये कि उस केन्द्रेश का सम्बन्ध तृतीय, षष्ठ, एकादश, अष्टम इन स्थानों के स्वामियों से नहीं होना चाहिये।

यद्यपि तृतीय, षष्ठ और एकादश का स्वामी यदि केन्द्र का भी स्वामी हो तो वह दोषयुक्त होता है, तथापि दोषयुक्त होने पर भी यदि उसका सम्बन्ध किसी त्रिकोणाधिपति से हो तो ऐसे सम्बन्ध के गुणों के प्रभाव के कारण वह ग्रह राज्य (अधिकार, पदवी, उन्नति) देनेवाला होता है।

केन्द्रत्रिकोणनेतारौ दोषयुक्तावपि स्वयम्।
सम्बन्धमात्राद्बलिनौ भवेतां योगकारकौ ॥१५॥

अर्थः—बलवान् त्रिकोण और केन्द्र के स्वामी स्वयं दोषयुक्त होने पर भी यदि वे परस्पर सम्बंध करते हों तो वे दोनों योग कारक होते है ॥१५॥

राज ज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर—हिंदी टीकाकार इस प्रकार कहते है—

"बली त्रिकोणाधिप नवम भवन का स्वामी और बली केन्द्राधिप दशम भवन का स्वामी स्वयं केन्द्राधिपत्यादि दोषयुक्त होते हुए भी ये दोनों ग्रह आपस में सम्बन्ध करते हों तो राजयोग कारक होते हैं।"

पण्डित रामेश्वर भट्ट :—हिन्दी टीकाकार इस प्रकार कहते हैं :—

"केन्द्र और त्रिकोण के स्वामी दोषयुक्त भी हों, तो भी केवल सम्बन्ध से योगकारी होते हैं।"

विद्यारत्न पण्डित माधवप्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

"चतुर्थ, सप्तम, दशम और नवम स्थानों के स्वामी यदि आप दोष वाले भी होवें तो पहिले श्लोक में कहे हुए चारों सम्बन्ध से ही प्रवल होकर शुभफल दायक योग करनेवाले होते हैं।"

पाराशरी में इस वात का संग्रह इस भांति किया है कि पंचम व नवम स्थान विशेष धन स्थान कहा जाता है और चतुर्थ तथा दशम विशेष सुख कहा जाता है। चन्द्रमा और सूर्य के सिवाय जितने मारकेश हैं, सव मारक है। मारक अपनी दशा में मृत्यु करता है और अन्य की दशा में मृत्यु योग करता है।"

ज्योतिषाचार्य-तीर्थ पंडित सीताराम झा हिदी टीकाकार इस प्रकार कहते हैं :—

भाष्य—यदि उक्त केन्द्रेश और त्रिकोणेश स्वयं दोष (अस्त, नीचगत स्वरूप) से युक्त भी हों तथापि सम्वन्ध मात्र (आगे कहे हुए किसी प्रकार के भी सम्वन्ध) से योगकारक (विशेष फलदायक) होते हैं।

यहाँ "सम्वन्धमात्रात्" कहने का तात्पर्य यह है कि सम्वन्ध अनेक प्रकार के होते हैं, उनमें किसी भी प्रकार का सम्वन्ध हो परञ्च दूसरे (दुष्ट स्थानाधिपति) से सम्वन्ध रहित हो तो योग भंग नहीं होता है। यहाँ 'दोष' शब्द से शत्रु राशि नीच राशि गतत्व रूप ही दोष समझना। क्योंकि शत्रु राशि और नीच में ग्रह निर्वल होता है; इसलिए "वलिनौ" कहा है। अत्र युक्तिवचनम्—

> सद्वेषोऽपि वरं विद्वान् न मूर्खो हितकारकः।
> दोषः सम्वन्धिवर्गेषु विदुषा गोप्यतेऽनिशम्॥
> तस्मात् केन्द्रत्रिकोणेशाः सम्बन्धेन परस्परम्।
> स्वस्वदोषफलं नैव प्रयच्छन्तीति सुस्फुटम्॥

मूर्ख हितकारक से द्वेष करने वाला विद्वान् ही अच्छा है, तथा विद्वान् अपने सम्वन्धियों से अपने दोष को छिपाता है। इसी प्रकार त्रिकोणेश और केन्द्रेश में परस्पर सम्वन्ध मात्र हो तो अपने-अपने दुष्ट फल को नहीं देते, इसलिए योगकारकत्व ठीक ही कहा गया है। अव सम्वन्धमात्र में योग कारकत्व कहा गया परञ्च सम्वन्ध तो अनेक प्रकार के होते हैं। यथा १ सहवास सम्बन्ध।

२ परस्पर स्थान स्थिति संवंध । ३ अन्यतर स्थान स्थिति संवंध । ४ परस्पर दृष्टि संवंध । ५ अन्यतर दृष्टि संवंध । ६ साधर्म्य संबंध इत्यादि । इनमें कौन संबंध से योगकारकत्व हो सकता है, इस संदेह को दूर करने के लिये आगे श्लोक में संवंध को स्पष्ट कहते हैं ।

सुश्लोक शतक ग्रन्थ के टीकाकार कहते हैं :—

जो ग्रह तृतीय, षष्ठ, एकादश, अथवा अष्टम स्थान के स्वामी से संवंधित न हो और वह किसी केन्द्राधिपति से संवंधित हो तो राज्य (अधिकार, उच्च पदवी) देनेवाला होता है । यद्यपि चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्र केन्द्रेश होने से इस शास्त्र के अनुसार पापी हैं ऐसा कहा हुआ है तथापि ऐसे केन्द्रेश का संबंध यदि किसी त्रिकोणेश के साथ भी हो तो वह केन्द्रेश भी राज देने वाला होता है परन्तु यह वात ध्यान में रखनी चाहिये कि उस केन्द्रेश का संबंध तृतीय, षष्ठ, एकादश और अष्टम स्थान के स्वामियों से नहीं होना चाहिये । (उपरोक्त विवेचन श्लोक १४ से संवंध रखता है) तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थान का स्वामी भी केन्द्राधिपति हो तो ऐसा केन्द्रेश दोष युक्त होता है। फिर भी दोष युक्त होने पर भी उसका संबंध त्रिकोणेश से हो तो ऐसे संबंध के गुणों के प्रभाव के कारण वह ग्रह राज्य (अधिकार, पदवी, उन्नति) देने वाला होता है ।

उसी प्रकार त्रिकोण का स्वामी स्वयं दोष युक्त भी हो और यदि वह केन्द्रेश से संवंध करे तो राज्य देने वाला होता है । इस प्रकार केन्द्रेश, त्रिकोणेश दोनों (परस्पर संवंध करने से उसके गुण प्रभाव से) राजदायक होते हैं ।

उद्योतकार कहते हैं कि केन्द्राधिपति और त्रिकोणाधिपति परस्पर संबंध करते हों तो विशेष शुभफल देते हैं यदि वे तृतीय, षष्ठ, एकादश स्थान के स्वामी से सवंध नहीं करते हों तो । यदि इन स्थानों के स्वामी से संबंध करते हों तो योग भंग होता है । यदि केन्द्र का स्वामी या त्रिकोण का स्वामी स्वयं दोष युक्त (सदोष) हो (अर्थात् केन्द्र का स्वामी तृतीय आदि पाप स्थानों का स्वामी भी हो । फिर भी संवंध मात्र के प्रभाव के कारण वली होकर वह (परस्पर संवंध करने वाला केन्द्रेश और त्रिकोणेश) योगकारक अर्थात् शुभ-फल देने वाला होता है ।

उद्योतकार ने स्पष्ट कहा है कि केन्द्रेश-त्रिकोणेश इनके संवंध में यदि ये ग्रह तृतीय, षष्ठ, एकादश इनके स्वामियों से संबंध करने हों तो ऐसा योग खंडित होगा, परंतु—

सज्जन रंजनी टीकाकार कहते हैं कि ऐसा योग खंडित नहीं होता किंतु वह शुभ योग न्यून होता है । यहीं इन दोनों की टीकाओं में मतभेद है ।

श्री विनायक शास्त्री कहते हैं कि त्रिकोण-केन्द्रेश इनका संबंध ही योग-कारकत्व का मूल है । योगकारकत्व याने शुभफल । यदि अन्य तीसरा अनिष्ट स्थान का स्वामी इस केन्द्रेश-त्रिकोणेश के संबंध में योग करे तो वह दोष होता है । इसलिये शुभफलों में न्यूनता आती है । पूर्ण शुभफल तो तभी मिलेगा जब केन्द्रेश-त्रिकोणेश इनके योग में अन्य तीसरा योग नहीं करता हो तो ।"

इस श्लोक में यहाँ ऐसा कहा गया है कि केन्द्रेश-त्रिकोणेश स्वयं दोषयुक्त हों फिर भी परस्पर संबंध मात्र से योग-कारक होते हैं । यहाँ श्री विनायक शास्त्री ऐसा अर्थ करते है कि "दोष से यह तात्पर्य है कि यदि केंद्रपति या त्रिकोणपति इन दोनों में से एक अथवा दोनों नीच राशि में हों, अस्तंगत हों (सूर्य के सन्निध होने से अस्त होगें अर्थात् दिखते नही) इत्यादि दोषों से युक्त हों तो संबंध मात्र से बली होकर शुभफल देते हैं ।"

पंडित रामयत्न ओझाजी टीकाकार (फलित-विकास) कहते हैं ।—

त्रिकोणेश और केन्द्रेश यदि स्वयं दुस्थानों के स्वामी हों अथवा इनके योग में अन्य कोई ग्रह दुःस्थान का स्वामी होकर संबंध करेगा तो कुछ अंशों में शुभफलों में न्यूनता होगी या अशुभफल होगा, यह निम्नलिखित उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करते हैं ।

(क) लग्नेश का = + १ गुण; चतुर्थेश के = + २ गुण;
सप्तमेश के = + ३ गुण; दशमेश के = + ४ गुण;
(ख) पंचमेश के = + २ गुण; नवमेश के = + ४ गुण;
(ग) तृतीयेश के = − १ गुण; षष्ठेश के = − २ गुण;
एकादशेश के = − ३ गुण
(घ) अष्टमेश के = − ६ गुण
(ङ) द्वितीयेश का = − ० गुण
द्वादशेश का = − ० गुण

(१) कर्क लग्न की कुण्डली है । बुध एवं मंगल-बृहस्पति का योग है ।

बुध तृतीयेश	=—१ गुण
बुध द्वादशेश	=—० गुण
मंगल पंचमेश	= + २ गुण
मंगल दशमेश	= + ४ गुण

(२) कर्क लग्न है । शनि, शुक्र, मंगल बृहस्पति के योग हैं ।

शनि सप्तमेश	= + ३ गुण
शनि अष्टमेश	=—६ गुण
शुक्र चतुर्थेश	= + २ गुण
शुक्र एकादशेश	=—३ गुण

वृहस्पति षष्ठेश = —२ गुण
वृहस्पति नवमेश = +४ गुण

= +७ गुण

शुभफल = ७

मंगल पञ्चमेश = +२ गुण
मंगल दशमेश = +४ गुण
वृहस्पति षष्ठेश = —२ गुण
वृहस्पति नवमेश = +४ गुण

+४ गुण

शुभफल = ४

(३) सिंह लग्न है। वृहस्पति शनि का योग है।

वहस्पति पञ्चमेश = +२ गुण
वृहस्पति अष्टमेश = —६ गुण
शनि षष्ठेश = —२ गुण
शनि सप्तमेश = +३ गुण

—३ गुण

अशुभफल = —३

(४) सिंह लग्न की कुण्डली है सूर्य मंगल एवं शुक्र का योग है।

सूर्य लग्नेश = +१ गुण
मंगल चतुर्थेश = +२ गुण
मंगल नवमेश = +४ गुण
शुक्र तृतीयेश = —१ गुण
शुक्र दशमेश = +४ गुण

= +१० गुण

अशुभफल = +१०

(५) मिथुन लग्न की कुण्डली है। वृहस्पति शनि का योग है

वृहस्पति सप्तमेश = +३ गुण
वृहस्पति दशमेश = +४ गुण
शनि अष्टमेश = —६ गुण
शनि नवमेश = +४ गुण

= +५ गुण

अशुभभल = +५

(६) मेष लग्न की कुंडली है वृहस्पति शनि का योग है

वृहस्पति नवमेश = +४ गुण
वृहस्पति द्वादशेश = —० गुण
शनि दशमेश = +४ गुण
शनि एकादशेश = —३ गुण

= +५ गुण

अशुभफल = +५

(७) मिथुन लग्न की कुण्डली है। मंगल, शुक्र, शनि का योग हैं।

मंगल षष्ठेश = —२ गुण
मंगल एकादशेश = —३ गुण
शुक्र पञ्चमेश = —२ गुण
शुक्र व्ययेश = —० गुण
शनि अष्टमेश = —६ गुण
शनि नवमेश = +४ गुण

= —५ गुण

अशुभफल = —५

उपरोक्त प्रकार से गुण दोषों का विचार करके इन परिणामों पर पहुँचना चाहिये कि गुण कितने हैं और वे गुण दोषों को दबा देते हैं या दोष गुणों को दबा देते हैं ? हमारे मत में यहाँ अष्टमेश यदि लग्न या त्रिकोण का स्वामी हो अष्टमेश या षष्ठेश होकर त्रिकोण में ही बैठा हो वहाँ षष्ठेश या अष्टमेश जन्य दोनों की गणना नहीं करनी चाहियें ।

उदाहरणार्थ :—यदि मेष लग्न हो और मंगल (लग्नेश—अष्टमेश) का सूर्य या बृहस्पति से योग हो तो मंगल लग्नेश होनें के नाते उसे अष्टमेश का दोष नहीं होगा और सूर्य मंगल योग अथवा मंगल बृहस्पति योग शुभ ही होगा ।

रत्नेश्वर ने फलदीपिका ग्रंथ के ५वें अध्याय में कहा है कि जब कोई भी ग्रह दो राशि का स्वामी हो और उनमें से एक राशि जन्म कुण्डली में शुभ-स्थान में हो और दूसरी अशुभ स्थान में पड़ी हो और उसका स्वामी यदि शुभ स्थान की राशि में बैठा हो तो उसे अशुभ स्थान में पड़ी हुई राशि के आधिपत्य का दोष नहीं होता ।

स्वर्गीय श्री रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) कहते हैं :—

पिछले श्लोक में निर्देशन किया हुआ सम्वंध हो तो अति बलवान होता है ऐसा इस श्लोक में कहा है । यह सम्वन्ध होने पर यदि पाप ग्रह शत्रु के घर में हो, नीच राशि में हो, वक्री हो, अस्तंगत हो, शत्रु ग्रह से दृष्ट हो अथवा अन्य कोई भी कुयोग हो, फिर भी उस कुयोग का फल नहीं होगा । केन्द्र त्रिकोण सम्वन्ध सब कुयोगों से बलवान है । इस श्लोक में कोई भी दो या अधिक ग्रहों के योग को विशेष महत्त्व दिया है ।

स्वर्गीय श्री वि० गो० नवाथे (मराठी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

शुभग्रह केन्द्र के स्वामी होते हैं; तब वे अशुभफल उत्पन्न करने वाले होते हैं इत्यादि पिछले श्लोकों में कहा गया है? उसके अनुसार यदि वे दोषी हों फिर भी जब केन्द्र-स्वामी और त्रिकोणेश ये ऊपर जो चार प्रकार का सम्बन्ध कहा गया है, उस प्रकार का सम्बन्ध, करें, तब वे राजयोग करनेवाले होते हैं ।

स्वर्गीय ह० ने० काटवे (मराठी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

केंद्र और त्रिकोण के अधिपति स्वयं दोषयुक्त भी हों तो भी परस्पर सम्बन्ध करें तो बलवान् और योग कारक होते हैं । यहाँ पर ग्रंथकार ने ग्रह स्वयं दोष-युक्त कैसे होता है, यह नहीं कहा है । यहाँ पर सिर्फ अस्तंगत, वक्री, अतिचारी और दूसरे पापग्रह से दृष्ट ऐसा अर्थ करना पड़ेगा । अस्तंगत के बारे में सन्देह

मालूम देता है, कारण कोई भी ग्रह सूर्य के पास आने से अस्तंगत होता है अर्थात् केंद्र त्रिकोणस्थ ग्रह के साथ अति सन्निद्ध सूर्य भी होता हैं। इस पर से यह योग, शुभकारक नहीं बन सकता। यहाँ दूसरा अर्थ इस प्रकार का लेना पड़ेगा "कोई भी ग्रह यदि त्रिकोण का स्वामी होकर उसी समय वह ३-६-११-२-७-८-१२ इनमें से किसी एक स्थान का भी स्वामी हो तव वह ग्रह स्वयं दोषयुक्त होता है। इस ग्रह से दूसरा केन्द्र त्रिकोणपति युक्त हो तो दोष नष्ट हो जाता है और वह योग कारक बनता है" **उदाहरणार्थ :**—मेष लग्न की कुंडली में सूर्य, गुरु इनका योग होता है परंतु सूर्य पंचमेश और गुरु नवमेश होकर व्ययेश भी है अर्थात् गुरु स्वयं दोषयुक्त है। और सूर्य से युक्त होते हुए ही गुरु का यह दोष नष्ट होता है और वह राजयोगकारक बनता है।"

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराती टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

"बलवान केन्द्र और त्रिकोणपति स्वयं दोषयुक्त होने पर भी परस्पर सम्बन्ध होता हो तो वे दोषयुक्त होने पर भी राजयोग कारक होते हैं।

सारांश यह है कि केन्द्रेश और त्रिकोणेश (१) बलवान होना चाहिये (२) उन दोनों का सम्बन्ध होना चाहिये (३) वे दोनों दोषयुक्त नहीं होना चाहिये उनमें से एक ही दोषवान होना चाहिये। तो इन तीनों के संयोग से बना हुआ योग राजयोग उत्पन्न करनेवाला होता है। "बलिनौ" यह शब्द केन्द्र त्रिकोण के अधिपति का विशेषण है कारण राजकारक योग में केन्द्रेश अथवा त्रिकोणेश बलवान होना चाहिये। 'निर्बलो नैव योगकृत्' इस सूत्र के आधार से अस्तंगत नहीं होना चाहिये और स्थान बल, दिग्बल, षड्बल दृष्टि से जो ग्रह बलवान हो उसे बलवान मानना चाहिये।

हिन्दी टीकाकार "बलिनौ" पद का अर्थ "सम्बन्धमात्रात् बलिनौ भूत्वा योग-कारकौ भवेतां" अर्थात् सम्बन्ध मात्र से निर्बल ग्रह हो तो वह भी बलवान होता है। इस प्रकार का अर्थ करते हैं वह यथार्थ नहीं है।

उपर्युक्त श्लोक में त्रिकोणपति, केन्द्रपति दोषयुक्त कैसे कहे गये हैं वह संज्ञा प्रकरण के श्लोक ६ और ७ में बताया गया है। इस श्लोक का मुख्य नियम यह है कि केन्द्राधिपति और त्रिकोणाधिपति ये दोनों दोषवाले हो करके कौन सा योग, राजयोग या उत्कृष्ट राजयोग अथवा निष्फल राजयोग करते हैं इसका कोष्टक अलग से उन श्लोकों के अनुरोध से दिया गया है। वह परिशिष्ट में देखिये।

मात्र इस नियम पर से इतना ही ध्यान में रखना चाहिये कि केन्द्राधिपति और त्रिकोणपति का योग होता हो और उस योग में से एक ग्रह को संज्ञा-के ६-७-८ श्लोकों में कहे अनुसार षष्ठ, अष्टम, एकादश अथवा द्वितीय-सप्तम

मारक भाव अथवा तृतीय, अष्टम और द्वादश भावों के स्वामित्व के कारण से दोष लगता हो तो, वह दोष सम्बन्ध मात्र से नष्ट होता है। परंतु उक्त कहे अनुसार वे दोनों अधिपति यदि दूषित हों तो दोष नष्ट नहीं होता, उनमें से एक अधिपति स्वयं दूषित हो तभी वह दोष निवारण होता है।

श्री शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पण्ड्या (गुजराती टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

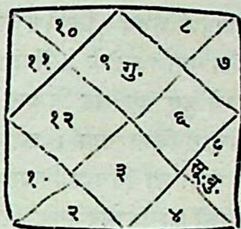
पूर्व में दर्शाये प्रमाणे संज्ञाध्याय के ७ वें श्लोक में कहने में आया है कि—"यदि सौम्य ग्रह केन्द्राधिपति हों तो वे शुभफल नहीं देते अर्थात् अशुभफल देते हैं और उसी प्रकार छठे श्लोक में भी खुलासा किया है कि "सब ग्रह त्रिकोणाधिपति हों तो वे शुभफल देते हैं परंतु जो तृतीय, षष्ठ अथवा एकादश स्थानों के अधिपति हों तो वे अशुभफल देते हैं" इस प्रकार यदि केन्द्राधिपति अथवा त्रिकोणाधिपति दोषयुक्त हो अर्थात् अशुभफल देनेवाला हो तो वह ऊपर कहे हुए अनुसार (श्लोक १५) यदि कोई भी सम्बन्ध से युक्त हुआ हो तो बलवान होता है और शुभफल देनेवाला होता है। उदाहरणार्थ नीचे लिखी हुई कुण्डलियाँ देखिये :—

सहस्थान स्थिताधिपत्य सम्बन्ध की दो योगों की कुण्डली :—



इस कुण्डली द्वारा एक सामान्य दृष्टांत देने में आता है उस पर से दूसरे एक योग का फल समझ में आवेगा। इस कुण्डली में प्रथम और चतुर्थ स्थानों का अधिपति बुध है। और यहाँ वह केन्द्राधिपति इस नाते अशुभफल देने वाला है। उसी प्रकार पंचम स्थान में तुला राशि में शुक्र है और वह त्रिकोणपति के नाते शुभ है इसलिये शुभफल देणारा होता है ऐसा छठे और सातवें श्लोकों में व्याख्या दी गयी है उस पर से समझना चाहिये परन्तु त्रिकोणपति शुक्र बारहवें स्थान का अधिपति होकर वह सहस्थानाधिपतित्व के साहचर्य योग के कारण दूषित हुआ है और बुध भी सदोष केन्द्राधिपति होने के कारण दूषित है। परन्तु इस श्लोक (१५) के अनुसार ऐसा मानना पड़ेगा कि बुध और शुक्र ये दोनों क्रमशः केन्द्राधिपति तथा त्रिकोणपति होकर अपनी स्वराशि में स्वस्थान में बैठे हैं और उन पर गुरु की पूर्ण दृष्टि शुक्र के ऊपर और उसी प्रकार बुध के ऊपर भी ३।४ तीन चतुर्थांश दृष्टि हैं इसलिये शुभग्रह की दृष्टि उन पर होने के कारण से स्वाभाविक रीति से शुभ-

योग हुआ है ऐसा कहना पड़ता है और उस कारण से वे शुभफल देनेवाले हो सकते हैं।



इस धनु लग्न की कुण्डली में बुध दशम तथा सप्तम केन्द्र का अर्थात् मारक-स्थान का अधिपति होने के कारण सदोष है। नवम बलवान त्रिकोणपति सूर्य बलवान त्रिकोण (नवम स्थान) में स्थित है। बुध यहाँ पर सूर्य से "सहावस्थान" सम्बन्ध कर रहा है और उसी प्रकार यहाँ सहस्थानाधिपतित्व योग हुआ। होकर स्वगृही गुरु की उन पर दृष्टि है और यह योग 'अन्यतर दृष्टि सम्बन्ध' होने के कारण से भी बुध राजयोग कारक हुआ है। लग्न विचार में धनुलग्न की कुंडली में इस शास्त्र के अनुसार बुध की अशुभ योगों में गणना की गयी है परन्तु तृतीय शुभ योगों में उसी कुण्डली में वह बुध यदि सूर्य के साथ नवम में हो तो स्थान साहचर्य योग के कारण उसे उत्तम फल देनेवाला और राजयोग कारक होता है ऐसा कहा हुआ है। इस पर से यहाँ पर ऐसा योग होने पर वह निश्चय करके राजयोग होता है। इस प्रकार दूसरा सम्बंध होने से भी वह शुभ योग बनता है। इस प्रकार जैसा जैसा सम्वंध, विशेष प्रमाण में और अच्छे प्रमाण में मिल सके तो उस रीति से केन्द्राधिपति तरीके अथवा त्रिकोणाधिपति तरीके अशुभफल नाश पाते हैं और उनके सम्बंध के योग अच्छे होकर ये ग्रह बलवान् उत्तम योगवाले होकर उत्तम फल देनेवाले बनते हैं। इस प्रकार जो जो केन्द्राधिपति अथवा त्रिकोणाधिपति हो और उनका जैसा-जैसा उत्तम सम्वंध होता है उसी प्रमाण में उनकी बलिष्ठता समझकर उनको शुभफलदायक समझना।

स्पष्टीकरण :—श्लोक ४ के स्पष्टीकरण में यह बात स्पष्ट रूप से निर्देशित कर दी है कि ज्योतिष शास्त्र के फलित—जातक ग्रंथों में दिये गये परिभाषा और संज्ञाएं इस ग्रंथ में ग्रहण की गयी हैं परन्तु ग्रहों का शुभाशुभत्व का निर्णय मात्र उन ग्रंथों के संज्ञानुसार इस ग्रंथ में नहीं किया गया है। इतना ही नहीं तो इस ग्रंथमें ग्रहों की दृष्टि भी अन्य ग्रंथों से भिन्न है। अन्य ग्रंथों में जिन ग्रहों को क्रूर माना गया है वे ही ग्रह इस ग्रंथ में विशेष परिस्थिति में शुभग्रह भी हो जाते हैं। इसलिये जातक फलादेश और दशा फलादेश इन दोनों में समानता नहीं दिखाई देगी। ग्रंथांतर प्रसिद्ध सूर्य, मंगल आदि क्रूर ग्रहों के फल और समस्त ग्रहों की निर्दोषता या सदोषता इस ग्रंथ में दी हुई संज्ञाओं और परिभाषाओं पर ही निर्धारित करनी पड़ेगी। इस ग्रंथ के अनुसार

संज्ञाध्याय के श्लोकों में क्रम से द्वादश भाव और उनके स्वामियों के शुभाशुभत्व का निर्णय किया गया है अर्थात् श्लोक ६ में पंचम, नवम, तृतीय, षष्ठ और एकादश भवन (त्रिकोण और त्रिषडाय) का और उनके स्वामियों का विचार किया गया। श्लोक ७ में प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, तथा दशम भवन (केन्द्र) का विचार करते हुए इन सब के बलाबल का विचार किया तथा इनके स्वामियों का भी विचार किया गया। श्लोक ८ में द्वितीय–द्वादश भवन तथा उनके स्वामियों के फलों का विचार किया गया है तथा श्लोक ९ में अष्टम भवन का और उसके स्वामी का विचार स्फुट किया गया है।

इस प्रकार इस ग्रंथ के अनुसार तो जो नियम संज्ञाध्याय में देकर प्रत्येक ग्रह को शुभत्व या अशुभत्व प्रदानकिया गया है उसके अतिरिक्त अन्य ग्रंथों में या सामान्य ग्रंथों में बताये हुए नियमों का विचार यहाँ करना सर्वथा अयोग्य होगा। अशुभफलों को देनेवाले ग्रहों की व्याख्या तो संज्ञाध्याय के श्लोक ६ से लेकर ९ तक में स्पष्ट रूप से की गयी है और उन्हीं के अनुसार इस श्लोक में कहे प्रमाणे उनका दोषत्व उक्त श्लोकों में निर्देशन किये अनुसार ही निर्धारित करना होगा। वे दोष इस प्रकार कहे गये हैं।

(१) सब त्रिकोणाधिपति अशुभफल नहीं देते। वे शुभफलदायक होते हैं।

(२) सब शुभ केन्द्रपति शुभफल नहीं देते। सब क्रूर ग्रह केन्द्रपति अशुभ-फल नहीं देते।

(३) सब त्रिषडायपति अशुभफल देते हैं।

(४) लग्न से दूसरे और बारहवें स्थान के स्वामी दूसरे ग्रहों के साहचर्य से शुभाशुभफल देते हैं। उसी प्रकार वे स्वस्थानों के सिवाय अन्य स्थानों में हों तो उस स्थान के शुभाशुभ अनुसार फलदायक होते हैं।

शुभ, अशुभ का तात्पर्य निर्दोष, सदोष से है। कौन-कौन से ग्रह निर्दोष हैं और कौन-कौन से ग्रह सदोष हैं इसका वर्णन कोष्टकों के रूप में इस श्लोक के स्पष्टीकरण के अंत में दिया गया है। उस पर से सहज ही ध्यान में आवेगा कि सदोषता या निर्दोषता तो इसी ग्रंथ के अनुसार ही ग्राह्य करनी होगी, अन्य ग्रंथों की व्याख्या, नियम और विचारों द्वारा नहीं।

'बलिनौ केन्द्रत्रिकोणनेतारौ (दशमेश-नवमेश) यदि स्वयं दोषयुक्तावपि भवेतां (तदा) (परस्परं) सम्बन्धमात्रात् योगकारकौ भवेताम्' याने (बलवान) केन्द्र और त्रिकोण के नेता अर्थात् दशमेश और नवमेश यदि सदोष हों फिर भी परस्पर सम्बन्ध यदि करें तो, तो ये दोनों योगकारी (शुभफलद) होते हैं।

प्रथम श्लोक १४ में कहा गया है कि वे केन्द्रेश और त्रिकोणेश जिनकी अपनी दूसरी राशि केन्द्र त्रिकोण के अतिरिक्त अन्यत्र पड़ती न हो अर्थात् (निर्दोष केन्द्रेश–त्रिकोणेश) ये यदि आपस में सम्बन्ध करें तो ऐसा योग विशेष शुभफलदायक होता है। इस श्लोक (१५) में कहा गया है कि बली केन्द्रेश (दशमेश) और बली त्रिकोणेश (नवमेश) सदोष भी हों अर्थात् केन्द्र त्रिकोण के अतिरिक्त अन्य स्थानों के स्वामी हों; यदि परस्पर सम्बन्ध करें तो शुभदायक होंगे। पहिली स्थिति में विशेष शुभफलदायक और इस स्थिति में केवल शुभदायक होंगे। वहाँ 'दोषयुक्तावपि स्वयम्' वाक्य पूर्व के श्लोक के 'इतरैर-प्रसक्ताश्चेत्' वाक्य का स्पष्टीकरण है। 'स्वयं दोषयुक्त' कहने का तात्पर्य उस त्रिकोणाधिपति से है जिसकी अपनी दूसरी राशि पाप स्थानों में पड़ती हो और इसी कारण से वह स्वयं दोषयुक्त हुआ हो और न कि 'परेषां साहचर्यतः' अर्थात् जिसका दूसरे पापग्रह के साथ साहचर्य होने से हो। 'इतरैरप्रसक्ता' वाक्य का भी तात्पर्य ऐसा है कि वह स्वयं निर्दोष होना चाहिये (अर्थात् जिसकी अपनी दूसरी राशि अन्यत्र नहीं पड़ती हो वह)।

प्रथम श्लोक (१४) के अनुसार लेखक ने ऐसे केन्द्रेश और त्रिकोणेशों को, जिनकी अपनी दूसरी राशि द्वितीय अथवा द्वादश स्थानों में हो, उनको भी परस्पर संबंध प्रसंग में निर्दोष केन्द्रेश-त्रिकोणेश माना है कारण यह है कि "परेषां साहचर्यतः" इस श्लोक के अनुसार दूसरों के सहयोग से अपने फल देते हैं और कारण कि वहाँ पर दोनों ग्रह केन्द्र और त्रिकोण के स्वामी होकर आपस में मिलते हैं तब उन्हें उसी प्रकार का बल प्राप्त होता है। जिस प्रकार से वे द्वितीयेश-द्वादशेश होकर स्वयं केन्द्र त्रिकोण के अधिपति होते हैं।

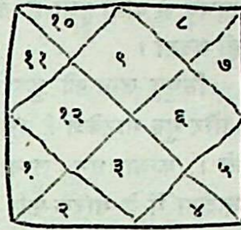
परंतु इस श्लोक के अनुसार यदि कोई नवमेश-द्वितीय या द्वादश स्थान का स्वामी भी हो और सदोष दशमेश से संबंध करे तो स्थिति में बदल होगा जिस प्रकार मेष लग्न की कुण्डली में नवमेश गुरु-द्वादशेश भी है और दशमेश शनि-एकादशेश भी है। ऐसी स्थिति में दोनों का परस्पर संबंध इस प्रकार माना जावेगा कि :—

द्वादशेश गुरु नवमेश होने से शुभ है अर्थात् स्वयं शुभ है परंतु एकादशेश शनि के साहचर्य से वह दोषयुक्त होगा क्योंकि वह गुरु (द्वादशेश) स्वयं दोष-युक्त नहीं है और दशमेश शनि स्वयं दोषयुक्त है इसलिए उसके योगकारक फल (योगज-फल) तारतम्य से होंगे। इस संबंध में विशेष बात यह है कि किसी भी कुण्डली में दशमेश तथा नवमेश—इन दोनों में से एक ही दोषयुक्त होता है।

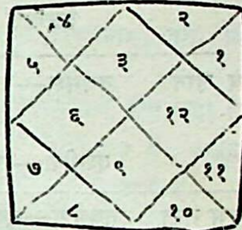
वे दोनों दोषयुक्त नहीं हो सकते। इस श्लोक का मुख्य नियम है कि केन्द्राधिपति और त्रिकोणाधिपति ये दोनों दोषवाले (सदोष) नहीं होने चाहिये। परंतु इनमें से एक दोष रहित बलवान हो और दूसरा अधिपति दोष-युक्त (सदोष) हो तो उन दोनों के संबंध के कारण से दोष की मुक्तता होती है और राजयोग बनने में किसी प्रकार की बाधा नहीं होती। उक्त श्लोक में 'बलिनौ' शब्द केन्द्र और त्रिकोणाधिपति का विशेषण है, योगकारकौ का विशेषण नहीं है। नहीं होना चाहिये। परंतु इनमें से एक दोष रहित बलवान हो और दूसरा अधिपति दोषयुक्त हो तो उन दोनों का संबंध होने के कारण से दोष की मुक्तता होती है। और राजयोग बनने के लिए उस दोष के कारण कोई भी बाधा उत्पन्न नहीं होती। ग्रह अस्तंगत न हो और स्थान बल, दिग्बल, षडबल और शुभ दृष्टिवाले ग्रह को बलवान मानना चाहिये— यह आवश्यक है। कारण, 'निर्बलो नैव योगकृत्' यह पाराशर का वाक्य स्पष्ट है। इस पर जो ऐसा कहने में आता है कि "सम्बन्धमात्रात् बलिनौ भूत्वा योगकारकौ भवेताम्" अर्थात् सम्बन्ध होने मात्र से वह ग्रह बलवान बनकर योग करनेवाला होता है, तो ऐसा कहना यथार्थ नहीं है कारण कि ग्रह निर्बल होने पर सम्बन्ध मात्र से सबल बन जाता है ऐसा मानना अयोग्य है। दोषयुक्तावपि स्वयम् यह पाद जो इस श्लोक में है उस पाद पर से यह निर्देश करने में आता है कि—

त्रिषडायाद्यधिपतित्वेन नायमपि (केन्द्रेशोऽपि) त्रिकोणेशवत् स्वयं दोष-युक्तः स्यात्। नीचत्वास्तंगतत्वादयः स्वयंदोषास्तु केन्द्रत्रिकोणेशयोरपि सम्भवन्ति. नीचत्वास्तंगतत्वादिनैर्बल्यकारणसत्त्वेऽपि न योगविघात इत्यत आह। बलिनाविति।

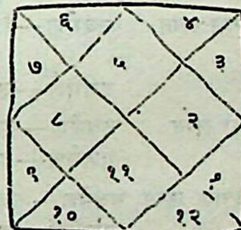
भावार्थ :—अर्थात् केन्द्र और त्रिकोण का अधिपति त्रिषडाय अर्थात् ३-६-११ स्थान का अधिपति होने से दूषित नहीं होता, दोष अर्थात् ग्रह अस्त हो नीचत्व हो इस प्रकार से दोषयुक्त हो तो सम्बन्ध मात्र से ग्रह बलवान बनता है, और इस ग्रंथ में बताये दोष के सिवाय सामान्य शास्त्र में बताये हुए निर्ब-लता के दोष को स्वीकार करके सिर्फ सम्बन्ध लेकर वह निर्बलता नष्ट हो जाती है। इस प्रकार का जो टीकाकार कहता है वह पाराशर के 'निर्बलो नैव योगकृत्' इस वाक्य के विरोध में है। इस प्रकार हर एक लग्न की कुण्डली और उसमें क्या-क्या दोष है वह स्पष्ट रीति से संज्ञाध्याय के विवरण में बताया गया है, उसमें से दाखले के बतौर लेते हैं।



इस कुण्डली में दशम स्थान का स्वामी बुध यह सप्तम-मारक स्थान का स्वामी होने से दूषित हुआ है। यह बुध यदि नवम स्थान के स्वामी से (सूर्य से) सम्बन्ध करता हो तो उसका दोष नष्ट हो जाता है और इस प्रकार ९वें और १०वें स्थान के स्वामियों के सम्बन्ध के कारण से उत्पन्न हुआ राजयोग कायम रहता है।



इस कुण्डली में नवम स्थान का स्वामी शनि अष्टम-स्थान का भी स्वामी होने से दूषित है। उसी प्रकार दशम स्थान का स्वामी गुरु, सप्तम स्थान का भी स्वामी होने से दूषित हैं। ये दोनों स्वामी दूषित होने से उनका सम्बन्ध राजयोग कारक नहीं होता। उक्त कहे हुए अनुसार १४ और १५ श्लोक में राजयोग दर्शाने वाले जो नियम कहे हुए हैं उन नियमों के अपवाद हैं ऐसा नहीं समझना चाहिए। इन नियमों के सिवाय शुभयोग उत्पन्न करनेवाले अन्य नियम नहीं है यह इस ग्रन्थ का सिद्धान्त है यह बात सच है। परन्तु यहाँ बताये हुए नियमों के अनुसार जो राजयोग सम्बन्ध होते हों तो उनको यदि कोई भी दोष लगता हो और उस कारण से यदि वे दूषित हों तो वे राजयोग निष्फल होते हैं। मेष, मिथुन, सिंह वगैरे लग्नों की कुण्डलियाँ संज्ञाध्याय प्रकरण से सम्बन्धित परिशिष्ट में दी गयी हैं उनमें जो दोष बताये गये हैं वे दोष वैसे के वैसे ही २२वें श्लोक में जो नियम दिये गये हैं उनका अनुगमन करते हैं।



उदाहरणार्थ :—सिंह लग्न की कुण्डली में मंगल और गुरु का योग हो तो शुभफलदायक होगा क्योंकि इस कुण्डली में मंगल स्वयं निर्दोष हैं और गुरु पंचम स्वामी होकर अष्टमेश होने से सदोष है। इस प्रकार गुरु स्वयं सदोष होने पर भी सम्बन्ध या योग के कारण से शुभफलदायक होगा (इसके विपरीत मेष लग्न की कुण्डली में गुरु-शनि का योग स्वयं दोषयुक्त है क्योंकि गुरु नवम-द्वादशेश है इसलिए सदोष है। और शनि दशमेश-एकादशेश है और सदोष है। इसलिये दोनों सदोष होने से उनका योग शुभफलदायक नहीं होगा।

नीचे दिये हुए कोष्टकों में मेष लग्न की कुण्डली में नवमेश-द्वादशेश बृहस्पति यह स्वयं दोषयुक्त नहीं है परन्तु एकादशेश शनि (वह दशमेश भी है) के

साहचर्य से दोषी हुआ है इसलिए यहाँ पर शनि + गुरु का योग—योगकारक नहीं बनता।

मिथुन लग्न की कुण्डली में शनि अष्टमेश होने से स्वयं दोषयुक्त (सदोष) है और गुरु मारकेश है इसलिये इनका योग सदोष है इसलिये ये योगकारक नहीं होते। कन्या, धनु लग्न की कुण्डली में शुक्र और बुध मारकेश हैं। उनकी अन्तर्दशा में वे मारक-फल देते हैं।

उपर्युक्त श्लोक के अनुसार दशमेश-नवमेश-इनका कोष्ठक, जिनके योगज-फल शुभ माने गये हैं

लग्न	विवरण	फल
मेष लग्न	नवमेश—दशमेश = बृहस्पति स्वयं निर्दोष पर साहचर्य सदोष दशमेश—एकादशेश = शनि = सदोष	गु + श = + २
वृषभ लग्न	नवमेश—दशमेश = शनि = निर्दोष	श = + ११
मिथुन लग्न	नवमेश—अष्टमेश = शनि = सदोष दशमेश—सप्तमेश = बृहस्पति = सदोष—मारकेश	श + गु = + ३
कर्क लग्न	नवमेश—षष्ठेश = बृहस्पति = सदोष दशमेश—पंचमेश = मंगल = निर्दोष	गु + मं = + ६
सिंह लग्न	नवमेश—चतुर्थेश = मंगल = निर्दोष दशमेश—तृतीयेश = शुक्र = सदोष	मं + शु = + ६
कन्या लग्न	नवमेश—द्वितीयेश = शुक्र = सदोष—मारकेश दशमेश—लग्नेश = बुध = निर्दोष	शु + बु = ÷ १६
तुला लग्न	नवमेश—द्वादशेश = बुध = निर्दोष दशमेश—दशमेश = चन्द्र = निर्दोष	बु + चं = + ११
वृश्चिक लग्न	नवमेश—नवमेश = चन्द्र = निर्दोष दशमेश—दशमेश = सूर्य = निर्दोष	चं + सू = + ११
धनु लग्न	नवमेश—नवमेश = सूर्य = निर्दोष दशमेश—सप्तमेश = बुध=सदोष—मारकेश	सू + बु = ÷ ११
मकर लग्न	नवमेश—षष्ठेश = बुध = सदोष दशमेश—पंचमेश = शुक्र = निर्दोष	बु = शु = + ६

कुम्भ लग्न	नवमेश—चतुर्थेश = शुक्र = निर्दोष दशमेश—तृतीयेश = मंगल = सदोष	शु + मं = + ६
मीन लग्न	नवमेश—द्वितीयेश = मंगल = निर्दोष दशमेश—लग्नेश = बृहस्पति = निर्दोष	मं + गु = ÷ १६

निवसेतां व्यत्ययेन तावुभौ धर्मकर्मणोः ।

एकत्रान्यतरो वापि वसेश्चेद्योगकारकौ ॥ १६ ॥

अर्थ :—धर्म और कर्म स्थानों के अधिपति परस्पर अपने स्थानों में हों, एकत्र हों, अथवा दोनों में से एक दूसरे के स्थान में हों, तो वे योगकारक होते हैं ॥१६॥

स्वर्गीय श्री रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

इस श्लोक में ९ वें और १० वें स्थानों का शुभफलदायक योग कहा है :—

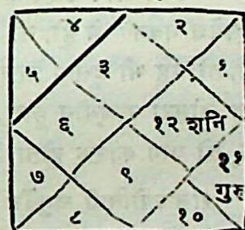
(१) ९ वें स्थान का स्वामी १० वें स्थान में और १० वें स्थान का स्वामी ९ वें स्थान में होना (इस योग को अन्योन्याश्रित योग कहते हैं)

(२) दोनों एकत्र नवम स्थान में या दशम स्थान में होना, और

(३) नवमेश दशम स्थान में या दशमेश नवम स्थान में होना। इन तीन प्रकार के योगों में से योग हो तो वह शुभलदायक और बलवान समझना चाहियें।

स्वर्गीय वि० गो० नवाथे (मराठी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

भाग्याधीश और दशमेश यदि एक दूसरे के स्थान में हों अथवा एकत्र हों तो वह राजयोग होता है। ये दोनों नवम स्थान में एकत्र हों या दशम स्थान में एकत्र हों अथवा दोनों में से एक भी नवम या दशम स्थान में हो, तो वह राजयोग होता है।



उदाहरणार्थ :—इस कुंडली में दशम स्थान में मीन राशि होकर उसका स्वामी गुरु नवम स्थान में बैठा है और नवम स्थान में कुम्भ राशि होकर उसका स्वामी शनि दशम स्थान में है, इसलिए ये राजयोग हुआ।

इसमें एक और प्रकार है। नवमेश-दशमेश अपने स्वराशी में हों तो भी राजयोग होगा। इस श्लोक में 'अन्यतर' पद है। इसका अर्थ दो प्रकार से होता है (१) एक दूसरे के परस्पर स्थान में—इस प्रकार होता है और (२) दूसरा ऐसा अर्थ होता है कि भावाधिपति के सिवाय अन्य दूसरा ग्रह यदि इन स्थानों में हो तो भी राजयोग होगा। तीसरे ग्रह के सम्बन्ध से राजयोग भंग नहीं होता।

स्वर्गीय ह० ने० काटवे (मराठी टीकाकार) सिर्फ इस प्रकार अर्थ करते हैं :—

'धर्म और कर्म इन स्थानों के अधिपति एक दूसरे के स्थान में एकत्र हों अगर नवमेश दशम में, दशशेश नवम में हो, तो ये योगकारक होते हैं"।

ज्योतिषाचार्य-तीर्थ पण्डित सीताराम झा (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं—

भाष्य—यदि केन्द्रेश त्रिकोण में, और त्रिकोणेश केन्द्र में इस प्रकार व्यत्यय से स्थित हों; अथवा दोनों एक ही स्थान (केन्द्र या त्रिकोण) में साथ हों; अथवा केन्द्रेश त्रिकोण में, वा त्रिकोणेश केन्द्र में हो तो योगकारक होते हैं।

यहाँ दूसरे से अप्रसक्त भी हों और परस्पर सम्वन्ध भी हो, इस प्रकार केन्द्रेश और त्रिकोणेश को व्यत्यय से त्रिकोण केन्द्र में रहने ही से हो सकता है, अन्यथा नहीं। तथा त्रिकोण और केन्द्र ये प्रवल स्थान होने के कारण त्रिकोण स्थान में धर्म और केन्द्र स्थान में कर्म का प्रयोग उदाहरण रूप से दिया गया है।

अब यहाँ यह आशंका उपस्थित हुई कि सब केन्द्रेश और त्रिकोणेश के सम्वन्ध से फ़ल तुल्य ही होगा या कुछ न्यूनाधिक भी। इसको दूर करने के लिए आगे का श्लोक देखिये।

पण्डित रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं —

"नवम और दशम के स्वामी इस प्रकार बैठे हों कि, नवमेश दशवें और दशमेश नवम में हो, तो एक राजयोग हुआ, अथवा दोनों नवम स्थान में बैठे हों, तो यह भी दूसरा राजयोग हुआ, अथवा दोनों दशम स्थान में बैठे हों, तो यह तीसरा राजयोग हुआ, अथवा उन दोनों में से एक ही अपने स्थान में बैठे हों, तो योग कारक होता है' ॥१६॥

राज-ज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं :—

'नवम और दशम भाव के स्वामी व्यत्यय से अर्थात् नवम भवन का स्वामी दशम भवन में और दशम भवन का स्वामी नवम भवन में बैठा हो तो यह एक राजयोग होता है। अथवा दोनों दशम भवन में ही स्थित हों तो भी राजयोग होता है। या दोनों (दशमेश और नवमेश) नवम स्थान में बैठे हों तो भी राजयोग होता है अथवा इन दोनों में से एक भी व्यत्यय से अर्थात् नवमेश दशम भवन में और दशमेश नवम भवन में बैठा हो तो भी राजयोग होता है।'

विद्यारत्न पंडित माधवप्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं :—

'यदि केन्द्र और त्रिकोण के स्वामी अपना-अपना स्थान बदल कर रहें वा दोनों में से कोई एक किसी स्थान में रहे तो भी राजयोग कहते हैं। तात्पर्य यह है कि योग चार प्रकार से होता है। कर्म स्थान में धर्मेश रहे और धर्म स्थान में कर्मेश रहे यह प्रथम योग है। धर्म स्थान में धर्मेश और कर्मेश रहे यह द्वितीय योग है। कर्मभाव में कर्मेश और धर्मेश रहे, यह तृतीय योग है। दोनों में से एक ही एक भाव में रहे यह चतुर्थ योग है। जहाँ इनमें से कोई योग का संभव होगा वहाँ राजयोग होता है।'

उद्योतकार के अनुसार नवमेश और दशमेश उन दोनों में से यदि एक ही ग्रह अपने स्थान में हो याने नवम-दशम स्थान में हो तो राजयोग होता है।

सज्जन रंजीन टीकाकार के मत के अनुसार नवमेश नवम स्थान में तथा दशमेश दशम स्थान में हो अथवा परस्पर स्थानों में हो तो राजयोग होता है।

श्री विनायक शास्त्री कहते हैं कि यहाँ नवम शब्द त्रिकोण का उपलक्षण और दशम शब्द केन्द्र का उपलक्षण है। इस प्रकार यह योग नवमेश-दशमेश अथवा नवम-दशम स्थान तक ही सीमित है ऐसा नहीं समझना चाहिए। सब केन्द्र और त्रिकोण को भी लागू करना उचित होगा। यदि केन्द्रेश त्रिकोण में हो और त्रिकोणेश केन्द्र में हो तो ऐसा योगकारक होगा। जैसे कर्क लग्न की कुण्डली में केन्द्रेश (दशमेश) मंगल नवम हो, त्रिकोणेश बृहस्पति सप्तम केन्द्र में हो तो मंगल और बृहस्पति योगकारक कहे जायेंगे।

केन्द्रेश त्रिकोणेश के सम्बन्ध के कारण तो प्रबल योग होता है यह पूर्व में कहा हुआ ही है। परन्तु यहाँ पर योग तो केन्द्रेश त्रिकोणेश पर आधारित नहीं है अपितु केन्द्र त्रिकोण इन स्थानों पर आधारित है। यह योग पहिले योग के बनिस्पत न्यून होने पर भी राजयोग कारक है कारण केन्द्रेश का त्रिकोणेश के साथ साहचर्य होता है और त्रिकोणेश का केन्द्रेश के साथ। यदि केन्द्रेश और त्रिकोणेश ये दोनों एकल एक (त्रिकोण) स्थान में बैठे हों तो भी दोनों योगकारक होते हैं। जैसे—मंगल केन्द्रेश (दशमेश) नवम (त्रिकोण) स्थान में और नवमेश बृहस्पति पंचम स्थान में अथवा ये दोनों (मंगल-बृहस्पति) केन्द्र में बैठे हों और कर्क लग्न हो तो दशमेश मंगल चतुर्थ स्थान में और नवमेश बृहस्पति सप्तम स्थान में हो तो भी मंगल बृहस्पति योगकारक होते हैं किन्तु द्वितीय प्रकार के योगमें जहाँ दोनों केन्द्र में या त्रिकोण में हों यह योग पूर्व के योग की अपेक्षा स्वल्प श्रेणी का है।'

उपरोक्त कथन के अनुसार विनायक शास्त्री के मत में कर्क लग्न की कुंडली में मंगल नवम में हो (केन्द्रेश त्रिकोण में) तो योगकारक होता है अथवा इसी लग्न की कुंडली में त्रिकोणेश बृहस्पति सप्तम स्थान में हो तो योगकारक है; कारण त्रिकोणेश केन्द्र में है।

पंडित रामयत्न ओझाजी (फलित विकास) टीकाकार के मत के अनुसार :—

नवमेश दशम में, दशमेश नवम में हो तों एक योग हुआ। यदि दोनों एकत्र एक राशि में हों तो दूसरा योग हुआ। परन्तु श्री विनायक शास्त्री के मतानुसार धर्म शब्द से कोई भी त्रिकोण ले सकते हैं और कर्म शब्द से कोई भी केन्द्र ले सकते हैं; यह मत पण्डित ओझाजी को कबूल नहीं है। उनके मतानुसार नवमेश-दशमेश इनके बीच चार सम्बन्धों में से कोई भी एक सम्बन्ध होता हो तभी ये दोनों योगकारक होते है।

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराथी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

'नवम स्थान का स्वामी और दशम स्थान का स्वामी परस्पर स्थानों में बैठा हो अथवा वे दोनों नवम या दशम में बैठे हों तो वे राजयोग कारक होते हैं। इन दोनों स्थानों से अर्थात् ९वें या १०वें से उनके अधिपति के अलावा अन्य कोई भी अशुभ ग्रह इन दोनों स्थान में याने नवम या दशम में से कोई भी स्थान में, नवम और दशम के अधिपति के साथ अथवा किसी एक के साथ हो तो ऐसी स्थिति में होने वाला राजयोग दूषित नहीं होता।

तात्पर्य यह है कि (१) नवम दशम स्थानों के अधिपति परस्पर स्थान में हों, (२) नवम और दशम के स्वामी दोनों एकत्र नवम में, (३) नवम-दशम के स्वामी एकत्र दशम में, (४) नवम-दशम के स्वामी के सिवाय कोई भी अशुभ ग्रह इन दोनों स्थानों में से किसी एक स्थान में; नवम और दशम इन दोनों स्थानों के स्वामी के साथ अथवा दोनों में से एक स्थान के स्वामी के साथ हो तो उस अशुभ ग्रह के योग से बना हुआ दोष नष्ट होता है।

चौदहवें श्लोक में सामान्य राजयोग के विशेष फल के विषय में निर्देश किया गया है। और उसमें ऐसा नियम बताया गया है कि केन्द्र और त्रिकोण के भावपति के सिवाय इतर भाव का स्वामी अशुभग्रह जो केन्द्र और त्रिकोण के अधिपति के सम्बन्ध से जो योग बनता है उसके साथ (वह इतर अशुभग्रह है) बैठा हुआ हो तो राजयोग निष्फल नहीं होता। मात्र वह विशेषफल न देकर कुछ फल में न्यूनता देता है। परन्तु इस श्लोक में तो ऐसा स्पष्ट कहा है कि अन्य

भाव स्वामी अशुभग्रह नवम और दशम भाव के दोनों स्वामियों के साथ अथवा उनमें से एक के साथ युक्त हो तो उपरोक्त बताये अनुसार राजयोग होता है और उसको किसी भी प्रकार की न्यूनता और हानि नहीं पहुँचती। इस श्लोक में बताये हुए दोनों राजयोग श्रेष्ठ प्रकार के हैं। पाराशर का श्लोक देखिये :—

धर्मकर्माधिपौ चैव व्यत्यये तावुभौ स्थितौ।
युङ्क्तश्चेद्वै तदा वाच्यं सर्वसौख्यसमन्वितम्॥

भावार्थ :— नवम और दशम के स्वामी दोनों परस्पर भाव में स्थित हों और वे दोनों अलग, दोनों में से एक स्थान में हो तो वे सब कुछ देने वाले होते हैं।

हिन्दी टीकाकारों ने नीचे प्रमाणे अन्वय किया है :—

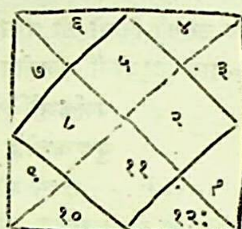
तौ उभौ (धर्मकर्मणोः अधिपौ) व्यत्ययेन एकत्र वा निवसेतां अन्यतरो वापि (तयोः एकोऽपि वा) वसेच्चेत् योगकारकौ भवतः।

इस अन्वय में अन्यतर का अर्थ दोनों अधिपति में से कोई भी एक—इस प्रकार किया है। इस प्रकार करके ऊपर जो मुख्य दो योग बताये हैं उनके सिवाय दो और अधिक योग बताते हैं। (१) नवम का स्वामी नवम में, अथवा दशम में और (२) दशम का स्वामी दशम में अथवा नवम में—ये दो योग अधिक दाखल करते हैं। परन्तु दोनों के स्वामी दो में से एक स्थान में एकत्र पड़े हों तो इस बात को उड़ा देते हैं। इस प्रकार नवम और दशम के स्वामी एक स्थान में नवम में और दशम में पड़े हुए हों तो इस योग को उड़ा देते हैं। उस प्रकार के लिए यह अन्वय यथार्थ नहीं है। इस पर एक ही ग्रह का कोई भी सम्बन्ध वगैरह का योग यह १४ और १५ श्लोक के नियमों के विरुद्ध है, कारण कि इस अध्याय में दो ग्रहों के योग के विषय में निर्देश है। अन्यतर शब्द एक ही ग्रह को लागू करना और दोनों में से हर एक को लागू नहीं करना, दोनों ग्रहों के सम्बन्ध बता नहीं सकता। इस पर भी दशमेश यदि सदोष हो तो वह दोष नष्ट नहीं होता और योगकारकौ यह द्विवचन का प्रयोग होने से दो ग्रहों को ही और एक ग्रह को लागू ही नही पड़ता ऐसा स्पष्ट कहा है। इसके अलावा दोनों स्थानोंके अधिपतियों के सम्बन्ध की आवश्यकता क्यों छोड़ने में आयी है उसके विषय में टीका में कोई भी कारण बताया नहीं है। उपरोक्त अन्वय में एक ग्रह के जो दो योग अधिक बताये हुए हैं उनको नीचे प्रमाणे दोष लगता है। यह दोष नीचे दिये हुए दृष्टांत पर से स्पष्ट मालूम देगा।

इस कुण्डली में मंगल और शुक्र क्रमशः नवम और दशम स्थान के स्वामी बनते हैं। (१) यदि शुक्र को नवम में अथवा दशम स्थान में बैठाया जावे तो

नवमेश मंगल, पंचम, अष्टम तथा द्वादश स्थान में बिना कोई हरकत बैठाया जा सकता है।

(२) मंगल नवम और दशम स्थान में रख देने से उपरोक्त अन्वय प्रमाणे योग हो गया। अब शुक्र जो दशमेश है उसे द्वितीय, सप्तम या अष्टम स्थान में भी बैठाया जा सकता है। इस प्रकार दोनों तो इस योग द्वारा १४ वें श्लोक प्रमाणे राजयोग नहीं कहा जा सकता कारण इसमें जो दशम केन्द्र और नवम त्रिकोण के अधिपतियों का सम्बन्ध बने तब यह विशेष फल देनेवाला राजयोग होता है। इस प्रकार जो १४ वें श्लोक में कहे अनुसार दशम के स्वामी शुक्र के साथ नवम का स्वामी मंगल पंचम में, अष्टम में या बारहवें बैठकर कोई भी सम्बन्ध न बनने के कारण राजयोग संभव नहीं होता, दूसरे दृष्टांत में दशम का स्वामी दूसरे, सातवें, आठवें होने से नवम के स्वामी मंगल के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं बनता। ऐसा होने से इन दोनों दृष्टान्तों में श्लोक १४ के नियम के अनुसार विशेष फलदाता राजयोग बन नहीं सकता। इसके उपरान्त १५ वें श्लोक में बताये अनुसार शुक्र केन्द्राधिपति वह तृतीय का अधिपति होने से दोषयुक्त बनता है, वहाँ उसका नवम के स्वामी के साथ सम्बन्ध मात्र हो तभी राजयोग बनेगा। परन्तु यहाँ नवम के स्वामी का सम्बन्ध बिलकुल होता ही नहीं इसलिए यह अन्वय बराबर नहीं है। तात्पर्य यह है कि उपरोक्त अन्वय प्रमाणे नवम का स्वामी नवम में अथवा दशम का स्वामी दशम में ये दोनों योग जो अधिक बतलाने में आये हैं और नवम और दशम के स्वामी दोनों नवम अथवा दशम में एकत्र होने के योग को छोड़कर जो योग बनाने में आया है वह उपर कारणों से, बराबर नहीं हैं यह स्पष्ट किया है।

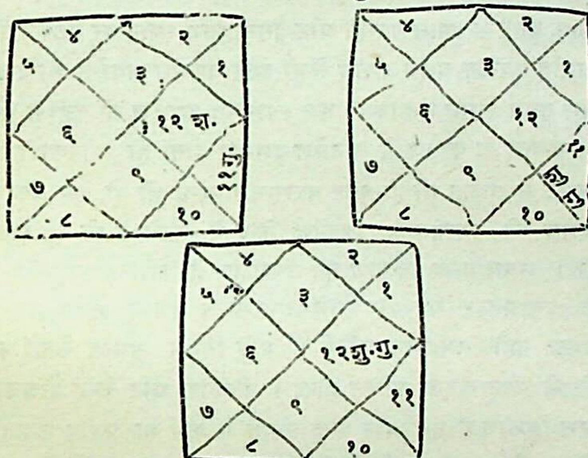


एक ही ग्रह का फल प्रबल योग बनना हो तो वह वृषभ लग्न की कुंडली में है कारण वहाँ नवम और दशम का स्वामी अकेला शनि होने से वह यदि नवम में या दशम में पड़ा हो तो यह योग बन सकता है कारण दशम स्थान बलवान केन्द्र है और नवम स्थान बलवान त्रिकोण है और उन दोनों का स्वामी शनि अकेला होने से परम शुभ योग बनता है और इस ग्रंथ में जो इस श्लोक में नवम और दशम के दोनों ग्रह अलग-अलग होकर जो योग बताया है वह शनि से बने हुए योग से बलवान है, ऐसा कहना योग्य नहीं।

शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या (गुजराथी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं—

स्पष्ट रीति से कहा जाय तो यह कह सकते हैं कि नवम स्थान का अधिपति और दशम स्थान का अधिपति नवम स्थान में रहा हो अथवा वे दोनों स्थान के अधिपति नवम अथवा दशम स्थान में अलग-अलग रहे हों तो राजयोग बनता है और वह योग उत्तमफल देनेवाला होता है। इसमें नवम अथवा दशम स्थान के अधिपति शुभग्रह होने चाहिए अथवा अशुभग्रह होने चाहिये यह कहीं भी नहीं कहा है और वहाँ सामान्य रीति से यह योग समझना होवे तो नीचे की कुण्डली पर से योग दिया है वह स्पष्टीकरण देखिये।

तीन योगों की कुण्डली



उपरोक्त कुंडलियाँ एक ही लग्न की देने में आयी हैं। इसमें प्रथम कुंडली में श्लोक में कहे प्रमाणे नवम भाग्य भवन में कुंभ राशि होने से उस राशि का स्वामी शनि दशम स्थान में मीन राशि के स्वामी गुरु के स्थान में बठा है और उसी प्रकार दशम स्थान का स्वामी नवम में शनि के स्थान में बैठा है इसलिए ये दोनों स्थानों के अधिपतियों का परस्पर एक दूसरे के स्थान अकेले पड़ने से वहाँ पर वे राज योग तरीके मानने में आये हैं। इसी प्रकार दूसरी कुंडली में नवम स्थान का अधिपति शनि और दशम स्थान का अधिपति गुरु ये दोनों ग्रह साथ में रहने से वहाँ भी एक राजयोग तरीके योग मानने में आया है। उसी प्रकार नवम स्थान का स्वामी शनि और दशम स्थान का अधिपति गुरु ये दोनों तीसरी कुंडली में, साथ में दशम स्थान में बैठने से यह भी राजयोग तरीके मानने में आया है। तीनों राजयोग उत्तम फल देनेवाले माने जाते हैं। जो कि इसमें पूर्व से कहे प्रमाणे खास विशेषता बतायी नहीं है

पर सम्बन्ध परत्वे ये योग के फलादेश में थोड़ा बहुत फेरफार हो सकता है। इस रीति से उस लग्न में धर्म कर्म स्थान याने नवम दशम के अधिपति होकर ग्रह आते हों और उस योग को राजयोग तरीके उनका इस प्रकार का योग हुआ हो तो उत्तमफल देनेवाला योग समझना चाहिये।

स्पष्टीकरण

धर्म-कर्म स्थानों के स्वामी अर्थात् नवमेश-दशमेश (निर्दोष हों अथवा सदोष हों) यदि (१) परस्पर एक दूसरे के स्थानों में हों अर्थात् नवमेश दशमस्थान में हो और दशमेश नवम स्थान में हो, (२) ये दोनों नवम या दशम स्थान में एकत्र बैठे हों, अथवा (३) एक दूसरे के स्थान पर हों और दूसरा अन्य स्थान पर बैठकर पहिले को देखता हो अर्थात् नवमेश दशम स्थान में हों और दशमेश नवमेश को देखता हो; अथवा दशमेश नवम स्थान में होकर नवम स्थानगत दशमेश को कहीं से भी देखता हो तो ऐसे सम्बन्ध के कारण से नवमेश-दशमेश दोनों ही योगकारी ग्रह बनते हैं। यहाँ दूसरे से प्रसक्त भी हो और परस्पर सम्बन्ध भी हो, इस प्रकार केन्द्रेश और त्रिकोणेश को व्यत्यय से त्रिकोण केन्द्र में रहने से ही हो सकता है। अन्यथा नहीं। नवम शब्द त्रिकोण का उपलक्षण है और दशम शब्द केन्द्र का उपलक्षण है इस प्रकार यह योग नवमेश-दशमेश अथवा नवम-दशम तक ही सीमित है ऐसा नहीं समझना चाहिये। यही नियम समस्त केन्द्रों को और त्रिकोणों को भी लागू करना उचित होगा। त्रिकोण और केन्द्र ये प्रबल स्थान होने के कारण त्रिकोण में धर्म और केन्द्र स्थान में कर्म का प्रयोग उदाहरण रूप दिया गया है। और वह यथार्थ भी है। केन्द्रेश और त्रिकोणेश के सम्बन्ध के कारण तो प्रबल राजयोग होता ही है यह पूर्व के श्लोक में कहा ही है परन्तु यहाँ पर वह योग केन्द्रेश और त्रिकोणेश पर आधारित नहीं है, अपितु केन्द्र त्रिकोण इन स्थानों पर ही आधारित हैं। परन्तु यहाँ इस बात का ध्यान रखना जरूरी है कि उपर्युक्त केन्द्र त्रिकोण को यह नियम लागू करते समय उन दोनों स्वामियों के बीच में चार सम्बन्धों में से कोई भी एक सम्बन्ध होना आवश्यक है तभी यह योग, कारक बन सकता है।

इस श्लोक में ग्रहों के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में नियम कहे गये हैं और अब नियमों को नवमेश तथा दशमेश इनको उदाहरण स्वरूप उपस्थित किये हैं।

पहिले श्लोक में 'सम्बन्धेन परस्परम्' और दूसरे श्लोक में 'सम्बन्धमात्रात्' इन दो वाक्यों का अर्थ कहीं भिन्न-भिन्न न समझने में आवे इसलिये इसका यहाँ भी अब उपर्युक्त श्लोक में नवमेश-दशमेश का उदाहरण दिया है। वास्तविक रूप से देखा जाय तो सम्बन्ध के उपरोक्त तीनों नियम सभी भावाधिपों के लिए

समान ही है। अन्तर इतना ही है कि उपर्युक्त नियमों के अनुसार यदि केन्द्र-पति और त्रिकोणपति आपस में सम्बन्ध करें तब वे योगकारी होते हैं। अन्य भावाधीशों का परस्पर सम्बन्ध कारक नहीं होता।

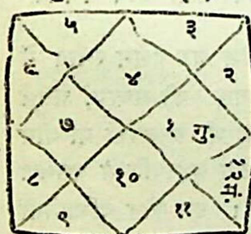
इस श्लोक में 'अन्यतर' पद है। उसका अर्थ दो प्रकार से होता है (१) एक दूसरे के परस्पर स्थान में और (२) दूसरा अर्थ ऐसा होता है कि भावाधिपति के सिवाय अन्य दूसरा ग्रह इन स्थानों में हो तो भी राजयोग होगा।

सम्बन्ध की दृष्टि से प्रथम सम्बन्ध दो प्रकार के सम्बन्धों से श्रेष्ठ है। द्वितीय सम्बन्ध—द्वितीय श्रेणी का और तृतीय सम्बन्ध—तृतीय श्रेणी का है। परन्तु लेखक के मतानुसार जहाँ पर आपस में (परस्पर) सम्बन्ध करनेवाले दो ग्रहों में से एक स्वयं योगकारी हो (अर्थात् स्वयं केन्द्र और त्रिकोण का स्वामी हो) वहाँ उपर्युक्त तीन श्रेणियों में तृतीय—प्रथम श्रेणी में, द्वितीय—द्वितीय श्रेणी में, प्रथम—तृतीय श्रेणी में आवेगा। यह आगे दी हुई कुण्डलियों पर से स्पष्ट किया है।

उदाहरण—

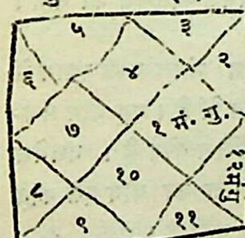
कर्क लग्न की कुण्डली—सम्बन्धकर्ता नवमेश-दशमेश

कुण्डली नं० (१)



प्रथम कुण्डली में दशमेश मङ्गल नवम स्थान में तथा नवमेश गुरु दशम स्थान में बैठा है। यह व्यत्ययेन परस्पर स्थानगत दशमेश-नवमेश इनका अन्योन्याश्रित योग है। यहाँ मङ्गल की अपनी दूसरी राशि वृश्चिक पंचम स्थान में है और बृहस्पति की अपनी दूसरी राशि धनु षष्ठ स्थान में है। परन्तु यहाँ पर यह 'अन्योन्याश्रित' योग पंचमेश-षष्ठेश का योग नहीं माना जावेगा इसलिये यहाँ दशमेश-नवमेश का योग विशुद्ध नवमेश-दशमेश का ही योग है। योगों में यह योग **प्रथम श्रेणी** का योग है।

कुण्डली नं० (२)

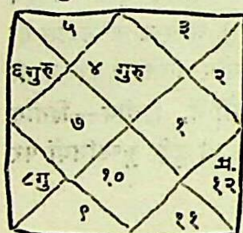


कुण्डली नंबर २ में दशम स्थान में नवमेश-दशमेश अथवा नवम स्थान में दशमेश-नवमेश एकत्र बैठे हैं यह योग नवमेश-दशमेश इनका एकत्र योग है। यह योग द्वितीय श्रेणी का है, कारण, दो ग्रहों में से एक स्वगृह का है और दूसरा सम्बन्धित ग्रह के स्थान में है। यहाँ मेष राशि के मंगल-गुरु का एकत्र योग वास्तविक दशमेश मङ्गल तथा नवमेश-षष्ठेश गुरु का योग है तथा मीन राशि में मङ्गल गुरु का एकत्र योग वास्त-

विक नवमेश गुरु का दशमेश-पंचमेश मङ्गल से एकत्र योग है। इन दोनों योगों के शुभत्व परिणामों में अन्तर पड़ेगा।

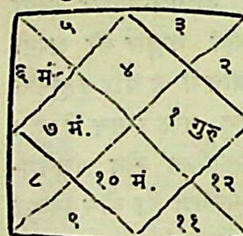
लेखक के मत में प्रथम उदाहरणार्थं कुण्डली के नवमेश-दशमेश के अन्योन्याश्रित योग की अपेक्षा द्वितीय कुण्डली में मीनस्थ-गुरु-मंगल का एकत्र योग शुभत्व की दृष्टि से अधिक वलवान् है। कारण कि, यहाँ स्वस्थानगत गुरु का नवमेश-पंचमेश मंगल से स्थानगत सम्वन्ध है और यहाँ मंगल स्वयं योगकारी है। परन्तु साधारणतः अन्योन्याश्रित योग की अपेक्षा एकत्र योग निर्बल योग होता है।

कुण्डली नं० ३



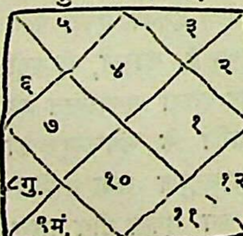
तृतीय कुण्डली में दशमेश मंगल नवम स्थान में है और उस मंगल को नवमेश गुरु लग्न पर से अथवा पंचम स्थान में से अथवा तृतीय स्थान में से देख रहा है। यह अन्यतरो वा योग तृतीय श्रेणी का है। यहाँ मंगल गुरु की नवमस्थ राशि में बैठा है, और उसे गुरु, पंचम, सप्तम तथा नवम दृष्टि से देख रहा है। उपर्युक्त स्थिति में वास्तविक दशमेश-पंचमेश मंगल पर नवमेश गुरु की दृष्टि यह तृतीय श्रेणी का योग है। इन तीनों योगों में नवमस्थ मंगल पर पंचमस्थ गुरु की दृष्टि करनेवाला योग पंचमेश-नवमेश इनका एक अन्योन्याश्रित योग भी है।

कुण्डली नं० ४



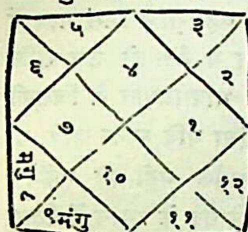
चतुर्थ कुण्डली में—नवमेश गुरु दशम स्थान में है और उस पर दशमेश मंगल की सप्तम, चतुर्थ अथवा अष्टम दृष्टि है। यह भी अन्यतरो वा योग है। इस योग में नवमेश—षष्ठेश वृहस्पति से दशमेश मंगल का दृष्टि सम्वन्ध है। इन तीन दृष्टियोगों में मंगल भिन्न-भिन्न राशियों में बैठ कर नवमेश गुरु को देखता है इसलिए ये योग तृतीय श्रेणी के हैं, कारण, यहाँ पर गुरु मंगल की दशमस्थ राशि (मेष) में बैठा है इसलिए गुरु पर मंगल की दृष्टि—दशमेश की दृष्टि मानी जावेगी, पंचमेश—दशमेश की नहीं।

कुण्डली नं० ५



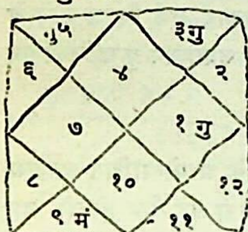
पंचम कुण्डली में—पंचमेश मंगल षष्ठ स्थान में और षष्ठेश गुरु पंचम स्थान में हैं। यह योग पंचमेश—षष्ठेश इनका अन्योन्याश्रित योग है। दशमेश नवमेश अथवा पंचमेश—नवमेश का योग इसे कहा नहीं जाता। यह कारक योग नहीं है।

कुण्डली नं० ६



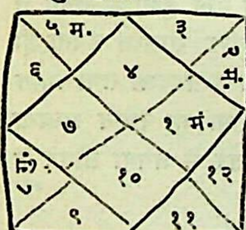
षष्ठ कुण्डली में पंचम स्थान में मंगल गुरु तथा षष्ठ स्थान में मंगल-गुरु इनका एकत्र योग है। पंचम में मंगल गुरु का योग यह पंचमेश मंगल और षष्ठेश—नवमेश गुरु इनका योग है। उसी प्रकार षष्ठ स्थान में मंगल गुरु का योग षष्ठेश गुरु तथा पंचमेश-दशमेश मंगल का एकत्र योग है।

कुण्डली नं० ७



सप्तम कुण्डली में पंचमेश—दशमेश मंगल षष्ठ स्थान में हैं और उसे षष्ठेश गुरु दशमस्थ, द्वितीयस्थ अथवा द्वादशस्थ होकर देख रहा है। यह योग पंचमेश—दशमेश मंगल तथा षष्ठेश गुरु का योग है और वह योगकारक नहीं है। उसी के साथ षष्ठस्थ मंगल और दशमस्थ गुरु इनका आपस का परस्पर एक अन्योन्याश्रित योग भी है। यह योग षष्ठेश—दशमेश का अन्योन्याश्रित योग है न कि नवमेश-दशमेश का। यह कारक योग नहीं है।

कुण्डली नं० ८



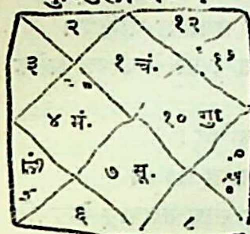
अष्टम कुण्डली में पंचमस्थ गुरु पर दशमस्थ अथवा एकादशस्थ वा द्वितीयस्थ मङ्गल की दृष्टि है। यहाँ पर पञ्चमस्थ गुरु पर दशमस्थ मङ्गल का दृष्टि का सम्बन्ध यह विशिष्ट सम्बन्ध है। यह मङ्गल स्वगृह में भी है और गुरु उसकी राशि में बैठा होकर, उसको मङ्गल देख रहा है। कारण यह सम्बन्ध नवमेश-षष्ठेश पर पञ्चमेश-दशमेश इनका अन्यतरो वा योग है। फिर भी यह योग गुरु पर मङ्गल की सप्तमस्थ अथवा चतुर्थ दृष्टि की अपेक्षा अधिक बलवान और शुभ है। मङ्गल स्वयं योगकारी है इसलिये इस कुण्डली में का मङ्गल-गुरु का योग एक श्रेष्ठ योग है। इस ग्रन्थ के अनुसार (फिर वें ग्रन्थान्तर प्रसिद्ध सौम्य हों अथवा पापी हों) शुभाशुभ फल उनकी अपनी दो राशियों की स्थिति पर अवलम्बित होते हैं। वें राशियाँ जिन स्थानों में अर्थात् केन्द्र, त्रिकोण, त्रिषडायादि स्थानों में पड़ती हैं उनके अनुसार फल प्राप्त होते हैं। ग्रहों के मूल स्वभाव पर अथवा उनकी अपनी राशि के स्वभाव पर अवलम्बित नहीं होते। सूर्य और चन्द्रमा को छोड़-

कर अन्य सब ग्रहों की दो-दो राशियाँ हैं इसलिए परस्पर सम्बन्ध करने के लिए दोनों में से एक ग्रह दूसरे की जिस राशि में बैठा हो, वह राशि जिस भाव में हो, तो ऐसा माना जाएगा कि वह प्रथम ग्रह जिस राशि में बैठा हो उस राशि के अधिपति से वह सम्बन्ध कर रहा है न कि उस भावाधिपति से जिसकी अपनी दूसरी राशि पाप या शुभस्थानों में पड़ी हो। ऐसा यदि माना जावे, तो केन्द्रपति, त्रिकोणपति, दशमेश अथवा नवमेश शब्द सार्थक नहीं हो सकेंगे। अस्तु—सम्बन्ध प्रसंग में दो ग्रहों में से एक ग्रह का दूसरे ग्रह के स्थान में बैठना आवश्यक है। कुछ टीकाकारों का मत इससे भिन्न है, वें दो ग्रहों के सम्बन्ध में ग्रहों के स्थानों को विशेष महत्त्व नहीं देते। ऐसा प्रकार तर्क विरुद्ध होने से उनका मत लेखक को मान्य नहीं है। उपर्युक्त दी हुई उदाहरण कुण्डलियों पर से यह स्पष्ट होगा।

अन्योन्याश्रित योग की एक बड़ी विशेषता यह है कि अन्योन्याश्रित सम्बन्ध करने वाले दो ग्रहों में से किसी एक के साथ यदि दूसरा ग्रह बैठा हो तो वह ग्रह दोनों ग्रहों के अन्योन्याश्रित योग को भंग नहीं कर सकता। उन दोनों ग्रहों का अन्योन्याश्रित योग वैसा ही बना रहेगा। उन दोनों ग्रहों की परस्पर दशा-न्तर्दशा में अन्योन्याश्रित योगज-फल (योगकारक फल) तो होगा ही परन्तु अन्तर ऐसा पड़ेगा कि जिन दो ग्रहों का अन्योन्याश्रित योग हुआ है उनमें से जिसके साथ दूसरा कोई अन्य ग्रह स्थान सम्बन्ध या दृष्टि सम्बन्ध करता हो उस ग्रह की दशा और स्थान सम्बन्ध करने वाले ग्रह की अन्तरदशा तथा स्थान सम्बन्ध करने वाले ग्रह के प्रत्यन्तर में जो फल होगा वह स्थान सम्बन्ध न करने वाले ग्रह की दशा में अन्योन्याश्रित ग्रह के अन्तर में अथवा तीसरे के प्रत्यन्तर में वैसा (उसी प्रकार का) नहीं होगा।

उदाहरणार्थ—कर्क लग्न की कुण्डली में जहाँ पर गुरु-मङ्गल का (नवमेश-दशमेश का) अन्योन्याश्रित योग हो और साथ ही साथ गुरु शनि का एकत्र योग हो तो नवमेश-षष्ठेश तथा सप्तमेश-अष्टमेश इनका भी एक एकत्र योग होगा। वहाँ पर शनि अष्टमेश होकर भी नवमेश-दशमेश इनके अन्योन्याश्रित योग को भंग नहीं कर सकता। यहाँ पर मङ्गल की दशा, गुरु का अन्तर तथा शनि का प्रत्यन्तर जो शुभफल देगा उससे बहुत ही कम शुभफल गुरु की दशा, मङ्गल के अन्तर तथा शनि के प्रत्यन्तर में होगा। यहाँ मङ्गल और शनि का कोई भी परस्पर सम्बन्ध नहीं है।

कुण्डली नं० १



इस कुण्डली में (१) नवमेश गुरु दशमस्थ है, दशमेश शनि नवमस्थ है। यह नवमेश-दशमेश का अन्योन्याश्रित योग है। यह ख्यात राजयोग है।

(२) सप्तमेश शुक्र पञ्चम में, पञ्चमेश सूर्य सप्तम में है। यह पंचमेश-सप्तमेश अन्योन्याश्रित योग है परन्तु यह योग मारकेश के साथ का है।

(३) लग्नेश मङ्गल चतुर्थ में, चतुर्थेश चन्द्रमा लग्न में—यह लग्नेश—चतुर्थेश—अन्योन्याश्रित योग है।

(४) चतुर्थेश चन्द्रमा लग्न में और पंचमेश सूर्य सप्तम में होने से परस्पर दृष्ट हैं। यह अन्योन्याश्रित योग नहीं है। यह केवल परस्पर दृष्टि सम्बन्ध है।

चन्द्रमा मेष राशि में होने से उसका मङ्गल से राशि सम्बन्ध, सूर्य तुला राशि में होने से शुक्र से राशि सम्बन्ध भी है। इसलिये ये परस्पर दृष्ट सूर्य-चन्द्र विशुद्ध योगकारी ग्रह तो नहीं हैं परन्तु शुभ हैं।

कुण्डली नं० २



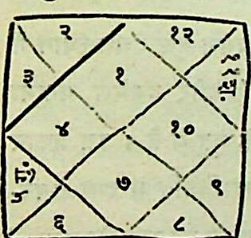
इस कुण्डली में एकादशेश शनि द्वादश स्थान में और द्वादशेश गुरु एकादश स्थान में हैं इसलिये यह एकादशेश और द्वादशेश इनका अन्योन्याश्रित योग है। नवमेश-दशमेश का अन्योन्याश्रित योग नहीं। इसी प्रकार सूर्य और मङ्गल का पंचमेश-अष्टमेश इनका अन्योन्याश्रित योग है और कारक योग नहीं है।

कुण्डली नं० ३



इस कुण्डली में दशमेश शनि दशमस्थान में और गुरु नवमेश-द्वादशेश होकर चतुर्थ स्थान में (चन्द्रमा की राशि में हैं) और वहाँ से ये दोनों परस्पर एक दूसरे को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं। यह योग दशमेश शनि का और चन्द्रमा की राशि में बैठे हुए गुरु का, द्वादशेश दशमेश का योग है।

कुण्डली नं० ४



इस कुण्डली में नवमेश-दशमेश परस्पर दृष्ट हैं परन्तु नवम-दशम स्थानों में नहीं हैं। इसलिये यह नवमेश-दशमेश का अन्योन्याश्रित योग नहीं है। यहाँ पर एकादशेश शनि—नवमेश-द्वादशेश गुरु से सम्बन्ध कर रहा है, इसलिये यह कारक योग नहीं है। इस प्रकार इस शास्त्र में केवल सप्तम (परस्पर) दृष्टि मात्र योग नहीं होता। केन्द्रेश-त्रिकोणेश योगकर्ता

इन दोनों में से एक यदि दूसरे को देखता हो और दूसरा उसे सप्तम दृष्टि से अन्यत्र दूसरी जगह से देखता हो तभी "कारक-सम्बन्ध" समझना चाहिये।

इस प्रकार के द्वादश गृहों में नवग्रहों के परस्पर सम्बन्धों से उत्पन्न अनेक योग होते हैं।

त्रिकोणाधिपयोर्मध्ये सम्बन्धो येन केनचित्।
केन्द्रनाथस्य बलिनो भवेत् यदि सुयोगकृत् ॥१७॥

अर्थ—नवम और पञ्चम स्थान के अधिपतियों के साथ बलवान केन्द्रपति का सम्बन्ध बनता हो तो वह सम्बन्ध शुभ फलदायक होता है अर्थात् राज-योग कारक होता है।

स्वर्गीय श्री रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं—'स्वभावतः बलवान् ऐसे किसी भी केन्द्राधिपति का दोनों त्रिकोणपति के बीच में सम्बन्ध आता हो, तो वह योगकारक होता है।

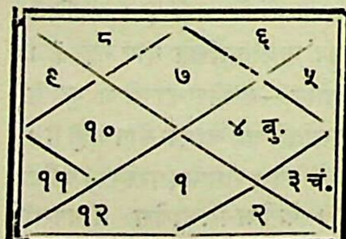
पापग्रह केन्द्र का स्वामी हो तो वह बलवान होता है। ऐसा कोई केन्द्र का स्वामी पापग्रह यदि दोनों त्रिकोणपतियों के बीच में हो (याने उसके पिछले स्थान में और अगले स्थान में पंचमेश और नवमेश अथवा नवमेश और पंचमेश हो) तो वह पापग्रह राजयोग करने वाला होता है अर्थात् शुभफल देता है।

स्वर्गीय श्री ह० ने० काटवे (मराठी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं—

"पंचमेश और नवमेश इन दोनों के बीच में यदि केन्द्राधिपति हो तो यह योग बलवान होता है। एक उदाहरण देता हूँ। कल्पना करो कि वृश्चिक लग्न है। दशमेश सूर्य और नवमेश चन्द्रमा और पंचमेश गुरु होता है। इन तीनों का सुयोग होता है। परन्तु यह योग एक ही राशि में होना चाहिये। फिर भी इस योग का फल अच्छा ही मिलेगा ऐसा मैं कहने के लिए तैयार नहीं हूँ।

स्वर्गीय श्री वि० गो० नवाथे (मराठी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं:—

"पंचम और नवम इन स्थानों के जो स्वामी हों, उनमें से किसी एक का भी बलवान केन्द्र स्वामी से सम्बन्ध हो, तो राजयोग होता है। आगे दी हुई कुण्डली देखिये।



इस कुण्डली में नवमेश बुध दशम स्थान में चन्द्रमा के क्षेत्र में है और दशमेश चन्द्रमा नवम स्थान में बुध के गृह में है। इस प्रकार त्रिकोणेश बुध का केन्द्राधिपति चन्द्रमा से पर-स्पर सम्बन्ध हुआ इसलिए यह राजयोग हुआ।"

ज्योतिषाचार्य-तीर्थ पण्डित सीताराम झा (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"पंचमेश अथवा नवमेश इन दोनों में किसी एक से यदि दशमेश का सम्बन्ध हो तो सुयोग (उत्कृष्ट योग) कारक होता है। अर्थात् केन्द्रेश में सबसे बली दशमेश है उससे उत्तम योग कहा गया हैं तो सप्तमेश और चतुर्थेश के सम्बन्ध से उससे न्यून योग तथा नवमेश की अपेक्षा पंचमेश के साथ और पंचमेश की अपेक्षा लग्नेश के साथ सम्बन्ध से कुछ न्यूनयोग सिद्ध होता है।

पण्डित रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—"त्रिकोण के स्वामियों में से किसी एक के साथ बली केन्द्रनाथ का (दशमस्थान के स्वामी का) सम्बन्ध हो, तो राजयोग करता है।"

विद्यारत्न पण्डित माधवप्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि "पंचमाधिपति किम्वा नवमाधिपति के साथ बली केन्द्रनाथ अर्थात् दशम भवन के स्वामी का सम्बन्ध हो तो वह अति सुन्दर राजयोग होता है।"

राजज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

"पंचम व नवम स्थान के स्वामियों में से जिस किसी के साथ दशम स्थान के स्वामी का यदि सम्बन्ध होवे तो वह सुन्दर राजयोग करता है।"

उद्योतकार के मत से "दशमेश का यदि पंचमेश अथवा नवमेश के साथ सम्बन्ध हो तो वह सुयोग (राजयोग) होता है।"

सज्जन रंजनी टीकाकार अपनी टीका में एक प्राचीन श्लोक कहते हैं: —

"धर्मकर्मेशसम्बन्धो लग्नेशेनाथवा भवेत्।
केवलं वा तयोर्वापि राजयोगोऽयमीरितः॥

अर्थात् धर्मेश (नवमेश) कर्मेश (दशमेश) इनके सम्बन्ध में लग्नेश का भी योग हो अथवा केवल धर्मेश-कर्मेश का सम्बन्ध हो तो राजयोग होता है।"

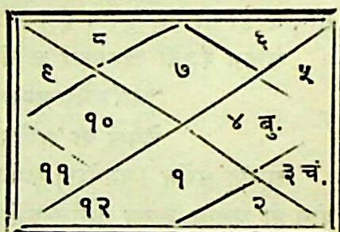
श्री विनायक शास्त्री के मतानुसार "यदि दशमेश का पंचमेश से अथवा नवमेश से सम्बन्ध हो अथवा नवमेश का किसी त्रिकोणेश के साथ सम्बन्ध हो तो वह सुयोग अर्थात् राजयोग होता है। यदि योग करने वाले केन्द्रेश-तिकोणेश आदि उच्च, मूल त्रिकोण, स्वगृही आदि गुणों से युक्त हों तो उसके बलाबल के अनुसार उनके प्रभावों में भी वृद्धि होगी। इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त देते हैं वह इस प्रकार हैं—कर्क राशि में मंगल और मकर राशि में बृहस्पति हों अथवा कर्क राशि में बृहस्पति और मकर राशि में मङ्गल हो तो दोनों परिस्थिति में नवमेश-दशमेश सम्बन्ध तो होगा परन्तु एक परिस्थिति में वे दोनों अपनी नीच राशियों में होंगे और दूसरी परिस्थिति में दोनों ही अपनी-अपनी उच्च राशियों में होंगे। ऐसी स्थिति मे दोनों राजयोगों के प्रभाव में कितना फरक पड़ेगा ?

कर्क लग्न के जातक को दशमेश मङ्गल होता है और नवमेश बृहस्पति होता है।"

पण्डित रामयत्न ओझा जी (फलित विकास टीकाकार) के मत के अनुसार—"चार प्रकार के सम्बन्धों में से दशमेश का पंचमेश से अथवा नवमेश से स्थान सम्बन्ध हो तो विशेष फलदायक होता है।"

श्री शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या (गुजराती टीकाकार) के मतानुसार:—

"पंचम और नवम स्थान त्रिकोण के नाम से पहिचाने जाते हैं। उसी प्रकार लग्न, चतुर्थ, सप्तम, दशम ये स्थान केन्द्र स्थान के नाम से पहिचाने जाते हैं। यह पूर्व में कहा गया ही है। इस तरह पंचम अथवा नवम स्थानों में से पंचम स्थान के पूर्व चतुर्थ स्थान यह केन्द्र स्थान तथा नवम स्थान के बाद में दशम स्थान—यह भी केन्द्र स्थान है। इन स्थानों के अधिपति अथवा प्रथम या सप्तम स्थान के अधिपति इनमें से जो कोई भी बलवान हो और वह यदि पूर्व में कहे हुए चार सम्बन्धों में से पंचम अथवा नवम स्थान के अधिपति से सम्बन्ध करता हो तो ऐसे सम्बन्ध को राजयोग के समान माना गया है। इस प्रकार कहने का यह भावार्थ है। इसका स्पष्टीकरण नीचे दी हुई कुण्डली पर से ध्यान में आवेगा।



इस कुण्डली में ऊपर वर्णन किये हुए योग के अनुसार नवम स्थान (त्रिकोण स्थान) में मिथुन राशि है और उसका अधिपति बुध दशम स्थान में है, इस प्रकार नवम स्थान का स्वामी बुध दशम स्थान में और दशम स्थान का स्वामी चन्द्रमा नवम स्थान में होने से वे एक दूसरे के स्थान में हैं। उस कारण से नवम याने त्रिकोणपति का बलवान केन्द्रपति याने दशम स्थान के अधिपति के साथ अन्योन्य राशिस्थित सम्बन्ध हुआ है। इस प्रकार का योग राजयोग माना गया है और उसका फल उत्तम है ऐसा कहा है।"

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराती टीकाकार) के मत के अनुसार—

"बलवान केन्द्राधिपति पंचम अथवा नवम स्थान के अधिपति से सम्बन्ध करता हो तो वह विशेष शुभफलदायक योग होता है। इसके समर्थन में पाराशर के वचन इस प्रकार हैं—"

"पंचमं नवमं चैव विशेषं धनमुच्यते।
चतुर्थं दशमं चैव विशेषं सुखमुच्यते॥"

भावार्थ :—पंचम और नवम ये विशेष करके धन देनेवाले हैं और चतुर्थ और दशम विशेष करके सुख देनेवाले हैं ।"

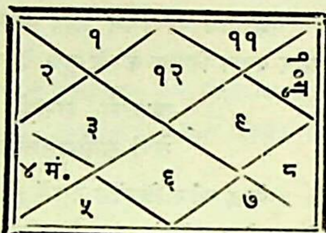
चत्वारो राशयो भद्राः केन्द्रकोणशुभावहाः ।
तेषां संयोगमात्रेण ह्यशुभोऽपि शुभो भवेत् ॥

केन्द्र और त्रिकोण इनमें की चार राशि शुभफलदायक हैं और उस कारण से उनके स्वामियों का यदि सम्बन्ध होता हो तो वह सम्बन्ध अशुभ न होकर शुभ होता है । इस पर से स्पष्ट होता है कि केन्द्रों में लग्नभाव निर्बल होने से और सप्तम भाव मारक होने से उसे छाँट दिया गया है । केन्द्राधिपति उच्च का, मूल त्रिकोण का अथवा स्वगृह का अथवा वर्ग बली हो तो वह बलवान केन्द्र जो होगा उसके स्वामी के साथ त्रिकोण के स्वामी का सम्बन्ध विशेष शुभ-फलदायक होता है । नहीं तो नहीं होगा ।

इस पर बृहत्पाराशरी में—परिणाम, उत्तम, गोपुर, सिंहासन और ऐरावत ये वर्ग बली के पारिभाषिक शब्द हैं और इस प्रकार का बल प्राप्त होने वाला बलवान केन्द्रेश यदि त्रिकोणेश से सम्बन्ध करे तो उत्तम फल देने वाला होता है । इस सम्बन्ध में ऐसा उल्लेख है ।

पारिजाते स्थितौ तौ नु नृपो लोकोऽनुशिक्षकः ।
उत्तमे चोत्तमो भूपो गजवाजिरथादिमान् ॥
गोपुरे नृपशार्दूलो नृपैश्चांघ्रिप्रपूजितः ।
सिंहासने चक्रवर्ती सर्वक्षोणीप्रपालकः ।
चतुःकेन्द्राधिपौ द्वौ च कोणपौ च धनाधिपः ।
ऐरावतादिसंस्थास्तेऽकुर्वं ल्लोकोत्तरोत्तरम् ।
अनेनैव प्रकारेण वेत्ति सर्वत्र बुद्धिमान् ॥"

हिन्दी टीकाकार कहते हैं कि कुण्डली का दशम स्थान, यही सबसे बलवान स्थान है । वह गलत है । कारण, इस प्रकार यदि अर्थ करना होता तो 'केन्द्रनाथ' शब्द जो उपयोग में लाया गया है उसकी जगह 'कर्मनाथ' शब्द उपयोग में लाया जाता । इस पर भी पाराशर ने जो वाक्य उपर्युक्त श्लोक में वापरा हुआ है उस वाक्य में चार राशियों का ही निर्देश स्पष्ट रीति से कहा गया है । इस प्रकार चतुर्थ स्थान का वहाँ समावेश होता है । यदि दशम स्थान ही बलवान केन्द्र है उसके लियें विशिष्ट राजयोग होने के लिये दशम स्थान के ही स्वामी का बल होना चाहिये तो राजयोग हो नहीं सकेगा । इसलिये उदाहरणार्थ मीन लग्न की कुण्डली देता हूँ ।



इस कुण्डली में नवम स्थान का स्वामी मङ्गल और दशम स्थान का स्वामी वृहस्पति है। अव ये दोनों यदि अपनी नीच राशि में होकर परस्पर सम्वन्ध करें तो योग होता है और वे अपनी अपनी उच्चराशि में हों तो भी परस्पर दृष्टि सम्वन्ध से योग होता है परन्तु इन दोनों योगों के फल समान नहीं होंगे यह स्पष्ट है और सादा समजूत के विरुद्ध है। इसलिये उच्च वलवान केन्द्राधिपति हो तभी विशिष्ट शुभफलदायक राजयोग होगा। यह साधारणतः समझने सरीखा है। वलवान किसे कहना चाहिये इसके लक्षण ज्योतिष-शास्त्रों में निम्नलिखित अनुसार कहा है:—

"अथोच्चस्वर्क्षमूलत्रिकोणस्ववर्गगतत्वादि।
वलानि च योगस्योत्तमतामूलानीत्यूह्यम्॥

भावार्थ:—उच्च, स्वगृह, मूलत्रिकोण, षडवर्गवल पानेवाला ऐसा ग्रह वलवान गिना गया है।

स्पष्टीकरणः—

इस ग्रन्थ के संज्ञाध्याय श्लोक ७ में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि केन्द्र के अधिपति उत्तरोत्तर क्रम से बली हैं "प्रवलाश्चोत्तरोत्तरम्"। इस व्याख्या के अनुसार दशम केन्द्र सवसे वली कहा गया है। उसी प्रकार इसी श्लोक के आधार पर उनके अधिपति भी उत्तरोत्तर बली माने गये हैं। इस सम्वन्ध में टीकाकारों का यह कहना कि वलवान ग्रह किसे कहना चाहिये उसके समाधान के लिए उन्होंने वलवान ग्रह के लक्षण ज्योतिष शास्त्रों में जो कहे गये हैं वे इस प्रकार दिये हैं:—

"अथोच्चस्वर्क्षमूलत्रिकोणस्ववर्गगतत्वादि।
वलानि च योगस्योत्तमता मूलानीत्यूह्यम्॥"

भावार्थ:—उच्च, स्वगृह, मूलत्रिकोण, षड्वर्ग वल पाने वाला ऐसा ग्रह वलवान माना गया है, यह यद्यपि यथार्थ है फिर भी इस ग्रन्थ के अनुसार तो शुभ, अशुभ, सदोष, निर्दोष, वली, निर्वली इत्यादि तो इसी ग्रन्थ के नियमों के अनुसार ही लेने पड़ेंगे, ग्रन्थान्तरों में दिये हुए अनुसार नहीं।

पाराशर के वचन केन्द्र त्रिकोण के सम्वन्ध में इस प्रकार के हैं—

चत्वारो राशयो भद्राः केन्द्रकोणशुभावहाः।
तेषां संयोगमात्रेण शुभोऽपि ह्यशुभो भवेत्॥

भावार्थ यह है कि केन्द्र और त्रिकोण इनमें से चार राशि शुभफलदायक

हैं और उस कारण से उनके स्वामियों का यदि सम्बन्ध होता हो वह सम्बन्ध अशुभ न होकर शुभ होता है। इस श्लोक में तो शुभत्व के सम्बन्ध में सिर्फ कहा हैं। इन केन्द्र स्थानों में कौनसा स्थान सबसे बलवान है यह तो श्लोक ७ में दी गयी व्याख्या के ऊपर ही निर्धारित है और इस प्रकार सबसे बलवान केन्द दशम स्थान है इसलिये उसका ही स्वामी बलवान मानना पड़ेगा। सब टीका-कारों ने श्लोक ७ की टीका और अर्थ में एकमत से दशम केन्द्र को सब केन्द्रों में बलवान कहा है। इम प्रकार उपरोक्त श्लोक १७ में बलवान केन्द्रनाथ जो कहा उसका अर्थ भी उक्त नियमों के अनुसार करना पड़ेगा। यहाँ पर केन्द्रनाथ की जगह कर्मनाथ भी कहलाता फिर भी कोई विशेष फरक नहीं पड़ता क्योंकि केन्द्रनाथ में कर्मनाथ का भी समावेश है ही। राजयोगाध्याय में राजयोगकारक फलों के विषय में अभी तक जो कहा गया है वह इस प्रकार है—

श्लोक १४ द्वारा:—यदि केन्द्र के और त्रिकोण के स्वामी एक दूसरे से परस्पर सम्बन्ध करें और वे यदि ३,६,११ के अधिपति न हों तो विशेष राजयोग का फल देने वाले होते हैं।

श्लोक १५ द्वारा-—केन्द्र और त्रिकोण के अधिपति स्वयं दोषयुक्त भी हों तो भी उतने ही सम्बन्ध के कारण से राजयोग कारक बनते हैं। इस श्लोक में "बलिनो" शब्द को केन्द्र और त्रिकोण के अधिपति का विशेषण माना है जो दशम और नवम स्थान के अधिपति होते हैं।

श्लोक १६ द्वारा:—धर्म और कर्म स्थान के स्वामी परस्पर एक दूसरे के स्थान में हों अथवा दोनों एकत्र हों अथवा दोनों में से एक दूसरे के स्थान में हों तो वे योगकारक होते हैं।

किसी भी त्रिकोणपति से बलवान केन्द्रपति का सम्बन्ध होता हो गो ऐसा सम्बन्ध उत्तम योगकारक है। योगाध्याय के प्रथम दो श्लोकोंमें (१४ और १५) निर्दोष केन्द्र त्रिकोणपति तथा सदोष नवमेश और दशमेश इनके सम्बन्ध की चर्चा करने के बाद ग्रन्थकर्ता ने श्लोक १७ में केन्द्र त्रिकोणपति के शेष रहे हुए सम्बन्धों की चर्चा की है। इस श्लोक का भावार्थ इस प्रकार है कि:—

(१) यदि कोई भी त्रिकोणपति, वह फिर सदोष हो अथवा निर्दोष क्यों न हो, उसका यदि बलवान केन्द्रपति से सम्बन्ध होता हो तो ऐसा सम्बन्ध शुभ-कारक होता है।

(२) दूसरा अर्थ इस प्रकार होता है कि:—किसी भी त्रिकोणपति से यदि दश-मेश का सम्बन्ध हो तो ऐसा सम्बन्ध शुभयोगकारक होगा।

कारण कि पिछले श्लोक में नवमेश-दशमेश के सम्वन्ध की चर्चा हुई ग्रौर उनकी व्याख्या भी हुई है, इसलिए इस श्लोक के ग्रन्तर्गत ग्रव निम्न केन्द्राधिपतियों से त्रिकोणपतियों के योगों का विवेचन किया जाता है—

(१) निर्दोष नवमेश + सदोष सप्तमेश;
सप्तमेश नवमेश + निर्दोष दशमेश

(२) निर्दोष नवमेश + सदोष चतुर्थेश;
सदोष नवमेश + निर्दोष चतुर्थेश

(३) निर्दोष नवमेश + सदोष लग्नेश
सदोष नवमेश + निर्दोष लग्नेश

(४) निर्दोष पंचमेश + सदोष सप्तमेश;
सदोष पंचमेश + निर्दोष सप्तमेश

(५) निर्दोष पंचमेश + सदोष चतुर्थेश;
सदोष नवमेश + निर्दोष चतुर्थेश

(६) निर्दोष पंचमेश + सदोष दशमेश;
सदोष पंचमेश + निर्दोष दशमेश

(७) निर्दोष पंचमेश + सदोष लग्नेश;
सदोष पंचमेश + निर्दोष लग्नेश

(८) निर्दोष लग्नेश + सदोय दशमेश;
सदोष लग्नेश + निर्दोष दशमेश

(९) निर्दोष लग्नेश + सदोष सप्तमेश;
सदोष लग्नेश + निर्दोष सप्तमेश

(१०) निर्दोष लग्नेश + सदोष चतुर्थेश;
सदोष लग्नेश + निर्दोष चतुर्थेश

इस प्रकार इस ग्रन्थ के श्लोक १७ तक के ग्रन्तर्गत जितने भी त्रिकोणाधिपति ग्रौर केन्द्राधिपति के योग शेष बचते हैं वे उपरोक्त प्रकार से हैं। इन सब का विवेचन कोष्टक रूप में नीचे दिया है। इसमें प्रत्येक लग्न के कौन-कौन से ग्रह त्रिकोणाधिपति या केंन्द्राधिपति हैं, कौन-कौन से ग्रह सदोष, निर्दोष, मारकेश हैं ग्रौर उनका ग्रापस में सम्वन्ध होने से किस प्रकार के योगज फल प्राप्त होंगे, इत्यादि वातों का समावेश संक्षिप्त रूप में किया गया है। यह पाठकों की सुविधा के लिए किया गया है।

उदाहरणार्थ :—मेष लग्न की कुण्डली में नवमेश—सप्तमेश क्रमशः गुरु

और शुक्र हैं गुरु नवमेश और द्वादशेंश है और शुक्र सप्तमेश और द्वितीयेंश है। यहाँ पर गुरु त्रिकोणेश होने से निर्दोष है पर संसर्ग दोष के कारण सदोष होता है और मारकेश शुक्र के साथ उसका (साहचर्य) सम्बन्ध होने से वह मारकेश भी है। वैसे ही शुक्र द्वितीयेश होकर केन्द्रेश होने के नाते निर्दोष तो है पर वह द्वितीय और सप्तम केन्द्र इन दोनों मारक स्थानों का स्वामी होने से और केन्द्रेश होने से सदोष व मारकेश है। यहाँ पर गु+शु का योग निष्फल योग है। गुरु द्वादशेश होने से दूषित है और शुक्र सप्तम मारक स्थान का स्वामी होने से दूषित है इस प्रकार इस लग्न को गुरु और शुक्र कारक होतेहुए भी दोनों मारक हैं, इसलिये नेष्ट हैं और योगज फल ±१० है।

उपर्युक्त विवेचन के उदाहरण के रूप में मेष लग्न की कुण्डली के नवमेश-सप्तमेश (त्रिकोण–केन्द्रपति) के योग का है। इसी प्रकार अन्य ११ ग्यारह लग्नों के त्रिकोणपति तथा केन्द्रपति के योगों के लक्षण समझने चाहिये। यहाँ पर प्रत्येक लग्न तथा उनके योगों का सविस्तर वर्णन नं करके संक्षिप्त में किया गया है।

नवमेश-सप्तमेश के योग

१	मेष लग्न	नवमेश–द्वादशेंश = गुरु सप्तमेश–द्वितीयेंश = शुक्र	संसर्गदोष से सदोष–निर्दोष निर्दोष–सदोष	गु+शु = ±१ दोनों मारक
२	वृषभ लग्न	नवमेश–दशमेंश = शनि सप्तमेश–द्वादशेंश = मंगल	निर्दोष निर्दोष	श+मं=+१४
३	मिथुन लग्न	नवमेश–अष्टमेश = शनि सप्तमेश–दशमेश = गुरु	सदोषनिहन्ता मारकेश	श+गु= ± ३ (शनिनिहन्ता)
४	कर्क लग्न	नवमेश–षष्ठेश = गुरु सप्तमेश–अष्टमेश = शनि	सदोष सदोष शनि	गु+श= + ५ अष्टमस्थहोतो श = + १३

५	सिंह लग्न	नवमेश-चतुर्थेश=मंगल सप्तमेश-षष्ठेश=शनि	निर्दोष सदोष	} मं + श = + ४
६	कन्या लग्न	नवमेश-द्वितीयेश=शुक्र सप्तमेश-चतुर्थेश=गुरु	मारकेश मारकेश	} शु + गु = ÷ १०
७	तुला लग्न	नवमेश-द्वादशेश = बुध सप्तमेश-द्वितीयेश=मंगल	निर्दोष निर्दोष	} बु + मं = + १०
८	वृश्चिक लग्न	नवमेश = चन्द्रमा सप्तमेश-द्वादशेश=शुक्र	निर्दोष मारकेश	} चं + शु = ÷ १०
९	धनु लग्न	नवमेश = सूर्य सप्तमेश-दशमेश=बुध	निर्दोष निर्दोष पर मारकेश	} सू + बु = ÷ ११
१०	मकर लग्न	नवमेश-षष्ठेश = बुध सप्तमेश = चन्द्रमा	सदोष मारकेश (निर्दोष)	} बु + चं = + २
११	कुम्भ लग्न	नवमेश-चतुर्थेश = शुक्र सप्तमेश = सूर्य	निर्दोष निर्दोष	} शु + सू = + १३
१२	मीन लग्न	नवमेश-द्वितीयेश=मंगल सप्तमेश-चतुर्थेश=बुध	निर्दोष मारकेश	} मं + बु = ÷ १०

उपरोक्त योग में (मेष और कन्या लग्न में क्रमांक १-६) कारक होते हुए भी दोनों मारक हैं इसलिए नेष्ट हैं। कर्क लग्न की कुण्डली में मंगल + शनि का योग = "कारक" नहीं हैं। मिथुन-मीन लग्न की कुण्डलियों में गुरु + बुध = मारकेश हैं—वे मारक-फल देते हैं। शनि निहन्ता (मारकेश) हैं।

नवमेश-चतुर्थेश के योग

१	मेष लग्न	नवमेश-द्वादशेश = चतुर्थेश =	गुरु चन्द्रमा	निर्दोष निर्दोष	} गु + चं = +११
२	वृषभ लग्न	नवमेश-दशमेश = चतुर्थेश =	शनि सूर्य	निर्दोष निर्दोष	} श + सू = +४
३	मिथुन लग्न	नवमेश-अष्टमेश = चतुर्थेश-लग्नेश =	शनि बुध	सदोष निर्दोष	} श + बु = +१
४	कर्क लग्न	नवमेश-षष्ठेश = चतुर्थेश-एकादशेश=	गुरु शुक्र	सदोष सदोष	} गु+शु= −५ योग-कारक नहीं है अशुभ योग है।
५	सिंह लग्न	नवमेश-चतुर्थेश = चतुर्थेश =	मंगल मंगल	निर्दोष निर्दोष	} मंगल=+९ (स्वयं योगकारक है।)
६	कन्या लग्न	नवमेश-द्वितीयेश = चतुर्थेश-सप्तमेश =	शुक्र गुरु	निर्दोष मार० निर्दोष मार०	} शु+गु= ÷ १०दोनों मारकेश हैं अनिष्ट योग है।
७	तुला लग्न	नवमेश-द्वादशेश = चतुर्थेश-पंचमेश =	बुध शनि	निर्दोष निर्दोष	} बु + श = +१५
८	वृश्चिक लग्न	नवमेश = चतुर्थेश-तृतीयेश =	चन्द्रमा शनि	निर्दोष सदोष	} चं + श = +१
९	धनु लग्न	नवमेश = चतुर्थेश-लग्नेश =	सूर्य गुरु	निर्दोष निर्दोष	} सू + गु = +१४

१०	मकर लग्न	नवमेश-षष्ठेश = चतुर्थेश-एकादशेश=	बुध मंगल	सदोष सदोष	बु + मं = − ८ यह कारक योग नहीं है नेष्ट है।
११	कुम्भ लग्न	नवमेश-चतुर्थेश =	शुक्र	निर्दोष	शुक्र = + ६ स्वयं कारक है।
१२	मीन लग्न	नवमेश-द्वितीयेश चतुर्थेश-सप्तमेश	मंगल बुध	निर्दोष निर्दोष पर मारकेश	मं + बु = ÷ १०

उपरोक्त योगों में कन्या लग्न की कुण्डली में—शु + गु का द्विधामारकेश योग है।

मीन लग्न की कुण्डली में मं + बु योग भी साधारण मारकेश योग है।

मिथुन, कर्क, मकर लग्नों की कुण्डलियों में क्रमश: श + बु; गु + शु; बु + मं; ये योग मारक नहीं हैं। ये अशुभ योग हैं।

नवमेश लग्नेश के योग

१	मेष लग्न	नवमेश-द्वादशेश = लग्नेश-अष्टमेश =	गुरु मंगल	निर्दोष निर्दोष	गु + मं = + ५ मंगल यदि लग्नस्थ हो तो— + १३
२	वृषभ लग्न	नवमेश-दशमेश = लग्नेश-षष्ठेश =	शनि शुक्र	निर्दोष सदोष	श + शु = + ६
३	मिथुन लग्न	नवमेश-अष्टमेश = लग्नेश-चतुर्थेश =	शनि बुध	सदोष निर्दोष	श + बु = + १
४	कर्क लग्न	नवमेश-षष्ठेश = लग्नेश =	गुरु चन्द्रमा	सदोष निर्दोष	गु + चं = + ५

५	सिंह लग्न	नवमेश-चतुर्थेश = लग्नेश =	मंगल सूर्य	निर्दोष निर्दोष	मं + सू = + १५
६	कन्या लग्न	नवमेश-द्वितीयेश = लग्नेश-दशमेश =	शुक्र बुध	निर्दोष मारके.	शु + बु = ÷ १६
७	तुला राशि	नवमेश-द्वादशेश = लग्नेश-अष्टमेश =	बुध शुक्र	निर्दोष निर्दोष	बु + शु = = १३ शुक्र यदि लग्नस्थ हो तो + ५
८	वृश्चिक लग्न	नवमेश = लग्नेश-षष्ठेश =	चन्द्रमा मंगल	निर्दोष सदोष	चं + मं = + ५
९	धनु लग्न	नवमेश = लग्नेश-चतुर्थेश =	सूर्य गुरु	निर्दोष निर्दोष	सू + गु = + १४
१०	मकर लग्न	नवमेश-षष्ठेश = लग्नेश-द्वितीयेश =	बुध शनि	सदोष सदोष	बु+श=+५ शनि बुध के साहचर्य से सदोष है। बलाबल से कारकत्व नहीं है।
११	कुम्भ लग्न	नवमेश-चतुर्थेश = लग्नेश-द्वादशेश =	शुक्र शनि	निर्दोष निर्दोष	शु + श = ÷ १५
१२	मीन लग्न	नवमेश-द्वितीयेश = लग्नेश-दशमेश =	मंगल गुरु	निर्दोष निर्दोष	मं + गु = ÷ १३

उपरोक्त योगों में मिथुन लग्न की कुण्डली में श + बु का योग कारक नहीं है।

कर्क लग्न की कुण्डली में गु + चं का योग कारक नहीं है।

कन्या लग्न की कुण्डली में शु + बु इनमें से शुक्र मारकेश है। अरिष्ट प्रद है।

मकर लग्न की कुण्डली में बु + शु योग को कारकत्व नहीं है।
वृश्चिक लग्न की कुण्डली में चं + मं कारक नहीं है। सम है।

पञ्चमेश-सप्तमेश के योग

१	मेष लग्न	पंचमेश = सप्तमेश-द्वितीयेश =	सूर्य शुक्र	निर्दोष प्रबल मारकेश	सू + शु = ÷ ६ (प्रबल मारक)
२	वृषभ लग्न	पंचमेश-द्वितीयेंश = सप्तमेश-द्वादशेश =	बुध मंगल	निर्दोष, पर मारकेश निर्दोष	बु + मं = ÷ ६
३	मिथुन लग्न	पंचमेश-द्वादशेश = सप्तमेश-दशमेश =	शुक्र गुरु	मारकेश साहचर्य के दोषसे मारकेश	शु + गु = + १०
४	कर्क लग्न	पंचमेश-दशमेश = सप्तमेश-अष्टमेश =	मंगल शनि	निर्दोष सदोष	मं + श = + ५
५	सिंह लग्न	पंचमेश-अष्टमेश = सप्तमेश-षष्ठेंश =	गुरु शनि	सदोष सदोष	गु + श = – ७ यह कारक योग नहीं है।
६	कन्या लग्न	पंचमेश-षष्ठेश = सप्तमेश-चतुर्थेश =	शनि गुरु	सदोष मारकेश	श+गु=+१ यह योग अच्छा नहीं है गुरु मारकेश और शनि प्रबल निहन्ता है।
७	तुला लग्न	पंचमेश-चतुर्थेश = सप्तमेश-द्वितीयेश =	शनि मंगल	निर्दोष निर्दोष	श + मं = ÷ ११
८	वृश्चिक लग्न	पंचमेश-द्वितीयेश = सप्तमेश-द्वादशेश =	गुरु शुक्र	मारकेश मारकेश	गु + शु = ÷ ६ दोनों ही प्रबल मारकेश हैं।

९	धनु लग्न	पंचमेश-द्वादशेश = सप्तमेश-दशमेश =	मंगल बुध	मारकेशके साथ होने का दोष मारकेश	}	मं + बु = ÷ १० बुध मारकेश हैं।
१०	मकर लग्न	पंचमेश-दशमेश = सप्तमेश =	शुक्र चन्द्रमा	निर्दोष निर्दोष प्राय	}	शु + चं = ÷ १३
११	कुम्भ लग्न	पंचमेश-अष्टमेश = सप्तमेश =	बुध सूर्य	सदोष निर्दोष	}	बु + सू = ÷ १
१२	मीन लग्न	पंचमेश = सप्तमेश-चतुर्थेश =	चन्द्रमा बुध	निर्दोष मारकेश सदोष	}	चं + बु = ÷ ९

कर्क लग्न की कुण्डली में मं + श = सम हैं; वृश्चिक लग्न की कुण्डली में मं + शु दोनों ही मारकेश हैं; कुम्भ लग्न की कुण्डली में सू + बु ये कारक नहीं हैं। मेष, वृषभ, मिथुन, कन्या, वृश्चिक, धनु और मीन लग्नों की कुण्डलियों में सप्तमेश पंचमेश योग (सप्तमेश मारकेश होने से) अरिष्टप्रद हैं। कारकत्व में मारकत्व का दोष नष्ट होता है। कन्या लग्न की कुण्डली में श + गु का योग अनिष्टकर निहन्ता योग होता है। वहाँ मारकेश के सहयोग से शनि निहन्ता होता है। सिंह लग्न की कुण्डली में गु + श इनका योग कारक नहीं है। सारांश यह है कि तुला, मकर, और मीन लग्नों की कुण्डलियों को छोड़कर शेष सब लग्नों की कुण्डलियों में पंचमेश-सप्तमेश योग अनिष्टकर हैं। मकर लग्न की कुण्डली में चन्द्रमा साधारण मारकेश है। तुला लग्न की कुण्डली में श + मं निर्दोष योग हैं।

पंचमेश-चतुर्थेश के योग

१	मेष लग्न	पंचमेश = चतुर्थेश =	सूर्य चन्द्रमा	निर्दोष निर्दोष	}	सू + चं = + १०
२	वृषभ लग्न	पंचमेश-द्वितीयेश = चतुर्थेश =	बुध सूर्य	मारकेश निर्दोष	}	बु + सू = ÷ ८

३	मिथुन लग्न	पंचमेश–द्वादशेश = चतुर्थेश–लग्नेश =	शुक्र बुध	निर्दोष निर्दोष	शु + बु = + १३
४	कर्क लग्न	पंचमेश–दशमेश = चतुर्थेश–एकादशेश=	मंगल शुक्र	निर्दोष सदोष	मं + शु = + ३
५	सिंह लग्न	पंचमेश–अष्टमेश = चतुर्थेश–नवमेश =	गुरु मंगल	सदोष निर्दोष	गु + मं = + ७
६	कन्या लग्न	पंचमेश–षष्ठेश = चतुर्थेश–सप्तमेश =	शनि गुरु	सदोष प्रबल मारकेश	श + गु = + १ शनि साक्षात् निहन्ता है। गुरु मारकेश है।
७	तुला लग्न	पंचमेश–चतुर्थेश =	शनि	निर्दोष	शनि स्वयं कारक है = + ८
८	वृश्चिक लग्न	पंचमेश–द्वितीयेश = चतुर्थेश–तृतीयेश =	गुरु शनि	मारकेश सदोष तथा निहन्ता	गु + श = + १ (प्रबल मारक योग है)
९	धनु लग्न	पंचमेश–द्वादशेश = चतुर्थेश–लग्नेश =	मंगल गुरु	निर्दोष निर्दोष	मं + गु = + १३
१०	मकर लग्न	पंचमेश–दशमेश = चतुर्थेश–एकादशेश=	शुक्र मंगल	निर्दोष सदोष	शु + मं = + ३
११	कुम्भ लग्न	पंचमेश–अष्टमेश = चतुर्थेश–नवमेश =	बुध शुक्र	सदोष निर्दोष	बु + शु = + ७

१२	मीन लग्न	पंचमेश = चतुर्थेश–सप्तमेश =	चंद्रमा बुध	निर्दोष मारकेश	चं + बु = ÷ ६

उपरोक्त योगों में कन्या लग्न की कुण्डली में शनि + गुरु तथा वृश्चिक लग्न की कुण्डली में गुरु + शनि का योग प्रबल अरिष्ट-प्रद है। शनि निहन्ता हैं। वृषभ, मीन लग्न की कुण्डलियों में बुध साधारण मारकेश हैं। मकर लग्न की कुण्डली में शुक्र + मंगल कारक नहीं हैं, शुक्र अकेला कारक है। कुम्भ लग्न की कुण्डली में बु + शु का योग समयोग है।

पंचमेश-दशमेश के योग

१	मेष लग्न	पंचमेश = दशम–एकादशेश =	सूर्य शनि	निर्दोष सदोष	सू + श = + १
२	वृषभ लग्न	पंचमेश–द्वितीयेश = दशमेश–नवमेश =	बुध शनि	मारकेश पर नवमेश के साहचर्य से शुभ है निर्दोष	बु + श = + १७
३	मिथुन लग्न	पंचमेश–द्वादशेश = दशमेश–सप्तमेश =	शुक्र गुरु	साहचर्य से मारकेश मारकेश	शु + गु = ± १० मारकेश
४	कर्क लग्न	पंचमेश–दशमेश =	मंगल	निर्दोष	मंगल स्वयं कारक = + १०
५	सिंह लग्न	पंचमेश–अष्टमेश = दशमेश–तृतीयेश =	गुरु शुक्र	सदोष सदोष	गु + शु = – ५ यह कारक योग नहीं है।

६	कन्या लग्न	पंचमेश–षष्ठेश = दशमेश–लग्नेश =	शनि बुध	सदोष निर्दोष	शु + बु = + ७
७	तुला लग्न	पंचमेश–चतुर्थेश = दशमेश =	शनि चन्द्रमा	निर्दोष निर्दोष	श + चं = + १२
८	वृश्चिक लग्न	पंचमेश–द्वितीयेश = दशमेश =	गुरु सूर्य	मारकेश निर्दोष	गु + सू = + १०
९	धनु लग्न	पंचमेश–द्वादशेश = दशमेश–सप्तमेश =	मंगल बुध	निर्दोष पर मार-केश साहचर्य दोष मारकेश	मं + बु = + १०
१०	मकर लग्न	पंचमेश–दशमेश =	शुक्र	निर्दोष	शुक्र स्वयं कारक = + १०
११	कुम्भ लग्न	पंचमेश–अष्टमेश = दशमेश–तृतीयेश =	बुध मंगल	सदोष सदोष	बु + मं = – ५ कारक योग नहीं हैं।
१२	मीन लग्न	पंचमेश = दशमेश–लग्नेश =	चन्द्रमा गुरु	निर्दोष निर्दोष	चं + गु = + १५

उपरोक्त योगों में मेष-लग्न की कुण्डली में सू + श कारक नहीं हैं। सिंह लग्न की कुण्डली में गु + शु कारक नहीं हैं। कन्या लग्न की कुण्डली में अकेला बुध कारक है, परन्तु शनि के सहयोग से सम फल देने वाला है। वृषभ, मिथुन, वृश्चिक, धनु लग्नों की कुण्डलियों में क्रमशः बुध, शुक्र, गुरु, बुध मारकेश हैं, इसलिये उनके योगजफल शुभ होकर भी अरिष्टप्रद होंगे। गुरु में अधिक, शुक्र, बुध में क्रमशः अरिष्टता कम होगी।

पंचमेश-लग्नेश के योग

१	मेष लग्न	पंचमेश लग्नेश—अष्टमेश	सूर्य मंगल	निर्दोष निर्दोष	सू + मं = + ४
२	वृषभ लग्न	पंचमेश—द्वितीयेश लग्नेश—षष्ठेश	बुध शुक्र	मारकेश सदोष	बु + शु = ± ४
३	मिथुन लग्न	पंचमेश—द्वादशेश लग्नेश—चतुर्थेश	शुक्र बुध	निर्दोष निर्दोष	शु + बु = + १३
४	कर्क—लग्न	पंचमेश—दशमेश लग्नेश	मंगल चन्द्रमा	निर्दोष निर्दोष	मं + चं = + १६
५	सिंह लग्न	पंचमेश-अष्टमेश लग्नेश	गुरु सूर्य	सदोष निर्दोष यदि लग्नस्थ हो तो	गु + सू = + ८
६	कन्या लग्न	पंचमेश—षष्ठेश लग्नेश—दशमेश	शनि बुध	सदोष निर्दोष	श + बु = + ७
७	तुला लग्न	पंचमेश—चतुर्थेश लग्नेश—अष्टमेश	शनि शुक्र,	निर्दोष निर्दोष	श + शु = + ६
८	वृश्चिक लग्न	पंचमेश—द्वितीयेश लग्नेश—षष्ठेश	गुरु मंगल	मारकेश सदोष कारक नहीं अरिष्ट प्रद है।	गु + मं = ± ४

६	धनु लग्न	पंचमेश–द्वादशेश लग्नेश–चतुर्थेश	मंगल गुरु	निर्दोष निर्दोष	मं + गु= १३
१०	मकर लग्न	पंचमेश–दशमेश लग्नेश–द्वितीयेश	शुक्र शनि	निर्दोष निर्दोष	शु + श= + १६
११	कुम्भ लग्न	पंचमेश–अष्टमेश लग्नेश–द्वादशेश	बुध, शनि	सदोष सदोष बुध के साहचर्य से	बु + श = + ८
१२	मीन लग्न	पंचमेश लग्नेश–दशमेश	चन्द्रमा गुरु	निर्दोष निर्दोष	चं + गु = + १५

उपरोक्त योगों में वृषभ लग्न की कुण्डली में बुध, शुक्र; वृश्चिक लग्न की कुण्डली में गुरु मंगल और कुम्भ लग्न की कुण्डली में बुध शनि योगकारक नहीं हैं।

लग्नेश–दशमेश के योग

१	मेष लग्न	लग्नेश–अष्टमेश दशमेश–एकादशेश	मंगल शनि	निर्दोष सदोष	मं + श = – ७ कारक नहीं है। मंगल यदि लग्नस्थ अथवा अष्टमस्थ हो तो मं + श = ± १
२	वृषभ लग्न	लग्नेश–षष्ठेश दशमेश–नवमेश	शुक्र शनि	सदोष निर्दोष	शु + श = + ६
३	मिथुन–लग्न	लग्नेश–चतुर्थेश दशमेश–सप्तमेश	बुध गुरु	निर्दोष मारकेश	बु + गु = + ११

४	कर्क लग्न	लग्नेश दशमेश—पंचमेश	चन्द्रमा मंगल	निर्दोष निर्दोष	चं + मं = + १६
५	सिंह लग्न	लग्नेश दशमेश—तृतीयेश	सूर्य शुक्र	निर्दोष सदोष	सू + शु = + ३ कारक नहीं हैं।
६	कन्या लग्न	लग्नेश—दशमेश	बुध	निर्दोष	बुध = + ९ स्वयं कारक है।
७	तुला लग्न	लग्नेश—अष्टमेश दशमेश	शुक्र चन्द्रमा	निर्दोष निर्दोष	शु + चं = + १० शुक्र यदि लग्नस्थ या अष्टमस्थ हो तो = + २
८	वृश्चिक लग्न	लग्नेश—षष्ठेश दशमेश	मंगल सूर्य	सदोष निर्दोष	मं + सू = + ४ कारक नहीं हैं।
९	धनु लग्न	लग्नेश—चतुर्थेश दशमेश—सप्तमेश	गुरु बुध	निर्दोष मारकेश	गु + बु = ± ११
१०	मकर लग्न	लग्नेश—द्वितीयेश दशमेश—पंचमेश	शनि शुक्र	निर्दोष निर्दोष	श + शु = + १६
११	कुम्भ लग्न	लग्नेश—द्वादशेश दशमेश—तृतीयेश	शनि मंगल	सदोष-निर्दोष सदोष	श + मं = + २ कारक नहीं हैं।
१२	मीन लग्न	लग्नेश—दशमेश	गुरु	निर्दोष	गुरु = + ९ स्वयं कारक हैं।

उपरोक्त योगों में मेष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ लग्नों की कुण्डलियों में लग्नेश–दशमेश के योग कारक नहीं हैं। मिथुन लग्न की कुण्डली में गुरु प्रबल मारकेश हैं; धनु लग्न की कुण्डली में बुध मारकेश हैं। यह योग अरिष्टप्रद है।

लग्नेश–सप्तमेश के योग

१	मेष लग्न	लग्नेश–अष्टमेश सप्तमेश–द्वितीयेश	मंगल शुक्र	निर्दोष मारकेश	मं + शु = + १ मंगल लग्नस्थ अथवा अष्टमस्थ हो तो = + ६
२	वृषभ लग्न	लग्नेश–षष्ठेश सप्तमेश–द्वादशेश	शुक्र मंगल	सदोष सदोष	शु + मं = + १ (कारक नहीं हैं)
३	मिथुन लग्न	लग्नेश–चतुर्थेश सप्तमेश–दशमेश	बुध गुरु	निर्दोष मारकेश	बु + गु = ± ११
४	कर्क लग्न	लग्नेश सप्तमेश–अष्टमेश	चन्द्रमा शनि	निर्दोष सदोष	चं + श = + १
५	सिंह लग्न	लग्नेश सप्तमेश–षष्ठेश	सूर्य शनि	निर्दोष सदोष	सू + श = + १
६	कन्या लग्न	लग्नेश–दशमेश सप्तमेश–चतुर्थेश	बुध गुरु	निर्दोष मारकेश	बु + गु = + १२
७	तुला लग्न	लग्नेश–अष्टमेश सप्तमेश–द्वितीयेश	शुक्र मंगल	निर्दोष निर्दोष	शु + मं = + १ (संदिग्ध) शुक्र यदि लग्नस्थ या अष्टमस्थ हो तो = + ६

८	वृश्चिक लग्न	लग्नेश—षष्ठेश सप्तमेश—द्वादशेश	मंगल शुक्र	सदोष मारकेश तथा सदोष	मं + शु = + १ (कारक नहीं है)
९	धनु—लग्न	लग्नेश—चतुर्थेश सप्तमेश—दशमेश	गुरु बुध	निर्दोष मारकेश	गु + बु = ± ११
१०	मकर लग्न	लग्नेश—द्वितीयेश सप्तमेश	शनि चंद्रमा	स्वयं निर्दोष पर साहचर्य से सदोष मारकेश	श + चं = + ९ चन्द्रमा मारकेश है शनि निहन्ता है।
११	कुंभ लग्न	लग्नेश—द्वादशेश सप्तमेश	शनि सूर्य	निर्दोष निर्दोष	श + सू = + ९
१२	मीन लग्न	लग्नेश—दशमेश सप्तमेश—चतुर्थेश	गुरु बुध	निर्दोष मारकेश	गु + बु = ± १२

कुंभ लग्न की कुण्डली में शनि + सूर्य का योग 'कारक' नहीं है। शेष लग्नों की कुण्डलियों में कोई मारक युक्त है तो कोई 'अकारक' योग करने वाले हैं।

लग्नेश—चतुर्थेश के योग

१	मेष लग्न	लग्नेश—अष्टमेश चतुर्थेश	मंगल चन्द्रमा	निर्दोष निर्दोष	मं + चं = + ० मंगल यदि लग्नस्थ या अष्टमस्थ हो तो = + ८
२	वृषभ लग्न	लग्नेश—षष्ठेश चतुर्थेश	शुक्र सूर्य	सदोष निर्दोष	शु + सू = + ०

३	मिथुन लग्न	लग्नेश—चतुर्थेश	बुध	निर्दोष	बुध स्वयं कारक है = + २
४	कर्क लग्न	लग्नेश चतुर्थेश—एकादशेश	चन्द्रमा शुक्र	निर्दोष सदोष	चं + शु = − १
५	सिंह लग्न	लग्नेश चतुर्थेश—नवमेश	सूर्य मंगल	निर्दोष निर्दोष	सू + मं = + १५
६	कन्या लग्न	लग्नेश—दशमेश चतुर्थश—सप्तमेश	बुध गुरु	निर्दोष मारकेश	बु + गु = ± १२
७	तुला लग्न	लग्नेश—अष्टमेश चतुर्थेश—पंचमेश	शुक्र शनि	निर्दोष निर्दोष	शु + श = + ६ शुक्र लग्नस्थ या अष्टमस्थ हो तो = + १४
८	वृश्चिक लग्न	लग्नेश—षष्ठेश चतुर्थेश—तृतीयेश	मंगल शनि	सदोष सदोष	मं + श = − ७ (कारक नहीं है)
९	धनु—लग्न	लग्नेश—चतुर्थेश	गुरु	निर्दोष	गुरु स्वयं कारक हैं = + ७
१०	मकर लग्न	लग्नेश—द्वितीयेश चतुर्थेश—एकादशेश	शनि मंगल	साहचर्य दोष सदोष	श + मं = − १ (संदिग्ध कारक)
११	कुंभ लग्न	लग्नेश—द्वादशेश चतुर्थेश—नवमेश	शनि शुक्र	निर्दोष निर्दोष	श + शु = + १५

१२	मीन लग्न	लग्नेश–दशमेश चतुर्थेश–सप्तमेश	गुरु बुध	निर्दोष मारकेश	} गु + बु = ± १२

वृश्चिक, वृषभ, मिथुन, कर्क, मकर इन लग्नों की कुण्डलियों में लग्नेश–चतुर्थेश के योग "कारक" नहीं हैं। कन्या लग्न की कुण्डली में गुरु प्रबल मारकेश है और मीन लग्न की कुण्डली में बुध मारकेश हैं। जिन ग्रहों के नीचे – ऐसा चिह्न या रेखा है, वे सब मारक हैं।

दशास्वपि भवेद्योगः प्रायशो योगकारिणोः ।
दशाद्वयीमध्यगतास्तदयुक् शुभकारिणाम् ॥ १८ ॥

अर्थ :—योगकारक ग्रहों (याने केन्द्राधिप त्रिकोणाधिप) की दशा में बहुधा राजयोग की प्राप्ति होती है और योगकारक सम्बन्ध रहित ऐसे शुभ-ग्रहों की दशा में भी प्रायः राजयोग की प्राप्ति होती है ॥ १८ ॥

पण्डित रामेश्वर भट्ट हिन्दी टीकाकार इस प्रकार अर्थ करते हैं :—

"राजयोग करने वाले केन्द्र त्रिकोणेशों की अर्थात् नवम दशमेशों की मूल-दशा में योगकारक ग्रहों से सम्बन्ध नहीं रखने वाले भी ग्रहों के अन्तर में शुभफल होता है।"

विद्यारत्न पण्डित माधव प्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार अर्थ करते हैं :—

"राजयोग करने वाले केन्द्र और त्रिकोणेश की दशा से सम्बन्ध न करने वाले शुभग्रहों की दशा में भी बहुधा राजयोग होता है। तात्पर्य यह है कि नवमेश-दशमेश की दशा के मध्य में यदि किसी शुभग्रह की दशा आवे तो वह दशा अवश्य राजयोग कारक होती है। इस योग के लिए इस बात की आवश्यकता नहीं है कि नवमेश और दशमेश के साथ अन्तर्दशा वाले शुभग्रहों का सम्बन्ध होवे। यदि सम्बन्ध होवे तो पूर्ण योग हो जाता है।"

राज ज्योतिषी पण्डित चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार अर्थ करते हैं—

"राजयोग करने वाले केन्द्रेश और त्रिकोणेश अर्थात् दशमेश और नवमेश ग्रहों की दशा में ही राजयोग-फल होता है। यह योग प्रायः उन दोनों से सम्बन्ध न रखने वाले शुभग्रह के अन्तर में प्राप्त होता है।

इसका तात्पर्य यह है कि जन्म कुण्डली में जिस प्रकार ग्रहों का योग होता है और उसका फल यथावस्थित रूप से मिलता है, उसी प्रकार दशा में भी ग्रहों

का योग होता है और उसका भी फल प्राप्त होता है। राजयोग कारक ग्रहों की महादशा में जब शुभग्रह का अन्तर आता है तब वह शुभग्रह अर्थात् शुभ-फल देने वाला ग्रह जन्म कुण्डली में सम्बन्ध रहित हो तो भी राजयोग कारक ग्रह के अन्तर आने पर दशा में दोनों का सम्बन्ध योग हो जाता है। इसी कारण वह जन्म कुण्डली का सम्बन्ध हीन शुभग्रह भी दशा में सम्बन्धित होने से अपना शुभफल करता है।

सुश्लोक शत्तक—के टीकाकार के विचार इस प्रकार है—

"योगकारक ग्रह की बहुत महिमा है। जिस प्रकार पारस अपने स्पर्श से लोहे का सोना बनाता है उसी प्रकार दुष्ट ग्रह भी कभी-कभी योग कारक के सम्बन्ध के कारण दुष्ट भाव का कुछ अंशों में त्याग करके शुभफल देता है। इस सम्बन्ध में श्लोक १८ और १९ पाराशरी के अति महत्त्वपूर्ण हैं।"

उद्योतकार इस श्लोक की टीका करते हैं कि "राजयोग कारक केन्द्रेश और त्रिकोणेश इनकी जो दशा होती है अर्थात् वे केन्द्रेश और त्रिकोणेश की दशा हैं उनमें योग कारक से सम्बन्ध रहित-शुभग्रह की अंतर्दशा में भी राज-योग होता है।"

सज्जन रंजनी टीकाकार कहते हैं कि "योगकारकों की महादशा में यदि सम्बन्धित शुभग्रह की अन्तर्दशा हो तो विशेष शुभफलद होगी। यदि योग-कारकों की महादशा में उससे असम्बन्धित शुभग्रह की दशा हो तो किंचित न्यूनफल मिलता हैं।"

श्री विनायक शास्त्री कहते हैं कि "योगकारकों की महादशा में उससे असम्बन्धित शुभ ग्रह की अन्तर्दशा प्रायः शुभफल देती है तो फिर सम्बन्ध यदि हो तो क्या पूछना !

पंडित श्री रामयत्नजी ओझा कहते हैं कि "कल्पना करो, नवमेश-दशमेश का सम्बन्ध है तो नवमेश-दशमेश योगकारक हुए इसलिए नवमेश की महादशा में नवमेश से असम्बन्धित पंचमेंश की अंतर्दशा अथवा दशमेश की महादशा में उससे असम्बन्धित पंचमेश की अंतर्दशा भी शुभफल देगी अर्थात् भाग्योदय होगा। इसका एक अर्थ ऐसा होता है कि दो योगकारक ग्रहों में से यदि एक योगकारक ग्रह की महादशा हो और दूसरे योगकारक ग्रह की अंतर्दशा हो तो उन दोनों से सम्बन्ध रहित अन्य शुभग्रह की प्रत्यंतर दशा में प्रायः भाग्य योग होता है।"

ज्योतिषाचार्य—तीर्थ पंडित सीताराम झा हिन्दी टीकाकार के विचार इस प्रकार हैं :—

"पूर्वोक्त योग कारक (केन्द्रेश त्रिकोणेश) से सम्बन्ध रहित शुभकारक ग्रह की दशा में भी जब एक योगकारक की अन्तर्दशा और दूसरे की प्रत्यन्त-र्दशा होती है तब विशेषतया योगफल प्राप्त होता है। अर्थात् सम्बन्धी शुभ-कारक की दशा में तो अवश्य ही पूर्ण रूप फल प्राप्त होना सिद्ध है। अत्र युक्ति वचनम् :—

जनानां हितकार्यस्य साधुर्भवति साधकः।
स्वार्थं विनाऽपि संसारे खलस्तस्य प्रबाधकः॥
योगकारकयोः कार्यं स्वदशासु तथैव हि।
वर्धयन्ति शुभा योगं सम्बन्ध रहिता अपि॥

संसार में जो साधु है वे निःस्वार्थ लोगों के हितकार्य के साधक होते हैं। तथा दुष्ट लोग बिना स्वार्थ से भी लोगों के हितकार्य में बाधक होते हैं। इस प्रकार-योगकारक ग्रहों से सम्बन्धहीन भी शुभग्रह अपनी दशा में योगफल देने में सहायक होकर योगफल की प्राप्ति करा देते हैं। क्योंकि योगकारक ग्रह सर्वदा अपने फल देने के लिए यद्यपि उद्यत रहता है तथापि पापग्रह अपनी दशा में उसके बाधक हो जाते हैं, और शुभग्रह उसके साधक होते हैं। इसलिए शुभग्रह की दशा में ही दोनों योग कारकों की अन्तर प्रत्यन्तर दशा आने पर योगफल का लाभ उचित कहा गया है।

अब यहाँ प्रश्न यह उठता है कि शुभग्रह तो बिना सम्बन्ध के भी अपनी दशा में योगफल देते हैं। तथा पापग्रह सम्बन्धी होने पर भी योगफल देने में सहायक हो सकते हैं या नहीं? इसका उत्तर आगे के श्लोक में कहते हैं"।

स्वर्गीय श्री वि० गो० नवाथे (मराठी टीकाकार) के विचार इस प्रकार हैं :—

" योग कारक ग्रहों की दशा में जिन ग्रहों की अंतर्दशा होती है, उन सम्बन्ध रहित ग्रहों की दशा में भी राजयोग होता है"।

केन्द्राधिप और त्रिकोणाधिप जब राजयोग करने वाले होते हैं, तब उन दो ग्रहों की महादशा में उन दो ग्रहों से सम्बन्ध न रखने वाले ऐसे जो शुभफल उत्पन्न करने वाले ग्रह होते हैं, उनकी अंतर्दशा में राजयोग होता है। ३।६।८।११।१२ इन स्थानों के स्वामी अशुभफल उत्पन्न करने वाले हैं, (कौन से ग्रह शुभफल उत्पन्न करने वाले हैं, इस विषय में पूर्व में संज्ञाध्याय प्रकरण में कहा है वह देखिये)। उन ग्रहों की अंतर्दशा जब राजयोग ग्रहों की महादशा में आती है, उस समय राजयोग होता है। राजयोग के संभव-

काल दो हैं—एक तो वह जो योगकारक ग्रह होते हैं उनकी महादशा में उनकी अंतर्दशा आती है और दूसरा उपरोक्त कहा हुआ"।

स्वर्गीय श्री ह० ने० काटवे (मराठी टीकाकार) इस प्रकार अर्थ करते हैं :—

"दशा में भी योगकारक ऐसे दो ग्रहों का योग प्रायः होता है ऐसे दो दशाओं के बीच होने वाली अशुभफल देने वाली दशा हो फिर भी वह शुभ-फल देती है।

स्वर्गीय श्री रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) के विचार इस प्रकार है :—

"दशा में भी योगकारक ऐसे दो ग्रहों का सम्बन्ध होना चाहिये। दो (शुभ) दशाओं के बीच में होने वाली दशा अशुभ हो तो भी वह शुभ होती है।

दो शुभ ग्रहों की दशा होकर उन दोनों के दशा में एक अशुभग्रह की दशा हो तो वह अशुभ दशा भी शुभ होती है। यह नियम महादशा व विशे-षतः अंतर्दशाफल देखने के लिए उपयोगी है"।

शास्त्री तुलजाशंकर धीरज राम पंडया (गुजराथी टीकाकार) के विचार इस प्रकार है :—

योग करने वाले जो दो ग्रह होते हैं उनकी दशाओं के बीच में बहुधा उनके साथ कोई भी प्रकार का सम्बन्ध न करने वाला शुभ कारक ग्रह की अंतर्दशा आनी हो तो वह एक प्रकार का राजयोग होता है।

जब त्रिकोणाधिप अथवा केन्द्राधिप ग्रह राजयोग करने वाला हो तब उसकी महादशा में जो कोई भी ग्रह उसके साथ सम्बन्ध न करने वाला हो और वह स्वयं शुभग्रह हो तो उसकी अंतर्दशा में राजयोग होता है अर्थात् ऐसा कि जब राजयोग कारक ग्रहों में से जिसकी महादशा हो और उसमें कोई दूसरे शुभग्रह की अंतर्दशा हो तो उस अंतर्दशा में भी मनुष्य को राजयोग होता है और वह अंतर्दशा उसे उत्तमफल देने वाली होती है। सामान्य रीति से ३-६-८-११ और १२ स्थानों के स्वामी अशुभफल उत्पन्न करने वाले होते हैं और इसके सिवाय मंगल, सूर्य, शनि तथा क्षीण चन्द्रमा ये पापग्रह तरीके गिने जाते हैं। इस पर ऊपर कहे हुए स्थानों के सिवाय अन्य स्थानों के अधिपति तथा पापग्रह छोड़कर सामान्यग्रह शुभफल उत्पन्न करने वाले होते हैं और उसमें भी विशेषतः शुभग्रह होने के लिये अमुक-अमुक स्थान में अथवा

सम्बन्ध रखने वाले ये शुभग्रह पापग्रह गिने जाते हैं वे सब छोड़कर दूसरे अमुक संयोग में पापग्रह भी शुभफल देने वाला होता है और तब शुभफल देने वाला ग्रह भी शुभग्रह तरीके ले सकते हैं। इस प्रकार जो शुभग्रह होता हो उस ग्रह की अंतर्दशा में राजयोग माना जा सकता है। कौन सा ग्रह स्थान सम्बन्ध में शुभ अथवा अशुभफल देने वाला होता है। यह पूर्व में संज्ञाध्याय के श्लोकों में बताया गया है, उस पर से समझ लेना चाहिये। इसलिये इस प्रकार जिस-जिस राजयोग कारक ग्रहों की महादशा में उस शुभग्रह की अंतर्दशा आनी हो उस पर से वह योग राजयोग तरीके मानना चाहिये और वह शुभफलदायक समझना चाहिये"।

श्री-उत्तमराम मयाराम टक्कर (गुजराथी टीकाकार) के विचार इस प्रकार हैं :—

राजयोग करने वाले दो ग्रहों की महादशा राजयोग के फल देती है। उसी प्रकार उनसे सम्बन्ध न करने वाले परन्तु शुभफल देने वाले ग्रहों की महादशा में भी बहुधा राजयोग का फल देते हैं।

हिन्दी टीकाकार " सम्बन्ध रहित शुभग्रह की महादशा में प्रायशः योग होता है उससे अलग महादशा के बदले अंतर्दशा" इस प्रकार अर्थ करते हैं वह बराबर नहीं है। कारण कि इस श्लोक के प्रथम पाद में और द्वितीय पाद में दशापद (अर्थात् दशाद्वयी और दशास्वपि) एक ही शब्द वापरा है इसलिये दो अलग-अलग अर्थ लेने की जरूरत नहीं थी। इस पर ३४ वें श्लोक में अंतर्दशा के विषय में उल्लेख किया हैं। इसलिये यहाँ पर कारकाध्याय में अंतर्दशा के सम्बन्ध में विषय लेने से आया है वह अप्रासंगिक है।

हिन्दी टीकाकार :—

योगकारिणोर्दशाद्वयीमध्यगतस्तदयुक्।
शुभकारिणां दशास्वपि प्रायशो योगो भवेत्॥

इस प्रकार अन्वय करके एक ही योग बनाते हैं जब कि ग्रंथकार का आशय तो इस प्रकार का है कि " राजयोग कारक ग्रहों की महादशा में फल देते हैं" परन्तु जो वह बनना अशक्य हो तो बहुधा संबंध रहित शुभग्रह के मध्य में आने वाली शुभग्रह की महादशा में राजयोग का फल प्राप्त होता है" ऐसा होने से मुख्य जो योगकारक ग्रहों की महादशा में प्राप्त होता है उसे उडा देना योग्य नहीं है। इसके सिवाय योग का पुंल्लिग एक वचन मध्यगतः विशेषण बराबर है परन्तु उसका मध्यगताः रूपांतर करके दशा स्त्रीलिंग के साथ विशेषण तरीके लगाकर मध्यपतितास्तु ऐसा अर्थ किया है उससे अन्वय का बाध

लगता है । श्लोक १८ में महादशा के विषय में उल्लेख करने के वाद वह किस अंतर्दशा में उसका फल मिलता है वह विषय अंतर्दशाध्याय में देखिये ।

स्पष्टीकरण :—

राजयोग करने वाले केन्द्रेश और त्रिकोणेश अर्थात् दशमेश नवमेश ग्रहों की दशा में राजयोग फल तो होता ही है । यही योग प्रायः उन दोनों से सम्वन्ध न रखने वाले शुभग्रह की अंतर्दशा में प्राप्त होता है ।

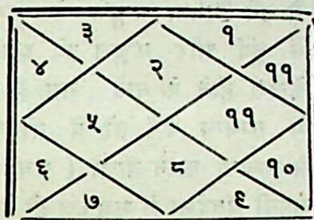
इसका तात्पर्य यह है कि जन्म कुण्डली में जिस प्रकार ग्रहों का योग होता है और उसका फल यथावत् स्थित रूप से मिलता है, उसी प्रकार दशा में भी ग्रहों का योग होता है और उसका भी फल प्राप्त होता है ।

राजयोग कारक ग्रहों की महादशा में जब शुभग्रह का अन्तर आता है तब वह शुभफ़ल देने वाला ग्रह जन्म कुण्डली में सम्वन्ध रहित हो तो भी राजयोग कारक ग्रह का अन्तर आने पर दशा में दोनों का सम्वन्ध योग हो जाता है । इसी कारण वह जन्म कुण्डली का सम्वन्ध रहित शुभग्रह भी दशा में सम्वंधित होने से अपना शुभफल करता है । तात्पर्य यह है कि नवमेश दशमेश की दशा के मध्य में यदि किसी शुभग्रह की दशा आवे तो वह दशा अवश्य राजयोग कारक होती हैं । इस योग के लिये इस बात की आवश्यकता नहीं है कि नवमेश और दशमेश के साथ अन्तर्दशा वाले शुभग्रहों का सम्वन्ध होवे । यदि सम्वंध होवे तो पूर्ण योग हो जाता है ।

उदाहरणार्थ :—नवमेश-दशमेश का सम्वन्ध है तो नवमेश-दशमेश योगकारक हुए इसलिये नवमेश की महादशा में नवमेश से असम्बन्धित पंचमेश की अंतर्दशा भी अथवा दशमेश की महादशा में उससे असम्बन्धित पंचमेश की अंतर्दशा भी शुभफल देगी ।

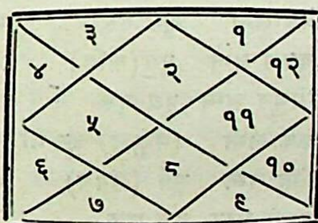
इस श्लोक का इस प्रकार भी अर्थ कहीं-कहीं किया गया है कि दो योगकारक ग्रहों में से यदि एक योगकारक ग्रह की महादशा हो और दूसरे योगकारक ग्रह की अंतर्दशा हो तो उन दोनों से सम्वन्ध रहित अन्य शुभग्रह की प्रत्यंतर दशा में प्रायः भाग्य योग होता है ।

परन्तु यह अर्थ तो तभी उपयुक्त हो सकता है जब कि योगकारी ग्रह से असम्वन्धित शुभग्रह का प्रत्यंतर सदैव शुभ ही माना जावे तब । किसी एक ग्रह की महादशा में किसी भी ग्रह का अंतर यदि वह शुभ हो तो उसका प्रत्यंतर भी शुभ होगा ही ।



उदाहरणार्थ :—वृषभ लग्न की कुण्डली में यदि शनि + सूर्य आपस में सम्वन्ध करें तो वे दोनों योगकारी होंगे । शनि की महादशा तथा सूर्य का अंतर शुभफल देगा । इसके सिवाय बुध ने यदि सूर्य-शनि से सम्वन्ध नहीं भी किया हुआ हो तो भी शनि की महादशा में बुध का अंतर शुभफल ही देगा । इसी प्रकार शनि की महादशा में सूर्य का अन्तर तथा बुध के प्रत्यंतर में भी शुभ फल मिलेगा ।

यहाँ पर शुभग्रह का अर्थ त्रिकोणेश से है । यहाँ पर 'प्राय:' शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है कि ऐसे सम्वन्धरहित सभी शुभग्रहों के अंतर में शुभफल नहीं होता, मिश्रफल भी मिलता है । जिस ग्रह की महादशा होती है वह महादशेश योगकारक होने पर भी यदि अधिक पापी हो और उससे सम्वन्ध न रखने वाला दूसरा (त्रिषडायातिरिक्त) त्रिकोणेश शुभ हो तो भी मूलदशा वाले योगकारी ग्रह के पापत्व को शुभत्व में परिणत करने में अपनी दशा में समर्थ नहीं हो सकता । ऐसी परिस्थिति में दशा में तारतम्य से ही फल प्राप्त होगा । परंतु साधारणत: योगकारी ग्रहों की महादशा तथा उससे असम्वन्धित शुभग्रहों की अंतर्दशा में शुभफल ही प्राप्त होगा ।



उदाहरणार्थ :—वृषभ लग्न की कुण्डली में यदि शुक्र + शनि आपस में सम्वन्ध करते हों, तो वे योगकारी ग्रह होंगे । अब यदि शनि से (पंचमेश-द्वितीयेश) बुध ने सम्वन्ध नहीं भी किया फिर भी शनि की महादशा में एवं बुध की अंतर्दशा में शुभफल ही प्राप्त होगा । बुध साधारण मारकेश भी है इसलिये उसकी अंतर्दशा में उसके शुभफलों में किंचित मारक-फल भी मिलेगा । इसी प्रकार शुक्र की महादशा में बुध की अंतर्दशा भी शुभ होना चाहिये पर चूंकि शुक्र षष्ठेश है (पापी है) और बुध पापी नहीं है परंतु साधारण मारकेश है । इसलिये शुक्र की महादशा में बुध का अन्तर तारतम्य से फल देगा । यदि उसी वृषभ लग्न की कुण्डली में शनि और बुध आपस में सम्वन्ध करें तो ये प्रबल राजयोग कारक होंगे । तब यदि शनि

से सूर्य अथवा मङ्गल ने सम्बन्ध नहीं किया तो भी शनि की महादशा में सूर्य और मङ्गल की अंतर्दशा अशुभ नहीं जायगी। सूर्य और मङ्गल केन्द्रेश होने के नाते सम हैं। इस कुण्डली में यदि सूर्य और शनि आपस में सम्बन्ध करें तो वे योगकारी होंगे। उस समय योगकारी सूर्य में सूर्य से सम्बन्ध करने वाला (पंचमेश-द्वितीयेश) बुध, सूर्य, की महादशा में तथा अपनी अंतर्दशा में शुभफल ही देगा। इसी प्रकार शनि मङ्गल के योगकारकत्व में शनि से सम्बन्ध न करने वाले बुध का शनि की महादशा में अन्तर शुभ होगा परन्तु मङ्गल की महादशा में बुध का अंतर उतना शुभफल नहीं देगा जितना शनि की महादशा में बुध की अंतर्दशा देगी।

वृषभ लग्न की कुण्डली में योगकारी शनि, सूर्य इनमें से शनि के साथ बुध का सम्बन्ध नहीं हो परंतु सूर्य के साथ बुध का सम्बन्ध हो तो ऐसी परि-स्थिति में शनि की महादशा में बुध का अंतर जितना शुभ होगा उससे अधिक उसका सूर्य की अंतर्दशा में अधिक शुभफल प्राप्त होगा। क्योंकि यहाँ पर बुध और सूर्य परस्पर योगकर्त्ता हैं और शनि सूर्य परस्पर योगकर्त्ता नहीं हैं।

शुभग्रह त्रिकोणेश जिनकी अपनी दूसरी राशि त्रिषडाय में (३-६-११ इन स्थानों में) नहीं पड़ती है वे कोष्टक के रूप में नीचे दिये हैं

लग्न	शुभ ग्रह	अष्टमेश होने पर भी शुभ हैं	लग्न	शुभ ग्रह	अष्टमेश होने पर भी शुभ हैं
मेष लग्न	सूर्य गुरु	मङ्गल	तुला लग्न	शनि बुध	शुक्र
वृषभ लग्न	बुध (शनि)	×	वृश्चिक लग्न	गुरु चन्द्रमा	×
मिथुन लग्न	बुध शुक्र	शनि	धनु लग्न	गुरु, मङ्गल, सूर्य	×
कर्क लग्न	(मङ्गल) चन्द्रमा	×	मकर लग्न	शनि (शुक्र)	×
सिंह लग्न	सूर्य (मंगल)	गुरु	कुम्भ लग्न	शनि (शुक्र)	बुध
कन्या लग्न	बुध शुक्र	×	मीन लग्न	(गुरु) चन्द्रमा मंगल	×

जिन ग्रहों के नीचे—इस प्रकार की रेखा (चिन्ह) है वे ग्रह मारकेश हैं वे ग्रह अपनी दशा में प्रथम शुभ फल देंगे और बाद में मारक फल देने वाले होंगे। अष्टमेश अष्टमस्थ की अंतरदशा भी शुभ होती है।

( ) इस प्रकार की कोष्टक के अन्दर आने वाले ग्रह उस लग्न की कुण्डली में स्वयं योगकारी हैं। कुंडली के किसी भी योगकारी ग्रह की महा-दशा में उस कुण्डली में उससे (योगकारी ग्रह से) सम्बन्ध न करने वाले

ग्रह जो ( ) कोष्ठक में बताये हुए हैं, उनकी अंतर्दशा में प्राय: शुभफल ही प्राप्त होगा ।

योगकारकसंबन्धात्पापिनोऽपि ग्रहाः स्वतः ।
तत्तद्भुक्त्यनुसारेण दिशेयुर्योगजं फलम् ॥१९॥

अर्थ :—योगकारक ग्रहों से सम्बन्ध करने वाला पापी ग्रह अपनी दशा में तथा योगकारी ग्रहों की अंतर्दशा में, जिस प्रमाण में उसका स्वयं का अपना बल है, तद्नुसार वह योगज फल देता है ॥१६॥

श्री राज ज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार अर्थ करते हैं :—

" राजयोग-कारक ग्रह के साथ सम्बन्ध करने से स्वत: पापी ग्रह भी राजयोग-कारक ग्रह की महादशा के अपने अंतर में राजयोगफल करता है ।"

विद्यारत्न-पंडित माधव प्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार अर्थ करते हैं :—

" स्वयं अशुभफल देने वाले ग्रह भी राजयोग करने वाले ग्रह के सम्बन्ध से उक्त ग्रह की अंतर्दशा में राजयोग के फल को देते हैं। अर्थात् योगकारक ग्रह की जब अंतर्दशा आती है, तब पापग्रह भी उसके साथ शुभफल देते हैं ।"

पंडित रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार अर्थ करते हैं :—

" जो पापी ग्रह हैं अर्थात् तीसरे, छठें, एकादश स्थान के स्वामी हैं; वे योगकारक ग्रह के साथ सम्बन्ध करने से योगकारक ग्रह की दशा के अन्तर में शुभफल देते हैं।"

पण्डित सीताराम झा (हिन्दी टीकाकार) के मत के अनुसार :—

(स्वाभाविक वा तात्कालिक) स्वयं पापकारक ग्रह भी योगकारक ग्रह के सम्बन्ध से अपनी दशा में योगकारक की अंतर्दशा और प्रत्यन्तर दशा में योगफल देते हैं।"

अत्र युक्ति वचनम् :—

सम्बन्धे सति साधूनां खलोऽपि हितसाधकः ।
तद्वत् पापोऽपि सम्बन्धे सति योगफलप्रदः ॥

भावार्थ :—यह प्रसिद्ध है कि अत्यन्त दुष्ट लोग भी किसी प्रकार के सम्बन्ध होने से साधु के हित साधक हो ही जाते हैं। इसी प्रकार पापग्रह भी शुभ-योगकारक ग्रहों के साथ सम्बन्ध होने के कारण अपनी दशा में योगकारक की अंतर्दशा में शुभफलदायक कहे गये हैं ।

उद्योतकार कहते हैं कि :—" स्वभाव से पापी (त्रि, षट्, लाभेश) इनका योगकारकों से यदि सम्बन्ध हुआ तो योगकारकों से सम्बन्धित ग्रहों की अंतर्दशा में योगकारक फल मिलते हैं ।

सज्जन रंजनी टीकाकार का मत है कि पापी ग्रह भी यदि योगकारकों से सम्बन्ध करते हों तो उनकी दशाओं में जब योगकारक ग्रहों से सम्बन्धित ग्रह की अंतर्दशा आती है, तब योगकारकों से सम्बन्ध के कारण जो विशिष्ट अंतर्दशाधीश है उसकी अंतर्दशा में शुभफल प्राप्त होता है अथवा योगकारक की अंतर्दशा में योगज (योगकारके) फल मिलता है ।

पण्डित श्री रामयत्न जी ओझा के मतानुसार :—" पूर्व में कहे हुए अनुसार केन्द्रेश–त्रिकोणेश इनका सम्बन्ध किस प्रकार से राजयोग करता है और पापग्रह (त्रि, षट, आय् इनके स्वामी) इनका सम्बन्ध राजयोग–नाशक होता है, तो यदि पापी और योगकारकों के योगों की (जोड़, वजाबाकी करने के पश्चात्) जो शेष संख्या बचेगी उसके प्रमाण स्वरूप पापग्रहों की महादशा में जब शुभग्रह की अंतर्दशा आवेगी, तभी शुभफल मिलते हैं । इसको एक उदाहरण देकर इस प्रकार स्पष्ट किया है ।

नवमेश के शुभफल	=	+ ४	तो बाकी + ३ शुभफल हुआ
चतुर्थेश के शुभफल	=	+ २	
एकादशेश के शुभफल	=	— ३	
शेष	=	+ ३	

अब यहाँ पर एकादशेश योगकारकों के साथ सम्बन्ध करता है और वह स्वतः पापी है तो फिर भी योगकारक से सम्बन्ध करने के कारण से शुभफल अवशिष्ट रहे, इसलिये एकादशेश की दशा में जब पंचमेश की अथवा चतुर्थेश या नवमेश की अंतर्दशा आवेगी तब शुभफल मिलेगा ।

श्री विनायक शास्त्री कहते हैं कि :—योगकारक ग्रह यदि पापग्रह से सम्बन्ध करे और यदि योगकारक पापग्रह से सम्बन्ध नहीं करे तो जिस प्रकार से शोभन् फल देता है, उसी प्रकार से पाप-सम्बन्धित होने से योगकारक नहीं होता, फ़िर भी उसका योगकारकत्व सर्वथा नष्ट नहीं होता और जैसा पूर्व में कहा हुआ है कि योगकारक से सम्बन्धित मारक और पापग्रहों की दशाओं में भी राजयोग प्रकट होता है इसलिए योगकारक ग्रहों की दशाओं में उससे सम्बन्धित पापग्रह योगकारकों के कारण प्रभावित होकर फल देते हैं । अर्थात् सम्बन्धित होने पर पापग्रह निश्चित रूप से योगज फल देते हैं ।

यदि असम्बन्धित शुभग्रहों की अंतर्दशा हो तो उस दशा में प्रायः योगज-फल वह ग्रह देता है परंतु निश्चित रूप से देता ही है ऐसा नहीं। यहाँ पर वो सम्बन्ध की महिमा है। इस पर से यह परिणाम निकलता है कि यदि पापग्रह की महादशा हो तो उससे सम्बन्धित योगकारक ग्रह की अंतर्दशा में योगफल मिलता है।

स्वर्गीय श्री ह० ने० काटवे (मराठी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं—

" राजयोग कारक ग्रह के साथ संबंध होने से ग्रह स्वतः पापी भी हो तो भी उन राजयोगकारक ग्रहों की महादशाओं में अपनी-अपनी अंतर्दशाओं में वे योगजफल देते हैं।"

स्वर्गीय श्री पण्डित रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

" योगकारक ग्रहों से सम्बन्ध रखने वाले ग्रह स्वतः पापग्रह होवें तो भी अपनी दशाओं में योगकारक फल देते हैं।"

शुभ ग्रहों से सम्बन्ध रखने वाले ग्रह पापग्रह होवे तो भी वे अशुभफल नहीं देते शुभफल देते हैं। ये फल वे अपनी-अपनी महादशा अथवा अंतर्दशा में देते हैं। शुभग्रह से सम्बन्ध रखने वाले पापग्रह ने कुछ शुभफल देना और पापग्रहों से सम्बन्ध रखने वाले शुभग्रह ने कुछ अशुभफल देना, यह व्यावहारिक दृष्टि से भी सयुक्तिक है।

स्वर्गीय श्री. वि० गो० नवाथे (मराठी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

" जो स्वतः पापफल उत्पन्न करने वाले ग्रह होते हैं, वे योगकारक ग्रहों के सम्बन्ध से अपनी अंतर्दशा में राजयोग उत्पन्न करते हैं। संज्ञाध्याय में वर्णन किये अनुसार जो ग्रह पापफल उत्पन्न करने वाले होते हैं, वे यदि योगकारक (राजयोग करने वाले) ग्रहों से पूर्व में जो चार प्रकार के संबंध कहें हैं, उस प्रकार का सम्बन्ध करें तो उनकी महादशा में अथवा योगकारक ग्रहों की महा-दशा में जब इन ग्रहों की अंतर्दशा आवेगी, उस समय राजयोग होगा, ऐसा समझना चाहिए"।

श्री शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या (गुजराथी टीकाकार) के मतानुसार :—

पापग्रह होने पर भी यदि योगकारक ग्रहों के साथ किसी भी प्रकार के सम्बन्ध से युक्त हुआ हो तो वह अपनी-अपनी भुक्ति प्रमाणे योग के द्वारा उत्पन्न हुए फल देता है अर्थात् योग कारक ग्रहों की महादशा में उस योगकारक

ग्रह से किसी भी प्रकार का संबंध जुड़ा हुआ पापग्रह हो तो भी उसकी उसमें अंतर्दशा चलती हो तब वह अंतर्दशा राजयोग सरीखा उत्तमफल देने वाली होती है।

पूर्व में कहा गया है कि कौन सा ग्रह पापफल देनेवाला तथा कौन सा शुभफल देनेवाला होता है अर्थात् स्वाभाविक रीति से केन्द्रपति शुभग्रह होने पर पापग्रह गिने जाते हैं और उसी प्रमाणे पापग्रह भी केन्द्रपति हों तो शुभफल देने वाले होते हैं और वैसे ही सब त्रिकोणपति शुभफल तरीके गिने जाते हैं और वे सामान्यतः शुभफल देने वाले होते हैं। इसके सिवाय दूसरे ग्रह भी किस प्रकार से शुभाशुभ फल देने वाले होते हैं यह भी कहा गया है। इस तरह पूर्व में कहे हुए राजयोग कारक ग्रहों के साथ कोई भी पापग्रह जो पूर्व में कहा गया है वह किसी भी जात के संबंध से जुड़ा हो तब उस ग्रह की महादशा चलती हो अथवा जो योगकारक ग्रह है उसकी महादशा हो और उसमें पापग्रह की अंतर्दशा चलती हो तो उस अंतर्दशा का योग उत्तम प्रकार का राजयोग माना जाता है और उसकी दशा उत्तमफल देने वाली होती है, इसमें संशय नहीं है।

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराती टीकाकार) के विचार इस प्रकार हैं :—

ग्रह अपनी जात से पापी होते हुए भी राजयोग कारक ग्रह के साथ सम्बन्ध करने से राजयोग कारक ग्रह की महादशा में और अपनी-अपनी अंतर्दशा में राजयोग का फल देता है।

पापी राजकारक ग्रह पापी होने पर भी कारक सम्बन्ध होवे तो इसी कारण से अपनी अंतर्दशा में राजयोग का फल देता है तो राजयोग कारक ग्रह से सम्बन्ध करने वाला शुभग्रह तो अंतर्दशा में राजयोग का फल देगा इसमें क्या आश्चर्य है? 'त्तत्द्' पद योगकारक ग्रह को ही लागू करने में आवे तो वैसा करने से श्लोक ३७ का विरोध होता है, इसी कारण से त्तत्द् पापग्रह की अंतर्दशा को ही लागू किया है वही बराबर है।

स्पष्टीकरण :—इस ग्रंथ के योगाध्याय के पूर्व में जो श्लोक दिया गया है उसमें ऐसा कहा गया है कि केन्द्राधिपति-त्रिकोणाधिपति यदि स्वयं दोष युक्त (अर्थात् त्रिषडायाधीश ३-६-११ भावों के स्वामी) होने पर भी उनका योगजफल शुभ ही मिलता है। उसी प्रकार पिछले श्लोक १८ में कहा गया है कि योगकारक ग्रहों (याने केन्द्राधिप-त्रिकोणाधिप) की दशा में बहुधा राजयोग की प्राप्ति होती है और योगकारक सम्बन्ध रहित ऐसे शुभग्रहों की दशा में भी प्रायः राजयोग की प्राप्ति होती है। इसलिए अब यहाँ प्रश्न ऐसा

हो सकता था कि शुभग्रह तो बिना सम्बन्ध के भी अपनी दशा में योगज फल देते हैं। तब पापग्रह सम्बन्धी होने पर क्या वे योगफल देने में सहायक हो सकते हैं या नहीं? इसका उत्तर इस ग्रंथ के श्लोक १९ द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि योगकारक ग्रहों से सम्बन्ध करने वाला पापी ग्रह अपनी दशा में तथा योगकारी ग्रहों की अंतर्दशा में, जिस प्रमाण में उसका स्वयं का अपना बल है, तदनुसार वह योगजफल देता है।

अर्थात् इसका अभिप्राय ऐसा है कि जो त्रिषडायाधीश केन्द्रेश अथवा त्रिकोणेश नहीं हो और वह योगकारक ग्रहों से सम्बन्ध करता हो तो अपनी महादशा में जब सम्बन्धित योगकारक की अंतर्दशा आवेगी तब अपने पापत्व के बलाबल के अनुसार मिश्रफल देगा। सब टीकाकारों के मतानुसार योगकारक शुभफल होगा ऐसा लेखक का मत नहीं है। कारण इस प्रकार के अर्थ की पुष्टि इस ग्रंथ के अंतर्दशाध्याय श्लोक ३७।३८ द्वारा होती है, जिसमें कहा गया है कि :—

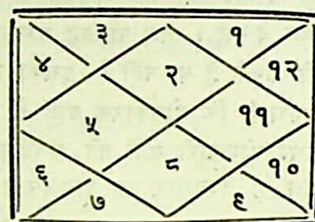
> पापा यदि दशानाथाः शुभानां तदसंयुजाम्।
> भुक्तयः पापफलदास्तत्संयुक् शुभभुक्तयः ॥ ३७ ॥
> भवन्ति मिश्रफलदा भुक्तयो योगकारिणाम्।
> अत्यंतपापफलदा भवन्ति तदसंयुजाम् ॥ ३८ ॥

अर्थ :—यदि दशा स्वामी पापग्रह हो तो उससे असम्बन्धित शुभग्रह की अंतर्दशा में अशुभफल मिलता है और सम्बन्धित शुभग्रह की अन्तर्दशा में शुभ और अशुभ ऐसे मिश्रफल प्राप्त होते हैं परन्तु असम्बन्धित पापग्रह की अंतर्दशा में अत्यंत अशुभफल प्राप्त होता है।

यहाँ पर स्पष्ट रीति से कहा है कि पापी ग्रह दशानाथ हो तो उससे सम्बन्धित पापी ग्रह की अन्तर्दशा का फल मिश्रित रूप से मिलता है। पापी ग्रह यदि केन्द्रेश या त्रिकोणेश होगा तो उससे सम्बन्ध करने वाला योगकारी ग्रह भी केन्द्रेश या त्रिकोणेश ही होगा। परन्तु पापी ग्रह केवल पापी ही होगा तो योगकारी ग्रह से उसका सम्बन्ध होने पर फल तो दोनों के बलाबल पर आश्रित रहेगा।

इस श्लोक में तत्तद् इस शब्द का उपयोग किया है वह पद यदि योगकारक ग्रह को ही लागू करने में आवे तो ऐसा करने से उपर्युक्त श्लोक ३७ का विरोध होता है। इसलिए यहाँ (श्लोक १९ में) तत्तद् पद से पापग्रह की अंतर्दशा को लगाना ही सही है।

उदाहरणार्थ :—वृषभ लग्न की कुंडली में सूर्य और शनि इ सम्बन्ध होने पर सूर्य से चन्द्रमा यदि सम्बन्धित होगा पर शनि नहीं होगा तो चन्द्रमा में सूर्य का अन्तर अथवा सूर्य में चन्द्रमा का अन्तर मिश्रफल (शुभाशुभ) देने वाला होगा। यदि चन्द्रमा सूर्य और शनि से याने दोनों से सम्वन्ध करेगा तो चन्द्रमा की महादशा में शनि की अन्तर्दशा अपेक्षाकृत सूर्य से अधिक वली और शुभफल देनेवाली होती है।



निम्न कोष्ट उन पापी ग्रहों का है जो केवल पापी हैं (केन्द्रेश-त्रिकोणेश नहीं हैं) त्रिषडायेश हैं।

लग्न	मेष	वृषभ	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मकर	कुंभ	मीन
त्रिषडायेश	बु.	चंगु	सू मं	बु	बु	चं मं	गु सू	बु	शशु चं	गु (सू)	चंगु	श सू श

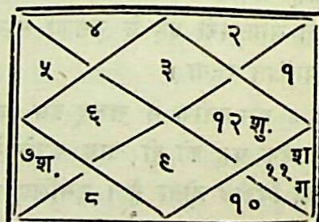
यदि ये त्रिषडायाधीश योगकारी ग्रहों से सम्वन्ध करेंगे तो अपनी दशा में योगकारी की अन्तर्दशा में मिश्रफल देंगे और यदि ये ग्रह योगकारी ग्रहों से सम्वन्ध नहीं करते (याने असम्बन्धित) हों तो अपनी दशा में तथा योगकारी ग्रह की अन्तर्दशा में अत्यन्त पापफल देते हैं।

केन्द्रत्रिकोणाधिपयोरेकत्वे योगकारिता।
अन्यत्रिकोणपतिना सम्बन्धो यदि किं परम्॥ २०॥

अर्थ :—यदि एक ही ग्रह केन्द्र और त्रिकोण दोनों का स्वामी हो तो योगकारक होता ही है उसको यदि दूसरे त्रिकोणेश से भी सम्बन्ध हो जाय तो इससे वड़ा शुभ योग क्या हो सकता है?

स्वर्गीय श्री वि॰ गो॰ नवाथे (मराठी टीकाकार) का मत इस प्रकार है :—

केन्द्राधिप अथवा त्रिकोणाधिप अकेले ही विशेष प्रकार के सम्वन्ध से राजयोग करते हैं और उनसे जव अन्य त्रिकोण का स्वामी सम्वन्ध करें तो वह उत्तम राजयोग होता है। इस कुंडली में दशमेश गुरु होकर वह नवम स्थान में होने से अकेला राजयोग करने वाला है। पर शुक्र पंचमेश होकर वह दशम स्थान में होने से उत्तम राजयोग होता है। उसी प्रकार नवम का स्वामी शनि तुला राशि में पञ्चम स्थान में (त्रिकोण में) होने के कारण वह अकेला राजयोग करनेवाला हैं परन्तु पंचम का स्वामी शुक्र यदि भाग्य भवन में (नवम में) हो तो उत्तम राजयोग होता है।



स्वर्गीय पंडित रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) के मतानुसार :—

"एक ग्रह केन्द्र और त्रिकोण का अधिपति होना योगकारक है। परन्तु एक ग्रह केन्द्र का और एक ग्रह त्रिकोण का अधिपति, ऐसे दो ग्रहों का सम्बन्ध होवे तो अधिक फल मिलता है। केन्द्र और त्रिकोण इनका सम्बन्ध योगकारक है ऐसा पूर्व में कहा हुआ है। इस प्रकार में एक ग्रह केन्द्र का और साथ ही साथ त्रिकोण का अधिपति हो तो भी वह योगकारक होता है। परन्तु एक ग्रह केन्द्र का अधिपति और दूसरा ग्रह त्रिकोणपति होकर उन दोनों ग्रहों का सम्बन्ध होता हो तो वह उससे भी अधिक योगकारक होता है।"

स्वर्गीय ह० ने० काटवे (मराठी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

केन्द्र और त्रिकोण का आधिपत्य एक ही ग्रह के पास हो तो वह योग कारक होता है। परन्तु इस योगकारक ग्रह के साथ दूसरे त्रिकोण का अधिपति यदि सम्बन्ध करे तो फिर क्या पूछना ? दूध में शक्कर पड़ने सरीखा है। यह योग सिर्फ वृषभ और तुला लग्न पर ही होता है। इन दोनों लग्नों को अकेला शनि राजयोग करने वाला है। इसके साथ दोनों लग्नों में अन्य त्रिकोणपति बुध ही होता है। इस तरह यदि यह बुध शनि के साथ युक्त हो तो अति उच्च प्रकार का फल मिल सकेगा।

पण्डित श्री रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार अर्थ करते हैं—केन्द्र त्रिकोण के स्वामियों के आपस में सम्बन्ध करने से राजयोग होता ही है और जो इसमें दूसरे त्रिकोणेश के साथ सम्बन्ध हो तो फिर क्या कहना है अर्थात् परमोत्तम राजयोग होता है ॥ २० ॥

राजज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) के मतानुसार :—

"केन्द्रपति दशमेश के साथ यदि त्रिकोणपति नवमेश या पंचमेश किसी एक का भी योग होने से राजयोग फल होता है तो यदि उनके साथ अन्य त्रिकोणपति भी सम्बन्ध करता है तो उससे अधिक और क्या कहना है अर्थात् जब नवमेश और दशमेश के योग से राजयोग होता है तब यदि इन दोनों के साथ पञ्चमेश का भी सम्बन्ध हो तो परमोत्तम राजयोग हो जाता है।"

पण्डित विद्यारत्न श्री माधव प्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

"एक केन्द्र के स्वामी का यदि एक त्रिकोण स्वामी के साथ सम्बन्ध हो

जावे, तो वे दोनों राजयोग करने वाले होते हैं। परन्तु यदि और त्रिकोण स्वामियों के साथ सम्बन्ध होवे तो फिर इससे उत्तम क्या होवेगा। अर्थात् फिर तो उत्तमोत्तम राजयोग का अवसर आ जाता है।"

सुश्लोक शत्तक के टीकाकार के मत के अनुसार :—

"यदि कोई केन्द्रेश एक त्रिकोणेश से सम्बन्ध करेगा तो योगकारक, यदि दो त्रिकोणेशों से सम्बन्ध करेगा तो अति उत्तम योगकारक अर्थात् अधिक शुभ होता है।

यदि दो केन्द्रेश, इन दोनों त्रिकोणेशों से सम्बन्ध करेंगे तो उससे भी उत्तम यदि तीन केन्द्रेश दोनों त्रिकोणेशों से सम्बन्ध करेंगे तो उससे भी उत्तम और चारों केन्द्र के स्वामी दोनों त्रिकोणेशों से सम्बन्ध करेंगे तो सर्वोत्तम शुभफल प्राप्त होगा।

श्री सज्जन रंजनी टीकाकार कहते हैं कि यदि केन्द्रेश स्वयं ही त्रिकोणेश हों तो वह राजयोगकारक होता है। जैसे वृषभ लग्न को शनि नवमेश (त्रिकोणेश) दशमेश (केन्द्रेश) होने से योगकारक होता है। कर्क लग्न में मंगल केन्द्रश और त्रिकोणेश होने से, सिंह लग्न के लिए भी मंगल त्रिकोणेश और केन्द्रेश होने से योगकारक होता है। उसी प्रकार मकर और कुंभ लग्न को वही केन्द्रेश और वही त्रिकोणेश शुक्र होने से शुभकारक होता है। इसी प्रकार शनि तुला लग्न के लिए शुभ होता है। यह योगकारक ग्रह स्वयं एक त्रिकोण का स्वामी तो होता ही है परन्तु ऐसी स्थिति में यदि वह दूसरे त्रिकोणेश से भी सम्बन्ध करे तो अति उत्तम योगकारी होता है। जैसे :—

(क) वृषभ या तुला लग्न के लिए शनि-बुध सम्बन्ध करें;
(ख) कर्क या सिंह लग्न को मंगल-गु से संबंध करें;
(ग) मकर या कुंभ लग्न को शुक्र-बुध से संबंध करें
} तो ऐसा योग उत्कृष्ट होगा।

इसी प्रकार दो केन्द्र के स्वामी यदि एक त्रिकोणेश से सम्बन्ध करें तो ऐसा सम्बन्ध एक केन्द्राधिपति के सम्बन्ध की अपेक्षा अधिक प्रबल होगा। जैसे :—

(१) मिथुन या कन्या लग्न को बुध और गुरु—ये शुक्र के साथ सम्बन्ध करें तो
(२) धनु अथवा मीन लग्न को बुध अथवा गुरु—ये मंगल से सम्बन्ध करें तो, अच्छा फल मिलेगा।"

श्री विनायक शास्त्री टीकाकार; इन्होंने इस प्रसंग में तीन बातें कही हैं :—

(१) केन्द्राधिपति यह त्रिकोणाधिपति भी हो अर्थात् एक ही ग्रह केन्द्र और त्रिकोण का स्वामी हो तो राजयोग कारक होता है ;

(२) वह शुभ है या पापी है यह प्रश्न यहाँ उद्भव नहीं होता, कारण वह ग्रह योगकारक है;

(३) लग्नेश भी केन्द्रेश और त्रिकोणेश दोनों है। इसलिए एक ही स्थान केन्द्र और त्रिकोण भी होने से वह योगकारक होता है।

श्री पण्डित रामयत्नजी ओझा के मतानुसार—भी वृषभ या तुला लग्न में शनि, कर्क या सिंह लग्न में मंगल और मकर एवं कुम्भ लग्न में शुक्र, ये यदि अन्य त्रिकोणपति से सम्बन्ध करें तो विशेष राजयोग होता है।

ज्योतिषाचार्य-तीर्थ पंडित सीताराम झा :—(हिन्दी टीकाकार) के मतानुसार :—

"यदि एक ही ग्रह केन्द्र और त्रिकोण दोनों का स्वामी हो तो भी योगकारक होता है। उसको यदि दूसरे त्रिकोणेश से भी सम्बन्ध हो जाय तो इससे बड़ा शुभ योग क्या हो सकता है ?

अत्र युक्ति वचनम् :—

विद्वान् राज्याधिकारी चेत् प्रददाति प्रजासुखम्।
धर्माधिकारिसम्बन्धो यदि तस्य विशेषतः॥

जो राज्यादि सुख का अधिकारी, विद्वान् (विद्याधिकारी) भी हो तो अवश्यमेव लोगों को सुखदायक होता है। अगर उसको धर्माधिकारी (धर्मात्मा) का भी सम्बन्ध हो जाय तो फिर कहना ही क्या है ? इसी प्रकार केन्द्रपति (राज्यादि स्थान का पति) विद्याधिकारी (विद्याभावेश) भी हो तो राजयोगकारक होना ही चाहिए। यदि उसको धर्मेश से भी सम्बन्ध हो जाय तो विशेषकर योगकारकत्व होना उचित ही कहा गया है।

उदाहरणः—जैसे इस कुण्डली में चतुर्थेश नवमेश एक ही (शुक्र) है, इससे शुक्र योगकारक हुआ। परञ्च शुक्र को पंचमेश बुध से सहवास सम्बन्ध भी है, अतः विशेष योगकारक हुआ।



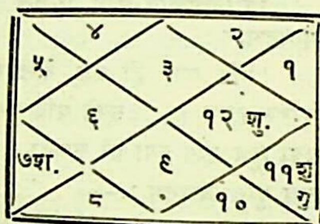
श्री शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पण्ड्या कहते हैं :—

केन्द्राधिपति और त्रिकोणाधिपति ये दोनों का एकत्व होकर वे दोनों ग्रह राजयोग करने वाले होते हैं अर्थात् उनका योग राजयोग तरीके मानने में आता है परन्तु उनके साथ दूसरा अन्य त्रिकोणपति का यदि सम्बन्ध

होता हो तो वह दूसरा उत्तम शुभ अर्थात् वह उनका योग एक उत्तम राजयोग तरीके मानने में आता है। सामान्य रीति से पूर्व में कहने में आया है कि केन्द्राधिपति और त्रिकोणाधिपति का जो कोई भी सम्बन्ध हुआ हो तो राजयोग तरीके मानने में आता है परन्तु उसमें भी यदि एकाध त्रिकोण-पति का सम्बन्ध विशेष होता हो तो वह अधिक अच्छा राजयोग माना जाता है ऐसा इस ग्रंथकार का कहना है। यह योग तथा उसका सम्बन्ध जानने के लिए कुंडली देता हूँ जिस पर से बराबर स्पष्टीकरण होगा।

मतान्तर अनुसार कुण्डली

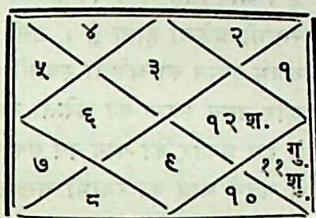
इस कुण्डली पर से स्वाभाविक रीति से समझ में आ सकेगा कि दशमस्थ मीन राशि का स्वामी गुरु होकर वह दशम स्थान के अधिपति तरीके केन्द्राधिपति है और वह केन्द्राधिपति गुरु नवम त्रिकोण स्थान में पड़ने से एक प्रकार का राजयोग तरीके माना जाता है, परन्तु शुक्र जो पंचम स्थान स्थित



तुला राशि का स्वामी होकर पंचमाधिपति याने त्रिकोणाधिपति होकर दशम स्थान में पड़ा है इसलिए उत्तम राजयोग होता है। इसी प्रमाणे नवम स्थान में कुम्भ राशि होकर उसका अधिपति शनि पञ्चम स्थान याने त्रिकोण स्थान में बैठा है और वह भी एक राजयोग माना जाता है। परन्तु त्रिकोण याने पंचम स्थान का अधिपति शुक्र भी यदि नवम स्थान में बैठे तो उत्तम राजयोग माना जाता है। और वह योग उत्तम प्रकार का फल देने वाला होता है।

उपर्युक्त कुण्डली एक अन्य भाषांतरकार के मत प्रमाणे देने में आयी है परन्तु श्लोक की तरह दृष्टिक्षेप करने से उसमें बताये हुए ग्रहों का दृष्टांत बराबर मालूम नहीं पड़ता कारण कि श्लोक में ऐसा कहने में आया है कि केन्द्राधिपति और त्रिकोणपतियों के योग का एकत्व कोई भी प्रकार के सम्बन्ध से हुआ हो तो वह उत्तमयोग माना जाता है परन्तु उसमें दूसरा त्रिकोणपति भी किसी सम्बन्ध से युक्त हुआ हो तो उत्तम योग माना जाता है" परन्तु उसमें उस प्रकार का योग तो देखने में आता नहीं है। कारण कि नवम तथा दशम स्थान के अधिपतियों का परस्पर पूर्व में बताये हुए सम्बन्धों में से कोई भी पण सम्बन्ध योग बनता है ऐसा मालूम नहीं देता परन्तु उस सम्बन्ध में जो दूसरी कुंडली नीचे दी जाती है उसमें वह सम्बन्ध होता है।

श्लोकगत राजयोग की कुण्डली



इस कुण्डली पर से स्वाभाविक रीति से समझ में आ सकेगा कि गुरु और शनि केन्द्राधिपति और त्रिकोणाधिपति याने दशम और नवम के अधिपतियों का **"अन्योन्यराशि स्थित सम्बन्ध"** इन एक-एक के साथ जुड़ा हुआ है और उसमें दूसरे त्रिकोण स्थान याने पंचम स्थान का अधिपति शुक्र **"सहावस्थान सम्बन्ध"** से जुड़ा हुआ है अर्थात् दूसरे त्रिकोण स्थान में गुरु के साथ पड़ा हुआ है याने युक्त है और वहाँ पर वह योग राजयोग गिना जाकर उत्तम प्रकार का फल देने वाला होता है।

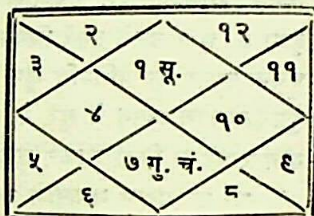
श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराती टीकाकार) के मतानुसार :—

"केन्द्र और त्रिकोण का अधिपति एक ही ग्रह हो अथवा केन्द्राधिपति एक त्रिकोण के अधिपति के साथ सम्बन्ध करता हो तो राजयोग बनता है। परन्तु इस दूसरे स्थिति में केन्द्राधिपति यदि दूसरे त्रिकोण के अधिपतियों के साथ सम्बन्ध करता हो तो श्रेष्ठतर फल देने वाला योग बनता है इसमें क्या संशय है ?

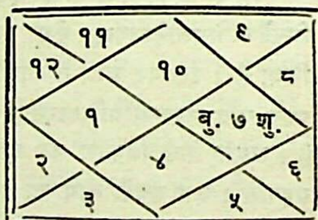
हिन्दी टीकाकारों ने **य एव केन्द्राधीशः स एव त्रिकोणाधीशः इति केन्द्र त्रिकोणाधिपयोरेकत्वम्** ऐसा एकत्व का अर्थ करके श्लोक का अर्थ संकुचित किया है। इस पर अन्य टीकाओं में **एक एव केन्द्राधिपः एक एव त्रिकोणाधिपश्च यदि सम्बन्धविशिष्टस्तदा तौ उभौ राजयोगकारकौ भवतः** ऐसा अर्थ किया है। अर्थात् केन्द्र त्रिकोण का एक पति अथवा दूसरे स्थान का अलग-अलग दो ग्रहपति। इन सबके योग का इस अर्थ में समावेश हुआ है। यदि वे दो पति अलग-अलग हों तो अन्योन्याश्रय ऐसा मुख्य संवंध बन सकता है। तात्पर्य यह है कि जब कोई भी केन्द्रेश एक त्रिकोणेश के साथ संबंध करता हो तो शुभ राजयोग बनता है, तब उस केन्द्रेश का दूसरे त्रिकोण स्वामी के साथ संबंध होता हो तो अत्यंत शुभयोग बनेगा इसमें नवीनता नहीं है।

अब पहिला प्रकार जिसमें केन्द्र और त्रिकोण का अधिपति एक ही होकर त्रिकोण के अधिपति के साथ संबंध करता है उस प्रकार का विचार करें। यह प्रकार वृषभ, तुला, कर्क, सिंह, मकर और कुंभ लग्न की कुंडली में बन सकता है। वृषभ लग्न की कुंडली में शनि नवम और दशम का स्वामी और तुला लग्न में चतुर्थ और पंचम स्थान का स्वामी शनि अकेला होता है। उसी प्रकार कर्क लग्न की कुंडली में मंगल, पंचम और दशम का स्वामी अकेला होता

है। और सिंह लग्न की कुंडली में मंगल चतुर्थ और नवम (केन्द्र त्रिकोण) का स्वामी अकेला होता है। उसी प्रकार मकर लग्न की कुंडली में शुक्र पंचम व दशम स्थान का अकेला स्वामी है और कुंभ लग्न की कुंडली में भी शुक्र चतुर्थ और नवम स्थान का अकेला स्वामी है। इस प्रकार उक्त लग्नों की कुंडलियों में इस प्रकार का योग बन सकता है। अब दाखले के तरीके मेष लग्न का कुंडली में चतुर्थ भाव का स्वामी चन्द्रमा और पंचम भाव का स्वामी सूर्य है। सूर्य लग्न में होने से और चन्द्रमा सप्तम स्थान में होने से उनकी (याने केन्द्रेश और त्रिकोणेश की) परस्पर दृष्टि होने से संबंध हुआ है याने वह केन्द्र और त्रिकोण के अधिपतियों का संबंध हुआ है। दूसरे त्रिकोण नवम स्थान का स्वामी गुरु सप्तम भाव में चतुर्थ केन्द्र का स्वामी चन्द्रमा के साथ वैठने से सहयोग संवंध करता है। इस दृष्टांत में केन्द्राधिपति का त्रिकोणाधिपति के साथ नहीं पर दोनों त्रिकोणाधिपतियों के साथ संवंध हुआ है। इसलिए उपरोक्त श्लोक २० में द्वितीय पद में कहे अनुसार अतिश्रेष्ठ फल देने वाला राजयोग बनता है ऐसा कह सकते हैं।



इस मकर लग्न की कुंडली में दशमभाव केन्द्र उसका स्वामी शुक्र जो त्रिकोण और केन्द्र दोनों का स्वामी अकेला होता है वह नवम स्थान के स्वामी बुध के साथ युक्त होने से सहयोग संवंध करता है। इस प्रकार केन्द्राधिपति और दोनों त्रिकोणपतियों के साथ संवंध हुआ है। इस प्रकार का योग श्रेष्ठ राजयोग बनता है।



हिन्दी टीका में एकत्व पद का अर्थ इस प्रकार करने में आया है कि श्रेष्ठ राजयोग फल देने वाला सिर्फ शनि, मंगल और शुक्र इतने ही ग्रह हैं कारण कि ये तीनों ग्रह त्रिकोण और केन्द्र के स्वामी एक ही साथ बन सकते हैं। दूसरे ग्रह एक साथ केन्द्र और त्रिकोण के स्वामी नहीं वन सकते। इस प्रकार ग्रह के दो वर्ग बनाकर फल कथन में अधिक अथवा ओछापण वताना बरावर नहीं है। उसी प्रकार उनको दूसरे कोई ग्रंथ का प्रमाण नहीं है। इस तरह अमुक प्रकार के ग्रह को प्राधान्यता देना यह अप्रयोजित और अयोग्य है। श्लोक की रचना प्रमाणे उसका व्यापक अर्थ स्पष्ट है। इस श्लोक का तात्पर्य कि किसी भी केन्द्र के अधिपति का एक त्रिकोण के अधिपति के साथ संवंध शुभ-

फलदायक होता है परन्तु उस केन्द्रपति का दो त्रिकोणपति के साथ संबंध होता हो तो वह श्रेष्ठ फल देने वाला होता है यह निःसंदेह है।

स्पष्टीकरण :—

यहाँ पर एक शंका उपस्थित होना स्वाभाविक है कि मिथुन लग्न की कुंडली में बुध यदि शुक्र के साथ होकर अन्य त्रिकोणपति से याने शनि से सम्बन्ध करे तो वह शनि अष्टमेश भी होता है; कर्क लग्न की कुंडली में गुरु त्रिकोण स्वामी होने पर षष्ठेश भी होता है, मकर लग्न की कुण्डली में नवमेश बुध षष्ठेश भी है; कुंभ लग्न की कुंडली में बुध पंचमेश और अष्टमेश है तो ऐसी स्थिति में त्रिकोण के अधिपति को षष्ठेश और अष्टमेश का दोष होने पर भी अन्य त्रिकोणपति से संबन्ध वांछनीय होगा क्या ? इसका समाधान ऐसा है कि आचार्य पाराशर ने अन्य त्रिकोणाधिपति को इतना शुभ माना हुआ है कि षष्ठेश अथवा अष्टमेश इनका दोष होने पर भी त्रिकोण और केन्द्र का स्वामी एक ही हो और वह यदि अन्य दोष युक्त त्रिकोणपति से सम्बन्ध करे फिर भी वह एक प्रबल राजयोग होता है।

कोई भी ग्रह एक ही केन्द्र तथा त्रिकोण इन दोनों का स्वामी हो तो वह स्वयं योगकारक होता है और वह यदि दूसरे त्रिकोणाधिपति से सम्बन्ध करेगा तो इससे अच्छा और कौन-सा सम्बन्ध हो सकता है ?

अकेला केन्द्र-त्रिकोणपति (अर्थात् एक ही ग्रह दोनों स्थानों का स्वामी हो) यदि किसी केन्द्राधिपति से सम्बन्ध करेगा तो वह योग उत्तम होगा परंतु सर्वोत्कृष्ट नहीं होगा; यदि दूसरे त्रिकोणाधिपति से सम्बन्ध करेगा तब वह योग सर्वोत्कृष्ट होगा।

उदाहरणार्थ :—वृषभ लग्न की कुंडली में नवमेश-दशमेश शनि स्वयं योगकारक है वह यदि दूसरे त्रिकोणपति बुध से सम्बन्ध करेगा तो बुध + शनि का सम्बन्ध वृषभ लग्न की कुंडली को सर्वोत्कृष्ट योग होगा। इसी प्रकार कर्क लग्न की कुंडली में पंचमेश-दशमेश मंगल स्वयं योगकारक है; यह यदि चन्द्रमा से अथवा नवमेश गुरु से सम्बन्ध करेगा तो ऐसा योग कर्क लग्न की कुंडली को सर्वोत्कृष्ट होगा।

यहाँ पर मंगल-गुरु के योग की अपेक्षा मंगल-चन्द्रमा का योग अधिक बलवान होगा, कारण कि यहाँ पर लग्नेश चन्द्रमा को कोई भी पापत्व का दोष नहीं होता। वृषभ लग्न की कुंडली में शनि का यदि सूर्य से संबंध होगा तो ऐसा योग बुध-शनि के योग की अपेक्षा कम शुभ होगा। वृषभ लग्न की कुंडली

में शनि + बुध का योग जो भी सर्वोत्कृष्ट होता है फिर भी इस योग में बुध मारकेश के दोष से युक्त है ।

"आरम्भो राजयोगस्य भवेन्मारकभुक्तिपु ।
प्रथयंति तमारभ्य प्रायशो योगकारिणः ॥"

इस श्लोक के अनुसार शनि की महादशा में उससे सम्बन्धित बुध की अंतर्दशा में अत्यन्त शुभफल की प्राप्ति आरंभ में होकर तदनन्तर मारक-फलों की प्राप्ति भी होगी ।

इसी प्रकार तुला लग्न की कुंडली में चतुर्थेश-पंचमेश स्वयं योगकारक है और उसका नवमेश बुध से सम्बन्ध सर्वोत्कृष्ट फल देगा। सिंह लग्न की कुंडली में चतुर्थेश-नवमेश मंगल स्वयं योगकारी है और उसका गुरु त्रिकोणेश से सम्बन्ध भी सर्वोत्कृष्ट योग होगा । मकर लग्न की कुंडली में और कुंभ लग्न की कुंडली में शुक्र स्वयं योगकारक है और उसका बुध (क्रमशः नवमेश-पंचमेश) त्रिकोणेश से सम्बन्ध सर्वोत्कृष्ट होगा ।

एक ही ग्रह जो अकेला स्वयं योगकारी (योगकारक) ग्रह है ।

लग्न	योगकारी	अन्य त्रिकोणपति	त्रिकोणस्थ राहु–केतु
मेष लग्न	×		,,
वृषभ लग्न	शनि	बुध, शुक्र	,,
मिथुन लग्न	बुध	शुक्र [शनि]	,,
कर्क लग्न	मंगल	गुरु, चन्द्र	,,
सिंह लग्न	मंगल	सूर्य [गुरु]	,,
कन्या लग्न	बुध	शनि, शुक्र	,,
तुला लग्न	शनि	शुक्र, बुध	,,
वृश्चिक लग्न	×		,,
धनु लग्न	गुरु	सूर्य, मंगल	,,
मकर लग्न	शुक्र	बुध, शनि	,,
कुम्भ लग्न	शुक्र	[बुध], शनि	,,
मीन लग्न	गुरु	चन्द्र, मंगल	,,

इस कोष्टक में जो ग्रह चौखट [] में किये हैं वे अष्टमेश भी हैं । यदि अष्टमेश अष्टमस्थ नहीं हो तो उसका योगकारी ग्रहों से संबंध सर्वोत्कृष्ट योग नहीं होगा ।

कन्या लग्न के लिये शुक्र मारकेश भी है ।

इस कोष्टक में दिये हुए ग्रह स्वयं योगकारी हैं । इनका संबंध दूसरे किसी त्रिकोणाधिपति से हुआ तो वह उस कुंडली का सर्वोत्कृष्ट योग होगा ।

इस सम्बन्ध में गुजराती टीकाकार श्री मयाराम उत्तमराम ठक्कर के मत भी विचारार्थ लेना उचित होगा।

यदि केन्द्रे त्रिकोणे वा निवसेतां तमोग्रहौ।
नाथेनान्यतरेणापि सम्बन्धाद्योगकारकौ ॥२१॥

अर्थ :—राहु अथवा केतु यदि केन्द्र अथवा त्रिकोण में बैठे हों और उनका किसी केन्द्र अथवा त्रिकोणपति से सम्बन्ध हो तो वह योगकारक होता है ॥२१॥

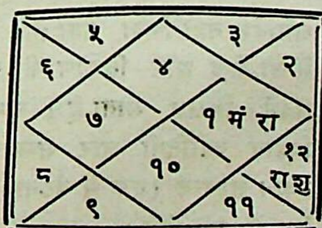
शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पण्ड्या के विचार इस प्रकार हैं:—

"यदि केन्द्र स्थान में अथवा त्रिकोण स्थान में राहु और केतु बैठे हों और उनका उस केन्द्र अथवा त्रिकोण के अधिपतियों में से किसी के साथ सम्बन्ध होता हो तो वह राजयोगकारक मानने में आता है—उनका राजयोग मान्य है।

इस पर से ऐसा समझ में आता है कि यदि राहु अथवा केतु केन्द्र स्थान में पड़ा हुआ हो और उनका जो किसी त्रिकोणाधिपति के साथ सम्बन्ध हुआ हो अथवा वे दोनों राहु-केतु त्रिकोण स्थान में हों और उन दोनों का सम्बन्ध किसी केन्द्राधिपति के साथ हो तो ऐसा योग राजयोग माना जाता है। अर्थात् स्वाभाविक केन्द्रस्थान तथा त्रिकोण स्थान उत्तम स्थान माने गये हैं और उनमें राहु और केतु भी उत्तम माने गये हैं (पंचम स्थान में राहु संतति के लिए अनिष्टकारक भी मानने में आता है तो फिर भी किसी केन्द्राधिपति अथवा त्रिकोणाधिपति के साथ हुआ योग उत्तम प्रकार का माना गया है) और उनके साथ केन्द्र अथवा त्रिकोण के अधिपतियों का सम्बन्ध होता हो तो वह सहावस्थान सम्बन्ध अथवा किसी भी प्रकार का दृष्टि सम्बन्ध होता है तो ऐसे सम्बन्ध को उत्तम योग माना गया है :—

राहु के राजयोग की कुण्डली :—

उदाहरणार्थ :—इस कुण्डली में राहु केन्द्र याने दशम स्थान में पड़ा है और उसके साथ पंचम-त्रिकोण स्थान के वृश्चिक राशि का स्वामी मंगल है। इस प्रकार राहु का त्रिकोणाधिपति मंगल के साथ सहावस्थान स्थित सम्बन्ध हुआ है। इसलिए दशम केन्द्र स्थान में राहु के साथ त्रिकोणपति का योग होने से एक उत्तम प्रकार का योग



होकर राजयोग का फल देने वाला होता है। इसी प्रकार नवम भाग्य भवन में

याने त्रिकोण स्थान में राहु बैठा है और उसके साथ चतुर्थ केन्द्र में तुला राशि का स्वामी शुक्र है और वह सहावस्थान स्थित सम्बन्ध होता है। इस प्रकार त्रिकोण स्थान में राहु के साथ केन्द्राधिपति शुक्र होने से यह भी एक राजयोग तरीके मानने में आता है और वहाँ पर उसका योग एक उत्तम प्रकार का फल देने वाला होता है। यहाँ पर राहु की दोनों योगों की दो कुण्डली समझना चाहिए।

अन्यत्र कई एक जगह राहु का चतुर्थ तथा दशम स्थान में याने केन्द्र स्थानों में तथा पंचम त्रिकोण स्थान में रहने का फल अनिष्टकारक कहने में आया है। जैसे :—

चतुर्थे दशमे राहुर्लग्ने क्रूरस्तथैवच।
निःस्वयोगं विजानीयात् स्वपक्षस्य भवेन्नरः॥

फिर भी इस ग्रंथकार के मत में केन्द्र अथवा त्रिकोण स्थान में बैठने वाला पाप ग्रह उत्तम फल देने वाला होता है इसलिए स्वाभाविक रीति से राहु-केतु का फल केन्द्र अथवा त्रिकोण में बैठने के कारण उत्तम मानने में आया है और उसमें भी आपने जो ऊपर देखा है उसमें कोई केन्द्रपति अथवा त्रिकोणपति योग किसी भी प्रकार के सम्बन्ध से बना हुआ हो तो वह अधिक उत्तम याने राजयोग होता है इसमें आश्चर्य कारक नहीं है।

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराती टीकाकार) के मतानुसार :— "राहु और केतु जिस केन्द्र में रहकर त्रिकोण के अधिपति के साथ सम्बन्ध करता हो अथवा त्रिकोण में बैठकर केन्द्र के अधिपति के साथ सम्बन्ध करता हो राजयोग कारक होता है। उपरोक्त श्लोक में अन्यतरेण अपि इसका अर्थ ऐसा भी हो सकता है कि राहु और केतु केन्द्र में रहकर केन्द्र के अधिपति के साथ सम्बन्ध करे, अथवा त्रिकोण में रहकर त्रिकोण के अधिपति के साथ सम्बन्ध करे तो भी राजयोग बनता है। इस प्रकार के योग का श्लोक के अर्थ में समावेश नहीं किया गया है। उसका कारण इतना ही है कि कारकाध्याय में जो केन्द्र और त्रिकोण के सम्बन्ध को ही योग कहा गया है, उसको संदर्भ विरोध आता है। सम्बन्ध माना गया है। लेकिन अधिकांश विद्वान ज्योतिषी चार सम्बन्धों में से एक ही सम्बन्ध अर्थात् सहावस्थान सम्बन्ध (एक में बैठना) मानते हैं। अन्य तीन प्रकार के सम्बन्ध राहु केतु के नहीं होते।

विद्यारत्न पंडित माधवप्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) के मतानुसार:—

जब राहु और केतु केन्द्र में वा त्रिकोण में रहें तब केन्द्र वा त्रिकोण स्वामी के साथ सम्बन्ध होने से, दोनों राजयोग करनेवाले होते हैं। इन दोनों का सम्बन्ध इस प्रकार होता है कि जब दोनों केंन्द्र में रहते हैं तब त्रिकोण के साथ सम्बन्ध होता है और जब त्रिकोण में रहते हैं तब केन्द्र के स्वामी के साथ सम्बन्ध होता है।

राज ज्योतिषी चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार):—के मतानुसार तमोग्रह राहु या केतु केन्द्र या त्रिकोण में बैठे हों और निज स्वामी से अर्थात् केन्द्र स्थित हों तो केन्द्रपति से वा त्रिकोण में स्थित हों तो त्रिकोणपति से सम्बन्धी हों या त्रिकोण में स्थित हो केन्द्रपति से, वा केन्द्र स्थित होकर त्रिकोणपति से सम्बन्धित होते हैं तभी राजयोगकारक होते हैं, अन्यथा नहीं।

पंडित रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) के मतानुसार :—

राहु, केतु यदि केन्द्र में बैठे हों और त्रिकोणेश से सम्बन्ध करते हों और त्रिकोण में बैठकर केन्द्रेश से सम्बन्ध करते हों तो राजयोग होता है।

ज्योतिषाचार्य-तीर्थ पंडित सीताराम झा (हिन्दी टीकाकार) के मतानुसार :—

यदि तमोग्रह (राहु वा केतु) केन्द्र में हों और त्रिकोणेश से सम्बन्ध हो, अथवा त्रिकोण में हों और केन्द्रेश से सम्बन्ध हो तो शुभ योगकारक होता है, अत्र युक्तिवचनम् :—

अन्धा यथाऽत्र संसारे बलबुद्धियुता अपि।
तादृङ् मार्गेण गच्छन्ति यादृङ् मार्गप्रदर्शकः॥

दूसरा कारण यह भी है कि संज्ञा प्रकरण के १३ वें श्लोक में कहे अनुसार राहु-केतु का राशि स्वामित्व जहाँ है परंतु स्थान बल है इसलिये इनको केन्द्र या त्रिकोण पड़ने से वहाँ स्थान बल मिलता है। परंतु विशेषता तो तब होती है जब वह अन्य स्थान के स्वामी के साथ संबंध करता हो इसलिये इस श्लोक में उस बाबत निर्देश है।

श्री उद्योतकार का कहना है कि राहु अथवा केतु यदि त्रिकोण में बैठे हों और केन्द्र के स्वामी से संबंध करते हों अथवा केन्द्र में बैठे हों और त्रिकोणेश से संबंध करते हों तब वे योगकारक होते हैं।

सज्जन रंजनी टीकाकार का विशेष कथन इस प्रकार है कि यदि राहु अथवा केतु इन दोनों में एक केन्द्र में हो तब दूसरा भी केन्द्र में ही होगा। परंतु इन दोनों में से एक यदि किसी त्रिकोण में बैठा हो तो दूसरा त्रिकोण स्थान में नहीं होगा इस कारण से वह केन्द्र में बैठकर त्रिकोणेश के साथ संबंध

करे तो विशेष योगकारक और त्रिकोण में बैठकर केन्द्रेश के साथ संबंध करे तो न्यून योगकारक होगा।

श्री विनायक शास्त्री (वैताल शास्त्री) का कहना है कि "तमोग्रहों को (राहु केतु को) भाव साहचर्य के कारण से ही भावेश-साहचर्य का पूर्ण फल प्राप्त होता है इसलिये इन्हें जब ये केन्द्र में हों तो उस केन्द्र के अनुसार और त्रिकोण में हों तो उस त्रिकोण के अनुसार फल प्राप्त होगा। यदि राहु केन्द्र में बैठकर त्रिकोण के स्वामी से अथवा त्रिकोण में बैठकर केन्द्र के स्वामी से संबंध करेगा तब वह योगकारक होता है। जो फल राहु के विषय में कहा है वही केतु के विषय में भी समझना चाहिए।

सुश्लोक शतक नामक ग्रंथ में राहु अथवा केतु जिस राशि में बैठा हो उससे सप्तमस्थित ग्रह से भी।

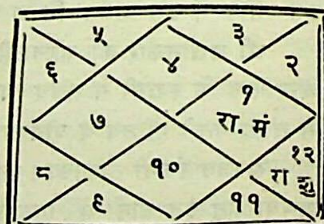
अन्धग्रहौ भगोलेऽपि तथा यादृग्ग्रहान्वितौ।
यादृक्स्थानगतौ वाऽपि स्यातां तादृक्फलप्रदौ॥

संसार में बल और बुद्धि रहने पर भी अन्धे लोग मार्ग बतलाने वाले के अनुसार ही सुमार्ग या कोई मार्ग पर चलते हैं। उसी प्रकार तम (अंधकार) रूप, राहु-केतु भी जिस स्थान में जैसे ग्रह के साथ हो जाते हैं उसी प्रकार का फल देते हैं तो उचित ही है।

स्वर्गीय श्री वि० गो० नवाथे (मराठी टीकाकार) के मतानुसार :—

जब राहु और केतु ये ग्रह त्रिकोण में अथवा केन्द्र में हों और उनसे अन्य केन्द्रों के स्वामी अथवा त्रिकोण के स्वामी सम्बन्ध करते हों तब वे राजयोग करने वाले होते हैं अर्थात् राहु या केतु त्रिकोण में हों तब यदि केन्द्र स्वामी उनसे संबंध करे अथवा राहु-केतु केन्द्र में होकर त्रिकोण का स्वामी उनसे संबंध करे तो राजयोग होता है।

उदाहरण :—इस कुण्डली में दशम स्थान में राहु होकर उसके साथ पंचम स्थान (त्रिकोण स्थान) का स्वामी मंगल है इसलिये यह राजयोग हुआ है। उसी प्रकार राहु त्रिकोण में (नवम स्थान में) होकर उसके साथ चतुर्थ (केन्द्र) स्थान का स्वामी शुक्र है। इसलिये यह भी राजयोग हुआ है।



स्वर्गीय पंडित रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) के मतानुसार :—

केन्द्र अथवा त्रिकोण में राहु या केतु हों और वे केन्द्र अथवा त्रिकोण इनमें से किसी एक स्थान के अधिपति से सम्बन्ध करते हों तो वे योगकारक होते हैं।

केन्द्र और त्रिकोण ये स्थान महत्त्व के हैं अर्थात् राहु और केतु इन छाया ग्रहों को भी केन्द्र या त्रिकोण इनमें से किसी एक स्थान में होने से महत्त्व प्राप्त होता है, परंतु यह महत्त्व तो तब प्राप्त होगा जब उनसे किसी केन्द्राधिपति या त्रिकोणाधिपति का संबंध होवे और तब वे राजयोग के कारण बनते हैं। केन्द्राधिपति अथवा त्रिकोणाधिपति इनका ऐसा संबंध, राहु-केतु जिस स्थान में बैठे हों उस स्थान में हो अथवा उस स्थान पर दृष्टि होवे तब हो। जातक शास्त्र में राजयोग शब्द का अर्थ "किसी भी बात में विशेष अधिकार उच्च दर्जा, सिद्धि अथवा श्रेष्ठ फल" ऐसा मानते हैं।

स्पष्टीकरण :—

ग्रह जिस भाव में बैठा हुआ होता है उस भाव का आश्रय लेकर वह फल देता है। राहु और केतु जिस भाव में हों उसी भाव के अनुसार वे फल देते हैं। दूसरी बात यह है कि तमोग्रहों को छाया ग्रह भी कहते हैं ये प्रकाशमान ग्रह नहीं हैं। ये चन्द्रमा के मार्ग में के सम्पात (संयोग) प्रदेश रूप, बिम्वहीन हैं, इसलिये जिस समय जिस राशि में अथवा जिस भावेश के बिम्ब के स्वभावानुसार शुभ अथवा अशुभ फलदायक कहे गये हैं। अर्थात् ये जिस ग्रह के साथ संबंध करें उसी ग्रह के अनुसार फल देते हैं। संबंध किसे कहते हैं? इस विषय में संबंध चार प्रकार के हैं ऐसा पूर्व में कहा गया है और उनकी व्याख्या भी यथा-स्थान की गयी है। सुश्लोकशतककार ने सिर्फ दो प्रकार के संबंध कहे हैं। (१) जिस ग्रह के साथ राहु और केतु हों, (२) जिस ग्रह से सप्तम स्थान में राहु और केतु हों। यहाँ पर ऐसा उल्लेख करना आवश्यक है कि पाराशरी के अन्य व्याख्याकारों ने राहु केतु का सहावस्थान (अन्य ग्रह के साथ बैठना) संबंध तो माना है परंतु राहु केतु का दृष्टिसंबंध (इन पर किसी ग्रह की दृष्टि हो अथवा इनकी दृष्टि अन्य किसी ग्रह पर हो) माना नहीं है। मूल पाराशरी में ऐसे शब्द आये हुए हैं कि "यद्-यद्भावगतौ" इसका अर्थ उद्योतकार करते हैं कि "जिस ग्रह का जो-जो भाव"—अर्थात् वह ग्रह जो भी कुछ फल देगा वही फल उस भाव में बैठे हुए राहु केतु देंगे। इसका अर्थ तो ऐसा हुआ कि कल्पना करो कि मिथुन राशि में राहु हो तो उसका स्वामी बुध मिथुन और कन्या इन दो राशियों

का स्वामी होता है । इसलिये राहु मिथुन राशि में अथवा कन्या राशि में हो उनका स्वामी जो बुध है उसी के अनुसार राहु फल देगा । प्रायः ग्रह दो राशियों का स्वामी होता है । मिथुन और कन्या का स्वामी बुध होने से राहु चाहे तो मिथुन राशि में बैठा हो या कन्या राशि में बैठा हो, फिर भी उन राशियों का स्वामी जो बुध है उस बुध के अनुसार ही राहु भी द्विस्थानाधिपतित्व--मिथुन और कन्या राशि का स्वामी बुध है उसी के अनुसार फल देगा । इस प्रकार तो कोई भी ग्रह एक राशि में बैठा हुआ हो तो भी दोनों राशियों का (और वे दोनों राशि लग्न से जिस भाव में हों तो उस भाव के) आधिपत्य का फल राहु को मिलेगा । परंतु टीकाकार इस प्रकार का अर्थ नहीं करते । उनके मतानुसार तो 'यत्-यत् भाव' इसका अर्थ तो 'जिस–जिस भाव में' राहु या केतु हो उसी भाव का फल राहु या केतु देंगे ।

उदाहरणार्थ :—तुला लग्न की कुंडली में नवम स्थान में मिथुन राशि में राहु बैठा हो तो वह राहु नवम स्थान का फल देगा । मिथुन राशि का स्वामी बुध इसका कन्या राशि के आधिपत्य का राहु से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । इसी प्रकार का सज्जन रंजनी टीकाकार का मत भी है ।

श्री विनायक शास्त्री ने भी यहाँ इसी प्रकार का अर्थ किया है कि जिस-जिस भाव में राहु-केतु होंगे उस-उस भाव का अथवा जिस भावेश के साथ होंगे उनके फल राहु-केतु प्रबल रूप से देते हैं । जिस-जिस भावेश के साथ होंगे ऐसा अर्थ प्रायः सभी मानते हैं इसमें मतभेद नहीं है । श्री विनायक शास्त्री ऐसा भी कहते हैं कि राहु केतु ये पापग्रह हैं इसलिये तृतीय, षष्ठ अथवा एकादश स्थानों में बैठने से पापी ग्रह होंगे परंतु अन्य ज्योतिष लोगों के अनुसार तो पापग्रह यदि तृतीय, षष्ठ, एकादश स्थान में बैठे हों तो उत्तम है । शास्त्रीजी कहते हैं कि यदि राहु अथवा केतु त्रिकोण में बैठे हों तो शुभ व्यय अथवा द्वितीय स्थान में हों तो सम, अष्टम स्थान में हों तो अति पापी, लग्न में हों तो शुभ होते हैं । जिस स्थान में राहु या केतु बैठे हों उसके अनुरूप फल तो देते ही हैं । जिस भावेश के साथ हों उसके अनुसार भी शुभ अथवा अशुभ फल राहु केतु देते हैं । योगकारक ग्रह के साथ हों तो कारक-फल, मारकेश के साथ हों तो मारक फल देते हैं । जिस भावेश के साथ होंगे उस ग्रह के गुण, प्रकृति, स्वभाव, भावेश, जन्य फलों को धारण करते हैं ।

राहु अथवा केतु केन्द्र में होकर त्रिकोणेश के साथ सम्बन्ध करें अथवा त्रिकोण में बैठकर केन्द्रेश के साथ सम्बन्ध करें अथवा त्रिकोण में बैठकर त्रिकोणेश के साथ सम्बन्ध करें तो ऐसा सम्बन्ध योगकारक होगा। राहु केतु के विषय सम्बन्ध में इस ग्रंथ में के इस श्लोक में—

"यद्यद्भावगतौ वापि यद्यद् भावेशसंयुतौ ।
तत्तत्फलानि प्रबलौ प्रदिशेतां तमोग्रहौ" ॥

ऐसा कहा हुआ है, और इस वारे में यथा-स्थान स्पष्टीकरण भी किया गया है। उस श्लोक में राहु अथवा केतु के फलदातृत्व प्रसंग में दूसरे भावेश के साथ बैठने से उसके अनुसार जो गुणों में परिवर्तन होता है वह सूचित किया गया है और इस उपरोक्त श्लोक में योगकारक प्रसंग में 'सम्बन्ध' शब्द का प्रयोग हुआ है। संयुक्त शब्द का नहीं। इस ग्रंथ के अनुसार सम्बन्ध तीन प्रकार के होते हैं और यहाँ केवल एक ही स्थान-सम्बन्ध है। कारण, राहु-केतु को अपनी खुद की ऐसी कोई भी राशि नहीं है इसलिए उनके लिए स्थान-सम्बन्ध के अतिरिक्त अन्य प्रकार का सम्बन्ध इस सम्बन्ध श्रेणी में नहीं आ सकता। इस दृष्टि से राहु-केतु के लिए केवल स्थान-सम्बन्ध ही सम्बन्ध प्रसंग में मान्य है।

उपर्युक्त श्लोक का अर्थ ऐसा समझना चाहिए कि राहु और केतु यदि केन्द्र में किसी त्रिकोणेश के साथ अथवा त्रिकोण में किसी केन्द्रेश के साथ अथवा त्रिकोण में त्रिकोणेश के साथ बैठे हों तब वे योगकारी होते हैं। ये यदि केन्द्र में केन्द्रेश के साथ बैठे हों तो मिश्रित फल प्राप्त होगा। और ऐसी परिस्थिति में यदि केन्द्रेश पापी हो तो वह यहाँ योगकारक नहीं होगा। केन्द्रस्थ राहु के ऊपर यदि त्रिकोणेश की सप्तम दृष्टि होगी फिर भी उसे कारकत्व प्राप्त होने में संदेह है। जब तक कि कोई ग्रह अपने दृष्ट ग्रह की राशि में बैठा हुआ न हो तो परस्पर दृष्टि सम्बन्ध इस ग्रंथ में मान्य नहीं किया है। यहाँ पर राहु या केतु को अपनी खुद की कोई राशि न होने से उससे सप्तम परस्पर दृष्ट योग इस ग्रंथ का कारक-सम्बन्ध योग नहीं है।

धर्मकर्माधिनेतारौ रन्ध्रलाभाधिपौ यदि ।
तयोः सम्बन्धमात्रेण न योगं लभते नरः ॥ २२ ॥

अर्थ :—धर्म और कर्म के नेता अर्थात् नवमेश और दशमेश यदि क्रमशः अष्टमेश और लाभेश हों तो इनका सम्बन्ध योग–कारक नहीं बन सकता।

शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या (गुजराती टीकाकार) कहते हैं कि:—

धर्म और कर्म के स्थान के अर्थात् नवम और दशम स्थान के अधिपति

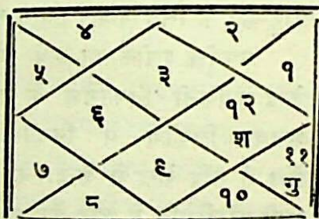
यदि अष्टम और एकादश स्थान के अधिपति हों अथवा वे उनके साथ सम्बन्ध करते हों तो भी वह राजयोग नहीं होता।

पूर्व में श्लोक १६ में कहने में आया है कि—

"निवसेतां व्यत्ययेन तावुभौ धर्मकर्मणोः।
एकत्रान्यतरो वापि वसेच्चेद्योगकारकौ॥"

याने भाग्य भवन और दशम भवन के अधिपति परस्पर एक दूसरे के स्थान में हों अथवा वे एकत्र एक साथ हों तो वह राजयोग होता है, परंतु इस श्लोक में उनका बाधक योग बताने में आया है कि पूर्व में कहे अनुसार उनका योग हुआ हो परन्तु यदि वे अष्टम या एकादश स्थान के अधिपति हों तो अथवा उन स्थानों के अधिपतियों से सम्बन्ध करते हों तो उनका ऐसा सम्बन्ध राजयोग मानने में नहीं आता, उदाहरणार्थ श्लोक १६ में कहे अनुसार राजयोग की कुण्डली देखिये :—

इस कुंडली में श्लोक १६ में बताये हुए प्रमाणे नवम तथा दशम भवन के अधिपतियों का परस्पर एक दूसरे के स्थानों में रहने से सम्बन्ध हुआ है। अर्थात् नवम स्थान का स्वामी शनि दशम स्थान में और दशम स्थान का स्वामी गुरु नवम स्थान में है, यह परस्पर "अन्योन्य राशि स्थित संबंध" हुआ है। यह योग उत्तम माना गया है। परंतु यहाँ पर धर्म भवन का अधिपति शनि अष्टम स्थान का भी अधिपति याने मकर राशि का स्वामी भी है। इसलिये यह राजयोग माना नहीं जा सकता, इसी प्रकार मेष लग्न है, तो उस लग्न में दशम स्थान का स्वामी शनि एकादश स्थान का स्वामी भी होता है। शनि यदि दशम स्थान में हो तो भी वह एकादश का स्वामी होने से यहाँ पर राजयोग नहीं बनता और ऐसा योग उत्तम फल नहीं देता।



इस उपरोक्त श्लोक का अर्थ कई एक ऐसा करते हैं कि "धर्म और कर्म स्थान के स्वामी याने नवम व दशम स्थान के अधिपति यदि अष्टम अथवा एकादश स्थानों के अधिपतियों के साथ सम्बन्ध करें तो वह योगकारक नहीं होता।" इस प्रकार का अर्थ यथार्थ नहीं हो सकता, कारण कि मूल श्लोक में ऐसा जो लिखा है कि :—

"रन्ध्रलाभाधिपौ यदि। तयोः संबन्धमात्रेण न योगं लभते नरः"

यदि धर्म और कर्म के अधिपति अष्टम और एकादश स्थान के अधिपति हों अथवा उनका परस्पर सम्बन्ध होता हो तो वह राजयोग नहीं होता।

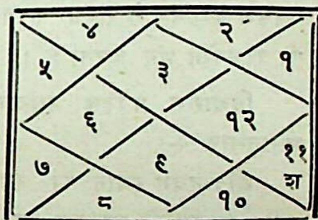
स्वर्गीय रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) के मतानुसार:—

धर्म और कर्म स्थान के अधिपतियों का मृत्यु व लाभ इन स्थानों के अधिपतियों से सम्बन्ध हो तो वे योगकारक नहीं होते। धर्मेश और कर्मेश इनका सम्बन्ध राजयोग करता है ऐसा पूर्व में कहा जा चुका है, परन्तु यदि अष्टम या एकादश स्थानों के स्वामियों का उनसे सम्बन्ध होता हो तो वह राजयोग नहीं होता। (पूर्व में अष्टम स्थानाधिपति का फल अनिष्ट होता है ऐसा कहा जा चुका है पर इस श्लोक में एकादश स्थान के स्वामी को भी अनिष्ट फल का कारकत्व दिया है)।

स्वर्गीय श्री वि. गो. नवाथे (मराठी टीकाकार) के मतानुसार :—

धर्म और कर्म स्थानों के स्वामी, ये यदि अष्टम और एकादश स्थान के स्वामी हों अथवा उनसे सम्बन्ध करें तो राजयोग नहीं होता।

इस कुण्डली में शनि नवम स्थान और अष्टम स्थान का स्वामी होने से राजयोग नहीं होता है वैसे ही यदि मेष लग्न होकर शनि दशम स्थान में हो तो वह एकादश स्थान का स्वामी होने के कारण राजयोग नहीं होता।



एक ही ग्रह नजदीक-नजदीक स्थानों का अधिपति ऐसा सिर्फ शनि ही होता है, इसलिए मेष और मिथुन लग्नों की कुण्डलियों में इस प्रकार का योग होना सम्भव है।

स्वर्गीय श्री ह. ने. काटवे (मराठी टीकाकार) के मतानुसार :—

नवमेश और दशमेश इनसे अष्टमेश अथवा लाभेश दूसरा ग्रह हो और उससे इनका सम्बन्ध होता हो तो वह राजयोग भंग होता है। दूसरा अर्थ टीकाकारों ने इस प्रकार दिया है:—"नवमेश और दशमेश ये ग्रह अष्टमेश और लाभेश हों तो राजयोग भंग होता है," यही अर्थ यदि ग्रहण किया जावे तो **"तयोः सम्बन्धमात्रेण"** इसका अर्थ नहीं लगता, नवमेश को अष्टमेश होने के लिए मिथुन लग्न होना चाहिए, कारण मिथुन लग्न का नवमेश और अष्टमेश शनि ही होता है। उसी प्रकार दशमेश को एकादशेश होने के लिए मेष लग्न होना चाहिए, कारण मेष लग्न को शनि अकेला दशमेश और एकादशेश होता है, यह अन्य ग्रहों से सम्बन्ध न करके अपने स्वयं से सम्बन्ध

करके राजयोग भंग करता है तो स्वयं से स्वयं सम्बन्ध किस प्रकार से कर सकता है यह एक गूढ़ है। यह एक इक्कीस शतक का बीसवाँ आश्चर्य है। इसलिये मैंने (श्री काटवेने) जो अर्थ किया है उसे वैसा ही ग्राह्य करना पड़ेगा, कारण आगे चलकर ग्रंथकार ने खुद मेष व मिथुन इन लग्नों के विवेचनों में शनि-गुरु योग राजयोगकारक नहीं होता ऐसा स्पष्ट कहा है, ऐसा होने पर फिर से यहाँ इस प्रकार कहने की आवश्यकता नहीं मालूम देती। इतना ही नहीं तो यह श्लोक शनि को बिलकुल लागू नहीं हो सकता। उदाहरण देता हूँ:—

कर्क लग्न है नवमेश गुरु और दशमेश मंगल इस कुंडली के लिये है इन दोनों का संबंध राजयोग करता है। परंतु अष्टमेश शनि यदि इस योग में शामिल हो तो राजयोग भंग होता है यह अर्थ सही बैठता है।

पंडित रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) के मतानुसार :—

धर्म और कर्म के स्वामी अष्टम और एकादश के स्वामी हों अर्थात् जो नवमेश है वही अष्टमेश हो और जो दशमेश है वही एकादशेश हो तो राजयोग नष्ट हो जाता है। जैसे:—मेष और मिथुन लग्नों में शनि और इसी प्रकार नवमेश अष्टमेश से संबंध करता हो और दशमेश लाभेश से संबंध करता हो तो राजयोग भंग करता है।

विद्यारत्न पंडित माधव प्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) के मतानुसार :—

यदि नवम स्थान का स्वामी अष्टम स्थान का स्वामी होवे और दशम स्थान का स्वामी एकादश का स्वामी होवे व नवम स्थान का स्वामी अष्टम स्थान का स्वामी और दशम स्थान का स्वामी एकादश स्थान का स्वामी होवे तो राजयोग नहीं होता।

राज ज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) के मता-नुसार :—

धर्म अर्थात् नवम भाव का स्वामी, कर्म अर्थात् दशम भाव का स्वामी इन दोनों में से कोई भी ग्रह अष्टमेश या एकादशेश भी हो तो इन दोनों राज्येश और भाग्येश ग्रहों के योग से उत्पन्न हुए राजयोग का फल मनुष्य को प्राप्त नहीं होता। यदि स्वयं अष्टमेश या एकादशेश न हो और अष्टमेश या एकादशेश से इन ग्रहों का संबंध होता हो तो भी राजयोग फल मनुष्य को प्राप्त नहीं होता।

ज्योतिषाचार्य-तीर्थ पंडित सीताराम झा (हिन्दी टीकाकार) के मतानुसार :—

जो नवमेश ही अष्टमेश भी हो, तथा जो दशमेश ही एकादशेश भी हो, इस प्रकार के नवमेश और दशमेश के सम्बन्ध मात्र से ही योग का लाभ नहीं कर सकते अर्थात् केन्द्रेश और त्रिकोणेश को स्वयं दोष युक्त होने पर भी संबंध मात्र से योगकारक कहा गया है। वह नीचतादि स्थान स्थिति जन्य दोष समझना। त्रिषडाय आदि स्थान के आधिपत्य होने पर सम्बन्ध मात्र से योग भंग होता है।

यहाँ भी "संबंधमात्रेण" इस संबंध से यह सिद्ध होता है कि केन्द्रेश-त्रिकोणेश के त्रिषडायादि स्थानाधिपत्यादि होने पर भी यदि सम्बन्ध हो उस हालत में उच्च स्थान स्थित्यादि अन्य योग भी हो तो योग भंग नहीं हो सकता। त्रिकोण में धर्म (९) केन्द्र में (१०), द्वितीय द्वादशात् में (८), त्रिषडाय में (११), स्थान बली है इसलिये इन्हीं चार स्थानों के सम्बन्ध से उदाहरण दिखलाया गया है योग के लाभ और भंग में प्राबल्य वा दौर्बल्य स्थानों के तारतम्य से ही समझना। कोई

"धर्मकर्माधिनेतारौ यौ, तथा रन्ध्रलाभाधिपौ यौ तयोः
सम्बन्ध-मात्रेण नरो योगं न लभते"—

इस प्रकार अन्वय करते हैं। अर्थात् "त्रिकोणेश-केन्द्रेश के सम्बन्ध में अष्टमेश एकादशेश का सम्बन्ध हो तो योग का लाभ नहीं होता है"। ऐसा अर्थ करते हैं।

यदि आचार्य का यही आशय रहता तो—"रन्ध्र-लाभाधिपौ च यौ" ऐसा ही पाठ रखते। तथा त्रिकोणेश, वा केन्द्रेश से अष्टमेश वा एकादशेश के सम्बन्ध से योग कहा भी नहीं है; तो फिर उसका भंग कहना ही व्यर्थ है। अथवा "इतरैरप्रसक्ताश्चेत्," इसी से सिद्ध है—कि दूसरे स्थान के स्वामी से संबन्ध से विशिष्ट योग नहीं होता है। अतः पुनरुक्त दोष भी हो जायेगा। इससे पूर्व प्रतिपादित अर्थ ही अभिप्रेत हैं।

अत्र युक्तिवचनम्—

यो धर्मविद् धर्मविघातकोऽपि यः कर्मविन्नो व्ययमातनोति।
सम्बन्धमात्रेण तयोः कथं स्यात् धर्मस्य वा राज्यसुखस्य वृद्धिः॥

जो धर्म ज्ञाता धर्म का नाशक भी हो, तथा जो कर्म ज्ञाता व्यय (कर्म सम्पन्नता के लिए खर्चा) को हटाने वाला भी हो, इस प्रकार के धर्माधिकारी

ग्रौर कर्माधिकारी के सम्वन्ध मात्र से धर्म ग्रौर राज्य सुख ग्रादि की वृद्धि किस प्रकार हो सकती है ? (ग्रर्थात् नहीं होती है) ।

ग्रतः जो धर्मेश (नवमेश), ग्रष्टमेश (धर्म व्ययकारक), भी हो, ग्रौर जो कर्मेश (दशमेश), एकादशेश (व्यय को रोकने वाला) भी हो, तो इन दोनों के सम्वन्ध से शुभ योग का लाभ नहीं होगा यह उचित ही कहा गया है ।

उद्योतकार कहते हैं कि यदि नवमेश-ग्रष्टमेश भी हो (जैसे मिथुन लग्न को शनि) तो वह राजयोगकारक नहीं होता । इसी कारण से यदि दशमेश, एकादशेश से सम्बन्ध करे तो राजयोग भंग होता है । यदि भाग्येश, ग्रष्टमेश से सम्बन्ध करे तो भी राजयोग भंग होता है ।

श्री सज्जनरंजनी टीकाकार के मतानुसार :—

"यद्यपि ग्रष्टमेश–एकादशेश के सम्बन्ध मात्र से राजयोग भंग होता है तथापि इन भावेशों को छोड़कर ग्रन्य केन्द्रेश–त्रिकोणेश योग हो तो फल होगा ही । इस कारण यदि नवमेश भी ग्रष्टमेश हो ग्रथवा दशमेश भी एकादशेश हो तो राजयोग भंग होता है । इस प्रकार मेष या मिथुन लग्नों के लिए शनि राजयोग भंगकारक होता है । कर्क लग्न को नवमेश गुरु ग्रौर ग्रष्टमेश शनि के कारण ग्रथवा वृषभ लग्न को नवमेश शनि ग्रौर ग्रष्टमेश गुरु ग्रथवा कर्क लग्न को कर्मेश, मंगल तथा लाभेश, शुक्र इनके संबन्ध के कारण, सिंह लग्न को धर्मेश (नवमेश), रन्ध्रेश (ग्रष्टमेश), मंगल–गुरु के सम्बन्ध के कारण ग्रथवा कर्मेश–लाभेश, बुध–शुक्र के सम्बन्ध के कारण, कन्या लग्न को धर्मेश–रन्ध्रेश, शुक्र–मंगल के संवंध के कारण ग्रथवा कर्मेश–लाभेश, बुध–चन्द्रमा के सम्बन्ध के कारण से राजयोग भंग होगा । तुला लग्न में ग्रष्टमेश-नवमेश, बुध–शुक्र होते हैं । (परंतु लेखक के मत से शुक्र लग्नाधीश होने के कारण उसे ग्रष्टमेशत्व का दोष नहीं होता है) ग्रथवा कर्मेश लाभेश सूर्य चन्द्रमा के संवंध से राजयोग भंग होगा । वृश्चिक लग्न में धर्मेश–रन्ध्रेश, चन्द्रमा–बुध के योग से ग्रथवा सूर्य, (दशमेश), बुध (लाभेश), इनके सम्वन्ध के कारण राजयोग भंग होगा । धनु लग्न में ग्रष्टमेश–नवमेश, सूर्य-चन्द्र होते हैं (किन्तु लेखक के मत से किसी भी स्थिति में यदि चन्द्रमा स्वगृह में हो तो वह दोष चन्द्रमा को नहीं होता । ग्रौर ग्रन्य स्थिति में चन्द्रमा स्वगृह में नहीं हो तो चन्द्रमा को ग्रष्टमेश का स्वल्प दोष रहेगा) लाभेश शुक्र ग्रौर राज्येश बुध इनके सम्बन्ध के कारण योग भंग होगा । मकर लग्न में ग्रष्टमेश सूर्य ग्रौर नवमेश बुध होते हैं (सूर्य को भी यदि स्वगृह में हो तो दोष नहीं होता, यदि स्वगृह में नहीं हो तो स्वल्पदोष होता है) कर्मेश–शुक्र ग्रौर लाभेश–मंगल

इनके सम्बन्ध के कारण योग भंग होगा। कुंभ लग्न में अष्टमेश–बुध, नवमेश शुक्र के योग के कारण और कर्मेश मंगल और लाभेश गुरु इनके सम्बन्ध के कारण योगफल भंग होगा। मीन लग्न में अष्टमेश शुक्र और नवमेश मंगल इनके सम्बन्ध से तथा कर्मेश गुरु व लाभेश शनि इनके योग के कारण राजयोग भंग होगा। परन्तु इन दोनों के अतिरिक्त सुयोग (शुभयोग) अधिक हों तो परिणाम शुभयोगों को दुर्योगों में से घटाने से बाकी शुभयोग बचे तो इस बात को दृष्टांत द्वारा स्पष्ट किया जाना चाहिये।

श्री विनायक शास्त्री कहते हैं कि "मेष और मिथुन लग्नों को गुरु–शनि इनके सम्बन्ध के कारण से योग नहीं होगा। हेतुवाद ऊपर दिया है इसलिये यहाँ फिर से पिष्टपेषण नहीं करता। धर्मेश को त्रिकोणेश का उपलक्षण समझना चाहिये, कर्मेश को केन्द्रेश का उपलक्षण समझना चाहिये। त्रिकोणेश कभी भी लाभेश नहीं हो सकता, किन्तु केन्द्रेश तो अष्टमेश और लाभेश दोनों हो सकता है। इसीलिये केवल ऐसा अर्थ नहीं लेना चाहिये कि त्रिकोणेश यदि अष्टमेश हो और केन्द्रेश यदि लाभेश हो। प्रयुक्त अर्थ ऐसा है कि त्रिकोणेश और केन्द्रेश यदि इन दोनों में से कोई एक अष्टमेश–लाभेश हो तो राजयोग भंग होता है और इस प्रकार के केन्द्र त्रिकोणेश के सम्बन्ध के कारण जातक को योग प्राप्त नहीं होता किन्तु यदि इसी के साथ अष्टमेश दोष प्रसक्त त्रिकोणेश के अतिरिक्त त्रिकोणेश से निर्दोष केन्द्रेश सम्बन्ध करेगा अथवा अष्टमेश और लाभेश प्रसक्त दोष युक्त केन्द्रेश के अतिरिक्त अन्य केन्द्रेश से निर्दोष त्रिकोणेश सम्बन्ध करेगा तो योग होगा ही। यही मूल में "मात्र" शब्द के द्वारा इंगित किया है।

श्री रामयत्न ओझाजी के मतानुसार "धर्मकर्माधिनेतारौ" इनके अंतर्गत त्रिकोणेश और केन्द्रेश लेना चाहिये। धर्म शब्द त्रिकोण बोधक है। कर्म शब्द केन्द्र बोधक है। अष्टमेश और लाभेश इनके (दोनों के) सम्बन्ध के कारण जातक को योग प्राप्त नहीं होता। यदि केन्द्रेश और त्रिकोणेश में नवमेश यदि अष्टमेश हो अथवा दशमेश लाभेश हो तो योग की हानि नहीं होती तथा चतुर्थेश यदि एकादशेश भी हो, पंचमेश अष्टमेश भी हो तो भी योग की हानि नहीं होती। यदि नवमेश–दशमेश के सम्बन्ध में त्रि, षट्, आय् इन तीनों के स्वामियों का योग हो तो भी योग की हानि नहीं होती (जिस प्रकार कि पूर्व में गुणों की जोड़ बाकी का प्रकार बताया जा चुका है) यथाः—

नवमेश गुण	=	+४	
दशमेश गुण	=	+४	शेष +२ शुभयोग (सुयोग) हैं
तृतीयेश गुण	=	—१	
षष्ठेश गुण	=	—२	
एकादशेश गुण	=	—३	
शेष	=	+२	

किन्तु यदि नवमेश–दशमेश के सम्बन्ध में अष्टमेश = लाभेश इन दोनों का योग हो तो :—

नवमेश गुण	=	+४	
दशमेश गुण	=	+४	शेष—१ अशुभफल (दुर्योग—१)
अष्टमेश गुण	=	—६	
लाभेश गुण	=	—३	
शेष	=	—१	

यही सिद्धांत बताया गया है।

कई जगह निम्नलिखित अनुसार श्लोक दिया है :—

"धर्मकर्माधिनेतारौ रन्ध्रलाभाधिपौ यदि ।
शुभ योगं न कुर्वन्ति संबद्धाः स्युः परस्परम् ॥२२॥

धर्म और कर्म इनके स्वामियों का यदि अष्टम–एकादश स्थानों के स्वामियों से सम्बन्ध होता हो तो वे योगकारक नहीं होते। कुछ टीकाकारों ने इस प्रकार भी अर्थ किया है।

(१) नवमेश और दशमेश ये ग्रह यदि अष्टमेश और लाभेश हों तो राजयोग भंग होता है।

(२) जन्म लग्न से जो नवम स्थान उसके अधिपति को अष्टम स्थानाधिपत्व यदि प्राप्त होवे तो राजयोग का विनाश करने वाला योग होता है।

(३) तनुस्थान से दशम स्थान का जो अधिपति हो वही लाभ स्थान का स्वामी हो तो राजयोग भंगकारक होता है।

(४) तनुभाव से नवम स्थान का जो स्वामी हो वही अष्टम स्थान के अधिपति से पूर्व में कहे हुए चार सम्बन्धों में से कोई भी एक सम्बन्ध करता हो तो राजयोग का विनाश करने वाला योग होता है।

(५) जन्म लग्न से दशम स्थान का जो स्वामी हो वह लाभ स्थान के अधिपति के साथ पूर्वोक्त चार सम्बन्धों में से कोई भी एक सम्बन्ध करे तो राजयोग भंग होता है।

ऊपर वर्णन किये हुए राजभंग योग का फल ऐसा है कि राजयोग होकर राजभंग योग हुआ हो तो राजयोग के फल प्राप्त नहीं होंगे। और राजयोग न होकर राजभंग योग हुआ हो तो उससे अनिष्ट नहीं होगा।

श्री उत्तमराम मथाराम ठक्कर (गुजराती टीकाकार) के विचार इस प्रकार हैं :—

नवम स्थान का स्वामी अष्टम स्थान का स्वामी हो और दशम स्थान का स्वामी एकादश स्थान का स्वामी हो तो नवम और दशम भावों के स्वामियों के सम्बन्ध के कारण जो राजयोग का फल बनता हो वह निष्फल होता है।

१४ वें श्लोक में केन्द्राधिपति और त्रिकोणाधिपति के सम्बन्ध द्वारा राजयोग होता है ऐसा मूल सिद्धान्त प्रतिपादन किया गया है, पर उसमें मुख्य अपवाद दो कहे गये हैं। एक तो केन्द्र और त्रिकोण स्थानों को छोड़कर अन्य भाव का स्वामी कोई अशुभ होता हो तो वह राजयोग को दूषित करता है, ऐसा कहा है। परन्तु केन्द्र और त्रिकोण इनमें से यदि एक ही स्वामी इस ग्रंथ में दर्शाये अनुसार दोषयुक्त हो तो केन्द्रेश और त्रिकोणेश के सम्बन्ध के द्वारा वह दोष नष्ट हो जाता है। परन्तु वे सम्बन्ध करने वाले दोनों ग्रह यदि दोष युक्त हों तो वह राजयोग निष्फल होता है। इस श्लोक में भी नवम स्थान का स्वामी और अष्टम स्थान का स्वामी एक हो अथवा दशम और एकादश स्थानों का स्वामी भी एक ही हो तो नवम और दशम स्थान के सम्बन्ध के कारण होने वाला राजयोग निष्फल होता है। श्लोक १४, १५, १६, १७, २० और २२ श्लोकों में जो राजयोगकारक नियम कहे हुए हैं उनको उपर्युक्त श्लोक अथवा योग अपवादात्मक है। इन सबको एकत्र करके तारतम्य से विचार किया जावे तो निम्नलिखित अनुसार विभाग पड़ सकते हैं।

केन्द्रेश और त्रिकोणेश के सम्बन्ध के कारण से सफल राजयोग बनता है। केन्द्रेश निर्वल हो तो कभी भी राजयोग नही बनता। केन्द्रेश और त्रिकोणेश सम्बन्ध करते हों पर वे दोनों ग्रह यदि अन्य भावों के स्वामी होकर अशुभ अथवा दोषयुक्त होते हों तो राजयोग निष्फल होता है। परन्तु यदि केन्द्राधिपति वलवान हो और इसका यदि त्रिकोणेश से सम्बन्ध होता हो तो उस सम्बन्ध मात्र से एक ग्रह का दोप अर्थात् त्रिकोणेश अथवा केन्द्रेश स्वभावतः दोषयुक्त होने पर भी सफल राजयोग होता है। यदि वे दोनों ग्रह दोषयुक्त हों तो राजयोग निष्फल हाता है। इसीलिए नवम स्थान का स्वामी और अष्टम-स्थान का स्वामी एक ही हो अथवा दशम का स्वामी और एकादश स्थान का स्वामी भी एक ही हो तो नवम और दशम के स्वामी एकत्र हो, अथवा नवम

व दशम के स्वामी अन्यतर याने नवम स्थान का स्वामी दशम स्थान में और दशम स्थान का स्वामी नवम स्थान में होकर सम्बन्ध करते हों तो वे अष्टम अथवा एकादश स्थानों के स्वामी (दोषयुक्त होने से) होने के कारण राजयोग निष्फल होता है। नवम और दशम स्थान के स्वामी परस्पर स्थानों में हों अथवा दोनों एक साथ नवम स्थान में अथवा दशम स्थान में हों और वे राजयोग करते हों तो शेष भावों के स्वामी (याने इनके अतिरिक्त किसी भी भाव के स्वामी) अशुभ होकर उनमें से एक के साथ अथवा दोनों जहाँ एकत्र (एक साथ) हों उन दोनों के साथ हों तो उपरोक्त बनने वाले राजयोग को कोई भी दोष नहीं लगता और वह सफल राजयोग होता है। बलवान केन्द्र का अधिपति यदि त्रिकोणाधिपति के साथ सम्बन्ध करके राजयोग करता हो तो वह शुभदायक राजयोग उत्पन्न करता है। इस प्रकार केन्द्र और त्रिकोणेश के सम्बन्ध से जो राजयोग होता है वह भी अतिशुभ राजयोग बनता है। इनमें यदि दोनों त्रिकोण के स्वामी चतुर्थ अथवा दशम स्थानों के स्वामी के साथ हों तो जो राजयोग बनता है वह श्रेष्ठ राजयोग होता है। एक दोषयुक्त होने के कारण जो राजयोग बनता है वह दूषित राजयोग याने किंचित् न्यूनफल देने वाला राजयोग होता है और एक दोष मारक स्थान के कारण उत्पन्न होता हो तो वह योग निकृष्ट (शुभ और अशुभफल मिश्रित) अथवा अधम राजयोग होता है।

वृहत्पाराशरी में केन्द्रेशों का परस्पर सम्बन्ध, केन्द्रेशों का त्रिकोणेशों के साथ सम्बन्ध, त्रिकोणेशों के बीच परस्पर सम्बन्ध—इन सम्बन्धों में अनेक राजयोग दर्शाये हुए हैं परन्तु उनमें से तारतम्य निकाल कर उनके दोषों का स्पष्टीकरण करके इस ग्रंथ में विशेष राजयोग किस प्रकार बनते हैं यह बताया गया है। इस कारण से इस ग्रंथ में राजयोग विशेष राजयोग के समान पहिचानने में आये हुए हैं। उनकी प्रामाणिकता और सत्यता निःसंदेह है। उपरोक्त कहे हुए अनुसार विशेष राजयोग दो त्रिकोण और चार केन्द्र इनके स्वामियों द्वारा प्रत्येक कुण्डली में आठ प्रकार से बनते हैं। इनके दो भाग होते हैं :—(१) सफल और (२) निष्फल राजयोग। सफल राजयोग में—विशेष शुभ दायक, श्रेष्ठ, निकृष्ट और सदोष—इस प्रकार चार भेद होते हैं। इस २२ वे श्लोक में जो निष्फल राजयोग बताया गया है वह सिर्फ मेष और मिथुन लग्नों की कुण्डलियों में ही बनता है। कारण कि मेष लग्न की कुण्डली में दशम और एकादश स्थानों का स्वामी अकेला शनि होता है। और उसी प्रकार मिथुन लग्न की कुण्डली में अष्टम और नवम स्थानों का

स्वामी भी अकेला शनि ही होता है। यदि यह शनि दशमेश गुरु से सम्बन्ध करे तो इस नियम के अनुसार निष्फल होता है। मेष लग्न के लिए पाराशर का वाक्य है कि,—

"न शुभं योगमात्रेण प्रभवेच्छनिजीवयोः।"

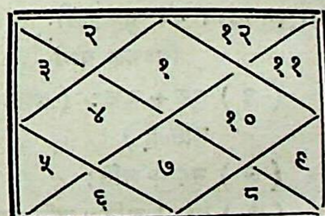
मिथुन लग्न के लिए:—

शनैश्चरेण जीवस्य योगो मेषभवो यथा।"

हिन्दी टीकाकारों ने इस प्रकार अर्थ किया है कि "अष्टम और नवम स्थान के स्वामी भिन्न ग्रह होकर एक दूसरे से सम्बन्ध करें अथवा पंचम और एकादश स्थान के स्वामी भिन्न होकर परस्पर सम्बन्ध करते हों तो उनके द्वारा उत्पन्न होने वाला राजयोग भंग हो जाता है" इस प्रकार का अर्थ करना बराबर नहीं है। कारण इस प्रकरण में केन्द्रेश और त्रिकोणेश सम्बन्ध होने से जो राजयोग बनते हैं वही विषय चर्चा के लिए आया है और उनमें १४, १६ और २० वें श्लोकों में जो नियम बताये गये हैं उनको अपवाद ऐसा यह नियम कहने में आया है। यह श्लोक १५ वें श्लोक का अपवाद है, यह स्पष्ट है। उसी प्रकार १२वें श्लोक में सूक्ष्म विचार विस्तार रूप से किया गया है। १२वें श्लोक में स्पष्ट रूप से कहा हुआ है कि मंगल यदि दशम भाव का स्वामी हो तो वह शुभ नहीं होता। पर यदि वह त्रिकोणेश भी हो तभी वह शुभ होता है। पापग्रह मुख्यतः शनि और मंगल हैं। मंगल के शुभत्व के विषय में जो अपवाद कहा गया है वही अपवाद शनि के लिए भी कहा गया है कि शनि यदि नवम और दशम का स्वामी हो तो वह शुभफल देता है परन्तु यदि वह अष्टम और एकादश स्थानों का स्वामी होगा तो राजयोग निष्फल करता है यह नियम कहने का इस श्लोक का तात्पर्य है।

वाचकों को इस कठिन विषय के नियमों की कुण्डलियाँ जाँचने के लिए सरल और सुलभ हो इसलिए १२ कुण्डलियों के इन नियमों को ध्यान में रखते हुए क्रमवार निरीक्षण किया गया है।

मेष लग्न की कुण्डली



निष्फल योग :—१. गुरु + शनि
२. गुरु + शुक्र

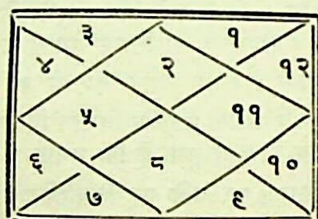
(१) शनि एकादश और गुरु द्वादश स्थान का स्वामी होने से श्लोक २२ के अनुसार निष्फल योग होता है।

(२) गुरु द्वादश स्थान का स्वामी होने से दूषित है और शुक्र सप्तम (मारक) स्थान का स्वामी होने से दूषित है। दोनों ही दूषित होने के कारण गुरु + शुक्र का योग भी निष्फल होता है।

सफल योग :—(१) सूर्य + मंगल; (२) सूर्य + चन्द्रमा; (३) सूर्य + शुक्र (निकृष्ट याने सदोष) कारण शुक्र सप्तम (मारक) स्थान का स्वामी होने से दूषित है। सूर्य दूषित नहीं है। मात्र एक ग्रह दोषयुक्त होने के कारण सफल राजयोग तो होता है पर यह निकृष्ट याने सदोष योग है।

(४) सूर्य + शनि; (५) मंगल + गुरु; (६) चन्द्रमा + गुरुः—यदि चन्द्रमा पूर्ण हो तो चतुर्थ (केन्द्र) स्थान का स्वामी होने से राजयोग करता है। पूर्ण चन्द्रमा होने के कारण उसे शुभग्रह गिना गया है। परन्तु इस ग्रंथ के नियमानुसार केन्द्रेश यदि शुभग्रह हो तो वह अशुभ होता है; इस लिए यह योग सदोष है। यदि चन्द्रमा क्षीण हो तो शुभ होता है और गुरु द्वादश स्थान का स्वामी होने से उसका दोष नष्ट होता है।

वृषभ लग्न की कुण्डली



निष्फल योग

(१) शुक्र + बुध;
(२) मंगल + बुध;

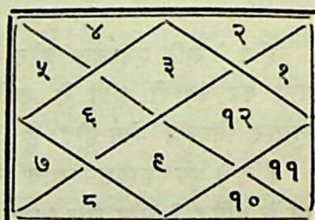
सफल योग

(१) शुक्र + शनि; (२)सूर्य + बुध;
(३) सूर्य + शनि;

(४) मंगल + शनि (निकृष्ट और सदोष) कारण मंगल बारहवें स्थान का स्वामी होने से दूषित है और सप्तम (मारक) स्थान का स्वामी होने से मारकेश है। (५) शनि अकेला नवम और दशम स्थानों का स्वामी है इस-लिए योगकारक हुआ और वह श्रेष्ठ है।

(६) शनि + बुध योग श्रेष्ठ है कारण शनि नवम स्थान का और बुध पंचम स्थान का स्वामी है। ये दोनों त्रिकोण के स्वामी होते हैं और शनि यह बलवान केन्द्र—दशमस्थान का स्वामी भी होने के कारण से श्लोक २० के अनुसार यह श्रेष्ठ राजयोग होता है।

मिथुन-लग्न की कुण्डली

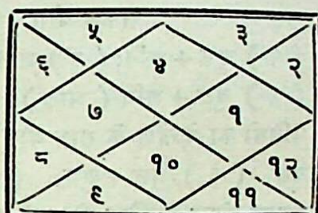


निष्फल योग

(१) गुरु + शुक्र; (दोनों ग्रह दूषित होते हैं)
(२) गुरु + शनि;
(३) बुध + शनि; शनि अष्टम स्थान का स्वामी होने के कारण से तीसरा (३) योग निष्फल होता है (श्लोक २२ के अनुसार)

सफल योग :—(१) बुध + शुक्र

कर्क लग्न की कुण्डली

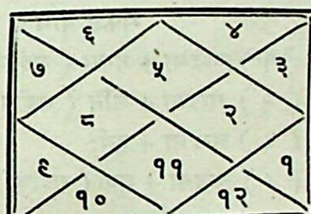


निष्फल योग

(१) गुरु + शुक्र; (२) गुरु + शनि;—कारण दोनों ग्रह दूषित होते हैं।

सफल योग :—(१) चन्द्र + मंगल; (२) चन्द्र + गुरु (३) मंगल + शुक्र; (४) मंगल + गुरु (५) मंगल + शनि—(निकृष्ट योग)

सिंह लग्न की कुण्डली

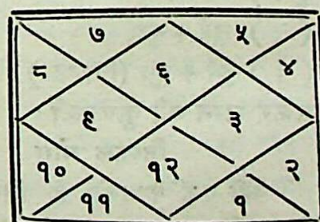


निष्फल योग

(१) मंगल + शनि (२) गुरु + शुक्र; (३) गुरु + शनि–दोनों ग्रह दूषित होते हैं।

सफल योग :—(१) सूर्य + मंगल (२) सूर्य + गुरु (सदोष) (३) मंगल + गुरु (सदोप) (४) मंगल + शुक्र (सदोष) (५) मंगल अकेला योगकारक है और शुभफल दायक है कारण वह नवम और चतुर्थ स्थानों का (त्रिकोण + केन्द्र) स्वामी है।

कन्या लग्न की कुण्डली



निष्फल योग

(१) गुरु + शुक्र;

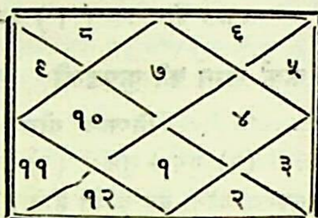
(२) गुरु + शनि—दोनों ग्रह दूषित होते हैं।

सफल योग

(१) बुध + शुक्र;

(२) बुध + शनि (सदोष)—शनि दूषित होने से सदोप राजयोग होता है परन्तु १५ वें श्लोक के अनुसार एक ग्रह दूषित हो तो राजयोग में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचती।

तुला लग्न की कुण्डली



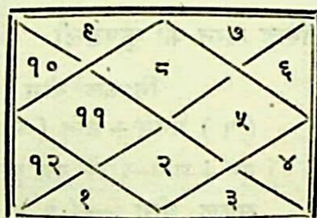
निष्फल योग

(१) मंगल + बुध;

सफल योग

(१) शुक्र + शनि; (२) शनि अकेला
(३) बुध + शनि (श्रेष्ठ) दो त्रिकोण-पतियों का केन्द्रेश के साथ योग होता है, (४) चन्द्र + शनि; (५) चन्द्रमा + बुध, (६) बुध + शुक्र, (७) मंगल + शनि (निकृष्ट और सदोष) कारण मंगल मारकेश होता है और वह दोनों मारक स्थानों का स्वामी है।

वृश्चिक लग्न की कुण्डली



निष्फल योग : (१) मंगल + गुरु; (२) गुरु + शुक्र (दोनों दूषित होते हैं)

सफल योग

(१) चन्द्रमा + मंगल (सदोष);
(२) चन्द्रमा + शनि (सदोष)
(३) चन्द्रमा + सूर्य;
(४) चन्द्रमा + शुक्र (सदोष)

धनु लग्न की कुण्डली

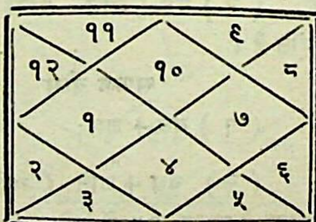
निष्फल योग

(१) मंगल + बुध;

सफल योग

(१) मंगल + गुरु,
(२) सूर्य + गुरु;
(३) सूर्य + बुध (निकृष्ट)

मकर लग्न की कुण्डली



निष्फल योग

यही एक कुण्डली है जिसमें निष्फल योग नहीं बनता।

सफल योग

(१) शुक्र अकेला त्रिकोणेश और केन्द्रेश होने से शुभ है (२) शुक्र + शनि; (३) बुध + शुक्र श्रेष्ठ। कारण, दोनों

त्रिकोण के स्वामी हैं और शुक्र केन्द्रेश भी है। श्लोक २० के अनुसार इस प्रकार का सम्बन्ध श्रेष्ठ राजयोग बनता है।

(४) मंगल + शुक्र (सदोष), (५) बुध + शनि (सदोष); (६) चन्द्रमा + बुध (सदोष), (७) चन्द्रमा + शुक्र (सदोष), शुक्र दोषयुक्त है; (८) मंगल + बुध (कनिष्ट), कारण मंगल एकादश स्थान का स्वामी होने से दूषित है और बुध षष्ठेश होने से दूषित है। दोनों के दूषित होने से निकृष्ट राजयोग बनता है।

कुम्भ लग्न की कुण्डली

निष्फल योग

(१) सूर्य + बुध–दोनों ग्रह दूषित होते हैं।

सफल योग

(१) शुक्र अकेला शुभफलदायक है।

(२) शुक्र + शनि (सदोष);

(३) बुध + शुक्र (सदोष);

(४) मंगल + शुक्र (सदोष);

(५) सूर्य + शुक्र; (६) बुध + शनि

मीन लग्न की कुण्डली

निष्फल योग

(१) मंगल + बुध

सफल योग

(१) चन्द्रमा + गुरु,

(२) मंगल + गुरु

(३) चन्द्रमा + बुध (निकृष्ट)

उपरोक्त अनुसार कारक अथवा राजयोग विशेष शुभदायक किस प्रकार से होते हैं; उसी प्रकार वे दूषित अथवा निष्फल किस प्रकार होते हैं, उनका विस्तार पूर्वक सूक्ष्म निरीक्षण किया हुआ है और ये राजयोग सचोट, सत्य और चौकस हैं। परन्तु पाराशरी में केन्द्र और त्रिकोणपतियों का परस्पर सम्बन्ध तथा केन्द्रेश का त्रिकोणेश के साथ सम्बन्ध इनके सिवाय अन्य कई राजयोग वर्णित किये गये हैं। वे भी सामान्य रीति से शुभफल अथवा शुभ + अशुभ मिश्रित फल देने वाले होते हैं। यही कई बार उपरोक्त दर्शाये हुए राजयोग समझने में मदद करते हैं।

स्पष्टीकरण :--

पूर्व में कह चुके हैं कि केन्द्रेश त्रिकोणेश इनका संबन्ध हो और वह अन्य भावाधीशों के साथ अप्रसक्त (सम्बन्ध रहित) हों तो विशेष शुभफलदायक होते हैं। यहाँ अन्य शब्द से लग्नेश का समावेश नहीं हो सकता, कारण वह त्रिकोण और केन्द्र दोनों का स्वामी होने के कारण शुभ है। व्यय, द्वितीय, त्रि, षट्, आय, अष्टम इन स्थानों के स्वामियों का ही अन्य ग्रहों के बारे में अभिप्राय है। इनमें अष्टमेश पापतम (सर्वाधिक पापी) है उससे कम पापी लाभेश उससे अल्प पापी षष्ठेश है और न्यूनतम (सबसे कम) पापी तृतीयेश है। व्ययेश और द्वितीयेश स्वयं पापी नहीं होते इसलिए पूर्व में कहा गया है कि 'अन्य' (इतर) सम्बन्धादि में दोष हानि की सम्भावना है। यहाँ सबमें बड़ा पापी अष्टमेश और लाभेश हैं इसलिए यदि कोई ग्रह अष्टम अथवा एकादश स्थान का स्वामी हो तो वह फिर त्रिकोण अथवा केन्द्र का स्वामी ही क्यों न हो वह योगकारक नहीं हो सकता--ऐसा पाराशर मुनि का मत है। परन्तु जहाँ शनि अथवा मंगल नैसर्गिक पापी-यह लाभेश हों वहीं पर यह व्यवस्था है। शुभग्रह शुक्र यदि लाभेश हो तो ऐसा नहीं होता (कारण श्री विनायक शास्त्री के मातनुसार नैसर्गिक पापी यदि लाभेश हो तो वह पापी होता है--शुभग्रहों में सिर्फ शुक्र ही ऐसा अकेला शुभग्रह है जो केन्द्रेश होकर लाभेश भी हो सकता है--इसलिए शुक्र का निर्देश किया गया कि यह व्यवस्था शुक्र के लिए नहीं है)

यदि नैसर्गिक पापी मंगल अथवा शनि तृतीय अथवा षष्ठ स्थानों के स्वामी हों तो तृतीय और षष्ठ-ये अपेक्षा कृत स्वल्प पाप स्थान हैं इसलिये अल्प पाप स्थान होंगे। इसलिए केन्द्रेश-त्रिकोणेश के सम्बन्ध में इनके शामिल होने से योगकारकत्व में हानि होती है किन्तु अल्प योगफल तो होता ही है। व्ययेश और द्वितीयेश यदि केन्द्रेश-त्रिकोणेश सम्बन्ध में योगदान करें तो हानि नहीं होगी। योगफल अधिक अथवा अल्प नहीं होगा। इसलिए मध्यममान से समझना चाहिए (जिस प्रकार संख्या में से शून्य घटाया तो कम नहीं होता अथवा शून्य जोड़ दिया जाय तो संख्या अधिक नहीं होती)। इसलिए 'इतर' (अन्य भावाधीशों के) सम्बन्धों के कारण क्या व्यवस्था होती है यही बात यहाँ पर भी स्पष्ट है कि यदि केन्द्रेश और त्रिकोणेश का सम्बन्ध हो और केन्द्रेश--त्रिकोणेश के अलावा भिन्न कोई ग्रह यदि रन्ध्रेश अथवा लाभेश हो और वह योगकारक (याने सम्बन्धित केन्द्रेश-त्रिकोणेश इन दोनों में से किसी एक से)

अथवा योग कारकों से (अर्थात् सम्बन्धित केन्द्रेश और त्रिकोणेश इन दोनों से) सम्बन्ध करे तो योग भंग नहीं होता। केन्द्रेश अथवा त्रिकोणेश रन्ध्रेश या लाभेश हो तो योगकारकत्व की हानि होती है इसका अर्थ ऐसा नहीं होता कि योग का नाश होता है, कारण स्वयं के फलों की अपेक्षा साहचर्य फल (शुभ अथवा अशुभ) कम होता है।

किसी भी एक कुण्डली में नवमेश यह रन्ध्रेश और दशमेश यह लाभेश एक ही समय होना सम्भव नहीं है इसलिए उपरोक्त अर्थ समीचीन नहीं है। श्लोक में पाठान्तर दिखाई देता है। इस श्लोक का भावार्थ इस प्रकार है कि नवमेश यदि अष्टमेश हो और वह दशमेश के साथ सम्बन्ध करे अथवा दशमेश एकादशेश हो और वह नवमेश के साथ सम्बन्ध करता हो तो दोनों स्थिति में कारक योग प्राप्त नहीं हो सकता अथवा रन्ध्रेश यह त्रिकोणेश हो और केन्द्रेश यह त्रिषडायाधीश हो तो उनके परस्पर सम्बन्ध के द्वारा मनुष्य को कारक योग प्राप्त नहीं हो सकता। पूर्व में कहे हुए श्लोकों में केन्द्र के चारों स्थान, त्रिषडाय के तीन स्थान, त्रिकोण के तीन स्थान इनके शुभत्व और पापत्व का क्रमशः बलाबल का विवेचन हो चुका है। इस श्लोक में तो केन्द्रेश-त्रिकोणेश इनके परस्पर सम्बन्ध के कारण से उत्पन्न हुआ कारक फल का अपवाद (axception) कहा गया है। श्लोक १४, १५, १६, १७ और २० इनमें पूर्व में जो राजयोग-कारक नियम कहे जा चुके हैं उन नियमों को श्लोक २२ (उपरोक्त श्लोक) में कहा हुआ नियम यह अपवाद है ऐसा समझना चाहिये।

यहाँ पर यह शंका उपस्थित होना स्वाभाविक है कि मिथुन लग्न की कुण्डली में बुध यदि शुक्र के साथ होकर अन्य त्रिकोणपति से (शनि से) सम्बन्ध करे तो शनि अष्टमेश भी होगा। कर्क लग्न की कुण्डली में गुरु त्रिकोण का स्वामी होकर षष्ठेश भी है और सिंह लग्न की कुण्डली में पंचमेश गुरु-अष्टमेश भी है। कन्या लग्न की कुण्डली में पंचमेश शनि—षष्ठेश भी है। मकर लग्न की कुण्डली में नवमेश बुध षष्ठेश भी है। कुम्भ लग्न की कुण्डली में बुध पंचमेश और अष्टमेश भी है। ऐसी परिस्थिति में भी याने त्रिकोणाधिपति को षष्ठेश अथवा अष्टमेश का दोष रहने पर भी अन्य त्रिकोणपति से सम्बन्ध वांछनीय होगा क्या ? इसका समाधान लेखक के मत में ऐसा है कि आचार्य ने अन्य त्रिकोणपति को इतना अधिक शुभ माना है कि षष्ठेश अथवा अष्टमेश का दोष रहने पर भी त्रिकोण और केन्द्र का एक ही स्वामी हो और वह अन्य दोष युक्त त्रिकोणपति से सम्बन्ध करे तो भी प्रबल राजयोग होता है।

मिथुन लग्न की कुण्डली में नवमेश और रन्ध्रेश शनि यदि दशमेश-सप्तमेश गुरु से सम्बन्ध करे, मेष लग्न की कुण्डली में दशमेश-एकादशेश शनि यदि नवमेश गुरु से सम्बन्ध करे; वृषभ लग्न की कुण्डली में नवमेश-दशमेश शनि रन्ध्रेश लाभेश गुरु से सम्बन्ध करे, वृश्चिक लग्न की कुण्डली में नवमेश चन्द्रमा यदि रन्ध्रेश-लाभेश बुध के साथ सम्बन्ध करे अथवा दशमेश सूर्य यदि रन्ध्रेश-लाभेश बुध के साथ सम्बन्ध करे तो ये सब योगकारक योग नहीं हो सकते ।

त्रिकोणेश-रन्ध्रेश + केन्द्रेश-त्रिपडायेश इनके सम्बन्ध अर्थात् रन्ध्रेश के अतिरिक्त त्रिकोणेश का, त्रिषडायाधीश के अतिरिक्त ऐसे केन्द्रेश के सम्बन्ध के उदाहरण—इस प्रकार हैं:—

मेष लग्न की कुण्डली में मंगल रन्ध्रेश और त्रिकोणेश (लग्नेश है इसलिए त्रिकोणेश) है । वह यदि दशमेश-लाभेश शनि से सम्बन्ध करे अथवा केन्द्रेश चन्द्रमा अथवा शुक्र के साथ सम्बन्ध करे तो योगकारक नहीं हो सकता । मेष लग्न की कुण्डली में दशमेश-लाभेश शनि यदि त्रिकोणेश सूर्य, गुरु अथवा मंगल इनसे सम्बन्ध करे ; कर्क लग्न की कुण्डली में चतुर्थेश-लाभेश शुक्र यदि नवमेश-षष्ठेश गुरु से सम्बन्ध करे अथवा लग्नेश चन्द्रमा से सम्बन्ध करे; मकर लग्न की कुण्डली में चतुर्थेश-लाभेश मंगल यदि नवमेश षष्ठेश बुध के साथ अथवा लग्नेश द्वितीयेश शनि से सम्बन्ध करे तो ऐसी परिस्थिति में रन्ध्रेश यदि अष्टमस्थ हो अथवा रन्ध्रेश ही स्वयं लग्नेश होकर लग्न अथवा अष्टम स्थान में बैठा हो और तब यदि वह उपरोक्त ग्रहों के साथ सम्बन्ध करे तो योगकारक होगा । मेष लग्न की कुण्डली में मंगल लग्नस्थ हो अथवा अष्टमस्थ हो तो उपरोक्त स्थिति बिलकुल भिन्न होगी ।

कारक भंग योगों का कोष्टक

मेष लग्न = शनि गुरु योग; मंगल शनि योग; मंगल चन्द्रयोग; मंगल शुक्र योग; शनि सूर्य योग; गुरु शनि योग ।

वृषभ लग्न = शनि गुरु योग;

मिथुन लग्न = शनि गुरु योग

कर्क लग्न = शुक्र गुरु योग; शुक्र चन्द्र योग;

वृश्चिक लग्न=(चन्द्र बुध योग); (सूर्य बुध योग)

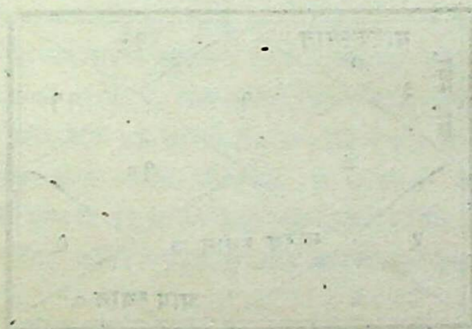
मकर लग्न = मंगल बुध योग; मंगल शनि योग

इन योगों में कारक फल नहीं होगा। जिन जिन योगों के नीचे–ऐसी रेखा है वे योग पापफलद होंगें और जो ग्रह ( ) कोष्ठ में दिये हैं वे स्वयं कारक नहीं हैं कारण वे केन्द्रेश-त्रिकोणेश नहीं हैं।

राजयोगाध्याय का द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ।

अब ग्रंथकर्ता आयुष्य सम्बन्ध में योगों का कथन करने के लिए आगे आने वाले "आयुर्दायाध्याय" नामक तृतीय अध्याय प्रारम्भ कर रहे हैं। इसे मारकाध्याय भी सम्बोधन करते हैं।

———



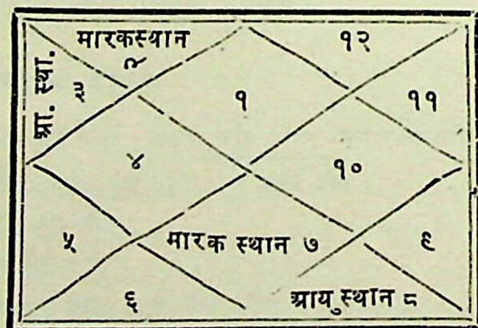
अथ आयुर्दायाध्यायः (मारकाध्यायः)

अष्टमं ह्यायुषः स्थानं अष्टमादष्टमं च यत् ।
तयोरपि व्ययस्थानं मारकस्थानमुच्यते ॥२३॥

जन्म लग्न से जो आठवाँ स्थान उसे आयु:स्थान कहते हैं; इस आठवें स्थान से जो आठवाँ स्थान (अर्थात् लग्न से तीसरा) उसे भी आयु: स्थान कहते हैं। आयु:स्थान का जो व्ययस्थान है उसे मारक स्थान कहते हैं इसलिये जन्म-लग्न से दूसरा और सातवाँ ये मारक स्थान हैं।

आठवें स्थान से आठवाँ स्थान अर्थात् तृतीय और अष्टम ये आयु: स्थान हुए; द्वितीय और सप्तम ये मारक स्थान हुए। तृतीय और अष्टम ये आयु स्थान हैं ऐसा ऊपर कहा गया है। मुख्यत: अष्टम स्थान ही आयु: स्थान है। परन्तु ज्योतिष में "भावात् भाव:" अर्थात् भाव से भाव का विचार करने की पद्धति है, जैसे पंचम स्थान का विचार किया जाता है तब पंचम स्थान से जो पंचम स्थान याने नवम स्थान, उसको भी विचार में लेना होता है। इसी प्रकार से उत्तरकालामृत खण्ड ४ श्लोक ४ में राजयोग का विचार नवम स्थान से नवम-दशम और दशम स्थान से नवम और दशम स्थानों का भी विचार कहा गया है इसलिये अष्टम स्थान जो आयु: स्थान है उससे अष्टम स्थान याने लग्न से तीसरा स्थान भी आयु: स्थान है। आयु का व्यय याने मृत्यु इस कारण से अष्टम स्थान का व्यय स्थान याने सप्तम स्थान और तृतीय का व्ययस्थान याने लग्न से द्वितीय स्थान ये दोनों मारक-स्थान हैं।

तृतीय और अष्टम स्थान के स्वामी जिस मान से बलवान् होंगे उसी मान से मनुष्य का आयुष्य होगा; उसी प्रकार द्वितीय और सप्तम स्थान के



स्वामी जिस मान से बलवान् होंगे उसी मान से वे अपनी-अपनी दशाओं में मारक होंगे। उदाहरणार्थ कुण्डली दी है।

तत्राप्याद्यव्ययस्थानाद् द्वितीयं बलवत्तरम् ।
तदीशितुस्तत्र गताः पापिनस्तेनसं युताः ॥२४॥
तेषां दशाविपाकेषु सम्भवे निधनं नृणाम् ।
तेषामसम्भवे साक्षाद्व्ययाधीशदशास्वपि ॥२५॥

सप्तम द्वितीय इन दोनों स्थानों में से प्रथम (सप्तम) मारक स्थान की अपेक्षा दूसरा (द्वितीय) स्थान अधिक बलवान् समझना चाहिये। इन स्थानों में पापग्रह स्थित हों और वे मारकेश से युक्त हों तो उनकी दशाओं में मृत्यु होती है ।।२४।। यदि उनकी दशाओं में मृत्यु की सम्भावना न हो तब सप्तमेश और द्वितीयेश इनकी दशाओं में भी मृत्यु होती है ।।२५।।

स्वर्गीय ह० ने० काटवे (मराठी टीकाकार) इनके मत के अनुसार उन दोनों में से दूसरा व्ययस्थान (द्वितीय स्थान) अधिक बलवान् होता है उस स्थान के स्वामी की अपेक्षा द्वितीय स्थान के स्वामी से युक्त पापग्रह अधिक बलवान् होते हैं। किसी भी व्यक्ति की कुण्डली पर से उसकी आयु का निश्चित निदान करना या निश्चित आयु कहना, ज्योतिष-शास्त्र की सबसे बड़ी कठिन, गहन और मानवी प्राणी को समझ में न आने समान समस्या है मृत्यु का समय निश्चित करना, जिस ज्योतिष या व्यक्ति को दैवी स्फूर्ति हो, वही शायद ऐसी बात बता सकता है। अन्य साधारण ज्योतिष गुणों की बस की यह बात नहीं है। जीवन भर अनेक ज्योतिष-ग्रन्थ पढ़कर भी आयुष्य का निश्चित निदान कहना अति कठिन बात है। मेरे अपने (टीकाकार के) अनुभव में ऐसा आया है कि आयुष्य निश्चित करने के लिए उस जातक के माता-पिता और उसके भाई-बहिनों—इन सबकी कुण्डली का विचार करना आवश्यक है। बालक के जन्म लिये पश्चात् उस बालक की मृत्यु का विचार उसके माता-पिता की पत्रिका पर से कहना पड़ता है। इसी प्रकार उस बालक के भाई हों तो उनकी पत्रिका का भी विचार करना पड़ता है। आगे चलकर जब यह बालक बड़ा होता है तब उसकी शादी के बाद उसकी पत्नी की कुण्डली पर से विचार करना जरूरी है और यदि उसे सन्तति हो तो उस सन्तति को माता-पिता का सुख कब तक प्राप्त होगा उनकी पत्रिकाओं पर से करना पड़ता है। सबसे छोटी सन्तान की कुण्डली पर से निश्चित काल समझ में आ सकता है। इन सबका विचार करना कठिन समस्या है और आयुष्य एक दूसरे के नसीब से जुड़ा होता है।

स्वर्गीय वि० गो० नवाथे (मराठी ग्रन्थ के टीकाकार) के मत के अनुसार:—सप्तम और द्वितीय इन दोनों में से पहले की अपेक्षा दूसरा बलवान

समझना चाहिये। यदि उन स्थानों में पापग्रह हों और वे मारकेश से युक्त हों तो उनकी दशाओं में मनुष्य को मृत्यु प्राप्त होगी। यदि उनकी दशाओं में मृत्यु प्राप्त नहीं हुआ तो सप्तमेश और द्वितीयेश की दशाओं में भी मृत्यु होती है उमर के ३२ वर्ष पर्यन्त अल्पायु योग होता है। ७० वर्ष पर्यन्त मध्यमायु योग होता है और उसके पश्चात् दीर्घायु योग होता है। इसलिये कुण्डली में ग्रहों की स्थिति देखकर प्रथम आयुर्योग निश्चित करना चाहिये। यदि इस काल में द्वितीय स्थान में मारकेश से युक्त पापग्रहों की दशा आती हो तो उस दशा में मृत्यु होने की सम्भावना रहती है। परन्तु जब उनकी महादशा उस काल में नहीं आती हो, द्वितीयेश अथवा सप्तमेश इन दोनों में से जिस किसी की महादशा आवे, उस महादशा में मृत्यु की सम्भावना रहती है।

आयुर्योग निश्चित करना यह कठिन समस्या है और वह निश्चित करने के लिये अनेक पद्धतियाँ हैं। उन सब पद्धतियों में शुभ या पापग्रह जिस प्रकार से कुण्डली में स्थित हों, उस मान से आयुर्योग निश्चित करना यह उत्तम मार्ग है। गणित द्वारा आयुर्दाय निकालकर पत्रिकाओं में लिखना यह सर्व सामान्य ज्योतिषी लोगों की पद्धति है, उसमें कुछ भी तथ्य नहीं है। छोटे बालकों की मृत्यु और पैदा होते ही मृत्यु यह महादशा अथवा गणित पर से निकाला हुआ आयुर्दाय इस पर से कैसे संभव हो सकता है। इस दशा विचार में एक ऐसा प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि आयुर्योग निश्चित करना यह आद्य कृत्य है तो निश्चित किये हुए समय में यदि मारक दशा नहीं आती हो, तो मृत्युकाल किस प्रकार से समझ में आ सकता है। सारांश यह है कि दशाओं पर से या गणित करके निकालकर आयुर्योग पर से मृत्यु कहना, अति कम संभवनीय है। पत्रिका बनवाने आने वाले व्यक्ति को किस वर्ष में क्या घटना होने वाली है यह समझने की उत्कंठा रहती है और ज्योतिषी को तो यह मुख्यतः कहना चाहिये। यह कहने के लिये प्रत्येक वर्ष ग्रह किस प्रकार से आवेंगे, यह देखना अति आवश्यक है। यह काम अति परिश्रम का है इसीलिये दशा प्रकरण की उत्पत्ति हुई है ऐसा मालूम पड़ता है। दशाएँ तो अनेक प्रकार की हैं और उन सबमें एकवाक्यता नहीं है। ऐसी परिस्थिति जब है तब ज्योतिष लोग इन दशाओं की खटपट में क्यों पड़ते हैं, समझ में नहीं आता। किसी निश्चित समय में किसी ग्रहसे कोई निश्चित घटना घटेगी यह कहने के लिये उस उस समय में ग्रह किस प्रकार से आवेंगे यह देखना चाहिये।

स्वर्गीय पंडित रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) इनके मत के अनुसार ---

"उनमें से सप्तम स्थान की अपेक्षा द्वितीय स्थान अधिक बलवान होता है द्वितीय स्थान के स्वामी की अपेक्षा द्वितीय स्थान में स्थित ग्रह अधिक बलवान होते हैं। द्वितीय स्थान में स्थित ग्रहों की अपेक्षा द्वितीय स्थान के स्वामी से युक्त पापग्रह अधिक बलवान होते हैं।

सप्तम और द्वितीय ये मारक स्थान कहे गये हैं। उनमें से पहिले की अपेक्षा दूसरा अधिक बलवान है। अर्थात् सप्तम स्थान शुभ होकर द्वितीय स्थान अशुभ हो तो अशुभ ही अनुभव में आवेगा। उसी प्रकार सप्तम स्थान अशुभ होकर द्वितीय स्थान शुभ हो तो शुभ ही अनुभव में आवेगा। द्वितीय स्थान के स्वामी की अपेक्षा द्वितीय स्थान में स्थित ग्रह अधिक बलवान होते हैं याने द्वितीयेश शुभग्रह होकर द्वितीय स्थान में पापग्रह हो तो अशुभफल ही प्राप्त होगा। अथवा द्वितीयेश अशुभग्रह होकर द्वितीय स्थान में शुभग्रह स्थित हो तो शुभफल प्राप्त होगा। परन्तु यदि द्वितीयेश पापग्रहों से युक्त हो तो द्वितीय स्थान में स्थित शुभग्रहों के फल नहीं प्राप्त होंगे। स्थान ग्रह और स्थानेशयुक्त ग्रह इनके बलाबल का यह नियम द्वितीय स्थान के अनुसार सप्तम स्थान को भी लागू है (तात्पर्य यह है कि द्वितीय स्थान अति महत्व का है)।

पंडित ज्योतिप-तीर्थ सीतारामजी झा (हिन्दी टीकाकार) के मत के अनुसार ---

("नक्षत्रायुः कलौ युगे" इस वचन के अनुसार नक्षत्रायुर्दाय साधन करके जो वर्षादि प्रमाण आता है, ठीक उसी समय में किसी का मरण हो जाय ऐसा नियम नहीं है, उससे आगे पीछे भी प्रवल मारकेश की दशा अन्तर्दशा प्राप्त होने पर मरण होता है; इसी विषय के स्पष्टार्थ मारकेश का निर्णय कहते हैं)।

उक्त मारक स्थान (२।७) के स्वामी की दशा अन्तर्दशा समय में, वा मारक स्थान में जो पापी ग्रह हो, वा मारकेश ग्रह के साथ में जो पापी ग्रह हो उनकी दशा अन्तर्दशा समय में संभव रहने पर (गणितागत आयुर्दाय की समाप्ति समय उपस्थित होने पर) प्राणियों का मरण होता है। इनके असम्भव होने पर (अर्थात् मारक स्थान में कोई भी पाप-फलद ग्रह न हो, तथा मारकेश के साथ भी कोई पापी ग्रह न हो, उस हालत में) लग्न से

द्वादशाधीश ग्रह की दशा में मारकेश की अन्तर्दशा आने पर मरण होता है।

मारक स्थान (२–७) के स्वामी और उनके संबंधी (अर्थात् मारक स्थान में रहने वाला, वा मारकेश के साथ रहने वाला) पापी (त्रिषडायादि स्थान के स्वामी), ग्रह—ये तीन प्रकार के मुख्य मारक हैं। इनमें भी द्वितीयेश सबसे प्रवल, उससे न्यून द्वितीयेश के साथ रहने वाला, उससे न्यून सप्तम में रहने वाला, उससे भी न्यून बल सप्तमेश के साथ रहने वाला पापी ग्रह मारक होता है। इनमें जो प्रवल मारक हो उनमें से किसी एक की दशा और दूसरे की विपाक (अन्तर्दशा) आने पर संभव रहने पर मरण समझना। इन (मारक संवंधी ग्रहों) के असंभव होने पर द्वादशेश की दशा में मारकेश की अन्तर्दशा आने पर मरण होता है।

पंडित रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) के मतानुसार ---

"अब सप्तम स्थान की अपेक्षा दूसरा ग्रह बली हैं, इसका विचार लिखते हैं--सप्तम और दूसरा इन दोनों में सप्तम स्थान से दूसरा स्थान अधिक वली है—इसलिये द्वितीयेश की दशा में जो संभव हो तो मनुष्य का मरण कहना चाहिए अथवा दूसरे स्थान में बैठे हुए पापी ग्रह द्वितीयेश करके युक्त हो, तो उनकी दशा में मरण कहना चाहिए। अथवा द्वितीयेश से संवंध करने वाले पापी ग्रहों की अन्तर्दशा में प्राणियों का मरण कहना और जो इसमें संभव न हो तो लग्न से द्वादश स्थान के स्वामी की दशा में अथवा व्ययाधीश से संवंध करने वाले जो पापी ग्रह हैं उनकी दशा में मरण कहना चाहिये ॥२४।२५॥

राज ज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) के मत के अनुसार :—

पहले कहे जो दोनों मारक स्थान उनमें सप्तम स्थान के मारक से द्वितीय स्थान का मारक बली होता है। इसमें द्वितीयेश की दशा में अयुर्दाय क्रम से संभव हो तो जिस पुरुष की आयु अल्पायु है वह विपततारा में मृत्यु पाता है। जिसकी मध्यायु है वह प्रत्यरि-तारा में और जिसकी उत्तम आयु है वह मारक-नक्षत्र में मृत्यु पाता है। उपर कही हुई तीनों प्रकार की आयु अल्प, मध्य और उत्तम भेद से तीन प्रकार की होती है—

अल्प-अल्पायु मध्य अल्पायु, उत्तम-अल्पायु। अल्प-मध्यायु, मध्य-मध्यायु, उत्तम-मध्यायु। उत्तम आयु, मध्य-उत्तम आयु, उत्तम-उत्तम आयु।

इस प्रकार प्रथम आयुष्य का विचार कर निश्चय कर तब मृत्यु का विचार करना। यदि पुरुष अल्पायु सिद्ध हो जावे तो जव उसे मारकेश की दशा आवेगी तो मारकेश के स्थान में रहने वाले पापग्रहों की दशा आगे आवेगी, वा

मारकेश के साथ ही ग्रह की दशा आवेगी, तब पुरुष की मृत्यु होगी। इसी भांति मध्यायु और उत्तमायु की भी मृत्यु होती है।

सुश्लोक-शतक के ग्रंथकार के मत के अनुसार :—

"सप्तम या द्वितीय मारक स्थान हैं, उनमें से प्रबल मारक स्थान द्वितीय स्थान (धन-स्थान) है। यदि मारकेश का संवंधी कोई पाप ग्रह हो तो उसकी दशा में मृत्यु होगी ऐसा कहना चाहिये, अर्थात् सप्तम अथवा द्वितीय स्थानों के स्वामी, सप्तम अथवा द्वितीय स्थानों में स्थित पापग्रह अथवा द्वितीयेश सप्तमेश इनके स्वामियों से संवंध करने वाले पापी ग्रह मारक (मृत्यु कारक) होते हैं।"

उद्योत टीकाकार के मत के अनुसार :—

सप्तमेश से द्वितीयेश वलवान है इसलिये मारकता द्वितीय स्थान में अधिक है। मारकेश से संवंध—इसका अर्थ ऐसा है कि मारकेश के स्थान से (द्वितीय अथवा सप्तम स्थान से) संवंध करना अथवा मारकेश ग्रह से सम्वन्ध करना उनकी दशा अन्तर्दशा में मृत्यु होती है (मनुष्य का मरण कहना चाहिये) एवं द्वितीयेश द्वितीय भवन में हो और पापीग्रहों करके युक्त हो तो उन पापी ग्रहों के अन्तर में संभव हो तो भी मनुष्य का मरण कहना चाहिये। यदि अल्प, मध्य, दीर्घायु योग से मृत्यु समय पर इन ग्रहों में से किसी भी ग्रह की दशा, अन्तर्दशा न पायी जाती हो तो व्ययेश ग्रह की दशा ही मनुष्य की मृत्यु देती है।

संभव शब्द का तात्पर्य यह है कि मनुष्य की आयु तीन भागों में विभक्त की गई है–(१) अल्पायु (२) मध्यायु (३) दीर्घायु; जिसमें ३२ वर्ष पर्यंत अल्पायु, ७० वर्ष पर्यंत मध्यायु और इससे उपर दीर्घायु जानना।

विद्यारत्न पंडित माधव प्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) के मतानुसार :—

इन दोनों मारकों में अष्टम का मारक वलवान है और तृतीय स्थान का उससे भी वलवान है। इसमें द्वितीयेश की अन्तर्दशा में मनुष्य का मरण होता है वा द्वितीय स्थान में जो-जो पापग्रह रहते हैं (तृतीयेश, षष्ठेश और द्वादशेश) उनकी अन्तर्दशा में मनुष्यों की मृत्यु होती है।

यदि इन मारकेशों की दशा वा अंतर्दशा में मृत्यु न होवे तो व्ययेश के -जन्म-लग्न से द्वादश स्थान के-स्वामी की वा उसके साथी पापग्रहों की दशा वा अन्तर्दशा में मृत्यु होती है। मनुष्य की आयु तीन श्रेणी में वँटी है। प्रथम, स्वल्प, द्वितीय-मध्यम, तृतीय-दीर्घ। ३२ वर्ष के पहले जो आयुष्य समाप्त होती

है उसे स्वल्प कहते हैं। ३२ वर्ष के बाद जो आयुष्य समाप्त होती है उसे मध्यम कहते हैं। और ७० से उपर जो आयु समाप्त होती है उसे दीर्घ कहते हैं।

जिसका लग्नेश सूर्य होता है वह अल्पायु है, जिसके लग्नेश शुक्र, शनि वा चन्द्रमा है वह मध्यायु है। जिसके लग्नेश बुध, बृहस्पति, मंगल है वह दीर्घ आयु है।

सज्जन रंजनी टीकाकार के मत के अनुसार:—

द्वितीय की अपेक्षा द्वितीय स्थान स्थित जो पापग्रह हों वे अधिक बलवान होते हैं। इन द्वितीय स्थान में बैठे हुए पापग्रहों में से जो पापग्रह अधिक पापी हो तो वह विशेष बलवान मारक है ऐसा समझना चाहिए। इससे भी अधिक बलवान मारक ग्रह वह पापग्रह होता है जो द्वितीयेश से युक्त होता है।

श्री विनायक शास्त्री के मत के अनुसार :—

"यहाँ पापी शब्द से जो विशिष्ट दोष हो, अर्थात् नीच, अस्तंगत, पापयुक्त, पापाक्रान्त, शत्रु-क्षेत्र स्थित, इत्यादि इस प्रकार के ग्रह लेना चाहिये इनमें द्वितीय की अपेक्षा सप्तम स्थान अधिक प्रबल मारक स्थान है। यदि सप्तमेश या द्वितीयेश गुरु अथवा शुक्र हों तो उनकी विशेष मारकता होती है और यदि वे मारक स्थान में बैठे हों तो उनमें विशेष करके मारकत्व होता है। सप्तमेश होने के नाते सबसे अधिक मारकत्व गुरु को और उसके बाद शुक्र को, उससे कम बुध को, और उससे कम चन्द्रमा को है।

सर्वप्रथम सप्तमेश के मारकत्व का विचार करना चाहिये, उसके बाद द्वितीयेश का और उसके बाद गुरु और शुक्र का क्योंकि मारक स्थान को छोड़कर अन्य स्थान में बैठकर भी ये मारक बन सकते हैं। किन्तु केन्द्रेश (सप्तमेश) गुरु, शुक्र यदि मारक स्थान में बैठे हुए न हों तो उनको मारकेश बनने के लिये किंचित पापयुक्त होना आवश्यक होता है इसलिये मारकेश की स्थिति इनको है या नहीं ऐसा सर्वप्रथम देखकर फिर यह विचार करना चाहिये, और उसके पश्चात् पाप-संयुक्ति का विचार करना चाहिये।

मारक के विचार में प्रथम मारकेश—बाद में मारक स्थान स्थित ग्रह उसके बाद मारकेश में संयुक्त पापग्रह इन तीनों में से प्रथम-द्वितीय से बली और द्वितीय-तृतीय से बली मारक स्थान होता है। जिस ग्रह में प्रबल मारकत्व हो उसकी दशा अंतर्दशा में मृत्यु की संभावना रहती है। मेरे मत में (टीकाकार के मत में) पाराशरी मत में जैमिनीय मतों का संमिश्रण करना उचित नहीं है।

श्री पंडित रामयत्न जी ओझा के मत के अनुसार :—

(i) लग्नेश–अष्टमेश, (ii) मन्द (लग्न अथवा शनि तथा चन्द्रमा) (iii) लग्न तथा होरा लग्न; इनके द्वारा प्रथम यह निश्चित करना जरूरी है कि जातक अल्पायु, मध्यायु अथवा दीर्घायु है। यह निर्णय करने के पश्चात् जिस खण्ड में आयु आती हो उस खण्ड में कौन से मारक ग्रह के द्वारा कौन से स्थान में स्थित पापग्रह के द्वारा अथवा मारकेश–संयुक्त पापग्रह के द्वारा दशा प्राप्त होती है–इन सबका विचार करने के बाद मारक दशा का निर्णय करना उचित होगा।

शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या (गुजराथी टीकाकार) के मत के अनुसार :—

"(प्रथम कहे अनुसार) सप्तम तथा द्वितीय स्थान में से द्वितीय स्थान बलवान होता है। द्वितीय स्थान के स्वामी की अपेक्षा द्वितीय स्थान में स्थित पापग्रह अधिक बलवान होता है। द्वितीय स्थान में स्थित ग्रह की अपेक्षा द्वितीय स्थान के स्वामी से युक्त पापग्रह अधिक बलवान होता है।

इन पापग्रहों की दशा–अंतर्दशा में मनुष्यों की मृत्यु संभव होती है। यदि इस प्रकार मृत्यु संभव न हो तो उन स्थानों के स्वामियों की या व्ययाधीश की दशा में अवश्य करके मनुष्य की मृत्यु होती है।

इनके विचार पंडित रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन के साथ मिलते जुलते हैं।

पंडित उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराथी टीकाकार) के मत के अनुसार :—

"सप्तम स्थान से द्वितीय स्थान अधिक बलवान होता है। द्वितीयेश और सप्तमेश इनमें जो बलवान हो उसकी अथवा उस स्थान में जो पापग्रह बैठा हो उसकी–अथवा उसके स्वामी के साथ जो ग्रह संबंध करता हो उसकी-दशा में मरण संभव होता है। उपरोक्त कहे हुए ग्रहों की दशा में मरण संभव न हो तो बारवें भाव के स्वामी की दशा के अंतर्दशा में मृत्यु समझना चाहिये। हिन्दी टीकाओं में तदीशतु शब्दों में तद् पद को द्वितीय स्थान के अधिपति के साथ में योजा गया है और संबंध के अनुसार विचार करते उसकी गणना गैरवाजवी नहीं है परंतु पाराशर के मत के अनुसार द्वितीयाधिपति या सप्तमाधिपति इन दोनों में से जो बलवान हो उसको ही तद् पद लागू करना चाहिये। किसी प्रसंग में सामान्य पापग्रह अकेला ही मारक बनता है इसका इस अध्याय में स्वतः उल्लेख है। इसलिये सप्तमाधिपति के बारे में ग्रंथकार ने उल्लेख किया नहीं है ऐसा मानना असंगत होगा, इसलिये तद् शब्द द्वितीयाधिपति और

सप्तमाधिपति को लागू करना यथार्थ हैं। सिवा पाराशर होरा शास्त्र में वचन है कि मारक पद दोनों स्थानों को लागू होता है।

मारकस्य दशाकाले मारकस्थस्य पापिनः।
पाके पापयुजां पाके संभवे निधनं दिशेत् ।।
असंभवे व्ययाधीशदशायां मरणं नृणाम्।
अभावे व्ययभावेशसंबंधिग्रहभुक्तिषु ॥
तदभावेऽष्टमेशस्य दशायां निधनं पुनः।
एतद्दशांतर्भुक्त्यादौ विचार्यैव मृतिं वदेत् ॥

चन्द्रमा और सूर्य को छोड़कर अन्य सब ग्रह मारक बनते हैं। छठा, आठवां, बारवां, भाव में पड़ा हुआ राहु और केतु भी मारक बनता है। संबंधी ग्रह में बलवान ग्रह मारक कहलाता है। सबमें समान बल वाला ग्रह मारक कहलाता है। मारक ग्रह का स्वामी अथवा मारक ग्रह जिस राशि में बैठा हो उस राशि के स्थिर पर्यादि दशा के पाक कालीन अथवा विंशोत्तरी दशा प्रमाणे मारक ग्रह की महादशा में वे ग्रह मृत्यु योग करते हैं। मृत्युकारक मारक ग्रह के सिवाय अन्य बलवान मा.रक ग्रह अपनी दशा अंतर्दशा में रोग कष्ट प्रदान करते हैं। अष्टमाधिपति की महादशा में दीर्घ मध्य अल्पायु के प्रमाण से निर्णय करके जिस खण्ड में मृत्यु आती हो उस ग्रह की दशा अंतर्दशा में निश्चय करके मृत्यु होती है। थोड़े बहुत अंशों में बहुत से ग्रह मारक बनते हैं, मारक ग्रह जो निर्बल हो तो उसकी दशा में थोड़ा कष्ट होता है परंतु यदि मारक ग्रह बलवान हो तो मारक रोग की व्याधि होकर मरण प्रायः कष्ट, निष्कारण भीति (भय) शोक, चोर या अग्नि भय, ये सब उत्पन्न करते हैं।

स्पष्टीकरण :—

सर्वप्रथम आयु देखनी चाहिये क्या पूर्णायु मध्यायु वा अल्पायु है? पूर्णायु जब निश्चित होगी तब और मारकेश की दशा आवेगी, तो मृत्यु तुल्य अरिष्ट देकर निकल जायगी और यदि आयुर्योग मध्यायु अथवा अल्पायु हो और उस काल खण्ड में द्वितीय स्थान में मारकेश से युक्त पापग्रह की महादशा आती हो तो उस दशा में मृत्यु होने की संभावना रहती है। परंतु जब उसकी महादशा उस काल खण्ड में नहीं आती हो द्वितीयेश तथा सप्तमेश इन दोनों में से किसी एक की महादशा आती हो, तब उस दशा में मृत्यु की संभावना रहती है। यहाँ पर निधन शब्द का अर्थ प्रत्यक्ष रूप में मृत्यु नहीं लेते हुए मृत्यु का संभव इतना ही लेना चाहिये। किस समय अरिष्ट आने की संभावना है यही

इस श्लोक में कहा गया है। ये ग्रह अशुभ होंगे तब ही अरिष्ट आने की संभावना है। शुभ होगें तो मनुष्य को दीर्घायु समझना चाहिये।

संभव लक्षणम् :—आयुष्य तीन प्रकार का होता है उसका प्रमाण :—

"त्रिविधश्चायुषां योगः स्वल्पायुर्मध्यमुत्तमम्।
द्वात्रिंशत्पूर्वमल्पं तु तदूर्ध्वं मध्यमं भवेत् ॥१॥
आसप्ततेस्तदूर्ध्वं तु दीर्घायुरिति संमतम्।
उत्तमायुः शतादूर्ध्वं मुनीशाः संति तद्विदः ॥२॥

भावार्थः—आयु तीन प्रकार की है—स्वल्पायु, मध्यायु और पूर्णायु। ३२ वर्ष से पहले अल्पायु है, और उसके बाद मध्यायु ७० वर्ष तक, फिर दीर्घायु, फिर १०० वर्ष के अनन्तर हो तो उत्तम आयु कही जाती है।

अब जैसे माना कि मनुष्य अल्पायु है और उसके मध्य में मारकेश की दशा आयी मारकेश स्थान स्थित पाप ग्रह कहिये ३।६।११ वे स्थान के स्वामी की दशा आई अथवा मारकेश से संबंध कर्ता की दशा आई, तो मरण अवश्य कहना। इसी प्रकार मध्यायु और पूर्णायु में विचार करना चाहिये।

अब जैमिनी सूत्रों में जो वर्णन किया है वह इस प्रकार है :—

"प्रथमयोरुत्तरं दीर्घमिति"। अयमर्थः :—

"चरराश्योर्यदि लग्नेशाष्टमेशौ भवत स्तदा दीर्घमायुः।
स्थिरद्विस्वभावयोर्वा लग्नेशाष्टमेशौ यदि तदपि दीर्घमायुः ॥

अर्थात् लग्नेश और अष्टमेश ये दोनों चर राशि के हों अथवा लग्नेश स्थिर राशि को और अष्टमेश द्विस्वभाव राशि को अथवा लग्नेश द्विस्वभाव और अष्टमेश स्थिर राशि को हो तो दीर्घायु होता है।

अथ मध्यायुराह :—"प्रथमद्वितीययोरन्त्ययोर्वा मध्यमिति"। अयमर्थः :—

'चरस्थिरयोर्यदि लग्नेशाष्टमेशौ तदा मध्यमायुः।
द्विस्वभावयोर्वा लग्नेशाष्टमेशौ यदि तदापि मध्यमायुरित्यर्थः ॥

अर्थात् लग्नेश चर और अष्टमेश स्थिर, अथवा अष्टमेश चर और लग्नेश स्थिर, अथवा लग्नेश अष्टमेश ये दोनों द्विस्वभाव राशि में हों तो मध्यमायु योग होता है।

अथाल्पायुराहः—"मध्यायोराद्यन्तर्योवा हीनमिति"। अयमर्थः :—

स्थिरयोर्यदि लग्नेशाष्टमेशौ तदाप्यल्पमायुरिति।

अर्थात् लग्नेश और अष्टमेश दोनों स्थिर राशियों में हों अथवा लग्नेश चर और अष्टमेश द्विस्वभाव राशियों में हो, अथवा लग्नेश द्विस्वभाव और

अष्टमेश चर राशियों में हो तो अल्पायु योग होता है। लग्नेश, अष्टमेश इत्यादि पर से जैमिनीय सूत्रों के अनुसार अल्पायु, मध्यायु, दीर्घायु इनका निर्णय इस प्रकार समझना चाहिये।

(i) लग्न और सप्तम इनसे जो अष्टमेश हो, उन दोनों में से जो अधिक वलवान् हो, वह लग्न से यदि केन्द्र में हो तो दीर्घायु, पणफर स्थानों में (२।५।८।११) हो तो मध्यायु और आपोक्लिम (३।६।९।१२) स्थानों में हो तो अल्पायु समझना।

(ii) इन उपरोक्त दोनों ग्रहों में कौन-सा विशेष बलवान् है इसका निर्णय जैमिनि ऋषि ने इस प्रकार किया है। जो ग्रह अकेला बैठा हो उसकी अपेक्षा जो ग्रह अन्य दूसरे ग्रहों के साथ बैठा हो तो वह अधिक बली है ऐसा समझना चाहिये। जो ग्रह दो ग्रहों के साथ बैठा हो तो उसकी अपेक्षा जो ग्रह दो से अधिक ग्रहों के साथ बैठा हो, तो वह ग्रह विशेष वलवान् है ऐसा समझना चाहिये। कल्पना करो कि एक ग्रह, दो ग्रहों के साथ बैठा है और दूसरा तीन ग्रहों के साथ तो जो ग्रह तीन ग्रहों के साथ बैठा हुआ हो तो वह इस दो ग्रहों के साथ बैठे हुऐ ग्रह की अपेक्षा विशेष बली होता है। यदि दोनों ही अकेले बैठे हों और अन्य कोई ग्रह से युक्त न हों तो, या वे दोनों एक-एक, दो-दो, तीन-तीन ग्रहों के साथ हों और इस प्रकार ग्रह सामने हो तो जो ग्रह स्थिर राशि में बैठा हुआ हो वह चर राशि में बैठे हुए ग्रह की अपेक्षा अधिक बलवान् है। और जो ग्रह द्विस्वभाव राशि में बैठा हुआ है वह स्थिर राशि में बैठे हुए ग्रह की अपेक्षा बली है ऐसा समझना चाहिये (यहाँ पर जिन दो ग्रहों का तुलनात्मक विचार किया है वे दो ग्रह अर्थात् लग्न और सप्तम इन स्थानों से जो अष्टमेश है वह एक १—ग्रह और जो लग्नेश और सप्तमेश इनमें से वलवान् हो वह दूसरा ग्रह ऐसा समझना)।

(iii) दूसरा विचार जन्म कुण्डली में जो आत्मकारक ग्रह होता है उस पर से आयुष्य का निदान किया जाता है। आत्मकारक माने क्या ? जो ग्रह राशियों में सर्वाधिक अंश, कला, विकला का होता है उसे आत्मकारक ग्रह कहते हैं। राशि की संख्या से उसका कोई संबंध नहीं होता। केवल अंशों की संख्या पर से ही आत्मकारक का निर्णय किया जाता है। आत्मकारक ग्रह से (याने आत्मकारक ग्रह जिस राशि में हो उस राशि से) अथवा आत्मकारक से जो सप्तम स्थान—इन दोनों स्थानों से जो अष्टम स्थान—उनके स्वामियों में से जो अधिक बलवान् ग्रह हो (बलवान् ग्रह का निर्णय करने का प्रकार ऊपर बतलाया है उस प्रकार से) वह ग्रह यदि

आत्मकारक ग्रह के साथ हो या उससे केन्द्र में हो तो दीर्घायु अथवा आत्मकारक से पणफर (२।५।८।११) स्थानों में हो तो मध्यायु और वह ग्रह आत्मकारक से आपोक्लिम (३।६।९।१२) स्थानों में हो तो अल्पायु समझना चाहिये।

लग्न विषम हो और आत्मकारक ग्रह तृतीय स्थान में हो अथवा लग्न सम हो और आत्मकारक ग्रह एकादश स्थान में हो और आत्मकारक तथा उससे जो सप्तम स्थान और उस सप्तम स्थान से गिनने पर जो अष्टमेश हो और उनमें से जो अधिक बलवान् हो और वह यदि केन्द्र स्थान में हो तो अल्पायु, पणफर स्थान में हो तो मध्यायु और आपोक्लिम स्थान में हो तो दीर्घायु समझना चाहिये। यदि उपरोक्त अष्टमेश और आत्मकारक एकत्र बैठे हों तो मध्य आयु समझना। पंडित जी के मत के अनुसार विषम लग्न हो तो मेष, वृषभ, मिथुन इस क्रम से और लग्न सम हो तो वृषभ, मेष, मीन इस क्रम से गणना करनी चाहिये। परन्तु बहुत-से विद्वान् लग्न विषम हो अथवा सम हो चालू क्रम से ही गणना करते हैं। इस प्रकार आयुष्य लगभग कितना है इस बात का निर्णय कर लेने पर किस ग्रह की दशा मारक हो सकती है इसका विचार करना चाहिये। पंडित जी कहते हैं कि लग्न, कर्म (दशम), आयु (अष्टम), इनके स्वामी केन्द्र, एकादश अथवा त्रिकोण—इन स्थानों में हों तो दीर्घायु, तृतीय अथवा चतुर्थ स्थानों में पाप ग्रह हो अथवा पणफर (२।५।८।११) स्थानों में इनमें से कोई ग्रह हो तो मध्यायु और इनसे अन्य स्थानों में ग्रह हो तो अल्पायु योग समझना चाहिये।

दीर्घायु, मध्यायु, अल्पायु योग—(१) लग्न और चन्द्रमा इनके द्रेष्काण में के राशि के अनुसार (२) लग्नेश और चन्द्रमा जिन राशियों में स्थित हों उनके स्वामी जिन नवमांशों में हों उनके स्वामियों की स्थिति के अनुसार, (३) तथा लग्नेश और अष्टमेश ये दोनों जिस द्वादशांश में हों उन राशियों पर से किस प्रकार से निर्णय करना चाहिये इसके लिये निम्नलिखित बताये अनुसार निर्णय करना चाहिहये।

(१) लग्न-द्रेष्काण और चन्द्र द्रेष्काण राशि

(२) लग्नेश नवांश राशि और चन्द्रेश नवांश राशि

(३) लग्नेश द्वादशांश राशि और रन्ध्रेश द्वादशांश राशि

ये दोनों राशि चर हों अथवा एक स्थिर और दूसरी द्विस्वभाव हो तो दीर्घायु, इनकी दोनों राशि द्विस्वभाव हों अथवा एक स्थिर वा दूसरी चर हो तो मध्यायु, उनकी दोनों राशि स्थिर हो अथवा एक द्विस्वभाव वा दूसरी चर

हो तो अल्पायु समझना चाहिये । इस प्रकार तीनों प्रकार के मतों का विचार करके वहुमत जिस प्रकार से आवे उस प्रकार से निर्णय करना चाहिये । दीर्घायु, मध्यायु, अल्पायु का निर्णय करने के लिये एक अन्य प्रकार इस प्रकार कहा है :—

यदि लग्नेश सूर्य का शत्रु हो तो अल्पायु, सम हो तो मध्यायु और मित्र हो तो दीर्घायु योग होता है ।

यदि जन्म लग्न का स्वामी स्वतः सूर्य हो तो चन्द्र राशि का स्वामी सूर्य का अधिमित्र अथवा मित्र हो तो दीर्घायु, सम हो तो मध्यायु, शत्रु अथवा अधिशत्रु हो तो अल्पायु। यदि अल्पायु हो तो अल्प अवस्था में मारकेश, मारक स्थान गत पापी अथवा मारकेश संयुक्त पापग्रहों की दशा जब आती है तब मृत्यु होती है । जैमिनीय अथवा फलदीपिका, जातक पारिजात इनके ग्रंथकारों के मत के अनुसार अल्पायु, मध्यायु अथवा दीर्घायु खण्ड है । वे इस प्रकार वर्णन किये गये हैं ।

प्रथम मत = ३२ वर्ष पर्यंत अल्पायु; ३२ से ६४ वर्ष पर्यंत मध्यायु; ६४ से ९६ वर्ष पर्यंत दीर्घायु ।

द्वितीय मत = ३६ वर्ष पर्यन्त, अल्पायु; ३६ से ७२ वर्ष पर्यन्त मध्यायु, ७२ से १०८ वर्ष पर्यन्त दीर्घायु,

तृतीय मत = ४० वर्ष पर्यन्त अल्पायु, ४० से ८० वर्ष पर्यन्त मध्यायु; ८० से १२० वर्ष पर्यन्त दीर्घायु,

इनमें से कौन से मत को स्वीकार करना चाहिए इसका विवेचन यहाँ करने बैठें तो इस ग्रंथ का बहुत ही विस्तार होने का भय है । जिज्ञासु लोगों को जैमिनीय पद्यामृतम् पंडित दुर्गाप्रसाद द्विवेदी और जैमिनि सूत्र—श्री अच्युतानन्द झा—लिखित देखना चाहिए ।

' जन्म लग्नेश्वर सूर्य का मित्र, सम अथवा शत्रु है इस आधार पर आयुष्य का निर्णय करने का प्रकार "सर्वार्थ चिंतामणि" नामक प्रसिद्ध ग्रंथ में दिया हुआ है परंतु लेखक के मत में यह पद्धति सर्वथा निर्णीत रूप से संतोषजनक अनुभव में नहीं आयी। कारण, शनि सूर्य का नैसर्गिक शत्रु है और यदि वह सूर्य से द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, दशम, एकादश, द्वादश स्थान में हो तो मकर और कुंभ लग्न के सब जातकों को अल्पायु समझना चाहिये । शुक्र भी सूर्य का शत्रु है और इस कारण से जबतक भी सूर्य और शुक्र एकत्र हों तब वृषभ, तुला लग्न के सभी जातक अल्पायु होने चाहिये। इस प्रकार वृषभ, तुला, मकर, कुंभ

लग्नों के जातकों को दीर्घायु होने की संभावना नहीं होगी परंतु अनुभव में ऐसा नहीं आता।

दीर्घायु—मध्यायु—अल्पायु के सम्बन्ध में योग और वर्ष के जानकारी के लिए कोष्टक :--

दीर्घायुः	दीर्घायुः	दीर्घायुः			
चर राशि में लग्नेश चर राशि में अष्टमेश	स्थिर राशि में लग्नेश द्विस्वभाव राशि में अष्टमेश	द्विस्वभाव राशि में लग्नेश स्थिर राशि में अष्टमेश	दीर्घ-दीर्घ १२० वर्ष	मध्य-दीर्घ १०८ वर्ष	हीन-दीर्घ ९६ वर्ष
मध्यायुः	मध्यायुः	मध्यायुः			
चर राशि में लग्नेश स्थिर राशि में अष्टमेश	स्थिर राशि में लग्नेश चर राशि में अष्टमेश	द्विस्वभाव राशि में लग्नेश द्विस्वभाव राशि में अष्टमेश	दीर्घ-मध्य ८० वर्ष	मध्य-मध्य ७२ वर्ष	हीन मध्य ६४ वर्ष
अल्पायुः	अल्पायुः	अल्पायुः			
चर राशि में लग्नेश द्विस्वभाव राशि में अष्टमेश	स्थिर राशि में लग्नेश स्थिर राशि में अष्टमेश	द्विस्वभाव राशि में लग्नेश चर राशि में अष्टमेश	दीर्घ-हीन ४० वर्ष	मध्य-हीन ३६ वर्ष	हीन-हीन ३२ वर्ष

जन्म लग्न और होरा लग्न (जन्म जिस समय का हो वह काल) सूर्योदय से लेना और उन इष्टघटिकादिग्रों को $2\frac{1}{2}$ संख्या से भाग देना भाग देने पर जो शेष संख्या बचेगी उस संख्या का उतने लग्न (होरा लग्न) जन्म से गणना करके जो लग्न आवे वह गत होरा लग्न समझना और उनके आगे का लग्न वर्तमान होरा लग्न समझना।

उदाहरणार्थ——जन्म काल सूर्योदय से २६ घटी है और जन्म लग्न तुला है इसलिए $२६ \div \frac{५}{२} = \frac{२६ \times २}{५} = \frac{५२}{५} = १०\frac{२}{५}$ इस पर से जन्म लग्न जो तुला है उससे दस होरा लग्न गत हुए और वर्तमान होरा लग्न सिंह संज्ञक है। (इस प्रकार होरा लग्न लाना चाहिये) ये दोनों चर संज्ञक हों तो दीर्घायुर्दाय योग होता है और जन्म लग्न और होरा लग्न स्थिर संज्ञक द्विस्वभाव संज्ञक हो तो दीर्घायु योग होता है। और जन्म लग्न और होरा लग्न ये द्विस्वभाव व स्थिर संज्ञक हों तो दीर्घायु योग होता है। जन्म लग्न और होरा लग्न ये दोनों लग्न द्विस्वभाव संज्ञक हों तो मध्यायुर्दाय योग होता है और जन्म लग्न और होरा लग्न ये चर और स्थिर संज्ञक हों तो मध्यायु योग होता है और जन्म लग्न और होरा लग्न ये स्थिर व चर संज्ञक हों तो मध्यमायुर्योग होता है। जन्म लग्न और होरा लग्न ये दोनों स्थिर संज्ञक हों तो अल्पायु योग होता है। जन्म लग्न और होरा लग्न ये दोनों चर और द्विस्वभाव संज्ञक हों तो अल्पायु योग होता है जन्म लग्न और होरा लग्न ये दोनों द्विस्वभाव व चर संज्ञक हों तो अल्पायुर्योग होता है ऐसा समझना चाहिये।

ग्रंथातर में आयु निर्णय इस प्रकार कहा है—

आयुःस्थानाधिपः पापैः सहैव यदि संस्थितः।
करोत्यल्पायुषं जातं लग्नेशोऽप्यत्र संस्थितः॥१॥

जो अष्टमेश पापग्रहों के साथ ही बैठा हो और वहाँ ही लग्नेश भी बैठा हो तो, मनुष्य को अल्पायु करता है।

षष्ठे व्ययेऽपि षष्ठेशो व्ययाधीशौ रिपौ व्यये।
लग्नेऽष्टमे स्थितौ वापि दीर्घमायुः प्रयच्छति॥२॥

षष्ठेश छठे हो वा द्वादश हो और द्वादशेश द्वादश हो वा छठे हो अथवा षष्ठेश और द्वादशेश लग्न में वा अष्टमस्थित हों, तो दीर्घायु करते हैं।

एवं हि शनिना चिन्ता कार्या तर्कविचक्षणैः।
कर्माधिपेन च तथा चिन्तनं कार्यमायुषः॥३॥

इसी प्रकार पण्डितों को आयु के देखने में शनि और दशमेश से विचार करना चाहिये अर्थात् अष्टमेश पापग्रहों के साथ हो उसके साथ शनि हो वा दशमेश हो।

स्वस्थाने स्वांशके वापि मित्रांशे मित्रमंदिरे।
दीर्घायुषं करोत्येव लग्नेशोऽष्टमपः पुनः॥४॥

लग्नेश वा अष्टमेश अपनी राशि का हो, अपने नवांशक का हो वा मित्र के नवांशक का हो वा मित्र की राशि का हो, तो दीर्घायु करता है।

लग्नाष्टमपकर्मेशमन्दाः केन्द्रत्रिकोणयोः।
लाभे वा संस्थितास्तद्वद्दिशेयुर्दीर्घमायुषम् ॥५॥

लग्नेश, अष्टमेश, और शनि ये केन्द्र त्रिकोण अथवा लाभ में बैठे हों, तो दीर्घायु करते हैं। इस प्रकार, अनेक प्रकार के योग हैं।

जातक चंद्रिका और भावार्थ रत्नाकर इन दोनों ग्रंथों में से मारक योग संग्रहीत किये गये हैं उस पर से अष्टमेश--अष्टम स्थान स्थित ग्रहों की कौन-कौन सी दशाओं में कौन-कौन सी अन्तर्दशा मारक होती है। षष्ठेश अथवा षष्ठ स्थान स्थित ग्रहों की कौन-कौन सी दशाओं में कौन-कौन सी अंतर्दशाएं मारक होती हैं उसी प्रकार व्ययेश अथवा व्यय स्थान स्थित ग्रहों की महा-दशाओं में कौन-कौन सी अंतर्दशाएं मारक होती हैं—इसकी जानकारी हासिल हो सकेगी।

भावार्थ रत्नाकर मारक तरंग

(१) व्ययेश की दशा में धनेश मारक होता है द्वितीयेश की दशा में व्ययेश मारक होता है।

(२) व्ययेश के दशाकाल में द्वितीयेश के साथ रहने वाले अथवा द्वितीयेश से दृष्ट ग्रह मारक बन सकते हैं।

(३) द्वितीयेश की दशा में व्यय में स्थित ग्रह और व्ययेश से दृष्ट ग्रह मारक बन सकते हैं।

(४) व्ययेश की दशा में व्यय स्थित पापग्रह अपनी अंतर्दशा में मारक हो सकते हैं।

(५) द्वितीय स्थान में पापग्रह हो और व्ययेश से युक्त हो तो व्ययेश की दशा में ये पापग्रह मारक हो सकते हैं।

(६) व्यय स्थान में पापी ग्रह हो तो उसकी दशा में द्वितीयेश से संबंधित पाप ग्रहों की अंतर्दशा मारक बन सकती है।

(७) अष्टमेश की दशा में स्वतः उसकी ही अंतर्दशा मारक हो सकती है।

(८) अष्टमेश की दशा में——षष्ठ स्थान स्थित पाप ग्रहों की दशा मारक हो सकती है।

(९) षष्ठेश की महादशा में अष्टम स्थित ग्रहों की अन्तर्दशा मारक हो सकती है।

(१०) अष्टमेश की दशा में—अष्टमेश से दृष्ट ग्रह की अन्तर्दशा मारक हो सकती है।

(११) अष्टमेश की दशा में—षष्ठेश से युक्त ग्रहों की अन्तर्दशा मारक हो सकती है।

(१२) अष्टम स्थान में पापग्रह हो तो उसकी दशा में षष्ठेश की अन्तर्दशा मारक हो सकती है।

(१३) षष्ठेश की महादशा में—अष्टमेश की महादशा मारक हो सकती है।

(१४) षष्ठ स्थान में यदि पापग्रह हों तो उनकी दशा में अष्टम स्थान गत ग्रह हो —उसकी अन्तर्दशा मारक बन सकती है।

(१५) षष्ठेश की दशा में—अष्टमेश की अन्तर्दशा मारक हो सकती है।

(१६) अष्टम स्थान में पापग्रह हो तो उसकी दशा में—षष्ठ स्थान स्थित ग्रहों की अन्तर्दशा मारक हो सकती है।

उपरोक्त षष्ठेश, अष्टमेश अथवा व्ययेश, वा षष्ठ, अष्टम, द्वादशगत ग्रहों के बारे में मारकेश होने के जो नियम बतलाये गये हैं उनके सम्बन्ध में निम्न विवेचन द्वारा स्पष्ट रीति से बोध हो सकेगा।

(१) अष्टमेश की महादशा में—

(क) अष्टमेश की अन्तर्दशा (ख) षष्ठ स्थानगत पापग्रहों की अन्तर्दशा (ग) षष्ठेश से युक्त ग्रहों की अन्तर्दशा (घ) अष्टमेश से दृष्ट ग्रहों की अन्दर्दशा।

(२) अष्टम स्थान स्थित यदि पापग्रह हो तो उसकी महादशा में—

(क) षष्ठेश की अन्तर्दशा (ख) षष्ठ स्थान स्थित ग्रहों की अन्तर्दशा।

(३) षष्ठेश की महादशा में—

(क) अष्टमेश की महादशा (ख) अष्टम स्थान स्थित ग्रहों की अन्तर्दशा।

(४) षष्ठ स्थान स्थित पापग्रहों की महादशा में—

(क) अष्टमेश की अन्तर्दशा (ख) अष्टमेश अष्टम में हो तो उसकी भी अन्तर्दशा।

(५) व्ययेश की महादशा में—

(क) धनेश की अन्तर्दशा (ख) द्वितीयेश से युक्त ग्रहों की अन्तर्दशा (ग) द्वितीयेश दृष्ट ग्रहों की अन्तर्दशा (घ) व्ययस्थित पापग्रहों की अन्तर्दशा (ङ) व्ययेश से युक्त द्वितीय स्थान स्थित ग्रहों की अन्तर्दशा।

(६) व्यय स्थान में पापी ग्रह हो तो उसकी महादशा में—

(क) द्वितीयेश से सम्बन्धित पापग्रहों की अन्तर्दशा।

(७) द्वितीयेश की महादशा में—

(क) व्ययेश की अन्तर्दशा (ख) व्यय स्थित और व्ययेश से दृष्ट ग्रहों की अन्तर्दशा।

मारक का निर्णय करने के लिए (मारक-तरंग) अध्याय में भावार्थ-रत्नाकर इस ग्रन्थ में जो अन्य योग कहे हुए हैं वे यहाँ प्रस्तुत हैं--

(१७) यदि बुध और शुक्र दोनों पंचम स्थान में हों तो वे एक दूसरे की महादशा में और अन्तर्दशा में मारक बन सकते हैं=बुध में शुक्र, शुक्र में बुध, आधिपत्य का विचार भी करना चाहिये।

(१८) यदि मंगल मारक स्थान का अथवा अनिष्ट स्थानों का स्वामी हो तो (मूल श्लोक में लिखा है कि यदि मंगल को क्रूराधिपत्य प्राप्त हो तो) मंगल की दशा मारक होती है।

(१९) शनि अच्छे स्थान का स्वामी क्यों न हो, यदि वह मारक ग्रह के साथ हो तो प्रबल मारक होता है।

(२०) यदि अष्टमेश लग्न में हो तो वह अपनी दशा में मारक बन सकता है।

(२१) यदि किसी भी व्यक्ति के दो अथवा तीन पुत्रों को राहु की महादशा एक ही समय में आती हो तो उस जातक की मृत्यु होती है।

खुलासाः--उपरोक्त महादशा और अन्तरदशाओं के साथ-साथ दीर्घायु, मध्यायु और अल्पायु योगों के आधार पर मृत्यु की सम्भावना है क्या— इसका विचार प्रथम करना चाहिये अन्यथा षष्ठ, अष्टम, व्यय स्थित अथवा इन भावों के स्वामियों की महादशा अथवा अन्तर्दशा तो आती जाती ही रहती है। मृत्यु नहीं होगी परन्तु धन इत्यादि में कमी होती है अथवा शत्रु, रोगादि पीड़ा अवश्य होती है। ग्रन्थकार श्री रामानुजाचार्य के कहने का अभिप्राय ऐसा है कि षष्ठ, अष्टम, द्वादश ये दुःस्थान हैं। इनके स्वामी और इन स्थानों में ग्रह कष्टकारक होते हैं। इस पर से यहाँ यह नहीं समझना चाहिये कि सिर्फ इन स्थानों के यह ही मारक बन सकते हैं।

जातक चन्द्रिका के मतानुसार निम्न लिखित ग्रह मारक होते हैं--

(१) द्वितीय स्थान का स्वामी; (२) द्वितीय स्थान स्थित पापग्रह; (३) अष्टम स्थान का स्वामी; (४) सप्तम स्थान स्थित पापग्रह; (५)

द्वितीय स्थान से युक्त पापी ग्रह; (६) सप्तमेश से युक्त पापग्रह; (७) अष्ट-मेश (८) तृतीय अथवा अष्टम स्थान का स्वामी यदि द्वितीय अथवा सप्तम स्थान के स्वामी के साथ हो; (९) मारक ग्रहों से युक्त शनि; (१०) षष्ठेश (११) जो ग्रह कुण्डली में सबसे निर्बल होता है वह ।

पिछले अध्यायों में तृतीय, षष्ठ, एकादश, स्थान का अधिपति ग्रह अनिष्ट फल देनेवाला होता है ऐसा कहा गया है। उसी प्रकार इस अध्याय में द्वितीय तथा सप्तम स्थान जो मारक स्थान कहे गये हैं उन स्थानों के अधिपतियों के सम्बन्ध में क्या-क्या फल मिलते हैं उसका विवेचन करने में आया है। इसी प्रकार आयुर्दाय अध्याय में आयुष्य में क्या-क्या फल मिलते हैं उस संम्बन्ध में खासतौर पर विवेचन में आयुष्य स्थान का कथन करके उसके साथ-साथ सम्बन्धित द्वितीय और सप्तम इन मारक स्थानों का भी यहाँ कथन करने में आया है। किस स्थान से कौन सा स्थान बलवत्तर है तथा उनमें कौन-कौन से ग्रह अनिष्ट फल देनेवाले हैं तथा किन-किन संयोगों के कारण अनिष्ट फल मिल सकता है इस सम्बन्ध में २४वें श्लोक के अर्थ का आधार लेकर संक्षिप्त में आयुष्य भवन के विशेष विचार इस प्रकार हैं।

स्वाभाविक रीति से जन्म कुण्डली पर से बालक के जन्म पश्चात् उसकी पत्रिका में उसके आयुष्य भवन के फल सामान्यतः लिखने की प्रथा है परन्तु उसके कई प्रकार के नियम हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार के हैं कि बालक के जन्म के पश्चात् चार वर्ष के अन्दर उसका आयुष्य निदान सही नहीं बताया जा सकता कारण कि उस अरसे में उसकी मृत्यु होने की सम्भावना बनी रहती है और उसमें उसके माता-पिता के तथा उस बालक के ग्रहों का सबके एकी-करण ही उसके विनाश का कारण बनता है, ऐसी योजना दर्शायी गयी है। इसके प्रमाण में फलित ज्योतिष ग्रन्थों में जातक पारिजात में इस प्रकार का निर्देशन आया है कि "जो बालक अपने जन्म के पश्चात् चार वर्षों के भीतर मरण पाता है तो उसका कारण उसके माता,पिता का पाप होता है और उसके बाद पाँच वर्ष से लेकर आठ वर्षों के काल में उसकी मृत्यु हो तो उसके पिता के पाप समुदायों के कारण से मरण प्राप्त होता है। उसके बाद नौ वर्ष से लेकर १२ वर्ष के अरसे तक यदि उसकी मृत्यु हो तो वह स्वयं अपने पापों के कारण से मरण पाता है। ऐसा समझना चाहिये (जा० पा० अध्याय ४ श्लोक १-२)। आगे चलकर इसी अध्याय में कहा गया है कि "मनुष्य के जन्म काल के पश्चात् आठ वर्ष तक बालारिष्ट कहा है, बीस वर्ष तक ग्रहों के योगों द्वारा अरिष्ट प्राप्त होता है। इसलिए उसे योगारिष्ट कहा है। ३२ वर्ष तक

आयु को अल्पायु, ७० वर्ष तक की आयु को मध्यायु और उसके पश्चात् १०० वर्ष तक की आयु को पूर्णायु कहा है।

इस पर से स्वाभाविक रीति से समझ सकते हैं कि आयुष्य भवन का फल कुण्डली पर से नक्की करना अति कठिन समस्या है कारण कि उपरोक्त कथन के अनुसार अल्पायुष्य, मध्यमायुष्य और पूर्णायुष्य अर्थात् क्रमशः ३२, ७०, १०० वर्ष पर्यंत तक जीवन क्रम के योगों पर से बराबर योगानुयोगों को मिलाकर स्पष्ट तौर पर फलादेश का कथन करना पड़ता है आयुर्दाय सम्बन्ध में अनेक योग महान विद्वानों ने निश्चित किये हैं और उन सबका एक साथ सम्मेलन करके सब फलों का कथन करना दुर्घट है। कारण यह है कि उन सबकी अपनी-अपनी पद्धति भिन्न है। क्योंकि उनमें शुभाशुभ ग्रह किन स्थानों पर किस प्रकार पड़े हुए हैं उसकी संकलना भिन्न-भिन्न प्रकार से बतायी गयी है। किसी वक्त पाप ग्रह भी अमुक संयोग से शुभत्व धारण करता है ऐसा कहते हैं, तो कई बार शुभग्रह भी संयोगवश पापग्रह होकर अनिष्टफल देने में समर्थ होता है और इन सब का योगानुयोग मिलाकर कथन करना दुर्घट है।

यहाँ तक तो दीर्घायु, मध्यायु, तथा अल्पायु का निर्णय करने के लिये जो जो नियम विभिन्न ग्रंथों में कहे हुए हैं वे यहाँ प्रस्तुत किये हैं जिस पर से एक बात शीघ्र ही ध्यान में आ सकती है कि आयुर्दाय का निदान करना इतना सरल नहीं है। यही कारण है कि ज्योतिष लोग जो पत्रिका बनाते हैं उनमें वे जो आयुर्दाय का निर्णय करके आयु का निदान लिखते हैं वह सही नहीं बैठता है। इसी प्रकार दशा महादशा के फल का वर्णन करते समय उस जातक की मृत्यु की संभावना भी बताते हैं लेकिन उनका वह फलित सही नहीं बैठता क्योंकि उनका आयुर्दाय का निर्णय सही नहीं होता।

अलाभे पुनरेतेषां सम्बन्धेन व्ययेशितुः।
क्वचिच्छुभानां च दशास्वष्टमेशदशासु च ॥२६॥
केवलानां च पापानां दशासु निधनं क्वचित्।
कल्पनीयं बुधैर्नृणां मारकाणामदर्शने ॥२७॥

मारक ग्रहों की दशा में मृत्यु नहीं होती हो तो कुण्डली में जो बलवान पापग्रह हो उसकी दशा में मृत्यु होती है। व्ययाधिपति की दशा में मृत्यु संभव न हो तो व्ययाधिपति से सम्बन्ध करने वाले पापीग्रहों की दशा में मरण योग बनेगा और व्ययाधिपति का सम्बन्ध पापग्रहों से न हो, तो व्ययाधिपति का सम्बन्ध जिन शुभग्रहों से हो, तो उनकी दशा में मृत्यु योग है ऐसा सम-

जना चाहिये और व्ययाधिपति का सम्बन्ध शुभग्रहों से नहीं हो तो जन्म लग्न से जो अष्टम स्थान हो—उसके अधिपति की दशा में मरण प्राप्त होगा अथवा लग्न से तृतीय स्थान के अधिपति की दशा में मृत्यु योग होगा। मारक स्थानाधिपति से सम्बन्धित शुभग्रहों को भी मारकत्व का गुण प्राप्त होता है ॥२६॥

मारक ग्रहों की दशा में मृत्यु नहीं आवे तो कुण्डली में जो वलवान पाप-ग्रह हो उसकी दशा में मृत्यु की संभावना होती है, ऐसा विद्वानों को मारक कल्पित करना चाहिये ॥२७॥

पंडित रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) के मत के अनुसार :—

जो व्ययाधिप की अथवा द्वादशेश से सम्बन्ध करने वाले पापी ग्रहों की दशा का भी अलाभ हो तो द्वादशेश से सम्बन्ध करने वाले शुभग्रहों की दशा में मरण कहना चाहिये और जो व्ययेश सम्बन्धी शुभग्रह की दशा भी न हो, तो कभी-कभी अष्टमेश की दशा में मरण कहना चाहिये ॥२६॥

जो मारक का असंभव हो, तो मारकेश के संवंध से रहित तीसरे, छठें, ग्यारहवें स्थान के स्वामियों की दशा में ही ज्योतिषियों को मरण कल्पना करनी चाहिये ॥२७॥

विद्यारत्न पंडित माधव प्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) के मता-नुसार :—

द्वादशेश, द्वादश स्थान में रहने वाले पापग्रह और द्वादशेश के साथ कोई ग्रह नहीं हो तो द्वादशेश के साथी शुभग्रहों की दशा में ही मृत्यु होती है वा जो ग्रह अष्टमेश होवे उसकी दशा में मृत्यु होती है।

पहिले कहे हुए सब प्रकार के मारकेशों में कोई भी न होवे, तो केवल पापग्रहों की दशा में ही मृत्यु होती है। अर्थात् इस समय तृतीय, षष्ठ और द्वादश स्थान के स्वामियों की दशा में ही मृत्यु होती है। चन्द्रमा और सूर्य को छोड़कर जो ग्रह मारक स्थान में रहता है, वह मारक होता है। षष्ठ, अष्टम, और द्वादश स्थान के स्वामी और राहु-केतु में जो ग्रह एकादश स्थान के नवांश का स्वामी होता है वह मारकेश है। इन सवकी दशा में मृत्यु होती है। इनमें शुभग्रह की दशा में शरीर कष्ट होता है और पापग्रह की दशा में मृत्यु होती है।

राज-ज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"यदि व्ययाधीश तथा उपर्युक्त पापग्रहों की दशा भी अप्राप्त हो तो द्वादशेश से सम्बन्ध करने वाले शुभ ग्रहों की दशा में तथा कहीं अष्टमेश की दशा में मरण कहना चाहिये ।

यदि पूर्वोक्त मारक ग्रहों में से किसी की दशा प्राप्त न होती हो तो मारकेश से सम्बन्धित न होते हुए भी केवल पापी ग्रह की दशा में ही विद्वानों को मारक कल्पित करना चाहिये ।"

ज्योतिषाचार्य-तीर्थ पण्डित सीताराम झा (हिन्दी टीकाकार) के मतानुसार :—

"कदाचित् उपरोक्त मारकेशों की दशा समय अप्राप्त होने पर व्ययेश, द्वादशेश, उपलक्षण से मारकेश से सम्बन्धी शुभग्रहों की दशा में भी; और कदाचित् अष्टमेश की दशा में भी मरण होता है । कदाचित् इन (मारकेश के सम्बन्धी शुभ और अष्टमेश) की दशा भी अप्राप्त हो तो केवल (मारकेश के सम्बन्ध बिना भी) पापफलद ग्रहों की दशा में प्राणियों का मरण होता है, ऐसा पंडितों को विचार करना चाहिये ।

पूर्वोक्त मारकेशों में द्वादशेश निर्बल है, और उसके साथ के सम्बन्ध से भी यदि शुभ ग्रह में मारकत्व आता है तो, मुख्य मारकेश (द्वितीयेश और सप्तमेश) के सम्बन्ध से निश्चय मारकत्व सिद्ध होता है । अथवा "व्यय" शब्द यहाँ मारक-स्थान का ही बोधक है । क्योंकि **"तयोरपि व्ययस्थानं मारकस्थानमुच्यते"** ऐसा उक्त भी है । तथा सम्बन्ध-परस्पर स्थान में या साथ में रहना ही समझना चाहिये ।

उद्योतकार कहते हैं कि :—

आयुर्दाय का विचार करके यदि आयु की समाप्ति का विचार—अल्पायु, मध्यायु, अथवा दीर्घायु—जिस खंड में आती हो उस खंड में यदि पूर्वोक्त मारक ग्रह की दशा प्राप्त होती हो तो व्ययेश की दशा में मृत्यु होती है । यदि व्ययेश, व्ययस्थानगत पापग्रह, व्ययेश संयुक्त पापग्रह इनकी दशा प्राप्त न होती हो तो व्ययेश से सम्बन्धित शुभ ग्रह की दशा में निधन होता है ।

(त्रि, षट्, आय आदि के स्वामित्व प्रयुक्त लक्षणों से युक्त शनि यदि मारकेश के साथ सम्बन्ध करेगा तो अन्य सब मारकेशों को पीछे डाल कर शनि स्वतः (खुद) मारकेश होता है । पापकृत् शनि मात्र मारक होता है इसका अर्थ ऐसा है कि अन्य मारकेशों की अपेक्षा शनि विशिष्ट मारकेश है, मारकेश से सम्बन्ध हो अथवा शनि मारक होवे तो उसके मारक होने में कोई संशय नहीं है ।) **श्लोक २८ का मतार्थ है ।**

पंडित विनायक शास्त्री कहते हैं कि :—

जब व्ययेश के साथ सम्बन्ध करने वाला ग्रह भी मारक बनता है तब उस पर से सप्तमेश–संबंधी, द्वितीयेश–संबंधी, केन्द्रेश–गुरु और शुक्र–संबंधी, व्ययेश–संबंधी, ये सबके सब सम्बन्धी लेने चाहिये। व्ययेश से सम्बन्धी इस वाक्य में भी व्यय स्थान गत पापग्रह, व्ययेश से संयुक्त पापी ग्रह इत्यादि जो सप्तमेश–द्वितीयेश प्रकरण में अर्थ लिये हुए हैं वे सबके सब अर्थ यहाँ पर भी लेने चाहिये।

यहाँ "अष्टमेश" अति पापी को इंगित करता है कारण सब भावाधीशों में अष्टमेश ही सर्वाधिक पापी होता है। इसलिए अष्टमेश के अंतर्गत अन्य अष्टमेश के साथ के न्यूनपापी ग्रह भी अष्टमेश के बाद क्रमशः लेने चाहिए।

पाराशरी में क्रमशः तीन व्ययाधीश बताये हैं :—

(१) अष्टम (आयु) का व्ययाधीश; (२) अष्टम (आयु) से अष्टम अर्थात् तृतीय स्थान का व्ययाधीश; और (३) लग्न (शरीर) का व्ययाधीश।

पंडित रामयत्न ओझा (फलित विकास टीकाकार) के मतानुसार :—

उपरोक्त स्थिति में व्ययेश की दशा तथा अन्तर्दशा भी मारक बन सकती है। व्ययेश से सम्बन्धित शुभग्रह की अन्तर्दशा में भी मृत्यु होती है। कहीं-कहीं उपर्युक्त मारकेश से सम्बन्धित शुभग्रहों की दशा अंतर्दशा में मृत्यु होती है। अर्थात् उपरोक्त मारक द्वितीयेश, सप्तमेश, गुरु, शुक्र, व्ययेश–इन ग्रहों से सम्बन्धित पापग्रह की दशा अंतर्दशा प्राप्त नहीं होती है तो उनसे सम्बन्धित शुभग्रहों की दशा, अंतर्दशा मारक होती है।

यदि वह भी प्राप्त नहीं होती हो तो अष्टमेश की दशा मारक होती है। अष्टमेश की दशा, अन्तर्दशा, प्रत्यंतर दशा में (जब पूर्वोक्त मारकेशों की दशा की प्राप्ति न होती हो तो) मृत्यु होती है। आयुष्य प्रबल हो तब मारक ग्रह शारीरिक कष्ट देते हैं। मृत्यु नहीं देते।

सज्जन रंजनी (टीकाकार) कहते हैं कि :—

व्ययेश से सम्बन्धित योग कारक की दशा-अन्तर्दशा में मृत्यु होती नहीं इसलिए व्ययेश से सम्बन्धित शुभग्रहों की दशा मारक कही हुई है वह योगकारक व्यतिरिक्त ऐसे शुभग्रह की होती है ऐसा समझना चाहिए।

यदि यह दशा प्राप्त होती नहीं तो अष्टमेश की दशा मारक होती है। कदाचित् ऐसा भी होता है कि—यदि अष्टमेश की भी दशा प्राप्त न होवे तो अष्टमेश से सम्बन्धित पापीग्रहों की दशा मृत्यु देती है। इस प्रसंग में सत्याचार्य का मत इस प्रकार है—

यो लग्नाधिपतेः शत्रुर्लग्नेशान्तर्दशागतः ।
करोत्यकस्मान्मरणं सत्याचार्यमतं त्विदम् ॥

अर्थात् जो लग्नेश का शत्रु हो और लग्नेश की अन्तर्दशा में हो (अर्थात् लग्नेश की महादशा में लग्नेश के शत्रु की अन्तर्दशा हो) तब आकस्मिक मरण प्राप्त होता है। यदि उपर्युक्त मारक दिखाई नहीं पड़ता हो तब मारकेश से असम्बन्धित पापीग्रहों की दशा में मृत्यु समझना। पापग्रह का अर्थ इस प्रकार है कि–त्रि, षट्, अथवा आय इनके स्वामी, सूर्य और चन्द्रमा के अतिरिक्त मारकेश-मारक स्थान के स्वामी, षष्ठ, अष्टम, व्ययस्थान के स्वामी, राहु और केतु इन सब में जो (लाभ) आय नवांशपति हो वह ग्रह अथवा चन्द्रमा जिस नवांश में हो, उसका स्वामी ग्रह मारक होता है। यह ग्रह यदि पाप षड्वर्गी, शत्रुगृह में, नीचवर्गी, अस्तंगत–ऐसा पापग्रह हो तो मृत्यु देता है। शुभगृह का हो तो पीड़ा मात्र देता है। (१) मंगल–राहु (२) मंगल–शनि (३) सूर्य–शनि (४) चन्द्र–बुध (५) शुक्र–बृहस्पति, ये जोड़ी जो कही हैं उनमें एक दूसरे की दशा-अन्तर्दशा जब आती है तब वह कष्टकारक हो जाती है। जैसे मंगल में राहु अथवा राहु में मंगल, मंगल में शनि अथवा शनि में मंगल इत्यादि।

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराती टीकाकार) कहते हैं कि :—

ऊपर कहे अनुसार यदि मृत्यु सम्भव न हो तो बारहवें भाव के अधिपति के साथ सम्बन्ध करने वाले पापी ग्रह की दशा में मरण जानना चाहिए। यदि वह भी सम्भव न हो तो बारहवें भाव के साथ सम्बन्ध करने वाले शुभग्रह की दशा में क्वचित् अनिवार्य प्रसंगों में मृत्यु सम्भव होती है। उस प्रमाण में यदि न बनता हो तो आठवें भाव के स्वामी की दशा अन्तर्दशा में मत्यु सम्भव है ऐसा जानना ॥२६॥

ऊपर निर्देशित योग में मारक ग्रह की दशा में मृत्यु सम्भव न बने तो केवल पापग्रह की दशा में मृत्यु सम्भव क्वचित् जानना। केवल पापग्रह **केवलानां च पापानाम्** इसका अर्थ ऐसा है कि मारक संबंध सिवाय तृतीय, षष्ठ, एकादश स्थान का स्वामी समझना ॥२७॥

श्लोक २६ में सिर्फ शुभग्रह का बारहवें स्थान के स्वामी के साथ संबंध इतना ही बताया हुआ है। परन्तु ऐसा मान लेवें कि बारहवें स्थान के स्वामी का पापग्रह के साथ सम्बन्ध हो तो मरण प्राप्त होता है। तो वह कारण-अध्याय रूप रखा है। इस पर २५वें श्लोक में मारक के साथ पापग्रह के विषय

में उल्लेख किया हुआ है। उसके सन्दर्भ पर से व्ययेश का पापग्रह के साथ होना मरण उत्पन्न करता है, ऐसा समझना चाहिए वैसा ही अर्थ श्लोक ३६पर भी निकाला हुआ है। इस पर पाराशर वाक्य **"अभावे व्यये भावेशसम्बन्धि-ग्रहभुक्तिषु"** प्रमाणे व्ययेश के साथ सम्बन्ध करने वाला शुभ अथवा पाप ग्रह दोनों का समावेश होता है। इस प्रकार होने से ग्रंथकार ने और अधिक स्पष्ट करने के हेतु व्ययेश के साथ शुभग्रह का सम्वन्ध होने पर वह मारक बनता है, परन्तु उस पर से क्वचित् अनिवार्य प्रसंग में बनता है।

शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या (गुजराती टीकाकार) कहते हैं कि :—

सप्तमेश अथवा द्वितीयेश के अधिपतियों की दशा में जो मृत्यु का सम्भव न हो तो क्वचित् उस स्थान के अधिपति के साथ सम्वन्ध धारण करने वाले शुभग्रहों की दशा में अथवा अष्टम स्थान के अधिपतियों की दशा में मृत्यु होती है। याने अष्टम और तृतीय स्थान के अधिपतियों की दशा अन्तर्दशा के समय मृत्यु होती है ॥२६॥

इस प्रकार मारक ग्रहों की दशाओं में मृत्यु न होवे तो कुंडली में जो अधिक से अधिक पापी ग्रह हो—उसकी दशा में मृत्यु होती है, ऐसा विद्वान् पुरुषों को समझना चाहिए ॥२७॥

इन श्लोकों के भावार्थ में इनके कुछ-कुछ विचार सज्जन रंजनी टीकाकार और पंडित माधव प्रसाद व्यास से मिलते-जुलते हैं। स्वर्गीय वि. गो. नवाथे के विचार भी इसी प्रकार के हैं।

स्वर्गीय श्री ह० ने० काटवे (मराठी टीकाकार) कहते हैं कि :—

उपरोक्त कहे अनुसार यदि मृत्यु सम्भव न हो तो व्ययाधीश से सम्वन्ध करनेवाले पापीग्रहों की दशा में सम्भव होता है। यदि ऐसा सम्भव न हो तो उसी प्रकार का सम्वन्ध करने वाले शुभ ग्रह की दशा में क्वचित् (अपरिहार्य) प्रसंग में मृत्यु की सम्भावना होती है। और यदि ऐसा न हो तो अष्टमेश की दशांतर्दशा में सम्बन्ध जानना। इस श्लोक में सिर्फ शुभग्रहों का व्ययेश के साथ सम्वन्ध कहा हुआ है ॥२६॥

उपरोक्त कहे हुए किसी भी मारक-ग्रह की दशा में यदि मृत्यु का सम्भव न हो तो केवल पापग्रहों की दशा में क्वचित् प्रसंग में मृत्यु सम्भव जानना। "केवल पापग्रह" याने मारक सम्वन्ध रहित त्रिषडायाधिपति ही समझना ॥२७॥

स्वर्गीय पंडित रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) के मत के अनुसार :—

"ऐसा सम्भव न हो तो द्वितीयेश अथवा सप्तमेश उनसे सम्बन्धित शुभग्रह की दशा में भी मृत्यु सम्भव होती है, नहीं तो अष्टमेश अथवा तृतीयेश की दशा में मृत्यु सम्भवनीय होती है ॥२६॥

मारक ग्रहों की दशा मृत्यु प्रसंग में नहीं आती हो तो कुंडली के सबसे अशुभ ग्रह की दशा में भी निधन का सम्भव रहता है ॥२७॥

पिछले श्लोक में कहे अनुसार के समय में अरिष्ट नहीं आता हो तो मारक-स्थान के अधिपति से सम्बन्ध रहने वाले शुभग्रह की दशा में अरिष्ट का सम्भव होता है। मारक स्थानाधिपति से सम्बन्धित शुभग्रहों को भी मारकत्व का दोष लगता है।

ग्रह मारक-स्थानों में होकर यदि योगकारक हों तो वे मारक नहीं बनते। परंतु कुण्डली में तो अरिष्ट का संभव है। और मारक ग्रहों की दशा जब अरिष्ट सम्भव हो तब नहीं आती हो तो ऐसी परिस्थिति में कुण्डली के अत्यन्त अशुभ ग्रह की दशा में मृत्यु का संभव जानना।

स्वर्गीय वि. गो. नवाथे (मराठी टीकाकार) के मतानुसार—

मारक ग्रहों की दशा में यदि मनुष्य की मृत्यु प्राप्त न हो तो जो ग्रह योगकारक नहीं हैं परंतु शुभग्रह होकर भी जो मारक स्थानों के अधिपतियों से युक्त होते हैं; उनकी दशा में मृत्यु होती है, इसमें भी मृत्यु न होवे तो तृतीय अथवा अष्टम स्थान के अधिपति की दशा में मृत्यु आती है। चन्द्रमा और सूर्य इनको छोड़कर मारकाधिप, ६।८।१२ इन स्थानों के स्वामी और राहु व केतु इन सबमें जो ग्यारहवें स्थान के नवांश का अधिपति होता है, वह ग्रह मारक होता है। इस प्रकार चन्द्रमा जिस राशि में हो, उस राशि का नवमांश स्वामी शत्रुस्थान में, नीच, अस्तंगत अथवा पाप ग्रह के घर में हो, तो उस ग्रह की दशा में मृत्यु आती है। शुभ ग्रह के घर का हो तो सिर्फ पीड़ा होती है।

स्पष्टीकरण—

कुंडली का अष्टम स्थान (रंध्रस्थान) आयुष्य स्थान है तथा अष्टम स्थान से जो अष्टम स्थान अर्थात् तृतीय स्थान भी आयु स्थान है। इन दोनों (अष्टम-तृतीय) स्थानों का जो व्यय स्थान है :अर्थात् सप्तम और द्वितीय स्थान ये मारक-संज्ञक हैं। इन दोनों स्थानों में से द्वितीय स्थान बलवत्तर है। इन मारक

स्थानों के अधिपति यदि अपने-अपने मारक स्थानों में बैठे हुए हों तथा पापयुक्त हों याने पापी ग्रह के साथ हों तो ऐसी अवस्था में जातक का निधन (मृत्यु) इनकी मूल दशाओं में होता है। यदि ऐसा योग नहीं बनता हो तो साक्षात् व्ययाधीश की महादशा में जातक की मृत्यु होती है। व्ययाधीश की दशा प्राप्त नहीं होती हो (उपरोक्त स्थिति में मारकेशों की तथा व्ययाधीश की भी प्राप्त नहीं होती हो) तो इन मारकेशों से सम्बन्ध करने वाले अथवा व्ययाधीश से सम्बन्ध करने वाले पापीग्रहों की दशाओं में निधन संभव होता है। उपरोक्त मारकेशों में से किसी की भी दशा प्राप्त नहीं होती हो याने द्वितीयेश, सप्तमेश, द्वादशेश ये ग्रह यदि मारक गुणों से सम्पन्न न हों तो कभी-कभी शुभ ग्रह की दशा में अथवा अष्टमेश की दशा में भी निधन प्राप्त होता है। ऐसा पूर्व में (श्लोक २३ से २७ में) कहा गया है।

उपरोक्त श्लोकों में आयु तथा मारक स्थान की परिभाषा बतलाई गई है। जिस प्रकार ग्रहों के परस्पर सम्बन्ध के कारण शुभाशुभ योगकारक फल होते हैं उसी प्रकार निधन-संभव ग्रहों की परस्पर दशा मालूम होने के लिए मारकेशों की तथा तत्सम्बन्धी ग्रहों की पारस्परिक सम्बन्धों की विवेचना आवश्यक है। जिस प्रकार केवल त्रिकोणेश अकेला राजयोग नहीं कर सकता उसी प्रकार केवल अकेला मारकेश-मारक (निधन) फल नहीं देता, अरिष्ट फल सिर्फ देता है। इसलिए अकेला सप्तमेश अथवा द्वितीयेश अपनी दशा में मारक-फल (मृत्यु) नहीं दे सकता। जब तक कि इसका सम्बन्ध किसी पाप ग्रह से नहीं होता। जिस प्रकार कारक-प्रसंग में दो ग्रहों का किसी एक राशि में एकत्र बैठना प्रथम श्रेणी का और दोनों में से एक दूसरे की राशि में बैठना और पहिले से उसको देखना–यह द्वितीय श्रेणी का सम्बन्ध है, उसी प्रकार मारकफल-दातृत्व प्रसंगों में मारकेश का अपने स्थान में बैठकर पापीग्रहों से स्थान–सम्बन्ध करना यह प्रथम श्रेणी का मारक–सम्बन्ध है और दूसरे प्रकार के सम्बन्ध में मारकफल का उतना प्राधान्य नहीं रहता। बृहस्पति वगैरह शुभ-ग्रह सप्तमेश होकर द्वितीय स्थान में अथवा बृहस्पति वगैरह शुभग्रह द्वितीयेश होकर सप्तम स्थान में हों तो यह अन्योन्याश्रित प्रथम श्रेणी का मारक योग होगा। ऐसी स्थिति में परस्पर दशा-अंतर्दशा में जातक की मृत्यु निश्चित है।

सप्तमेश–मारकेश के सम्बन्ध में––

संज्ञा प्रकरण में पूर्व में कहा गया है कि:—

> "केन्द्राधिपत्यदोपस्तु बलवान् गुरु-शुक्रयोः।
> मारकत्वेऽपि च तयोर्मारकस्थानसंस्थिति" ॥

सप्तमेश बृहस्पति और शुक्र मारक प्रसंग में बलवत्तर दोषी हैं अर्थात् प्रबल मारकेश हैं। वे यदि मारक (सप्तम) स्थान में बैठे हों तो और अधिक प्रबल मारक होते हैं। उसके बाद बुध और बुध के बाद चन्द्रमा मारकेश हैं। इस पर से यह स्पष्ट है कि क्रूर सप्तमेश को मारक जो भी कहा तो भी वह मारकेश नहीं होता। इसलिए सप्तमेश सूर्य–मंगल तथा शनि मारक नहीं होते। बुध, चन्द्रमा साधारण मारक होते हैं। अर्थात् अरिष्ट-प्रद सिर्फ होते हैं। अस्तु, सप्तमस्थ सप्तमेश बृहस्पति अथवा शुक्र यदि पाप युक्त हों तो वे निश्चय हो मारक होते हैं (मृत्यु) देते हैं। और यदि सप्तमस्थ नहीं हों और उनसे पापीग्रह सम्बन्ध करते हों तो मारक-फल संदिग्ध होता है परन्तु सम्बन्धित ग्रहों की अन्तर्दशा में वे अरिष्ट-फल अवश्य देते हैं।

उदाहरण--मिथुन लग्न की कुण्डली में यदि सप्तम स्थान में बृहस्पति + शनि, अथवा बृहस्पति + मंगल, बृहस्पति + सूर्य हों तो बृहस्पति की दशा में मंगल-शनि की अन्तर्दशा में निधन होगा। बृहस्पति की दशा में और सूर्य की अंतर्दशा में भी निधन सम्भव है क्योंकि सूर्य साधारण पापी तथा आयुष्य का अधिपति भी है। आयुकारक का मारकेश के साथ सम्बन्ध आयु-प्रसंग में कभी भी शुभ नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार बृहस्पति की महादशा में शनि की अंतर्दशा प्रबल-मारक है। यहाँ भी आयु-कारक और मारक का सम्बन्ध है परंतु इस ग्रंथ में शनि के बारे में दूसरी ही व्यवस्था कही हुई है।

"मारकैः सह सम्बन्धात् निहन्ता पापकृच्छनिः।
अतिक्रम्येतरान् सर्वान् भवत्येव न संशयः॥

मारकेश के साथ बैठने वाला शनि अपने साथ के मारकेश को पीछे हटा कर वह खुद (स्वतः) मारक होता है। इस न्याय के अनुसार मिथुन लग्न की कुंडली में यदि सप्तमेश बृहस्पति के साथ शनि का योग हो तो शनि-बृहस्पति की महादशा में मारक-फल देने के बदले शनि की महादशा में और बृहस्पति की अन्तर्दशा में देगा। इसी प्रकार कन्या लग्न की कुंडली में सप्तमस्थ बृहस्पति + शनि का योग समझना चाहिये। तथा बृहस्पति + मंगल का योग भी मारकयोग समझना चाहिये।

सप्तमस्थ सप्तमेश–बृहस्पति के साथ शनि का योग

लग्न	यदि सप्तम में	मारक-फल की		अरिष्ट फल की	
		दशा	अंतर	दशा	अंतर
मिथुन	गुरु शनि	शनि	गुरु	गुरु	शनि
	गुरु मंगल	गुरु	मंगल	मंगल	गुरु
	गुरु सूर्य	गुरु	सूर्य	सूर्य	गुरु
कन्या	गुरु मंगल	गुरु	मंगल	मंगल	गुरु
	गुरु शनि	शनि	गुरु	गुरु	शनि
	गुरु चन्द्र	गुरु	चन्द्र	चन्द्र	गुरु
मेष	शुक्र शनि	शुक्र	शनि		
	शुक्र मंगल	शुक्र	मंगल	मंगल	शुक्र
	शुक्र शनि	शनि	शुक्र	शुक्र	शनि
	शुक्र बुध	शुक्र	बुध	बुध	शुक्र
वृश्चिक	शुक्र बुध	शुक्र	बुध	बुध	शुक्र
	शुक्र शनि	शनि	शुक्र	शुक्र	शनि
	शुक्र मंगल			मंगल	शुक्र
				शुक्र	मंगल
धनु	बुध शुक्र	संदिग्ध	संदिग्ध	शुक्र	बुध
	बुध शनि	बुध	शुक्र	बुध	शनि
	बुध चन्द्र	बुध	शनि	बुध	चन्द्र
				चन्द्र	बुध
मकर	चन्द्र गुरु	संदिग्ध	संदिग्ध		
		चन्द्र	गुरु	गुरु	चन्द्र
मीन	बुध शुक्र	संदिग्ध	संदिग्ध	शुक्र	बुध
	बुध शनि	बुध	शुक्र	बुध	शनि
	बुध सूर्य	शनि	बुध		
		बुध	सूर्य	बुध	सूर्य

उपरोक्त सारणी में कन्या लग्न की कुंडली में शनि + गुरु का योग कारक योग भी है। इसलिये शनि की महादशा में गुरु की अन्तर्दशा में आरंभ में शुभफल मिलेगा और बाद में मारक-फल की प्राप्ति होगी।

मारकेश के साथ यदि पापी शनि हो और उसके साथ अन्य पापी ग्रह भी हो तो शनि की महादशा में और मारकेश की तथा मारकेश के साथ बैठे हुए ग्रहों की अंतर्दशा में भी निधन (मृत्यु) संभव है।

द्वितीयेश-मारक के सन्बन्ध में लेखक के विचार :—

द्वितीयेश के सम्बन्ध में कहा गया है कि

"लग्नाद् व्ययद्वितीयेशौ परेषां साहचर्यतः।
स्थानान्तरानुगुण्येन भवतः फलदायकौ" ॥

इस ग्रंथ में ऐसा कोई भी संकेत नहीं मिलता है कि क्रूर ग्रह द्वितीयेश हों तो मारक नहीं होते और शुभ ग्रह ही मारक होते हैं। परन्तु इस श्लोक का अर्थ–

"केन्द्राधिपत्यदोषस्तु बलवान् गुरुशुक्रयोः ।
मारकत्वेऽपि च तयोः मारकस्थानसंस्थितिः" ॥

ऐसा है कि गुरु और शुक्र को केन्द्राधिपति होने का दोष तो है ही परंतु मारकेश होने का दोष भी है। अर्थात् द्वितीयेश यदि गुरु अथवा शुक्र हो तो उनको सप्तमेश होने के सरीखा ही मारक-प्रकरण में द्वितीयेश होने का दोष है। इस न्याय के द्वारा शुक्र अथवा गुरु को द्वितीयेश होना तथा सप्तम स्थान में अथवा द्वितीय स्थान में बैठना यह कड़ा मारक-दोष है। इससे कम बुध और चन्द्र हैं।

द्वितीयेश-मारकेशों की सारणी

लग्न	द्वितीयस्थ द्वितीयेश पाप युक्त	मारक		सिर्फ अरिष्ट प्रद		मारकेश फल संदिग्ध
		दशा	अंतर	दशा	अंतर	
वृश्चिक	गुरु बुध	गुरु	बुध	बुध	गुरु	
	★ गुरु शुक्र	गुरु	शुक्र			
	गुरु शनि	शनि	गुरु	गुरु	शनि	
	★ गुरु मंगल	गुरु	मंगल	मंगल	गुरु	
कुम्भ	गुरु बुध	गुरु	बुध	बुध	गुरु	
	गुरु चन्द्र	गुरु	चन्द्र	गुरु	चन्द्र	
मेष	शुक्र	शुक्र	शुक्र	शुक्र	शुक्र	
	शुक्र बुध	शुक्र	बुध	बुध	शुक्र	
	शुक्र शनि	शनि	शुक्र	शनि	शुक्र	
	★ शुक्र मंगल	शुक्र	मंगल	मंगल	शुक्र	
कन्या	शुक्र मंगल	शुक्र	मंगल	मंगल	शुक्र	
	★ शुक्र शनि	शनि	शुक्र	शनि	शुक्र	
	शुक्र चन्द्र	शुक्र	चन्द्र	चन्द्र	शुक्र	
वृषभ	बुध गुरु	बुध	गुरु	गुरु	बुध	संदिग्ध
	★ बुध शुक्र			शुक्र	बुध	,,
	बुध चन्द्र			बुध	चन्द्र	,,
				चंद्र	बुध	,,
सिंह	बुध गुरु	बुध	गुरु	गुरु	बुध	,,
	बुध शनि	शनि	बुध	शनि	बुध	,,
मिथुन	चन्द्र शनि	चंद्र	मंगल	शनि	चन्द्र	,,
	चन्द्र मंगल			मंगल	चन्द्र	,,
	चन्द्र सूर्य			चन्द्र	सूर्य	,,

★ ये ग्रह कारक योग भी करने वाले हैं। जिन ग्रहों के नीचे __ ऐसी रेखा है वे अति उग्र मारक ग्रह हैं। कारक योग करने वाले ग्रह ★ इनमें मारक ग्रह की भुक्ति (अंतर) मारक होती है और यह मारक फल अंतर्दशा के अन्त में मिलता है, मारक तो मारक ही है।

मारक मारकेशों की सूची

लग्न	सप्तमेश	द्वितीयेश	पापीग्रह	द्वादशेश	अष्टमेश
मेष	शुक्र	शुक्र	शु. मं. बु	गुरु	मंगल
वृषभ	×	बुध	गु. शु. चं	मंगल	गुरु
मिथुन	गुरु	चन्द्र	श. मं सू.	शुक्र	शनि
कर्क	×	×	×	बुध	शनि
सिंह	×	बुध	गु. श.	चन्द्र	गुरु
कन्या	गुरु	शुक्र	मं चं. श.	सूर्य	मंगल
तुला	×	×		बुध	शुक्र
वृश्चिक	शुक्र	गुरु	बु श मं	शुक्र	बुध
धनु	बुध	×	शु. श.	मंगल	चन्द्र
मकर	चन्द्र	×	गु मं	गुरु	सूर्य
कुम्भ	×	गुरु	बु. चं.	शनि	बुध
मीन	बुध	×	शु श सु	★ शनि	शुक्र

(१) कर्क तथा कुंभ लग्न की कुण्डली में मारकेश मारक नहीं होता इसलिये इन दोनों कुण्डलियों में पाप युक्त द्वादश स्थान की राशि मारक वनती है यदि द्वादश स्थानाधिप द्वादश में हो अथवा पापयुक्त हो तो द्वादशाधीश की दशा में निधन (मृत्यु) होती है। अकेला हो तो अपनी ही अन्तर्दशा में मारता है।

(२) किसी भी कुण्डली में उपरोक्त सप्तमेश-द्वितीयेश इनकी दशा जन्म के पूर्व में ही भोगनी होगी तो यहाँ द्वादशेश ही मारक होगा अथवा जिस मारकेश की दशा सकुशल व्यतीत हुई हो तो वहाँ मारकेश

द्वादश स्थान का ही स्वामी होगा पापयुक्त द्वादशस्थ द्वादशेश की दशा में भी मरण होता है।

(३) जिस कुंडली में पूर्वजन्म में मारकेश द्वादशेश की दशा भुक्त हुई हो (संभव कम है) अथवा उस ग्रह की दशा सकुशल (अरिष्टप्रद मात्र) व्यतीत हो गई हो तो ऐसी स्थिति में अष्टमेश की दशा में निधन प्राप्त होता है।

(४) लेखक का अपना ऐसा मत है कि मारकेश का यदि दूसरे मारकेश के साथ सम्बन्ध हो तो परस्पर दशान्तर में निश्चय करके मारक-फल प्राप्त होता है। यदि दो मारकेशों का परस्पर स्थान सम्बन्ध हो अथवा मारक स्थान में दोनों एकत्र बैठे हों तो निश्चित रूप से परस्पर दशान्तर्दशा में निधन होता है। इस प्रकार का योग-मेष लग्न की कुंडली में शुक्र का खुदका, मिथुन लग्न की कुंडली में गुरु + चन्द्र; कन्या लग्न की कुंडली में गुरु + सूर्य; वृश्चिक लग्न की कुंडली में शुक्र होता है। मारक स्थान अथवा पापयुक्त योग मारक-प्रसंग से अति अरिष्ट प्रद (मारक) होता है।

(५) कभी-कभी मारकेश के साथ, द्वादशेश के साथ, अष्टमेश के साथ सम्बन्ध करनेवाले पापीग्रहों की दशा में भी निधन होता है।

(६) मारकेश स्वतः मारक स्थान में नहीं हो, अन्यत्र हो परंतु पापयुक्त हो तो भी वह अरिष्ट-प्रद होता है। और खुद पापी होने पर मारक भी बनते हैं। जैसे सिंह लग्न की कुंडली में बुध और कुम्भ लग्न की कुंडली में गुरु मारक है।

ज्योतिष-शास्त्र के अनेक आचार्यों का मत है कि इस ग्रंथ के मारक-फल प्रसंगों में जहाँ "**सम्भवे निधनं, नृणाम्, अलाभे**" इत्यादि शब्दों का प्रयोग हुआ है उसका आशय ऐसा है कि जैमिनि आदि ऋषियों द्वारा अल्प, मध्य, दीर्घायु खंड के जिस आयु खण्ड में विंशोत्तरी मारक-दशा आती हो उस दशा में निधन होता है अन्यथा मारकेश मारता नहीं। इसलिये विद्वान् ज्योतिषियों को आयुबल देखकर ही मारक का निर्णय करना चाहिये।

(७) धनेश और सप्तमेश इनकी दशा अन्तर्दशा आवे और उस समय में यदि साढ़ेसाती आती हो अथवा सूर्य पर से शनि का भ्रमण हो रहा हो तो उस व्यक्ति का निधन होता है।

मारकैः सह सम्बन्धान् निहन्ता पापकृच्छनिः।
अतिक्रम्येतरान् सर्वान् भवत्येव न संशयः॥ २८॥

पापफल देनेवाला शनि जब मारक ग्रहों से सम्बन्ध करता हे (संबंध पूर्व में कहे हुए हैं—वे देखिये) तब वह अन्य सब मारक ग्रहों को हटा कर स्वयं ही मारकफल करता है, इसमें संशय नहीं है।

पंडित रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) के मतानुसार:—

"पापकारक शनि जब मारकेशों से सम्बन्ध करता हो, तब सम्पूर्ण मारकेशों को अतिक्रमण करके निःसंदेह मारक होता है" पापकारक शनि-तीसरे, छठे, एकादश स्थान के स्वामी के साथ हो वा सम्बन्ध करता हो।

राज ज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"मारकेश ग्रह से सम्बन्ध करनेवाला पापी शनि हो तो वह पहिले कहे हुए जितने मारक ग्रह हों उन सबको हटाकर स्वयं ही मारकफल करता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। तात्पर्य यह है कि शनि निसर्गतः दुःखकारक ग्रह है और कुंडली में भी वह पापी हो गया तो मारकेश ग्रह का सम्बन्ध मात्र प्राप्त होने से ही मारकग्रह की अपेक्षा मारकफल देने में अधिक बली हो जाता है। फिर यदि ऐसे शनि की दशा मारक ग्रह की दशा से पहिले हो आ जावे तो शनि स्वयं मारकफल कर देता है। उस ग्रह के आने का अवसर ही नहीं देता। इसी कारण मारक ग्रह का अतिक्रमण कर शनि ही स्वयं मारकफल देता है।"

विद्यारत्न पंडित माधवप्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

"तृतीय, षष्ठ और द्वादश स्थान का पापग्रह शनि मारक स्थान के स्वामियों के सम्बन्ध से और सब मारकों को हटाकर आप मारक होता है। इस विषय में कोई संशय नहीं है।"

ज्योतिषाचार्य—तीर्थ पंडित श्री सीतारामजी झा (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"३–६ आदि अशुभ स्थान के आधिपत्य से पापकारक शनि का मारकग्रहों से सम्बन्ध हो तो अन्य सब मारक को हटाकर (उल्लंघन कर) वही (शनि ही) मारक होता है, इसमें सन्देह नहीं। अर्थात् बिना मारक के सम्बन्ध से भी पापकारक शनि सामान्य रूप से मारक होता है। अथ युक्तिवचनम् :—

शनिस्तु यम एवातो विख्यातो मारकः पुनः।
अन्यमारकसम्बन्धात् प्राबाल्यं तस्य संस्फुटम्॥

शनि स्वयं यम है अतः स्वभाव से भी मारक है, उस पर भी त्रिषडाय आदि स्थान के आधिपत्य से पापकारक हो तो प्रबलमारक होता है, फिर भी

यदि मारक ग्रहों से सम्बन्ध हो जाय तो सबसे प्रबल मारक होने में संशय नहीं करना।

श्री उद्योतकार कहते हैं कि :—

त्रि, षट्, आय आदि के स्वामित्व प्रयुक्त लक्षणों से युक्त यदि शनि मारकेशों के साथ सम्बन्ध करे तो अन्य सब मारकेशों को पीछे हटाकर शनि ही स्वयं मारक होता है। पापकृत शनि मारक होता है—इसका अर्थ ऐसा हुआ कि अन्य मारकेशों की अपेक्षा शनि विशिष्ट मारकेश है। मारकेशों से सम्बन्ध हो अथवा शनि मारक हो तो उसके मारक होने में क्या सन्देह है? अर्थात् कोई भी सन्देह नहीं। इस पर से मारकत्व के विषय में शनि की प्रबलता है।

श्री सज्जन रजनी—टीकाकार कहते हैं कि :—

जहाँ पर दो, तीन मारक प्राप्त होते हों तो वहाँ पर शनि में पापी भावों का स्वामित्व हो और शनि मारकेशों से सम्बन्ध करे तो सबका अतिक्रमण करके शनि स्वयं ही मारक होता है। इसका विचार अन्तर्दशा में करना चाहिये। कल्पना करो कि राहु, गुरु, शनि, बुध इन चारों को मारकत्व प्राप्त हुआ हो तो राहु-राहु में मृत्यु नहीं होगी। राहु-गुरु में यदि किसी रोग का प्रारंभ हुआ हो तो भी राहु में गुरु होने पर निधन नहीं होगा–राहु–शनि में मृत्यु होगी–संभव है कि उसी रोग के कारण मृत्यु हो जो बृहस्पति की अंतर्दशा में युक्त हुई थी।

श्री विनायक शास्त्री कहते हैं कि :—

यदि शनि मारकेश नहीं भी हो तो वह त्रि, षट्, आय अथवा अष्टम इनका स्वामी होकर मारकेश, मारक स्थान गत पाप अथवा मारकेश-संयुक्त पापी से जितना अधिक सम्बन्ध करता हो, उतना ही अधिक प्रबल मारक होता है। शनि आयुकारक है। आयु का अन्त मृत्यु है। यदि पापकृत् शनि (तृतीय, षष्ठ, एकादश अथवा अष्टम का स्वामी) नहीं भी हो फिर भी मारक बनता है तो पापकृत हो तो इसमें सन्देह क्या है?

पंडित श्री रामयत्न ओझाजी (फलित-विकास) कहते हैं कि :—

शनि का पापत्व यही इस सिद्धांत का मूल है। और वह मारकेश हो या मारकेश से सम्बन्ध करे तो और अधिक प्रबल मारक होता है।

स्वर्गीय श्री ह. ने. काटवे (मराठी टीकाकार) कहते हैं कि:–

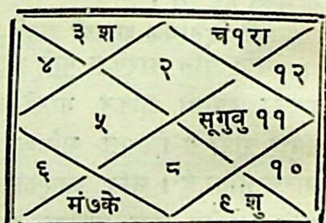
पापफल करने वाला शनि यदि मारकग्रहों के साथ सम्बन्ध करे तो वह सब मारकों को पीछे हटाकर स्वयं ही निःसन्देह प्रबल मारक होता है।

स्वर्गीय श्री पंडित रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"मारकग्रहों से सम्बन्धित शनि पापग्रह अन्य सबसे निःसन्देह अधिक मारक होता है। शनि पापग्रह होकर सब पापग्रहों में बलवान् है अर्थात् उसका यदि मारक स्थानों से या मारक स्थानों के स्वामियों से सम्बन्ध हो तो वह मारकत्व निश्चित रूप से अधिक प्रबल मारक होता है।"

स्वर्गीय श्री वि. गो. नवाथे (मराठी टीकाकार) करते हैं कि :—

पापफल देनेवाला शनि जब मारकग्रहों से सम्बन्ध करता हो (सम्बन्ध पूर्व में कहे हुए हैं वे देखिये) तब वह अन्य सब ग्रहों को हटाकर, मारक बनता है इसमें सन्देह नहीं है। शनि मारक स्थानों के स्वामियों से युक्त होता है तब उसकी अनिष्ट करने की तरफ प्रवृत्ति होती है। ऐसी स्थिति में शनि अन्य दूसरे ग्रहों की अपेक्षा मृत्यु के लिए अधिक कारणीभूत होता है। यह ग्रह दुष्ट स्वभाव का है। वह जिस समय अनिष्ट होता है उस समय उसके किरणों से जितना दुःख प्राप्त होता है उतना अन्य कोई भी पापग्रह से नहीं होता, इसलिये सब मनुष्यों को उसका भय लगता है। वह स्वयं दुष्ट होने के कारण मनुष्य की आयु को खतम करने की संधि देखते रहता है। किसी को शनि यदि मारक हो तो वह अन्य ग्रहों की अपेक्षा मारक होना अधिक संभवनीय है।



यह कुण्डली देखो। दूसरे और सातवें स्थान के स्वामी मारक होते हैं। यहाँ पर द्वितीय स्थान का स्वामी बुध और सप्तम स्थान का स्वामी मंगल है। ये दोनों मारक ग्रह हैं परन्तु इनमें शनि विशेष मारक है। शनि द्वितीय (मारक) स्थान में बैठा है और द्वितीय स्थान का स्वामी बुध शनि के घर में दशम स्थान में बैठा है। इस प्रकार शनि का मारकेश बुध के साथ अन्योन्य सम्बन्ध हुआ। उसका यह सम्बन्ध और उसका द्वितीय स्थान में बैठना और लग्न स्वामी जो शुक्र अष्टम (मृत्यु) स्थान में बैठा है उस पर शनि की पूर्ण दृष्टि है ये सब बातें मारक होने के लिये कारण बनी हैं।

तात्पर्य गुरु अष्टम और एकादश स्थान का स्वामी होकर मारकेशों से युक्त है इसलिये वह (गुरु) और बुध व मंगल ये मारक ग्रह हैं ही। इसलिये इन

प्रत्येक ग्रह की दशा में जातक को शारीरिक कष्ट भोगना पड़ेगा परन्तु मृत्यु केवल शनि की दशा में ही आयेगी।

श्री शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या (गुजराती टीकाकार) कहते हैं कि :—

"इस पर ऐसा मानने में आता है कि अन्य मारकग्रहों से सम्बन्धित शनि हो तो वह सब शुभ अथवा अशुभ योगों का विध्वंस (नाश) करके स्वयं मनुष्य के लिये मारक होता है। इसमें सन्देह नहीं है। कारण यह स्वयं स्वाभाविक रीति से पापग्रह है और उसमें फिर यदि मारक स्थान में बैठा हुआ हो अथवा मारक ग्रहों के साथ उसका सम्बन्ध हुआ हो तो शनि में विशेष पापिष्ठता आती है और उस कारण से वह अधिक बलवान् अन्य मारक ग्रहों की परवा न करते हुए स्वयं अपनी सत्ता का उपयोग करता है और अपनी महादशा अथवा अंतर्दशा में मनुष्य को अवश्य करके मृत्यु देता है, इसमें संशय नहीं है। स्वाभाविक तौर पर अपनी सामान्य मान्यता ऐसी है कि शनि विशेष अनिष्टग्रह है और जब-जब शनि की चन्द्रमा साढ़ेसाती अथवा अशुभ चतुर्थ, अष्टम शनि का गोचर से भ्रमण होता है तब-तब मनुष्य को स्वाभाविक रीति से विशेष प्रमाण में भय लगता है। शनि की एक बात या विशिष्टता यह है कि जब वह उत्तम फल देता है तब मनुष्य को उच्च शिखर पर पहुँचाता है और जब वह अनिष्ट होता है तब उसी प्रकार मनुष्य को अधम से अधम स्थिति पर ले जाकर छोड़ता है और मनुष्य को कष्ट देकर त्राहि-त्राहि करने लगता है। ऐसा हमेशा देखने में आता है। इसलिये ऊपर दिये हुए श्लोक में शनि स्वयं ही अनिष्टकारक ग्रह होकर जब उसका मारकग्रहों से सम्बन्ध होता है तब वह विशेष अनिष्ट फल देनेवाला होता है अर्थात् मृत्यु प्रदान करता है। उदाहरणार्थ—

३ श
चं १ रा
४
२
१२
५
सूगुबु ११
६
८
१०
मं ७ के
९ शु

इस कुण्डली में अष्टम स्थान के धनु राशि का स्वामी तथा ग्यारहवें स्थान के मीन राशि का स्वामी गुरु होकर वह स्वाभाविक रीति से अष्टम और एकादश इन अशुभ स्थानों का स्वामी होने के कारण अनिष्टफल देनेवाला है और उस पर भी वह स्वयं दशम स्थान में द्वितीयेश बुध के साथ बैठा है। बुध द्वितीय स्थान का स्वामी होने से मारकेश है और इसलिये अनिष्ट फल देनेवाला है। उसी

प्रकार मंगल सप्तम स्थान का स्वामी (मारक-स्थान का) होकर मारकेश है और वह भी अनिष्ट फल देनेवाला है। इसलिये गुरु, बुध, तथा मंगल इनकी दशांतर्दशा में जातक को मृत्युदायक घटना अथवा उस प्रकार की विशेष पीड़ादायक घटनाएँ होंगी ऐसा अनुभव करने में किसी प्रकार की शंका नहीं है। अब शनि का यहाँ पर विशेष अनिष्टकारक योग कौन-सा है इसका विचार करें।

द्वितीय स्थान का स्वामी बुध मारकेश है तथा सप्तम स्थान का स्वामी मंगल भी मारकेश है। शनि द्वितीय (मारक) स्थान में बैठा है और द्वितीय मारक स्थान का स्वामी कुछ दशम स्थान में शनि की राशि में है। इस प्रकार बुध के घर में शनि और शनि के घर में बुध दोनों परस्पर एक दूसरे के स्थान में बैठे हैं। इस प्रकार इस श्लोक में कहे अनुसार शनि का मारकग्रह बुध के साथ सम्बन्ध है और वह अन्योन्य राशि स्थित सम्बन्ध योग हुआ है। यह योग अनिष्टकारक है और इसके उपरान्त उपरोक्त कहे अनुसार गुरु अनिष्ट फल देनेवाला है। इस प्रकार विशेष अनिष्टकारक योग अर्थात् मृत्युकारक योग बना है इसमें सन्देह नहीं है। इसी प्रकार शनि का दूसरे मारक योग का तपास करें। शनि का बुध से अर्थात् मारकेश के साथ सम्बन्ध हुआ है और वह शनि मारक स्थान में बैठा हुआ है। यह मारक योग हुआ ही है। इसके उपरान्त लग्न का स्वामी शुक्र अष्टम स्थान में याने आयुष्य भवन में बैठा है उस पर मारकेश बने हुए शनि की खुद की सातवीं दृष्टि अष्टम स्थान पर है इस प्रकार अष्टमस्थ शुक्र पर द्वितीयस्थ शनि की दृष्टि के कारण "परस्पर दृष्टि" सम्बन्ध हुआ है। इस प्रकार आयुष्य स्थान का अनिष्ट फल शनि के कारण हुआ है और उस कारण से मृत्यु होना संभव है। इस दूसरे योग कारण से भी शनि को विशेष मारक योग होने से वह बलिष्ठ मारक है और शनि अधिक अनिष्ट फल देगा इसमें संशय नहीं है। इस प्रकार आयुष्य के प्रमाण से जब शनि की महादशा अथवा अन्तर्दशा आयेगी तब मृत्यु होने की संभावना है। इस प्रकार शनि अवश्य बलवान् मारक बना है।

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराती टीकाकार) कहते हैं कि :—

"पापफल करनेवाला शनि यदि मारक ग्रह के साथ सम्बन्ध करे तो वह सब मारक-ग्रहों को पीछे हटाकर स्वयं ही निःसंशय मारक बनता है।"

शनि नैसर्गिक दुःखकारक ग्रह है और वह यदि कुण्डली में पापी हो, मारक ग्रह से सम्बन्ध करने मात्र से वह मारक बनने में बलवान् होता है। इस शनि की दशा मारकेश की दशाओं के पहिले आती हो तो शनि स्वयं

बलवान् होने से मारक का अधिकार ग्रहण कर लेता है। और मारक दशा की राह नहीं देखता और अपनी दशा में ही मृत्यु प्रदान करता है।

स्पष्टीकरण :--मारक प्रसंग में यह श्लोक (२८) असंदिग्ध है। पापकृत् शनि का अर्थ है पापफल देनेवाला शनि। इस ग्रंथ के अनुसार, त्रिषडाया-धीश और अष्टमेश ये ही पापी संज्ञक ग्रह हैं (ग्रन्थान्तर प्रसिद्ध क्रूर ग्रह नहीं) परन्तु ये सम्बन्धवशात् कारक ग्रह होवें तो असम्बन्धित ग्रहों की अन्तर्दशाओं में योगज शुभफल (योग कारक-शुभफल) देते हैं। इसलिये त्रिषडायाधीश शनि भी यदि किसी शुभ मारकेश से सम्बन्ध करेगा तो वह कारक होगा और फिर उसे सम्बन्धित मारकेश की अन्तर्दशा में योगज शुभफल देना चाहिये, परन्तु ऐसा होता नहीं। इस उपरोक्त श्लोक के अनुसार पापी (त्रिषडायाधीश, अष्टमेश) शनि हर परिस्थिति में मारक के सम्बन्ध के कारण अपनी महादशा में और मारकेश की अन्तर्दशा में मारता ही है। फिर उससे सम्बन्ध करनेवाला ग्रह शुभ ही क्यों न हो। इसलिये ग्रन्थकार को इस बात के बारे में एक पृथक् श्लोक करना पड़ा।

"आरम्भो राजयोगस्य भवेन् मारकभुक्तिषु।
प्रथयन्ति तमारभ्य क्रमशः पापभुक्तयः" ॥

कन्या लग्न की कुण्डली में शनि पंचमेश और षष्ठेश होता है। वह यदि चतुर्थेश–सप्तमेश बृहस्पति से सम्बन्ध करेगा तो शुभ होता है। कारकाध्याय (योगाध्याय) के अनुसार शनि की दशा और बृहस्पति की अन्तर्दशा में शुभफल मिलना चाहिये परन्तु 'आरम्भो राजयोगस्य' इसके अनुसार यहाँ पर शनि की महादशा में और बृहस्पति की अन्तर्दशा में आरंभ में शुभफल प्राप्त होंगे और बाद में मारक फल मिलेगा। इस लग्न की कुण्डली में शनि त्रिकोणेश, तथा शुक्र मारकेश एवं नवमेश है। ये दोनों यदि सम्बन्ध करें तो परस्पर दशान्तर्दशा में शुभफलों की प्राप्ति होनी चाहिये। परन्तु ऐसा कहा हुआ है कि—

"परस्परदशायां स्वभुक्तौ सूर्यजभार्गवौ।
व्यत्ययेन विशेषेण प्रदिशेतां शुभाशुभम्" ॥

इसका अर्थ इस प्रकार है कि शनि शुक्र परस्पर दशान्तर्दशा में विपरीत शुभाशुभ फल देते हैं अर्थात् इस श्लोक के अनुसार भी शनि में शुक्र का

अन्तर मारक-फल ही करेगा। वृश्चिक लग्न की कुण्डली में शनि तृतीयेश और चतुर्थेश होता है और वृहस्पति द्वितीयेश और पंचमेश होने से परस्पर सम्बन्ध से शनि-वृहस्पति ये कारक होते हैं। इतने पर भी शनि की दशा में वृहस्पति के अन्तर में मारक-फलों का ही प्राधान्य रहेगा। अन्य लग्नों की कुण्डलियों में ऐसा योग नहीं बनता अर्थात् पापी शनि कारक नहीं बन सकता। अस्तु, निर्णय यही है कि त्रिषडायाधीश एवं अष्टमेश शनि यदि किसी एक मारकेश के साथ सम्बन्ध करेगा अथवा मारकेशों के साथ सम्बन्ध करेगा तो ऐसा शनि सब मारकेशों को पीछे हटाकर स्वयं मारकेश होगा। इसमें सन्देह नहीं। स्वयं शुभ अथवा स्वयं योगकारी शनि मात्र मारकेश के सम्बन्ध से कारक या मारक नहीं बनता। वृषभ, तुला, मकर, कुम्भ लग्न की कुण्डली में शनि अमारक है। इसकी मूल दशा में निधन नहीं होता। परन्तु यदि कुम्भ लग्न की कुण्डली में वृहस्पति की दशा प्राप्त न होती हो तब शनि पापयुक्त होने से द्वादशेश के नाते मारक बन सकता है याने जातक को मृत्यु प्रदान कर सकता है।

उपरोक्त श्लोक में 'सम्बन्धात्' शब्द का प्रयोग हुआ है, उसका आशय ऐसा है कि मारकेश यदि मारक-स्थानगत नहीं भी हो और अन्यत्र बैठकर शनि से सम्बन्ध करे अथवा मारकेश स्वमारक स्थान या द्वितीय स्थान-मारक-स्थानगत हो और शनि उसके साथ न होकर दूसरे अन्य प्रकार से सम्बन्ध करे तो भी वह निहन्ता ही होता है। सम्बन्ध के बलाबल पर मारक-फल आश्रित है। इसलिये मारक-प्रसंग में मारक-स्थान में मारकेश के साथ पापकृत् शनि होगा तो वह शनि अकाट्य मारक होगा इसमें संशय नहीं है।

उदाहरण—मेष लग्न की कुंडली में द्वितीयस्थ शुक्र के साथ यदि शनि होगा, वृश्चिक लग्न की कुण्डली में द्वितीयस्थ गुरु के साथ यदि शनि होगा अथवा सप्तमस्थ शुक्र के साथ होगा तो ऐसा शनि निहन्ता होता है और उसके साथ बैठे हुए मारकेश अमारक होते हैं, यदि उन मारकेशों की दशा शनि की दशा के पूर्व में आती हो तो।

श्लोक २८ के अनुसार :—

लग्न	१		२	३	
	मारक		अमारक	अरिष्टप्रद	
	दशा	अन्तर		दशा	अन्तर
मेष	शनि	शुक्र	शुक्र	शुक्र	शनि
मिथुन	शनि	गुरु	गुरु, शुक्र		
सिंह	शनि	बुध	बुध, चन्द्र, गुरु		
कन्या	शनि	गुरु	गुरु, शुक्र	शुक्र	शनि
	शनि	शुक्र	सूर्य, मंगल		
वृश्चिक	शनि	गुरु	गुरु, शुक्र	शुक्र	शनि
	शनि	शुक्र	बुध		
मीन	शनि	बुध	बुध, शुक्र		

इस सारणी में (शनि शुक्र का सम्बन्ध होने पर) शनि की महादशा में तथा सम्बन्धित ग्रहों की अन्तर्दशाओं में मारक-फल होता है तथा यदि दूसरे कोष्टक में के ग्रहों की दशा शनि की महादशा के पूर्व में आती हो तो उन ग्रहों की दशा में निधन नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में द्वितीय कोष्टक में के ग्रह अमारक होते हैं।

तृतीय कोष्टक में के ग्रह मारकेश, द्वादशेश तथा अष्टमेश हैं। यहाँ पर मारक नहीं होंगे। तृतीय कोष्टक में के ग्रहों की दशा शनि की अन्तर्दशा में विशेष अरिष्टप्रद फल देगी परन्तु निधन नहीं होगा।

अब इस अध्याय में मृत्यु-सम्भव जिस क्रम से शोधन किया गया है उसका स्पष्टीकरण निम्नलिखित अनुसार समझना—

(१) जन्म लग्न से द्वितीय और सप्तम स्थानाधिपति इन दोनों में से जो बलवान हो, उसकी दशान्तर्दशा में दूसरे की दशा।

(२) मारक स्थान स्थित पापीग्रह की दशा।

(३) मारकेश से सम्बन्ध करनेवाले पापीग्रह की दशा।

(४) जन्म लग्न से व्ययस्थानाधिपति की दशा।

(५) जन्म लग्न से व्ययस्थानाधिपति के साथ सम्बन्ध करनेवाले पापी ग्रह की दशा अथवा कहीं सम्बन्धी शुभग्रह की भी दशा।

(६) जन्म लग्न से अष्टमेश की दशा।

(७) मारकग्रह से सम्बन्ध करनेवाले पापी शनि की दशा।

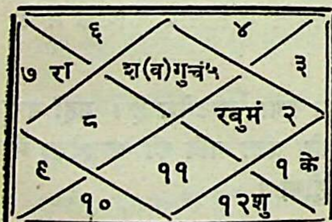
आयुर्दायाध्याय प्रकरण का तृतीय अध्याय समाप्त हुआ।

अभ्यासार्थ आठ कुण्डलियाँ इस सम्बन्ध में ऐसे व्यक्तियों की प्रस्तुत की जा रही हैं जिनकी मृत्यु के बारे में भविष्यवाणी लेखक ने मृत्यु से पूर्व की थी।

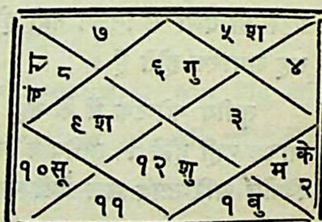
जन्म तारीख
१६–५–१९२१
१–३२ मि० दोपहर को
कपूरथला
सोमवार

सं० १९७८ शके १८४३ वैशाख शुक्ल पक्ष ९ परं १० सोमवार पू० फा० नक्षत्र घ० ५६।३३ व्याघात जन्म योग, मूषक योनि, मानवगण, क्षत्रिय वश्य, मध्य नाड़ी, सूर्योदयात् इष्ट घटी १९।१०, पू० फा० नक्षत्र, ४ चरण।

जन्मलग्न



नवमांश



चलित में श. चं. गु. द्वितीय भाव में शुक्र नवम भाव में

जन्मतः विंशोत्तरी शुक्र महादशा भोग्य = ४ व ६ म० दिन

यह एक ठाकुर साहब की कुण्डली है। रेलगाड़ी के नीचे आने से मृत्यु ७ अगस्त १९७२ को इन्दौर में हुई। उस दिन सोमवार, त्रयोदशी, पुनर्वसु नक्षत्र और चन्द्रमा मिथुन राशि में था। गुरु वक्री था और मंगल बुध अस्त थे।

गुरु की महादशा, बुध की अन्तर्दशा तथा शुक्र के प्रत्यंतर था।

जन्मतः नक्षत्रात्मक स्थिति

लग्न—पूर्वा. फा. २

सू.—कृत्तिका २

चं.—पूर्वा. फा. ४

मं.—रोहिणी २

बु.—रोहिणी १

गु.—पूर्वा. फा. २

शु.—रेवती ४

श.—उत्तरा २

रा.—चित्रा ४

के.—अश्विनी

दशानाथ गुरु शुक्र के नक्षत्र पूर्वाफाल्गुनी में है और शुक्र रेवती नक्षत्र में है जो बुध का नक्षत्र है।

बुध द्वितीयेश मारकेश है।

७ अगस्त ७२ को मंगल गोचर से सिंह राशि में प्रवेश हुआ और उसका भ्रमण जन्मतः शनि पर से हो रहा था।

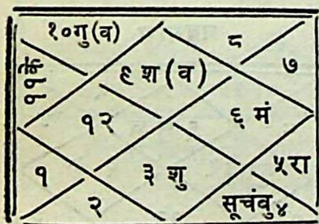
लग्न में षष्ठेश, अष्टमेश और द्वादशेश हैं और वे मंगल से दृष्ट हैं।

बुध पापग्रह सूर्य, मंगल तथा शनि से दूषित है, बुध रोहिणी नक्षत्र में याने चन्द्रमा के नक्षत्र में है, चन्द्रमा शनि, मंगल से दूषित है, मृत्यु के पूर्व जातक का मानसिक संतुलन विगड़ा हुआ था।

मृत्यु ७:८-१९७२ इन्दौर में

संवत् २०१८ शके १८८३ श्रावण कृष्ण पक्ष ३० अमावस्या परं प्रतिपदा शुक्रवार सायं ५-५ बजे जन्म, तारीख १०-८-१९६१ को आश्लेषा नक्षत्र, ३ चरण।

जन्म लग्न



नवमांश



जन्मतः विंशोत्तरी बुध महादशा भोग्य = ५ वर्ष, ९ म. १० दिन
५७ घ. १३ प.

जन्म नक्षत्र स्थिति

लग्न = पू.षा. ४
रवि = आश्लेषा ३
चन्द्र = आश्लेषा ३
मंगल = उ.फा. २
बुध = आश्लेषा २
गुरु = उत्तराषाढ़ा ४ (व)
शुक्र = आर्द्रा ४
शनि = उत्तरा १ (व)
राहु = मघा २
केतु = धनिष्ठा ४

यह एक लड़की की कुंडली है। ऊपर से नीचे गिरने के कारण सिर में चोट आई। इस लड़की का इलाज इन्दौर तथा बम्बई के अस्पतालों में चलता रहा। मरने के कुछ दिन पहले मेनिन जाइटिस (Meningitis) का विकार मस्तिष्क में पैदा हुआ।

मृत्यु २–९–१९७२ को

केतु की महादशा में शनि का अन्तर और केतु का ही प्रत्यंतर चल रहा था मृत्यु के समय मं.बु.गु. अस्त थे बुध वक्री था। बुध, गुरु–वक्री थे।

दशानाथ केतु के ऊपर मारकेश शनि की दृष्टि है इस प्रकार दृष्टि सम्बन्ध हुआ है। लग्नेश और द्वितीयेश दोनों के बीच राशि परिवर्तन योग है, मारकेश शनि वक्री भी है।

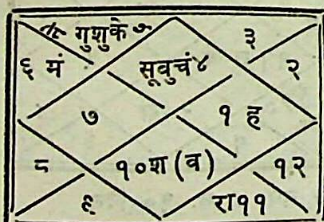
केतु धनिष्ठा नक्षत्र में है जो मंगल का नक्षत्र है और मंगल–उत्तरा. फा. नक्षत्र में याने सूर्य के नक्षत्र में है।

शनि उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में है जो सूर्य का नक्षत्र है।

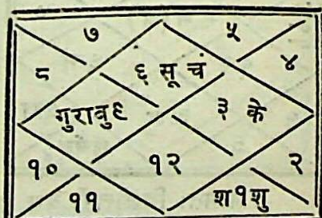
इस प्रकार केतु और शनि दोनों सूर्य के प्रभाव में हैं। सूर्य अष्टम स्थान में मारकेश बुध के साथ है। रवि आश्लेषा नक्षत्र में होने से मारकेश बुध के प्रभाव में है।

सं० १९९० श्रावण शुक्ल पक्ष प्रतिपदा, रविवार, पुष्य नक्षत्र, इष्ट ०।२४ (सुवह ५ वजकर ५० मिनट पर) तारीख २३–७–१९३३ सूर्य ३।६।४६।५२, लग्न ३।८, मेषयोनि, देवगण, मध्यनाड़ी।

जन्मलग्न



नवमांश



जन्मतः विंशोत्तरी शनि महादशा भोग्य = ११ व. ७ म. ८ दि.।

लग्न–पुष्य २
स–पुष्य २
चं–पुष्य २
मं–हस्त २
बु–आश्लेषा १
गु–उत्तरा १
शु–मघा १
श–श्रवण १
रा–शतभिषा १
के–मघा ३

यह कुंडली एक प्रसिद्ध महान् बहादुर व्यक्ति की है। इस व्यक्ति की मृत्यु अचानक २५–११–१९७२ को सुवह ९ और १० के वीच में हवाई जहाज गिरने से हुई।

मृत्यु समय शनिवार पुष्य नक्षत्र, कर्क का चन्द्रमा, तिथि-पंचमी थी।

शुक्र की महादशा में सूर्य का अन्तर और सूर्य का ही प्रत्यन्तर था, तब मृत्यु हुई।

शुक्र द्वितीय स्थान में मारकेश का अधिकार लेकर बैठा है। शुक्र केतु के नक्षत्र मघा में है। केतु भी मघा ३ स्वनक्षत्र में होकर वलवान मारक वना है।

सूर्य पुष्य नक्षत्र में याने शनि के नक्षत्र में है। सूर्य द्वितीय है तथा शनि सप्तमेश सप्तम में वक्री, दिग्वक्री और स्वराशि में होने से वलवान है।

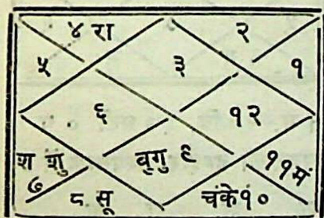
मृत्यु २५–११–१९७२, ९ और १० वजे के बीच सुबह

जन्म तारीख

१-१२-१९२४

सं० १९८१ शके १८४६ मार्गशीर्ष शुक्ल पक्षे तिथौ ५ चन्द्रवासरे घ. १२।६ श्रवणनक्षत्रे ४४।२ ध्रुवयोगे ४५।२६ कौलवकरणे सूर्योदयात् इष्ट घटी ३२।३५ वानर योनि, देवगण, अन्त्यनाडी।

जन्म-लग्न



चन्द्र-लग्न कुण्डली



जन्मतः विंशोत्तरी चन्द्र महादशा भोग्य. २ व, ५ म. ३ दि.

यह कुण्डली एक ठाकुर साहव की है।

इन्हें CANCER कैन्सर की बीमारी थी। अस्पताल में इन्दौर में कैन्सर का ऑपरेशन हुआ। मृत्यु २९-३-१९७२ को शाम को ६-४५ में हुई।

मृत्यु के समय शनि महादशा में बुध का अन्तर चल रहा था। शनि ६।२७°।१९ का होने से विशाखा नक्षत्र के ३ चरण में है याने मिथुन के नवमांश में है। विशाखा गुरु का नक्षत्र है और सप्तमेश सप्तम में होने से मारकेश है। शनि को मारकेश के नक्षत्र में होने से मारकेश का अधिकार प्राप्त हुआ। बुध मारकेश गुरु के साथ सप्तम स्थान में होने से मारकेश है। इस प्रकार शनि की महादशा में बुध के अन्तर में मृत्यु प्राप्त हुई। इस समय राहु का प्रत्यन्तर चल रहा था। राहु पुष्य नक्षत्र के प्रथम चरण में है याने शनि के नक्षत्र में। इस प्रकार राहु को भी नक्षत्रात्मक मारकेश के अधिकार प्राप्त हुए। राहु का प्रत्यन्तर ८–३–७२ से प्रारम्भ हुआ था और मृत्यु २९–३–१९७२ को हुई।

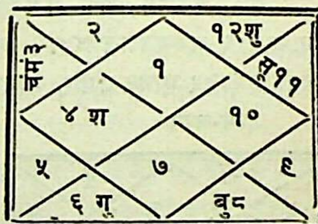
एक स्त्री की कुण्डली

सं० १९८३ शके १८४८ अधिक द्वितीय चैत्र मासे कृष्ण पक्षे तिथौ ९+१० नवम्याम् सह दशम्याम्, सौम्यवासरे, श्रवण भे ५१।५० शिवयोगे २८-८ कौलवकरणे ९–१४ सूर्योदयात् इष्ट घटी २८–४०, श्रवणनक्षत्रस्य तृतीयचरण, देवगण, अन्त्यनाडी, जन्म तारीख ७–४–१९२६।

जन्म लग्न



नवमांश



जन्मतः विंशोत्तरी महादशा—चन्द्र भोग्य ४ व. १ म. २० दि. ३७ घटी ० प

मृत्यु १८–१०–७२ को २ और ३ के बीच दोपहर को इन्दौर अस्पताल में।

ल.	र.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	रा.	कें.
५	११	९	९	११	९	१०	७	२	८
११	२४	१७	१८	१३	२८	८	२	२८	२८
०	१२	४८	१२	४८	३१	११	५	२३	२३
२५	४६	४५	३८	३२	२२	२७	२५	१६	१६

८–१०–१६७२ को प्रतिपदा चित्रा नक्षत्र पर मस्तिष्क में खून बहना Cerebral Haemarrhage शुरू हुआ। उस दिन तुला राशि में चन्द्रमा था। मृत्यु धनिष्ठा नक्षत्र में कुम्भ के चन्द्रमा में हुई। मृत्यु के समय शनि महादशा में शनि का अन्तर चल रहा था।

शनि महादशा प्रारम्भ २७–५–१६७१ से शनि अन्तर ३०–५–७४ तक शनि अन्तर में शुक्र प्रत्यन्तर २६–६–७२ से २६–१२–७२ तक

कारण—चन्द्र लग्न से द्वितीयेश शनि मारक है और शुक्र द्वितीय स्थान में बैठा है। अतएव शनि की महादशा में शनि के अन्तर में शुक्र का प्रत्यन्तर चल रहा था तब मृत्य हुई। वैसे शनि विशाखा नक्षत्र के चतुर्थ चरण में है विशाखा गुरु का नक्षत्र है और गुरु लग्न से सप्तम स्थान का स्वामी है। शुक्र लग्न से द्वितीय स्थान का स्वामी है इसलिये शनि में शनि के अन्तर और शुक्र के प्रत्यन्तर में मृत्यु हुई।

लेडी डॉक्टर (भारतीय)

संवत् २००६, शके १८७१ आषाढ़ कृष्ण पक्षे ३ सौम्यवासरे, धनिष्ठा-नक्षत्रे घ. ३७।१८ परं शततारका नक्षत्रे, प्रीतियोगे घ. ३।४३ सूर्योदयात् इष्ट-घटी ५१।२२।३०, अंग्रेजी तारीख १३।१४ जुलाई १९४९।

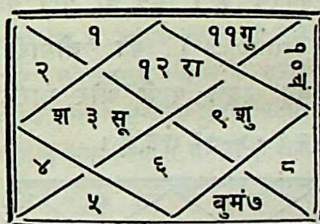
समय २ बजकर २७ मिनट पर रात्रि को जन्म।

अश्वयोनि, राक्षसगण, आदिनाड़ी।

जन्म लग्न



नवमांश



लग्न	र.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	रा.	के.
१	२	१०	२	२	६	३	४	११	५
६	२७	१०	०	१०	५	२०	१०	२८	२८

जन्मतः विंशोत्तरी महादशा—राहु, भोग्य = १३ व. ६ म.

(व)

नक्षत्रात्मक स्थिति		
लग्न —	कृत्तिका	४
सूर्य —	पुनर्वसु	४
चन्द्र —	शततारका	२
मंगल —	मृग	३
बुध —	पुष्य	३
गुरु —	उत्तराषाढ़ा	३
शुक्र —	आश्लेषा	१
शनि —	मघा	३
राहु —	रेवती	४
केतु —	चित्रा	२

यह कुण्डली एक लेडी डॉक्टर की है। १-१२-१९७२ को अमेरिका में सुबह ७ बजे (भारत स्टॅ. टा.-६ बजे शाम को) मोटर ऍक्सीडेण्ट (अपघात) के चपेट में आ गई। तमाम शरीर पर कई जगह हड्डियाँ टूट गई और सिर में काफी चोट लगने से बेहोश थी। कारण Concussion of Brains. और मृत्यु के कुछ दिन पहले वह होश में आई। इसकी मृत्यु शनिवार २४-२-१९७३ को (कॅन्सस अमेरिका) अस्पताल में हुई। समय ९ और १० के बीच (भारत समय ८-३० और ९-३० के बीच रात्रि को)।

शततारका नक्षत्र--हड्डी टूटना, अवयव को विच्छेद करना, रक्तचाप आदि दर्शाता है। चतुर्थ शनि भी अपघात दर्शाता है। गुरु उत्तराषाढा नक्षत्र में है जिसका स्वामी सूर्य है। चन्द्र-लग्न से सप्तम स्थान का स्वामी सूर्य है। शुक्र आश्लेषा नक्षत्र में है जिसका स्वामी बुध है। बुध लग्न से द्वितीय स्थान में सूर्य और मंगल के साथ है। इस प्रकार दोनों दशानाथ और अन्तर दशानाथ को मारकेश के अधिकार प्राप्त हैं। क्योंकि मृत्यु के समय गुरु की महादशा में शुक्र का अन्तर चल रहा था, मंगल द्वादशेश अष्टम स्थान को देखता है, जो अपघात का कारण है। बुध दो पाप ग्रहों के साथ है इसलिए मस्तिष्क (Brains Troubles) की बीमारी (Consussien of brains) हुई। वह प्रबल पापी और मारकेश भी है। शुक्र का अन्तर २६-११-७० से २६-७-७३ तक है।

३ के
१
४
२ श
१२
५
११
६
सू बु ८
१०
७ मंशुचं
९ रागु

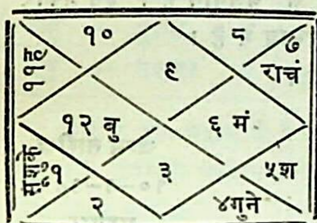
अपघात के समय की कुण्डली हस्त नक्षत्र पर चित्रा १ दिसम्बर १९७२ भारत स्टॅ.टा. ६ बजे शाम को।

मृत्यु—शनिवार २४-२-१९७३ को, ८-३० और ९-३० के बीच रात्रि को कॅन्सस अमेरिका में।

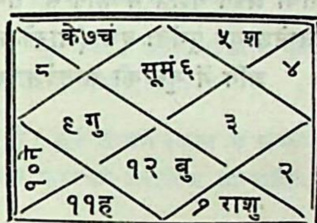
जन्म तारीख
१-५-१९२०

सं० १९७७ शके १८४२ वैशाख मासे शुक्ल पक्षे १४ शनिवासरे घ० ५९।३६ चित्रा नक्षत्रे घटी ५९।१२ वज्र योग घ० ३६।१२ परं सिद्धियोग, वणिजकरणे, सूर्योदयात् इष्ट घटी ४२।५१ लग्न ८।१६ सूर्य ०।१८ महिषी योनि, देवगण, अन्त्य नाड़ी, शूद्रवर्ण, वायुतत्त्व, मानव वश्य।

जन्म लग्न



नवमांश



चलित में चन्द्रमा दशम भाव में शुक्र चतुर्थ भाव में

जन्मतः विंशोत्तरी मंगल महादशा भोग्य—१ व. ९ म. २८ दि. ५८ घ. ४८ प.

जन्मतः नक्षत्रात्मक स्थिति		
लग्न —	पूषा	२
सूर्य —	भरणी	२
चन्द्र —	चित्रा	३
मंगल —	चित्रा	२
बुध —	रेवती	४
गुरु —	आश्लेषा	१
शुक्र —	अश्विनी	१
शनि —	पूर्वाफा.	१
राहु —	विशाखा	१
केतु —	भरणी	३

यह एक विद्वान्, प्रसिद्ध इन्डस्ट्रीयालिस्ट व्यक्ति की कुण्डली है।

सप्तमेश नीच राशि में चतुर्थ स्थान में पापग्रह मंगल से दृष्ट है, जो सप्तम स्थान के कारण मन को क्लेश, सन्ताप तथा असन्तोष प्रदान करता है। मन का कारक चन्द्रमा राहु से ग्रसित है तथा उस पर शनि की दृष्टि है। सूर्य भी राहु केतु से दूषित है। इस प्रकार मन का कारक चन्द्रमा विक्षिप्तता दर्शाता है। कन्या राशि पापग्रह के बीच तथा पापग्रह से दूषित है।

वैवाहिक सुख का कारक शुक्र, मंगल, राहु, केतु सूर्य से दूषित है। सप्तम स्थान राहु से दूषित है।

मृत्यु आत्महत्या के कारण हुई। जातक ने फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली। मृत्यु २०–९–१९७२ को ११ और १२ बजे दोपहर को हुई। उस दिन द्वादशी, बुधवार, धनिष्ठा नक्षत्र तथा चन्द्र मकर राशि में—यह स्थिति थी।

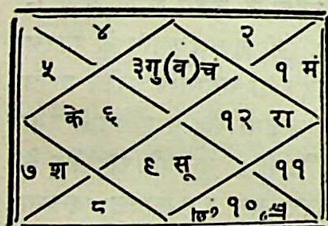
कारण—शनि द्वितीयेश—मारक स्थान का स्वामी है। वह पूर्वा. फा. नक्षत्र में है जो शुक्र का नक्षत्र है। धनु लग्न के लिये शुक्र अशुभ है। गुरु अष्टम स्थान में उच्च का है तथा वह लग्नेश भी है। गुरु आश्लेषा नक्षत्र में है अतः बुध के नक्षत्र में है। बुध सप्तम स्थान का स्वामी है, अपनी नीच राशि में है तथा अपने नक्षत्र में होने से तथा वर्गोत्तमी होने से बलवान है। इस प्रकार लग्नेश गुरु पूर्णतः बुध (मारकेश) के नक्षत्र के प्रभाव में है।

शनि में गुरु की अन्तर्दशा आने पर मृत्यु हुई।

जन्म तारीख
१०–१–१८९५
गुरुवार

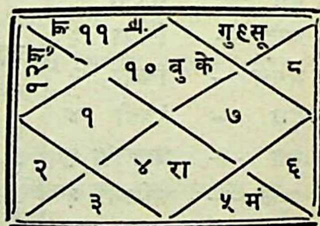
सं० १९५१ शके १८१६, पौषमासे शुक्लपक्षे १४ चतुर्दश्यां गुरुवासरे घटी २०।२, आर्द्रा नक्षत्रे घ. ३८।४८, ऐन्द्रयोगे घ. ३४।२, विष्टिकरणे, सूर्योदयात् इष्टघटी २३।३५, सूर्य ८।२७, लग्न २।१०, आर्द्रा नक्षत्रस्य ३ चरण, श्वानयोनि, मानवगण, आद्य नाड़ी।

जन्मलग्न



चलित में सूर्य
अष्टम भाव में

नवमांश



जन्मतः विंशोत्तरी राहु
महादशा भोग्य ४ व.
१०म. ०दि., ४घ.१४प.

जन्मतः नक्षत्रात्मकस्थिति			
लग्न	—	आर्द्रा	२
रवि	—	उ. षा.	१
चन्द्र	—	आर्द्रा	३
मंगल	—	भरणी	१
बुध	—	उ. षा.	२
गुरु	—	आर्द्रा	१
शुक्र	—	उ.षा.	४
शनि	—	स्वाति	३
राहु	—	पू.भा.	४
केतु	—	उत्तरा	२

यह कुण्डली एक लखपती प्रतिष्ठित व्यक्ति की है जिनका समाज में अपनां अति उच्च स्थान था। जातक हृदय-विकार से ग्रसित थे। जीवन में ५ बार हार्ट अॅटक आया जिसमें से ६-१०-१९६३ का अति तीव्र था। मृत्यु हार्ट अटॅक के कारण से हुई।

रविवार दशमी तिथि कृत्तिका नक्षत्र तथा चन्द्रमा वृषभ का था।

मृत्यु १४-१-१९७३ रात्रि को ८-४५।

मृत्यु के समय—शुक्र की महादशा, शनि की अन्तर्दशा तथा शुक्र का प्रत्यन्तर था।

शुक्र उ. षा. नक्षत्र में है जो सूर्य का नक्षत्र है। सूर्य सप्तम स्थान में सप्तमेश और द्वितीयेश चन्द्रमा से दृष्ट है। इस प्रकार शुक्र को मारकेश का अधिकार प्राप्त हुआ।

शनि राहु के नक्षत्र स्वाति में है। राहु पू० भा० नक्षत्र याने गुरु के नक्षत्र में है और गुरु मारकेश (सप्तमाधिपति) है। इस प्रकार शनि मारकेश के प्रभाव में है।

शुक्र उत्तराषाढा नक्षत्र में है जो सूर्य का नक्षत्र है। इस प्रकार शुक्र भी ऊपर लिखे अनुसार मारकेश से प्रभावित है।

अन्तर्दशाध्यायः

न दिशेयुर्ग्रहाः सर्वे स्वदशासु स्वभुक्तिषु ।
शुभाऽशुभफलं नृणामात्मभावानुरूपत : ॥ २९ ॥

अर्थ—सब ग्रह मनुष्य को स्वक्षेत्रानुरूप दशान्तर्दशा में शुभाशुभ फलदायक नहीं होंगे ।

शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या (गुजराती टीकाकार) के मतानुसार :—

"सामान्य रीति से ज्योतिष-शास्त्र में जिस फल का दिग्दर्शन करने में आता है उसमें अनेक प्रकार के संयोग अथवा योग देखने में आते हैं । मात्र फल कथन एक ही बात के आधार पर अथवा अमुक श्लोक में अमुक रीति से जो कही गई है, इसलिये उसी प्रकार से वह फलादेश के लिए मानना चाहिये ऐसी बात नहीं है । यहाँ तो ग्रहों के अनेक प्रकार के वल देखने में आते हैं और उन वलों के आधार पर उनका विचार करके उनमें से ही किसी एक प्रकार के निर्णय पर आना सम्भव है । वल अनेक प्रकार के हैं जैसे स्थान वल, राशिवल, दृष्टिवल, दृष्टवल, योगवल, इत्यादि-इत्यादि । इनमें से कोई ग्रह केन्द्रादि शुभ स्थान में हो तो वलवान समझा जाता है, कोई त्रिकोण में हो तो अधिक वली समझा जाता है, कोई मित्रग्रह के स्थान में अथवा उसके साथ बैठने से वलवान माना जाता है, कोई ग्रह सम्वन्ध मात्र से विशेष वलवान समझा जाता है । कोई ग्रह अपनी स्वयं की महादशा अथवा अन्तर्दशा में वलवान माना जाता है । अमुक ग्रह अथवा चन्द्रमा क्षीण हो तो निर्वली माना जाता है । इस प्रकार विविध रीतियों से ग्रहों के वलावल ज्योतिष-शास्त्र में मानने में आये हैं । इन वलों के अनुसार सव ग्रह शुभ अथवा अशुभफल देते रहते हैं परन्तु ये फल जीवन में अलग-अलग समय पर कम अधिक प्रमाण में मिलते रहते हैं । सव फल महादशा में ही अथवा किसी एक अन्तर्दशा में ही मिलते हैं ऐसा नहीं समझना चाहिये ।

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराती टीकाकार) के विचार इस प्रकार हैं—

सव ग्रह अपनी दशा में अपनी अंतर्दशा आने पर भी अपने स्वभाव के अनुसार शुभाशुभ फल नहीं देते ।

'आत्मभावानुरूपतः' इस पद का अर्थ 'आत्मनो यो भावः सिंहस्य सूर्य इत्यादिस्तदनुरूपस्तदनुसारेण मेषादीनां यत्फलं तत्' अर्थात् मेषादि राशियों के जो स्वामी हैं इनके अनुसार जो फल होते हैं वे ही फल मिलते हैं ऐसा जो अर्थ करने में आया है वह बराबर नहीं है। यहाँ पर तो अर्थ ऐसा है कि महादशा और अन्तर्दशापति सम्बन्ध करनेवाले हैं या सम्बन्ध रहित हैं; अथवा योगकारकों में से एक हैं अथवा योग रहित हैं इनका विचार करके कौन-सा फल वे देनेवाले हैं वह निश्चित करके अर्थात् उस ग्रह की महादशा में जिस ग्रह की अन्तर्दशा होगी वह कौन सा फल करने वाली है (सामान्य शुभ, योगकारक, शुभ अथवा दुःख या शोकप्रद या मारक अथवा किस प्रकार की है) उन-उन ग्रहों का जो आत्म-भाव कहा हुआ है वह आत्म-भाव निश्चित करके इस श्लोक में कहे हुए नियम के अनुसार दशापति और अंतर्दशापति ये दोनों यदि एक ही ग्रह हो तो उनके फल नहीं मिलेंगे ऐसा समझना चाहिये।

उदाहरणार्थ :—कल्पना करो कि मंगल की महादशा में मंगल की अंतर्दशा हो और मंगल मारकेश हो तो उस जातक की मृत्यु मंगलग्रह का आत्म-भाव मारक है और उसके अनुसार जो मरण आनेवाला होगा वह मंगल की महादशा और मंगल की अंतर्दशा में नहीं होगा परन्तु मंगल की महादशा में अन्य पापग्रह की दशा में मृत्यु होगी ऐसा समझना।

स्वर्गीय श्री रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) का ऐसा कहना है कि :—

"अपने वल के अनुसार जो भी शुभ अथवा अशुभ फल ग्रहों को देना होता है वह फल वे अपनी महादशा तथा अंतर्दशा में देते ही हैं ऐसा नहीं है।"

स्वर्गीय वि. गो. नवाथे (मराठी टीकाकार) कहते हैं :—

"सब ग्रह मनुष्य की स्वक्षेत्र अनुरूप दशान्तर्दशा समय शुभाशुभ फलदायक नहीं होते।"

स्वर्गीय ह. ने. काटवे (मराठी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"सब ग्रह अपनी-अपनी दशा में स्वयं की अंतर्दशा अपने में भावानुरूप शुभाशुभ फल नहीं देते।"

राज ज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"सूर्यादि समस्त ग्रह अपनी-अपनी महादशा के अन्तर में आकर मनुष्यों को अपने अनुरूप जैसे कि इन्हें देना चाहिये वैसा फल नहीं देते।"

विद्यारत्न पंडित माधव प्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :–

"सूर्य आदि सम्पूर्ण ग्रह अपनी-अपनी दशा और अन्तर्दशा में अपने-अपने स्वरूप के अनुसार मनुष्य को शुभ और अशुभफल नहीं देते। इस श्लोक से सूचित होता है कि आगे इस प्रकरण में यही बात सिद्ध की जायेगी।"

पण्डित रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"सूर्यादि सम्पूर्ण ग्रह अपनी मूलदशा और अपने ही अन्तर में मनुष्य को अपने सिंहादि भावों के अनुरूप फल नहीं देते हैं।"

ज्योतिषाचार्य-तीर्थ पण्डित श्री सीताराम झा (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

"सब (पाप, तथा शुभ समस्त) ग्रह अपनी दशा में अपनी अन्तर्दशा आने पर ही अपने स्वभावानुरूप प्राणियों को शुभ अथवा अशुभफल विशेष रूप से नहीं देते हैं।"

श्री विनायक शास्त्री इस प्रकार कहते हैं। :—

"ग्रह अपनी स्वयं की महादशा में स्वयं की अंतर्दशा जब आती है तब वह पूर्ण फल तो आत्मभावानुरूप देगा नहीं परंतु अल्प फल तो देगा ही।"

स्पष्टीकरण :—कुछ टीकाकारों ने इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया है, "सूर्यादि समस्त ग्रह अपने त्रिषडायात्मक तथा अन्य भावात्मक फल अर्थात् अपनी-अपनी शुभाशुभ राशि जनित फल अपनी महादशा में स्वयं की अंतर्दशा में नहीं देते।"

अपने-अपने बल के अनुसार जो भी कुछ शुभ अथवा अशुभफल ग्रहों को देना होता है वे सब वे अपनी महादशा में अथवा अंतर्दशा में देते ही हैं।" ऐसा नहीं है। सूर्य का स्वग्रह सिंह और उच्च मेष है इसलिए किसी कुंडली में यदि सूर्य इन राशियों में हो तो वह अपनी महादशा में अथवा अंतर्दशा में (स्वगृह का है या उच्च का है इसलिये) शुभफल उत्तम करेगा ऐसा नहीं समझना चाहिये। उसी प्रकार वह नीच राशि में अथवा शत्रु राशि में हो तो उतने ही कारण से वह अशुभ फल भी नहीं देगा। ग्रहों का बल अनेक प्रकार का है जैसे स्थान-बल, राशि-बल, दृष्टि-बल, योग बल इत्यादि। इस बल के अनुसार समस्त ग्रह शुभ अथवा अशुभ फल देते हैं परन्तु यह फल जीवन में भिन्न-भिन्न समय में कम-अधिक प्रमाण में वे देते हैं। सब फल महादशा में अथवा किसी एक अंतर्दशा में देते हैं। ऐसा नहीं समझना चाहिये। मनुष्य को जन्म से लेकर मृत्यु समय तक ग्रहों के फल मिलते रहते हैं अर्थात् जीवन भर ग्रह नियमित रीति से फल देते रहते हैं।

श्लोक २६ में दशा के सम्बन्ध में एक सामान्य नियम निश्चित किया है कि सब ग्रह अपनी महादशा में जब स्वयं की अंतर्दशा आती है तब आत्मभाव के अनुरूप शुभफल नहीं देते। सारांश यह है कि दशानाथ और अंतर्दशानाथ एक ही ग्रह होता है तब उसका शुभाशुभ फल नहीं मिलता। पाराशरी में वचन है कि "स्वदशायां स्वभुक्तौ च नराणां मरणं न हि" इस वचन के अनुसार मारक ग्रह भी अपनी महादशा में स्वयं की अंतर्दशा में मारक नहीं बनता। आत्मभावानुरूप शब्द का अभिप्राय ऐसा है कि जिस राशि में, जिस भाव का वह स्वामी है, जिस भाव में और जिस राशि में वह बैठा है उस ग्रह के साथ वह सम्बन्ध करता हो, जिस भाव को देखता हो, जिन ग्रहों से वह दृष्ट हो, जो उसका अपना निज स्वभाव, प्रवृत्ति, गुण, दोष अथवा कारकत्व है—इन सब गुण-दोषों का समवाय ऐसा जो, वह आत्मभावानुरूप इस शब्द में परिगणित है। कोई भी ग्रह अपनी स्वयं की महादशा में, अपनी ही अन्तर्दशा आती हो तब सम्पूर्ण आत्मभावानुरूप फल तो देगा नहीं परन्तु अल्पफल तो देगा ही। इस ग्रंथ की परिभाषा निराली है, कौन-सा ग्रह शुभ अथवा अशुभफल उत्पन्न करता है यह संज्ञा प्रकरण में पूर्व में कहा है।

सूर्य और चन्द्रमा को छोड़कर शेष समस्त ग्रहों की अपनी दूसरी राशि भी होती है। इस ग्रंथ के संज्ञाप्रकरणानुसार जिस ग्रह का, अपनी दोनों राशियों के भावों (ग्रहों) के अनुसार जो शुभ अथवा अशुभ फल है वह फल ग्रह अपनी दशा में अथवा अंतर्दशा में नहीं देता, प्रत्युत वह जिस अन्तर्दशा में होता है वह अगले श्लोक (३०) में कहा गया है।

श्लोक २६ से अन्तर्दशाध्याय शुरू होता है। महादशा-अंतर्दशा के फलादेश के सम्बन्ध में ग्रंथकार ने विशेष नियम श्लोक २६ से ४० तक कहे हैं। इस ग्रंथ में विशेष नियम जो दिये गये हैं उनका निरूपण करें।

ग्रंथकार ने प्रथम संज्ञाध्याय में विशेष नियम द्वारा कौन-सा ग्रह शुभ अथवा कौन-सा ग्रह अशुभ और कौन-सा ग्रह मारक बनता है इसकी जानकारी हासिल करने की रीति बतलाई है। उसी प्रकार संज्ञाप्रकरण में हर एक राशिवालों के शुभ, अशुभ और मारक ग्रहों के विषय में विवेचन भी किया है। जब कुण्डली में महादशा तथा अन्तर्दशा देखनी हो तो उस कुण्डली में (१) शुभ और पापग्रह कौन-कौन हैं उसे निश्चित करना उसके बाद (२) कारकाध्याय में दिये हुए सफल और निष्फल राजयोग किन-किन ग्रहों के सम्बन्ध से बनते हैं, उसे भी निश्चित करना, जिससे कि राजयोग सम्बन्ध करनेवाले ग्रह मालूम

पड़ सकें (३) उसके बाद तीसरे अध्याय में मारक निर्णय (आयुर्दायाध्याय) के नियम जानकर जातक की कुण्डली में कौन-कौन से ग्रह मारक बनते हैं वह निश्चित करना। इस प्रकार शुभग्रह, कारक ग्रह और मारक ग्रह निश्चित करने के बाद महादशा और उसमें आनेवाली अन्तर्दशा के ग्रहों के विषय में विचार करना। इस ग्रंथ में इन तीनों के सिवाय दूसरे विशेष फलों के संबंध में कुछ भी नहीं कहने में आया है। सारांश यह है कि जो दशा के नियम यहाँ पर दिये गये हैं वे सिर्फ राजयोग और मारक को ही लागू पड़ते हैं। इन तीन प्रकार के याने शुभ, योगकारक, मारक ग्रहों पर से छ: प्रकार के नियम उत्पन्न होते हैं। इसमें से प्रथम नियम-महादशा के पति अपने स्वयं की अन्तर्दशा में अपने शुभाशुभ फल नहीं दे सकते। यह निर्णय श्लोक २९ में दर्शाया गया है। श्लोक ३० और ३१ शुभग्रहों की महादशा को लागू पड़ते हैं। उसके समर्थन में श्लोक ३७, ३८, ३९ को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। श्लोक २९, ३० और ३१ में जो सामान्य नियम कहे गये हैं वे श्लोक ३५ से ४० में कहे हुए विशेष नियमों को लागू पड़ते हैं। श्लोक ३० में जो प्रकार बताया है (१) दशानाथ (महादशानाथ) अन्तर्दशा नाथ से सम्बन्ध करता हो। (२) दशानाथ और अंतर्दशानाथ समान धर्मी हों—इन दो प्रकारों में दशानाथ स्वयं के जो दशाफल हैं उन फलों को सम्बन्ध करनेवाले ग्रह अथवा समान धर्मी ग्रह की अन्तर्दशा में देता है। २९ वें श्लोक में तो एक सामान्य नियम दशा के बारे में निश्चित किया है कि सब ग्रह अपनी महादशा में अपनी अन्तर्दशा जब आवे तब स्वयं के आत्मभावानुरूप शुभाशुभ फल नहीं देते।

दशा फल देखने के लिये, महादशा में अन्तर्दशा, विदशा, सूक्ष्म वा प्राण-दशा इस प्रकार की दशाएँ निकालते हैं। सब महादशाएँ एक समान फलदायी नहीं होतीं। इसमें ग्रहों की अन्तर्दशा स्थूलकाल बताती है। उससे भी सूक्ष्म-काल निकालने के लिये ग्रहों की अन्तर्दशा में विदशा इत्यादि निकालनी पड़ती हैं। ये सब दशा निकालने की रीति और नियम परिशिष्ट में दिये गये हैं।

इन दशाओं को निकालने का एक और प्रकार है—

$$(1)\ \text{अन्तर्दशा} = \frac{\text{महादशा वर्ष संख्या} \times \text{अंतर्दशापति की महादशा की वर्ष संख्या}}{\div 120}$$

$$(2)\ \text{विदशा} = \frac{\text{अंतर्दशा पति का अंतर्दशा का उपरोक्त रीति से आया हुआ काल} \times \text{विदशापति की महादशा की वर्ष संख्या}}{\div 120}$$

(३) सूक्ष्म दशा = (विदशा पति का विदशा काल × सूक्ष्म दशा पति की महादशा की वर्ष संख्या) ÷ १२०

(४) प्राण दशा = (सूक्ष्म दशा पद्धति का सूक्ष्म दशा का काल × प्राण दशा पति की महादशा की वर्ष संख्या) ÷ १२०

आत्मसम्बन्धिनो ये च ये वा निजसधर्मिणः।
तेषामन्तर्दशास्वेव दिशन्ति स्वदशाफलम् ॥३०॥

दशानाथ जिन ग्रहों के साथ सम्वन्ध करता हो और जो-जो ग्रह दशानाथ सरीखा समान धर्मवाला होकर वैसा ही फल देनेवाला हो तो, उसकी अंतर्दशा में दशानाथ स्वयं की दशा का फल देता है।

स्वर्गीय पंडित रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"अपने से जिनका सम्वन्ध है और अपने समान ही जिनका बलाबल है उन ग्रहों की अंतर्दशा में भी ग्रह अपने दशा के फल देते हैं।"

अपने स्वयं की दशा में ग्रह समस्त फल नहीं देते इसलिये उपरोक्त श्लोक में कहा गया है कि अपने से जिनका सम्वन्ध हो उनकी अंतर्दशा में भी वे अपना फल कुछ प्रमाण में देते हैं।

स्वर्गीय श्री वि० गो० नवाथे (मराठी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"जो ग्रह सहावस्थानादि सम्वन्ध से युक्त अथवा अपने समान धर्म से युक्त होते हैं, उनकी महादशा में अथवा अन्तर्दशा में शुभाशुभ फल प्राप्त होते हैं। सम्वन्ध चार प्रकार का है ऐसा पूर्व में कहा गया है। १ ला अन्योन्य स्थान स्थित सम्वन्ध; २ रा परस्पर दृष्टि सम्वन्ध; ३ रा—अन्यतर दृष्टि सम्वन्ध; ४ था—सहावस्थान सम्वन्ध; । इन चार प्रकार के सम्वन्धों से युक्त जो ग्रह होते हैं वे फलदायक होते हैं। उसी प्रकार स्वयं के धर्म से युक्त याने स्वयं शुभ होकर ग्रंथकार की परिभाषानुसार वह शुभ भाव का स्वामी हो तो उसकी महादशा में अथवा अन्तर्दशा में शुभफल उत्पन्न होता है और वह स्वयं पापी होकर अशुभ भाव का स्वामी हो अथवा स्वयं शुभ होकर वह अशुभ भाव का स्वामी हो, तो उसकी महादशा में अथवा अन्तर्दशा में अशुभफल उत्पन्न होते हैं।

स्वर्गीय ह. ने. काटवे (मराठी टीकाकार)–ने इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया है।

"जिस ग्रह के साथ दशानाथ सम्बन्ध करता हो और जो-जो ग्रह दशानाथ के समान (समान धर्म) फल देनेवाले हों उनकी अन्तर्दशा में ही दशानाथ अपना फल देता है।"

ज्योतिषाचार्य-तीर्थ पंडित सीताराम झा (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं :—

"जो ग्रह अपने सम्बन्धी, तथा जो अपने सधर्मी रहते हैं, उनकी अन्तर्दशा में ही स्वभावानुसार ग्रह अपनी-अपनी दशा का फल विशेष रूप से देते हैं।

युक्तिवचनम् :— प्राप्ते सम्बन्धिवर्गे वा सधर्मिणि समागते।
स्वाधिकारफलं केऽपि दर्शयन्ति दिशन्ति च ॥
इति संदृश्यते लोके तथा ग्रहगणा अपि।
सम्बन्ध्यन्तर्दशास्वेव दिशन्ति स्वदशाफलम् ॥

जिस प्रकार लोक में भी अपने घर में सम्बन्धियों के आने पर तथा अपने समान धर्मियों के आने पर लोग अपने अधिकार के अच्छे पदार्थ उनको दिखलाते हैं खिलाते हैं, फिर सम्बन्धियों के चले जाने पर सामान्य रूप से रहते हैं; उसी प्रकार ग्रह भी अपनी दशा में अपने सम्बन्धी और सधर्मी की अन्तर्दशा आने पर विशेष रूप से अपने दशाफल देते हैं, यह उचित ही है।"

पण्डित श्री रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

"जो ग्रह चार प्रकार के सम्बन्ध के अनुसार अपने सम्बन्धी हैं, अथवा जो अपने सहधर्मी हैं अर्थात् आपस में सम्बन्ध न रखने पर भी शुभ-अशुभ स्थान के स्वामी होने से समान हैं, उनकी अन्तर्दशा में ही अपनी दशा का फल करते हैं।"

राज-ज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"जो ग्रह किसी प्रकार के सम्बन्ध से सम्बन्धी होते हैं, अथवा शुभाशुभ स्थान के स्वामी होने से सहधर्मी होते हैं उनकी अन्तर्दशा में ही सूर्यादि समस्त ग्रह अपनी-अपनी दशा का अपने-अपने अनुरूप फल देते हैं।"

विद्यारत्न पण्डित माधव प्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"जो ग्रह अपने सम्बन्धी हैं वा जो अपने समान हैं उन्हीं की अन्तर्दशा में ग्रह शुभ और अशुभफल देते हैं। अर्थात् ग्रहों का परस्पर चार प्रकार का सम्बन्ध होता है यह बात पहले लिखी गई हैं। इन चारों सम्बन्धों में जिनके साथ कोई

सम्वन्ध होता है, वा जो शुभ होने से शुभदशेश के समान हैं, वा अशुभ होने से अशुभदशेश के समान हैं, उन्हीं की दशा में शुभ और अशृभफल देते हैं।

शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या (गुजराती टीकाकार) कहते हैं कि :—

"उपरोक्त कहे अनुसार "अन्योन्य राशि सम्वन्ध" "परस्पर दृष्टि सम्वन्ध," "अन्यतर दृष्टि संबंध" और "सहावस्थान संवंध" तथा (विशेष में) सहस्थान-स्थिताधिपत्य दृष्टि संबंध—ये संवंध माने गये हैं। अव ग्रह अपने स्वयं की दशान्तर्दशा में शुभाशुभ फल नहीं देते यह भी उपरोक्त श्लोक (२६) में स्पष्ट रीति से कहा गया है और यहाँ पर इस सम्वन्ध में जो ग्रह स्वयं किसी भी प्रकार का दूसरे ग्रह के साथ संवंध करता हो अथवा दूसरा ग्रह उसका स्वयं का सहधर्मी हो अर्थात् वह स्वयं शुभ हो और स्वयं जिस भाव में बैठा हो उसका स्वामी भी शुभ हो अथवा वह स्वयं बलवान् हो और दूसरा भी बलवान् हो अथवा वह स्वयं उच्च का, स्वगृह का हो और दूसरा भी उच्च का, स्वगृह का हो और उनके बीच में आपस में (परस्पर) किसी भी प्रकार का दृष्टि सम्वन्ध अथवा अन्य कोई भी सम्वन्ध हो तो उस ग्रह की दशा में वह स्वयं ही शुभफल देता है और उसी प्रकार वह स्वयं अशुभ हो और दूसरा भी अशुभ हो अथवा स्वयं नीच राशि का हो अथवा शत्रु के घर में हो और दूसरा भी नीच राशि में हो अथवा शत्रु के घर में हो तो वह ग्रह अपनी स्वयं की दशा में अशुभफल देता है। इस प्रकार वह ग्रह दूसरे सम्वन्धित ग्रह अथवा समान धर्मी ग्रह की दशा में स्वयं की दशा का फल देता है अर्थात् ग्रह स्वयं की उत्तमता, अधमता पर आधार रखकर दूसरे ग्रह के साथ संयोगपरत्व में भी शुभाशुभ फल देनेवाला होता है।"

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराती टीकाकार) कहते हैं कि :—

"दशानाथ जिस ग्रह के साथ संवंध करता हो और जो-जो ग्रह दशानाथ सदृश समान धर्मवाला होकर वैसा ही फल करनेवाला हो तो उसकी अंतर्दशा में दशानाथ स्वयं की दशा का फल देता है।

स्पष्टीकरण :—

उपरोक्त श्लोक में कहा है कि दशानाथ (१) जिस ग्रह के साथ सम्वन्ध करके कारकयोग उत्पन्न करता हो, अथवा (२) दशानाथ के बराबर समान धर्म वाला होकर उसकी अन्तर्दशा हो-इन दो प्रकार में दशानाथ अपना फल (अ) सम्वन्ध करने वाले ग्रह की अन्तर्दशा में और (व) समानधर्मी ग्रह की

अन्तर्दशा में—देता है। यहाँ एक शंका उपस्थित हो सकती है कि ऊपर कहे हुए प्रकार के अतिरिक्त दोनों विरुद्ध धर्मी हों तो उनके बारे में यहाँ कुछ भी बताने में नहीं आया है और वह जानने की आवश्यकता है कि विरुद्धधर्मी अन्तर्दशानाथपति का फल कैसा होता है। इस शंका का समाधान इस प्रकार मालूम देता है कि इस ग्रन्थ में ग्रहों के सिर्फ दो प्रकार बताये गये हैं—एक शुभ और दूसरा पाप। शुभ ग्रह जब कभी दोष युक्त बनता है तो भी उसका शुभत्व बिलकुल नष्ट नहीं होता और सिर्फ उसके शुभत्व में कमी आ जाती है। उसी प्रकार पापग्रह का भी है। उसे यदि शुभग्रह का सम्बन्ध हो जाता है तो उसमें शुभत्व आ जाता है परन्तु उसका साधारण पापधर्म तो कायम ही रहता है। इस प्रकार होने से मुख्य करके दो स्थिति ही कायम रहती हैं। तीसरी मिश्रण स्थिति विचार करने के लिए शेष नहीं रहती। विरुद्धधर्मी ग्रह की अंतर्दशा में क्या फल उत्पन्न हो सकता है उसका उदाहरण श्लोक १९ में बतलाया गया है। उसी प्रकार सम्बन्ध नहीं करने वाले समानधर्मी ग्रह की अन्तर्दशा का उदाहरण श्लोक ३२ से ३४ तक में आगे वर्णन किया गया है। इसलिए श्लोक ३० में तो मात्र एक ही स्थान का वर्णन किया गया है कि दशानाथ से अन्तर्दशानाथ सम्बन्ध करने वाला ग्रह हो अथवा समानधर्मी हो तो दशानाथ अपना फल उस की अन्तर्दशा में देता है।

आत्मसम्बन्धी ग्रह वे होते हैं जो परस्पर मित्र हैं अथवा दोनों उच्चस्थ वा नीचस्थ हैं सू.चं., सू.मं., सू.गु., मं.गु., बुध शुक्र तथा श.शु. ये परस्पर मित्र हैं कारण वे आत्मसम्बन्धी ग्रह हैं। इनमें से शनि शुक्र अभिन्न मित्र हैं कारण समस्त कुण्डलियों में जहाँ-जहाँ शनि केन्द्रेश होता है वहाँ-वहाँ शुक्र भी केन्द्रेश होता है, शनि यदि त्रिकोणेश हो तो शुक्र भी त्रिकोणेश होता है।

केन्द्रेश–केन्द्रेश; त्रिकोणेश–त्रिकोणेश; त्रिषडायेश–त्रिषडायेश; द्वितीयेश-द्वादशेश; ये परस्पर सहधर्मी हैं। सहधर्मी की व्याख्या इस प्रकार है–सहधर्मी का अर्थ समानधर्म का ऐसा है। धर्म याने क्या? योगकारकत्व, शुभत्व, समत्व, पापत्व, मारकत्व आदि त्रिषडायेश परस्पर सधमी हैं; त्रिकोणेश परस्पर सधर्मी हैं।

इसी प्रकार केन्द्रेश-त्रिकोणेश, त्रिकोणेश-केन्द्रेश इत्यादि भी सहधर्मी हैं।

भावाधीशवशात्—(i) लग्नेश—सप्तमेश; (ii) द्वितीयेश–व्ययेश; (iii) तृतीयेश—एकादशेश; (iv) चतुर्थेश–दशमेश; (v) नवमेश–पंचमेश; (vi) षष्ठेश–अष्टमेश; ये भी परस्पर सहधर्मी हैं; तात्पर्य यह है कि अकेला

ग्रह ही अपना स्वयं का फल अपने से सम्बन्ध रखने वाले ग्रह की अन्तर्दशा में देता है, जो ग्रह उसके स्वभाव और गुणों के अनुकूल हैं। इसलिये सम्बन्ध होने से परस्पर मित्र ग्रह परस्पर की अन्तर्दशा में, उच्चस्थ-नीचस्थ ग्रह परस्पर की दशांतर्दशा में त्रिकोणेश–त्रिकोणेश की दशान्तर्दशा में, केन्द्रेश–केन्द्रेश की दशांतर्दशा में, त्रिषडायेश–त्रिषडायेश की दशान्तर्दशा में अथवा अष्टमेश-अष्टमेश की दशान्तर्दशा में अपने फल देते हैं। यदि आपस में सम्बन्ध हो तो परस्पर दशांतर्दशा में योगज-फल (योगकारक फल) देते हैं अर्थात् पापीग्रह दूसरे पापीग्रह की अंतर्दशा में, शुभग्रह शुभग्रह की अंतर्दशा में, समग्रह-समग्रह की अन्तर्दशा में, द्वितीयेश–द्वादशेश की अन्तर्दशा में अपने फल देता है। यदि ये सम्बन्धित नहीं हों तो।

इतरेषां दशानाथ-विरुद्धफलदायिनाम्।

तत्तत्फलानुगुण्येन फलान्यूह्यानि सूरिभिः ॥३१॥

दशानाथ के सम्बन्ध रहित तथा विरुद्ध फल देनेवाले ग्रहों की अन्तर्दशा में दशाधिप और अन्तर्दशाधिप (दोनों) के अनुसार दशाफल कल्पना करके समझना चाहिए।

"तत्तद्‌वलानुगुण्येन" इति पाठः साधीयान्। तत्तद्‌वलानुसारिणेत्यर्थः (टीकाकारः) ऐसा भी पाठ है।

पण्डित श्री रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि —

"ज्योतिषियों को चाहिये कि, दशानाथ के विरुद्ध फल देनेवाले जो दूसरे ग्रह हैं उन्हीं का फल अन्तरदशाओं के स्वामियों के फलों के अनुसार जानें"

उद्योतकार कहते हैं कि सधर्मी अथवा सम्बन्धी जो ग्रह नहीं हों, उनकी जब अन्तर्दशा आती है तब अन्तर्दशानाथ के अनुरूप ही महादशा फल देता है।

राज ज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं—

"दशानाथ के विरुद्ध (उलटा) फल देनेवाले जो दूसरे ग्रह हैं वे अपनी-अपनी अन्तर्दशा में अपना-अपना फल करते हैं।

पं० माधवप्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं—

"जो ग्रह दशेश से सम्बन्ध नहीं रखते वा उसके समान नहीं हैं, किन्तु दशेश के विरुद्ध फल देनेवाले हैं उन ग्रहों की अन्तर्दशा में उनके फल के अनुसार दशेश शुभफल देनेवाला है, परन्तु और ग्रह अशुभफल देनेवाले हैं तो उन शुभग्रहों की अंतर्दशा में दशेश भी शुभफल देता है। वह स्वयं शुभाशुभ फल नहीं देता।

सज्जन रंजनी टीकाकार कहते हैं कि :—

"अन्तर्दशानाथ यदि महादशानाथ का सम्बन्धी अथवा सधर्मी नहीं हो और विरुद्ध धर्मी हो—कल्पना करो महादशानाथ धन देनेवाला है और अन्तर्दशानाथ धन का अपहरण करनेवाला है—तो दोनों ही फल याने धन लाभ और धन-व्यय मिलते हैं। यहाँ पर यह विशेष है कि महादशानाथ और अन्तर्दशानाथ इन दोनों में जो बलवान हो—उसका फल विशेष रूप से मिलता है। यदि दोनों (महादशानाथ अथवा अन्तर्दशानाथ) में से एक में भावयोग आदि द्वारा धनदत्व-धनापहरत्व ऐसे दोनों विरुद्ध लक्षण हों तो दोनों के ही गुणों का और अवगुणों का नाश होता है और वह ग्रह धन भी नहीं देता और धनापहरण भी नहीं करता। यदि एक ही ग्रह में दोनों हेतु द्वारा धनदत्व और दूसरे हेतु द्वारा धनापहरत्व हो तो दोनों गुणों में से एक गुण (२–१ = १) ऋण किया तो १ गुण शुभफल शेष रहता है। अब इन महादशानाथ अथवा अंतर्दशानाथ दोनों में से पहिले किसका फल प्राप्त होगा ? तो उसका उत्तर ऐसा है कि पहिले दशानाथ का और बाद में अन्तर्दशानाथ का फल मिलेगा।"

ज्योतिषाचार्य-तीर्थ पं० सीताराम झा (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि—

"दशानाथ के सम्बन्ध रहित तथा विरुद्ध फल देनेवाले ग्रहों की अन्तर्दशा में दशाधिप और अन्तर्दशाधिप (दोनों) के अनुसार दशाफल कल्पना करके समझना चाहिये।"

श्री विनायक शास्त्री कहते हैं कि—

"ग्रहसम्बन्धी होते हैं या असम्बन्धी होते हैं। यहाँ जो असम्बन्धित तथा अस-धर्मी हैं उनके बारे में अथवा विषय में ही यह प्रकरण है। ग्रह (१) सधर्मी होते हैं। (२) अथवा विरुद्धधर्मी होते हैं (३) अथवा जो सधर्मी नहीं होते हैं और विरुद्धधर्मी भी नहीं होते हैं। सम्बन्धी की अन्तर्दशा में तो मुख्य करके महादशानाथ का ही फल मिलता है। विरुद्धधर्मी यदि अन्तर्दशानाथ हो तो भी उसमें दशानाथ का कुछ तो फल होता ही है। अर्थात् विरुद्धधर्मी को अन्तर्दशा में पूर्णफल नहीं मिलता अल्पफल मिलता है। वैसा तो सम्बन्धी की अपेक्षा सधर्मी की अन्तर्दशा में गौणफल मिलता है। यदि असम्बन्धी भी हो और विरुद्धधर्मी भी हो तो उसकी अन्तर्दशा में मिश्रफल मिलता है। योगकारकों के योगकारक, शुभों के शुभ, सम के सम, पापी के पाप, मारक के मारक, सधर्मी होते हैं। योगकारक और पाप, शुभ और पाप, योगकारक और मारक, शुभ और मारक—ये विरुद्धधर्मी होते हैं। इसी प्रकार मारक और पाप, पाप और सम, मारक और सम ये अनुभयधर्मी होते हैं।

इसलिये अन्तर्दशानाथ किस प्रकार का है याने विरुद्धधर्मी अथवा अनुभय-धर्मी इत्यादि का विचार करने के पश्चात् ही फल कहना चाहिये ।

पण्डित रामयत्न ओझाजी (फलित-विकास) कहते हैं—

यदि महादशानाथ और अंतर्दशानाथ, दोनों ही शुभ हों तो शुभफल, दोनों ही पापफलद हों तो पापफल मिलता है । एक शुभ--एक पाप हो तो तारतम्य से विचार करके मिश्रफल मिलता है—ऐसा कहना चाहिये ।

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराती टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं—

"इतर ग्रह याने दशानाथ के विरुद्ध फल देनेवाले ग्रह उसके सम्वन्धी नहीं हों तो उसकी अंतर्दशा में अंतर्दशापति के अनुरोध को लेकर अंतर्दशापति के आत्मभाव प्रमाण में फल मिलता है ऐसा समझना चाहिये । दशापति और अंतर्दशापति दोनों के शुभत्व के विषय में विचार करके फल कहना ऐसा जो हिन्दी टीकाकार कहते हैं वह वरावर नहीं है । दशानाथ और अन्तर्दशानाथ का सम्वन्ध नहीं होने के कारण से अंतर्दशानाथ स्वतंत्र बनता है और उस कारण से स्वयं के आत्मभाव प्रमाण में फल देने में समर्थ बनता है । यह बात श्लोक ३३, ३४ पर से समझ में आ सकती है । इतना ध्यान में रखना चाहिये कि इस श्लोक में कहा हुआ नियम शुभग्रह की महादशा को लागू करता है ।"

शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या (गुजराती टीकाकार) कहते हैं कि—

"दशास्वामी के विरुद्धफल देनेवाले जो अन्यग्रह उनके फलानुरोध से विद्वानों को फलों की कल्पना करनी चाहिये ।

इस पर से ऐसा समझ में आता है कि दशास्वामी यदि क्वचित् शुभफल देने वाला हो परन्तु दूसरा ग्रह अशुभफल देने वाला हो, तो उसकी दशा में चालू ग्रह की अन्तर्दशा में फल अधिकांश अशुभ नहीं समझना चाहिये और उसी प्रकार यदि दशापति अशुभफल देने वाला हो और दूसरा ग्रह शुभफल देने वाला हो तो उसकी दशा में चालू ग्रह की अन्तर्दशा का फल शुभ समझना चाहिये । उन दोनों ग्रहों के शुभाशुभत्व का वल देखकर उस प्रकार से फल निश्चित करना चाहिये—वह ऐसा कि निर्वल होकर ग्रह शुभ हो तो चालू ग्रह की अन्तर्दशा में वह वलवान हो, तो एकदम अशुभफल नहीं मिल सकेगा । उसी प्रकार क्वचित् निर्बल परन्तु चालू ग्रह शुभ हो और दूसरा बलवान और अशुभ ग्रह हो तो

उस प्रमाण में उसकी दशा में चालू ग्रह की अन्तर्दशा का फल अशुभ ही–खास करके विशेष प्रमाण में अशुभ ही मिलेगा इसमें सन्देह नहीं है।"

स्वर्गीय पण्डित रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) ऐसा कहते हैं —

"दशानाथ के विरुद्ध फल देने वाले ग्रहों की अन्तर्दशा में दोनों के ही फलों में कमतरता आती है। जिस ग्रह की महादशा हो उस ग्रह के फल उस महादशा में प्राप्त होंगे परन्तु उस महादशानाथ के विरुद्धफल देने वाले की अन्तर्दशा आवे तब दोनों के ही सामर्थ्य में कमतरता आती है यह सहज ही मालूम पड़ सकता है। उन दोनों में से जो अधिक बलवान हो उसके अनुकूल अन्त में निकाल लेना चाहिये। परन्तु पूर्णफल किसी का भी नहीं मिलता।"

स्वर्गीय श्री ह० ने० काटवे (मराठी टीकाकार) ने सिर्फ ऐसा अर्थ दिया है—

"इतर ग्रह याने जो दशानाथ के विरुद्ध फल देने वाले होकर उसके साथ सम्बन्ध नहीं करते हों तो उनकी अन्तर्दशा में अन्तर्दशा के अनुरोध से ही फल मिलेगा ऐसा समझना।"

स्वर्गीय श्री वि० गो० नवाथे (मराठी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं —

"दशास्वामी के विरुद्ध फल देने वाले जो इतर ग्रह, उनके फलानुरोध से ही विद्वानों को कल्पना करनी चाहिये।"

"जो भी दशा स्वामी शुभफल उत्पन्न करने वाला हो, तो भी अन्य ग्रह यदि अशुभफल उत्पन्न करने वाले हों, तो उनकी अन्तर्दशा में अशुभफल ही उत्पन्न होगा। उसी प्रकार वह दशा स्वामी अशुभफल उत्पन्न करने वाला हो तो भी अन्य ग्रह यदि शुभफल उत्पन्न करने वाले हों तो उनकी अन्तर्दशा में शुभफल ही उत्पन्न होगा। तात्पर्य यह कि अन्य ग्रहों के शुभाशुभत्व के अनुरोध से शुभाशुभ फलों की कल्पना करनी चाहिये––यह ध्यान में रखना है।"

स्पष्टीकरण :–

इतर ग्रह दशानाथ के विरुद्धफल देने वाले होकर दशानाथ के साथ संबंध नहीं करते हों––सारांश यह है कि महादशा जिस ग्रह की चल रही हो वह ग्रह राजयोग करने वाला नहीं हो और उसी प्रकार उस महादशा में जिस ग्रह की अन्तर्दशा चल रही हो वह भी राजयोगकारक ग्रह नहीं हो और दशानाथ के विरुद्ध धर्म वाला हो तो उसका फल दशानाथ के फल के विरुद्ध समझना। उपरोक्त

तीन श्लोकों में दशानाथ की महादशा में सब ग्रहों की अन्तर्दशाओं के फलों के सामान्य नियम आ गये हैं।

विशेष ध्यान में रखने की बात यह है कि दशानाथ तो एक बड़ा शुभाशुभ-फल देने वाला अधिकारी है और वह अपना शासन अन्तर्दशा, विदशा, सूक्ष्म-दशा और प्राणदशा के अधिपति चार छोटे-छोटे अधिकारियों द्वारा चलाता है। उसमें क्रमशः प्रत्येक अधिकारी अपने-अपने अधिकार के बल और समय में कम होते जाते हैं। दाखले के तरीके अन्तर्दशा का समय (काल खंड) विदशा के समय से कम होता है; विदशा का समय सूक्ष्म दशा के समय से थोड़ा कम होता है और प्राण दशा का समय बिलकुल थोड़ा और निश्चित होता है। इसी प्रकार बल में भी न्यूनता आती रहती है। छोटे अधिकारी बड़े अधिकारी की प्रकृति प्रमाण में समानधर्मी हो या विरुद्धधर्मी होकर बड़े अधिकारी के द्वारा शासन चलाते हैं परन्तु विरुद्धधर्मी छोटा अधिकारी बड़े अधिकारी के साथ संबंध नहीं करता हो, तो विरुद्ध प्रकृतिवाला छोटा अधिकारी स्वतंत्र रहता है और उसके ऊपर बड़े अधिकारी का कोई अमल (हुकूमत) नहीं चलता। इस पर से श्लोक ३०, ३१ का अर्थ सहज ही में समझ में आ सकेगा।

अन्तर्दशा का ग्रह याने छोटा अधिकारी बड़े अधिकारी का काम करने वाला होगा ही नहीं फिर भी बड़ा अधिकारी अपनी स्वयं की अन्तर्दशा में फल देने की खास फिकर नहीं करता। यह २९ वें श्लोक का तात्पर्य है। परन्तु इस पर से यह नहीं समझना चाहिये कि महादशापति की अन्तर्दशा में बिलकुल फल होता ही नहीं। अन्तर्दशा का फल तो रहता ही है। पाराशरी और सर्वार्थचिंतामणि ग्रंथों में दशानाथ की अपनी अन्तर्दशा के फल विस्तार पूर्वक कहे हुए हैं। इस ग्रंथ में तो राजयोग और मारक योग का ही वर्णन होने से उनका विचार करना पड़ता है। तात्पर्य यह है कि दशानाथ अपने स्वयं की अन्तर्दशा में राजयोग का फल नहीं देता उसी प्रकार वह स्वयं की अन्तर्दशा में मारक भी नहीं बनता।

दशा स्वामी जो भी शुभफल उत्पन्न करने वाला हो, तो भी इतर (अन्य) ग्रह यदि अशुभफल उत्पन्न करने वाले हों तो उनकी अन्तर्दशा में अशुभफल ही उत्पन्न होता है। उसी प्रकार वह दशानाथ अशुभफल उत्पन्न करने वाला हो, तो भी अन्यग्रह यदि शुभफल उत्पन्न करने वाला हो तो उसकी अन्तर्दशा में शुभफल ही उत्पन्न होगा। तात्पर्य यह है कि इतर ग्रहों के शुभाशुभत्व से शुभाशुभ फलों की कल्पना करनी चाहिये, यह ध्यान में रखना जरूरी है।

हरएक ग्रह की दशा में ६ प्रकार के ग्रहों की ग्रन्तर्दशा हो सकती है —

(१) सम्वन्धित सधर्मी; (२) सम्वन्धित विरुद्ध धर्मी; (३) सम्बन्धित ग्रनुभय धर्मी; (४) ग्रसम्वन्धित सधर्मी; (५) ग्रसम्वन्धित विरुद्ध-धर्मी; ग्रौर (६) ग्रसम्वधित ग्रनुभवधर्मी। इनमें से जो ग्रह-सम्वन्धित होकर सधर्मी है उसकी ग्रन्तर्दशा में सर्वोत्कृष्ट तथा जो सम्वन्धित ग्रनुभवधर्मी हो उसमें थोड़ा कम; जो सम्वन्धित ग्रौर विरुद्ध धर्मी हो उसकी ग्रन्तर्दशा में उससे कम; तथा ग्रसम्वन्धित सधर्मी की ग्रन्तर्दशा में उससे भी कम ऐसे ग्रात्मफल देता है, उनसे भिन्न जो ग्रसम्वन्धित विरुद्ध धर्मी तथा ग्रसम्वन्धित ग्रनुभव धर्मी हो तो उनके गुणों के ग्रनुसार फलों का वितर्क करना पड़ेगा।

सम्वन्ध नहीं हो तो त्रिकोणेश की दशा में त्रिषडायेश का अन्तर शुभ-ग्रशुभ के सामंजस्य से होता है। त्रिकोणेश–षडायेश ग्रथवा त्रिकोणेश–ग्रष्टमेश इनका ग्रापस में सम्वन्ध हो, तथा त्रिषडायेश ग्रह केन्द्रेश नहीं हो तो कारकत्व प्राप्त न होने के कारण त्रिकोणेश की दशा ग्रौर त्रिषडायेश का ग्रन्तर मिश्रफल-दायक होगा ग्रौर त्रिकोणेश की स्वयं की ग्रन्तर्दशा में शुभफल होगा। त्रिषडायेश की दशा में त्रिकोणेश की ग्रन्तर्दशा में भी मिश्रफल ही होगा।

स्वदशायां त्रिकोणेशभुक्तौ केन्द्रपतिः शुभम्।
दिशेत्सोऽपि तथा नो चेदसम्वन्धेन पापकृत् ॥३२॥

केन्द्र का स्वामी ग्रपनी दशा में सम्वन्ध रहने पर त्रिकोणेश की ग्रन्तर्दशा में शुभफल देता है ग्रौर त्रिकोणेश भी ग्रपनी दशा में केन्द्रेश के साथ यदि सम्वन्ध हो तो ग्रपनी ग्रन्तर्दशा में शुभफल देता है। यदि दोनों का परस्पर सम्वन्ध न होवे तो दोनों ग्रशुभफल देते हैं।

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराती टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं —

"जो केन्द्रपति ग्रशुभफल देने वाला नहीं हो उसकी महादशा में त्रिकोण-पति की ग्रन्तर्दशा सम्वन्ध रहित होते हुए भी शुभफल देने वाली होती है। यहाँ पर 'पापकृत्' पद केन्द्राधिपति ग्रकेले को ही लागू होता है।

दशानाथ केन्द्रपति हो लेकिन ग्रशुभफल देने वाला न हो तो इस प्रकार में ग्रन्तर्दशा यदि त्रिकोणाधिपति की हो ग्रौर उनमें एक दूसरे से सम्वन्ध न हो फिर भी वह शुभफल देने वाला होता है। तात्पर्य यह है कि निश्चित नियम नक्की करने में ग्राया है कि केन्द्रपति ग्रशुभ फल देने वाला नहीं हो तो वह

केन्द्रपति अपनी महादशा में, त्रिकोणपति की अन्तर्दशा में, दोनों ग्रहों के बीच सम्बन्ध न रहते हुए भी वह शुभफल देने वाला होता है।

केन्द्रपति का पापग्रह से सम्बन्ध बनता हो तो वह पापफल देने वाला बनता है। परन्तु त्रिकोणपति का केन्द्रपति के साथ सम्बन्ध बनता हो तो वह कभी भी पापग्रह नहीं बनता।

त्रिकोणपति याने पंचम (५) और नवम (६) का स्वामी होकर षष्ठ तथा अष्टम भाव का स्वामी भी बनता हो तब भी वह पापग्रह नहीं बनता। परन्तु दोषयुक्त मात्र बनता है। त्रिकोणपति याने पंचम, नवम स्थान का स्वामी, अन्य दोषयुक्त स्थानों का याने तृतीय एकादश का स्वामी बनना सम्भव है ही नहीं। इसलिये ३२ वें श्लोक में जो 'पापकृत्' पद आया है वह केन्द्रपति को ही लागू पड़ता है। त्रिकोणपति के साथ सम्बन्ध नहीं करने वाले पापी केन्द्रेश की महादशा में त्रिकोणेश की अन्तर्दशा शुभफलदायक बनती है।

हिन्दी टीकाकार "त्रिकोणेश यदि नैसर्गिक पापग्रह हो तो उसकी अंतर्दशा शुभफल देने वाली नहीं होती" ऐसा अर्थ जो करते हैं वह बराबर नहीं है। कारण कि ग्रन्थकर्ता का आशय यह है कि पापी केन्द्रेश की महादशा में त्रिकोणेश सम्बन्ध नहीं करता हो, तो भी वह शुभफल देने वाला होता है। सारांश यह है कि त्रिकोणेश की अंतर्दशा हमेशा शुभफलदायक होती है। श्लोक १६ में दर्शायी गयी परिस्थिति में थोड़ा हेरफेर होता है तो फलादेश में विपरीत पड़ता है। यही श्लोक ३३ में बताया गया है।"

शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या (गुजराती टीकाकार) कहते हैं कि:-

"केन्द्राधिपति तथा त्रिकोणाधिपति किसी भी प्रकार का सम्बन्ध करते हों तो ऐसा योग उत्तम माना गया है। यह बात पूर्व में श्लोक १३, १४, १५ में कही गयी है। उनमें ऐसा कहा गया है कि "केन्द्राधिपति अथवा त्रिकोणाधिपति स्वयं किसी भी प्रकार से दोषयुक्त हो फिर भी सम्बन्ध मात्र से वे बलवान होते हैं और राजयोग करने वाले बनते हैं और उसी प्रकार जब केन्द्राधिपति और त्रिकोणाधिपति धर्म और कर्म स्थानों में याने नवम और दशम स्थानों में एक दूसरे की परस्पर राशियों में हों, अथवा उनमें से एक भी उस प्रकार का हो फिर भी वह राजयोग करने वाला होता है। इसप्रकार ये दोनों अर्थात् केन्द्राधिपति और त्रिकोणाधिपति स्वाभाविक रीति से सम्बन्ध द्वारा शुभकारक बनकर वे उनकी परस्पर अंतर्दशाओं में शुभफ़ल देनेवाले होते हैं अथवा वे एक दूसरे की महादशा में शुभफल देनेवाले होते हैं।

परन्तु उनके साथ कोई भी पापग्रह किसी भी प्रकार का सम्वन्ध नहीं करता हो तो अर्थात् उसके साथ कोई भी दूसरा पापग्रह नहीं हो अथवा वे स्वयं नीच, अस्तंगत, वक्री, शत्रु के घर में इत्यादि कारणों से अशुभयोग नहीं हो तो वे शुभफल देनेवाले होते ही हैं। ये दोनों केन्द्राधिपति और त्रिकोणाधिपति किसी भी प्रकार का परस्पर सम्वन्ध नहीं करते हों और उनकी महादशाओं में किसी भी पापग्रह की अन्तर्दशा आती हो तो उसकी दशा अशुभफल देनेवाली होती है इसमें संशय नहीं है। अर्थात् किसी भी प्रकार के अशुभयोगों में नहीं हो तो केन्द्राधिपति की दशा में त्रिकोणाधिपति की अन्तर्दशा तथा त्रिकोणाधिपति की दशा में केन्द्राधिपति की अंतर्दशा शुभफल देने वाली होती है। मात्र इनकी दशा देखते समय अन्य ग्रहों का योग उनके साथ हुआ हो तो वह किस प्रकार का है यह बरावर जाँच करके फिर शुभाशुभ फलों की प्राप्ति के सम्वन्ध में स्पष्टता करनी चाहिए।

स्वर्गीय रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) के विचार इस प्रकार हैं :—

"त्रिकोणाधिपति और केन्द्राधिपति इनका सम्वन्ध नहीं भी हो फिर भी यदि उनमें से कोई अशुभ नहीं हो तो त्रिकोणाधिपति की महादशा में केन्द्राधिपति की अन्तर्दशा शुभफल देती है और केन्द्राधिपति की महादशा में त्रिकोणाधिपति की अन्तर्दशा शुभफल देती है। त्रिकोणाधिपति और केन्द्राधिपति इनका सम्वन्ध हो तो वह शुभदायक होता है। ऐसा श्लोक १३ और १४ में नियम कहा गया है। यह नियम स्वाभाविक तौर से इनकी दशा और अन्तर्दशा को भी लागू है। अर्थात् वे परस्पर की अन्तर्दशा में शुभफल देते हैं। इतना ही नहीं, तो त्रिकोणाधिपति और केन्द्राधिपति इनका विलकुल सम्वन्ध नहीं भी हो फिर भी—यदि कोई पापकारक अशुभयोग (नीच, अस्त, वक्री, शत्रुग्रह इत्यादि नहीं हों) नहीं हो तो—त्रिकोणाधिपति की महादशा में केन्द्राधिपति की अन्तर्दशा और केन्द्राधिपति की दशा में त्रिकोणाधिपति की अन्तर्दशा शुभफल देती है।"

स्वर्गीय श्री ह० ने० काटवे (मराठी टीकाकार)—इन्होंने इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार किया है :—

"यदि केन्द्राधिपति अशुभ फल देने वाला नहीं हो तो स्वयं की दशा में त्रिकोणपति की अन्तर्दशा में उसके साथ सम्वन्ध न होने पर भी शुभफलदाता होता है।

स्वर्गीय श्री वि० गो० नवाथे (मराठी टीकाकार), इनके विचार इस प्रकार हैं :—

"जब केन्द्राधिपति की महादशा में त्रिकोणाधिपति की अन्तर्दशा हो अथवा त्रिकोणश की महादशा में केन्द्रेश की अन्तर्दशा हो तब शुभफल उत्पन्न होता है। वैसा सम्बन्ध हो तो केन्द्र स्वामी अथवा त्रिकोणस्वामी पापकर्ता जानना चाहिए। वैसा सम्बन्ध नहीं हो इसका अर्थ स्पष्ट है कि जो भी केन्द्र स्वामी और त्रिकोण स्वामी नैसर्गिक शुभफल उत्पन्न करनेवाले हैं फिर भी अन्य अशुभ फलदायक ग्रहों की अन्तर्दशा में वे पापफल उत्पन्न करते हैं।

उद्योतकार और पंडित रामयत्न ओझा जी इस प्रकार अर्थ करते हैं :—

"यदि केन्द्रेश और त्रिकोणेश इनका सम्बन्ध हो, तो केन्द्रेश अपनी महादशा में त्रिकोणेश की अन्तर्दशा में शुभफल देता है और त्रिकोणेश अपनी महादशा में केन्द्रेश की अन्तर्दशा में शुभफल देता है–किन्तु इन दोनों में–केन्द्रेश त्रिकोणेश में–परस्पर सम्बन्ध नहीं हो तो एक की महादशा में दूसरे की अन्तर्दशा जब आती है तब अशुभफल ही प्राप्त होगा।"

पंडित ज्योतिषाचार्य-तीर्थ–सीताराम जी झा (हिन्दी टीकाकार) ऐसा कहते हैं :—

'केन्द्रपति अपनी दशा में' स्वसम्बन्धी त्रिकोणेश की अंतर्दशा आने पर शुभफल देता है। तथा त्रिकोणेश भी अपनी दशा में स्वसम्बन्धी केन्द्रेश की अन्तर्दशा आने पर शुभफल देता है। अगर ऐसा न हो तो सम्बन्ध न होने के कारण केन्द्रेश अपनी दशा में त्रिकोणेश की अन्तर्दशा में भी सामान्य रूप से पापफल को ही देता है।

उक्तं शुभत्वं सम्बन्धात् केन्द्रकोणेशयोः पुरा।
सम्बन्धेऽत्र शुभं तस्मादसम्बन्धेऽन्यथाफलम्॥ स्पष्टार्थ–

उदाहरण के लिए कुंडली देखो :— दशमेश (मंगल) को नवमेश शुक्र से सम्बन्ध है। इसलिए मंगल की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा आने पर शुभफल होगा। तथा सप्तमेश सूर्य को त्रिकोणेश (शुक्र या बुध) से सम्बन्ध नहीं है,



इसलिए सूर्य की दशा में बुध-शुक्र की अन्तर्दशा आने पर भी विशेष शुभफल नहीं होगा।

विद्यारत्न पंडित माधवप्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

"केन्द्र का स्वामी अपनी दशा में सम्बन्ध रहने पर त्रिकोणेश की अन्तर्दशा में शुभफल देता है और त्रिकोणेश भी अपनी दशा में केन्द्रेश के साथ यदि सम्बन्ध हो तो अपनी अन्तर्दशा में शुभफल देता है। यदि दोनों का परस्पर सम्बन्ध न हो तो दोनों अशुभफल देते हैं।"

राज-ज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

"केन्द्र का स्वामीग्रह त्रिकोण के स्वामीग्रह की महादशा में निज अन्तर पाकर यदि उस त्रिकोणेश ग्रह से सम्बन्धित है तो शुभफल करता है और यदि सम्बन्धहीन हो तो अशुभफल करता है। इसी भाँति त्रिकोण का स्वामी ग्रह भी केन्द्र के स्वामी ग्रह की महादशा में निज अन्तर पाकर यदि उसके केन्द्रेश ग्रह से सम्बन्धित है तो शुभफल करता है और यदि सम्बन्धहीन हो तो अशुभ फल करता है।"

पण्डित रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) ऐसा कहते हैं :—

"केन्द्र का स्वामी अपनी दशा में और त्रिकोणेश की अन्तर्दशा में शुभफल देता है। (परन्तु आपस में सम्बन्ध होना मुख्य है) और जो सम्बन्ध न हो तो बुरा फल देता है और इसी प्रकार त्रिकोणेश को जानो अर्थात् त्रिकोणेश की दशा में केन्द्र के स्वामी की अन्तर्दशा में आपस में सम्बन्ध होने से शुभफल होगा, अन्यथा अशुभ होगा।"

स्पष्टीकरण :—

केन्द्र और त्रिकोण के स्वामी ये निजसधर्मी नहीं होते इसलिए जब तक इनका आपस में सम्बन्ध नहीं होता तब तक वे कारक नहीं होते और परस्पर दशान्तर्दशाओं में अशुभ ही फल देते हैं।

यदि केन्द्रेश और त्रिकोणेश इनका आपस में सम्बन्ध हो तो केन्द्रेश अपनी महादशा में त्रिकोणेश की अंतर्दशा में शुभफल देता है और त्रिकोणेश अपनी महादशा में केन्द्रेश की अंतर्दशा में शुभफल देता है। किन्तु इन दोनों में याने केन्द्रेश और त्रिकोणेश में परस्पर सम्बन्ध नहीं हो एक की महादशा में दूसरे की अंतर्दशा जब आती है तब अशुभफल ही मिलता है। यदि त्रिकोणेश साथ ही साथ पापस्थान का स्वामी न हो (याने निर्दोष हो) तो त्रिकोणेश की महादशा में केन्द्रेश की अंतर्दशा शुभफल देती है। परन्तु कब ? जब केन्द्रेश

और त्रिकोणेश इनका परस्पर संबंध नहीं हो तब, सम्बन्ध होगा तो विशेष शुभफल प्राप्त होगा। सम्बन्ध का अभाव होगा तब कम प्रमाण में फल मिलेगा। इसी प्रकार केन्द्रेश की महादशा में त्रिकोणेश की अंतर्दशा शुभ होती है। किन्तु यह तभी हो सकता है जब महादशानाथ और अंतर्दशानाथ इनमें किसी प्रकार का दोष न हो अर्थात् केन्द्र त्रिकोण व्यतिरिक्त इनकी अपनी दूसरी राशि अष्टम आदि पापस्थान में नहीं हो तब, पापस्थान के स्वामी होने से इनमें शुभत्व नहीं रहता।

पापकृत् केन्द्रेश अपनी महादशा में त्रिकोणेश की अन्तर्दशा में शुभफल देता है यदि त्रिकोणेश पापकृत् नहीं हो तब। यदि त्रिकोणेश भी पापकृत् हो तो पापकृत् केन्द्रेश की महादशा में पापकृत् त्रिकोणेश की अन्तर्दशा शुभफल नहीं देगी। पापकृत् केन्द्रेश किसे कहते हैं? बृहस्पति, शुक्र, बुध, चन्द्र ये केन्द्र के स्वामी होकर त्रि, षट्, आय अथवा अष्टम स्थान के स्वामी हों तब वे पापकृत् होते हैं (चन्द्रमा तो सिर्फ एक ही राशि का स्वामी होता है इसलिए वह सिर्फ केन्द्रेश ही रहेगा।) ऐसा शनि अथवा त्रि, षट्, आय का स्वामी मंगल यदि केन्द्र का स्वामी हो तब वह भी पापकृत् होता है।

इसलिए पापकृत् केन्द्रेश की महादशा में त्रिकोणेश की (यदि पापकृत् नहीं हो तब) अन्तर्दशा आती है तब शुभफलों की सम्भावना रहती है। इस श्लोक में "पापकृत्" शब्द अकेले केन्द्रेश को ही लागू है। ऐसा समझना चाहिए। इस सम्बन्ध में गुजराथी टीकाकार उत्तमराम मयाराम ठक्कर के विचार देखिए।

त्रिकोणेश पापकृत हो सकता है क्या? त्रिकोणेश यदि पापस्थान का भी स्वामी हो तब वह पापकृत हो सकता है। हम उसे दोषयुक्त (सदोष) कह सकते हैं। जैसे सिंह लग्न के लिए—पंचमेश, अष्टमेश बृहस्पति; कुम्भ लग्न को—पंचमेश अष्टमेश—बुध; कन्या लग्न को—पंचमेश षष्टेश-शनि अथवा मिथुन लग्न को-नवमेश अष्टमेश शनि ऐसी स्थिति में जब केन्द्रेश पापकृत हो और त्रिकोणेश भी सदोष (पापकृत) हो तो केन्द्रेश की महादशा में त्रिकोणेश की अंतर्दशा आने पर शुभफल नहीं होगा यदि दोनों ही पापकृत नहीं हों तो परस्पर दशान्तर्दशाओं में शुभफल मिलने की सम्भावना रहती है यदि त्रिकोणेश अष्टमेश न हो तब अष्टमेश के सम्बन्ध से योगकारकत्व नष्ट होता है।

आरम्भो राजयोगस्य भवेन्मारकभुक्तिषु।
प्रथयन्ति तारतम्यं क्रमशः पापभुक्तयः॥ ३३॥

यदि मारक ग्रहों की अन्तर्दशा में राजयोग का आरम्भ हो, तो वह अन्तर्दशा मनुष्य को उत्तरोत्तर राज्याधिकार से केवल प्रसिद्ध कर देती है। पूर्ण सुख नहीं कराती है।

विद्यारत्न पं० माधवप्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं—

"यदि द्वितीयेश और सप्तमेश की अंतर्दशा में राजयोग प्रारम्भ होवे तो पापग्रह की दशा में उन्नति नहीं होती अर्थात् वह राजा तो अवश्य होता है परन्तु उसका खजाना वा हाथी, घोड़ा वा ग्रामभूमि आदि नहीं बढ़ती।

राज ज्योतिषी पं० चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं—

"राजयोगकारक ग्रह की महादशा के तत् सम्बन्धी मारकेश ग्रह की अन्तर्दशा में यदि राजयोग का आरम्भ हो तो वहीं से दशापति से सम्बन्ध रखने वाला पापीग्रह क्रमश; राजयोग फल देता है।

४ ; २ ; ५ ; ३ गु ; १ ; बुराशु ६ ; चंकेमं १२ ; ७ सू ; ९ श ; ११ ; ८ ; १०

उदाहरण कुण्डली—इस कुण्डली में बुध–शुक्र चतुर्थ और पंचम के स्वामी होकर चतुर्थस्थान में एकत्र बैठने के कारण सामान्य राजयोग कारक होते हैं। माना जावे कि रेवती जन्म नक्षत्र है जिसके अनुसार बुध की दशा जन्म समय में १० वर्ष भोगनी बाकी है। तदनन्तर ७ वर्ष के केतु के बीतने पर शुक्र की दशा का प्रारम्भ होता है। शुक्र राजयोग कारक है अतः अपना फल अपनी ही दशा में देगा प्रथम अन्तर्दशा शुक्र में शुक्र की आवेगी तब श्लोक २९ के अनुसार उसके फल प्राप्त नहीं होंगे। सूर्य तृतीयेश पापी होकर वह भी शुक्र से सम्बन्ध हीन है। इस कारण उसके अन्तर में फल होना सम्भावित नहीं है। तदुपरान्त चन्द्रमा का अन्तर आवेगा। चन्द्रमा और शुक्र का परस्पर दृष्टि सम्बन्ध है; इस कारण इस चन्द्रमा के अन्तर में योगफल होना श्लोक ३० के अनुसार निश्चित है। चन्द्रमा द्वितीय स्थान का अर्थात् मारक स्थान का स्वामी होने से मारक की अन्तर्दशा में राजयोग का आरम्भ होता है। इसकी दशा में ही राजयोग फल आरम्भ होकर अगाडी पापग्रह मंगल के अन्तर में भी क्रमशः वृद्धि होगी।

पंडित रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि—"जो मारकेश के अन्तर में राजयोग आरम्भ हो तो पापग्रहों की अन्तर्दशा उस मनुष्य को

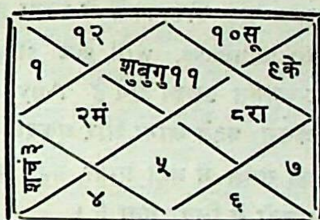
राज्याधिकार से केवल प्रसिद्धि कर देती है। पूर्ण सुख नहीं कराती है।"

उद्योतकार कहते हैं कि मारक (द्वितीयेश–सप्तमेश) ग्रहों की अन्तर्दशा में यदि राजयोग का प्रारम्भ हुआ हो तो उत्तरोत्तर राजयोग की प्रसिद्धि सिर्फ बढ़ती जाती है। राज सुख, तेज, बल इनकी वृद्धि नहीं होती।

सज्जन रंजनी टीकाकार—यह विशेष कहते हैं कि इस सिद्धांत पर से यह स्पष्ट है कि प्रबल योगकारक की महादशा में अंतर्दशानाथ पापी होने पर भी उसकी अंतर्दशा में महादशानाथ के राजयोग के फल नष्ट नहीं होते।

ज्योतिषाचार्य—तीर्थ, पंडित सीताराम झा (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि--

"योगकारक ग्रह की दशा में तत्सम्बन्धित मारकेश की अन्तर्दशा में राजयोग का आरम्भ हो तो पापी मारक की अन्तर्दशा उस (राजयोग) को आरम्भ करके क्रम से वढ़ाती (विस्तार करती) है।"



इस कुण्डली में नवमेश (शुक्र) दशमेश (मंगल) का अन्यतर स्थान सम्बन्ध होने के कारण सामान्य राजयोग प्राप्त होता है तथा मारकेश बृहस्पति एकादशेश होने के कारण से पापी है और योगकारक शुक्र से सम्बन्ध है; अतः शुक्र की दशा में बृहस्पति की अन्तर्दशा आने पर राजयोग आरंभ होकर पूर्णयोग क्रम से प्राप्त होगा।

स्वर्गीय पंडित रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) ऐसा कहते हैं—

"मारक ग्रहों की दशा में राजयोग के फल मिलते हैं अर्थात् कार्यों में यश प्राप्त होता है परन्तु पापग्रहों की दशा में कार्य का नाश होता है और कर्ता का भी नाश होता है। मारकग्रहों की दशायें शुभफल देती हैं परन्तु उन दशाओं में पापग्रहों की अन्तर्दशा आने पर वे हानिकारक होती हैं, इतना ही नहीं मनुष्य का निधन भी सम्भव होता है। याने वह हानिकारक होती है।

स्वर्गीय वि॰ गो॰ नवाथे—(मराठी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं—

यदि मारक ग्रह की अन्तर्दशा में राजयोग का आरम्भ होवे तो वह अंतर्दशा मनुष्य को उत्तरोत्तर प्रसिद्धि को लाती है परन्तु सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं होती।

मारकग्रहों की अन्तर्दशा में राजयोग का आरम्भ कैसा होगा ? ऐसी शंका उत्पन्न होने की सम्भावना है। उसका समाधान इस प्रकार है कि मारकग्रह मनुष्य की प्रकृति को यद्यपि अपायकारक होते हैं तो भी वे यदि अशुभ भावों के अधिपति नहीं हों तो उनके द्वारा राजयोग को प्रतिबन्ध नहीं होता। परंतु राजयोग के पूर्णफल नहीं प्राप्त होते।

स्वर्गीय ह० ने० काटवे (मराठी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं—

राजयोगग्रह की महादशा में तत्सम्बन्धित मारकग्रह की अंतर्दशा में यदि राजयोग का आरम्भ होवे तो उनके आगे आनेवाले दशापति के साथ सम्बन्धित पापग्रह की अन्तर्दशा में थोड़ा-थोड़ा फल क्रमशः प्राप्त होता रहता है। और वह क्रमशः बढ़ता जाता है। सारांश किसी भी प्रकार की एक ही अन्तर्दशा में पूर्ण फल नहीं मिल सकता।

यही अर्थ सही है और 'प्रथयन्ति' इस शब्द के बदले में "प्रलयन्ति" यह शब्द कुछ टीकाकारों ने लिया हुआ है वह बिलकुल सही नहीं है। प्रथयन्ति—to increase, will get step by step and more and more और प्रलयन्ति इसका अर्थ है Any extensive destruction, धीरे-धीरे परन्तु क्रमशः बढ़ते जाना और एकदम नष्ट होना इन दोनों में का अर्थ हमारे विद्वानों की समझ में नहीं आया, यह आश्चर्य है इसलिये यहाँ पर 'प्रलयन्ति' शब्द गलती से लिया गया है।

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराथी टीकाकार) ऐसा कहते हैं—

"राजयोगकारक ग्रहों की महादशाओं में उनके साथ सम्बन्ध करनेवाले मारकग्रह की अन्तर्दशा आवे और इस अंतर्दशा में राजयोग का आरम्भ हुआ हो तो उस अंतर्दशा के बाद दशापति के साथ सम्बन्ध करनेवाले पापग्रह की अंतर्दशा में क्रमशः थोड़ा-थोड़ा फल प्राप्त होता है और वह बढ़ता जाता है। तात्पर्य यह है कि एक ही अंतर्दशा में पूर्णफल प्राप्त नहीं होता।

प्रथयन्ति इस पद का अर्थ विस्तारयन्ति इस अर्थ में लेना चाहिये। राजयोग तो नाममात्र देखने पुरता ही है, वास्तविक फल नहीं ऐसा अर्थ नहीं लेना चाहिये। क्रमशः इस पद का अर्थ किंचित् किंचित् शनैः शनैः न तु पूर्णत्वेन, पूर्णतः नहीं ऐसा लेना चाहिये।

शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या (गुजराथी टीकाकार) ऐसा कहते हैं—

'स्वाभाविक रीति से मारकग्रह की दशा मनुष्य को विनाशकारक होती है ऐसी सामान्य मान्यता है और फिर मारक ग्रह की दशा में राजयोग के फल

किस प्रकार मिलेंगे ? इस प्रकार की शंका स्वाभाविक रीति से उत्पन्न हो सकती है। परन्तु मारकग्रह की दशा अशुभ ही फल देती है अथवा मारकग्रह भी मनुष्य को अशुभफल ही देनेवाला होता है ऐसा सर्वथा मानने की जरूरत नहीं है। फिर भी मारकग्रह अशुभफल देता ही है यह स्वाभाविक है। जब वह अशुभ भाव का अधिपति होता है तभी वह विशेष अशुभफल देनेवाला होता है और इसलिए उसके राजयोग के फल बहुधा नहीं मिलते। परन्तु जब वह शुभ भाव का स्वामी होता है अथवा किसी अन्य शुभग्रह से सम्बन्ध करता है तब वह अशुभफल देनेवाला नहीं रहता। परंतु वह जो राजयोग के फल देता है वे फल इतने उत्तम नहीं होते परन्तु मध्यम फल हो सकते हैं। और वह स्वयं की महादशा में तथा अंतर्दशा में स्वयं के योगों के उत्तमफल देता है परन्तु पापग्रहों की दशा में वह स्वयं का राजयोग का फल नहीं देता अथवा उसकी अपनी स्वयं की महादशा में पापग्रह की अंतर्दशा जब आती है तब भी वह उसी प्रकार शुभफल नहीं देता।

इस लिये प्रथमग्रह की मारक स्थिति देखकर ही बाद में वह किस संयोग द्वारा राजयोग करनेवाला होगा वह तपासना चाहिये। इस सम्बन्ध में पूर्व में राज-योग के सम्बन्ध में कथन किया गया है उस प्रमाण से उसमें यदि इस प्रकार का समावेश नहीं होता हो तो ठीक है, नहीं तो दूसरे प्रकार के राजयोगों के तरफ ध्यान देकर उसकी अंतर्दशा के फलों का कथन करना चाहिये। और उसके उपरान्त दूसरे पापग्रहों की अन्तर्दशा किस प्रकार की आनेवाली है अथवा उस पापग्रह में मारकग्रह की अन्तर्दशा किस प्रकार की आनेवाली है यह तपास करके फलों को निश्चित करना चाहिये। इस प्रकार परस्पर संयोग तपासते हुए शुभराजयोग की अथवा उसकी विधा तक प्रवृति ध्यान में आवेगी। और इस प्रकार मारकग्रह की अंतर्दशा में मिलनेवाले फलों को तपासने में सुगमता होगी। इस प्रकार मारकग्रह शुभफल देनेवाले भी होंगे और राजयोग भी कर सकेंगे और उनकी दशा में शुभफल देनेवाले होगें ऐसा आशय समझना चाहिये।"

स्पष्टीकरण :—

कारक ग्रह की दशा में जब कभी किसी तत्सम्बन्धी कारक-मारकग्रह की अंतर्दशा आती हो तब वह ग्रह उस अंतर्दशा में प्रथमतः (आरंभ में) कारक शुभफल देकर क्रमशः बाद में पापफल देता है।

सारांश यह है कि इस प्रकार में एक ही अंतर्दशा में पूर्ण फल नहीं मिलता परन्तु दशापति के साथ संबंध करनेवाले पापग्रह की अंतर्दशा में थोड़ा-थोड़ा

राजयोग का फल मिलता रहता है। श्लोक १६ में दर्शाये अनुसार पाप अंतर्दशा में पूर्णफल तो मारक अंतर्दशा में राजयोग का आरंभ नहीं होता हो तव ही मिलता है। मारकग्रह राजयोगग्रह का विरुद्धधर्मी है। शुभ संबंध बने सिवाय वह मारकग्रह श्लोक ३१ के अनुसार पापफल ही देता है। इस वास्ते मारकग्रह की अंतर्दशा में राजयोग फल मिलने के लिये उसका राजयोगकारक ग्रह के साथ संबंध अवश्य ही देखना पड़ता है। श्लोक ३० के अनुसार वैसा संबंध होने के कारण शुभफल प्राप्त होता है। अब यदि मारकग्रह की अंतर्दशा में राजयोग का आरंभ होता हो तो उसकी पहली व्यतीत हुई अन्तर्दशा, महादशापति की ही होवे तो (श्लोक २६ के अनुसार राजयोगफल नहीं बनता) अथवा महादशापति के साथ सम्बन्ध नहीं करनेवाले पापग्रह की अन्तर्दशा हो, तो राजयोग का आरम्भ मारकपति की अन्तर्दशा में होता है। मारकग्रह की अन्तर्दशा में राजयोग का आरम्भ सिर्फ इसी स्थिति में होता है। मारकग्रह की अन्तर्दशा के पहिले जो अन्तर्दशा आयी हुई हो वह दशापति की स्वयं की हो अथवा उस दशापति के साथ सम्बन्ध नहीं करनेवाले पापग्रह की अन्तर्दशा आयी हुई हो, तो वह राजयोग नहीं करती। ऐसी स्थिति में दशापति राजयोगकारक होवे तो राजयोग मारकग्रह की अन्तर्दशा में होता है।

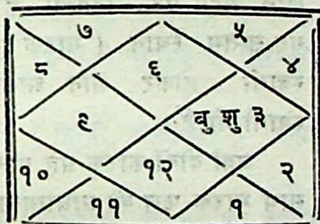


इस कुण्डली में बुध और शुक्र चतुर्थ और पंचम स्थानों के स्वामी होकर चतुर्थ स्थान में एकत्र बैठे हैं। इस कारण यह सहयोग सम्बन्ध राजयोगकारक है। इस जातक का जन्म रेवती नक्षत्र में हुआ है और इसे बुध की १५ वर्ष की महादशा भोगनी है, उसके बाद ७ वर्ष केतु की महादशा है। इसके बाद याने २२ वर्ष बाद शुक्र की महादशा याने योगकारक- ग्रह की दशा शुरू होती है। शुक्र की महादशा में ग्रहों की अन्तर्दशा इस प्रकार है।

	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु
वर्ष	३	१	१	१	३	२	३	२	१
मास	४	०	८	२	०	८	२	१०	२
दिन	०	०	०	०	०	०	०	०	०

अब शुक्र की महादशा में प्रथम शुक्र की अन्तर्दशा श्लोक २६ के अनुसार राजयोग के फल नहीं देगी। उसके बाद सूर्य की अन्तर्दशा आती है। सूर्य तृतीय स्थान का स्वामी होने से पापग्रह बनता है। सूर्य का शुक्र के साथ

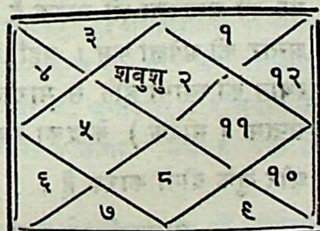
सम्बन्ध नहीं होने के कारण पापग्रह की अन्तर्दशा में राजयोग का फल नहीं मिलता। अब तीसरी अन्तर्दशा चन्द्रमा की है और वह चन्द्रमा शुक्र के साथ परस्पर दृष्टि संवंध करता है, इसलिए राजयोगकारक शुक्र की महादशा में संबंध करने वाले चन्द्रमा की अन्तर्दशा आने से श्लोक ३० में वताये अनुसार योग उत्पन्न हुआ। परन्तु चन्द्रमा मारक स्थान द्वितीय स्थान का स्वामी होने से राजयोग का प्रारम्भ मारक की अन्तर्दशा से शुरू हुआ। इस अन्तर्दशा में श्लोक ३३ के अनुसार संपूर्ण राजयोग का फल नहीं मिल सकता, परन्तु थोड़ा-थोड़ा फल मिलता है और शेष राजयोग का फल उसके बाद की आनेवाली अंतर्दशा जो मंगल की है, वह षष्ठ और एकादश का स्वामी होने से पापग्रह है और उसका शुक्र के साथ परस्पर दृष्टि सम्बन्ध बना है। श्लोक ३० के अनुसार दशानाथ का फल देनेवाला होता है और श्लोक ३३ में वताये अनुसार संबंध करनेवाले पापग्रह की अन्तर्दशा मारकग्रह की अंतर्दशा के बाद में आने से, दशानाथ का फल प्राप्त होना चाहिये। उसके बाद दूसरा पापग्रह शुक्र के साथ सम्बन्ध करनेवाला नहीं होने से आगे विचार करने की आवश्यकता नहीं है।



इस कुण्डली में नवमेश दशमेश का परस्पर सम्बन्ध राजयोग है परन्तु इनमें से यदि कोई एक मारकेश होतो उसकी दशा में प्रारम्भ में कारकफल होकर उसकी अन्तर्दशा में पापफल होता है।

उदाहरणार्थ :—इस कुण्डली में नवमेश और दशमेश शुक्र बुध हैं और वे एकत्र होने से राजयोग करते हैं। इन दोनों में से शुक्र द्वितीय स्थान का याने मारक स्थान का स्वामी भी है इसलिये बुध की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा कारक का फल प्रारंभ में देकर बाद में पापफल देगी।

इसी प्रकार का दूसरा उदाहरण देखिये :—



यहाँ स्वयं योगकारक शनि के साथ त्रिकोणेश बुध का सम्बन्ध होकर दोनों ही योगकारक हैं बुध त्रिकोणेश होकर मारकेश भी है। शनि कारक ग्रह की दशा में बुध का अन्तर प्रथम कारक का फल देकर बाद में पापफल देगा। उसी प्रकार बुध की अन्तर्दशा के बाद शुक्र की अन्तर्दशा पापफल देगी क्योंकि शुक्र लग्नेश होकर षष्ठेश

भी है और षष्ठेश होने के कारण से वह सदोष और अशुभ है। इसी तरह दो कारकग्रहों में से एक मारकेश हो तो कारक की दशा में मारकेश की अन्तर्दशा में अन्त में पापफल होता है।

उदाहरणार्थ—यह कुण्डली देखिये—

धनु लग्न की कुण्डली में सूर्य की महादशा में बुध की अन्तर्दशा होने पर बुध सप्तम स्थान का स्वामी होने से मारकेश है।

परन्तु

मिथुन लग्न की कुण्डली में शनि की महादशा में गुरु का अन्तर पापफल देनेवाला नहीं होता लेकिन मारक बनता है। कारण शनि यहाँ पर 'निहन्ता' है। यहाँ पर गुरु सप्तम स्थान (मारक स्थान) का स्वामी होकर शनि अष्टमस्थान का स्वामी भी है।

जहाँ दोनों कारक ग्रह मारकेश हों वहाँ परस्पर दशांतर्दशा में कारक के साथ मारक फल की प्राधान्यता रहेगी। यहाँ जातक का निधन अच्छी और अनुकूल परिस्थिति में होना सम्भव है :—

उदाहरणार्थ :—कन्या लग्न की कुण्डली में गुरु की महादशा में शुक्रका अन्तर निश्चयेन मारक है। शुक्र की महादशा में गुरु की अन्तर्दशा भी मारक है परंतु शुक्र के अन्तर की अपेक्षा कम। यहाँ शुक्र द्वितीय स्थान का स्वामी होने से मारक है और गुरु सप्तम (मारक) केन्द्रका स्वामी होने से मारक है। इस कुण्डली में गुरु और शुक्र दोनों कारक हैं।

तत्सम्बन्धिशुभानां च तथा पुनरसंयुजाम्।
शुभानां तु समत्वेन संयोगो योगकारिणाम् ॥३४॥

अर्थः—जो राजयोग करनेवाले ग्रहों के संबंधी शुभग्रहों की अंतर्दशा में राजयोग का आरंभ होवे, तो राज्य से सुख और प्रतिष्ठा बढ़ती है, और राजयोग करनेवाले से संबंध न करनेवाले शुभग्रहों की अंतर्दशा में राजयोग आरंभ होवे, तो समान फल कहना, कमती बढ़ती नहीं होगा, जैसा है वैसा ही बना रहेगा।

ज्योतिशाचार्य-तीर्थ पंडित सीताराम झा (हिन्दी टीकाकार) ऐसा कहते हैं :—

"तथा योगकारक के संबंधी शुभग्रह अथवा असंबंधी शुभग्रह की अंतर्दशा में योगकारक ग्रह के समान ही फल होता है। अर्थात् जिस प्रकार का योग रहता है उस प्रकार का फल आरम्भ समय में पूर्ण रूप से हो जाता है।"

विद्यारत्न पण्डित माधव प्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

"योगकारक की (राजयोग करनेवाले ग्रहों की) महादशा में उसके साथी शुभग्रहों की अंतर्दशा हो, वा राजयोग करनेवाले ग्रहों की अंतर्दशा हो, दोनों में ही शुभफल समान होता है। इस भाँति पापग्रह की महादशा में उसके साथी पापग्रह की अंतर्दशा हो वा उसके साथ न रहनेवाले पापग्रह की अंतर्दशा हो, तो दोनों में ही अशुभ फल समान होता है।"

राज-ज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) ऐसा कहते हैं —

"राजयोगकारक ग्रह से सम्बन्ध करनेवाले योगकारक शुभग्रह का अन्तर मनुष्य को राज्य, सुख, तेज, बल आदि की नित्य प्रति वृद्धि करता है। और असम्बन्धी शुभग्रह का अन्तर साधारण फल करता है। न तो विशेष लाभ ही करता है और न किसी प्रकार की विशेष हानि ही होने देता है।"

पण्डित श्री रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं —

"जो राजयोग करने वाले ग्रहों के सम्बन्धी शुभग्रहों की अन्तर्दशा में राजयोग का आरम्भ होवे तो राज्य से सुख और प्रतिष्ठा बढ़ती है, और जो राजयोग करने वाले ग्रहों के सम्बन्ध न करने वाले शुभग्रहों की अन्तर्दशा में राजयोग का आरम्भ होवे तो समानफल कहना, कमती-बढ़ती न होगा, जैसा है वैसा ही बना रहेगा।

उद्योतकार कहते हैं—कि राज्य देनेवाले अर्थात् योगकारक ग्रह की महादशा में संबंध करनेवाले अर्थात् योगकारक से सम्बन्धित शुभग्रहों की अंतर्दशा आती

हो, तो राजयोग का आरम्भ होने पर तेज, सुख, यश तथा धन की वृद्धि होती है। यदि योगकारक ग्रहों की दशा में ससंबंधित शुभग्रहों की अंतर्दशा आती हो, तो सम अर्थात् विशेष शुभ नहीं होती। इसी प्रकार यदि योगकारक ग्रहों से असम्बन्धित खलों (पापी) की अंतर्दशा आती हो तो विशेष हानिकारक नहीं होती।

श्री विनायक शास्त्री—के मतानुसार यह विवेचन योगकारक की महादशा में योगकारक से सम्बन्धित पाप ग्रह तथा मारक ग्रहों की अन्तर्दशा का है, कारण योगकारक से सम्बन्ध हुए विना मारक और पापग्रह राजयोग रूप सत्फल नहीं देते।

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराथी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं —

"राजयोगकारक ग्रहों की महादशा में उनके साथ संबंध करनेवाले अथवा सम्बन्ध नहीं करनेवाले इन दोनों प्रकार के शुभग्रहों की अंतर्दशा में राजयोग के फल समान ही होते हैं।"

'समत्वेन' इस पद का अर्थ "समानत्वेन न तु वैषम्येन साधारण्येन वा" इस प्रकार से लेना चाहिये जिससे इन योगों में संबंध होता हो अथवा नहीं होता हो फिर भी एक समान फल मिलते हैं, ऐसा समझना चाहिये।

"तत्सम्बन्धि शुभानां च तथा' इस पद का अर्थ हिन्दी टीकाकारों ने पूर्व श्लोक में कहे अनुसार "प्रथयन्ति" के साथ जोड़कर करते हैं, वह अर्थ बरावर नहीं है।

शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पण्ड्या (गुजराथी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं —

"दशा के स्वामी के साथ सम्बन्धित हुआ ग्रह तथा उसके साथ का संबंध विना हुआ हुवा ग्रह का भी शुभ अथवा अशुभफल प्राप्त होता है, परंतु जो ग्रह उसके साथ कोई भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं करता हो अथवा किसी प्रकार का योग भी नहीं होता हो, "ऐसे अन्य ग्रह का फल उत्तम नहीं मिलता।"

स्वर्गीय श्री वि० गो० नवाथे (मराठी टीकाकार) ऐसा कहते हैं —

"राजयोग करनेवाले जो ग्रह हैं उनसे संबंध रखनेवाले जो शुभग्रह होते हैं उनकी अंतर्दशा में राजयोग का आरंभ हुआ तो उत्तरोत्तर प्रसिद्धि मनुष्य को प्राप्त होती है। परंतु राजयोग करनेवाले ग्रह से संबंध नहीं रखनेवाले जो

शुभग्रह होते हैं, उनकी अंतर्दशा में राजयोग का आरंभ हुआ तो आरंभ की ही स्थिति कायम रहती है।"

स्वर्गीय श्री ह० ने० काटवे (मराठी टीकाकार) इस प्रकार अर्थ करते हैं —

"राजयोगकारक ग्रह की महादशा में उसके साथ संबंध करनेवाले और संबंध नहीं करनेवाले इन दोनों प्रकार के शुभग्रहों की अंतर्दशा में राजयोग का फल समान ही होता है।"

स्वर्गीय पंडित रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं —

संबंधित शुभग्रह का उत्तमफल, असम्बन्धित शुभग्रह का साधारण फल, असंबंधित और योगकारक भी नहीं ऐसे ग्रह का अशुभफल होता है। दशा स्वामी से संबंधित की अंतर्दशा में शुभफल प्राप्त होता है। दशा स्वामी से असंबंधित शुभग्रह की अंतर्दशा में साधारणफल प्राप्त होता है। परंतु दशा स्वामी से जिसका संबंध नहीं है और जो स्वयं योगकारक भी नहीं है ऐसे ग्रह की अंतर्दशा में अशुभफल मिलता है।"

स्पष्टीकरण —

दशा स्वामी किसी भी प्रकार का राजयोग करनेवाला हो उसके साथ जिसका पूर्वोक्त किसी भी शुभग्रह से संबंध हो याने उसका किसी भी प्रकार का उत्तम योग हुआ हो तो उस दशा स्वामी की दशा में मनुष्य को उत्तम प्रकार का फल मिलता है अर्थात् उस दशास्वामी की महादशा में संबंधित ग्रह की अंतर्दशा में उसे शुभफल प्राप्त होता है (अथवा उस सम्बन्धित ग्रह की महादशा में दशास्वामी की अंतर्दशा आती है उसका भी एकंदर शुभफल प्राप्त होने का संयोग प्राप्त होता है)। अथवा उसी प्रकार किसी भी प्रकार से दशास्वामी के साथ संबंधित नहीं हो ऐसा शुभग्रह अपनी अन्तर्दशा में शुभफल देता है (शुभ ग्रह = योगकारक ग्रह)। और इसी प्रकार अन्य दूसरा ग्रह जो उत्तम योग करनेवाला हो (याने योगकारक हो) तो वह भी अपनी अन्तर्दशा में उत्तमफल देता है। परन्तु दशास्वामी से जिसका संबंध नहीं और जो स्वयं योगकारक भी नहीं है ऐसे ग्रह की अन्तर्दशा में उत्तमफल नहीं मिलता।"

इस पर से स्वाभाविकतः यह समझ में आ सकता है कि ऐसा ग्रह जो दशा स्वामी से सम्बन्धित नहीं है और योगकारक भी नहीं है तो पापग्रह होना

चाहिये क्योंकि अशुभफल देनेवाला ग्रह वही ग्रह होना चाहिये। इसलिये इस प्रकार का असम्बन्धित और दशानाथ से योग न करनेवाला ग्रह पापग्रह अपनी अन्तर्दशा में शुभफल नहीं देता परन्तु अशुभफल ही देता है। इस प्रकार का अर्थ यदि लिया जावे तो उचित ही होगा।

इस श्लोक में 'तत्संबन्धी' इस पद का अर्थ "उससे सम्बन्धित अर्थात् दशा-स्वामी से सम्बन्धित ग्रह" ऐसा अर्थ होता है। कोई ज्योतिषी 'उसका सम्बन्धी याने राजयोग–कारक ग्रह का सम्बन्धी जो ग्रह है" ऐसा अर्थ करते हैं और जो पूर्व का सम्बन्ध लेने में आता है सही रीति से "मारकग्रह का शुभाशुभ-फल का कथन अगले श्लोक में किया गया होने से उसके सम्बन्ध को लेकर ऐसा अर्थ हो सकता है कि मारकग्रह से सम्बन्धित जो शुभग्रह अथवा असंबंधित शुभग्रह उसकी अन्तर्दशा में मनुष्य को शुभफल देता है। और उसके साथ सम्बन्ध रहित अथवा योग रहित पापग्रह की अन्तर्दशा मनुष्य को अशुभफल देती है।" ऐसा अर्थ करने से भी पूर्व श्लोक से मिलता विशेषार्थ निकल सकता है याने ऐसा अर्थ असंगत नहीं मालूम देता। परन्तु कुछ प्रमाण में पिष्टपेषण मालूम देता है। इस प्रकरण में दशानाथ के ही फल कथन की रीति का अनुसरण हुआ होने से दशानाथ-सम्बन्धी ऐसा ही अर्थ यहाँ लिया गया है। इसलिये विशेष स्पष्टार्थ के लिये जिसे जो योग्य अर्थ मालूम हो वह उसमें लेना चाहिये। अर्थात् अपने-अपने अनुभव के अनुसार अर्थ ले।

श्री विनायक शास्त्री—के मतानुसार यह विवेचन योगकारक की महादशा में योगकारक से सम्बन्धित पापग्रह तथा मारक ग्रह की अन्तर्दशा का है कारण योगकारक से सम्बन्ध हुए विना मारक और पापग्रह राजयोग रूप सत्फल नहीं देते।

योगकारक ग्रह की महादशा में योगकारक से सम्बन्धित मारक पाप तथा सम्बन्धित शुभ ग्रह की अन्तर्दशा —

यहाँ योगकारक से सम्बन्धित तीन प्रकार के ग्रहों की अन्तर्दशा का विवेचन है। और वे मारक, पाप और शुभ हैं। इसलिये योगकारक ग्रह की महादशा में सम्बन्धित मारक की अन्तर्दशा हो तो राजयोग की सम्भावना होती है। (होगी ऐसे कहते नहीं आता, सम्भव मात्र है) इस राजयोग की मारक भुक्ति (अन्तर्दशा) विस्तार करती है। मारक भुक्ति की अपेक्षा सम्बन्धित पाप भुक्ति विशेष विस्तार करती है और पाप भुक्ति (अन्तर्दशा) की अपेक्षा सम्बन्धित शुभग्रहों की अन्तर्दशा और अधिक विस्तार करती है। इस प्रकार

सम्बन्धित तीन ग्रहों को (१) मारक (२) पाप (३) शुभ इन तीन श्रेणियों में रखा जावे तो इनको क्रमश: (१) अधम (२) मध्यम (३) उत्तम ऐसा कह सकते हैं। मारकेश से अधिक बुरा कौन हो सकेगा ? वह संभवत: राजयोग का विस्तार करेगा ? यदि किया तो बहुत ही कम ! पापग्रह मारकग्रह सरीखा बुरा नहीं होता इसलिये मारक की दशा की अपेक्षा पापग्रह की अंतर्दशा विशेष राजयोग का विस्तार करेगी और शुभग्रह जब योगकारक से संबंधित हो तब उसके बारे में कहने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि वह तो अत्यधिक राजयोग का विस्तार करेगा।

इन तीन प्रकार के ग्रहों की अंतर्दशा के जो फल कहे गये हैं, वे तीनों योगकारक से असंबंधित (संबंध नहीं करते हों) शुभग्रह हों तो उनकी अंतर्दशा के फल योगकारक की महादशा में क्या मिलते हैं उस संबंध में निम्नलिखित विचार देखिये।

योगकारक ग्रहों की महादशा में असंबंधित शुभग्रहों की अन्तर्दशा:—

योगकारक की महादशा में असम्बन्धित शुभग्रह की अंतर्दशा तथा असंबंधित शुभग्रह की महादशा में योगकारक की अंतर्दशा 'सम' अर्थात् साधारण शुभफल देनेवाली होती है। इसका अभिप्राय ऐसा है कि वह योगफल देनेवाली नहीं होती। योगकारक की महादशा में योगकारक की अंतर्दशा योगफल देनेवाली होती है कारण दोनों का सम्बन्ध होता है और दोनों सधर्मी होते हैं।

जो समग्रह है,—शुभ भी नहीं अथवा पापी भी नहीं—उसकी अंतर्दशा जब योगकारक दशा में आती है तब वह समग्रह जिस राशि में होगा; जिस भाव में होगा, जिस भाव का स्वामी होगा, इन सब गुणों के अनुसार उसकी अंतर्दशा फल देगी। असम्बन्धित शुभग्रह की अंतर्दशा 'सम' ग्रह की अपेक्षा अधिक शुभफल देगी। असम्बन्धित 'सम' ग्रह की अंतर्दशा भी इसी प्रकार समझनी चाहिये।

योगकारकों की दशाओं में असम्बन्धित मारक और पापियों की अंतर्दशा :—

यह दशा अपने स्थान (भाव), राशि में तथा जिस स्थान का स्वामी है उन गुणों के अनुसार मिश्र फल देगी। पंडित रामयत्न ओझा के मतानुसार यदि योगकारक की महादशा हो और उसमें उससे सम्बन्धित मारक की अंतर्दशा हो तो आरम्भ में कुछ अंशों में शुभफल की प्राप्ति होती है। बाद में शुभफल

नाम शेष के लिए रह जाते हैं। इसी प्रकार यदि शुभग्रह की दशा में पापफल पहिले प्राप्त होता हो तो यह पापफल कुछ समय के लिए ही होता है, बाद में शुभग्रह के स्वरूप के अनुसार शुभफलों की प्राप्ति होती है। इसका उदाहरण—कल्पना करो चतुर्थेश-पंचमेश, सप्तमेश इनका सम्बन्ध है। चतुर्थ और पंचम स्थानों के स्वामियों के सम्बन्ध के कारण चतुर्थेश और पंचमेश भी योग-कारक हुए हैं। इनमें से किसी की भी महादशा में सप्तमेश की अंतर्दशा आवे तो योगकारक से सम्बन्ध होने के कारण सप्तमेश आरम्भ में कुछ अंशों में राजयोग का फल देगा। परन्तु वह सप्तमेश होने के कारण से अपना दुष्ट फल देगा।

३	२	१	१२
४	रमंबु ५	११	
६	८	१०	
७		९	

१०	९	८	७
११	१२	६ र बु	
१	३	५	
२		४	

योगकारक यदि चार ग्रह हों याने चतुर्थेश-पंचमेश एकत्र हों और चतुर्थेश-पंचमेशों का नवमेश—दशमेश से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं हो तो चतुर्थेश की महादशा में दशमेश की अंतर्दशा अथवा नवमेश की अंतर्दशा अथवा पंचमेश की महादशा में नवमेश तथा दशमेश की अंतर्दशा तथा नवमेश की महादशा में चतुर्थेश वा पंचमेश की अंतर्दशा अथवा दशमेश की महादशा में चतुर्थेश या पंचमेश की अंतर्दशा किस प्रकार की होगी ? इस सम्बन्ध में ऐसा कह सकते हैं कि महादशानाथ से सम्बन्ध करनेवाले योगकाल की अंतर्दशा जिस प्रकार के शुभफल देगी उसी प्रकार से योग-कारक से सम्बन्धित योगकारक की अंतर्दशा देगी।

योगकारक की महिमा बहुत बड़ी है। जिस प्रकार पारस अपने स्पर्श मात्र से लोहे को सोना बना देता है उसी तरह दुष्ट ग्रह भी योगकारक के सम्बन्ध के कारण दुष्ट स्वभाव का त्याग करके शुभफल देता है। इस सम्बन्ध में श्लोक १८ और १९ अति महत्त्वपूर्ण हैं। राजयोगकारक केन्द्रेश और त्रिकोणेश उनकी जो दशाएँ हैं उनमें योगकारक से सम्बन्ध रहित शुभग्रह की अंतर्दशा में भी राजयोग के फल मिलते हैं तो सम्बन्धित शुभग्रह की अंतर्दशा में विशेष शुभ-फल होगा इसमें क्या संशय है ? परंतु योगकारक की महादशा में उससे असम्बन्धित शुभग्रह की अंतरदशा किंचित् न्यूनफल देगी। इसका एक अर्थ

ऐसा हो सकता है कि दो योगकारक ग्रहों में से एक योगकारक ग्रह की महादशा है और दूसरे की अंतर्दशा हो तो इन दोनों से सम्बन्ध रहित अन्य शुभग्रह की प्रत्यंतर दशा में प्रायः भाग्योदय होगा ।

योगकारक से सम्बन्धित पापग्रह :—

स्वभाव से पापी (तृतीय, षष्ठ, एकादश स्थानों के स्वामी) ग्रह योगकारक से सम्बन्ध करते हों तो उसकी महादशा में जब सम्बन्धित योगकारक ग्रह की अंतर्दशा आती है तब योगकारक के सम्बन्ध के कारण जो विशिष्ट ऐसा अंतर्दशाधीश है उसकी अंतर्दशा में शुभफल मिलता है । अथवा योगकारक की अंतर्दशा में योगज (कारक) फल मिलता है ।

पूर्व में कहे अनुसार केन्द्रेश-त्रिकोणेश इनका सम्बन्ध किसी भी प्रकार से राजयोग करनेवाला होता है और पापी ग्रहों का सम्बन्ध राजयोग नाशक होता है । यदि पापी और योगकारक इनके योग की जोड़ और वजा वाकी किये बाद जो शेष रहे वह अवशिष्ट पापी की महादशा में शुभग्रह की अंतर्दशा आने पर शुभाशुभ फल होता है । उदाहरणार्थ :—(पूर्व में बताये अनुसार बताये हुए गुणों के आधार पर) कल्पना करों कि नवमेश, चतुर्थेश, एकादशेश इनका सम्बन्ध है तो—वाकी + ३ शुभफल हुआ । अब यहाँ पर

नवमेश के शुभफल = + ४
चतुर्थेश के शुभफल = + २
एकादशेश के अशुभफल = − ३
शेष = + ३
शुभफल = ३.

एकादशेश योगकारक से सम्बन्ध कर रहा है और वह स्वयं पापी है फिर भी योगकारक से सम्बन्ध करने के कारण शुभफल अवशिष्ट रहा । इस कारण से एकादशेश की महादशा में जब पंचमेश की अथवा चतुर्थेश की अंतर्दशा अथवा नवमेश की अंतर्दशा आवेगी तब शुभफल मिलेगा ।

योगकारक ग्रह यदि पापग्रह से सम्बन्ध करे तो, यदि योगकारक पापग्रह के साथ सम्बन्ध नहीं करता हो तो, जिस प्रकार से वह शोभन होता है उसी प्रकार से पाप-सम्बन्धित होवे तो योगकारक नहीं होता । फिर भी उसका योग-कारकत्व नष्ट नहीं होता और जैसा कि पूर्व में कहा गया है कि योगकारक से सम्बन्धित मारक और पापग्रह इनकी दशा में भी राजयोग प्रकट होता है इसलिए योगकारक की दशा में उससे सम्बन्धित पापग्रह योगकारक से प्रभावित होकर फल देते हैं । यदि असम्बन्धित शुभग्रह की अन्तर्दशा हो तो उस दशा में प्रायः योगजफल वह ग्रह देता है, परन्तु निश्चितपूर्वक देना ही है ऐसा मात्र

नहीं है, यहाँ पर सम्बन्ध की महिमा है। इस पर से यह परिणाम निकलता है कि यदि पापी ग्रह की महादशा हो तो उससे सम्बन्धित योगकारक ग्रह की अंतर्दशा में योगजफल मिलता है। केन्द्रेश त्रिकोणेश का आपस में सम्बन्ध हो तो दोनों ही कारक बनते हैं। अब यदि इनमें से कोई भी एक ग्रह मारकेश हो और उसी समय वह त्रिकोणेश भी हो तो उसकी अन्तर्दशा में समफल मिलेगा और यदि वह मारकेश-केन्द्रेश हो तो पापफल मिलेगा। यदि सम्बन्ध नहीं होता हो तो कारक ग्रह की महादशा में मारकेश अथवा पापीग्रह की अंतर्दशा में पापफल ही होगा और शुभग्रहों की अंतर्दशा में समफल मिलेगा।

श्लोक ३४ में बताये हुए नियम राजयोगकारक ग्रह की महादशा में उसके साथ संबंध करने पर अथवा संबंध नहीं करने पर, दोनों स्थिति में शुभग्रह की अंतर्दशा में राजयोग का समत्व (**समानत्वेन न तु वैषम्येन साधारण्येन वा संयोगः राजयोगः भवति**—इस अन्वय के अनुसार) सम समान अर्थात् साधारण फल देता है। तात्पर्य यह है कि राजयोगकारक ग्रह की महादशा में शुभग्रह की अंतर्दशा आने पर राजयोगकारक के साथ संबंध हो अथवा संबंध नहीं हो फिर भी राजयोग का साधारण फल प्राप्त होता है।

निज सधर्मी अंतर्दशापति, दशापति के साथ संबंध करने की अपेक्षा नहीं रखता ऐसा श्लोक ३० में कहा गया है। ऐसा होने से दोनों प्रकारों में शुभग्रह की अंतर्दशा समान फल देती है। इस अर्थ को समर्थन मिलता है।

(स्वर्गीय सूर्यनारायण राव (बेंगलोर) ने जातक-चन्द्रिका नाम के ग्रंथ के श्लोक ३२ और ३३ का जिस प्रकार से अर्थ किया है वह इस ग्रंथ के सिद्धांत के अनुकूल नहीं हैं)।

शुभस्यास्य प्रसक्तस्य दशायां योगकारकाः।
स्वभुक्तिषु प्रयच्छन्ति कुत्रचिद्योगजं फलम् ॥३५॥

योगकारक ग्रहों के साथ सम्बन्ध करने वाले शुभ ग्रहों की महादशा के योगकारक ग्रहों की अंतर्दशा में योगकारक ग्रह योग का शुभफल क्वचित् देते हैं।

स्वर्गीय श्री बि० गो० नवाथे (मराठी टीकाकार) ऐसा अर्थ करते हैं।

"राजयोग करनेवाले जो ग्रह होते हैं उनकी महादशा में जब उनकी ही अंतर्दशा आती है उस समय कदाचित् राजयोग के फल मिलते हैं।"

स्वर्गीय पं० रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"शुभस्यास्य प्रसक्तस्य" इसकी जगह "शुभस्य स्ववियुक्तस्य" ऐसा लेकर अर्थ करते हैं कि "सम्बन्ध न करनेवाले परन्तु शुभग्रह की महादशा में योगकारक

ग्रह अपनी अन्तर्दशा में फल देते हैं।" ग्रह योगकारक हो तो वह अपनी महादशा में उत्तम फल देता है। परन्तु अन्य समय में भी वह फल दिये बिना रहता नहीं। किसी भी शुभग्रह की महादशा में—उस ग्रह का सम्बन्ध न रहते हुए भी योगकारक ग्रह अपनी अंतर्दशा में फल देता है। उसी प्रकार अपने से योग करनेवाले (वह जिस स्थान में हो उस स्थान में बैठने वाले) ग्रह की अंतर्दशा में भी फल देता है।"

स्वर्गीय श्री ह० ने० काटवे (मराठी टीकाकार) इस प्रकार अर्थ करते हैं :—

"योगकारक ग्रहों के साथ संबंध न करने वाले शुभग्रहों की महादशा में योगकारक ग्रहों की अंतर्दशा में योगकारक ग्रह योगों का फल क्वचित् देते हैं।"

ज्योतिषाचार्य-तीर्थ पं० सीताराम जी झा (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

"आत्म सम्बन्धी शुभग्रह की महादशा में योगकारक ग्रह अपनी अंतर्दशा आने पर कदाचित् योगफल देते हैं।"

राजज्योतिषी पं० चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"राजयोग ग्रह से सम्बन्ध करने वाले शुभग्रह में जब सम्बन्धी कारक ग्रह का अंतर आता है तो वह अपने अंतर के समय में ही कहीं पर अपना राजयोग फल अवश्य दिखाता है।"

विद्यारत्न पं० माधवप्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

"राजयोग करनेवाले शुभग्रह की महादशा में उसके साथी राजयोग करने वाले शुभग्रह अपनी-अपनी अन्तर्दशा में कदाचित् राजयोग का फल देते हैं। अर्थात् राजयोग करने वाले ग्रह की महादशा में जब राजयोग करने वाले ग्रहों की अंतर्दशा आती है तब वह अपना फल देती है।"

पं० रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"इस योगकारक शुभग्रह से सम्बन्ध करने वाली दशा में योगकारक ग्रह अपनी अंतर्दशा में भी कभी-कभी राजयोग का फल देते हैं; अर्थात् राजयोगकारक ग्रह की दशा में जब योगकारक ग्रह का अन्तर लगेगा, तब फल मिलेगा।"

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराती टीकाकार) कहते हैं—

योगकारक ग्रह के साथ सम्बन्ध नहीं करने वाले शुभग्रह की महादशा में योगकारक ग्रह योग का शुभफल क्वचित् देता है। इन्होंने श्लोक में "प्रसक्तस्य" की जगह "वियुक्तस्य" शब्द उपयोग में लाया है। इसलिए वे कहते हैं कि "शुभस्यास्य वियुक्तस्य" के बदले हिन्दी प्रतियों में "शुभस्यास्य प्रसक्तस्यं" ऐसा पद है, वह सही नहीं है। प्रयुक्तस्य पद के बदले वियुक्तस्य पद लेना चाहिए। हिन्दी प्रति में "शुभस्यास्य वियुक्तस्य" पद के बदले "शुभस्यास्य प्रसक्तस्य" ऐसा पद है। मद्रास वाली प्रति में और उसी प्रकार रा. रा. केशव गोविन्द परांडे कृत लघु पाराशरी में वियुक्तस्य जो पद है वही बराबर है और प्रयुक्तस्य पद सही नहीं है। उसका कारण ऐसा है कि यदि प्रयुक्तस्य पद ग्रहण करने में आवे तो उसका ऐसा अर्थ बनता है कि संयुक्त युक्त शुभग्रह की दशा में राजयोगकारक ग्रह की अंतर्दशा क्वचित् राजयोग का फल देती है। परन्तु राजयोग के साथ सम्बन्ध करने वाले अन्य शुभग्रह राजयोग को अधिक बलवान करते हैं। इसलिए वे निश्चयात्मक शुभफल देते ही हैं। यह नियम के विरुद्ध जाता है। ऐसा होते कुत्रचित् पद शुभग्रह के साथ सम्बन्ध नहीं करने वाले अर्थात् वियुक्तस्य के साथ जाता है, और राजयोगकारक ग्रह की अंतर्दशा के विषय में उल्लेख है यह अर्थ सही है।

शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या (गुजराती टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं:—

"इस श्लोक के सम्बन्ध में ग्रंथांतर पाठांतर का बड़ा फेर है। यहाँ "शुभस्यास्य प्रसक्तस्य" ऐसा लिखने में आया है और दूसरे ग्रंथों में "शुभस्य स्ववियुक्तस्य" इस प्रमाणे लिखने में आया है। इस कारण से इनके अर्थों में कितना तो भी फरक हो गया है क्योंकि मूल श्लोक के आधार पर अर्थ करने से "सम्बन्धित ऐसे दशा स्वामी से शुभग्रहों की महादशा में ऐसा अर्थ ले सकते हैं और पाठान्तर के अनुसार जो अर्थ करने में आया है वह किसी भी प्रकार के संबंध से रहित ऐसे शुभग्रहों की महादशा में" इस प्रकार होता है और उसके साथ योगकारक ग्रह अपनी अंतर्दशा में उत्तमफल देनेवाला बनता है। उसी प्रकार इस श्लोक के दूसरे पद में "योगजं फलम्" ऐसा दिया हुआ है। उसका अर्थ ऐसा करने में आया है कि "वे योगकारक ग्रह अपनी अंतर्दशा में स्वयं के योग के कारण उत्पन्न होने वाले उत्तम फल देते हैं जब कि पाठान्तर में "योगकारिकाणाम्" ऐसा पद लिखने में आया है और इसका उत्तरार्ध "स्वस्वभुक्तिषु चेच्छन्ति कुत्रचित् योगकारिणाम्" याने "संबंध रहित" ऐसे

शुभग्रह की महादशा में योगकारक ग्रह अपनी-अपनी अंतर्दशा में फल देनेवाले होते हैं। कई अन्य उनके साथ योग करने वाले जो ग्रह हैं उनकी अन्तर्दशा में फल देते हैं "इस प्रकार अर्थ करते हैं। इस अर्थ में बहुत ही फेर बदल है।"

स्पष्टीकरण:—

यह श्लोक मारक-प्रसंगों में प्रयुक्त होता है। मारक ग्रह कारक भी हो तब उसकी दशा और उससे सम्बन्ध करने वाले जो कारक ग्रह हैं उनकी अंतर्दशा में कभी-कभी कारक फलों की प्राप्ति होती है। जबकि वहाँ साधारणत: मारकफल मिलना चाहिए था। कारकग्रहों से संबंध करने वाला अन्य शुभग्रह भी कारक हो जाता है इसलिए परस्पर दशान्तर्दशा में वह शुभफल तो देता ही है—तब ऐसी स्थिति में इस बात के लिए इस श्लोक की अलग तौर पर आवश्यकता क्यों पड़ी ?

इस श्लोक का आशय ऐसा है कि मारक ग्रह यदि कारक हो तो अपनी दशा में तथा कारक की अंतर्दशा में मृत्यु नहीं देता अथवा किसी भी कारक ग्रह की दशा हो तो उससे संबंध करने वाले दूसरे कारक ग्रह से उसका संबंध नहीं हो या नहीं होता हो, और प्रथम से ही उसका संबंध बना हुआ हो तो कभी-कभी संबंधित कारकग्रह की अन्तर्दशा में अथवा उसकी स्वयं की दशा में शुभफल ही मिलता है।

आपस में सम्बन्ध होकर यदि निम्न मारकेश ये कारक भी हों तो :—

लग्न	त्रिकोणेश	केन्द्रेश	पापफलद		मारक		
			दशा	अन्तर	दशा	अन्तर	
मेष	बृ. सू.	शु. (मा.)	बृ. सू.	सू. शु.	×	×	(मा.) मारकेश
वृषभ	बु. (मा.)	श.	श.	बु.	×	×	
मिथुन	शु. बु.	बृ. (मा.)	शु. बु.	बृ. बृ.	×	×	

लग्न	त्रिकोणेश	केन्द्र	पापफलद		मारक		
			दशा	अन्तर	दशा	अन्तर	
कर्क	×	×	×	×	×	×	
सिंह	×	×	×	×	×	×	
कन्या	शु. (मा.)	बृ. (मा.)			बृ.	श.	
	श. (मा.)	बृ. (मा.)			शु.	बृ.	
	श. शु.(मा.)	बृ. (मा.)			श.	बृ.	
	बु.		बु.	बृ.	श.	शु.	
तुला	×	×	×	×	×	×	
वृश्चिक	बृ. (मा.)	शु. (मा.)	शु.	बृ.	शु.	बृ.	
	बृ. (मा.)	श.	मं.	बृ.	बृ.	शु.	(मा.) = मारकेश
	बृ. (मा.)	मं.			श.	बृ.	
	मं.	शु. (मा.)	मं.	शु.			
धनु	सू.	बु. (मा.)	सू.	बु.	×	×	
	मं.		मं.	बु.	×	×	
	बृ.		बृ.	बु.	×	×	
मकर	बु.	चं. (मा.)	बु.	चं.	×	×	
मीन	चं.	बु. (मा)	मं.	बु.	×	×	
	मं.		चं.	बु.	×	×	
	बृ.		बृ.	बु.	×	×	

तमोग्रहौ शुभारूढावसंबंधेन केनचित् ।
अंतर्दशानुसारेण भवेतां योगकारकौ ॥३६॥

राहु केतु यदि केंद्र (विशेष करके चतुर्थ और दशम स्थानों में) अथवा त्रिकोण में स्थित होकर किसी भी ग्रह के साथ सम्बन्ध नहीं करते हों तो उनकी महादशा में योगकारक ग्रहों की अन्तर्दशा में उन ग्रहों के अनुसार शुभयोगकारक फल देते हैं। (याने शुभारूढ़ राहु केतु शुभ सम्बन्ध की अपेक्षा नहीं करते सिर्फ वे पाप सम्बन्धी नहीं होने चाहिये तभी कहे हुए अनुसार फलदायक होते हैं। राजयोग रहित शुभग्रहों की अंतर्दशा में शुभफल होगा ऐसा समझना।)

पण्डित रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

राहु केतु ये दोनों किसी योगकारक ग्रह के सम्बन्धी न होने पर भी केवल शुभस्थानों में अर्थात् केन्द्र और त्रिकोण स्थानों में से किसी स्थान में बैठने से अंतर्दशा के अनुसार योगकारक होते हैं। सार यह निकला कि राहु केतु विना ही किसी के सम्बन्ध के केंद्र और त्रिकोण में उत्तम हैं, परन्तु जब राजयोगकारक का अंतर आवेगा, तब उत्तमफल होगा, तिसमें भी जब शुभ का होगा, तब परमोत्तम-फल करेगा, अशुभ का होगा, तो हीनफल करेगा।"

विद्यारत्न पण्डित माधवप्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"किसी राजयोगकारक ग्रह के साथ सम्बन्ध न रहने के कारण राजयोग न करने वाले राहु केतु यदि प्रथम, चतुर्थ, सप्तम, दशम, नवम, पंचम में से कहीं रहें तो राजयोग कर्ता ग्रह की जब अंतर्दशा आवेगी तभी राजयोग का फल करते हैं। उसमें शुभग्रह की अंतर्दशा में शुभ, अशुभ ग्रह की अंतर्दशा में अशुभ फल करते हैं।"

राजज्योतिषी चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"राहु केतु ये दोनों ग्रह किसी भी योगकारक ग्रह से सम्बन्धी न होने पर भी केवल शुभस्थान केंद्र वा त्रिकोण में बैठने से ही अन्तर्दशा के अनुसार योगकारक होते हैं।"

ज्योतिषाचार्य-तीर्थ पण्डित सीताराम झा (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"त्रिकोण (९।५) में स्थित राहु केतु के योगकारक किसी ग्रह से सम्बन्ध न होने पर भी—योगकारक की दशा में अपनी अंतर्दशा आने पर, दोनों योगकारक (योगफलप्रद) होते हैं।"

उद्योतकार—के मतानुसार राहु अथव ।केतु यदि केंद्र अथवा त्रिकोण में हों तो उसकी महादशा में जब योगकारक की अंतर्दशा आती है तब वह योगफल देता है । भावार्थ ऐसा है कि योगकारक का सम्बन्ध न होने पर भी शुभ स्थान की स्थिति मात्र से राहु केतु शुभफल देते हैं; किन्तु जब शुभों की अन्तर्दशा हो तब उत्कृष्ट फल, अशुभों की अन्तर्दशा हो तो हीन फल देते हैं ।

पंडित श्री रामयत्न ओझाजी (फलित-विकास) के मतानुसार—

यदि राहु अथवा केतु "लग्न, पंचम, अथवा नवम इन स्थानों में हो और किसी भी ग्रह से सम्बन्ध नहीं करता हो तो अपनी महादशा में और केन्द्रेश की अन्तर्दशा में अथवा केन्द्रेश की महादशा में और अपनी अन्तर्दशा में शुभफल (योगज फल) देता है ।"

स्वर्गीय पण्डित रघुनाथशास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) के मतानुसार

"राहु और केतु शुभस्थानों में अन्यग्रहोंको छोड़कर हो तो अपनी अन्तर्दशा में योगकारक होते हैं । अर्थात् राहु और केतु ये शुभस्थान में हों और उनका अशुभग्रह से सम्बन्ध नहीं हो तो अपनी-अपनी अन्तर्दशा में शुभफल देते हैं । अशुभयोग होवे तो अशुभफल ।

स्वर्गीय ह. ने. काटवे (मराठी टीकाकार) के मतानुसार—

"राहु और केतु यदि केन्द्र (विशेष करके चतुर्थ और दशम स्थानों में) अथवा त्रिकोण में स्थित होकर किसी भी ग्रह के साथ सम्बन्ध नहीं करते हों तो वे अपनी महादशा मे योगकारक की अन्तर्दशा में उन ग्रहों के अनुसार शुभ योगकारक फल देते हैं। अर्थात् शुभारूढ़ राहु केतु शुभ सम्बन्ध की अपेक्षा नहीं करते सिर्फ वे पाप सम्बन्धी नहीं होने चाहिये तभी कहे अनुसार फलदायक होते हैं ।" राजयोग रहित शुभग्रहों की अन्तर्दशा में शुभफल होगा ऐसा समझना ।"

स्वर्गीय वि. गो. नवाथे (मराठी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"राहु और केतु जब केन्द्र और त्रिकोण इन स्थानों के सिवाय अन्य स्थानों में होते हैं, तब उनकी अन्तर्दशा में राजयोग के फल मिलते हैं ।"

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराती टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

"उपरोक्त श्लोक में ग्रन्थकार राहु और केतु की महादशा में योगकारकों की अंतर्दशा के फलों के विषय में निर्देश करता है । राहु, केतु केन्द्र स्थान में (विशेष करके चतुर्थ अथवा दशम स्थान में) अथवा त्रिकोण स्थान में होकर

किसी भी ग्रह से सम्बन्ध नहीं करते हों तो अपनी महादशा में योगकारकों की अन्तर्दशा जव आती हो तव अन्तर्दशानाथ के अनुसार शुभ योगकारक फल देते हैं। तात्पर्य यह है कि राहु केतु को इस ग्रन्थ में राशि स्वामित्व नहीं दिया गया है। ऐसा पूर्व में कहा गया है, राहु केतु को सिर्फ स्थान बल ही दिया गया है इसलिये राहु केतु यदि केंद्र अथवा त्रिकोण स्थानों में हों तब वे स्थानवली होते हैं। इस प्रकार शुभ स्थान स्थित राहु केतु शुभ सम्बन्ध की अपेक्षा नहीं रखते। सिर्फ इतना ही ध्यान में रखना चाहिये कि राहु केतु इनका किसी भी पापग्रह में सम्वन्ध नहीं होना, चाहिये। इस प्रकार के पाप संबंध रहित शुभभाव में स्थित राहु केतु योगकारक की अन्तर्दशाओं में अन्तर्दशानाथ के स्वभावानुरूप शुभफल देते हैं। वे राजयोग रहित शुभग्रहों की अन्तर्दशा में भी शुभफल देते हैं।"

श्री शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या—(गुजराती टीकाकार) ऐसा कहते हैं :—

उपरोक्त प्रमाणे कहते हैं परन्तु विशेष यह कहते हैं कि राहु केतु अथवा राहु को केन्द्र स्थान में होने से जो अशुभ योग होते हैं इसकी जानकारी की जरूरत होवे तो "जातकी विजय" नामक ग्रंथ में मिलेगी। इस ग्रंथ में श्लोक ३५ से ४० तक ये राहु केन्द्र स्थान में हो अथवा अन्य स्थान में दूसरे शुभ अथवा अशुभ ग्रहों का भी योग होने के कारण से वे मृत्युदायक होते हैं ऐसा वहाँ कहा गया है। उदाहरणार्थ—(१) सप्तम स्थान में राहु हो और दूसरे केन्द्र स्थानों में पापग्रह हो और चन्द्रमा क्रूर ग्रहों के साथ हो; (२) दशम स्थान में राहु तथा चन्द्रमा अथवा अष्टम स्थान में हो तो इस प्रकार के अनेक योग राहु केन्द्र में होकर दूसरे ग्रहों का अशुभ योग होता हो तो वे हानिकारक कहे गये हैं।" (३) लग्न में राहु और बुध अष्टम में हो तो अशुभ योग होता है।

स्पष्टीकरण :—

ग्रह जिस भाव में होता है उस भाव का आश्रय लेकर वह फल देता है। राहु और केतु जिस भाव में हों उस भाव के अनुसार फल देते हैं। राहु और केतु यदि त्रिकोण में हों तो उनकी महादशा में जब योगकारक की अंतर्दशा आती है तव वे योगफल देते हैं। भावार्थ ऐसा है कि योगकारक से सम्बन्ध न होने पर भी शुभ स्थान की स्थिति मात्र से राहु केतु शुभफल देते हैं किन्तु जब शुभग्रह की अंतर्दशा आती है तब उत्कृष्ट फल देते हैं और अशुभ ग्रह

की हो तो हीन फल देते हैं। राहु और केतु ये त्रिकोण में बैठे हों और कन्या व मिथुन राशि में हों और किसी भी अन्य ग्रह से सम्बन्ध नहीं करते हों तो अन्तरदशानाथ के शुभ अथवा अशुभ गुणों के अनुसार राजयोग फल देने वाले होते हैं। इस सम्बन्ध का एक वचन इस प्रकार है।

"अजकर्कालिकन्यैणयुग्मस्थः केन्द्रगः फणी।
पाराशरमुनिः प्राह राजयोगकरः स्वयम्॥"

अर्थात्—मेष, कर्क, वृश्चिक, कन्या, मकर तथा मिथुन राशि में राहु केन्द्र में हो तो पाराशर मुनि ने कहा है कि स्वयं राजयोग कारक होता है।

राहु अथवा केतु यदि लग्न में, पंचम में अथवा नवम स्थान में हो तो अपनी महादशा में त्रिकोणेश की अंतर्दशा आने पर भी उसमें शुभफल देता है। त्रिकोणेश की महादशा में राहु की अंतर्दशा भी शुभफल देती है।

राहु और केतु यदि व्यय, द्वितीय अथवा केन्द्र में हों और किसी भी ग्रह से सम्बन्ध नहीं करते हों तो उसे सम समझना चाहिये। ऐसी स्थिति में उसकी महादशा में अन्तर्दशानाथ के शुभ-अशुभत्वानुसार फल मिलेगा इस प्रकार अन्य समग्रह (जो शुभ अथवा पाप नहीं हैं) उनकी महादशा में अन्य अंतर्दशा का फल कहना चाहियें।

इस श्लोक का तात्पर्य है कि राहु अथवा केतु यदि कारक नहीं हो और सिर्फ त्रिकोण में हो फिर भी कारक ग्रह की अंतर्दशा में शुभफल देता है। वह यदि केन्द्र में हो और त्रिकोणेश से सम्बन्ध नहीं करता हो तो परस्पर दशान्तर्दशा में अशुभफल ही देता है। जैसे पूर्व में कहा गया है कि केन्द्र और त्रिकोणपति आपस में सम्बन्ध नहीं करते हों तो विपरीत फल देते हैं। इस पर से यह लक्षित होता है कि कारक तथा त्रिकोणेश राहु केतु शुभ होते हैं; अन्य स्थिति में पापी होते हैं। इसलिए त्रिकोण स्थान रहित अन्यस्थ अकेला राहु अथवा केतु शुभ नहीं होता।

राहु तथा केतु के विषय में ऊपर कहा गया है कि वह जिस भाव में होता है और जिस भावाधीश से सम्बन्ध करता है उसके तद्-स्वरूप फल देता है। इस दृष्टि से यहाँ राहु केतु यदि त्रिषडाय में हों तो भी वे पापी होंगे। उनके फल भी निम्नलिखित सारणी के आधार पर समझने चाहिये। यहाँ पर तथा सर्वत्र राहु केतु से सम्बन्ध करने वाले ग्रह इनका तात्पर्य इनके साथ रहने वाले ग्रहों से है। दूसरे प्रकार का सम्बन्ध इनके लिए कहीं भी अभीष्ट नहीं

है। राहु यदि नवम स्थान में हो तो तृतीय केतु से दृष्ट होने के कारण उसके शुभत्व में अन्तर नहीं पड़ेगा।

उपरोक्त श्लोक के अनुसार—राहु केतु यदि त्रिषडायस्थ हों और उनके साथ कोई ग्रह नहीं हो तो ऐसी परिस्थिति में पापी ग्रहों की अंतर्दशा में पाप; शुभग्रहों की अंतर्दशा में सम-पाप; कारकग्रहों की अंतर्दशा में अतिपाप फल होगा। राहु केतु यदि सप्तमस्थ अथवा द्वितीयस्थ हों तो वे मारक-मारकेश बनते हैं या नहीं यह द्विविधाजनक है। ऐसी परिस्थिति में उनकी मारकेश ऐसी संज्ञा तो होगी ही परन्तु केन्द्राधिपत्य दोष उसे न लगने से कदाचित वह मारकेश नहीं हो सकता। प्रत्युत द्वितीयस्थ, द्वादशस्थ अथवा अष्टमस्थ होकर अथवा त्रिषडायस्थ होकर यदि वे मारकेश के साथ हों तो स्वयं मारकेश बन सकते हैं। सब प्रकार से विचार करने के बाद अकेले राहु केतु की दशा के फलों के विषय में अनुमान करना जरा कठिन है। इसलिए राहु केतु के विषय के सम्बन्ध में एक पृथक सारणी दी गई है उसमें संभावित फल दिये हैं।

लग्न	त्रिषडाय अष्टम गत राहु केतु महादशा	मिश्रित शुभफल साथ में बैठने वाले शुभ ग्रहों के अन्तर	मिश्रित अशुभफल साथ बैठने वाले कारक ग्रहों के अन्तर
मेष	राहु केतु	गुरु सूर्य	×
वृषभ	राहु केतु	बुध	शनि
मिथुन	राहु केतु	शुक्र	बुध
कर्क	राहु केतु	चन्द्र	मंगल
सिंह	राहु केतु	सूर्य	मंगल
कन्या	राहु केतु	शुक्र	बुध
तुला	राहु केतु	बुध	शनि
वृश्चिक	राहु केतु	चन्द्र गुरु	×
धनु	राहु केतु	सूर्य मंगल	गुरु
मकर	राहु केतु	शनि	शुक्र
कुम्भ	राहु केतु	शनि	शुक्र
मीन	राहु केतु	मंगल चन्द्र	गुरु

अन्य परिस्थिति में पापफल ही संभव है अर्थात् पापस्थानगत राहु केतु उनके साथ न बैठने वाले शुभग्रहों की अन्तर्दशा पाप फल ही देती है, तब पापी ग्रहों की अन्तर्दशा में तो पापफल देंगे ही।

पापा यदि दशानाथाः शुभानां तदसंयुजाम् ।
भुक्तयः पापफलदास्तत्संयुक् शुभभुक्तयः ॥ ३७ ॥
भवन्ति मिश्रफलदा भुक्तयो योगकारिणाम् ।
अत्यन्तपापफलदा भवन्ति तदसंयुजाम् ॥ ३८ ॥

(भुक्तयोऽयोगकारिणाम्) ऐसा भी पाठान्तर है ।

यदि महादशा के स्वामी पापफलप्रद ग्रह हों तो उनके असम्बन्धी शुभग्रह की अन्तर्दशा पापफल को ही देती है। तथा उन (पापीमहादशाधिप) के सम्वन्धी शुभग्रह की अन्तर्दशा मिश्रफल (शुभ, अशुभ दोनों) फल देती है। और पापी दशाधिप से असंबंधी योगकारक ग्रहों की- अंतर्दशा अत्यन्त पापफल देने वाली होती है ॥ ३७।३८ ॥

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराती टीकाकार) ऐसा कहते हैं :—

पापग्रह की महादशा में सम्वन्ध रहित योग युक्त शुभग्रह की अन्तर्दशा में पापफल होता है। परन्तु उसके साथ सम्वन्ध करने वाले, उसी प्रकार के (याने योग युक्त) शुभग्रह की अंतर्दशा में मिश्रफल प्राप्त होता है। पापी दशानाथ के साथ सम्वन्ध नहीं करने वाले योगरहित शुभग्रह की अन्तर्दशा में अत्यन्त पापफल प्राप्त होता है ।

३७ और ३८ वाँ श्लोक सम्वन्ध करने वाला होने से साथ-साथ में वांचना चाहिये और उन दोनों श्लोकों का अन्वय एक साथ करना चाहिये। उपरोक्त दो श्लोकों से चार प्रकार उत्पन्न होते है ।

पापग्रह की महादशा का फल

(१) सम्वन्धी योग युक्त शुभग्रह की अंतर्दशा = मिश्रफल

(२) सम्वन्धी योगरहित शुभग्रह की अंतर्दशा = मिश्रफल में पापफल अधिक मात्रा में ।

(३) सम्वन्ध रहित योगयुक्त शुभग्रह की अंतर्दशा = पापफल

(४) सम्वन्ध रहित (योग रहित) अयोग (अयुक्त) शुभ ग्रह की अन्तर्दशा........... = अत्यंत पापफल

उपरोक्त चार प्रकार में से ३७ श्लोक में तीन (३) प्रकार असंयुजां याने सम्वन्ध रहित, तत् संयुक् याने योग युक्त शुभग्रह की अन्तर्दशा पाप फल देती है यह निर्देश है । वाद के तत् संयुक् याने सम्वन्धी योगयुक्त शुभग्रह की अन्तर्दशा मिश्र फल देती है ऐसा निर्देश किया है अर्थात् प्रथम प्रकार का निर्देश किया। इसके वाद श्लोक ३८ में दूसरे पण्डितों ने दूसरे पद में असंयुजाम् याने सम्वन्ध

रहित और अयोगकारिणाम् याने योगरहित शुभग्रह की अंतर्दशा में अत्यन्त पापफल देती है, ऐसा निर्देश है। तात्पर्य यह है कि उपरोक्त दो श्लोकों में (१) (३) और (४) प्रकार का निर्देश है परन्तु दूसरे (२) प्रकार का निर्देश नहीं है (२) प्रकार याने सम्वन्धी अयोग युक्त (योग रहित) शुभग्रह की अन्तर्दशा में जहाँ मिश्रफल दिया है वहाँ उसका उतरता प्रकार से सम्वन्धी अयोगयुक्त (योग रहित) शुभग्रह की अन्तर्दशा में मिश्रफल में पाप फलांश अधिक मिलता है यह अनुमान सकारण है। ये (२) प्रकार दोनों श्लोकों में नहीं देने से अध्याहार हुआ है, ऐसा मानना चाहिये। हिन्दी प्रति में श्लोक ३८ में "अयोगकारिणां' पद के बदले योगकारिणां का उपयोग किया गया है, परन्तु वह बरावर नहीं है। कारण कि असम्वन्धी योग युक्त शुभग्रह की अन्तर्दशा याने (३) प्रकार में पाप-फल मिलता है यह तो श्लोक ३७ में बताया गया है। इसलिये निर्देश करने के लिए श्लोक ३८ में कहने के लिए कुछ भी नहीं वचता और ऐसा होने से (४) प्रकार में असम्वन्धी अयोग युक्त (योग रहित) शुभग्रह की अंतर्दशा में ऐसा ही फल प्राप्त होना रह जाता है। उपरोक्त क्रम से सकारण निरीक्षण करने में आवे तो अयोगकारिणां पद बरावर है ऐसा स्पष्ट समझ में आ सकेगा। कारण कि सम्वन्धी योगयुक्त शुभग्रह की दशा को अत्यन्त पाप फल वाली कहें तो उससे खराव असम्वन्धी अयोग युक्त। शुभग्रह की अन्तर्दशा को क्या कहना चाहिये यह समझ में आ सकेगा।

टीकाकार ठक्कर ने "भुक्तयो योगकारिणाम्" की जगह "भुक्तयो अयोगकारिणां' ऐसा पद ग्राह्य करके श्लोक का अर्थ किया है।

शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या (गुजराती टीकाकार) कहते हैं:-

"दशा के स्वामी जब पाप ग्रह होते है और उनकी महादशा आती है तब किसी भी प्रकार का सम्वन्ध नहीं करने वाले शुभग्रह की अन्तर्दशा आती है तब अशुभ फल मिलता है। ऐसा ग्रंथकार कहता है। परन्तु पापी ग्रह की महादशा में जब उससे सम्वधित शुभग्रह की अन्तर्दशा आती है तब मिश्रफल मिलता है। इसी प्रकार पापीग्रह की

दशा के स्वामी जब पापग्रह होते हैं और उनकी महादशा आती है तब किसी भी प्रकार का सम्वन्ध नहीं करनेवाले शुभग्रह की अंतर्दशा आती है तब अशुभफल मिलता है। ऐसा ग्रंथकार कहता है। परन्तु पापीग्रह की महादशा में जब उससे सम्बन्धित शुभग्रह की अंतर्दशा आती है तब मिश्रफल मिलता है। इसी पापीग्रह की महादशा हो और उससे सम्बन्ध करनेवाले

योगकारक पापग्रह हों तो उनकी अंतर्दशा में अत्यंत अशुभफल मिलता है। कारण पापग्रह की दशा और पापग्रह योगकारक की अंतर्दशा ये सभी पापग्रह होने से अनिष्टफल ही मिलता है।" "भुक्तयोऽयोगकारिणाम्" पापी दशानाथ के साथ योग रहित और सम्वन्ध रहित ग्रहों की अंतर्दशा अत्यन्त पापफल देनेवाली होती है।" ऐसा पाठान्तर भी है।

ज्योतिषाचार्य-तीर्थ-पं० सीताराम झा (हिन्दी टीकाकार) ऐसा कहते हैं :—

"यदि महादशा के स्वामी पापफलप्रद ग्रह हों तो उनके असम्वन्धी शुभग्रह की अंतर्दशा पापफल को ही देती है। तथा उन (पापी महादशाधिप) के सम्वन्धी शुभग्रह की अंतर्दशा मिश्रफल (शुभ अशुभ दोनों) देती है। और पापी दशाधिप के असम्बन्धी योगकारक ग्रहों की अंतर्दशा अत्यंत पापफल देनेवाली होती है।"

पं० रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"जो दशा के स्वामी अशुभग्रह हों तो दशा के स्वामी से सम्बन्ध रहित शुभग्रहों की अंतर्दशा अशुभफल देनेवाली होती है। और पापी दशानाथ हो और उससे सम्बन्धी शुभग्रह हो, तो उनकी अंतर्दशा मिश्रफल कहिये भला बुरा फल देती है और पापी दशा से सम्बन्ध रखनेवाले योगकारक ग्रहों की अंतर्दशा बहुत बुरे फल को देनेवाली होती है, भाव यह है कि, पापीग्रह की दशा सब प्रकार से निषिद्ध ही है।"

राजज्योतिषी पं० चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"दशानाथ यदि अशुभग्रह हो तो दशानाथ से सम्बन्ध रहित शुभग्रहों की अंतर्दशा अशुभफल की देनेवाली होती है। और यदि सम्वन्ध युक्त शुभग्रहों की दशा होती है तो कहीं भला कहीं बुरा मिश्रित फल होता है। दशानाथ के सम्वन्धी योगकारक पापीग्रहों की अंतर्दशा बहुत बुरा फल देती है।"

विद्यारत्न पं० माधव प्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"यदि महादशा का स्वामी पापग्रह होवे तो उसके साथ सम्बन्ध न रखने वाले पापग्रहों की अंतर्दशा अशुभफल देती है। उसके (दशेश) साथ सम्बन्ध रखनेवाले शुभग्रहों की अंतर्दशा में मिश्रित फल (कुछ शुभ और कुछ अशुभ) मिलता है। उसके साथ सम्बन्ध न रखने वाले और राजयोगकारक पापग्रहों की अंतर्दशा महाकष्ट देती है।"

श्री विनायक शास्त्री—इस प्रकार कहते हैं :—

"यहाँ एक ऐसी शंका उत्पन्न होती है कि पापीग्रह की महादशा में शुभग्रह की अंतर्दशा पापफल क्यों देती है ? उसकी व्याख्या इस प्रकार है कि जैसे कोई पापी राजा के अधिकार में रहनेवाला सज्जन व्यक्ति भी राजा की आज्ञानुसार ही कार्य करता है, उसकी आज्ञा के विरुद्ध करता नहीं, कारण राजा के प्रतिकूल कार्य करेगा तो स्वामी की आज्ञापालन रूप धर्म का भंग होगा और अपनी प्रतिष्ठा भंग का उसे अधिक भय रहेगा। इसलिए सज्जन की अपेक्षा अतिसज्जन अधिक ही रूप से (पापी) राजा की मनोवांछित प्रवृति को कार्यरूप में परिणत करेगा। इस उदाहरण में सज्जन को शुभ (ग्रह) और अति सज्जन को योगकारक (ग्रह) समझना चाहिये। इसलिए पापीग्रह की महादशा में, शुभग्रह के असम्बन्धित होने के कारण से पापफल मिलेगा और (असम्नन्धित) योगकारक अधिक से अधिक पापफल अपनी अंतर्दशा में देगा।

जिस प्रकार किसी सज्जन का राजा से सम्बन्ध होने से उसमें निर्भयता आती है और वह राजा की मनोवृत्ति के प्रतिकूल भी अपनी इच्छानुसार अपने मन सरीखा कुछ अंशों में कर लेता है। उसी प्रकार पापदशानाथ से सम्बन्धित शुभग्रह अपनी अन्तर्दशा में मिश्रफल देता है। सम्बन्धित योगकारक सम्बन्धित शुभग्रह से अधिक वली होता है। इस कारण से दशानाथ पापी होने के कारण कुछ पापफल और स्वयं अधिक वली शुभ होने के कारण, अधिक शुभ ऐसे मिश्रित फल देता है।"

स्वर्गीय श्री० वि० गो० नवाथे (मराठी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"यदि दशास्वामी पापग्रह हो तो उससे असम्वन्धित शुभग्रह की अंतर्दशा में अशुभ फल मिलता है और सम्बन्धित शुभग्रह की अंतर्दशा में शुभ और अशुभ ऐसे मिश्रफल मिलते हैं परन्तु सम्बन्ध रहित पापग्रह की अंतर्दशा में अत्यंत अशुभफल प्राप्त होता है।"

स्वर्गीय श्री ह० ने० काटवे (मराठी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"पापग्रह दशानाथ हो तो उससे संयुक्त नहीं ऐसे शुभग्रह की अंतर्दशा में बुरा फल मिलता है। परन्तु उसके साथ सम्बन्ध करनेवाले वैसे ही शुभग्रहों की अंतर्दशा में मिश्रफल मिलते हैं। पापी दशानाथ से असम्बन्धित योगरहित अंतर्दशा बहुत अधिक प्रमाण में पापफलदायक होती है।"

स्पष्टीकरण:—

यदि महादशानाथ पापीग्रह हो तो :—

(१) दशानाथ से असम्वन्धित शुभग्रहों की अंतर्दशा पापफल देनेवाली होती है।

(२) दशानाथ से सम्वन्धित शुभग्रहों की अंतर्दशा मिश्रफल देनेवाली होती है। मिश्रफल क्यों देनेवाली होती है ? तो दशानाथ और अंतर्दशानाथ विरुद्ध स्वभाववाले होते हैं इसलिए।

(३) पापी दशानाथ से असम्वन्धित योगकारककी अंतर्दशा अत्यंत पापफल देनेवाली होती है।

(४) दशानाथ से सम्वन्धित योगकारक की दशा इस प्रकार का मिश्रित फल देनेवाली होती है जिसमें शुभ अधिक और अशुभफल कम होता है।

(५) पापी दशानाथ की महादशा में जो समग्रह हैं (अर्थात् शुभ नहीं और पापी भी नहीं) उनकी दशा में पापफल मिलता है—परन्तु उतना पापफल नहीं मिलता अपितु किंचित् कम पापफल मिलता है।

(६) और पापीग्रह की महादशा में पापीग्रह की अंतर्दशा–(दोनों ही दशानाथ और अंतर्दशा नाथ ये सधर्मी–पापी ही होने के कारण से पापफल ही होता है।

यहाँ एक शंका उपस्थित हो सकती है कि पापीग्रह की दशा में (असम्बन्धित) शुभग्रह की अंतर्दशा को तो पापफल देनेवाली कहा है और सम (जो शुभ अथवा पापी नहीं है) उसको किंचित न्यूनफल देनेवाली कहा है तो ऐसा क्यों ? इसका कारण ऐसा है कि शुभग्रह (अंतर्दशानाथ) पापीग्रह (दशानाथ) इसका असधर्मी है याने विरुद्ध धर्म अथवा विरुद्ध स्वभाव और प्रकृतिका है इसलिये पापी की दशा में शुभग्रह की अंतर्दशा अनिष्ट फल देती है और सम (अन्तर्दशानाथ) यह पापीग्रह (दशानाथ) इसका उतना विरुद्ध-प्रतिकूल प्रकृति और स्वभाव का नहीं होता इसलिये वह किंचित् न्यून पापफल देता है। पापीग्रह की महादशा में पापीग्रह की अन्तर्दशा पापफल देगी यह तो सामान्य तर्क सिद्ध है इसलिये उस वारे में विशेष स्पष्टीकाण की आवश्यकता नहीं है।

दशानाथ यदि पापीग्रह (अष्टमस्थ वर्जित, अष्टमेश, त्रिषडायाधीश) हो, तो उससे सम्वन्ध नहीं करने वाले शुभग्रह (त्रिकोणेश) की अंतर्दशा में पाप (अशुभ) फल मिलता है। तथा उस पापीग्रह से सम्बन्ध करने वाले शुभग्रह की अंतर्दशा में तथा सम्वन्धकर्त्ता कारक ग्रह की अंतर्दशा में मिश्रफल मिलता है अन्यथा सम्वन्ध न करने वाले कारक ग्रह की अंतर्दशा में अत्यन्त पापफल मिलता है।

यहाँ पर पापग्रह से तात्पर्य है—अष्टमस्थवर्जित अष्टमेश, त्रिषडायेश तथा पापयुक्त मारकेश।

शुभग्रह से तात्पर्य है—वह त्रिकोणेश जिसकी अपनी दूसरी राशि त्रिषडाय स्थान में नहीं पड़ती हो।

मिश्रफल से तात्पर्य है—पाप-शुभ (अशुभ-शुभ) मिश्रित फल।

पापी दो प्रकार के हैं :—एक तो जिनकी अपनी दूसरी राशि पापस्थानगत हो और दूसरे वे जो केन्द्रेश आदि हों।

यदि पापी विशुद्ध पापी हो तो उससे सम्बन्ध करने वाले शुभग्रहों की अंतर्दशा में पाप ही प्राप्त होगा। यदि दशानाथ पापी (शुभत्व-युक्त) हो तो उससे सम्बन्ध करने वाले शुभग्रहों की अंतर्दशा में शुभफल प्राप्त होगा। यदि पापीग्रह किसी भी शुभग्रह से सम्बन्ध करके कारक नहीं होता हो तो उसकी अंतर्दशा में योगज शुभफल प्राप्त होगा। यदि अंतरेश पापीग्रह से असम्बन्धित हो तो पापीग्रह की दशा में अपनी अंतर्दशा में अशुभ ही फल देगा फिर वह अंतर्दशा पापी हो, शुभ हो अथवा कारक हो। पूर्ण पापी से तात्पर्य उस पापीग्रह से है जो कुण्डली में कारक नहीं बन सकता।

परम पापी, पापी, शुभ, अतिशुभ (स्वयंकारक) ग्रहों की सारिणी

लग्न	परम पापी ग्रह	पापी ग्रह	शुभ ग्रह	अति शुभ ग्रह
मेष	बुध	मङ्गल, शनि	सूर्य, गुरु	×
वृषभ	चन्द्र, गुरु	शुक्र	बुध	शनि
मिथुन	सूर्य, मङ्गल	शनि	शुक्र	बुध
कर्क	बुध	गुरु, शनि	चन्द्र	मङ्गल
सिंह	बुध	गुरु, शुक्र, शनि	सूर्य	मंगल
कन्या	मंगल	चन्द्र, शनि	शुक्र	बुध
तुला	गुरु	सूर्य, शुक्र	बुध	शनि
वृश्चिक	बुध	मंगल, शनि	चन्द्र, शुक्र	×
धनु	शुक्र	चन्द्र, शनि	सूर्य, मंगल	गुरु
मकर	गुरु	सूर्य, मंगल, शनि	शनि	शुक्र
कुम्भ	चन्द्र	मंगल, शुक्र	शनि	शुक्र
मीन	सूर्य, शुक्र, शनि	×	चन्द्र, मंगल	गुरु

पापी ग्रहों की महादशा में उनसे सम्बन्धित तथा असम्बन्धित अन्य ग्रहों की अन्तर्दशा में शुभाशुभ फलों की सारिणी

	क		ख		ग		घ		ङ	
	केवल पापफल		मिश्रित पापफल		समफल (न शुभ न पाप)		मिश्रित शुभफल		अत्यन्त पापफल	
लग्न	पापी दशाधीश –	असम्बन्धित गुणों का अन्तर	पापी की दशा +	सम्बन्धित गुणों का अन्तर	पापी की दशा +	सम्बन्धित गुणों का अन्तर	पापी की दशा +	सम्बन्धित गुणों का अन्तर	पापी की दशा –	असम्बन्धित शुभों का अन्तर
मेष	वृभ मंगल शनि	सूर्य गुरु सूर्य गुरु सूर्य गुरु	बुध बुध	गुरु सूर्य	मंगल शनि	सूर्य शुक्र सूर्य गुरु	×	×	×	×
वृषभ	चघ्द्र गुरु शुक्र	बुध बुध चन्द्र बुध गुरु	बुध बुध	शुक्र	बुध	बुध	चन्द्र गुरु शुक्र	शनि शनि शनि	चन्द्र बुध शुक्र	शनि शनि शनि
मिथुन	सूर्य मंगल शनि	शुक्र शुक्र शुक्र	सूर्ब मंगल	शुक्र शुक्र	शनि	शुक्र	सूर्य मंगल शनि	बुध बुध बुध	सुर्य मंगल शनि	बुध बुध बुध

२०

पापी ग्रहों की महादशा में उनसे सम्बन्धित तथा असम्बन्धित अन्य ग्रहों की अन्तर्दशा में शुभाशुभ फलों की सारिणी

	क		ख		ग		घ		ङ	
	केवल पापफल		मिश्रित पापफल		समफल (न शुभ न पाप)		मिश्रित शुभफल		अत्यन्त पापफल	
लग्न	पापी दशाधीश	− असम्बन्धित शुभों का अन्तर	पापी की दशा	+ सम्बन्धित शुभों का अन्तर	पापी की दशा	+ सम्बन्धित शुभों का अन्तर	पापी की दशा	+ सम्बन्धित शुभों का अन्तर	पापी की दशा	− असम्बन्धित शुभों का अन्तर
कर्क	बुध गुरु शनि	चन्द्र चन्द्र चन्द्र	बुध	चन्द्र	गुरु शनि	चन्द्र चन्द्र	बुध गुरु शनि	मंगल मंगल मंगल	बुध गुरु शनि	मंगल मंगल मंगल
सिंह	बुध शनि गुरु शुक्र	सूर्य सूर्य सूर्य सूर्य	बुध	सूर्य	शनि गुरु शुक्र	सूर्य सूर्य सूर्य	बुध शनि गुरु शुक्र	मंगल मंगल मंगल मंगल	बुध शनि सूर्य	मंगल मंगल मंगल
कन्या	मंगल चन्द्र शनि	शुक्र शुक्र शुक्र	मंगल	शुक्र	चन्द्र शनि	शुक्र शनि	मंगल चन्द्र शनि	बुध बुध बुध	मंगल चन्द्र शनि	बुध बुध बुध

पापी ग्रहों की महादशा में उनसे सम्बन्धित तथा असम्बन्धित अन्य ग्रहों की अन्तर्दशा में शुभाशुभ फलों की सारिणी

	क		ख		ग		घ		ङ	
	केवल पापफल		मिश्रित पापफल		समफल (न शुभ न पाप)		मिश्रित शुभफल		अत्यन्त पापफल	
लग्न	पापी दशाधीश	− असम्बन्धित शुभों का अन्तर	पापी की दशा	+ सम्बन्धित शुभों का अन्तर	पापी की दशा	+ सम्बन्धित शुभों का अन्तर	पापी की दशा	+ सम्बन्धित शुभों कां अन्तर	पापी की दशा	− सम्बन्धित शुभों का अन्तर
तुला	गुरु सूर्य शुक्र	बुध बुध बध —	गुरु	बुध	सूर्य शनि	(बुध) बुध	(गुरु) (सूर्य) शुक्र	शनि शनि शनि —	गुरु सूर्य शुक्र	शनि शनि शनि :
वृश्चिक	बुध शनि मंगल	चन्द्र गुरु चन्द्र गुरु चन्द्र गुरु	बुध बुध	चन्द्र गु	शनि मंगल	चन्द्र गुरु चन्द्र गुरु	×	×	×	×
धनु	शुक्र शनि चन्द्र	सूर्य मंगल सूर्य मंगल सूर्य मंगल	शुक्र	सूर्य मंगल	शुक्र चन्द्र	(सूर्य मंगल) (सूर्य मंगल)	(शुक्र) (शनि) चन्द्र	गुरु गुरु ध	शुक्र शनि चन्द्र	गुरु गुरु गुरु

पापी ग्रहों की महादशा में उनसे सम्बन्धित तथा असम्बन्धित अन्य ग्रहों की अन्तर्दशा में शुभाशुभ फलों की सारिणी

	क		ख		ग		घ		ङ	
	केवल पापफल		मिश्रित पापफल		समफल (न शुभ न पाप)		मिश्रित शुभफल		अत्यन्त पापफल	
लग्न	पापी दशाधीश	– असम्बधित शुभों का अन्तर	पापी की दशा	+ सम्बंधिते शुभों का अन्तर	पापी की दशा	+ सम्बन्धित शुभों का अन्तर	पापी की दशा	+ सम्बन्धित शुभों का अन्तर	पापी की दशा	– सम्दन्ति शुभों का अन्तर
मकर	गुरु बुध सूर्य मंगल	शनि शनि शनि शनि	गुरु	शनि	बुध मंगल सूर्य	शनि शनि शनि	गु बुध मंगल सूर्य	शुक्र शुक्र शुक्र शुक्र	गुरु बुध मंगल सूर्य	शुक्र शुक्र शुक्र शुक्र
कुम्भ	चन्द्र मंगल बुध गुरु	शनि शनि शनि शनि	चन्द्र	शनि	मंगल बुध गुरु	शनि शनि शनि	चन्द्र मंगल बुध गुरु	शुक्र शुक्र शुक्र शुक्र	चन्द्र मंगल बुध गुरु	शुक्र शुक्र शुक्र शुक्र
मीन	शुक्र सूर्य शनि	मंगल चन्द्र मंगल चन्द्र मंगल चन्द्र	शुक्र सूर्य शनि	मंगल चन्द्र मंगल चन्द्र मंगल चन्द्र	×	×	शुक्र सूर्य शनि	गुरु गुरु गुरु	शुक्र सूर्य शनि	गुरु गुरु गुरु

उपरोक्त सारणी में समस्त महादशाधीश परम पापी अथवा पापी ग्रह हैं।

सम पापीग्रह, केन्द्र त्रिकोण व्यतिरिक्त त्रिषडायेश होते हैं। इनको छोड़कर अतिरिक्त ग्रह शुभ हैं। जो ग्रह स्वयं केन्द्र और त्रिकोण के स्वामी हैं, वे स्वयं कारक ग्रह हैं और अति शुभ हैं।

परमपापी, पापी, शुभ तथा अतिशुभ ग्रहों की उपरोक्त सारणी के पहिली सारणी में बताये हैं। उस सारणी में 'क' कोष्ठक में दिये हुए अन्तर्दशेश ग्रह दशाधीश से यदि सम्वन्ध नहीं करते हों तो उनकी अन्तर्दशा में केवल पापफल मिलते हैं। इसी प्रकार 'ख' कोष्टक में दिये हुए अन्तर्दशेश यदि तत्तद् पापी ग्रहों से सम्वन्ध करे तो उक्त "ख" मिश्रितफल मिलते हैं। इसी प्रकार 'ग' कोष्टक मे दिये हुए अन्तराधीश यदि दशाधीश से समन्वय करते हों, 'घ' कोष्टक में के अन्तराधीश दशाधीश से सम्वन्ध करते हों तो; और 'ङ' कोष्टक में के अन्तराधीश वहाँ पापी महादशाधीश से शुभग्रह सम्वन्ध करे तो उक्त महादशाधीश की उक्त अंतर्दशा में अत्यन्त पापफल होते हैं।

उपरोक्त संकेत :— –(ऋण) चिह्न का अर्थ है कि 'यदि सम्वन्ध नहीं हों' +(धन) चिह्न का अर्थ है कि 'यदि सम्वन्ध हों'—सम्वन्ध का अर्थ परस्पर सम्वन्ध से है। महादशा तथा दशा इन दोनों का अर्थ यहाँ एक ही है। 'अंतर' का अर्थ महादशाधीश में उक्त ग्रह की अन्तर्दशा। जिन ग्रहों के नीचे–ऐसी रेखा है वे मारकेश भी हैं वहाँ पर फलों में अंतर होगा।

[उक्त श्लोक के (३८वें श्लोक) के प्रथम पाद में "भुक्तयोऽप्योगकारिणाम्" ऐसा पाठान्तर भी है। इस विषय में गुजराथी टीकाकार श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर की टीका विचार में होना उचित है। क्योंकि पाठान्तर के सम्वन्ध में उन्होंने अपने विचार प्रगट किये हैं वे भी ध्यान में लेना चाहिए।]

सत्यपि स्वेन संबंधे न हन्ति शुभभुक्तिषु।
हन्ति सत्यप्यसंबंधे मारकः पापभुक्तिषु ॥३९॥

मारक ग्रहों की महादशा में उनके साथ सम्वन्ध करने वाले शुभग्रहों की अंतर्दशा में दशानाथ मारक नहीं बनता। परन्तु उसके साथ सम्वन्ध-रहित पापग्रह की अंतर्दशा में मारक बनता है।

स्वर्गीय श्री वि० गो० नवाथे (मराठी टीकाकार) कहते हैं :—

"मारकग्रहों की महादशा में जब शुभग्रहों की अंतर्दशा आती है, तब वह मारक नहीं बनती। इन शुभग्रहों का मारक ग्रहों से सम्वन्ध होने का कारण

नहीं । परन्तु उन मारक ग्रहों की महादशा में जब पापग्रह की अंतर्दशा आती है तब सम्बन्ध नहीं होने पर भी उस मनुष्य को मारक होती है ।"

स्वर्गीय ह० ने० काटवे (मराठी टीकाकार) कहते हैं कि '—

"मारकग्रह की महादशा में जब शुभग्रहों की अंतर्दशा आती है तब वे मारक नहीं बनती । इन शुभग्रहों का मारकग्रह से सम्बन्ध होने का कोई कारण नहीं है । परन्तु उस मारक ग्रह की महादशा में जब पापग्रहों की अंतर्दशा आती है तब सम्बन्ध न होने पर भी वे मनुष्य को मारक होती हैं ।'

स्वर्गीय पण्डित रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) इस प्रकार कहते हैं :—

"मारकग्रह (दशानाथ हो तब) की दशा अपने से युक्त ऐसे शुभग्रहों की अंतर्दशाओं में मारक नहीं बनती परन्तु अयुक्त ऐसे पापग्रह की अंतर्दशा में मारक होती है ।"

ज्योतिषाचार्य-तीर्थ पण्डित सीतारामजी झा (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"अपनी महादशा में मारकग्रह आत्मसम्बन्ध होने पर भी शुभग्रह की अंतर्दशा में नहीं मारता है। (बिना सम्बन्ध से शुभग्रह की अंतर्दशा में नहीं मारता तो स्वयं सिद्ध ही है) तथा बिना सम्बन्ध के भी पापग्रहों की अंतर्दशा में मारता है । (सम्बन्धी पापी अंतर्दशा में मारना तो स्वयं सिद्ध ही है ")

पण्डित रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

अपना सम्बन्ध होवे तो भी मारकग्रह शुभग्रहों की अंतर्दशाओं में नहीं मारता है और जो अपना सम्बन्ध न भी हो और पापग्रहों का अन्तर हो तो मारक मृत्यु को देता है ।

विद्यारत्न पण्डित माधव प्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"मारक ग्रह के साथ यदि शुभग्रह का सम्बन्ध होवे तो भी शुभग्रह की दशा में मारक मनुष्य का प्राण नहीं लेता, और अपने साथ सम्बन्ध न रहने पर भी पापग्रह की दशा में मारकग्रह मनुष्य का प्राण लेता ही है। इससे मारकेश की दशा में शुभ और पापग्रह की अंतर्दशा ही मारक और रक्षक है । उसके साथ संबंध कुछ नहीं कर सकता ।"

राज्योतिषी पण्डित चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"मारकग्रह की महादशा में शुभग्रह का अन्तर सम्बन्ध युक्त होने पर भी मारक नहीं बन सकता है किन्तु पापीग्रह उसके अन्तर में सम्बन्धहीन होते हुए भी मारकफल कर जाता है।"

शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पण्ड्या (गुजराथी टीकाकार) कहते हैं :—

"मारक जिसके दशाधिपति हों तो उसके साथ सम्बन्धित ऐसा शुभग्रह अपनी अंतर्दशा में मारक (विनाशक) नहीं बनता, परंतु उसके साथ असम्बन्धित ऐसे पापग्रह की अंतर्दशा मारक बनती है (विनाशक बनती है।")

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराती टीकाकार) कहते हैं :—

"मारकग्रह की महादशा में उसके साथ सम्बन्ध करने वाले शुभग्रह की अंतर्दशा में दशानाथ मारक नहीं बनता। परंतु उसके साथ सम्बन्ध-रहित पापग्रह की अंतर्दशा मारक बनती है।"

स्पष्टीकरण :—

पापफल देने वाले अंतर्दशानाथ यदि दशानाथ से षष्ठ, अष्टम, द्वादश स्थानों में हों तो विशेष अनिष्ट फल देते हैं तथा नीच, शत्रु क्षेत्र में, अस्तंगत हों तो कष्ट-फलों में वृद्धि करते हैं—इस साधारण नियम को भूलना नहीं चाहिये।

पूर्व में कह चुके हैं कि दशानाथ अपने सम्बन्धी ग्रह की अंतर्दशा में अपना फल देते हैं। इस सामान्य नियम के अपवाद स्वरूप अर्थात् यहाँ सामान्य नियम लागू नहीं होते। यहाँ पर एक विशेष कहा गया है। मारकग्रह की महादशा हो और उससे सम्बन्ध करने वाले शुभग्रह की अंतर्दशा हो तो दशानाथ और अंतर्दशानाथ इनके बीच सम्बन्ध रहने पर भी उस अंतर्दशा में जातक की मृत्यु नहीं होती और यदि मारकग्रह की महादशा हो और पापी ग्रह की अंतर्दशा हो तो उस दशानाथ और अंतर्दशानाथ इनके बीच सम्बन्ध नहीं भी हो तो भी जातक की मृत्यु हो सकती है।

ऊपर कहा है कि मारक की दशा में शुभग्रह की अंतर्दशा मृत्यु नहीं करती योगकारक ग्रह शुभों की अपेक्षा शुभ हैं इस कारण से यह निष्कर्ष भी निकलता है कि मारक की दशा में योगकारक की अंतर्दशा भी मृत्यु नहीं करती। शुभ और योगकारक शुभतर होने से चाहे तो अन्य अनिष्ट करेंगें (कारण पूर्व में कहा गया है कि पापग्रह की दशा में असम्बन्धी शुभग्रह पापफल देता है और असम्बन्धी योगकारक अत्यंत पापफल देता है) परंतु मृत्यु देना यह शुभ अथवा योगकारक ग्रह के धर्म के विरुद्ध है। तो वह पीड़ा-कष्ट करेगा परंतु अपने नैसर्गिक गुण, प्रकृति, स्वभाव इनके कारण से किसी को मृत्यु नहीं देगा।

मारकग्रह की दशा में यदि सम (जो शुभ नहीं और अशुभ भी नहीं) ग्रह की अंतर्दशा हो तो मारकग्रह के गुणों के अनुसार फल देगा। यदि मारक ग्रह की दशा में सम्बन्धी पापग्रह की अंतर्दशा हो तो मृत्यु करना स्वयं सिद्ध है। अर्थात् प्राण का हरण करना स्वाभाविक ही है परंतु सामान्य सिद्धांतों के अतिरिक्त वह विशेष सिद्धांत इस श्लोक में कहा गया है कि यदि मारक दशानाथ से पापी अंतर्दशानाथ का सम्बन्ध नहीं हो फिर भी मारक की दशा में पापग्रह की अंतर्दशा प्राणों का हरण कर सकती है।

इस ग्रन्थ में सम्बन्धी और सधर्मी इन दो शब्दों पर विशेष जोर दिया गया है। मारक ग्रह (दशानाथ) तथा पापीग्रह (अन्तर्दशानाथ) दोनों भी यदि सम्बन्धी नहीं हों परन्तु सधर्मी हों तो इस कारण से एक की दशा में दूसरे की अन्तर्दशा आने पर मृत्यु फल मिलेगा।

मारकेश अपने सम्बन्धी शुभग्रह के अन्तर में नहीं मारता। इस पर से ऐसा प्रतिभासित होता है कि अपने से सम्बन्ध नहीं करने वाले पापग्रह की अंतर्दशा में मारता है। और सम्बन्ध करने वाले पापीग्रहों की अंतर्दशा में संदिग्ध मारक होता है। मारकेश दो प्रकार के हैं—एक केन्द्रेश याने सप्तमेश और दूसरा द्वितीयेश। कोई भी सप्तमेश शनि को छोड़कर त्रिषडायाधीश नहीं होता। शनि मारकेश नहीं है इसलिए ऐसे कह सकते हैं कि सप्तमेश—यह मारकेश पापी ग्रह नहीं है। कोई भी सप्तमेश, त्रिकोणेश हो ही नहीं सकता इसलिए स्वयं वह शुभ भी नहीं है। अब यदि सप्तमेश (केन्द्रेश) किसी भी शुभग्रह से (त्रिकोणेश से) सम्बन्ध नहीं करता हो तो वह कारक नहीं हो सकता। ऐसी परिस्थिति में उसकी दशा में त्रिकोणेश का अंतर पाप फलद ही होता है। जैसे—

"स्वदशायां त्रिकोणेशभुक्तौ केन्द्रपतिः शुभं।
दिशेत् सोऽपि तथा नो चेत् असम्बन्धेन पापकृत्॥"

अब रही बात द्वितीयेश की—सिंह और कुम्भ लग्न की कुंडलियों में क्रमशः बुध और गुरु एकादशेश होने के नाते पापी हैं। "पापाः यदि दशानाथाः" इस पिछले श्लोक के अनुसार इन दोनों पाप ग्रहों में से किसी से सम्बन्ध न करने वाले शुभ (त्रिकोणेश) ग्रह इनकी अंतर्दशा में पाप फल ही देते हैं। वृषभ, कन्या, वृश्चिक, मकर इन लग्नों की कुंडलियों में द्वितीयेश क्रमशः बुध, शुक्र, गुरु, तथा शनि ये त्रिकोणेश भी हैं, इसलिए शुभ हैं। (शनि मारकेश

नहीं है) ये यदि किसी भी शुभग्रह से संवंध नहीं करें तो स्वयं शुभ होकर मारक-प्रसंग में तो अपने से असम्बन्धित शुभग्रहों की अंतर्दशा में अरिष्ट-प्रद होंगे ही। कारण द्वितीयेश-द्वादशेश इनका शुभत्व पापत्व विशेषतः शुभ और पापी ग्रहों के साहचर्य से ही उनकी अंतर्दशा में होता है। असम्बन्धित शुभग्रहों के अंतर मारक नहीं बनते और मिश्रफल देते हैं ऐसा आशय है। मेष लग्न की कुंडली में द्वितीयेश शुक्र सप्तमेश भी है। वह भी अपने से असम्बन्धित शुभग्रह की अंतर्दशा में शुभफल नहीं दे सकता। तुला, धनु, मीन लग्नों के द्वितीयेश क्रूर ग्रह होते हैं इसलिए वे मारकेश नहीं माने गये हैं। अस्तु कोई भी मारकेश अपने से संवंध नहीं करने वाले शुभग्रह की अन्तर्दशा में यदि नहीं मारता तो शुभफल भी नहीं देता। जब कोई शुभ ग्रह मारकेश से सम्बन्ध नहीं करे तो मारकेश की अन्तर्दशा में शुभफल नहीं देता तो मारकेश से सम्बन्ध नहीं करने वाले पापी ग्रह की अन्तर्दशा में वह मारेगा ही।

पापी दो प्रकार के होते हैं। एक तो केवल त्रिषडायाधीश अथवा अष्टमेश (अष्टमस्थ वर्जित) है और दूसरा वह जिसकी अपनी दूसरी राशि केन्द्र अथवा त्रिकोण में होती है। उसी प्रकार से मारकेश भी पापी और शुभ है इसलिए यदि सप्तमेश-मारकेश का सम्बन्ध किसी ऐसे त्रिषडायाधीश से अथवा अष्टमेश से होवे जो त्रिकोणाधिपति भी है तो उसकी अन्तर्दशा में मिश्रफल मिलेगा। यदि सप्तमेश-मारकेश का संवंध केवल पापी ग्रहों में होवे तो वह मारक भी हो सकता है। इसी प्रकार द्वितीयेश यदि त्रिकोणेश भी हो और उससे संवंध न करने वाला पापीग्रह केन्द्रेश हो तो उसका योगजफल शुभ होना चाहिए परन्तु इस श्लोक के अनुसार "आरम्भो हि राजयोगस्य भवेन्मारक-भुक्तिषु" याने मारकेश की दशा में सम्बन्धित पापीग्रहों की (परन्तु कारक) अन्तर्दशा में शुभफल के साथ मारकफल आखिरी में देता है, जिस प्रकार कारक में मारक की अन्तर्दशा होती है। सारांश यह है कि दशा में उससे संवंधित पापग्रह की अन्तर्दशा में योगजफल प्रायः अशुभ ही होता है। मारक ग्रह की दशा में उससे असम्बन्धित पापग्रहों की अन्तर्दशा में शुभत्व की तो कोई गुञ्जाइश ही नहीं है इसलिए उसकी अन्तर्दशा में मारकेश जातक को मार डालता है (मृत्यु देता है।)

लग्न	१	२	३	४	५	६	७	८	९
	सप्तमेश (केन्द्रेश मारकेश)	केन्द्रेश द्वितीयेश मारकेश	द्वितीयेश त्रिकोणेश मारकेश	द्वितीयेश, त्रिकोणेश अष्टमेश मारकेश	शुभग्रह त्रिकोणेश	कारक ग्रह	केवल तृतीयेश परंतु पापी	त्रिषडायेश पापी ग्रह	केवल द्वितीयेश मारकेश
मेष	शुक्र	शुक्र	×	×	सू. गु.	×	बुध	मं. श.	×
वृषभ	मंगल	×	बुध	×	बुध	शनि	चं. गु.	शुक्र	×
मिथुन	गुरु	×	×	×	शुक्र	बुध	सू. मं.	शनि	चन्द्र
कर्क	शनि	×	×	×	चन्द्र	मंगल	बुध	गु. श.	सूर्य
सिंह	शनि	×	×	बुध	सूर्य	मंगल	बुध	श. गु. शु.	×
कन्या	गुरु	×	शुक्र	×	शुक्र	बुध	मंगल	चं. श.	×
तुला	मंगल	मंगल	×	×	बुध	शनि	गुरु	सू. शु.	×
वृश्चिक	शुक्र	×	गुरु	×	गु. च.	×	बुध	श. मं.	×
धनु	बुध	×	×	शनि	सू. मं.	गुरु	शुक्र	श. चं.	×
मकर	चन्द्र	शनि	×	×	शनि	शुक्र	गुरु	बु. मं. सू.	×
कुम्भ	सूर्य	×	×	गुरु	शनि	शुक्र	चन्द्र	मं. शु.	×
मीन	बुध	×	मंगल	×	मं. चं.	गुरु	×	शु. सू. शनि	×

कोष्ठक के ग्रह	कोष्ठक के ग्रह	कोष्ठक के ग्रह	+ सम्बन्धित
(i) १+५ अमारक; १+६ शुभ	(v) १+८ अमारक; २+८ मिश्रफल	(ix) २−५, २−६ मिश्रफल	− असम्बन्धित
(ii) २+५ अमारक; २+६ शुभ	(vi) १+७, २+७ मारक	(x) १−७, १−८ मारक	
(iii) ३+५, ३+६ अमारक	(vii) ४+७ निश्चयात्मक; ४+८ मारक	(xi) २−७, २−८ मारक	
(iv) ४+५ मिश्रफल; ४+६ अमारक	(viii) १−५, १−६ मिश्रफल	(xii) ४−७, ४−८ मारक	

परस्परदशायां स्वभुक्तौ सूर्यज–भार्गवौ ।
व्यत्ययेन विशेषेण प्रदिशेतां शुभाशुभम् ॥४०॥

शनि और शुक्र अपनी-अपनी महादशा में अपनी-अपनी अंतर्दशा में अपने-अपने शुभाशुभ फल देते हैं, अर्थात् शनि महादशा में शुक्र की अंतर्दशा में शनि अपने फल देता है, तद्वत् शुक्र की महादशा में शनि की अंतर्दशा में शुक्र अपने फल देता है। इस फल के लिए सम्वन्ध की अपेक्षा नहीं रहती।

राज ज्योतिषी पण्डित चतुर्वेद चन्द्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि—

"शनि महादशा में जब शुक्र का अंतर आता है तो वह शुक्र विशेष कर शनि का ही शुभाशुभ फल करता है। इसी भांति जब शुक्र की महादशा में शनि का अंतर आता है तो वह शनि भी अपने अंतर में शुक्र का ही शुभाशुभ फल देता है।"

पण्डित माधव प्रसाद व्यास 'विद्यारत्न' (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि–

"शुक्र और शनि दोनों एक की महादशा में दूसरे की अंतर्दशा आने पर अवश्य ही उलट-पुलट कर शुभ और अशुभफल देते हैं। तात्पर्य यह है कि यदि शुक्र की महादशा में शनि की अंतर्दशा आवे तो शुक्र की दशा फल नहीं करती किन्तु उसके बदले में शनि की दशा का अशुभफल ही होता है। इसी प्रकार शनि की महादशा में शुक्र की अंतर्दशा आवे तो शनि की दशा का अशुभफल नहीं होता किन्तु शुभफल होता है।"

ज्योतिषाचार्य-तीर्थ पं० सीताराम झा (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि–

"शनि तथा शुक्र परस्पर दशा में अपनी-अपनी अंतर्दशा आने पर व्यत्यय से शुभाशुभ फल को विशेष रूप से देते हैं। (अर्थात् शुक्र की महादशा में शनि अपनी अन्तर्दशा में शुक्र सम्बन्धी फल को और शनि की महादशा में शुक्र अपनी अंतर्दशा आने पर शनि के ही फल को विशेष रूप से देता है।"

पंडित रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"शनि और शुक्र परस्पर दशाओं में और अन्तर्दशा में विशेष करके विपरीत ही शुभ अशुभफल देते हैं, अर्थात् शनि की मूलदशा में जब शुक्र की अन्तर्दशा आवेगी, तब शनि का ही विशेष शुभ-अशुभ फल देगा, इसी प्रकार जब शुक्र की दशा होगी तो शनि अपनी अन्तर्दशा में शुक्र का फल विशेष करके देगा।"

स्वर्गीय वि० गो० नवाथे :—(मराठी टीकाकार) कहते हैं कि :—

शुक्र की महादशा में शनि की अन्तर्दशा आवेगी तब शुक्र के अनुसार शुभाशुभ फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार शनि की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा आवे तो शनि के अनुसार शुभाशुभफल प्राप्त होता है।"

स्वर्गीय श्री ह० ने० काटवे (मराठी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"शनि और शुक्र अपनी-अपनी महादशा में परस्पर की अंतर्दशा में अपने अपने शुभाशुभफल देते है। अर्थात् शनि की महादशा में शुक्र की अंतर्दशा में शनि अपने फल देता है और शुक्र की महादशा में शनि की अंतर्दशा में शुक्र अपने फल देता हैं। इस फल के लिये सम्बन्ध अपेक्षित नहीं होता है।"

स्वर्गीय पं० रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन (मराठी टीकाकार) कहते हैं कि :—

'शुक्र और शनि ये परस्पर की दशान्तर्दशा में अलग-अलग प्रकार से विशेष शुभ अथवा अशुभफल देता है। शुक्र और शनि इनकी दशा और अंतर्दशा के सम्बन्ध में यह विशेष नियम कहा गया है। शनि की शुभदशा

हो तो उसमें शुक्र की अंतर्दशा आने पर अत्यंत-शुभफल मिलता है। उसी प्रकार शनि की अशुभदशा हो तो उसमें शुक्र की अन्तर्दशा आने पर अत्यंत अशुभफल मिलता है। उसी प्रकार शुक्र की शुभ महादशा हो तो उसमें शनि की अन्तर्दशा आने पर अत्यंत शुभफल मिलता है; और शुक्र की अशुभ महा-दशा हो तो शनि की अंतर्दशा आने पर अत्यंत अशुभफल मिलता है। इस श्लोक के बारे में वहुत ही संशय निर्माण होने की संभावना है, कारण इस श्लोक का अर्थ नहीं लगता ऐसा एक दो जनों का मत है। परन्तु उसमें विशेष तथ्य नहीं है। इस श्लोक का स्पष्ट उद्देश यह है कि. जिस वक्त शनि और शुक्र ये दोनों अथवा इनमें से कोई एक अनिष्ट स्थान का स्वामी हो अथवा नीच, अस्तंगत, वक्री, अनिष्टग्रह युक्त ऐंसा हो तव उसके फल फिर वह शुक्र हो तो शनि की दशा में उसकी अंतर्दशा आवे तव और शनि हो तो शुक्र की दशा में जब उसकी अंतर्दशा आवे तव अत्यंत अनिष्ट तथा अशुभफल मिलेगा। अर्थात् ही इसके विपरीत उनकी अनुकूल स्थिति होने से उनके फल श्रेष्ठ और उच्च दर्जे के होंगे।"

शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या (गुजराती टीकाकार) कहते हैं—

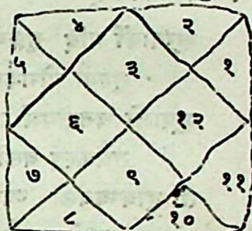
"शनि तथा शुक्र ये अपनी-अपनी परस्पर महादशा में अपनी-अपनी अंतर्दशा आती है तव वे एक-एक के सामसामा विशेष शुभ अथवा अशुभफल अर्थात् महादशा प्रमाणे फल देते हैं।"

इस पर से ऐसा समझ में आता है कि जब शनि की महादशा हो और उसमें शुक्र की अन्तर्दशा आवे और उसमें यदि शनि की दशा शुभ हो तो शुक्र की अन्तर्दशा का फल भी शुभ ही मिलेगा। उसी प्रकार शनि की अशुभ दशा आवे तो शुक्र की अंतर्दशा का फल अशुभ ही मिलेगा। इसी तरह जब शुक्र की दशा शुभ होगी तो शनि की अंतर्दशा शुभ फल देगी। इस प्रकार सामान्य रीति से शुभाशुभफल मिलता है।

श्री उत्तमराम मयाराम ठक्कर (गुजराथी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"ज्योतिष-शास्त्र में शुक्रग्रह सुख विलास देने वाला होता है तो शनि यह पापग्रह होकर दुःख देने वाला होता है। ये दोनों ग्रह अति बलवान हैं और इनकी प्रकृति परस्पर विरोधी है। ऐसा होते हुए भी इन दोनों ग्रहों में आपस में दृढ़ मित्रभाव है यह एक ज्योतिष शास्त्र का रहस्य सूत्र है। आयुर्दाय सम्बन्ध में भी ये ग्रह अस्तंगत होने पर भी आयुर्दाय को हानि नहीं करते।

(वृहज्जातक आयुर्दाय अध्याय देखिये ।) एक दूसरे की राशि में परम शुभ भावों का स्वामित्व इनको प्राप्त है। उदाहरणार्थ :—वृषभलग्न की कुण्डली में शनि नवम-दशम भावों का स्वामी होता है और तुला लग्न की कुंडली में शनि चतुर्थ-पंचम भावों का स्वामी होता है। इसी प्रकार मकर लग्न की कुंडली में शुक्र पंचम-दशम भावों का स्वामी होता है और कुम्भ लग्न की कुंडली में चतुर्थ-नवम भावों का स्वामी होता है। उपरोक्त लग्नों की कुंडलियों में शनि और शुक्र उत्तम (शुभ) भावों के स्वामी होते हैं। अन्य राशियों की कुंडलियों में इन दोनों ग्रहों का शुभ-अशुभत्व साधारण रहता है। कारण एक पापी होता है तब दूसरा भी पापी होता है। एक दोष युक्त हो तो दूसरा भी दोष युक्त होता है। उदाहरणार्थ—इस मिथुन लग्न की कुंडली में शनि अष्टम-नवम स्थानों का स्वामी है और वह दोष युक्त होता है। इसी प्रकार शुक्र द्वादश तथा पंचम स्थान का स्वामी है और वह भी दोषयुक्त होता है। तात्पर्य यह है कि शुक्र और शनि सम स्थान एक सरीखे हैं।



उपरोक्त कहे हुए अनुसार नियमों को ध्यान में रखना चाहिये अर्थात् शनि और शुक्र विरुद्ध प्रकृति के होते हुए भी उनमें आपस में दृढ़ मित्रता है। इसलिये उनकी महादशा अंतर्दशा में भी वे फलों में भी विचित्रता उत्पन्न करते हैं। यह बात श्लोक ४० में कही गयी है। नियम ऐसा है कि शनि और शुक्र स्वयं की महादशा में. परस्पर की अंतर्दशा में अपने स्वयं के शुभ-अशुभ फल देते हैं अर्थात् शनि की महादशा में शुक्र की अंतर्दशा शनि का फल देती है और शुक्र की महादशा में शनि की अंतर्दशा शुक्र का फल देती है। इस फलादेश में उनमें परस्पर सम्बन्ध की कोई भी अपेक्षा नहीं होती।

स्पष्टीकरण—

शुक्र की महादशा में जब शनि की अंतर्दशा आती है तब शनि शुक्र के फल देता है। इसी प्रकार शनि की महादशा में शुक्र की अंतर्दशा आती है तब शुक्र शनि के फल देता है। इसमें हेतु ऐसा है कि शुक्र और शनि केवल मित्र ही नहीं हैं तो शुक्र की दोनों लग्नों की राशियों में अर्थात् वृषभ राशि के लग्न में शनि नवमेश और दशमेश होता है और तुला राशि के लग्न में शनि चतुर्थेश-पंचमेश होने से योगकारक होता है। और शनि के दोनों लग्नों में अर्थात् मकर राशि के लग्न में शुक्र पंचमेश-दशमेश होने से और कुंभ लग्न में

चतुर्थेश और नवमेश होने से—योगकारक होता है। इसलिये इन दोनों में विशेष सवन्ध है। "उत्तरकालामृत" नामक ज्योतिष ग्रंथ में शुक्र और शनि इन दोनों में से किसी एक की महादशा हो और उसमें दूसरे की अंतर्दशा आती हो तो भिन्न-भिन्न परिस्थिति में अलग-अलग फलों का निर्देशन किया गया है। इस सम्वन्ध में खंड ६ श्लोक २९ और ३० में जो श्लोक दिये है वे इस प्रकार हैं

भृग्वार्कौ यदि तुङ्गभे स्वभवने वर्गोत्तमादौ स्थितौ
तुल्यौ योगकरौ तथैव बलिनौ तौ चेन्मिथो पाकगौ ॥२९ खण्ड ६
भूपालो धनदोपमोऽपिं सततं भिक्षाशनो निष्फलः
तत्रैकस्तु बली परस्तु विबलश्चेद्वीर्यवान्योगदः।
तौ द्वावप्यबलौ व्ययारिष्ट रिपुगौ तद्भावपौ वाऽपि तत्
तद्भावेशयुतौ तदा शुभकरौ सौख्यप्रदौ भोगदौ ॥३० खण्ड ६
एकः सद्भवनाधिपस्तदपरश्चेद् दुष्टभावेश्वर—
स्तावप्यत्र सुयोगदावतिखलौ तौ चेन्महासौक्यदौ :

अर्थात् शुक्र और शनि यदि अपनी उच्चराशि, स्वराशि, वर्गोत्तम आदि में हो और बलवान योगकारक हो और उनमें से एक की महादशा और दूसरे की अंतर्दशा आती हो तो ऐसे समय राजा तथा कुबेर भी भिक्षुक की तरह निष्क्रिय और दरिद्री हो जाता है। किन्तु शुक्र तथा शनि इनमें से एक बलवान और दूसरा बलहीन हो तो उनका फल अच्छा होता है।

यदि दोनों ही निर्बली हों, एक दूसरे से षष्ठ, अष्टम, तथा द्वादश स्थान मे हों अथवा (लग्न से) षष्ठ, अष्टम, द्वादश स्थान के स्वामी से युक्त हों तो शुभफल, सौख्य और भोग देने वाले होते हैं। इन दोनों में से एक शुभ-स्थान का स्वामी हो और दूसरा दुष्ट स्थान का स्वामी हो फिर भी दोनों अच्छा योग करने वाले होते हैं और दोनों शनि और शुक्र-अतिखल (दुःस्थानों के स्वामी) हों तो महान् सुख के देने वाले होते हैं।

इस ग्रंथ में अभी तक दिये गये श्लोकान्वय में शुक्रऔर शनि यदि आपस में सम्बन्ध करते हों तो शुक्र की महादशा में और शनि की अंतर्दशा में अथवा शनि की महादशा में और शुक्र की अंतर्दशा में योगजफल (योगकारक फल) होना चाहिये। इस बात के लिये उपरोक्त श्लोकों में किसी भी भांति का विरोध नहीं है परन्तु "व्यत्ययेन विशेषेण" वाक्य से ऐसा बोध होता है कि जहाँ साधारणतः शुक्र के फल शुक्र की अंतर्दशा में और शनि के फल शनि की

अंतर्दशा में होने चाहिये वैसा नहीं होकर उसके विपरीत होता है यह जो अवस्था है वह इस प्रकार से होती है।

शुक्र और शनि यदि आपस में सम्बन्ध नहीं करते हों तो

"आत्मसम्बन्धिनो ये च ये वा निजसधर्मिणः।
तेषामन्तर्दशास्वेव दिशन्ति स्वदशाफलम्।"

इस श्लोक के अनुसार शुक्र के अपने अशुभफल शुक्र की महादशा में शनि की अन्तर्दशा हो तब होने चाहिये कारण शुक्र और शनि ये दोनों परस्पर आत्मसम्बन्धी (परस्पर मित्र) हैं। इसी प्रकार शनि के शुभाशुभ फल शनि की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा आती हो तब मिलने चाहिये। परन्तु उपरोक्त श्लोक इसका अपवाद है। इस प्रकार न होते शुक्र के फल शनि की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा में तथा शनि के फल शुक्र की दशा में शनि की अन्तर्दशा में विपरीत प्रकार से प्राप्त होते हैं। इन दोनों ग्रहों के सम्बन्ध में एक विशेष बात इस प्रकार है।

"मारकैस्सह सम्बन्धात् निहन्ता पापकृत् शनिः॥

इस श्लोक के अनुसार यदि पापी शनि मारकेश शुक्र के साथ सम्बन्ध करे तो शुक्र के बदले शनि निहन्ता होता है और मारक-फल शनिमें होता है। यहाँ मारक-फल स्वयं उल्टा होने से उपरोक्त श्लोक "परस्परदशायां" इसका उदाहरण हुआ है।

पापी शनि यदि अन्य मारकेश के साथ सम्बन्ध करे तो वह मारकेश अमारक बनता है और उसकी जगह शनि मारकेश बन जाता है ऐसा पूर्व में कहा गया है।

अब यदि मारक (पापी) शनि यह गुरु अथवा बुध वा चन्द्रमा के साथ सम्बन्ध करके यदि शुक्र के साथ भी सम्बन्ध करे तो शनि का मारकत्व फिर शनि की अन्तर्दशा आवेगी तब होगा।

सारांश यह है कि शनि और शुक्र आपस में सम्बन्ध नहीं करते हों तो परस्पर दशा में अपने स्वयं के फल देते हैं और मारक-प्रसङ्ग में निहन्ता शनि का सम्बन्ध शुक्र से हुआ और शुक्र का शनि से नहीं हुआ तो उस शनि का मारक-फल शुक्र की महादशा में शनि की अन्तर्दशा आवेगी तब होगा ऐसा लेखक का मत है। परस्पर सम्बन्ध होने के कारण से योगजफल परस्पर दशान्तर्दशा में होता ही है।

कर्मलग्नाधिनेतारावन्योन्याश्रयसंस्थितौ।
राजयोगाविति प्रोक्तं विख्यातो विजयी भवेत्॥४१॥

धर्मकर्माधिनेतारावन्योन्याश्रयसंस्थितौ ।
राजयोगाविति प्रोक्तं विख्यातो विजयी भवेत् ॥४२॥

दशम स्थान का स्वामी लग्न में और लग्न का स्वामी दशम में ऐसा योग हो तो वह राजयोग समझना चाहिये। इस योग पर विख्यात और विजयी ऐसा मनुष्य होता है ॥ ४१ ॥

नवम स्थान का स्वामी दशम में और दशम स्थान का स्वामी नवम में ऐसा योग होवे तो वह राजयोग होता है ऐसा समझना चाहिये। इस योग पर विख्यात और विजयी पुरुष होता है ॥ ४२ ॥

विद्यारत्न पं० माधवप्रसाद व्यास (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

"यदि दशमेश लग्नेश एक दूसरे के स्थान में हों, तो दोनों राजयोग करने वाले होते हैं। इस योग में उत्पन्न पुरुष जगत में प्रसिद्ध और संग्राम में विजय करने वाला होता है। यदि नवमेश दशमेश के स्थान में हो वा दशमेश नवमेश के स्थान में हो तो दोनों राजयोग के करने वाले होते हैं। इस योग में उत्पन्न पुरुष जगत में प्रसिद्ध और संग्राम में विजय करने वाला होता है।"

राजज्योतिषी पं० चतुर्वेद चंद्रशेखर शास्त्री (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं :—

"दशमभाव का स्वामी लग्न में हो और लग्न का स्वामी दशम में हो तथा नवमेश दशम में हो और दशमेश नवम में हो तो ये दोनों राजयोग करते हैं। इन योगों पर उत्पन्न हुआ नर विख्यात कीर्ति और संग्राम में विजयी होता है।"

ज्योतिषाचार्य-तीर्थ पं० सीताराम झा (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं कि :—

लग्नेश और दशमेश यदि परस्पर स्थान में हों, अथवा दोनों मिलकर एक ही स्थान (लग्न या दशम) में हों तो दोनों तरह से राजयोग होता है, इनमें उत्पन्न होने वाला जगत्प्रसिद्ध और विजयी होता है, ऐसा मुनियों ने कहा है।

तथा लग्नेश और नवमेश यदि परस्पर स्थान में हों अथवा मिलकर एक ही स्थान (लग्न वा नवम में) में हों तो दोनों ही राजयोग होते हैं ऐसा मुनियों ने कहा है। इसमें उत्पन्न होने वाला विख्यात और विजयी होता है।

(पंडित सीतारामजी झा ने श्लोक ४२ का प्रथम चरण इस प्रकार ग्राह्य किया है :—

"धर्मलग्नाधिनेतारौ" ैर अन्य प्रति में "धर्मकर्माधिनेतारौ" ऐसा पाठान्तर है) ।

"यह लग्नेश को दशमेश और नवमेश के साथ संबंध के कारण राजयोग कहकर लग्नेश में केन्द्रेशत्व और त्रिकोणेशत्व दोनों धर्म बतलाये गये हैं। तथा प्रबल केन्द्रेश और त्रिकोणेश के साथ संबंध से विख्यात और विजयी होना उत्कृष्टफल कहा गया है। इससे सिद्ध होता है कि लग्नेश और त्रिकोणेश के संबंध से भी सामान्य राजयोग होता है।" युक्ति वचन :—

भाग्येशो राज्यनाथश्च देहाधीशेन संयुतौ।
तौ चेद् वर्धयतो भाग्यं राज्यं चेति किमद्भुतम्॥

जन्मकालिक लग्न ही शरीर है, उसी के हिताहित साधक धन आदि भाव हैं। अतः किसी भावेश को जब तक देहाधीश (लग्नेश) से साक्षात् संबंध न हो तब तक अपने फल को पूर्ण रूप से नहीं दे सकता। अतः लग्नेश को भाग्येश से और राज्येश से संबंध होने पर यदि भाग्य और राज्य का लाभ होने से विख्यात और विजयी कहा गया तो क्या आश्चर्य? अर्थात् उचित ही कहा गया है।

उपरोक्त उदाहरण से यह सूचित कराया गया है कि लग्नेश का जिन भावेशों से जिस प्रकार का संबंध रहता है उसी प्रकार उन भावों का फल होता है।"

पं० रामेश्वर भट्ट (हिन्दी टीकाकार) कहते हैं —

"जो दशम घर का स्वामी और लग्न का स्वामी अन्योन्य स्थान में बैठे हों अर्थात् दशमेश लग्न में और लग्नेश दशवें घर में हो तो ये दोनों राजयोग करने वाले होते हैं, इस योग में उत्पन्न हुआ मनुष्य बड़ा प्रसिद्ध और युद्ध में विजय पाने वाला होता है।

धर्म और कर्म के स्वामी अन्योन्याश्रित हों अर्थात् नवम का स्वामी दशवें और दशम का स्वामी नववें हो तो राजयोग करते हैं, जो मनुष्य इसमें उत्पन्न होता है, वह बड़ा विख्यात और युद्ध में विजयशील होता है।

मराठी टीकाकार स्वर्गीय पं० रघुनाथ शास्त्री पटवर्धन—इनके लघुपाराशरी ग्रंथ में और स्वर्गीय श्री ह० ने० काटवे—इनकी जातक-चन्द्रिका (शुभाशुभग्रह विचार निर्णय) इन दोनों ग्रंथों में इन दोनों श्लोकों का समावेश नहीं है परंतु स्वर्गीय वि० गो० नवाथे—इनके उडुदाय प्रदीप इस ग्रंथ में उपरोक्त श्लोक और उनका अर्थ दिया है—

दशम स्थान का स्वामी लग्न में और लग्न का स्वामी दशम में ऐसा योग होवे तो वह राजयोग जानना चाहिये। इस योग पर विख्यात और विजयी

ऐसा मनुष्य होता है। नवम स्थान का स्वामी दशम में और दशम स्थान का स्वामी नवम में ऐसा योग होगा तो वह राजयोग जानना। इस योग में विख्यात और विजयी पुरुष होता है।

श्लोक ४१ और ४२ यहाँ पर अप्रासंगिक दिखाई पड़ते हैं। इनका समावेश राजयोगाध्याय में होता है, ऐसा होते हुए इस अध्याय में इनका उल्लेख करने का कारण ऐसा दिखाई पड़ता है कि जब इस प्रकार के ग्रहों की महादशायें आती हैं, तब वे एक दूसरे की अन्तर्दशा में राजयोग करते हैं। जातकचन्द्रिका में ये दो श्लोक नहीं हैं। इस पर से और श्लोक ४२ वें का भावार्थ राजयोगाध्याय के एक श्लोक में दिया गया है इस पर से इस ग्रंथ में किसी ने घुसेड़ दिये हैं ऐसा दिखता है।"

गुजराथी टीकाकार उत्तमराम मयाराम ठक्कर—इस प्रकार कहते हैं :— कि हिन्दी की प्रतियों में श्लोक ४१ और ४२ में दिये हैं। ये श्लोक बाद में लिखे गये हैं। उपरोक्त श्लोकों में जो दो राजयोग बताये हैं वे जो ग्रंथकार के होते तो उनको अन्तर्दशाध्याय में न लिखते कारकाध्याय में लिखते।

उपरोक्त श्लोक ४१ में राजयोग लग्नाधिपति और दशमाधिपति के अन्योन्याश्रय संबंध से बनते हैं ऐसा बताया गया है परन्तु उस राजयोग का इस ग्रंथ के नियम के अनुसार कोई भी आधार नहीं है। कारण कि केन्द्राधिपति जो नैसर्गिक शुभग्रह होता है तो इस ग्रंथ के मूल सिद्धान्त के अनुसार अशुभ है। इस नियम से इस श्लोक को बाध आती है। श्लोक ४२ में राजयोग में नवम और दशम भाव के स्वामी अन्योन्याश्रय संबंध से राजयोग करते हैं ऐसा बताया गया है। यह योग तो श्लोक १६ में आ गया है इसलिये यहाँ बताने की कोई आवश्यकता नहीं थी। व्याकरण की दृष्टि से भी यह श्लोक दोषयुक्त है।"

शास्त्री तुलजाशंकर धीरजराम पंड्या (गुजराथी टीकाकार) के विचार और श्लोकों का अर्थ उपरोक्त समान ही है।

स्पष्टीकरण :—

लग्नेश और दशमेश यदि परस्पर स्थानगत हों अर्थात् दशमेश लग्न में और लग्नेश दशम में हो तो इसे राजयोग कहते हैं। इसी प्रकार नवमेश दशम में तथा दशमेश नवम में हो तो उसे भी राजयोग कहते हैं। इन योगों पर उत्पन्न जातक विख्यात और विजयी होता है। तथा ऐसे योगकारी ग्रहों की दशान्तर्दशा जब जब आती है तब तब जातक विजयी तथा प्रसिद्ध होता है।

दशा में विख्यात होना अधिक तर्क-संगत है कारण पूर्व में कह चुके हैं कि "आरम्भो राजयोगस्य" इस श्लोक के अनुसार राजयोग कारक कुण्डली के

जातक को जब उस कारक की दशा आवेगी और उसमें सम्बन्धित मारक का अन्तर आवेगा तब वह राजसुख देकर उपरान्त मारक बनता है । इस ग्रंथ के राजयोगाध्याय (कारकाध्याय) के प्रथम श्लोक में—

"केन्द्रत्रिकोणपतयः सम्बन्धेन परस्परम् ।
इतरैरप्रसक्ताश्चेद् विशेषफलदायकाः ।। और

द्वितीय श्लोक में "केन्द्रत्रिकोणनेतारौ दोषयुक्तावपि स्वयं ।
सम्बन्धमात्राद्बलिनौ भवेतां योगकारकौ ।

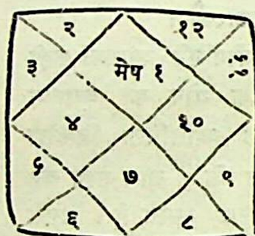
केन्द्र तथा त्रिकोणपति के परस्पर संबंध से कारक योग की व्याख्या कही गयी है। अब यहाँ उपरोक्त श्लोक में उत्कृष्ट कारक योग की व्याख्या उदाहरण के रूप में देने में आयी है। लग्न केन्द्र के व्यतिरिक्त त्रिकोण का भी आद्य स्थान है। इसलिये केन्द्र के आद्य स्थान के साथ-साथ वह त्रिकोण का भी आद्य स्थान है। इसलिये स्वयं कारक स्थान है। उससे (लग्नेश से) यदि दशमेश का संबंध होता हो तो कारकत्व की दृष्टि से वह बलवत्तर योग है। "निवसेतां व्यत्ययेन तावुभौ धर्मकर्मणोः" इस श्लोक के अनुसार केन्द्रेश-त्रिकोणेश इनका परस्पर स्थान संबंध होना यह योगों में प्रथम श्रेणी का योग है। इसलिये लग्नेश-दशमेश का अथवा दशमेश-नवमेश का परस्पर संबंध होना यह सर्वाधिक शुभयोग है। इसे राजयोग की संज्ञा दी गयी है। लग्नेश और नवमेश यदि परस्पर स्थानों में हों फिर भी यह उत्तम (शुभ) कारक योग है परंतु लग्न की प्रधानता त्रिकोण स्थान होने में ही है। इसलिये लग्नेश-नवमेश इनका योग कारक योग होते हुए भी राजयोग संज्ञक नहीं है। वृषभ लग्न की कुण्डली में शनि स्वयं नवमेश-दशमेश है। मीन लग्न की कुण्डली में लग्नेश-दशमेश स्वयं गुरु है। ये ग्रह यदि अपनी-अपनी कुण्डलियों में लग्नस्थ अथवा दशमस्थ होवें तो स्वयं राजयोगकारक होंगे; इस प्रकार कन्या लग्न की कुण्डली में नवमस्थ अथवा दशमस्थ बुध राजयोग करने वाला है। यदि ये ग्रह लग्न अथवा दशम में, दशम और नवम में नहीं बैठे तो वह कुण्डली राजयोग की नहीं होगी कारण यह संभव नहीं है कि सब वृषभ, कन्या, तथा मीन लग्न के जातक विख्यात और विजयी होंगे। राजयोग कारक कुण्डली का जातक राजयोग कारक ग्रहों की दशा में विख्यात और विजयी तो होगा ही परन्तु दशा प्राप्त न होने पर भी राजयोग कुण्डली का जातक जन्मतः उच्च श्रेणी का होगा ऐसा प्रतीत होता है।

"अन्तर्दशाध्याय प्रकरण का चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ"

मेषादि लग्नों के कौन-कौन से ग्रह शुभाशुभ फल उत्पन्न करते हैं

इस विषय में पूर्व में कहे हुये नियमों के अनुसार प्रत्येक लग्न को ग्रहों का शुभाशुभत्व किस प्रकार का होता है, इसका क्रमवार विवेचन करता हूँ जिससे पूर्व में कहे गये नियमों को विरोध आता हो तो वह दूर हो सकेगा।

मेषलग्न



मन्दसौम्यसिताः पापाः शुभौ गुरुदिवाकरौ।
न शुभं योगमात्रेण प्रभवेच्छनिजीवयोः ॥१॥
परन्तु तेन जीवस्य पापत्वमपि सिध्यति।
कविः साक्षान्निहन्ता स्यान्मारकत्वेन लक्षितः ॥२॥
मन्दादयो निहन्तारो भवेयुः पापिनो ग्रहाः।
शुभाशुभफलान्येवं ज्ञातव्यानि क्रियोद्भवे ॥३॥

कुछ ग्रंथों में पाठ भेद है:—दूसरे श्लोक का प्रथम चरण इस प्रकार है।

"परतंत्रेन जीवस्य पापकर्मापि निश्चितम्"

स्पष्टीकरणः—मेष लग्न हो तो शनि, बुध और शुक्र अशुभफल देते हैं। गुरु और सूर्य शुभफल देते हैं। शनि गुरु का योग शुभफलदायक नहीं होता। परन्तु उतने से गुरु का अशुभत्व भी सिद्ध होता है। शुक्र मारक स्थान का अधिपति होने के कारण उसने मारक होना चाहिये परन्तु केवल इतने ही कारण पर से वह मारक नहीं बनता। शनि आदि करके पापग्रह मारक बनते हैं। इस प्रकार मेष लग्न में जातक को शुभाशुभ योग होते हैं यह ज्ञाताओं ने जानना चाहिये। मेष लग्न में शनि १०।११ स्थानों का, बुध ३।६ स्थानों का और शुक्र २।७ स्थानों का अधिपति होता है। ३।६।८।११।१२ इन स्थानों के अधिपति अशुभफल देते हैं ऐसा पूर्व में कहा गया है। शुभग्रह केन्द्रों में हों तो शुभफल नहीं देते। उसी प्रकार मेष लग्न में लग्न स्वामी मंगल है और बुध, शुक्र तथा शनि उसके मित्र नहीं होते, इस कारण से बुध, शुक्र और शनि अशुभ होते हैं। सूर्य पंचम स्थान का (त्रिकोण स्थान का) स्वामी और गुरु ९।१२ स्थानों का स्वामी होता है। सूर्य और गुरु दोनों ही लग्न स्वामी मंगल के मित्र हैं और वे याने मकर और कुम्भ राशियों का स्वामी शनि अर्थात् दोनों शुभयोग कारक स्थानों का मालिक होने से प्रचंड राजयोग कारक होता है ऐसा अनुभव है। लेकिन इस प्रकार का राजयोग करनेवाला शनि किसी भी पापग्रह से युक्त, दृष्ट अथवा अशुभ स्थान में नहीं होना चाहिये।

वह अकेला और शुभ दृष्ट ऐसा होने पर ही उसके परमोच्च प्रकार के फल मिलते हैं अन्यथा उसके वैभव कारक फलों में न्यूनता रहती है। शनि अकेला रहने की अपेक्षा अन्य शुभग्रह के साथ यदि सम्बन्ध करता हो तब अति उत्कृष्ट फल होते हैं। "शनिदिवाकरौ" इस पाठान्तर को यदि स्वीकार किया जाय तो इन दोनों का योग भी शुभ बन सकता है कारण शनि केन्द्राधिपति और त्रिकोणाधिपति होता है और सूर्य चतुर्थ केन्द्र का स्वामी है। इसलिए श्लोक १४ के अनुसार सम्बन्ध नहीं होने पर भी राजयोग होता है। परन्तु सूर्य शनि का शत्रु होने के कारण कदाचित् फलों में किंचित् न्यूनता आना सम्भव है। "शनिशशी सुतौ" ऐसा पाठान्तर यदि स्वीकार किया जावे तो शनि + बुध यह योग श्रेष्ठ बनता है कारण बुध पंचम याने त्रिकोण का स्वामी होता है इसलिए शुभ है। उसका योग शनि से (नवम-दशम स्थानों के अधिपति से), जो केन्द्र और त्रिकोण दोनों का स्वामी है, श्रेष्ठ प्रकार का राजयोग उत्पन्न कर सकता है। कारण यह दो त्रिकोण स्वामियों का भी योग है। बुध धनेश यद्यपि मारक स्थान का अधिपति है फिर भी पंचम इस त्रिकोण स्थान का स्वामी होने से शुभ है। इसके अतिरिक्त बुध शनि का मित्र है इसलिए श्लोक २० के अनुसार श्रेष्ठ राजयोग बनता है। वृषभ लग्न के लिए गुरु ८।११ स्थानों का, शुक्र १।६ स्थानों का और चन्द्रमा ३ तीसरे स्थान का अधिपति होते हैं। ८।६।११ और ३ ये स्थान अशुभ हैं। शुक्र ग्रह के लिए प्रथम स्थान भी अशुभ है; इसके अलावा वह षष्ठ स्थान (त्रिषडाय) का स्वामी भी होने से (२) गुरु बारहवें स्थान का स्वामी होने से दूषित है और शुक्र सप्तम (मारक) भाव का स्वामी होने से दूषित है दोनों ही दूषित होने के कारण गुरु + शुक्र योग निष्फल होता है।

सफलयोगः—(१) सूर्य + मंगल; (२) सूर्य + चन्द्र; (३) सूर्य + शुक्र (निकृष्ट और सदोष) कारण शुक्र सप्तम स्थान का स्वामी होने से दूषित है। सूर्य दूषित नहीं है परंतु एक दोषयुक्त होने से सफल राजयोग होता है लेकिन यह योग निकृष्ट और सदोष है।

(४) सूर्य + शनि; (५) मंगल + गुरु; (६) चन्द्र + गुरु—यदि चन्द्रमा पूर्ण हो तो चतुर्थ स्थान का (केन्द्र का) स्वामी होने के कारण राजयोग करता है पूर्ण चन्द्र होने से उसे शुभ माना गया है। परन्तु इस ग्रंथ के नियमों के अनुसार केन्द्रेश यदि शुभग्रह हो तो अशुभ होता है, इसलिए यह योग सदोष होता है यदि चन्द्रमा क्षीण होवे तो शुभ होता है और गुरु द्वादशेश होने से उसका दोष नष्ट करता है।

मेषलग्न को शुभाशुभ योग :—

(१) **शुभयोग** :—सूर्य पंचम स्थान का अर्थात् त्रिकोण स्थान का अधिपति होकर यदि स्वगृह में हो तो श्लोक ६ के अनुसार शुभ होकर शुभफल देने वाला होता है ।

(२) **शुभयोग** :—गुरु नवम (त्रिकोण) स्थान का स्वामी है और वह स्वगृह में हो तो श्लोक ६ के अनुसार शुभफल देने वाला होता है ।

(३) **शुभयोग** :—चन्द्रमा (विशेषतः क्षीणचन्द्रमा) केन्द्राधिपति होने के कारण से श्लोक ११ के अनुसार (अल्प) कम दूषित होता है और शुभ माना जाता है । वह शुभफल देने वाला होता है ।

(४) **शुभयोग** :—मंगल अष्टमस्थान का स्वामी होकर लग्नेश भी होता है । श्लोक ६ के अनुसार उसे शुभ माना जाता है और वह शुभफल देता है ।

(१) **अशुभयोग** :—शनि दशम स्थान का अधिपति होने से पापग्रह है और एकादश स्थान का भी अधिपति होने से श्लोक ६ के अनुसार अशुभ माना गया है और वह अशुभ फल देने वाला मारक है ।

(२) **अशुभयोग** :—बुध तृतीय और षष्ठ स्थान का अधिपति होने से, श्लोक ६ के अनुसार अशुभ माना गया है और वह अशुभफल देने वाला–मारक है ।

(३) **अशुभयोग** :—शुक्र द्वितीय और सप्तम (मारक-स्थानों का) स्थानों का अधिपति होकर सप्तम केन्द्र का भी अधिपति होता है और श्लोक ७–१० के अनुसार अशुभ है और मृत्युकारक अशुभफल देने वाला है (विशेष करके यदि अन्य पापी-ग्रहों से सम्बन्ध करता हो तो निश्चय ही श्लोक १० के अनुसार मृत्युकारक होता है ।)

(४) **अशुभयोग** :—गुरु द्वादश स्थान का अधिपति होकर नवम स्थान (त्रिकोण स्थान) का भी अधिपति है । वह यदि दशम और एकादश स्थान के स्वामी शनि से सहस्थानाधिपत्य योग श्लोक ८ के अनुसार करे तो वह पापग्रह माना जावेगा और अशुभफल देने वाला होगा ।

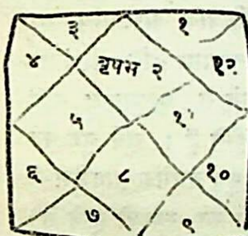
निष्फलयोग :—(१) गुरु + शनि; (२) गुरु + शुक्र ।

(१) शनि गुरु का योग श्लोक २२ के अनुसार निष्फल होता है। यह भी अशुभ है (श्लोक ७ और १० के अनुसार)। गुरु अष्टम और एकादश स्थानों का स्वामी होने से मारक (अशुभ) है। चन्द्रमा तृतीय स्थान का स्वामी होने से श्लोक ७ के अनुसार अशुभ है। इसलिये गुरु, शुक्र और चन्द्रमा अशुभ हुए। सूर्य चतुर्थ स्थान का स्वामी होता है। सूर्य इस पापग्रह को केन्द्र शुभ है इसलिए श्लोक ७ के अनुसार वह शुभ हुआ।

गुरु आदि करके अशुभग्रह मारक-लक्षण युक्त होते हैं। वृषभ लग्न में जन्म हो तो ज्ञातियों ने इस प्रकार फल जानना चाहिये।

गुरु, शुक्र और चन्द्रमा ये वृषभलग्न के लिये अशुभ हैं इसलिये उनको मारक-लक्षण प्राप्त होता हो तो अर्थात् मारक स्थानों से उनका जिस प्रकार का और जब सम्बन्ध आवेगा इस प्रमाण से वे मारक बनते हैं।

वृषभ लग्न (दिवाकरौ)



जीवशुक्रादयः पापाः शुभौ शनिशशीसुतौ।
राजयोगकरः साक्षादेक एव रवेः सुतः ॥४॥
जीवादयो ग्रहाः पापाः सन्ति मारकलक्षणाः।
बुधस्तत्र फलान्येवं ज्ञेयानि वृषजन्मनः ॥५॥

कुछ टीकाकारों ने "शनिदिवाकरौ" ऐसा पाठ लिया हुआ है। और अन्य टीकाकारों ने "शनिशशीसुतौ" ऐसा पाठ लिया हुआ है।

स्पष्टीकरण :—

वृषभ लग्न के लिए गुरु और चन्द्रमा अशुभफल देते हैं। शनि और रवि (चन्द्र) ये शुभफल देते हैं। शनि अकेला ही राजयोग कारक है (वृषभ लग्न के लिए शनि भाग्य और दशम स्थानों का त्रिकोणाधिपति है इसलिए दोनों शुभ हुए। नवम और दशम स्थानों के स्वामियों का राजयोग होता है ऐसा पूर्व में श्लोक १६ पर से सिद्ध होता है। इस पर से गुरु शनि का योग मेष लग्न के लिए शुभ फलदायक होना चाहिए था परन्तु वे ग्रह ११।१२ स्थानों के स्वामी होते हैं इसलिए श्लोक २१ के नियमों के अनुसार गुरु शनि का योग यहाँ पर शुभ नहीं होता (परन्तु कुछ ग्रंथों में गुरु शनि योग मेषलग्न के लिए राजयोग माना है)। गुरु शनि योग शुभ नहीं होता ऐसा जो उपरोक्त श्लोक में कहा गया है, इतना ही नहीं तो गुरु शनि योग होने से गुरु प्रत्यक्ष

रूप से अशुभ होता है कारण गुरु के दोनों स्थानों में से नवम शुभ और द्वादश अशुभ और शनि के दोनों स्थानों में से दशम स्थान शुभ और एकादश स्थान अशुभ होते हैं। परन्तु गुरु निसर्गतः शुभग्रह होने के कारण से उसे शनि इस पापग्रह का योग अधिक बाधक होता है और शनि नैसर्गिक पापग्रह (क्रूरग्रह) होने से उसको गुरु इस शुभग्रह का योग अधिक बनाता है और इस प्रकार शनि का अशुभत्व कम हो जाता है इसलिए गुरु शुभ नहीं है। इतना ही नहीं किन्तु श्लोक ८ के अनुसार वह अशुभ हो गया है। शुक्र २।७ स्थानों का स्वामी होता है अर्थात् मारक स्थानों का स्वामी होता है परन्तु वह नैसर्गिक शुभग्रह होने से स्वयं मारक नहीं बनता। उसके साथ दूसरा पापग्रह हो तो शुक्र उसे मारकत्व का काम सौंप देता है।

(इस प्रकार ११।१२ स्थानाधिपतियों को बहुत गौणत्व प्रदान किया गया है यह दिखाई पड़ता है) उसी प्रकार श्लोक ६ में कहे अनुसार मंगल अष्टम स्थान का स्वामी भी होता है। परन्तु अष्टमस्थान का स्वामी लग्नेश भी होने के कारण से वह अशुभ नहीं होता। इसके सिवाय अष्टमस्थ या लग्नस्थ हुआ तो शुभ होता है। श्लोक ६ के अनुसार चन्द्रमा यदि क्षीण हो तो वह पापी होता है और पापीग्रह केन्द्र का स्वामी होने से अशुभफल नहीं देता। श्लोक ६ के अनुसार मंगल और चन्द्रमा ये सम होते हैं। सूर्य गुरु का योग इस लग्न को शुभ होता है कारण सूर्य पंचमेश और गुरु नवमेश-द्वादशेश हैं परन्तु श्लोक १५ के अनुसार गुरु स्वयं दोष युक्त (द्वादश का स्वामी होने से) होने पर भी सूर्य से युक्त होने के कारण गुरु का दोष नष्ट होता है और वह राजयोग होता है।

वृषभ लग्न के लिये शुभाशुभ योग

(१) शुभयोग :—शनि नवम (त्रिकोण) और दशम (केन्द्र) स्थानों का स्वामी होने से श्लोक ७ के अनुसार स्वयं अकेला ही राजयोगकारक है और उसमें यदि उसका योग शुभग्रहों से होता हो तो अतिश्रेष्ठ राजयोग के फल प्राप्त होते हैं। "भावार्थ रत्नाकर" नामक ग्रंथ में वृषभ लग्न को शनि अकेला राजयोग नहीं करता ऐसा कहा हुआ है।

(२) शुभयोग :—बुध द्वितीय स्थान का (मारक स्थान का) स्वामी होकर पंचम (त्रिकोण) स्थान का अधिपति होने से श्लोक ६ के अनुसार शुभ है। यह मध्यम योग है। "शनिशशीसुतौ"

और "शनिदिवाकरौ" पाठान्तर बराबर दिखाई पड़ता है। बुध के बारे में ऊपर कह चुके हैं। रवि चतुर्थ केन्द्र का स्वामी होने से श्लोक ७ के अनुसार शुभ होकर शुभफल करने वाला है। रवि शनि का शत्रु हैं और इनका योग उत्कृष्ट राजयोग नहीं कर सकेगा। इसकी जगह बुध + शनि यह उत्कृष्ट राजयोग बन सकता है।

(१) अशुभयोग :—गुरु अष्टम स्थान का स्वामी तथा एकादश स्थान का स्वामी होने से श्लोक ९ और ६ के अनुसार अशुभ होता है। और मृत्युकारक अशुभफल देने वाला होता है।

(२) अशुभयोग :—शुक्र षष्ठ स्थान का अधिपति होने से श्लोक ७ और १० के अनुसार अशुभ होकर अशुभफल देने वाला (मृत्युकारक) होता है।

(३) अशुभयोग :—चन्द्रमा तृतीय स्थान का स्वामी होने से श्लोक ६ के अनुसार अशुभ (मृत्युकारक) होकर अशुभफल देने वाला होता है।

(४) अशुभयोग :—मंगल सप्तम स्थान (केन्द्र स्थान) का स्वामी है और श्लोक ७ के अनुसार शुभों में उसकी गणना की गयी है, परन्तु वह मारक स्थान का स्वामी और द्वादश स्थान का स्वामी होने से अशुभ माना गया है और वह अशुभफलदायक होता है।

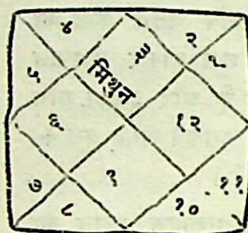
निष्फल योग :—(१) शुक्र + बुध; (२) मंगल + बुध।

सफल योग :—(१) शुक्र + शनि; (२) सूर्य + बुध; (३) सूर्य + शनि; (४) मंगल + शनि (निकृष्ट और सदोष) कारण मंगल द्वादश स्थान का स्वामी होने से दूषित है और सप्तम स्थान का स्वामी होने से कष्टदायक है।

(५) शनि स्वयं अकेला राजयोगकारक है और श्रेष्ठफल दायक योग करता है।

(६) शनि + बुध यह श्रेष्ठ योग है। शनि नवम और बुध पंचम स्थान का स्वामी है। ये दोनों त्रिकोण के स्वामी है और शनि दशम बलवान केन्द्र का स्वामी भी होने से इनका योग श्लोक २० के अनुसार श्रेष्ठ राजयोग होता है।

मिथुन लग्न



१ला पाठ

भौमजीवारुणाः पापा एक एव कविः शुभः ।
शनैश्चरेण जीवस्य योगमेषभवो यथा ॥६॥
नायं शशी निहंता स्यादुमिषत्पाप निष्फलम् ।
ज्ञातव्यानि दिनेशस्य फलान्येतानि सूरिभिः ॥७॥

२रा पाठ

कुजभान्विन्दवः पापा एक एव कविः शुभः ।
राजयोगकरौ शुक्रसोमपुत्रौ शुभान्वितौ ॥८॥
शनिजीवसमायोगात् फलं मेषभुवो यथा ।
शनिः साक्षान्न हन्ता स्यान्–मारकत्वेन लक्षितः ॥९॥
भौमादयो निहन्तारो भवेयुः पापिनो ग्रहाः ।
शुभाशुभफलान्येवं ज्ञेयानि युगजन्मनः ॥१०॥

स्पष्टीकरणः—

मिथुन लग्न के लिए मंगल, गुरु और रवि ये अशुभ हैं कारण मंगल षष्ठ स्थान का और एकादश स्थान का स्वामी है। गुरु सप्तम (मारक) स्थान का और दशम स्थान का स्वामी है और वह मारक (सप्तम) स्थान का स्वामी होने से मारकेश है और अशुभफल करने वाला है। रवि तृतीय स्थान का स्वामी होने से अशुभ है। गुरु को पापफल उत्पन्न करने का कारण श्लोक १० में दिया हुआ है। शनि और गुरु इनका योग मारक होता है। कारण शनि अष्टम स्थान का स्वामी होकर गुरु मारकाधीश है। इसलिये इनका योग अनिष्ट फल उत्पन्न करने वाला है। शुक्र शुभफल उत्पन्न करने वाला है। कारण वह पंचम स्थान (त्रिकोण स्थान) का अधिपति है। व्ययेश और द्वितीयेश ये साहचर्यानुसार फल देने वाले होते हैं। इसलिये चन्द्रमा पापग्रहों से संयुक्त नहीं हो तो वह मारक नहीं बनता कारण चन्द्र और सूर्य इनको मारक का दोष नहीं लगता। बुध और शुक्र का संयोग होवे तो वह राजयोग समझना। शुक्र लग्न स्वामी बुध का मित्र है इसलिए शुक्र सर्वस्वी शुभ फल देता है। मिथुन लग्न हो तो अकेला शुक्र किसी भी शुभस्थान में होवे तो अति श्रेष्ठ प्रकार के फल देता है। बुध लग्न का और चतुर्थ केन्द्र का स्वामी है और उसका पंचमेश शुक्र के (त्रिकोणेश के) साथ योग श्रेष्ठ फल करने वाला होता है। इस कुंडली में मंगल और शनि मारक होते हैं।

(मतान्तर से) मंगल, रवि और चन्द्र ये अशुभफल देते हैं। अकेला शुक्र मात्र शुभफल देता है। शुक्र, बुध इनका शुभयोग हो तो राजयोग होता है। शनि और गुरु इनका योग मेषलग्न के समान ही फल करता हैं। मारक लक्षणों से युक्त होने पर भी शनि प्रत्यक्ष मारक नहीं बनता। मंगल इत्यादि जो अशुभग्रह कहे हैं वे मारक होते हैं। इस प्रकार शुभाशुभ फल जानना।

स्पष्टीकरण :—

दूसरे पाठ में गुरु की जगह चन्द्रमा लिया गया है। चन्द्रमा धनेश है इसलिये वह मारक स्थान का स्वामी होने से अशुभ फल देनेवाला होता है। इसलिये चन्द्रमा की गणना अशुभ ग्रहों में की गई है। इसके सिवाय चन्द्रमा लग्नेश बुध का शत्रु है। पहिले पाठ के अनुसार शुक्र अकेला राजयोग करता है और उसकी लग्नेश बुध के साथ मित्रता है इसलिए बुध, शुक्र का योग राजयोग करता है ऐसा कहा हुआ है। कुछ ग्रंथकारों का मत है कि गुरु दशम और सप्तम इन दो केन्द्रों का स्वामी होने से शुभ है। शुभग्रह केन्द्र स्थान में अशुभ होता है। ऐसा जो भी एक ठोस नियम है तो भी केन्द्र का स्वामी होने के कारण उसने कुछ तो भी शुभ देना ही चाहिए यह उचित है। इस कारण से गुरु को दूसरे पाठ में से निकाल दिया है।

कुछ प्रतियों में इस प्रकार का श्लोक दिया हुआ है।

"रविचन्द्रकुजाः पापा एक एव शनिः शुभः।
चन्द्रात्मजेन संयुक्तो विशेषफलदायकाः ॥"

मिथुन लग्न के लिए रवि, मंगल और चन्द्रमा पापफल देनेवाले हैं। शनि शुभफल देता है। यदि इस शनि से बुध का संयोग होता हो तो विशेष फलदायक होगा अथवा राजयोग करेगा।

इस श्लोक में शनि को शुभ फल देने वाला है ऐसा कहा हुआ है परन्तु शनि अष्टमेश और भाग्येश होता है यांने भाग्य स्थान का अर्थात् बलवान त्रिकोण स्थान का अधिपति मानकर अष्टम स्थान का अधिपति जो भी हो तो भी अष्टम स्थान की त्रिषडाय स्थानों में गणना नहीं की गयी होने से इसलिए इसे योगकारी माना गया होना चाहिए।

मिथुन लग्न के लिए शुभाशुभ योग

(१) शुभयोग :—चन्द्रमा द्वितीय स्थान का अधिपति होकर उसे श्लोक ११ के अनुसार मारकत्व का दोष नहीं होने से वह अशुभफल नहीं देता लेकिन शुभफल देता है (मध्यम-फल)

(२) शुभयोग :—शुक्र द्वादश स्थान का अधिपति होकर बुध से स्थान साहचर्य के कारण और अन्य ग्रहों के साहचर्य के अलावा वह पंचम (त्रिकोण) स्थान का स्वामी होने से श्लोक ६ के अनुसार शुभ माना गया होकर शुभफलदायक होता है।

(३) शुभयोग :—बुध चतुर्थ स्थान (केन्द्र स्थान) का अधिपति होकर उसे श्लोक ११ के अनुसार अल्पदोष लगता है और शुक्र का स्थान साहचर्य प्राप्त होने पर राजयोग कारक होता है और इतने पर भी वह यदि इन स्थानों में हो तो निश्चयपूर्वक राजयोग करके शुभफल देनेवाला होता है।

(१) अशुभयोग :—मंगल पापग्रह होकर श्लोक ६ के अनुसार षष्ठ और एकादश स्थानों का स्वामी होने से विशेष अशुभ है और विशेष अशुभफलदायक होता है।

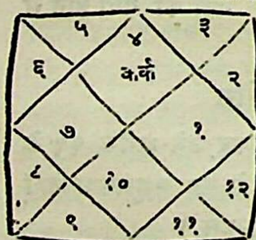
(२) अशुभयोग :—गुरु सप्तम स्थान का अधिपति होने से मारक होकर सप्तम और दशम स्थानों का (केन्द्रों का) स्वामी होता है और श्लोक ७ के अनुसार और केन्द्राधिपत्य दोष श्लोक १० के अनुसार ये दोष बलवत्तर हैं और शनि के सहस्थानाधिपत्य के दोष के कारण से भी वह अशुभ माना गया है। यह मारक होकर अशुभ फल देता है।

(३) अशुभयोग :—सूर्य पापग्रह होकर तृतीय स्थान का अधिपति होने से श्लोक ६ के अनुसार वह अशुभ है और अशुभफल देने वाला होता है।

निष्फल योग—(१) गुरु + शुक्र; (दोनों ही दूषित होते हैं); (२) गुरु + शनि; (३) बुध + शनि (शनि अष्टम स्थान का स्वामी होने से (३) तीसरा योग श्लोक २२ के अनुसार निष्फल होता है।

सफल योग:—बुध + शुक्र

कर्क लग्न



१ ला पाठ

भार्गवेन्दुसुतौ पापौ भूसुतांगिरसौ शुभौ।
एक एव ग्रहः साक्षाद्भूसुतो योगकारकः ॥११॥
निहन्ता रविज्योऽन्येतु मानिनो मारकव्हयाः ।
(पापिनो)
कुलीरसंभवस्यैवं फलान्युक्तानि सूरिभिः ॥१२॥

२ रा पाठ

शुक्रमंदबुधाः पापाः विदुर्धिषणभास्करौ ।
राजयोगकरः साक्षात् एक एव धरासुतः ॥१३॥
भवेतां राजयोगस्य कारकौ गुरुभूमिजौ ।
रविः साक्षान्न हन्ता स्यान्-मारकत्वेन लक्षितः ॥१४॥
शुक्रादयो निहन्तारो भवेयुः पापिनो ग्रहाः ।
कुलीरसंभवस्यैवं फलान्यूह्यानि सूरिभिः ॥१५॥

३ रा पाठ

शुक्रमंदबुधाः पापाः शुभौ धिपणभूसुतौ ॥१६॥

पहिला पाठः—शुक्र और बुध ये अशुभ है कारण शुक्र केन्द्र और एकादश का स्वामी होता है और बुध तृतीय और द्वादश स्थान का स्वामी होता है; उसी प्रकार शनि मारक है कारण वह मारकेश और अष्टमाधिप है । मंगल और गुरु शुभफल उत्पन्न करने वाले होते हैं । पाप ग्रह यदि केन्द्र के अधिपति हो तो वे अशुभ फल नहीं देते ऐसा पूर्व में कहा गया है इसलिये मंगल शुभ है क्योंकि त्रिकोण और दशम स्थान का अधिपति होने से राजयोग उत्पन्न करता है इस प्रकार कर्क लग्न का शुभाशुभ फल समझना चाहिये ।

दूसरा पाठः—कर्क लग्न हो तो शुक्र, शनि, बुध, गुरु और रवि अशुभफल देते हैं अकेला मंगल मात्र राजयोगकारक होता है । गुरु मंगल का योग हो तो वह राजयोग होता है । रवि मारक लक्षणों से युक्त हो फिर भी वह स्वयं मारक नहीं बनता है । शुक्र आदि करके अशुभग्रह मारक हो सकते हैं । कर्क लग्न में जन्म हो तो ज्ञातों ने इस प्रकार शुभाशुभ फल जानना चाहिये ।

स्पष्टीकरणः—कर्क लग्न हो तो मंगल दशमाधिपति और पंचमाधिपति होता है अर्थात् वह प्रबल राजयोग का कारक होता है । गुरु षष्ठ स्थान का भाग्य स्थान स्थान का स्वामी होता है षष्ठ स्थान अशुभ और भाग्य स्थान शुभ ऐसी स्थिति में गुरु भाग्याधीश होने के कारण से उसका मंगल योग होवे तो वह राजयोग कारक होता है ।

इन तीनों ही पाठों में शुक्र और बुध को अशुभफल देने वाले जो कहा है है उसमें दो मत नहीं हो सकते । दूसरे और तीसरे पाठ में अशुभग्रहों में शनि को भी अशुभग्रह में डाला है । पहिले और तीसरे पाठों में शुभफल देने वाले ग्रहों में मंगल और गुरु की योजना की है और दूसरे पाठ में गुरु और रवि लिये हैं । इनमें से मंगल को उड़ा दिया है और उसकी जगह रवि मारक स्थान

का अधिपति होते हुए भी उसको शुभफल देने वालों में लिया है क्योंकि वह एक राश्याधिपति है इसलिए शायद उसका समावेश किया गया है। पहिले पाठ में शनि सप्तमेश और अष्टमेश होने के कारण मारक है ऐसा कहा हुआ हैं और दूसरे तीसरे पाठों में रवि यदि मारक लक्षणों से यूक्त हो तो भी मारक नहीं होता ऐसा कहा गया है राजयोगकारक ग्रहो में अकेला मंगल यद्यपि राजयोग करने में समर्थ फिर भी इसको गुरु के साथ जोड़ा गया है। गुरु जो भी षष्ठेष है तो भी वह नवम इस बलवान त्रिकोण का अधिपति होता है इसलिए इसे जोडा गया है। परन्तु इस योग में किंचित् न्यूनता आती है क्योंकि त्रिकोण का स्वामी होते हुए भी सदोष हैं।

दूसरे पाठ में रवि की गणना शुभग्रहों में की गयी है और साथ ही अगले चरण में "रविः साक्षान्निहन्ता स्यान्मारकत्वेन लक्षितः" ऐसा कहा गया है। कारण सूर्य और चन्द्रमा इनको मारक स्थानों का दोष नहीं लगता, परन्तु वे अत्यन्त अशुभफल देते हैं इसमें संशय नही है।

कर्क लग्न के लिए शुभाशुभ योगः

(१) शुभयोग :--मंगल पंचम (त्रिकोण) स्थान का अधिपति होने से श्लोक ६ के अनुसार और दशम (केन्द्र) स्थान का अधिपति होने से श्लोक ७ अनुसार शुभ माना गया है। श्लोक १२ के अनुसार त्रिकोण–केन्द्रपतित्व योग के कारण विशेष शुभ और अशुभ देने वाला राजयोगकारक होता है।

(२) शुभयोग :—गुरु यह शुभ ग्रह होकर नवम-त्रिकोण स्थान का अधिपति होने से शुभफल देने वाला होता है।

(३) अशुभयोग :--शुक्र चतुर्थ केन्द्र का स्वामी होने से श्लोक ७ के अनुसार तथा श्लोक १० के अनुसार दूषित होता है और वह एकादश स्थान का स्वामी होने से श्लोक ६ के अनुसार अशुभ होता है और अशुभफल देने वाला होता है।

(२) अशुभयोग :—बुध तृतीय स्थान का स्वामी होकर श्लोक ६ के अनुसार अशुभ होता है और वह द्वादश स्थान का स्वामी होने से भी अशुभ है और अशुभफल देने वाला है।

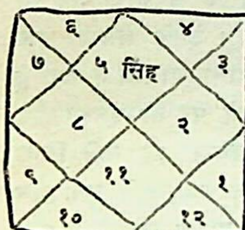
(३) अशुभयोग :--शनि सप्तम स्थान और अष्टम स्थान का णधिपति होकर स्वयं पापग्रह है और पापी होने से अशुभफल देने वाला होता है।

(४) अशुभयोग :—सूर्य पापग्रह होकर स्वगृह में द्वितीय स्थान का स्वामी होने से अशुभफल देने वाला होता है परन्तु उसे मारक स्थान का दोष नहीं लगता। वह किंचित् शुभफल देने वाला भी होता है।
(मध्यम)

निष्फल योग :—(१) गुरु + शुक्र; (२) गुरु + शनि; कारण दोनों ग्रह दूषित है।

सफल योग :—(१) चंद्र + मंगल; (२) चंद्र + गुरु; (३) मंगल + शुक्र; (४) मंगल + गुरु (५) मंगल + शनि; (निष्कृष्ट योग)

सिंह लग्न



१ ला पाठ

रोहिणेय सितौ पापौ कुजजीवौ शुभावहौ।
प्रभवेद्योगं मात्रेण न शुभं कुजशुक्रयोः ॥१७॥
(गुरु शुक्रयोः)
घ्नन्ति सौम्यादयः पापा मारकत्वेन लक्षितः।
एवं फलानि वेद्यानि सिंहजस्य मनीषिभिः ॥१८॥

२ रा पाठ

मन्दसौम्यसिता पापाः कुज एव शुभावहः।
प्रभवेद्योगमात्रेण न शुभं गुरुशुक्रयोः ॥१९॥
गुरु युक्तो यदा भौमो विशेषफलदायकः।
(बुधः) मंदः साक्षान्न हन्तास्थान् मारकत्वेन लक्षितः ॥२०॥
घ्नन्ति सौम्यादयः पापा मारकत्वेन लक्षितः।
एवं फलानि वेद्यानि सिंहजस्य मनीषिभिः ॥२१॥

१ ला पाठ

बुध और शुक्र ये पापफल उत्पन्न करने वाले हैं, कारण बुध एकादश स्थान का और द्वितीय स्थान का स्वामी होता है। मंगल केन्द्र और त्रिकोण का अधिपति होने से शुभफलदायक है। शुक्र मंगल का योग शुभ नहीं होता। गुरु मंगल का योग विशेष शुभ फलदायक है। बुधादि उपरोक्त पापफलदायक ग्रह अपनी दशान्तर्दशाओं में मनुष्य को मारते (मृत्यु देते) हैं।

२ रा पाठ

सिंह लग्न हो तो शनि, बुध, शुक्र अशुभफल देते हैं। अकेला मंगल मात्र शुभफल देता है। गुरु शुक्र का केवल योग शुभफलदायक नहीं होता। गुरु

मंगल योग यदि हो तो विशेषफलदायक होता है। बुध मारक लक्षणों से युक्त हो तो भी स्वयं मारक नहीं होता। कुछ स्थानों में बुध की जगह मंदः याने शनि ऐसा पाठ है। मारक लक्षणों से युक्त ऐसे बुधादि ग्रह मारक होते हैं। सिंह लग्न में जन्म हो तो ज्ञाताओं ने इस प्रकार शुभाशुभफल जानना चाहिये।

स्पष्टीकरण :—

वास्तविक कर्क और सिंह लग्न के शुभाशुभ ग्रह एक ही है। परन्तु पहिले पाठ में शुक्र यदि मंगल से युति करे तो शुभफल नहीं देते ऐसा कहा है यह बराबर है, कारण चतुर्थेश और भाग्येश मंगल को त्रिषडायपति (और दशमेश) शुक्र मिलता है। वैसे ही शुक्र दशम स्थान (केन्द्र का) का अधिपति है "केन्द्राधिपत्य दोषस्तु बलवान गुरु शुक्रयो" इस नियम के अनुसार शुक्र को दुचयम (डबल) अशुभत्व का अधिकार प्राप्त हुआ। इसके अलावा शुक्र मंगल का शत्रु है। "भावार्थरत्नाकरं" ग्रंथ में श्री रामानुजाचार्य ने कहा है कि सिंह लग्न को शुक्र और मंगल ये दशमेश-नवमेश होने पर भी इनका योग राजयोग के फल नहीं देते। पहिले पाठ में शनि का विचार ही नहीं किया गया है और दूसरे पाठ में कुछ प्रतियों में बुध मारक लक्षणों से युक्त होने पर भी स्वयं मारक नहीं होता तो कुछ प्रतियों में शनि मारक लक्षणों से युक्त होने पर भी स्वयं मारक नहीं होता। वास्तविक बुध एकादश और द्वितीय स्थान का अधिपति है और शनि षष्ठ और सप्तम स्थानों का स्वामी है। द्वितीय और सप्तम ये मारक स्थान हैं। उसी प्रकार षष्ट और एकादश ये त्रिषडाय स्थान हैं। रवि और चन्द्रमा की विवेचन में से पूर्णतः स्थान नहीं हैं। मंगल भाग्याधिपति और चतुर्थाधिपति होने से श्लोक ११ के अनुसार अकेला राजयोग करने में समर्थ हैं। गुरु शुक्र का योग शुभफलदायक नहीं होता कारण शुक्र तृतीयाधिपति और दशमाधिपति और गुरु पंचमाधिपति और अष्टमाधिपति होने के कारण से और कोई भी ग्रह अष्टमेश से युक्त हो तो वह दोषी होता है, ऐसा ग्रंथ में कहा गया होने से यह योग दोषकारक माना गया है। सूर्य लग्नेश है और वह लग्न (केन्द्र-त्रिकोण) का स्वामी होकर शुभफल देने वाला है। चन्द्रमा व्ययेश और अशुभफल देने वाला होता है इसलिये उसका विवेचन नहीं किया गया है। परन्तु श्लोक ८ के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा क्रमशः कर्क और सिंह लग्नों के लिए द्वितीयेश द्वादशेश होते हैं परन्तु दोनों ग्रह को एक ही राशि से उन्हें सम माना गया है और वे जिन स्थानों में स्थित हों उन स्थानों के अनुरोध से फल करते हैं अर्थात् उन स्थानों के अनुसार शुभाशुभफल देते हैं।

सिंह लग्न के लिए शुभाशुभयोग :—

(१) **शुभयोग** :—मंगल निसर्गतः पापग्रह होने पर भी नवम (त्रिकोण) का अधिपति होने से श्लोक ६ के अनुसार शुभ माना गया है। वह चतुर्थ स्थान का (केन्द्र स्थान का) स्वामी भी है। इसलिए श्लोक ७ के अनुसार शुभ होने से शुभफल देने वाला है।

(२) **शुभयोग** :—मंगल तथा गुरु चतुर्थ और पंचम स्थानों के अधिपति हैं। गुरु अष्टम स्थान का स्वामी भी है। यहाँ गुरु पंचम और अष्टम स्थान का अधिपति है और उसको नवम स्थान के अधिपति से साहचर्य योग के कारण शुभ माना गया है और शुभफल देने वाला हैं।

(३) **शुभयोग** -—सूर्य लग्न का अधिपति होने से श्लोक ६ के अनुसार शुभ होकर शुभफल देने वाला है।

(१) **अशुभयोग** :—बुध द्वितीय (मारक) स्थान का स्वामी होकर एकादश स्थान का स्वामी भी है। श्लोक ६ के अनुसार वह अशुभ होने से अशुभफल देने वाला है।

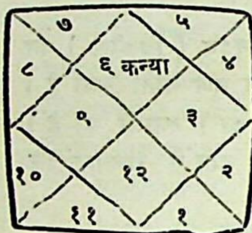
(२) **अशुभयोग** :—शुक्र तृतीय स्थान का स्वामी होने से श्लोक ६ के अनुसार अशुभ गिना गया है और दशम केन्द्र का स्वामी होने से श्लोक ७ और १० के अनुसार दूषित है। इसलिए वह अशुभफल देने वाला है।

(३) **अशुभयोग** :—(पाठान्तर के अनुसार) शनि षष्ठ स्थान का स्वामी होने से अशुभ होकर अशुभफल देने वाला है।

निष्फलयोग :—(१) मंगल + शनि; (२) गुरु + शुक्र; (३) गुरु + शनि (दोनों ही दूषित होते हैं।)

सफलयोग :—(१) सूर्य + मंगल; (२) सूर्य + गुरु (सदोष); (३) मंगल + गुरु (सदोष); (४) मंगल + शुक्र (सदोष); (५) मंगल अकेला शुभफलदायक है कारण वह नवम और चतुर्थ स्थान (त्रिकोण-केन्द्र) का स्वामी है।

कन्या लग्न



१ ला पाठ

कुजजीवेन्दवः पापा एक एव भृगुः शुभः ।
भार्गवेन्दुसुतावेव (देव) भवेतां योगकारकौ ॥२२॥
निहन्ता कविरन्ये तु (ऽपि) मारकास्तु कुजादयः ।
प्रतीक्षेत फलान्युक्तान्येवं कन्याभवे बुधैः ॥२३॥

२ रा पाठ

पापासितेन्दुगुर्वारभाग्येशो भार्गवः शुभः ।
राजयोगकरः सौम्यो भृगुपुत्रसमन्वितः ॥२४॥
न हन्ति रविरन्ये तु मारकाख्या कुजादयः ।
घ्नन्ति पापाः शुभान्यूह्यान्येवं कन्याभवो बुध ॥२५॥

३ रा पाठ

कुजजीवेन्दवः पापा एको भृगुसुतः शुभः ।
राजयोगकरः सौम्यो भृगुपुत्रसमन्वितः ॥२६॥
न हन्ति रविरन्ये तु मारकाख्याः कुजादयः ।
घ्नन्ति पापाः शुभान्यूह्यान्येवं कन्याभुवौ बुधैः ॥२७॥

कुछ प्रतियों में "भार्गवेन्दुसुतौद्वौच"; "सुतावेव" की जगह "सुतादेव" "निहन्ता" की जगह 'न हन्ता' ऐसा पाठान्तर है ।

१ ला पाठ

मंगल तृतीयेश और अष्टमेश होता है इसलिए, गुरु चतुर्थेश और बलवान मारक स्थान का (सप्तम स्थान का) स्वामी होता है इसलिए, चन्द्रमा एकादश स्थान का स्वामी होता है इसलिए, ये ग्रह अशुभफल देते हैं। अकेला शुक्र बलवान नवम स्थान का स्वामी होता है इसलिए ग्रंथकार ने इसे राजयोग का स्थान दिया। शुक्र सह बुध होवे तो योगकारक होते हैं। शुक्र यदि प्रथम मारक स्थान का (द्वितीय स्थान का) अधिपति हो फिर भी वह स्वयं मारक नहीं होता। मंगल आदि करके जो पापग्रह कहे हुए हैं वे मारक होते हैं। इस प्रकार कन्या लग्न के शुभाशुभ ग्रहों का विवेचन हुआ।

२ रा पाठ

शुक्र धनेश (प्रथम मारक स्थान) और भाग्येश होता है इसलिए, चन्द्रमा एकादशेश होता है इसलिए, गुरु बलवान मारक स्थान का (सप्तम स्थान का) अधिपति और चतुर्थ केन्द्र इन दो केन्द्रों का स्वामी होता है इसलिए, और

मंगल तृतीय और अष्टम स्थानों का अधिपति होता है इसलिए, ये ग्रह अशुभ-फल देते हैं। रवि व्ययेश होता है इसलिए स्वयं मारक नहीं बनता। राजयोग-कारक शुक्र होता है। बुध लग्नेश और दशमेश होने से बुध + शुक्र की युति राजयोगकारक होती है। मंगल आदि अशुभफल मारक होते हैं। इस प्रकार कन्या लग्न के शुभाशुभ फल कहे।

३ रा पाठ

कन्या लग्न हो तो मंगल, गुरु और चन्द्रमा अशुभफल देते हैं। अकेला शुक्र शुभफल देता है। बुध-शुक्र योग यदि हो तो वह राजयोग कारक है। रवि स्वयं मारक नहीं बनता। मंगल आदि करके अशुभग्रह मारक बनते हैं। कन्या लग्न में जन्म हो तो ज्ञातियों ने इस प्रकार शुभाशुभ फल जानना।

स्पष्टीकरणः—

न हन्ता व निहन्ता इन शब्दों के कारण कुछ विद्वानों के मत में शुक्र द्वितीयेश होने से मारक बनता है और कुछ में "शुक्र मारक होने पर भी (नवमेश होने के कारण से) मारक नहीं बनता। शनि पंचम स्थान का स्वामी है परन्तु षष्ठ स्थान का भी स्वामी होने से दूषित है।

मंगल नैसर्गिक पापग्रह है और वह इस लग्न के लिए तृतीय और अष्टम स्थानों का स्वामी होने से पापग्रह माना गया है। गुरु और चन्द्रमा शुभ ग्रह हैं परन्तु उन्हें यहाँ पर अशुभफल देनेवाले कहा है कारण चन्द्रमा एकादश स्थान का स्वामी होने से अशुभ है और गुरु चतुर्थ तथा सप्तम केन्द्रों का स्वामी होने से मारकेश भी है और इसलिए वह अशुभफल देनेवाला है। गुरु मात्र सप्तम केन्द्र का स्वामी होने से इस लग्न के लिए निश्चय से मारक बनता है इसमें सन्देह नहीं है। ग्रंथकार ने एक जगह शुभफलदायक कहा है और तुरन्त ही बाद में निहन्ता कविः ऐसा कहा है, इस पर से ऐसा मालूम पड़ता है कि शुक्र नवम (भाग्य भवन) का अधिपति होने से शुभफल देनेवाला माना है। परन्तु बाद में विचार के अन्त में ग्रंथकार ने ऐसा भी कहा है कि शुक्र द्वितीय (मारक) स्थान का स्वामी होने से मारक बनता है। इस पर से तात्पर्य इस प्रकार निकलता है कि शुक्र अपनी दशान्तर्दशा में अशुभफल नहीं देगा परन्तु यदि वह पापग्रह युक्त हो तो अशुभफल देने में चूकेगा नहीं। अन्यथा वह शुभफल देनेवाला है।

यहाँ लग्न की कन्या राशि का अधिपति बुध और द्वितीय स्थान की राशि तुला का अधिपति शुक्र इन दोनों का स्थानाधिपति के नाते और उसी प्रकार नवम स्थान में की राशि वृषभ का स्वामी शुक्र और दशम स्थान की

राशि मिथुन का स्वामी बुध इन दोनों ग्रहों का साहचर्य.योग उत्तम प्रकार का योग मानकर वे सम्बन्ध करें तो राजयोग माना है और वे एक दूसरे की दशान्तर्दशा में उत्तमफल प्रदान करेंगे इसमें सन्देह नहीं है।

रवि और शनि के सम्वन्ध में यहाँ पर कुछ भी उल्लेख नहीं है कारण वे खास शुभ अथवा अशुभफल देनेवाले नहीं मालूम पड़ते हैं, क्योंकि शनि पंचम स्थान का स्वामी होकर षष्ठ स्थान का स्वामी भी है अर्थात् (सदोष है) और रवि द्वादश स्थान का स्वामी होने से दूसरे ग्रहों के साहचर्य से फल देनेवाला है इसलिए इन दोनों ग्रहों का कुछ भी उल्लेख नहीं किया गया है।

कन्या लग्न को राजयोग करने के लिए पूर्ण निर्दोष ऐसा कोई भी ग्रह नहीं है—उदाहरणार्थ—रवि व्ययेश, चन्द्रमा एकादशेश, मंगल तृतीयेश अष्टमेश, बुध लग्नेश और दशमेश (दो केन्द्रों का स्वामी होने से), गुरु चतुर्थेश और सप्तमेश (मारकेश) इन दोनों केन्द्रों का स्वामी होने से, शुक्र धनेश (प्रथम मारक स्थान का स्वामी) होने से और शनि षष्ठेश होने से दोषयुक्त हैं इनमें से मंगल, शनि और चन्द्रमा त्रिषडायपति हैं। शुक्र और गुरु मारक स्थान के अधिपति हैं इसलिए ग्रंथकार ने अनिच्छुकता से (नाई लाज वश होकर) बुध को लेकर ऊपर कहे अनुसार शुक्र का उससे योग-राजयोग कहा।

दूसरे पाठ के २५ वें श्लोक में गलती मालूम पड़ती है कारण "र" को 'क' की जगह गलती से लिखा गया दिखाई देता है।

कन्या के लिए शुभाशुभ योगः—

(१) शुभयोगः—शुक्र नवम स्थान का स्वामी होने से श्लोक ६ के अनुसार शुभ होकर शुभफल देनेवाला होता है (वह द्वितीय-मारक स्थान का स्वामी होने से अशुभफल देनेवाला होता है) यह मध्य-योग है।

(२) शुभयोगः—लग्नाधिपति बुध और द्वितीय स्थान का स्वामी शुक्र और नवम स्थानाधिप शुक्र और दशमस्थानाधिप बुध इन दोनों के सह स्थान और साहचर्य योगों के कारण (सामान्य केन्द्राधिपत्य दोष होते हुए भी) राजयोगकारक होने से शुभफलदायक हैं।

(१) अशुभयोगः—मंगल स्वयं पापग्रह होकर श्लोक ६ के अनुसार तृतीय और अष्टम स्थानों का स्वामी होने से अशुभ है और अशुभफल देनेवाला होता है।

(२) अशुभयोगः–गुरु चतुर्थ और सप्तम केन्द्रों का स्वामी होने से श्लोक ७ और १० के अनुसार बलवान् केन्द्राधिपतित्व दोष के कारण और सप्तम-मारक स्थान का भी स्वामी होने से अशुभ होकर अशुभफल देनेवाला होता है।

(३) अशुभयोगः–चन्द्रमा एकादश स्थान का अधिपति होकर श्लोक ६ के अनुसार अशुभ होकर अशुभफल देनेवाला होता है।

(४) अशुभयोगः–शनि पंचम (त्रिकोण) स्थान का स्वामी होकर स्वयं पापग्रह है और षष्ठ स्थान का स्वामी होने से श्लोक ६ के अनुसार अशुभफल देनेवाला होता है।

निष्फल योगः—(१) गुरु + शुक्र; (२) गुरु + शनि (दोनों ही ग्रह दूषित होते हैं।

सफल योग :—(२) बुध + शुक्र; (२) बुध + शनि (सदोष), शनि दूषित होने से सदोष राजयोग है परन्तु श्लोक १५ के अनुसार एक ही ग्रह दूषित हो तो राजयोग में बाधा नहीं पहुँचती।

तुला लग्न

१ ला पाठ

जीवार्कमहिजाः पापाः,
शनैश्चरबुधौ शुभौ।
भवेतां राजयोगस्य कारकौ,
चन्द्रतत्सुतौ ॥२८॥
कुजो निहन्ति जीवाद्याः,
परे मारकलक्षणाः।

तुला ७
८ ६ ९ ५ १० ४ ११ १ ३ १२ २

निहन्तारः फलान्येवं काव्यो न तु तुलाभुवः ॥२९॥

२ रा पाठ

जीवार्कभूसुताः पापाः शनैश्चरबुधौ शुभौ।
भवेतां राजयोगस्य कारकौ चन्द्र-चन्द्रजौ ॥३०॥
कुजो निहन्ता जीवाद्याः परे मारकलक्षणाः।
निहन्तारः फलान्येवं ज्ञातव्यानि तुलाभवे ॥३१॥

३ रा पाठ

राजयोगकरः साक्षादेक एवांशुमत्सुतः ॥३२॥

४ था पाठ

जीवार्कमहिजाः पापाः शनैश्चरबुधौ शुभौ ।
राजयोगकरः साक्षाद् एक एवांशुमत्सुतः ॥३३॥
भवेतां राजयोगस्य कारकाविन्दुतत्सुतौ ।
कुजः साक्षान्न हन्ता स्यान् मारकत्वेन लक्षितः ॥३४॥
जीवादयो निहन्तारो भवेयुः पापिनो ग्रहाः ।
शुभाशुभफलान्येवं ज्ञातव्यानि तुलाभुवः ॥३५॥

(१) ला पाठः—गुरु, रवि और मंगल पाप उत्पन्न करनेवाले हैं। शनि और वुध शुभफलदायक हैं। कारण गुरु तृतीय और षष्ठ स्थानों का स्वामी है; रवि एकादश स्थान का स्वामी है, और मंगल द्वितीय और सप्तम स्थानों का स्वामी होने से मारकेश है।

शनि त्रिकोण और केन्द्र का अधिपति है और वुध त्रिकोणपति है इसलिए ये दोनों ग्रह शुभफल उत्पन्न करते हैं। चन्द्रमा दशम स्थान का स्वामी है और वुध नवम-भाग्य स्थान का स्वामी है इसलिए इन दोनों का योग राजयोग करनेवाला होता है। मंगल द्वितीय और सप्तम स्थान का स्वामी होने से मारक है। गुरु, रवि और मंगल इनकी दशान्तर्दशाओं में मृत्यु की सम्भावना होती है इस प्रकार तुला लग्न के फल समझना। शुक्र लग्नेश और अष्टमेश होने से शुभ है।

(२) रा पाठः—इस पाठ में शुक्र का उल्लेख नहीं है। शेष सब १ ले पाठ के अनुसार ही शुभाशुभ ग्रह हैं।

(३) रा पाठः—इस पाठ में शनि अकेला राजयोग करता है ऐसा कहा है कारण वह चतुर्थ (केन्द्र) और पंचम (त्रिकोण) का स्वामी है। इस पर से यह स्पष्ट है कि दूसरे (२) पाठ में वुध चन्द्र के योग को अधिक महत्व नहीं दिया गया है।

(४) था पाठः—तुला लग्न हो तो, गुरु, रवि और मंगल अशुभफल देते हैं। शनि और वुध शुभफल देते हैं। अकेला शनि प्रत्यक्ष रूप से राजयोगकारक होता है। मंगल मारक लक्षणों से युक्त हो फिर भी स्वयं मारक नहीं बनता। गुरु आदि करके अशुभ

ग्रह मारक हैं। तुला लग्न में जन्म हो तो ज्ञातियों ने इस प्रकार शुभाशुभ फल समझना।

स्पष्टीकरणः—

तुला लग्न हो तो गुरु, रवि और मंगल अशुभफल देते हैं। शनि अकेला राजयोग करता है। कारण वह केन्द्र और त्रिकोण दोनों का स्वामी है। बुध द्वादशेश होने से अशुभ होता है परन्तु वह त्रिकोणपति होने से उसका शुभग्रह से सम्बन्ध शुभफलदायक माना गया है। पहिले पाठ के अन्तिम चरण में ग्रंथकार ने कहा है कि "काव्यो न तु तुलाभवः" याने मंगल, गुरु तथा सूर्य जिस प्रकार से मारक होकर मनुष्य का नाश करनेवाले होते हैं उस प्रकार शुक्र नहीं है। इस पर से ऐसा मालूम देता है कि ग्रंथकार ने शुक्र के सम्बन्ध में यहाँ कुछ भी नहीं लिखा है। पाठ २,३,४ इनमें तो शुक्र का कुछ भी उल्लेख नहीं है। शुक्र लग्नेश होने के नाते केन्द्राधिपति है और केन्द्राधिपति होने के कारण वह कदाचित् अशुभफल देता है और वह क्वचित् शुभफल देगा क्योंकि वह अष्टम स्थान का स्वामी भी है इसलिए कदाचित ग्रंथकार ने शुक्र का विशेष उल्लेख किया हुआ नहीं है परन्तु श्लोक ९ के अनुसार यदि अष्टमेश लग्नेश भी हो तो अशुभफल नहीं देता ऐसा कहा है।

तुला लग्न के लिए शुभाशुभ योग

(१) **शुभयोगः**–शनि निसर्गतः स्वयं पापग्रह होकर भी चतुर्थ केन्द्र का स्वामी होने से श्लोक ७ के अनुसार वह शुभ माना गया है और साथ ही साथ वह पंचम (त्रिकोण) का स्वामी भी होने से श्लोक ६ के अनुसार शुभ होकर शुभफल देनेवाला होता है।

(२) **शुभयोगः**–बुध नैसर्गिक शुभग्रह है और वह नवम (त्रिकोण) स्थान का स्वामी होने से श्लोक ६ के अनुसार शुभ होकर शुभफल देनेवाला होता है।

(३) **शुभयोगः**–दशम केन्द्र का अधिपति चन्द्रमा श्लोक ११ के अनुसार दूषित नहीं होता और उसका नवमाधिपति बुध से स्थानाधिपत्व साहचर्य योग हुआ तो वह राजयोग होता है और शुभफल-दायक होता है।

(४) **शुभयोगः**–शुक्र प्रथम (निर्वल) केन्द्र का स्वामी होकर अष्टम स्थान का भी स्वामी होता है। श्लोक ९ के अनुसार वह लग्नेश होने के कारण शुभ होता है और शुभफल देनेवाला होता है।

(१) **अशुभयोग** :—गुरु तृतीय और षष्ठ स्थान का स्वामी होने से श्लोक ६ के अनुसार अशुभफल देने वाला होता है ।

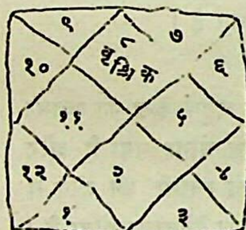
(२) **अशुभयोग** :—सूर्य नैसर्गिक स्वयं पापग्रह है और वह एकादश स्थान का स्वामी होने से अशुभ होता है और अशुभफल करता है ।

(३) **अशुभयोग** —मङ्गल स्वयं पापग्रह है और वह द्वितीय तथा सप्तम स्थानों का स्वामी (मारक स्थानों का स्वामी) होने से अशुभफल देता है ।

निष्फल योग'–(१) मंगल + बुध

सफल योग :–(१) शुक्र + शनि; (२) शनि अकेला; (३) बुध + शनि (श्रेष्ठ) दो त्रिकोणेश का केन्द्रेश के साथ सम्बन्ध होता है । (४) शनि + चन्द्रमा; (५) चन्द्र + बुध; (६) बुध + शुक्र; (७) मङ्गल + शनि (निकृष्ट और सदोष) कारण मङ्गल मारकेश होता है और दो मारक स्थानों का स्वामी है ।

वृश्चिक लग्न



१ ला पाठ

सौम्यभौमासिताः पापाः शुभौ गुरु-निशाकरौ ।
सूर्याचन्द्रमसावेव भवेतां योगकारकौ ॥३६॥
जीवो निहन्ता सौम्याद्या हन्तारो मारकाह्वयः ।
तत्तत्फलानि विज्ञेयान्येवं वृश्चिकजन्मनः ॥३७॥

२ रा पाठ

बुधशुक्रार्कतनयाः पापाः सुरगुरुः शुभः ।
सूर्याचन्द्रमसावेव भवेतां योगकारकौ ॥३८॥
जीवो निहन्ता सौम्याद्या हन्तारो मारकाह्वयाः ।
तत्तत्फलानि विज्ञेयान्येवं वृश्चिकजन्मनः ॥३९॥

३ रा पाठ

सौम्यभौमसिताः पापाः शुभौ रवि-निशाकरौ ।
सूर्याचन्द्रमसावेव भवेतां योगकारकौ ॥४०॥
जीवो निहन्ता सौम्याद्या हन्तारो मारकाह्वयाः ।
तत्तत्फलानि विज्ञेयान्येवं वृश्चिकजन्मनः ॥४१॥

४ था पाठ

बुधशुक्रार्कतनयाः पापाः सुरगुरुः शुभः ।
सूर्याचन्द्रमसावेव भवेतां योगकारकौ ॥४२॥
जीवो न हन्ता सौम्याद्या हन्तारो मारकाह्वयाः ।
तत्तत्फलानि विज्ञेयान्येवं वृश्चिक जन्मनः ॥४३॥

१ ला पाठ :–बुध अष्टमेश और एकादशेश होता है। इसलिए, मङ्गल लग्नेश और षष्ठेश होता है इसलिए, शनि तृतीयेश और चतुर्थेश होता है इसलिए, तीनों ही ग्रह त्रिषडायेश होते हैं इसलिए, अशुभफल देते हैं। गुरु धनेश—मारक स्थान का स्वामी होता है फिर भी वह पंचम (त्रिकोण) स्थान का स्वामी होता है इसलिये अशुभफल देता है। रवि दशमेश और चंद्रमा नवमेश होता है इसलिये इनकी युति होने से राजयोग उत्पन्न करता है। गुरु (और शुक्र) ये मारक स्थानों के अधिपति हैं परन्तु इनका यदि बुधादि पापग्रहों से सम्बन्ध (योग) होवे तो वे मनुष्य के लिए मारक बनते हैं। इस प्रकार वृश्चिक लग्न के लिए शुभाशुभ ग्रह कहे हैं।

२ रा पाठ :–प्रथम पाठ के समान ही अशुभफल बुध और शनि को कहकर उनमें मङ्गल की जगह शुक्र लिया गया है कारण वह व्ययेश और सप्तमेश होता है इसलिए अशुभफल देता हैं। प्रथम पाठ में गुरु चन्द्र इनको शुभ कहा है तो इस पाठ में चन्द्रमा को उड़ा दिया है। शेष सब प्रथम पाठ के अनुसार है।

३ रा पाठ :–प्रथम पाठ के अनुसार अशुभग्रह लिए हैं परन्तु शुभग्रहों में गुरु को उड़ा दिया गया है और रवि को लिया है। तीनों पाठों में रवि चन्द्र का ही राजयोग कहा है। गुरु स्वयं मारक नहीं बनता ऐसा दूसरे और तीसरे पाठ में कहा है।

४ था पाठ :–वृश्चिक लग्न के लिए बुध, शुक्र और शनि अशुभफल देते हैं। गुरु शुभफल देता है। रवि चन्द्र का योग राजकारक योग होता है। मङ्गल स्वयं मारक नहीं होता। बुध आदि करके अशुभ ग्रह मारक होते हैं। वृश्चिक लग्न के लिए ज्ञाताओं ने इस प्रकार शुभाशुभफल समझना।

स्पष्टीकरण :–वृश्चिक लग्न के लिए बुध नैसर्गिक शुभग्रह होने पर भी यहाँ पर अष्टम और एकादश स्थानों का स्वामी होने से पापग्रह के समान माना

गया है। कारण वह शुभफल देने वाला होता है। मंगल और शनि ये स्वाभाविक तौर पर पापग्रह हैं फिर भी यहाँ पर मंगल लग्नेश और षष्ठेश होने से अशुभ है और शनि चतुर्थेश होने से शुभ है। लेकिन तृतीयेश होने के कारण से अशुभ हुआ। इस प्रकार बुध, मङ्गल और शनि ये तीनों त्रिषडायपति हैं। रवि चन्द्र का योग नवमेश (त्रिकोण) और दशमेश (केन्द्र) का होने से राजयोग कहा है और यह श्रेष्ठ योग है। पहिले पाठ में गुरु चन्द्र का योग राजयोगकारक कहा है उसका कारण गुरु धनेश होने से अशुभ परन्तु पंचमेश (त्रिकोणेश) होने से शुभ माना है और उसका चन्द्रमा से (नवमेश) याने दो त्रिकोणपति का योग होता है इसलिए राजयोग कहा है परन्तु यह योग रवि चन्द्र के योग की अपेक्षा कम श्रेणी का राजयोग होता है। यहाँ पर एक जगह तो गुरु को शुभ कहकर तुरन्त ही 'जीवो निहन्ता' ऐसा कहा है याने गुरु मनुष्य का विनाश करता है ऐसा कहा है। इस पर से ऐसा मालूम पड़ता है कि गुरु त्रिकोणेश होने से उसे शुभत्व-प्रदान कर दिया, वह धनेश हैं याने मारकेश है इसलिये उसे विनाश कर्ता माना गया है। यह भी स्वाभाविक ही है। परन्तु विचार करते ऐसा दिखाई पड़ता है कि गुरु और शुक्र ये दोनों मारक स्थानों के अधिपति होकर भी उनका यदि बुधादि ग्रहों से योग होवे तो वे मारकेश के समान अशुभफल देते हैं ऐसा भी कहा है। ऐसा योग नहीं होता हो तो इसका अर्थ तो ऐसा हुआ कि गुरु और शुक्र मारक नहीं बनेंगे। बुधादि अशुभग्रह जो कहे गये हैं उनकी दशान्तर्दशा में अनिष्टफल मिलेगा और मनुष्य के सौख्य का विनाश होगा यह स्पष्ट है। लेखक के मत में वृश्चिक लग्न को शनि की महादशा में गुरु की अंतर्दशा अथवा शनि की महादशा में शुक्र की अंतर्दशा मारक होगी।

वृश्चिक लग्न के लिए शुभाशुभ योग

(१) शुभयोग :—गुरु पंचम (त्रिकोण) स्थान का स्वामी होने से शुभ है और शुभफलदायक होता है।

(२) शुभयोग :—चन्द्रमा नवम (त्रिकोण) स्थान का स्वामी होने से शुभ है और शुभफलदायक होता है।

(३) शुभयोग :—सूर्य दशम (केन्द्र) स्थान का स्वामी होने से शुभ है और चन्द्रमा नवम स्थान का स्वामी होने से इन दोनों का सहस्थानपतित्व योग उत्तम होकर शुभफल दायक है।

(४) शुभयोग :—सूर्य दशम (केन्द्र) का स्वामी होने से श्लोक ७ के अनुसार शुभफलदायक है (पाठान्तर के अनुसार)

(१) अशुभयोग :—बुध अष्टम और एकादश स्थान का स्वामी होने से अशुभ और अशुभफलदायक है।

(२) अशुभयोग :—मंगल स्वाभाविकतः पापग्रह है और वह षष्ठ स्थान का स्वामी होने से श्लोक ६ के अनुसार अशुभ है (और निर्बल लग्न केन्द्र का स्वामी होने से निर्बली है) और अशुभ फलदायक है।

(३) अशुभयोग :—शनि स्वयं स्वाभाविक पापग्रह है और वह चतुर्थ केन्द्र का स्वामी होकर तृतीय स्थान का अधिपति होने से अशुभ है और श्लोक ६ के अनुसार अशुभफल दायक है।

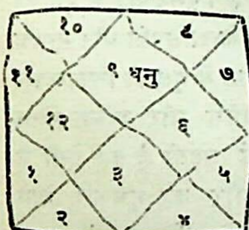
(४) अशुभयोग :—शुभ योगकारक जो भी माना गया है फिर भी वह मारक (द्वितीय) स्थान का स्वामी होने से अशुभफल देने वाला है।

(५) अशुभयोग :—शुक्र सप्तम (मारक) स्थान का स्वामी होकर केन्द्राधिपति होने से श्लोक ७ और १० के अनुसार अशुभ है और अशुभ-फल दायक हैं।

निष्फलयोग :—(१) मंगल + गुरु; (२) गुरु + शुक्र (दोनों ग्रह दूषित होते हैं)

सफलयोग :—(१) चन्द्र + मंगल (सदोष); (२) चन्द्र + शनि (सदोष); (३) चंद्र + सूर्य; (४) चंद्र + शुक्र (सदोष)

धनु लग्न



१ ला पाठ

एक एव कविः पापः शुभौ सौम्यदिवाकरौ।
योगो भास्करसौम्याभ्यां निहन्ता भास्वतः सुतः ॥४४॥
घ्नन्ति शुक्रादयः पापा मारकत्वेन लक्षिताः।
ज्ञातव्यानि फलान्येवं चापजस्य मनीषिभिः ॥४५॥

२ रा पाठ

एक पापः कविर्ज्ञोपि शुभौ भौमदिवाकरौ।
युक्तो भास्करभौमाभ्याम् न हन्ति रविनन्दनः ॥४६॥
घ्नन्ति शुक्रादयः पापाः हन्तृलक्षणलक्षिताः।
ज्ञातव्यानि फलान्येवं चापजस्य मनीषिभिः ॥४७॥

३ रा पाठ

एक एव कविः पापः शुभौ भौमदिवाकरौ।
योगो भास्करसौम्याभ्यां न तु हन्तांशुमत्सुतः ॥४८॥
घ्नन्ति शुक्रादयः पापाः मारकत्वेन लक्षिताः।
ज्ञातव्यानि फलान्येवं धनुष्यश्च मनीषिभिः ॥४९॥

स्पष्टीकरण :—

पहिला पाठ :—धनु लग्न के लिए शुक्र एक मात्र पापफल देने वाला है कारण वह षष्ठ और एकादश स्थानों का स्वामी है। बुध और रवि शुभफल दायक

हैं कारण बुध सप्तम और दशम स्थानों का स्वामी होकर सूर्य नवम (भाग्य) का स्वामी है। इन दोनों ग्रहों का योग होवे तो राजयोग जानना। शनि मृत्युदायक है। असी प्रकार शुक्रादि पापग्रह अपनी दशान्तर्दशा में मृत्यु प्रद होते हैं।

दूसरा पाठ :—शुक्र षष्ठेश और एकादशेश होता है इसलिए बुध बलवान (सप्तम) मारक स्थान का स्वामी और दशम केन्द्र का स्वामी होता है इसलिए ये दोनों ग्रह अशुभफल देते हैं। मंगल पंचमेश और द्वादशेश होता है इसलिए शुभफल देता है। सूर्य नवम स्थान का स्वामी होता है इन दोनों की युति होवे तो योगकारक होती है। शनि स्वयं मारक नहीं बनता। शेष सब पहिले पाठ के अनुसार है।

तीसरा पाठ :—अकेला शुक्र अशुभफल देता है (पहिले पाठ के अनुसार); मंगल और सूर्य शुभफल देते हैं (दूसरे पाठ के अनुसार); रवि बुध का योग पहिले पाठ के अनुसार लिया है। पहिले और तीसरे पाठ में बुध को अशुभत्व नहीं दिया है। शनि मारक होता है (पहिले पाठ के अनुसार); शनि स्वयं मारक नहीं होता (दूसरे और तीसरे पाठों के अनुसार)।

शुक्र को तीनों पाठों में मारक होता है ऐसा कहा है। दूसरे पाठ में बुध की अशुभ ग्रहों में गणना की है। उसका कारण कदाचित् बुध केन्द्राधिपति और मारक स्थान का स्वामी होता है, ऐसा मालूम होता है। दूसरे पाठ में बुध को निकालकर उसकी जगह मंगल को लिया है परन्तु मंगल पंचमेश और व्ययेश होता है। इस ग्रंथकार की एक विशिष्ट विचार धारा दिखाई पड़ती है वह ऐसी है कि व्ययेश पापग्रह हो तो वह पापफल नहीं दे सकता और वह शुभफल देता है। प्रसंगों में शुभग्रह भी व्ययेश हो तो शुभफल देते हैं ऐसा मिथुन और तुला लग्नों के विवेचनों में बुध और शुक्र की राजयोगों में गणना की गई है इस पर से व्यय स्थान अथवा व्ययेश पापफल देने वाले नहीं होते यह सिद्ध होता है। वे अन्य ग्रहों के साहचर्यानुसार फल देते हैं। इस पर से रवि बुध का योग प्रथम श्रेणी का होता है। तो रवि मंगल योग द्वितीय श्रेणी का होता है। परन्तु धनु लग्न को शुक्र को छोड़कर शेष सब ग्रह शुभफल देते हैं। मात्र चन्द्रमा धनु लग्न के लिए अष्टमेश होता है। इसे अष्टमेश का दोष नहीं होगा। परंतु अपनी दशान्तर्दशा में अनिष्टफल देता है। इस प्रकार धनु लग्न के ग्रहों के शुभाशुभत्व के विचार हैं।

सूर्य पुत्र शनि इस लग्न के लिए पहिले पाठ में विघातक माना गया है कारण वह द्वितीय और तृतीय इन दोनों अशुभ स्थलों का स्वामी होता है। द्वितीय और तृतीय ये दोनों स्थानों में क्रमशः मकर और कुंभ राशियाँ आती है और उनका स्वामी शनि ही होता है इसलिए शनि अनिष्टकारक होकर मारकेश

है। निसर्गतः शनि स्वयं पापग्रह है और इन सब कारणों की वजह से वह पाप-ग्रह ठहराया गया है और वह अपनी दशान्तर्दशा में अशुभफल देगा इसमें सन्देह नहीं है। गुरु और चंद्रमा के विषय में यहाँ पर कुछ भी उल्लेख नहीं है। गुरु चतुर्थ केन्द्र का स्वामी होने से शुभफल देने वाला नहीं होता और उसी प्रकार चन्द्रमा अष्टम स्थान का अधिपति होने के कारण से शुभफल देने वाला नहीं होता।

धनु लग्न के लिए शुभाशुभ योग :—

(१) **शुभयोग :—** सूर्य निसर्गतः पापग्रह है फिर भी नवम (त्रिकोण) का स्वामी होने से श्लोक ६ के अनुसार शुभ माना गया है और शुभफल दायक होता है।

(२) **शुभयोग :—** मंगल नैसर्गिक पापग्रह है फिर भी पंचम (त्रिकोण) स्थान का स्वामी होने से श्लोक ६ के अनुसार शुभ माना गया होकर शुभफलदायक होता है।

(३) **शुभयोग :—** बुध दशम केन्द्र का स्वामी होने से और सूर्य नवम (त्रिकोण) स्थान का स्वामी होने से इन दोनों का स्थान साहचर्य योग उत्तम माना गया है और वह उत्तम फलदायक होता है।

(१) **अशुभयोग :—**शुक्र नैसर्गिक शुभग्रह होने पर भी षष्ठ और एकादश स्थानों का स्वामी होने से अशुभ होकर अशुभफल देने वाला होता है।

(२) **अशुभयोग :—**शनि द्वितीय स्थान का स्वामी होकर तृतीय अशुभ स्थान का भी स्वामी होने से वह अशुभफलदायक होता है।

(३) **अशुभयोग :—**बुध सप्तम (मारक) स्थान का और दशम (केन्द्र स्थान) स्थान का स्वामी होने से श्लोक ७ के अनुसार वह अशुभफल देने वाला होता है।

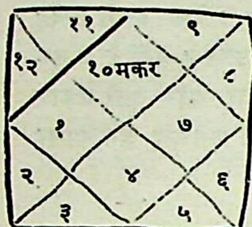
(४) **अशुभयोग :—**गुरु लग्न और चतुर्थ केन्द्र स्थान का स्वामी होने से श्लोक ७ और १० के अनुसार अशुभफल दायक होता है।

(५) **अशुभयोग :—**चन्द्रमा अष्टम स्थान का स्वामी होने से अशुभफलदायक होता है।

निष्फल योग :— (१) मंगल + बुध

सफल योग :— (१) मंगल + गुरु;
(२) सूर्य + गुरु;
(३) सूर्य + बुध (निकृष्ट)।

मकर लग्न



१ला पाठ

कुजजीवेन्दवः पापाः शुभौ भार्गवचन्द्रजौ ।
स्वयं चैव निहन्ता स्यान्मन्दो भौमादयः परे ॥५०॥
तल्लक्षणा निहन्तारः कविरेकः सुयोगकृत् ।
ज्ञातव्यानि फलान्येवं विबुधैर्मृगजन्मनः ॥५१॥

२रा पाठ

कुजजीवेन्दवः पापाः शुभौ भार्गवचन्द्रजौ ।
राजयोगकरः साक्षाद् एक एव भृगोः सुतः ॥५२॥
चन्द्रात्मजेन संयुक्तो विशेषफलदायकः ।
स्वयं चैव न हन्ता स्यात् मन्दो भौमादयः परे ॥५३॥
निहन्तारः पापिनस्ते मारकत्वेन लक्षिताः ।
ज्ञातव्यानि बुधैरेवं फलानि मगजन्मनः ॥५४॥

३रा पाठ

कुज-जीवेन्दवः पापाः शुभौ भार्गवचन्द्रजौ ।
स्वयं मन्दो न हन्ता स्याद्घ्नन्ति भौमादयः परे ॥५५॥
तल्लक्षणसमायुक्ताः कविरेकः सुयोगकृत् ।
मृगलग्नोद्भवस्यैवं फलान्यूह्यानि सूरिभिः ॥५६॥

स्पष्टीकरण :—

पहिला पाठ :—मकर लग्न हो तो मंगल, गुरु और चन्द्रमा पापफल करने वाले होते हैं। कारण मंगल एकादश स्थान का स्वामी होता है, गुरु तृतीय स्थान का स्वामी होता है और चन्द्रमा सप्तम स्थान (मारक स्थान) का स्वामी होता है। शुक्र और बुध शुभफलदायक हैं कारण शुक्र त्रिकोण और दशम केन्द्र का स्वामी होता है। और बुध त्रिकोण का स्वामी होता है। शनि और भौमादि पाप फलदायक ग्रह अपनी दशा और अन्तर्दशा में मृत्युप्रद होते हैं।

दूसरा पाठ :—मकर लग्न हो तो मंगल, गुरु और चन्द्रमा अशुभफल देते हैं। शुक्र और बुध शुभफल देते हैं। अकेला शुक्र राजयोगकारक होता है। बुध शुक्र योग हो तो विशेष फलदायक होता है। शनि स्वयं मारक नहीं बनता। मंगल आदि करके अशुभग्रह मारक लक्षणों से युक्त हों तो मारक बनते हैं। मकर लग्न में जन्म हो तो ज्ञातों ने इस प्रकार शुभाशुभ फल समझना।

तीसरा पाठ :—मकर लग्न हो तो मंगल, गुरु और चन्द्रमा पापफलद होते हैं। बुध और शुक्र शुभ फलदायक होते हैं। शनि मारक होने पर भी स्वयं मारक नहीं बनता। मंगल, गुरु चन्द्रमा मारक लक्षणों से युक्त हों तो मारक बनते हैं।

शुक्र अकेला सुयोग करने वाला होता है, मंगल चतुर्थेश और एकादशेश, गुरु तृतीयेश और व्ययेश और चन्द्रमा सप्तम (मारक) केन्द्र का बलवान मारक स्थान का स्वामी होने से अशुभफल दायक हैं। शुक्र दशमेश (याने केन्द्र का) और पंचमेश (त्रिकोण) होने से अकेला राजयोग कारक बनता है। इस शुक्र के साथ बुध का योग होवे तो उत्तम राजयोग होगा, कारण बुध षष्ठेश होने पर भी नवम (त्रिकोण) का स्वामी होने से बुध + शुक्र योग श्रेष्ठ प्रकार का राजयोग करनेवाला है। शनि स्वयं लग्नेश होकर द्वितीय स्थान का स्वामी है फिर भी मारकेश होने पर मारक नहीं बनता। मारक शनि स्वयं लग्नेश है। मंगल आदि पापग्रह मारक लक्षणों से युक्त हों तो मारक बनते हैं। यहाँ पर रवि को बिलकुल नहीं लिया है कारण रवि अष्टम स्थान का स्वामी होकर उसे अष्टमेश होने का दोष नहीं होता। चन्द्रमा सप्तम (मारक स्थान) और केन्द्र का स्वामी होने से उसे अल्पदोष है।

मकर लग्न के लिए शुभाशुभ योग :—

(१) शुभ योग :—शुक्र स्वयं शुभग्रह है वह पंचम (त्रिकोण) स्थान का स्वामी होने से श्लोक ६ के अनुसार शुभ है और दशम स्थान का अधिपति होने से प्रबल दूषित होता है। परन्तु बुध के साथ नवम स्थानाधिपत्य के साहचर्य योग के कारण वह शुभ बनता है और शुभ फल देता है।

(२) शुभ योग :—बुध स्वयं शुभग्रह है और नवम (त्रिकोण स्थान) का स्वामी होने से श्लोक ६ के अनुसार शुभ होता है परंतु षष्ठ स्थान का स्वामी होने से श्लोक ६ के अनुसार अशुभ होता है। उससे शुक्र के साथ स्थानाधिपत्व साहचर्य के योग के कारण वह शुभ होता है और शुभफल देता है।

(१) अशुभ योग :—मंगल स्वयं पापग्रह है। वह चतुर्थ केन्द्र स्थान का स्वामी होने से श्लोक ७ के अनुसार शुभ होता है परन्तु एकादश स्थान का स्वामी होने से श्लोक ६ के अनुसार अशुभ है और अशुभफल देनेवाला होता है।

(२) अशुभ योग :—गुरु स्वयं शुभग्रह हैं परन्तु वह तृतीय स्थान का स्वामी होने से श्लोक ६ के अनुसार अशुभ है। गुरु व्यय स्थान का भी स्वामी होने से अशुभ है। और अशुभ फल देनेवाला होता है।

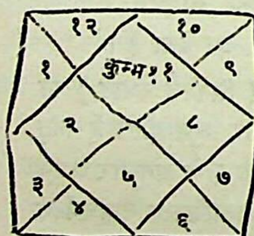
(३) अशुभ योग :—चन्द्रमा शुभग्रह है। वह सप्तम (मारक स्थान) स्थान का अधिपति है और केन्द्राधिपत्य दोष के कारण श्लोक ११ के अनुसार स्वल्प दूषित होता है इसलिए वह अशुभ माना गया है और अशुभफल देता है।

(४) अशुभ योग :—शनि स्वयं पापग्रह है और वह द्वितीय (मारक) स्थान का स्वामी होने से अशुभफल देनेवाला होता है।

निष्फल योग :—यह एक ऐसी कुंडली है जिसमें निष्फल योग नहीं बनता।

सफल योग :—(१) शुक्र अकेला राजयोग करनेवाला है; (२) शुक्र + शनि; (३) बुध + शुक्र श्रेष्ठ योग श्लोक २० के अनुसार; (४) शुक्र + मंगल (सदोष); (५) बुध + शनि (सदोष); (६) चन्द्र + बुध (सदोष); (७) चन्द्र + शुक्र (सदोष) चन्द्रमा दोष युक्त है; (८) मंगल + बुध (कनिष्ठ) कारण मंगल एकादशेश होने से दूषित है और बुध षष्ठेश होने से दूषित है। दोनों दूषित होने से निकृष्ठ योग होता है।

कुम्भ लग्न



१ ला पाठ

जीवचन्द्रकुजाः पापा एको दैत्यगुरुः शुभः।
राजयोगकरो भौमः कविश्चैव बृहस्पतिः ॥५७॥
निहन्ता घ्नन्ति भौमाद्या मारकत्वेन लक्षिताः।
एवमेव फलान्यूह्यान्येतानि घटजन्मनः ॥५८॥

२रा पाठ

कुजजीवेन्दवः पापा एको दैत्यगुरुः शुभः।
राजयोगकरौ भौमकवी एको बृहस्पतिः ॥५९॥
निहन्ता घ्नन्ति भौमाद्या मारकत्वेनं निश्चिताः।
ज्ञातव्यानि बुधैरेवं फलानि घटजन्मनः ॥६०॥

स्पष्टीकरण :—

गुरु, चन्द्र, मंगल पापफल उत्पन्न करने वाले होते हैं, कारण गुरु मारकेश और एकादशेश है। चन्द्रमा षष्ठेश है और मंगल तृतीयेश है। शुक्र शुभफल उत्पन्न करने वाला है कारण शुक्र (त्रिकोण और केन्द्र का स्वामी) नवमेश और चतुर्थेश है। मंगल और शुक्र इनका योग होवे तो राजयोग होता है। गुरु मारकेश और एकादशेश होने से वह अपनी दशान्तर्दशा में मृत्युप्रद हो सकता है। इस प्रकार चन्द्रमा और मंगल भी अपनी दशान्तर्दशा में मृत्युप्रद होते हैं।

दूसरे पाठ के अनुसार मंगल, गुरु और चन्द्रमा अशुभफल देते हैं। शुक्र अकेला शुभफल देता है। मंगल शुक्र योग राजयोग कारक होता है। गुरु स्वयं मारक नहीं बनता। मंगल आदि करके अशुभ ग्रह मारक लक्षणों से युक्त हों तो वे मारक होते हैं। कुंभ लग्न में जन्म हो तो इस प्रकार शुभाशुभ फल समझना।

मकर और कुम्भ लग्नों के सब ग्रह योग शुभाशुभत्व की दृष्टि से समान हैं सिर्फ इन दोनों लग्नों के मारक ग्रहों में जो फरक है वह मकर लग्न को शनि होता है तो कुम्भ लग्न को गुरु होता है। कुम्भ लग्न में शुक्र अकेला शुभफल देता है इसका कारण वह चतुर्थ (केन्द्र) और नवम (त्रिकोण) स्थानों का स्वामी होता है। मंगल शुक्र योग राजयोग होता है ऐसा कहने का हेतु मंगल तृतीयेश और दशमेश और शुक्र चतुर्थेश और नवमेश होता है—यही है। इस लग्न में रवि का विचार किया हुआ नहीं दिखाई देता परन्तु रवि बलवान् मारक-सप्तम स्थान का स्वामी होता है इसलिए अशुभफल देगा परन्तु मारक नहीं होगा। गुरु, चन्द्र आदि करके मारक बनते हैं। यहाँ पर बुध शुक्र का योग, केन्द्र त्रिकोण याने चतुर्थेश और पंचमेश इनका होने से शुभफल तो मिलेगा परन्तु यह योग सदोष है। उसी प्रकार बुध के संबंध में भी इस लग्न में कुछ भी उल्लेख नहीं हैं। बुध त्रिकोण का स्वामी होकर वह अष्टमेश भी हैं।

कुम्भ लग्न के लिए शुभाशुभ योग :—

(१) शुभयोग :— शुक्र स्वयं शुभग्रह है। श्लोक ११ के अनुसार केन्द्राधिपत्य दोष से यद्यपि दूषित है फिर भी वह नवम (त्रिकोण) स्थान का स्वामी होने से श्लोक ६ के अनुसार शुभ है और शुभफल देने वाला है।

(२) शुभयोग :— मंगल नैसर्गिक पापग्रह है परन्तु श्लोक ७ के अनुसार दशम केन्द्र का स्वामी होने से शुभ हैं और शुभफलदायक होता है।

(३) शुभयोग :— नवम तथा दशम पति शुक्र और मंगल के साहचर्य योग के कारण से राजयोग हो सकता है और शुभफल देने वाला होता है ।

(४) शुभयोग :— बुध स्वयं शुभग्रह है और यहाँ पर पंचम (त्रिकोण) स्थान का स्वामी होने से श्लोक ६ के अनुसार शुभ है (और अष्टम स्थान का स्वामी होने से अशुभ है) यहाँ पर इसके शुभफल मिलेंगे ।

(१) अशुभयोग :—गुरु नैसर्गिक शुभग्रह है परन्तु द्वितीय इस मारक स्थान का अधिपति होने से और एकादशेश होने से श्लोक ६ के अनुसार अशुभफल देने वाला होता है ।

(२) अशुभयोग :—चन्द्रमा शुभग्रह है परन्तु षष्ठ स्थान का स्वामी होने से यहाँ पर अशुभ है और अशुभफल देने वाला होता है ।

(३) अशुभयोग :—मंगल नैसर्गिक पापग्रह है और तृतीय स्थान का स्वामी होने से श्लोक ६ के अनुसार अशुभफल देने वाला होता है । यह दशम केन्द्र का स्वामी होने से शुभ माना गया है ।

(४) अशुभयोग :—सूर्य स्वयं पापग्रह है और वह सप्तम (मारक) स्थान का स्वामी होने से (और सप्तम केन्द्र का स्वामी होने से शुभ माना गया है) अशुभफल देने वाला होता है ।

निष्फलयोग :—(१) सूर्य + बुध; दोनों ग्रह दूषित होते हैं ।

सफलयोग :— (१) शुक्र अकेला शुभफल दायक है; (२) शुक्र + शनि (सदोष); (३) बुध + शुक्र (सदोष); (४) मंगल + शुक्र (सदोष); (५) सूर्य + शुक्र; (६) बुध + शनि;

२	१ १२ मीन ११	१०
३		९
४	५ ६ ७	८

मीन लग्न

मंदशुक्रांशुमत्सौम्याः पापा भौमविधू शुभौ ।
महिसुतगुर्वोर्योगे मारकश्चैव भूसुतः ॥६१॥

मारकान्कारकान्वीक्ष्य मंदाद्याः सन्ति पापिनः ।
इत्यूह्यानि फलान्येवं बुधैस्तु झषजन्मनः ॥६२॥

"मारकश्चैव" इन शब्दों की जगह "कारणेनैव" और "मारकान्कारकान्वीक्ष्य" इस पद की जगह "कारकाः कारकान्वीक्ष्य" और "मारको मारकाभिख्या" इस प्रकार पाठ भेद हैं ।

स्पष्टीकरण :—

मीन लग्न हो तो शनि, शुक्र, रवि, बुध अशुभफल देते हैं। मंगल और शुक्र शुभफल देते हैं। मंगल गुरु का योग राजयोग होता है। मंगल स्वयं मारक नहीं बनता। शनि आदि करके अशुभग्रह मारक लक्षणों से युक्त हो तो वे मारक होते हैं। मीन लग्न में जन्म हो तो ज्ञात्याओं ने इस प्रकार शुभाशुभ फल समझना चाहिये।

मीन लग्न हो तो मंगल चन्द्रमा शुभफल देते हैं ऐसा कहने का कारण मंगल धनेश और नवमेश होता है और चन्द्रमा पंचमेश होता है, यही है। मंगल गुरु योग राजयोगकारक होता है यह कहने का हेतु गुरु लग्नेश और दशमेश है और मंगल धनेश और नवमेश है—यही है। वस्तुतः मीन लग्न में गुरु के तरफ महत्व के दो अधिकार आते हैं; एक लग्नाधिपति और दूसरा दशमाधिपति का; ये दोनों स्थान अर्थात् कुंडली में अति महत्व के हैं और इस प्रकार मीन लग्न के लिए अकेले गुरु को श्रेष्ठता मिलनी चाहिये परन्तु "केन्द्राधिपत्यदोषस्तु बलवान् गुरुशुक्रयोः" इस वचन के अनुसार उसे शुभत्व नहीं प्राप्त होता। मात्र वह भाग्याधिपति मंगल से युक्त होने पर राजयोग करता है। मीन लग्न को शनि एकादशेश और द्वादशेश होता है; शुक्र तृतीयेश और अष्टमेश होता है। रवि षष्ठेश होता है; बुध चतुर्थेश और सप्तमेश होता है—इसलिए ये सब ग्रह अशुभफल देने वाले होते हैं। मीन लग्न को वास्तविकता से चन्द्रमा को छोड़कर अन्य एक भी ग्रह शुभ नहीं होता इसका कारण क्रमशः इस प्रकार है।

रवि षष्ठेश होता है; मंगल धनेश मारक स्थान का स्वामी होता है; बुध केन्द्रेश (चतुर्थ सप्तम स्थानों का स्वामी) होता है; (बुधस्तदनु चन्द्रोऽपि); गुरु लग्नेश और दशमेश होता है। शुक्र तृतीयेश अष्टमेश होता है; शनि एकादशेश और व्ययेश होता है। इस प्रकार किसी न किसी कारण वश हर एक ग्रह दूषित है। शेष बचा-चन्द्रमा—वह शुभ है। श्लोक ८ के अनुसार धनेश यदि अन्य शुभ स्थान का स्वामी हो तो शुभफल देता है इस प्रकार मंगल

शुभफल दे सकेगा। केन्द्राधिपत्य दोष सिर्फ सप्तम स्थान पर ही लागू होता है। इसलिए गुरु मंगल इनका योग उत्तम राजयोग हो सकता है। यहाँ पर मंगल स्वयं मारक नहीं बनता ऐसा स्पष्ट रीति से कहने का कारण इतना ही है कि मंगल द्वितीयेश होने पर भी शुभ स्थान का स्वामी भी होता है इसलिए शुभफल देने वाला होता है।

मीन लग्न के लिये शुभाशुभयोग :—

(१) शुभयोग :—मंगल नैसर्गिक पापीग्रह है परन्तु वह नवम (प्रबल त्रिकोण) स्थान का स्वामी होने से श्लोक ६ के अनुसार शुभफल देने वाला होता है। यद्यपि वह मारक स्थान का स्वामी है फिर भी श्लोक ८ के अनुसार शुभफल देने वाला होता है।

(२) शुभयोग :—चन्द्रमा नैसर्गिक शुभग्रह है और यहाँ पर पंचमेश (त्रिकोण का स्वामी) होने से शुभफल देने वाला होता है।

(३) शुभयोग :—नवमेश मंगल का दशमेश गुरु से योग हो तो (श्लोक ११ के अनुसार वह अशुभ है) शुभफल देने वाला होता है।

(१) अशुभयोग :—शनि नैसर्गिक पापग्रह है और वह एकादशेश होने के नाते श्लोक ६ के अनुसार अशुभ है। इसके सिवाय वह द्वादशेश भी है। शनि अशुभ होकर अशुभफल दायक है।

(२) अशुभयोग: —शुक्र नैसर्गिक शुभग्रह है परन्तु वह तृतीय स्थान का स्वामी है और श्लोक ६ के अनुसार अशुभ है। शुक्र अष्टम स्थान का भी स्वामी है। वह अशुभफल देने वाला होता है।

(३) अशुभयोग :—सूर्य नैसर्गिक पापग्रह है। वह षष्ठेश होने के नाते श्लोक ७ के अनुसार अशुभ है और अशुभफल देने वाला है।

(४) अशुभयोग :—बुध नैसर्गिक शुभग्रह है। वह सप्तम (मारक) केन्द्र का स्वामी है और चतुर्थ—सप्तम केन्द्रों का स्वामी होने से शुभ है और अशुफल देने वाला होता है।

निष्फलयोग :—(१) मंगल + बुध;

सफलयोग :—(१) चन्द्र + गुरु; (२) मंगल + गुरु;

एवं द्वादशभावानां शुभाशुभफलं विदुः ।

तन्वादिद्वादशानां च भावानां योजयेत्फलम् ॥६३॥

इस प्रकार द्वादशभावों के शुभाशुभफल होते हैं । तनु, धन इत्यादि द्वादश-भावों के लिए क्रम से जानना चाहिये ।

पापत्वे सति नीचत्वे ह्युच्चत्वे वापि किं फलम् ।

ते योगाः किं करिष्यन्ति स्वदशानामनागमे ॥६४॥

ग्रहों का अशुभत्व, नीचत्व अथवा उच्चत्व इनका योग होने पर भी यदि उनकी दशा नहीं आती हो तो उनके फल कहाँ से प्राप्त होंगे ? और क्यों मिलना चाहिये ? दशाओं में ग्रहों के फल प्राप्त होते हैं । इस जगह दशा शब्द से महादशा और अन्तर्दशा इन दोनों का बोध होता है । यह नियम जातक-शास्त्र में सर्व सम्मत नहीं है । दशा में विशेष फल मिलता है परन्तु अन्य समय में थोड़ा बहुत फल मिलना ही चाहिये ।

मित्रशत्रुसमायोगे फलं मिश्रं शुभं विदुः ।

केन्द्रत्रिकोणेष्युच्चत्वे मित्रग्रहसमन्विते ॥६५॥

मित्र और शत्रु ग्रहों का योग हो तो मिश्रफल जानना । केन्द्र त्रिकोण अथवा उच्च, स्थानों में मित्र ग्रहों से युक्त ग्रह हों तो शुभफल जानना ।

मित्रराशिगते वापि मन्त्रिणा यदि वीक्षिते ।

मित्रयुक्ते बलवति राजतुल्यो भवेन्नरः ॥६६॥

मित्र ग्रहों के स्थान में स्थित, मित्रग्रह से युक्त और बलवान ऐसा ग्रह यदि गुरु से दृष्ट हो तो मनुष्य राजतुल्य होता है ।

शुभपापात्मकतथा निर्दिष्टेभ्यः फलं ग्रहाः ।

प्रदिशन्ति शुभं वान्यत् स्वदशासु स्वभुक्तिषु ॥६७॥

उपरोक्त नियमों के अनुसार ग्रह, शुभ या अशुभ हों, उस प्रकार शुभ अथवा अशुभफल अपने-अपने महादशान्तर्दशाओं में देते हैं ।

फलानि ग्रहचारेण सूचयन्ति मनीषिणः ।

को वक्ता तारतम्यस्य तमेकं वेधसं विना ॥६८॥

ग्रहों की स्थिति पर से ज्ञातागण फलों की सूचना करते हैं परन्तु (फलों के) कम अथवा अधिक प्रमाण तो एक ब्रह्मदेव के सिवाय कौन कह सकेगा ?

परिशिष्ट (१)

नक्षत्र :

पृथ्वी पर जिस प्रकार पृथक-पृथक अंतरों पर (किलोमीटरों पर) रेलवे स्टेशन हैं और उन पर से आरंभ स्थान से अंतरों का निश्चित बोध होता है, उसी प्रकार जगत् उत्पन्न करने वाले परमेश्वर ने आकाश में नक्षत्रों के द्वारा (नक्षत्र रूप से) निश्चित अंतर मालूम करने के लिए स्पष्ट और विशिष्ट तारागणों के स्टेशन निर्माण किये हैं और वे जगत के आरंभ से लेकर अभी तक जैसे के तैसे ही कायम हैं । इनमें कहने सरीखा फरक नहीं पड़ा है । परमेश्वर निर्मित इन नक्षत्रात्मक स्टेशनों का दृक् प्रत्यक्ष देखने में उपयोगी होता है । आकाश में के २७ नक्षत्रों में से कुछ नक्षत्र तारा स्पष्ट और बड़े हैं और कुछ साधारण हैं, परन्तु उन दो तारों के बीच का अन्तर प्राचीन सिद्धांतों में और कारण ग्रंथों में दिये होने से कोई भी भानगड़ नहीं रहती । बम्बई से रवाना हुआ मनुष्य पूना को पहुँचते ही जिस प्रकार बम्बई से ११९ मील पर आ गया है ऐसा निश्चित होता है उसी प्रकार मुख्य-मुख्य नक्षत्र तारा के पास कोई भी ग्रह आने से होता है अर्थात् आरंभ स्थान से उस नक्षत्र तारा के जो अन्तरात्मक अंश होते हैं उतने अंशों में पंचांग में वह ग्रह होना चाहिये । यदि ऐसा नहीं हो तो वह पंचांग गलत होगा और उसमें का गणित भी गलत होगा ।

पंचांगों के आरंभ के पृष्ठों में नक्षत्रों के अनुरोध से अवकहडाचक्र और राशियों के घातचक्र दिये होते हैं । अवकहडाचक्र याने नक्षत्रचक्र है । इस चक्र में प्रत्येक नक्षत्र के पहिले, दूसरे, तीसरे और चतुर्थ चरणों के आधार कौन से हैं यह ऊपर के कोठे में दिये हुए होते हैं । उसके नीचे नाड़ी, योनि, गण, यह सब जानकारी जिस नक्षत्र से सम्बन्धित हो वह नक्षत्र, उसके नीचे उस नक्षत्र के राशि का स्वामी और आखिरी कोष्टक में राशि, इस प्रकार से सब जानकारी दी हुई होती है । यह कोष्टक कैसे देखना चाहिये और यह किस प्रकार से उत्पन्न हुआ अथवा उसकी रचना किस प्रकार की है, इस सम्बन्ध की जानकारी बहुत से लोगों को नहीं होती इसलिए इस सम्बन्ध में खुलासा (स्पष्टी करण) नीचे किया गया है ।

अवकहडा चक्र यह सचमुच में नक्षत्र-चक्र है । कारण २७ नक्षत्रों का सम्बन्ध इस अवकहडा चक्र से है । प्रत्येक नक्षत्र का वर्ण (वश्य), योनि

(नक्षत्र स्वामी की मित्रता), गण (षडाष्टकादि कूट), नाड़ी, राशि और राशि स्वामी इत्यादि दिया हुआ होता है। कंसों में दी हुई बातें जो भी इनमें नहीं दी हों तो भी उनकी योनि, नक्षत्र, राशि और राशि स्वामियों से सम्बन्ध है और इसलिये विवाह प्रकरण में सुप्रसिद्ध मुहूर्त मार्तण्ड ग्रंथमें कहा हुआ क्रम इस प्रकार है "वर्णोवश्यभयोनिखेचरगणाः कूटं च नाड़ीक्रमात्"

अवकहडाकी उत्पत्ति और उपपत्ति इस प्रकार है कि जिस समय कृत्तिकादि गणना प्रचार में थी अर्थात् कृत्तिका नक्षत्र में वसंत-संपात होता था, उस समय यह अवकहडाचक्र शुरू हुआ। कारण इस अवकहडा चक्र में आ ई ऊ ए ये चार स्वर कृत्तिका नक्षत्र के चार चरणों में बाँट दिये गये हुए थे और बाद में मध्य में "व" अक्षर लेकर आगे 'क' व्यंजनाक्षर लिये गये हैं कोई भी हो प्रथम स्वर और बाद में व्यंजन यहीं क्रम लेगा। इस अनुक्रम को लक्षित करने से अवकहडा चक्र की रचना कृत्तिका-गणना के समय ही प्रचलित हुई है इस वछल कोई सन्देह नहीं रहता, कारण साम्प्रत (वर्तमान) जिस प्रकार से आश्विन्यादि-मेषादि गणना प्रचार में है वैसी ही या उसी प्रकार से पूर्व में कृत्तिकादि-गणना प्रचार में थी और विभाग भी इसी समय के अनुसार नक्षत्र प्रधान तारांगभूत थे। उस समय कृत्तिका के तारा के पीछे निश्चित ४०° चालीस अंशोंपर रेवत्यंत था, वैसा अब भी है और इस कारण से गत ४-५ हजार वर्षों से यह नक्षत्र गणना स्थिति अखंड कायम रही है।

कृत्तिका नक्षत्र पर संपात्त जब था अवकहडाचक्र प्रचार में आया था यह बात निश्चित होने के बाद वह संपात कृत्तिका नक्षत्र पर कब था यह निकालना प्राप्त है। शके १८६० इस वर्ष में वह रेवत्यंत वाले राशि चक्रारंभ स्थान से पीछे १२ अंश गया है (संपात की गति हमेशा वक्र रहती है, अर्थात् वह कृत्तिका में से भरणी में, भरणी में से अश्विनी में इस प्रकार पीछे-पीछे वक्र गति में जाता है। शक १८६० में वह उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में था) और कृत्तिका तारा राशि चक्र के आरंभ में ४०° अंशों पर है। अर्थात् ४० + १९ = ५९ अंश हुए। संपात को १° अंश पीछे हटने के लिये करीब-करीब ७१॥ से ७२ वर्ष लगते हैं अर्थात् ५९ × ७२ = ४२४८ सव्वाचार हजार वर्षों से अवकहडाचक्र प्रचार में है और उपयोग में लिया जा रहा है। ऐसा निःसन्देह स्पष्ट है (१९७१ में ४२४८ + ३३ = ४२८१ वर्ष हुए)।

अवकहडाचक्र जानकारी के लिये यहाँ दिया है देखिये ··पृष्ठ ३६४-३६५

वेदकाल से अव्याहत चले आ रहे कृत्तिकातारा निर्णित मेषारंभ स्थान से (झीटापिशियमतारा) १३ अंश २० कला अर्थात् ८०० कला चन्द्रमा का अन्तर पूर्ण होने पर १ नक्षत्र (अश्विनी) पूर्ण होता है। इस प्रकार आगे ३६०° अंशों में २७ नक्षत्र पूर्ण होते हैं। आश्विनी से लेकर रेवती तक नक्षत्र के तारे निश्रित किये गये हैं। वे क्रांतिवृत जिस जगह पांच हजार वर्ष पूर्व में था उसी जगह आज भी है। इन २७ नक्षत्रों को तारा प्रधान आरंभ स्थान निर्णित विभात्मक नक्षत्र कहते हैं। क्रांति वृत एक ही जगह स्थिर होने के कारण उसे स्थिर, निश्चल अथवा नक्षत्र कहते हैं। "न क्षरति तत् नक्षत्रं" ऐसी नक्षत्र की व्याख्या है। प्रत्येक नक्षत्र के तारे अपने-अपने विभागों में समान अंतर पर नहीं हैं। कुछ तो आरंभ में है और कुछ अंत (आखिरी) मे ऐसे हैं। अथवा आरंभ और अन्त इनके सन्निद्ध हैं, परन्तु उनकी जगह निश्चित होने के कारण और महत्व के तारकों का राशि चक्रारंभ से अंशात्मक अंतर कायम के निश्चित होने से शंका का कोई कारण ही शेष नहीं रहता।

नक्षत्र की व्याख्या शास्त्रकारों ने "न क्षरतितत् नक्षत्र" याने जो हटता नहीं है, निश्चल, अचल या स्थिर है, वह नक्षत्र है ऐसी की है। नक्षत्र २७ हैं वे कोष्टक रूप में पृष्ठ (३६२) पर दिये है वह देखिये। नक्षत्र याने राशि चक्र के आरंभ स्थान से १३° अंश २०' कला का क्रांति वृत का प्रत्येक भाग। ऐसे भाग को चन्द्रमा और ग्रह को १३ अंश २०' कला भ्रमण करने के लिये लगने वाला समय याने नक्षत्र पंचांग में हर रोज के नक्षत्र दिये हुए होते हैं उन्हें चन्द्रनक्षत्र अथवा दिन नक्षत्र कहते है। कारण उस दिन चन्द्रमा उस नक्षत्र तारा के सपीप अगर उस नक्षत्र की मर्यादा में रहता है। नक्षत्र के कोठे के आगे उस नक्षत्र की घटी, पल (घ. प.) दिये हुए होते हैं। दिनारंभ से उतना काल याने वह नक्षत्र। तिथि के अनुसार ही नक्षत्र की क्षय वृद्धि होती रहती है। कुछ त्योहार के शास्त्रार्थ नक्षत्र पर से देने पड़ते हैं नक्षत्र और ग्रह याने फलज्योंतिषशास्त्र और भविष्य निर्णय इस कार्य का मूल आधार है इसलिए नक्षत्रों का गणित अति सूक्ष्म होना आवश्यक है।

आकाश में २७ नक्षत्रों के तारापुंज (तारका) हैं और वे स्पष्टतः दिखाई पड़ते हैं। नक्षत्र याने कोई काल्पनिक जगह नहीं है। सूर्योदव से लेकर फिर से सूर्योदय होने तक २७ नक्षत्रों की एक फेरी पूर्ण होती है अर्थात् २४ घंटों में २७ नक्षत्र पूर्व क्षितिज पर उदय पाते हैं और पश्चिम क्षितिज पर अस्त होते हैं। जिस नक्षत्र में सूर्य होता है, वह नक्षत्र सूर्योदय के समय पूर्व

क्षितिज पर उदय पाता है। उसके बाद करीब ५३।। मिनिटों के बाद उसके आगे का नक्षत्र उदय पाता है। इस प्रकार से क्रम चलता रहता है। सूर्य किसी भी नक्षत्र में आने पर हर रोज करीब-करीब ३।। से ४।। मिनिट आगे सरकता है और इस प्रकार करीब-करीब १३।। दिन के बाद अगले नक्षत्र में प्रवेश करता है। २४ घंटों में २७ नक्षत्र अर्थात् १३।। रात्रि में और १३।। दिन में २७ नक्षत्र उदयास्त पाते हैं। दिन को सूर्य के तेज के कारण से नक्षत्र दिखाई नहीं पड़ते परन्तु रात्रि में नक्षत्र तारका स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं।

संपूर्ण राशि चक्र का गोल (वर्तुल) ३६०° अंशों का होता है। इस (वर्तुला) का फेरा लगभग २४ घंटों में पूर्ण होता है और इसी कारण से अलग-अलग समयों पर भिन्न-भिन्न लग्न आते हैं। यह संपूर्ण वर्तुल २४ घंटों का होता है और सूर्य इस वर्तुल में ३६५ दिन, १५ घटी, २३ पल भ्रमण कर लेता है तो हर रोज सूर्य राशि चक्र में कितना आगे चलता है यह देखने के लिए मध्यम मान से ३ मिनिट और ५६ सेंकंड अथवा लगभग १ अंश इतना आगे सरकता है। सूर्य जिस राशि में जितने अंशों पर होता है उन अंशों से आगे के सब लग्न क्रमशः भुक्त होते हैं। सूर्य की स्थिति पर सब बातें सर्वस्वः अवलंबित होती हैं।

प्रत्येक नक्षत्र के तारकापुंजमें कितनी तारका होती हैं, उसकी संख्या नक्षत्रों के कोष्टक में पृष्ठ (३६२) पर दी गयी हैं। परन्तु उनमें भी जो सबसे अधिक तेजस्वी, चमकनेवाली और क्रांति वृत के नजदीक हो उसे उस नक्षत्र की योगतारा ऐसा कहते हैं। क्रांत्तिवृत पर जो आरम्भ स्थान माना जाता है वहाँ से प्रत्येक नक्षत्र की योगतारा कितने अंतर पर है यह सूर्य सिद्धांतादि ग्रंथों पर से समझ सकते हैं। परन्तु सब सूक्ष्म वेध साधनों द्वारा नक्षत्रों की योगतारा जो भोगह में प्रत्यक्ष अनुभव में आते हैं, उनके साथ तुलना करने से प्राचीन सूर्यसिद्धान्तादि ग्रंथ और ग्रहलाघवादि ग्रंथ इनमें दिये हुए नक्षत्रतारा के भोग स्थूल हैं ऐसा दिखाई पड़ता है। इसलिए भारतीय ज्योतिः शास्त्र के इतिहास के लेखक स्वर्गीय शंकर बालकृष्ण दीक्षित इन्होंने "मन्मत" (उनके स्वयं के मत) नामक वेध सिद्ध ऐसे जो नक्षत्र योग ताराओं के निरयन भोग अपने ग्रंथ में दिये हैं उसी मतों का आश्रय लेकर पृष्ठ ३६२ पर नक्षत्र योगतारा, उनके अंग्रेजी भाषा के नाम, निरयन भोग और शर इनकी जानकारी कोष्टक रूप से दी है।

कोष्टक = नक्षत्र, योगतारा, निरयन भोग और शर

	नक्षत्र	अंग्रेजी में नाम	कदंबाभिमुख योग		कदंबाभिमुख शर		नक्षत्र विभाग का समाप्ति स्थान	
			अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला
१	अश्विनी	वीटा एरैटिस	१०	६	३८	२९	१३	२०
२	भरणी	४१ एरैटिस	२४	२२	उ १०	२७	२६	४०
३	कृत्तिका	ईटा टारी	३६	६	उ ४	३	४०	००
४	रोहिणी	आल्डिवरान	४५	५७	द ५	२८	५३	२०
५	मृगशिरा	लांब्डा ओरायन	५९	५२	द १३	२४	६६	४०
६	आर्द्रा	ब्यामा जे मिनोरभ	७५	१६	द ६	४६	८०	००
७	पुनर्वसु	पोलक्स	८९	२४	उ ६	४२	९३	२०
८	पुष्य	डेल्टा कांक्री	१०४	५३	उ ०	४	१०६	४०
९	आश्लेषा	झीटा हैड्री	११०	४४	द १०	५९	१२०	००
१०	मघा	रेग्युलस	१२६	०	उ ०	२८	१३३	२०
११	पूर्वा फाल्गुनी	धीटा लियोनिस	१३९	३५	उ ६	४२	१४६	४०
१२	उत्तरा फाल्गुनी	डेनीबोला	१४७	४७	उ १२	१७	१६०	००
१३	हस्त	डेल्टा कार्व्ही	१६९	३७	द २२	११	१७३	२०

	नक्षत्र	अंग्रेजी में नाम	कदंबाभिमुख योग		कदंबाभिमुख शर		नक्षत्र विभाग का समाप्ति स्थान	
			अंश	कला	अंश	कला	अंश	कला
१४	चित्रा	स्पायका	१८०	०	द २	३	१८६	४०
१५	स्वाती	आर्क टयूरस	१८०	२४	उ ३०	४८	२००	००
१६	विशाखा	आल्फा लिब्रा	२०१	१५	उ ०	२०	२१३	२०
१७	अनुराधा	डेल्टा स्कार्पी	२१८	४४	द १	५९	२२६	४०
१८	ज्येष्ठा	अंटारीस	२२५	५६	द ४	३४	२४०	००
१९	मूला	लांब्डा स्कार्पी	२४०	४५	द १३	४७	२५३	२०
२०	पूर्वाषाढ़ा	लांब्डा साजिटारी	२५२	२९	द २	७	२६६	४०
२१	उत्तराषाढ़ा	पाय साजिटारी	२६२	२५	उ १	२७	२८०	००
	अभिजित्	व्हीगा	२६१	२९	उ ६१	४४	—	—
२२	श्रवण	आल्टेर	२७७	५६	उ २९	१८	२९३	२०
२३	धनिष्ठा	आल्फा डेल्फिनी	२९३	३३	उ ३३	२	३०६	४०
२४	शतभिषा	लांब्डा अंक्वेरियस	३१७	४५	द ०	२४	३२०	००
२५	पूर्वा भाद्रपदा	माकवि	३२९	४०	उ १९	२४	३३३	२०
२६	उत्तरा भाद्रपदा	आल्जेनिब	३४५	१६	उ १२	३६	३४६	४०
२७	रेवती	म्यूपिशियम	३५९	१७	उ ३	४	३६०	००
	रेवती	झीटा पिशियम्	३५६	३	द ०	१३	—	—

अब इन योग ताराओं के अन्तर का विचार करने से एक बात स्पष्ट रूप से ऐसी दिखाई पड़ती है कि सूर्य के वर्तुलाकृति भ्रमण मार्ग के (क्रान्तिवृत्त के) कुल मिलाकर ३६०° अंश जो होते हैं उनके इन योगतारा से २७ समान भाग नहीं बनते। गणित की दृष्टि से उस वर्तुलाकृति मार्ग के २७ समान विभाग किये तो प्रत्येक भाग की लम्बाई १३° अंश २० कला होती है। परन्तु अश्विनी का तारा जहाँ है वहीं तक ही अश्विनी नक्षत्र का विभाग मानना पड़े तो वह १० अंश ९ कला पर ही समाप्त करना पड़ेगा। उसी प्रकार गणित की दृष्टि से किये हुए १३ अंश २० कला के प्रत्येक विभाग में उपरोक्त भोगों के अनुसार कभी-कभी दो नक्षत्रों के तारे आ सकते हैं; अथवा किसी एक विभाग में कोई भी तारा बिलकुल आता ही नहीं। उदाहरणार्थः— चौदहवाँ नक्षत्र चित्रा, उसका विभाग १७६° अंश २०′ कला से लेकर १८६° अंश ४०′ कला तक है और उसमें चित्रा और स्वाती इन दो नक्षत्रों के तारे आये हुए हैं। उसी प्रकार पन्द्रहवाँ स्वाती नक्षत्र विभाग १८६° अंश ४० कला′ कला से २००° अंश ०′ कला तक है और उस विभाग में एक भी तारा नहीं है। तात्पर्य योगतारा के अनुरोध से अड़चनें पैदा होंगी। इसलिए नक्षत्र चक्र में के १३° अंश २०′ कला इतने विभाग को नक्षत्र ऐसी संज्ञा देकर २७ नक्षत्रों से ३६०° अंशों का वर्तुल पूर्ण होता है, ऐसा गणित के लिये मानना आवश्यक पड़ता है। इस रीति से बाईस नक्षत्रों के योग तारे अपने-अपने विभागों से आते हैं, परन्तु स्वाती, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा और श्रवण इस पाँच नक्षत्रों के तारे मात्र उनके अपने विभागों में नहीं आते। विद्वान् खगोलज्ञ कृष्णराम बालजी भट्ट का इस विषय में ऐसा कहना है कि 'चित्रा तारा का निरयन भोग १८०° अंश ५१′ कला, २७ विकला (लगभग १८०° अंश ५२′ कला) आवे इस प्रकार निरयन राशि का चक्रारम्भ स्थान मानकर तदनुसार समान २७ नक्षत्र विभाग किये जावें तो उपर्युक्त नक्षत्र योगतारा भोगों के अनुसार २४ नक्षत्रों की योगतारा अपने अपने विभागों में आते हैं और स्वाती; उत्तराषाढ़ा और श्रवण इतने ही सिर्फ तीन नक्षत्र योगतारा अपने-अपने विभाग में नहीं आते। इस प्रकार के राशि चक्रारम्भ स्थान को आद्य सूर्यसिद्धान्त, द्वितीय सूर्यसिद्धान्त और वेदांग ज्योतिष इन सर्वमान्य ग्रन्थों का आधार मिलता है। मात्र इनमें से वेदांग ज्योतिष का आधार लेते समय उसमें दिये हुए अनुसार उदगयन धनिष्ठापुंज में के आल्फातारा के पास नहीं मानकर बीटा तारा के पास ही मानना पड़ेगा और

धनिष्ठा नक्षत्र योगतारा के प्राचीन वर्णन के अनुसार बीटा धनिष्ठा यही योगतारा ठहराने के लिए भी योग्य है।' श्री भट्ट के मतानुसार देखते हुए नक्षत्र विभाग और योगतारा इनकी संगति सबसे अधिक जमती है इसमें सन्देह नहीं है। प्राचीन सर्वमान्य ग्रन्थों का भी इस राशि चक्रारम्भ स्थान को आधार प्राप्त है ही।

तात्पर्य नक्षत्र चक्र के सूर्य के वर्तुलाकृति भ्रमण मार्ग में (क्रान्तिवृत्त में) आरम्भ से १३° अंश २०′ कला इतना एक-एक विभाग मानकर उसे अश्विनी भरणी, कृत्तिका इत्यादि उपर्युक्त कहे हुए नाम (संज्ञा) देने में आये हैं। आज नक्षत्र कौन सा है? ऐसा प्रश्न आने पर चन्द्रमा का परिभ्रमण जिस नक्षत्र में उस दिन सूर्योदय के समय चल रहा हो वह नक्षत्र कहना चाहिये। पंचांगों में नक्षत्रों का नाम दिया जाता है। मध्यमान में चन्द्रमा को एक नक्षत्र विभाग तय करने के लिए १ दिन, ० घटी, ४२ पल, ५३·२८८ विपल लगते हैं। चन्द्रमा और सूर्य इनके भोगों की जोड़ को योग ऐसा कहते हैं, वह जोड़ ८०० कला होने पर, एक योग होता है।

दैनिक नक्षत्र चक्र—परिभ्रमणात्मक प्रत्येक नक्षत्र को आरम्भ लगने वाला समय

	मि० सेकन्ड		मि० सेकन्ड		मि० सेकन्ड		मि० सेकन्ड
अश्विनी	४५- ०	पुष्य	४९- ६	स्वाती	५७-४७	श्रवण	५०-१३
भरणी	४५-३०	आश्लेषा	५९- ७	विशाखा	५८-१३	धनिष्ठा	४७:२१
कृत्तिका	५०-५०	मघा	५७-२०	अनुराधा	५९-३४	शतभिषा	४४-४५
रोहिणी	५२-२७	पूर्वा-फाल्गुनी	५७-२०	ज्येष्टा	५९-३३	पूर्वा-भाद्रपदा	४४-०१
मृग	५४-५६	उत्तरा-फाल्गुनी	५६-४०	मूला	५७-५५	उत्तरा-भाद्रपदा	४२-४०
आर्द्रा	५७-२४	हस्त	५७-५७	पूर्वाषाढ़ा	५५-०२	रेवती	४२-४०
पुनर्वसु	५८-३०	चित्रा	५९- ६	उत्तरा-षाढ़ा	५१-५३	कुल योग	१४४० मि.

—नक्षत्र-चक्र—

जन्मर्क्ष	कर्मर्क्ष	आधान	सूचक	स्वामीग्रह	दशाफल
अनुराधा	उत्तराभा.	पुष्य	—	शनि	श्रेष्ठ
ज्येष्ठा	रेवती	आश्लेषा	सम्पत्	बुध	धनलाभ
मूला	अश्विनी	मघा	विपत्	केतु	दुःखदायक
पूर्वाषाढ़ा	भरणी	पूर्वाफाल्गुनी	क्षेम	शुक्र	स्वस्थ
उत्तराषाढ़ा	कृत्तिका	उत्तराफा.	प्रत्यरि	सूर्य	धनहानि
श्रवण	रोहिणी	हस्त	साधक	चन्द्र	उन्नति
धनिष्ठा	मृगसिरा	चित्रा	(निधन)वध	मंगल	रोग, दुःख
शतभिषा	आर्द्रा	स्वाती	मैत्र	राहु	लाभ
पूर्वाभाद्रपदा	पुनर्वसु	विशाखा	अतिमैत्र	बृहस्पति	परम लाभ

जिस नक्षत्र में जातक का जन्म होता है उस नक्षत्र को जन्मर्क्ष (जन्म-नक्षत्र), उस नक्षत्र से दशम नक्षत्र जो होता है उसे कर्मर्क्ष (कर्म-नक्षत्र) तथा उससे उन्नीसवाँ नक्षत्र जो होता है उसे आधान-नक्षत्र—ऐसा कहते हैं। इस जन्मर्क्ष, कर्मर्क्ष तथा आधान नक्षत्र से जो दूसरा नक्षत्र होता है उसे सम्पत्, तीसरे को विपत्, चौथे को क्षेम, पाँचवें को प्रत्यरि, छठे को साधक सातवें को निधन (वध), आठवें को मैत्र तथा नववें को परममैत्र ऐसा कहते हैं।

यदि कोई भी जन्मकालीन ग्रह सम्पत्, क्षेम, साधक, मैत्र अथवा परम मैत्र इन नक्षत्रों में होकर जब उस ग्रह की अन्तर्दशा आती है उस समय वह दशा श्रेष्ठ होती है और उस समय श्री' लाभ और आरोग्य इनकी प्राप्ति होती है। उदाहरणार्थ—ऊपर का कोष्ठ देखिये। यदि किसी का जन्म अनुराधा नक्षत्र में हुआ हो तो उसके नक्षत्रबोधक चक्र ऊपर लिखे हुए अनुसार जानना।

परिशिष्ट (२)

ग्रंथान्तर सिद्ध अरिष्टप्रद नक्षत्र

रेवती-अश्विनी, आश्लेषा-मघा, ज्येष्ठा-मूला इन नक्षत्रों की सन्धि को गण्डात ऐसा कहते हैं। अश्विनी नक्षत्र से प्रत्येक नववें (९) वें नक्षत्र के अन्त में तथा दशवें नक्षत्र के आरम्भ में (एक प्रहर प्रमाण) गंडांत योग

होता है। कारण अश्विनी नक्षत्र से नववें नक्षत्र के अन्त में चार राशियां पूर्ण होती हैं। अश्विनी नक्षत्र से नववां नक्षत्र आश्लेषा है। एक एक नक्षत्र १३° अंश २०′ कला का होता है। इसलिए १३°–२०′×९=४ राशि कर्क। इस प्रकार आगे मघा नक्षत्र से याने सिंह राशि से ज्येष्ठा नक्षत्र तक (नववां नक्षत्र) चार राशि वृश्चिक होती है। मूला नक्षत्र से अर्थात् धनु राशि से आरम्भ होकर नववां नक्षत्र रेवती आता है याने चार राशि मीन होती हैं। इनमें की कोई भी राशि का आरम्भ नक्षत्र के प्रथम चरण से नहीं होता। सिर्फ मेष राशि का प्रारम्भ अश्विनी नक्षत्र के प्रथम चरण से, सिंह राशि का प्रारम्भ मघा नक्षत्र के प्रथम चरण से और धनुराशि का प्रारम्भ मूला नक्षत्र के प्रथम चरण से होता है। नौ (९) नक्षत्र की एक शृंखला जहाँ समाप्त होती है और दूसरे नौ (९) नक्षत्र की दूसरी शृंखला आरम्भ होती है उसे गंड (गांठ) ऐसा कहते हैं। यह शृंखला मीन, कर्क, तथा वृश्चिक राशि में समाप्त होती है और मेष, सिंह, धनु राशि से पुनः नौ (९) नक्षत्रों की शृंखला आरम्भ होती है। इसलिए ये तीन स्थान (रेवती-अश्विनी; आश्लेषा-मघा; ज्येष्ठा-मूला इन नक्षत्रों की संधि) राशि चक्र के तीन खंड (भाग) हैं। इस संधि पर जब चन्द्रमा होता है वह समय जन्म लेने वाले जातक के लिए घोर अरिष्ट का होता है। इस संधिकाल की अरिष्ट सीमा इस प्रकार है।

(क) रेवती नक्षत्र का अंतिम ४ दण्ड तथा अश्विनी नक्षत्र के आरम्भ के ४ दण्ड याने चन्द्रमा ११°–२९′–०″ से ०–०′०–५०″ तक संध्या गंड संज्ञक है।

(ख) आश्लेषा नक्षत्र के अंतिम ४ दण्ड तथा मघा नक्षत्र के प्रारम्भ के ४ दण्ड=याने चन्द्रमा ३°–२९′–१०″ से ४°–०′–५०″ तक रात्रिगंड संज्ञक है।

(ग) ज्येष्ठा नक्षत्र के अंतिम ४ दण्ड तथा मघा नक्षत्र के प्रारम्भ के ४ दण्ड=याने चन्द्रमा ७°–२९′–१०″ में ८°–०′–५०″ तक=याने दिवागंड संज्ञक अथवा अभुक्त मूल है।

उपरोक्त गणना के अनुसार यदि किसी भी जातक की भोग्यदशा बुध की १ वर्ष अथवा केतु की भोग्य वर्षादि दशा ६।८ से ७ वर्ष तक जन्मतः हो तो उस जातक का जन्म गंण्डात में हुआ है ऐसा समझना चाहिए। यह गण्डांत काल उसको स्वयं को और परिवार के लिए घोर अरिष्टप्रद समझना चाहिये।

(घ) ज्येष्ठा नक्षत्र के भभोग के दस १० भाग करना। इन १० दस भागों में से जिस भाग में जातक का जन्म हुआ हो उसके फल नीचे लिखे अनुसार प्राप्त होंगे :—(भभोग के याने नक्षत्र के कुल काल के समान १० भाग) ।

पहिले भाग में जन्म हुआ हो तो माता की माँ मृत होती है; दूसरे में माता के पिता की मृत्यु; तीसरे में मातुल नाश; चौथे में मातृ नाश; पाँचवे में स्वयं का नाश; छठे में गोत्रजनाश; सातवें में माता के कुल और पिता के कुल का नाश; आठवें में-ज्येष्ठ बुध का नाश; नवम में श्वसुर का नाश; और दशवें में सर्वस्व नाश इस प्रकार फल प्राप्ति है।

ज्येष्ठा नक्षत्र पर जन्म हुआ जातक अपने ज्येष्ठ भ्राता का नाश करता है और कन्या जन्मी हो तो उसके ज्येष्ठ देवर का नाश होता है। ज्येष्ठा नक्षत्र पर मंगलवार को जन्म हो तो ज्येष्ठ भ्राता का नाश। ज्येष्ठा नक्षत्र के प्रथम चरण में ज्येष्ठ भ्राता का नाश; द्वितीय चरण में छोटे भ्राता का नाश; तृतीय चरण में माता पिता का नाश; और चतुर्थ चरण में जन्म हो तो स्वयं का नाश होता है। प्रथम तीन चरणों में जन्म लिया हुआ जातक श्रेष्ठ होता है। इस नक्षत्र का दोष १५ महिने तक रहता है।

(ङ) मूला नक्षत्र के प्रथम चरण में हो तो पितृनाश; दूसरे में मातृनाश; तीसरे में द्रव्यनाश और चौथे में कुलनाश--ऐसे फल हैं। कोई मूला का चतुर्थ चरण शुभ मानते हैं।

मूला नक्षत्र के भभोग काल के १५ समान भाग करना याने भभोग को १५ से भाग देना और जो लब्धि आवेगी वह एक खण्ड होता है। इस प्रकार १५ खण्डों का फलादेश नीचे दिये अनुसार है।

(१) पिता को; (२) चाचा को; (३) बहिन के पति को; (४) मातृ पक्ष को (नानी); (५) माता को (६) मौसी को; (७) मामा को; (८) काकी (चाची) को; (९) सबको; (१०) पशुओं को (घर में के पालतू जानवर गाय, भैंस, घोड़ा इत्यादि); को (११) नौकर को; (१२) स्वयं को; (१३) ज्येष्ठ भ्राता को; (१४) बहिन को; (१५) नाना को—इन लोगों को अरिष्टप्रद है।

(च) आश्लेषा नक्षत्र में जन्म हो तो ९ मास तक दोष रहता है। आश्लेषा नक्षत्र के पहिले पाँच ५ घटिका में जन्म हुआ तो राज्य लाभ; उसके आगे के सात ७ घटिका में पितृनाश; उसके आगे २ घटिका में मातृनाश; उसके आगे के ३ घटिका में कामभोग;

उसके आगे की ४ घटिका में पितृ भक्ति उसके आगे के ८ घटिका में बल प्राप्ति, उसके आगे के ११ घटिका में हिंसकता; उसके आगे के ६ घटिका में त्याग; उसके आगे के ६ घटिका में भोग और उसके आगे के ५ घटिका में धन इस प्रकार फलादेश हैं।

आंश्लेषा नक्षत्र के प्रथम चरण में जन्म हो तो शुभ; दूसरे में धन नाश; तीसरे में मातृनाश और चौथे चरण में पितृनाश इस प्रकार चरणपरत्वे फलादेश है।

(छ) अश्विनी, मघा मूला इनके प्रथम चरण-पिता को; रेवती, ज्येष्ठा, आश्लेषा के चतुर्थ चरण-पिता को अरिष्टप्रद होते हैं।

(ज) रात्रि में रेवती के प्रथम चरण में माता को, दिन में ज्येष्ठा के चतुर्थ चरण में पिता को, सायंकाल में आश्लेषा के चतुर्थ चरण में भ्राता को अरिष्टप्रद होता है। इस गंण्डांत में दिन में जन्म हो तो पिता को और रात्रि में जन्म हो तो माता को और सायंकाल में जन्म हो तो–स्वयं को अरिष्टप्रद होता है।

पूर्वाषाढ़ा-धनु लग्न में जन्म हो तो–पिता का नाश; पुष्य–कर्क लग्न में जन्म हो तो–पिता की मृत्यु, उत्तराफाल्गुनी प्रथम चरण में, पुष्य के द्वितीय चरण में; चित्रा के तृतीय चरण में, भरणी-पूर्वार्ध, हस्त-तृतीय चरण में, रेवती--चतुर्थ चरण में, अन्त भाग में जन्म हुआ तो पिता को अरिष्ट लाता है। पुत्री का जन्म हो तो माता को अरिष्ट होता है। अनिष्ट इन वर्षों में होता है—अश्विनी गंड का दोष–१६ वें वर्ष में; मघा गंड का दोष–८ वें वर्ष में; ज्येष्ठा गंड का दोष—१ वर्ष ३ महिने पर; पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र का दोष ६ महिने में = पिता को अरिष्टप्रद होता है। अभुक्त मूल का बालक उसी क्षण में (जन्मते ही) पिता का नाश करता है।

आषाढ़, पौष, मार्ग शीर्ष, ज्येष्ठ मासों के गण्डदोष अधिक अरिष्टप्रद होते हैं इनमें मृत्यु होने की सम्भावना रहती है। अन्य मासों में जन्म होने पर इतने तीव्र उग्र फल नहीं मिलते और उनका अरिष्ट बल क्षीण रहता है।

स्पष्टी करण:—

ग्रंथों में गंडांत दोषों के अनेक वक्तव्य हैं। प्राचीन समय में इस दोष को लोग इतने मानते थे कि यदि किसी भी बालक का जन्म अभुक्त मूल में हुआ तो उसका मुख परिवार का कोई भी नहीं देखता था। उसे त्याज्य

किया जाता था अथवा उसे दूसरी जगह पालन पोषण के लिए भेज दिया जाया करता था। अभुक्तमूल में जन्म लेनेवाले व्यक्तियों का जीवन-इतिहास देखने पर लेखक ने उसके परिवार को अरिष्टों से घिरा हुआ पाया है परन्तु अन्य शुभग्रहों के प्रभाव के कारण गंडांत दोष की तीव्रता कम अथवा दूर होते हुए देखी गयी है। गण्डांत इत्थंभूत अरिष्टप्रद होता है ऐसा नहीं है। कुछ जातियों में जिस बालक का जन्म मूला नक्षत्र में होता है तो उसका नाम मूलचन्द रखते हैं, ऐसी प्रथा है और जिस व्यक्ति का नाम मूलचन्द हो तो समझना कि उसका जन्म मूल नक्षत्र में हुआ है और उसकी राशि धनु है। निम्नलिखित नक्षत्र विष घटिका कहलाती है और इन विष घटिकाओं में जन्म हुआ तो नीचे लिखे अनुसार फल प्राप्त होते हैं।

नक्षत्र	चरण	अरिष्ट	नक्षत्र	चरण	अरिष्ट
पुण्य	१	पिता को	पूर्वाषाढ़ा	१	माता को
	२	माता को		२	चाचा (काका) को
	३	जातक को		३	जातक को
	४	मामा को		४	पिता को
मूला	१	पिता को	आश्लेषा	१	शुभ
	२	माता को		२	परिवार के लिये
	३	समस्त परिवार को		३	माता के लिये
	४	स्वयं को उन्नतिकारक		४	पिता के लिये
हस्त	१	जातक को			
	२	चाचा को (काका को)			
	३	माता को			
	४	पिता को			

ज्येष्ठा नक्षत्र की अन्तिम १ अथवा २ घटिका और मूला नक्षत्र की प्रथम २ घटिका—इतने समय को "अभुक्त मूल" कहते हैं। यही काल (समय) नक्षत्र गण्डांत में का भी है।

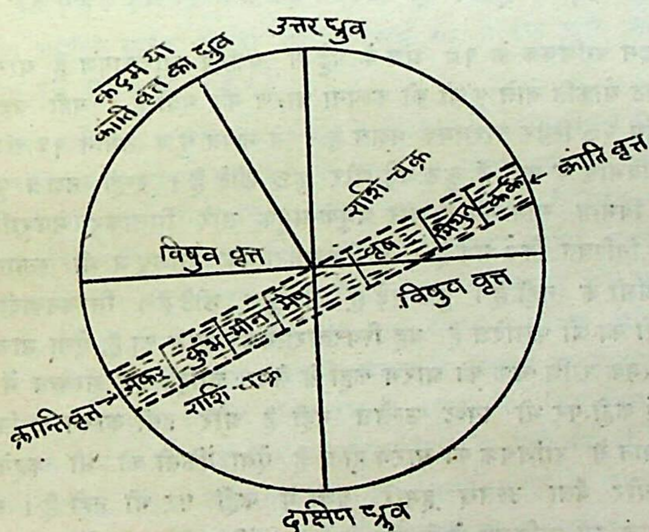
इस अभुक्तमूल के समय जन्म हुआ तो ८ वर्ष तक उस बालक का त्याग करना चाहिये और उसके पश्चात शांति करनी चाहिये—इतना अरिष्ट फल है। मूल नक्षत्र में जन्म होकर जन्म समय में २।५।११ इस राशि का लग्न हो तो मूला स्वर्ग लोक में होती है उसका फल राज्य प्राप्ति; ३।७।६।१२ राशि

का लग्न हो तो मूला पाताल में रहती हैं; उसका फल धन प्राप्ति; और १।६।४।१० राशि का लग्न हो तो मूला मनुष्य लोक में रहती है; उसका फल—शून्य है। मूल नक्षत्र का और भी विवेचन ग्रंथांतरों में दिया है।

परिशिष्ट—(३)

राशि

सूर्य जिस मार्ग में से फिरता (भ्रमण करता) हुआ दिखाई पड़ता है, उस मार्ग को क्रान्तिवृत्त ऐसा कहते हैं, इसी मार्गके आस पास सब ग्रह भ्रमण करते हुए हमें दिखाई देते हैं, मात्र वे कभी इस क्रान्तिवृत्त के उत्तर की तरफ से जाते हुए दिखाई पड़ते हैं तो कभी दक्षिण तरफ की बाजू से जाते हुए दिखाई देते हैं। इस क्रान्तिवृत्त की मर्यादा उत्तर को ९ नौ अंश और दक्षिण को ९ अंश है अर्थात् यह अठारह १८ अंश का क्रान्तिवृत्त का पट्टा है और उसमें रविचन्द्रादि सर्व ग्रह भ्रमण करते हैं। सिर्फ रवि ही अकेला क्रान्तिवृत्त की मध्य-रेखा में से फिरते रहता है और यही कारण है कि रवि को कभी भी शर नहीं हो सकता। ग्रहों का क्रान्तिवृत्त के उत्तर तरफ का या दक्षिण तरफ का जो अन्तर होता है उसे शर कहते हैं। इस क्रांतिवृत्त के तीस-तीस अंशों के बारह समभाग किये गए हैं और उन्हें ही राशि कहते हैं। इस राशि-चक्र का आरंभ मेष राशि से होता है।



विषुववृत्त और क्रांतिवृत्त इसका जो छेदन बिन्दु राशिचक्र पर पड़ता है उस संपात बिन्दु से याने वसंत संपात से राशिचक्र का आरंभ होता है ऐसा आज सायनवादी, युरोप और अमेरिका वगैरे पाश्चात्य राष्ट्र मानते हैं। यह संपात बिंदु राशिचक्र को अथवा क्रान्तिवृत्त को दो जगह पर छेदन करता है। एक छेदन को वसंत संपात और दूसरे को शरद् संपात कहते हैं। वसंत संपात में सूर्य आनेपर उत्तरगोलार्ध में वसंत ऋतु का प्रारंभ होता है, और यहीं से देवताओं के दिन का आरंभ होता है। शरत् संपात में सूर्य आनेपर यहीं पर सूर्य आने पर उत्तर गोलार्ध में शरद ऋतु का आरंभ होता है। और राक्षसों के दिन का आरंभ होता है। इन दोनों जगह पर सूर्य आने पर दिनमान समस्त पृथ्वी पर समान होता है। यह संपात यदि स्थिर होता तो राशिचक्र के आरंभ स्थान का विवाद कभी भी उत्पन्न नहीं होता। परंतु इस संपात को ५०.२ विकला हर वर्ष की विलोम गति है और उस कारण से राशिचक्र का आरंभ स्थान पीछे हटता जा रहा है और वह ७२ वर्ष में एक अंश पीछे हटता है। इस कारण से ७२ वर्ष पूर्व में जहाँ पर वसंत संपात का आरंभ हुआ था अथवा जहाँ पर दिनमान समान हुआ था, अब उस जगह पर, वह वहाँ न होकर एक दिन पीछे हटा हुआ देखने को मिलता है। इस प्रकार ऋतुचक्र का विपर्यय होकर उसका सब भ्रमण २५८६८ वर्षो में होता है। यदि हम हमारे आहार विहारादि व्यवहार और धर्मकृत्य ऋतु के अनुसार नहीं रखेंगे तो हमारा जीवन चल सकेगा क्या ?

इस राशिचक्र के १८ अंश के पट्टे में असंख्य तारकागण हैं और उनके विशिष्ट आकृति वाले पुंजों की कल्पना धारण की गयी है। यही वह हमारे सत्ताईस २७ स्थिर तारात्मक नक्षत्र हैं। ये नक्षत्र पुंज समान १३ अंश २०' कला विभाग के नहीं हैं, कुछ बड़े और कुछ छोटे हैं। इन्हीं नक्षत्र पुंजों के बारह विभाग माने गये हैं और अमुक-अमुक तारे मिलाकर मेषराशि, इस प्रकार निश्चित किये गये हैं। वे स्थिरतारात्मक राशिपुंज भी समान ३०° तीस अंशों के नहीं हैं। कुछ बड़े हैं तो कुछ छोटे हैं। निरयनवादी लोग राशियों का जो फलादेश है वह स्थिरतारात्मक राशि का है, ऐसा मानते हैं। नक्षत्रात्मक राशि चक्र का आरंभ कहाँ से लेना चाहिये इस सम्बन्ध में हमारे ग्रंथों में कहीं पर भी स्पष्ट उल्लेख नहीं है और इसी कारण से निश्चित एक स्थान से राशिचक्र का आरंभ होता है ऐसा किसी को भी कहने नहीं आता और वैसा उल्लेख हमारे ग्रंथों में कहीं पर भी नहीं है। संपातों का भ्रमण इस राशिचक्र में से होने के कारण भिन्न-भिन्न जगहों पर वसंतारंभ

हुआ था ऐसा तो जैनग्रंथों में पढ़ने को मिलता है। भारतीय आर्यों को बारह राशियों की जानकारी नहीं थी, उसी प्रकार संपातगति का ज्ञान भी बहुत प्राचीन काल में हुआ नहीं दिखता। भारतीय आर्यों को २७ सत्ताईस नक्षत्र, तिथि, बारहमास अथवा १२ विभाग इनकी जानकारी थी, और उनको उन्होंने आज की वर्तमान राशियों के नाम नहीं देकर अयन संक्राति, विषु-संक्रांति, विष्णुपदी, षडशिती इत्यादि नामों से सम्बोधन किया हुआ था, वेदों में मेष, वृषभादि बारह राशियों का उल्लेख दिखाई नहीं पड़ता। मेष याने मेंढा, वृषभ याने बैल, युग्म, सिंह इत्यादि शब्द मिलना संभव है, परन्तु इस पर से ये शब्द उन-उन राशियों के द्योतक हैं ऐसा नहीं कह सकते। भारतीय आर्यों के द्वादश-राशि की मेष-वृषभादि संज्ञायें अपने बारह संक्रातियों की हैं। ये संज्ञायें या राशि के नाम हमने बाबीलोनियन, इजिप्शियन, अथवा खाल्डीयन लोगों से ली हैं, ऐसा वर्तमान के विद्वानों का मत है। वैसे ही राशि-चक्र का प्रारंभ हमने उसी प्रकार से ही मेष राशि से अथवा संपात बिंदु से बहुत ही प्राचीन समय से लिया हुआ है।

ईसवी सन के पूर्व १२८ वर्ष में हिपार्कस नामक ज्योतिर्विद को संपात गति का ज्ञान हुआ था। हमारे यहां संपातगति का ज्ञान शके ८०० के लग-भग हुआ और शके ५०० के लगभग अयनगति का ज्ञान हुआ था, ऐसा मालूम पड़ता है (उपरोक्त जानकारी स्वर्गीय शंकरबालकृष्ण दीक्षित इनके भारतीय ज्योतिष शास्त्र अथवा ज्योतिषशास्त्र का प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास इस पुस्तक पर दी है।)

स्थिर राशिचक्र के पाश्चात्य राष्ट्रों के इतिहास के तरफ देखने से उनमें प्रथम राशिचक्र के अथवा क्रांतिवृत्त के दस १० नक्षत्रपुंजात्मक राशियों के विभाग थे और आगे कालांतर से उसकी बारह राशियां निश्चित करने में आयी। बारह राशियों की आकृतियां और नक्षत्रात्मक मर्यादा उनकी और हमारी एकही हैं। अमुक-अमुक तारों को मिलाकर मेषवृषादि जैसा आज हम मानते हैं, वैसे ही वे भी मानते हैं। हम मात्र स्थिर तारात्मक राशिचक्र के मोह में पड़ने से हम में आरंभ स्थान के सम्बन्ध में घोटाला उत्पन्न होकर आज भिन्न-भिन्न अयनांश निर्माण होकर एक ही समय में भिन्न-भिन्न महिने (मासों के नाम) आ रहे हैं। पाश्चात्य देशों में राशिचक्र में फलादेश निर्माण होता है, ऐसा नहीं माना गया है। वसंत संपात से प्रथम विभाग कायम का मेष, फिर उसमें मेष राशि में के तारें हो या नहीं भी हों, उस

विभाग द्वारा निर्देशित फलादेश यह कायम का उस-उस विभाग में रहता है और उसी प्रकार वह तारों के कारण से उत्पन्न होता है ऐसा नहीं होकर आकाश में के क्रांतिवृत्त में यह फलादेश उस-उस विभाग में मिश्रित या निश्चित हुआ है और वह वैसा ही, कुछ भी फेरफार नहीं करके, लेना चाहिये ऐसा "क्लाडियस टॉलमो" इसने अपने टेट्राबेवलास नामक ग्रंथ में कहा है। क्रांति-वृत्त में के जो स्थिर तारे हैं उनके ग्रहों के गुणधर्म के अनुसार वर्गीकरण करके जब जन्म समय में ये स्थिर तारे लग्न बिन्दु पर, दशम बिंदु पर होते हैं अथवा उनके साथ जन्म समय के रवि, चन्द्र अथवा अन्य ग्रह युक्त हुए हुवे हों तब उन-उन स्थिर तारों के गुणधर्म के अनुसार फलादेश लेने के लिए उसने आग्रह किया है और लगभग इस प्रकार क्रांति वृत्त में के १०० से १२५ स्थिर तारों का फलादेश उसने अपने ग्रंथ में दिया हुआ है। तारे स्थिर हैं यह बात तो सच है, परन्तु उनको भी स्वयं की अतिसूक्ष्म गति है।

राशिके आकार, गुणधर्म उनके स्वामी इत्यादि सब बातें आज हमारी और पाश्चात्यों की एक ही हैं और उसपर से वे कहीं तो एक ही समय में प्रगट हुए, होना चाहिये और वहीं से उनका सर्वत्र प्रसार हुआ है। राशियों के आकार नक्षत्र पुंजों पर से बँधे हुए हैं, ऐसा नहीं मालूम पड़ता। ग्रहस्वरूप, राशिस्वरूप, काणस्वरूप और अंशस्वरूप ऐसे पाश्चात्य ग्रंथों में देखने को मिलते हैं। इसपर से ऐसा मालूम पड़ता है कि ये सब स्वरूप कुछ दिव्य-दृष्टि वाले द्रष्टा या व्यक्तियों ने—ऋषियों ने स्वयं देखे हैं और बाद में उन्होंने वे दूसरों को बताया होना चाहिये और इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र में के मूलभूत प्रमेयों का उदय हुआ।

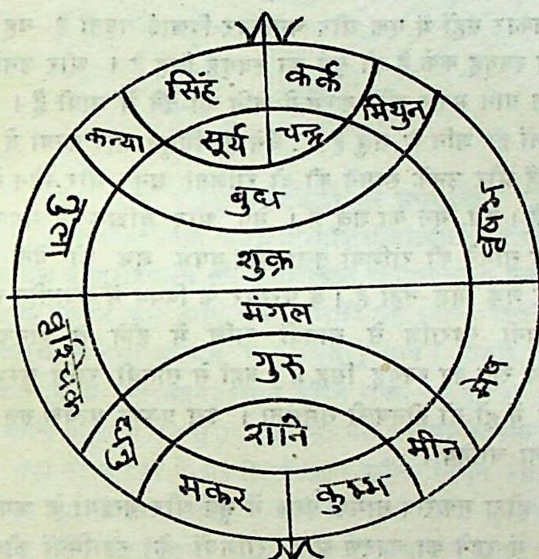
आकाश में के क्रान्तिवृत्त के आरम्भ स्थान से बारह समान विभाग कल्पना करके उस प्रत्येक विभाग को "राशि" ऐसी संज्ञा देने में आयी है। राशि १२ बारह हैं। उनके नाम और पारिभाषिक संज्ञा प्रारम्भिक परिचय में कोष्टक रूप में दी है। वह देखिये—

राशियों का और ग्रहों का सम्बन्ध--

विशिष्ट ग्रह विशिष्ट राशि के अधिपति होते हैं, ऐसा बहुत प्राचीन समय से मानने का प्रघात है। और ऐसा क्यों मानना चाहिये इस सम्बन्ध में अनेकों ने उपपत्ति लगाने के प्रयत्न किये हैं।

सिंहस्याधिपतिर्भानुश्चन्द्रः कर्कटेश्वरः ।
मेषवृश्चिकयोर्भौम. कन्यामिथुनयोर्बुधः ॥२८॥
धनुर्मीनयोर्देवेज्यःशुक्रो वृषतुलेश्वरः ।
शनिर्मकरकुम्भेश इत्येते राशिनायकाः ॥

सिंह राशि का स्वामी रवि, कर्क राशि का स्वामी चन्द्रमा, मेष, वृश्चिक राशियों का स्वामी मंगल, मिथुन और कन्या राशियों का स्वामी बुध, धनु और मीन राशियों का स्वामी गुरु, वृषभ और तुला राशियों का स्वामी शुक्र और मकर तथा कुम्भ राशिओं का स्वामी शनि है। इन्हीं राशियों को उन-उन ग्रहों के स्वगृह कहते हैं।



राशि और ग्रहों का सम्बन्ध-चक्र

राहु का स्वगृह कन्या और केतु का स्वगृह मीन है, ऐसा माना गया है ग्रहों के ये स्वगृह अत्यन्त कुशलता से नियोजित किये गये हैं। कुल मिलाकर बारह राशियों से कर्क राशि से लेकर पिछले छैः ६ राशियों पर चन्द्रमा का अधिकार है और सिंह राशि से आगे की ६ छैः राशियों पर सूर्य का अधिकार है। चन्द्रमा के अधिकार में की छैः ६ राशियाँ सौम्यफल देती हैं और सूर्य के अधिकार वाली छैः ६ राशियाँ उग्रफल देती हैं। चन्द्रमा के अधिकार वाली

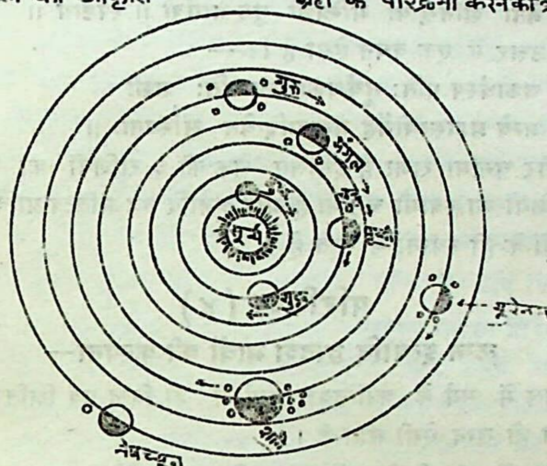
६ छः राशियों में से कर्क राशि की पिछली प्रत्येक राशि पर क्रमशः बुध, शुक्र, मंगल, गुरु और शनि इनका स्वामित्व है, और रवि के अधिकारवाली ६ राशियों में से सिंह राशि से अगली प्रत्येक राशि पर उसी क्रम से बुध, शुक्र, मंगल, गुरु और शनि इनका स्वामित्व है। उपरोक्त श्लोक पर से यह बात ध्यान में आ सकती है। बुध, शुक्र, मंगल, गुरु और शनि इस प्रकार का जो अनुक्रम यहाँ लिया गया है, वह सूर्य के चारों ओर भ्रमण करनेवाले ग्रहों की अनुक्रम से कक्षाएँ जो एक-दूसरे से दूरी पर हैं उसी प्रकार हैं। यही क्रम लघु पाराशरी में ग्रहों की दशान्तर्दशा में स्वीकार किया गया है। इसका वर्णन अगले परिशिष्ट में देखिये।

इस प्रकार ग्रहों में एक और चमत्कार दिखाई पड़ता है यह ऐसा है कि चन्द्रमा का स्वगृह कर्क है तो सूर्य का स्वगृह सिंह है। और उनके सामने की दोनों राशि याने मकर और कुम्भ ये शनि को देने में आयी हैं। चन्द्रमा और सूर्य ये दोनों ही शनि के शत्रु हैं। वैसे ही मिथुन और कन्या ये दो राशि बुध के स्वगृह हैं और उनके सामने की दो राशियां धनु और मीन ये गुरु को देने में आयी हैं। बुध, गुरु का शत्रु है। मेष और वृश्चिक ये मंगल के स्वगृह हैं और उनके सामने की राशियां तुला और वृषभ शुक्र को देने में आयी हैं। मंगल और शुक्र मित्र नहीं हैं। वे परस्पर के विषय में उदासीन ग्रह हैं। कोई भी ग्रह अपनी स्वराशि से सातवीं राशि में होने से हीनवली होता है। उदाहरणार्थ रवि का स्वगृह सिंह है। वहाँ से सातवीं राशि कुम्भ है इसलिएं रवि कुम्भ में हो तो हीनवली समझना। इस प्रकार प्रत्येक ग्रह का हीनवली स्थान देखना चाहिये।

मुहूर्त होरा मकरन्द नामक ग्रन्थ में सूर्य और चन्द्रमा के क्रमशः सिंह और कर्क राशि में रहने का कारण और राशियों के स्वामियों की उपपत्ति का वर्णन इस प्रकार किया है—

कंठीरवं विक्रमिणं विलोक्य स्वीयं पदं तत्र चकार सूर्यः
शैत्यात्तदासन्नतया कुलीरे निजं बबंधालयमेणलक्ष्मा ॥८॥

सिंहादिक छः राशियों में सिंह पराक्रमी है, ऐसा देखकर सूर्य ने अपना स्थान वहाँ चुना। वैसे ही कुम्भादिक छः राशियों में कर्क ठंडे प्रदेश में रहने वाला होने से अपनी शीतल स्वरूप के योग्य है, ऐसा जानकर चन्द्रमा ने अपना स्थान वहाँ चुना।



राशि स्वामियों की उपपत्ति

अन्ये ग्रहा गृहयियाचिषया क्रमेण तिग्मांशुशीतमहसोः सविधं समीयुः ।
प्राप्तक्रमेण ददतुर्भवनानि तौ तु ताराग्रहा द्विभवनास्तत एव जाताः ॥९॥

आगे चलकर कुछ समय बाद मंगलादि ग्रह स्थान मांगने की इच्छा से सूर्य, चन्द्रमा के पास अनुक्रम से (क्रमशः) आये। उनमें प्रथम बुध आया और वह सूर्य के पास अपना स्थान माँगने लगा, तब सूर्य ने अपने आगे की जो कन्या राशि वह बुध को दी। वहाँ से वह चन्द्रमा के पास गया और स्थान माँगने लगा तो चन्द्रमा ने अपनी पिछली राशि मिथुन उसे दी। बाद में शुक्र आया तब सूर्य ने कन्या राशि के आगे की तुला राशि शुक्र को दी और चन्द्रमा ने मिथुन राशि की पिछली राशि वृषभ दी। बाद में मंगल आया तब सूर्य ने तुला की अगली राशि वृश्चिक और चन्द्रमा ने वृषकी पिछली राशि मेष उसे दी। तब वृहस्पति आया और सूर्य ने उसे वृश्चिक राशि के आगे की राशि धनु दी और चन्द्रमा ने मेष की पिछली राशि मीन दी। सबसे आखिरी में शनि आया तब सूर्यं ने धनु राशि की अगली राशि मकर दी और चन्द्रमा ने मीन की पिछली राशि कुम्भ दी। इस प्रकार राशि बाँट देने पर मंगलादि पाँच ग्रहों को दो-दो राशियाँ प्राप्त हुई और सूर्य और चन्द्रमा को एक-एक राशि बची इस प्रकार की व्यवस्था से सात ग्रह राशियों के स्वामी बने। इस सम्बन्ध में ऐसा भी कहा गया है—

शशि-सूर्यौ तु राजानौ युवराजो बुधः स्मृतः।
भौमो नेता शनिर्भृत्यो मन्त्रिणौ गुरु-भार्गवौ ॥ स्पष्टार्थ ॥

इसके उत्तर में एक वचन ऐसा है कि––

चक्रार्धस्य पतिः सूर्यश्चक्रार्धस्य पतिः शशी।
अन्ये ग्रहास्तयोर्गेहे मन्त्र्यादित्वेन संस्थिताः ॥

सूर्य और चन्द्रमा राजा हैं इसलिए चक्र की ६ राशियों का स्वामी सूर्य और ६ राशियों का स्वामी चन्द्रमा है और कुजादि ग्रह मंत्रित्व आदि अधिकारों से युक्त दोनों के ही स्थानों में रहते हैं।

परिशिष्ट (४)

लग्न इत्यादि द्वादश भावों की कल्पना––

इष्टकाल में सूर्य के क्रान्तिवृत्त मार्ग में जो विन्दु पूर्व क्षितिज पर उदय पाता है उसे ही लग्न ऐसी संज्ञा है।

इष्टकाल में उदय क्षितिज में जो राशि लगी रहती है, वह लग्न कहलाती है। सूर्योदय समय में जिस राशि में सूर्य रहता है वही लग्न भी होती है, बाद अहोरात्र भर में १२ राशियों के क्रम से उदय होते हैं।

पूर्व दिशा में जहाँ ग्रह और नक्षत्र का उदय देखने में आता है वह उदय क्षितिज और पश्चिम दिशा में जहाँ अस्त होते देख पड़ता है वह अस्तक्षितिज कहलाता है। नक्षत्रों के समूह का नाम राशि है। आकाश में जहाँ ताराएँ देख पड़ती हैं वह भगोल कहलाता है। भगोल के तुल्य २७ विभाग अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों के नाम से प्रसिद्ध हैं तथा अश्विनी नक्षत्र से भगोल के तुल्य १ रविभाग मेष आदि नाम से १२ राशियाँ प्रसिद्ध हैं।

लग्नादि द्वादश भावों के नाम कौन-से तत्वों पर देने में आये हैं, इस सम्बन्ध में वर्तमान में उपलब्ध ज्योतिषशास्त्र के ग्रन्थों में कहीं भी उल्लेख या विवेचन लेखक के देखने में तो नहीं आया है। तृतीय स्थान को पराक्रम-स्थान क्यों कहना चाहिये, एकादशस्थान को लाभस्थान यह संज्ञा क्यों दी गयी है, इन सब की सयुक्तिक उपपत्ति यदि मालूम हो जावे तो इस शास्त्र का महत्व अधिक बढ़ सकता है, इसमें सन्देह नहीं है। तथापि वेदान्त और व्यवहार इस उभय दृष्टि से विचार किया जावे तो एक विशिष्ट बात जो दृष्टिगोचर होती है, वह ऐसी है कि कुण्डली का कोई भी सप्तम स्थान, जिन स्थान से यह गिन जावे, उस स्थान का परिणाम अथवा कारण स्पष्ट तौर से दिखायी पड़ते हैं और वह स्थान सप्तम स्थान से प्रभावित होता है।

उदाहरणार्थ प्रथम स्थान तनुस्थान है, उससे सप्तम स्थान 'जायास्थान' है और उसे ऐसी संज्ञा दी गई है। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि 'जाया' यह तनु के तेजोबल के लिये लाभदायक नहीं हैं, अथवा 'जाया' गृहस्थाश्रम के लिये भूषण नहीं है ? ऐसा कौन कहेगा ? उसी प्रकार द्वितीय स्थान को धनस्थान की संज्ञा है। धन के द्वारा तनु का नाश होता है ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं। धनस्थान से सप्तम स्थान यह मृत्युस्थान है। इसलिये स्वास्थ्य का नाश होना अनेक प्रसंगों पर दिखाई पड़ता है। इसका कारण यहाँ पर अशुभ ग्रह की दृष्टि से हो अथवा वह अशुभ ग्रह का स्थान हो इत्यादि कुछ भी हो सकता है। पारमार्थिक दृष्टि से यदि विचार किया जावे तो भी धन यह घातक है और इसलिये मुमुक्षुजन उसका तिरस्कार करते हैं। तृतीय स्थान यह पराक्रम स्थान कहलाता है और उससे सप्तम स्थान भाग्यस्थान है। शरीर में पराक्रम होगा तो मनुष्य अपना भाग्य स्वयं निर्माण कर सकता है। चतुर्थस्थान को मातृस्थान कहते हैं। यह पितृस्थान का याने दशम स्थान का जायास्थान हुआ। जायास्थान का परिणाम ऊपर दर्शन कर चुके हैं अथवा दशम स्थान को राज्यपदस्थान मानकर चले हैं और चतुर्थस्थान याने सुख का विचार करें तो राज्य के पीछे जो बड़प्पन होता है उसकी वजह मनुष्य के सच्चे सुख की हानि होती है। उसी प्रकार दशम कर्मस्थान है, और कर्म के द्वारा ही मनुष्य जायदाद अचल सम्पत्ति निर्माण कर सकता है। उसी प्रकार पंचमस्थान से याने विद्यास्थान से सातवें स्थान को लाभस्थान कहते हैं। विद्या याने ज्ञान। यदि ज्ञान हो तभी इष्ट वस्तुओं का लाभ हो सकता है, यह स्पष्ट है। रिपुस्थान से जो सप्तमस्थान है उसे व्ययस्थान कहते हैं - शत्रु के द्वारा तनु, ज्ञान और धन का व्यय किस प्रकार से होता है यह कोई कचहरियों में जिनके भाईबन्धुओं के झगड़े चल रहे हों, उनको पूछने से मालूम हो सकता है। अथवा रिपु याने षड्रिपु माना जावे फिर भी उनके द्वारा भी सब प्रकार से व्यय अर्थात् क्षय होगा ही यह स्पष्ट है। इस प्रकार से प्रत्येक स्थान से उनके सप्तम स्थान में कुछ तो भी कारण सम्बन्ध या परिणाम सम्बन्ध है, ऐसा दिखाई पड़ेगा। इसी प्रकार के तत्वों के कारण और उपर्युक्त कहे हुए अनुसार, द्वादशस्थान के नाम प्रचलित हुए हैं, ऐसा मालूम पड़ता है।

इस सम्बन्ध में पं० सीताराम झा टीकाकार लघुपाराशरी संज्ञाध्याय श्लोक ४ के अन्तर्गत अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं—

(१) **तनुभाव**—जन्म समय में जिस ग्रह का उदय होता है उसका नाम देह के साथ उदय होने तथा शरीर पर उसके किरण के प्रभाव के कारण तनुभाव, रखा गया, इसलिए देह के (अंग, वपु: आदि) जितने नाम हैं, उन सबसे लग्न का बोध होता है ।

(२) **धनभाव**—देह के उदय (शरीरप्राप्ति) होने के अनन्तर ही उस (देह) की रक्षा के लिये धन (अन्न, वस्त्र, द्रव्य) की भावना हृदय में आती है, इसलिये द्वितीय लग्न का धनभाव नाम रखा गया ।

(३) **सहज**—धन की प्राप्ति और रक्षा के लिये पराक्रम करना पड़ता है तथा पराक्रम में सहायक और धन के विभाग कारक सहोदर होते हैं, इसलिये धनभाव के बाद ३ तृतीय भाव का पराक्रम तथा सहजभाव नाम हुआ ।

(४) **सुख**—पराक्रम प्राप्त होने पर—गृह और माता आदि बन्धुओं से सुख की भावना हृदय में आती है, इसलिये तृतीय भावना के बाद चतुर्थ लग्न के मातर्, गृह, बन्धु सुखभाव नाम हुए ।

(५) **सुत**—बन्धु-गृह-सुखलाभ होने पर—'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति' इत्यादि शास्त्र के वचनों से पुत्रप्राप्ति की भावना मन में आती है, अथवा 'ब्रह्मज्ञानं परं सुखम्' विषय सुख की अपेक्षा ब्रह्मज्ञान परम सुख है, ब्रह्मज्ञान विद्या से होता है इसलिये चतुर्थभाव के बाद पंचम लग्न के पुत्रभाव तथा विद्याभाव नाम हुए ।

(६) **रिपुभाव**—पुत्रप्राप्ति की कामना के अनन्तर विवाह करने की कामना हृदय में आती है—परंच 'रोगिणे नैव दातव्या, न मूर्खाय कदाचन' इत्यादि वचनों से रोगियों को कन्या देना निषेध है, अतः शरीर को रोगहीन बनाने की भावना हृदय में आती है, अतः पंचम के बाद षष्ठलग्न का रोग-भाव नाम हुआ । तथा रोग ही अन्तः शत्रु है और शत्रु भी रोगस्वरूप है इसलिये षष्ठभाव का रिपुभाव भी नाम हुआ ।

(७) **जायाभाव** —एवं रोग से मुक्त होने पर स्त्री ग्रहण करने की भावना होती है । अतः सप्तम लग्न का जायाभाव नाम रखा गया ।

(८) **मृत्यु**—जाया (स्त्री) प्राप्ति होने के अनन्तर मृत्यु से बचने और आयुर्दाय बढ़ाने की भावना होती है । अतः अष्टम लग्न का मृत्यु तथा आयुर्भाव नाम हुआ ।

(९) **धर्म**—'आयुर्वृद्धिर्धर्मवृद्ध्या जनानाम्' इत्यादि वचनों से धर्माचरण से ही आयुर्भाव की वृद्धि होती है और मृत्यु का निवारण होता है । अतः मृत्यु-भाव के बाद नवम लग्न का धर्म, तप, पुण्य (भाग्य) नाम हुए ।

(१०) **कर्म**--धर्मवृद्धि के लिये यज्ञ आदि कर्म तथा कर्म सम्पन्नता के लिये राज्य अथवा पिता या पालक (राजा) का आश्रय लेता है। इसलिये दशम लग्न का कर्म, राज्य, तात नाम हुए।

(११) **आय**—पुनः कर्म सम्पन्नता के लिये आय (द्रव्यादिलाभ) की भावना होती है, इसलिये एकादश लग्न का आयभाव नाम हुआ।

(१०) **व्यय**—आय (लाभ) होने के अनन्तर उसका किस प्रकार से व्यय होना चाहिये, ऐसी भावना हृदय में आती है, अतः द्वादश का व्ययभाव नाम हुआ। इस प्रकार बारह लग्न की तनु आदि १२ संज्ञाएँ हुई।

लग्नात् तनुर्धनं भ्राता सुख-पुत्र-रिपु-स्त्रियः।
मृत्यु-धर्मौ च कर्मायो व्ययो भावाः क्रमादमी॥

ज्योतिष शास्त्र में १२ भाव कहे गये हैं उमके नाम क्रमशः ऐसे हैं।

देहं द्रव्यपराक्रमौ सुखसुतौ शत्रुः कलत्रं मतिर्भाग्यं राज्यपदं क्रमेण गदितौ लाभव्ययौ लग्नतः॥

(१) देहभुवन, (२) द्रव्यभुवन, (३) पराक्रमभुवन, (४) सुखभुवन, (५) पुत्रभुवन, (६) शत्रुभुवन, (७) कलत्र-स्त्री भुवन, (८) मृत्यु-आयुष्य भुवन (९) भाग्य भुवन, (१०) राज्य भुवन, (११) लाभ भुवन, और (१२) व्यय भुवन, इस प्रकार के लग्न से आरम्भ होकर १२ भाव मानने में आये हैं।

परिशिष्ट (५)

शुभ और पापग्रह—सम्बन्ध

इस (लघुपाराशरी) ग्रंथ में गुरु, शुक्र, क्षीणचन्द्रमा, और अशुभ ग्रह के साथ बुध इन चार ग्रहों को शुभ ग्रहों में शामिल किया गया है, और सूर्य, शनि, मंगल इनको पापग्रहों में शामिल किया गया है। राहु और केतु ये ग्रह नहीं होने से इनका समावेश ग्रहों में नहीं किया गया है। राहु और केतु के सम्बन्ध में इतनी ही सूचना करना है कि उनका स्थान बल अथवा वे जिस स्थान में बैठे हों उस स्थान के स्वामी के सम्बन्ध बलानुसार वे फल देते हैं।

योगकारक सम्बन्ध—ग्रहों का परस्पर, (आपस का) सम्बन्ध चार प्रकार का होता है, उसका विवेचन इस प्रकार है।

(१) सहयोग, (२) कारकयोग (३) सम्पूर्ण दृष्टियोग (४) एकाकी दृष्टियोग

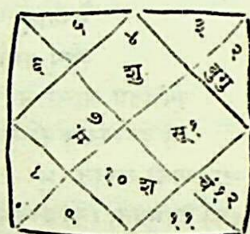
(१) **सहयोग**—एक ग्रह के साथ दूसरा ग्रह पड़ा हो तो उसे सहयोग अथवा सहावस्थान सम्बन्ध कहते हैं।

(२) **कारकयोग**—एक राशि का स्वामी दूसरी राशि में पड़ा हो और दूसरी राशि का स्वामी पहिली राशि में पड़ा हो तो वह अन्योन्याश्रय अथवा कारक सम्बन्ध कहलाता है।

(३) **सम्पूर्ण दृष्टियोग**—एक ग्रह दूसरे ग्रह को और दूसरा ग्रह प्रथम ग्रह को सम्पूर्ण दृष्टि से देखता हैं।

(४) **एकाकी दृष्टियोग**—एक ग्रह दूसरे ग्रह को देखे परन्तु दूसरा ग्रह प्रथम ग्रह को नहीं देखता है।

इस प्रकार ये योग क्रमशः उत्तरोत्तर कम बलवान योग होते हैं।



उदाहरण द्वारा योगकारक सम्बन्ध पाराशरी पद्धति में पूर्ण दृष्टि मात्र लेने में आयी है। एक पाद, द्विपाद, त्रिपाद दृष्टि सम्बन्ध इनका विचार नहीं किया गया है। इस कुंडली में :—

(१) गुरु से चन्द्रमा का परस्परकारक सम्बन्ध एक दूसरे की राशि में होने से अन्योन्याश्रय अथवा कारक सम्बन्ध हुआ है।

(२) मंगल शुक्र की राशि में बैठा है और वह शुक्र को अष्टम दृष्टि से देख रहा है। यह शुक्र मंगल से अष्टमस्थ है। परन्तु मंगल शुक्र से षष्ठ स्थान में है और शुक्र की दृष्टि मंगल पर नहीं है। इस प्रकार एकतर दृष्टि सम्बन्ध हुआ है। इसी प्रकार शनि की दृष्टि चन्द्रमा पर है परन्तु चन्द्रमा की दृष्टि शनि पर नहीं है। उसी प्रकार गुरु चन्द्रमा को देखता है परन्तु चन्द्रमा गुरु को नहीं देखता है। यह भी एकतर-दृष्टि सम्बन्ध है।

मंगल, गुरु और शनि ये एक दूसरे ग्रह के साथ सम्बन्ध करते हैं।

ग्रंथांतरों में सम्बन्ध इस प्रकार भी माने गये हैं—

जातक परिजात ग्रंथ में उपरोक्त चार सम्बन्ध ग्राह्य हैं।

उत्तर कालामृत ग्रंथ में कालिदास ने सिर्फ तीन ही सम्बन्ध ग्राह्य किये हैं वहां पर एकतर दृष्टि सम्बन्ध मान्य नहीं है।

फलदीपिका ग्रंथ में मंत्रेश्वर ने पांच सम्बन्ध ग्राह्य किये हैं वे इस प्रकार हैं।

(१) अन्योन्य राशि सम्बन्ध (२) सहयोग सम्बन्ध (३) परस्पर दृष्टि सम्बन्ध (४) परस्पर केन्द्रस्थित सम्बन्ध (एक दूसरे से केन्द्र में होना) (५) परस्पर त्रिकोण स्थित सम्बन्ध (एक दूसरे से त्रिकोण स्थान में होगा) ग्रंथांतर में सहस्थान स्थिताधिपत्य सम्बन्ध भी माना गया है।

परिशिष्ट (६)

ग्रहों के दीप्तादि गुण (संदर्भ श्लोक)

"दीप्तः स्वस्थः प्रमुदितः शान्तो दीनोऽतिदुःखितः ।
विकलश्च खलः कोपी नवधा खेचरो भवेत् ॥ १ ॥

ग्रह नौ प्रकार के होते हैं—(१) दीप्त, (२) स्वस्थ, (३) प्रमुदित, (४) शान्त, (५) दीन, (६) अतिदुःखित (७) विकल, (८) खल, (९) कोपकारक ।

अब इनके दीप्तादि होने के प्रकार इस प्रकार हैं ।

"उच्चस्थः खेचरो दीप्तः स्वस्थः स्वपतिमित्रभे ।
मुदितो मित्रभे शान्तः समभे दीन उच्यते ॥ २ ॥
शुभभे दुःखितेऽतीव विकलः पापसंयुतः ।
खलः खलगृहे ज्ञेयः कोपी स्यादर्कसंयुतः" ॥ ३ ॥

ग्रह जब अपनी उच्चराशि में अथवा त्रिकोण राशि में होते हैं तब वे दीप्त होते हैं । ग्रह जब स्वगृह में होते हैं तब वे स्वस्थ होते हैं । ग्रह जब मित्र के गृह में हों तब वे प्रमुदित होते हैं । शुभग्रहों की राशि में होते हैं तब वे शांत होते है । ग्रह शत्रुग्रह की राशि में हो तब वे दीन होते हैं । ग्रह, पापग्रहों से युक्त हों तब उन्हें खल कहते हैं, और सूर्य के साथ हों तब कोपी कहते हैं । इसके सिवाय ग्रह जब अपनी नीच राशि में होते हैं, तब वे भीत होते हैं । ग्रह जब सूर्य के तेज से लुप्त होते हैं, तब वे विकल होते हैं ।

ग्रह जब तेजस्वी होते हैं तब वे शक्त होते हैं । ग्रह जब दूसरे ग्रहों से पराजित होते हैं, तब वे प्रपीडित होते हैं (युति समय जो ग्रह दूसरे की दक्षिण तरफ होता है, वह पराजित होता है (ऐसा समझना) ।

दीप्तादि अवस्थाओं के फल इस प्रकार हैं :—

पाके प्रदीप्तस्य धराधिपत्यमुत्साहशौर्ये धनवाहने च ।
स्त्रीपुत्रलाभं शुभबन्धुपूज्यं क्षितीशसन्मानमुपैति विधात् ॥१॥

अपने दीप्तांशक में जो ग्रह होता है उसकी दशा में राज्य प्राप्ति, उत्साह, शौर्य, धन, वाहन, स्त्री, पुत्रलाभ, बन्धुजनों में सम्मान और राज्य से प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ।

स्वस्थस्य खेटस्य दशाविपाके स्वास्थ्यं नृपाल्लब्धधनादि सौख्यम् ।
विद्यां यशः प्रीतिमहत्वमाराहारार्थभूम्यादिजधर्ममेति ॥२॥

स्वस्थ की दशा के परिपाक होनेके समय धीरजता, राज्य से धन का लाभ सुख, विद्या, यश, प्रीति और बड़े आदरपूर्वक स्त्री, धन, भूमि और धर्म का लाभ होता है ।

मुदाऽन्वितस्यापि दशाविपाके वस्त्रादिभूगन्धसुतार्थधैर्यम् ।
पुराणधर्मश्रवणादिलाभं शस्त्रादियानाम्वरभूषणाप्तिम् ॥३॥

जो ग्रह प्रमुदित होता है उसकी दशा के परिपाक के समय वस्त्र भूमि, सुगन्ध, पुत्र, धन, धैर्य, पुराण का श्रवण, शस्त्र आदि, सवारी, शाले-दुशाले और आभूषणों की प्राप्ति होती है ।

दशा विपाके सुखधैर्यमेति शान्तस्य भूपुत्रकलत्रयानम् ।
विद्याविनोदान्वितधर्मशास्त्रं, बह्वर्थदेशाधिपपूज्यतां च ॥४॥

जब शान्त ग्रह की दशा का परिपाक समय आवे उस समय सुख, धीरज पुत्र, भूमि, स्त्री, सवारी (वाहन) विद्या का विनोद, धर्मशास्त्र, बड़े धनवान राज्य से आदरसत्कार, ये फल होते हैं ।

स्थानच्युतिर्बन्धुविरोधिता च दीप्तस्य खेटस्य दशाविपाके ।
जीवत्यसौ कुत्सितहीनवृत्त्या त्यक्तो जनैरोगनिपीडितः स्यात् ॥५॥

प्रदीप्त ग्रहकी दशाके परिपाक समय स्थान का छूटना, कुटुम्ब के लोगों से झगड़ा, कुत्सित, और हींन वृत्ति से जीविका करके जीना, अपने जनों से छूटना और रोगी होना, यह फल होते हैं ।

दुःखार्दितस्यापि दशाविपाके नानाबिधं दुःखमुपैति नित्यम् ।
विदेशगो बन्धुजनैर्विहीनश्चोराग्निभूपैर्भयमातनोति ॥६॥

अति दुःखित ग्रह की दशा का जिस समय परिपाक हो, तब अनेक प्रकार का दुःख होता है, विदेश की यात्रा, कुटुम्ब का वियोग और चोर अग्नि और राजा से भय होता है ।

वैकल्यखेटस्य दशाविपाके वैकल्यमायाति मनोविकारम् ।
मित्रादिकानां मरणं विशेषात्स्त्रीपुत्रयानाम्बरचोरपीडाम् ॥७॥

विकल ग्रह की दशा के परिपाक में विकलता, मन का विकार, मित्रों का मरण और स्त्री, पुत्र, सवारी (वाहन) तथा वस्त्र इनका विशेष दुःख और चोर से पीड़ा होती है ।

दशाविपाके कलहं वियोगं खलस्य खेटस्य पितुर्वियोगम् ।
शत्रोर्जनानां धनभूमिनाशमुपैति नित्यं स्वजनैश्च निन्दाम् ॥८॥

खल ग्रह की दशा के विपाक में कलह हो, वियोग हो, पिता का मरण हो, शत्रु, स्वजन, धन, पृथ्वी, इनका नाश हो और अपने कुटुम्ब के लोगों से निन्दा की जाय ।

कोपान्वितस्यापि दशाविपाके पापाः समायान्ति बहुप्रकारैः ।
विद्याधनस्त्रीसुतबंधुनाशं पुत्रादिकृच्छ्रं त्वथ नेत्ररोगम् ॥९॥

कोप ग्रह की दशा के विपाक में बहुत प्रकार के पाप लगें, विद्या, धन, स्त्री, पुत्र, बन्धु, इनका नाश हो, सन्तति कष्ट हो और नेत्र पीड़ा हो ।

शक्त—ग्रहों की दशा में सब प्रकार के लाभ होते हैं और समय सुख में व्यतीत होता है ।

प्रपीडित—ग्रहों की दशा में अनेक प्रकार के संकट उत्पन्न होते हैं, परदेश-गमन होता है और चोर, अग्नि, राजा, इनसे भय उत्पन्न होता है ।

भीत—ग्रहों की दशा में अनेक प्रकार के दुःख और अनेक प्रकार का भय उत्पन्न होता है ।

विकल—ग्रहों की दशा में विद्या, धन, स्त्री, पुत्र, बन्धु, इनके द्वारा दुःख होता है ।

ग्रंथान्तरों में दीप्तादि १० अवस्था के फल इस प्रकार कहे हैं । जन्म-समय, विवाह के समय और व्यवहार के समय अवस्था अनुसार ग्रह फल देते हैं ।

नाम	स्थिति	फल
(१) दीप्त	उच्च, मूल, त्रिकोण	तेजस्वी कार्य
(२) स्वस्थ	स्वगृह में	धन, कीर्ति
(३) मुदित	मित्रवर्ग में	आनंदी, लक्ष्मी
(४) शांत	शुभ वर्ग में	बड़ा पराक्रम
(५) शक्त	सुवीर्यवान	संपत्ति वान्
(६) पीड़ित	पाप दूषित	कर्तृ कारक
(७) दीन	शत्रुग्रह में	दुःखी
(८) खल	पाप-युक्त	धनहानि
(९) कोपक	अस्तंगत	शत्रुग्रस्त
(१०) भीत	नीचस्थ	कार्यनाशक

परिशिष्ट (७)

बाधक भाव-ग्रह विवरण-चक्र

जन्मकुण्डली में चरलग्न के लिये एकादश स्थान, स्थिर लग्न के लिये नवमस्थान और द्विस्वभाव लग्न के लिये सप्तमस्थान ये बाधक स्थान कहे गये

हैं और बाधा-कारक होते हैं (चर लग्न में ३–६–९–१२ राशियाँ होती हैं) इस प्रकार बाधक स्थानों के अधिपति को बाधकस्थानाधिपति ऐसा कहते हैं। चर लग्न के लिये लाभेश, स्थिर लग्न के लिये नवमेश और द्विस्वभाव लग्न के लिये सप्तमेश बाधकपति होते हैं और इनकी दशा बाधकस्वरूप होकर उसका फल अशुभ मिलता है। अर्थात् हर एक काम में व्यत्यय, देरी, असफलता इत्यादि प्राप्त होते हैं। इस पर भी यदि ये ग्रह अर्थात् बाधक स्थानाधिपति यदि बाधक स्थान में ही स्थित हों तो उनकी अन्तर्दशा भी जातक के लिये हानिकारक होती है और अशुभ फल देती है। इसी प्रकार जो ग्रह बाधक स्थान में हो उसकी भी बाधक-भाव-ग्रह विवरण चक्र नीचे दिया हुआ है, उनपर से उपरोक्त बातों की जानकारी सुगमता से मिल सकेगी।

इस चक्र पर से यह बात सहज ही में ध्यान में आ सकेगी कि जिस जातक का लग्न मेष है, उसे शनि की दशा तथा कुम्भ राशिस्थ ग्रहों की दशा अशुभ फल देने वाली तथा हानिकारक होगी।

बाधक स्थान से १–४–७–१० इन भावों में कोई भी ग्रह क्यों न बैठा हो उस ग्रह की दशान्तर्दशा भी बाधकस्वरूप होती है और जीवन में व्यत्यय उपस्थित करनेवाली ऐसी संकटपूर्ण होती है।

जन्मलग्न	संज्ञा	बाधक राशि	बाधक स्वामी	बाधक भाव
मेष	चर	कुम्भ	शनि	एकादश ११
वृषभ	स्थिर	मकर	शनि	नवम ९
मिथुन	द्विस्वभाव	धनु	गुरु	सप्तम ७
कर्क	चर	वृषभ	शुक्र	एकादश ११
सिंह	स्थिर	मेष	मंगल	नवम ९
कन्या	द्विस्वभाव	मीन	गुरु	सप्तम ७
तुला	चर	सिंह	सूर्य	एकादश ११
वृश्चिक	स्थिर	कर्क	चन्द्रमा	नवम ९
धनु	द्विस्वभाव	मिथुन	बुध	सप्तम ७
मकर	चर	वृश्चिक	मंगल	एकादश ११
कुम्भ	स्थिर	तुला	शुक्र	नवम ९
मीन	द्विस्वभाव	कन्या	बुध	सप्तम ७

परिशिष्ट (८)

आश्विन्यादि २७ नक्षत्रों के समाप्ति काल में स्पष्ट चन्द्रमा राशि अंश कलात्मक कितना होता है, यह नीचे कोष्टक रूप से दिया है उस पर से ध्यान में आवेगा। चन्द्र स्पष्ट करने की रीति पृष्ठ (XXXVI) और (XXXVII) पर दी है वह देखिये। (उत्तराषाढा और श्रवण इनकी संधि को अभिजित कहते हैं।)

नक्षत्र तारा कितने अंशोंपर रा.अं.क.	चन्द्रमा रा.अं.क.	नक्षत्र का नाम	योग का नाम
०–१४–६	०–१३–२०	अश्विनी	विष्कंभ
०–२८–२०	०–२६–४०	भरणी	प्रीति
१–१०–७	१–१०–०	कृत्तिका	आयुष्मान
१–१९–५५	१–२३–२०	रोहिणी	सौभाग्य
२–३ –५०	२–६ –४०	मृगसिरा	शोभन
२–८ –५३	२–२०–०	आर्द्रा	अतिगंड
३–३ –२२	३–३ –२०	पुनर्वसु	सुकर्मा
३–१८–५७	३–१६–४०	पुष्य	धृति
३–२३–४६	४–० –०	आश्लेषा	शूल
४–९ –५८	४–१३–२०	मघा	गंड
४–२३–३२	४–२६–४०	पूर्वाफाल्गुनी	वृद्धि
५–१ –४५	५–१०–०	उत्तरफाल्गुनी	ध्रुव
५–२३–३५	५–२३–२०	हस्त	व्याघात
६–३ –५८	६–६ –४०	चित्रा	हर्षण
६–४ –२२	६–२०–०	स्वाती	वज्र
७–१ –८	७–३ –२०	विशाखा	सिद्धि
७–१२–४२	७–१६–४०	अनुराधा	व्यतिपात
७–१९–५४	८–० –०	जेष्ठा	वरियान
८–३ –०	८–१३–२०	मूला	परिघ
८–१४–४२	८–२६–४०	पूर्वाषाढ़ा	शिव
८–२२–४७	९–१०–०	उत्तरषाढ़ा	सिद्ध
९–११–५३	९–२३–२०	श्रवण	साध्य
८–२५–२६	८-२५-२६	अभिजित्	
९–२७–३१	१०–६–४०	धनिष्ठा	शुभ
१०–२१–४२	१०–२०–०	शतभिषा	शुक्ल
११–४ –४०	११–३ २०	पूर्वाभाद्रपदा	ब्रह्मा
११–२४–२६	११–१६–४०	उत्तराभा०	ऐन्द्र
१२–० –०	१२–० –०	रेवति	वैधृति

परिशिष्ट (९)

(कोष्टक–१)

स्पष्ट चन्द्रमा पर से विंशोत्तरी दशा का भोग्यकाल मालूम करने का कोष्टक

चन्द्रराशि	मेष, सिंह, धनु	वृष, कन्या, मकर	मिथुन, तुला, कुंभ	कर्क, वृश्चिक, मीन
	भोग्यकाल	भोग्यकाल	भोग्यकाल	भोग्यकाल
अंश कला	व. मा. दिन	व. मा. दिन	व. मा. दिन	वर्ष, मास, दिन
०–००	७–०–० केतु	४–६–० रवि	३–६–० मंगल	४–०–० गुरु
०–२०	६–९–२७ ,,	४–४–६ ,,	३–३–२७ ,,	३–७–६ ,,
०–४०	६–७–२४ ,,	४–२–१२ ,,	३–१–२४ ,,	३–२–१२ ,,
१–००	६–५–२१ ,,	४–०–१८ ,,	२–११–२१ ,,	२–९–१८ ,,
१–२०	६–३–१८ ,,	३–१०–२४ ,,	२–९–१८ ,,	२–४–२४ ,,
१–४०	६–१–१९ ,,	३–९–० ,,	२–७–१५ ,,	२–०–० ,,
२–००	५–११–१२ ,,	३–७–६ ,,	२–५–१२ ,,	१–७–६ ,,
२–२०	५–९–९ ,,	३–५–१२ ,,	२–३–९ ,,	१–२–१२ ,,
२–४०	५–७–६ ,,	३–३–१८ ,,	२–१–६ ,,	०–९–१८ ,,
३–००	५–५–३ ,,	३–१–२४ ,,	१–११–३ ,,	०–४–२४ ,,
३–२०	५–३–० ,,	३–०–० ,,	१–९–० ,,	१९–०–० शनि
३–४०	५–०–२७ ,,	२–१०–६ ,,	१–६–२७ ,,	१८–६–९ ,,
४–००	४–१०–२४ ,,	२–८–१२ ,,	१–४–२४ ,,	१८–०–१८ ,,
४–२०	४–८–२१ ,,	२–६–१८ ,,	१–२–२१ ,,	१७–६–२७ ,,
४–४०	४–६–१८ ,,	२–४–२४ ,,	१–११–३ ,,	१७–१–६ ,,
५–००	४–४–१५ ,,	२–३–०– ,,	०–१०–१५ ,,	१६–७–१५ ,,
५–२०	४–२–१२ ,,	२–१–६ ,,	०–८–१२ ,,	१६–१–२४ ,,
५–४०	४–०–९ ,,	१–११–१२ ,,	०–६–० ,,	१५–८–३ ,,
६–००	३–१०–६ ,,	१–९–१८ ,,	०–४–६ ,,	१५–२–१२ ,,
६–२०	३–८–३ ,,	१–७–२४ ,,	०–२–३ ,,	१४–८–२१ ,,
६–४०	३–६–० ,,	१–६–० ,,	१८–०–० राहु	१४ ३–० ,,
७–००	३–३–२७ ,,	१–४–६ ,,	१७–६–१८ ,,	१३–९–९ ,,
७–२०	३–१–२४ ,,	१–२–१२ ,,	१७–१–६ ,,	१३–३–१८ ,,
७–४०	२–११–२१ ,,	१–०–१८ ,,	१६–७–२४ ,,	१२–९–२७ ,,
८–००	२–९–१८ ,,	०–१०–२४ ,,	१६–२–१२ ,,	१२–४–६ ,,
८–२०	२–७–१५ ,,	०–९–० ,,	१५–९–० ,,	११–१०–१५
८–४०	२–५–१२ ,,	०–७–६ ,,	१५–३–१८ ,,	११–४–२४ ,,
९–००	२–३–९ ,,	०–५–१२ ,,	१४–१०–६ ,,	१०–३–११ ,,

चन्द्र राशि अंश-कला	मेष, सिंह, धनु भोग्य काल वर्ष, मास, दिन		वृषभ, कन्या, मकर, भोग्य काल वर्ष, मास, दिन		मिथुन, तुला, कुम्भ, भोग्य काल वर्ष, मास, दिन		कर्क, वृश्चिक, मीन भोग्य काल वर्ष, मास, दिन	
९–२०	२–१–६	केतु	०–३–१८	रवि	१४–४–२४	राहु	१०–५–१२	शनि
९–४०	१–११–३	,,	०–१–२४	,,	१३–११–१२	,,	९–११–२१	,,
१०–००	१–९–०	,,	१०–०–०	चंद्र,,	१३–६–०	,,	९–६–०	,,
१०–२०	१–६–२०	,,	९–९–०	"	१३–०–१८	,,	९–०–९	,,
१०–४०	१–४–२४	,,	९–६–०	,,	१२–७–६	,,	८–६–१८	,,
११–००	१–२–०	,,	९–३–०	,,	१२–१–२४	,,	८–०–२७	,,
११–२०	१–०–१८	,,	९–०–०	,,	११–८–१२	,,	७–७–६	,,
११–४०	०-१०-१५	,,	८–९–०	,,	११–३–०	,,	७–१–१५	,,
१२–००	०–८–१२	,,	८–६–०	,,	१०–९–१८	,,	६–७–२४	,,
१२–२०	०–६–९	,,	८–३–०	,,	१०–४–६	,,	६–२–३	,,
१२–४०	०–४–६	,,	८–०–०	,,	९–१०–२४	,,	५–८–१२	,,
१३–००	०–२–३	,,	७–९–०	,,	९–५–१२	,,	५–२–२१	,,
१३–२०	२०–०–०	शुक्र	७–६–०	,,	९–०–०	,,	४–९–०	,,
१३–४०	१९–६–०	,,	७–३–०	,,	८–६–१८	,,	४–३–९	,,
१४–००	१९–०–०	,,	७–०–०	,,	८–१–६	,,	३–९–१८	,,
१४–२०	१८–६–०	,,	६–९–०	,,	७–७–२४	,,	३–३–२७	,,
१४–४०	१८–०–०	,,	६–६–०	,,	७–२–१२	,,	२–१०–६	,,
१५–००	१७–६–०	,,	६–३–०	,,	६–९–०	,,	२–४–१५	,,
१५–२०	१७–०–०	,,	६–०–०	,,	६–३–१८	,,	१–१०–२४	,,
१५–४०	१६–६–०	,,	५–९–०	,,	५–१०–६	,,	१–५–३	,,
१६–००	१६–०–०	,,	५–६–०	,,	५–४–२४	,,	०–११–१२	,,
१६–२०	१५–६–०	,,	५–३–०	,,	४–११–१२	,,	०–५–१२	,,
१६–४०	१५–०–०	,,	५–०–०	,,	४–६–०	,,	१७–०–०	बुध
१७–००	१४–६–०.	,,	४–९–०	,,	४–०–१८	,,	१६–६–२७	,,
१७–२०	१४–०–०	,,	४–६–०	,,	३–७–६	,,	१६–१–२४	,,
१७–४०	१३–६–०	,,	४–३–०	,,	३–१–४	,,	१५–८–२१	,,
१८–००	१३–०–०	,,	४–०–०	,,	२–८–१२	,,	१५–३–१८	,,
१८–२०	१२–६–०	,	३–९–०	,,	२–३–०	,,	१४–१०–१५	,,
१८–४०	१२–०–०	,,	३–६–०	,,	१–९–१८	,,	१४–५–१२	,,
१९–००	११–६–०	,,	३–३–०	,,	१–४–६	,,	१४–०–९	,,

चन्द्र राशि	मेष, सिंह, धनु	वृषभ, कन्या, मकर,	मिथुन, तुला, कुम्भ,	कर्क, वृश्चिक, मीन
	भोग्यकाल	भोग्यकाल	भोग्यकाल	भोग्यकाल
अंश-कला	वर्ष, मा; दिन	वर्ष, मा; दिन	वर्ष, मा; दिन	वर्ष मा; दि.
१९–२०	११–०–० शुक्र	३–०–० चन्द्र	०–१०–२४ राहु	१३–७–६ बुध
१९–४०	१०–६–० „	२–९–० „	०–५–१२ „	१३–२–३ „
२०–००	१०–०–० „	२–६–० „	१६–०–० गुरु	१२–९–० „
२०–२०	९–६–० „	२–३–० „	१५–७–६ „	१२–३–२७ „
२०–४०	९–०–० „	२–०–० „	१५–२–१२ „	११–१०–२४ „
२१–००	८–६–० „	१–९–० „	१४–९–१८ „	११–५–२१ „
२१–२०	८–०–० „	१–६–० „	१४–४–२४ „	११–०–१८ „
२१–४०	७–६–० „	१–३–० „	१४–०–० „	१०–७–१५ „
२२–००	७–०–० „	१–०–० „	१३–७–६ „	१०–२–१२ „
२२–२०	६–६–० „	०–९–० „	१३–२–१२ „	९–९–९ „
२२–४०	६–०–० „	०–६–० „	१२–९–२८ „	९–४–६ „
२३–००	५–६–० „	०–३–० „	१२–४–२४ „	८–११–३ „
२३–२०	५–०–० „	७–०–० मंगल	१२–०–० „	८–६–० „
२३–४०	४–६–० „	६–९–२७ „	११–७–६ „	८–०–२७ „
२४–००	४–०–० „	६–७–२४ „	११–२–१२ „	७–७–२४ „
२४–२०	३–६–० „	६–५–२१ „	१०–९–१८ „	७–२–२१ „
२४–४०	३–०–० „	६–३–१८ „	१०–४–२४ „	६–९–१८ „
२५–००	२–६–० „	६–१–१५ „	१०–०–० „	६–४–१५ „
२५–२०	२–०–० „	५–११–१२ „	९–७–६ „	५–११–१२ „
२५–४०	१–६–० „	५–९–९ „	९–२–१२ „	५–६–९ „
२६–००	१–०–० „	५–७–६ „	८–९–१८ „	५–१–६ „
२६–२०	०–६–० „	५–४–३ „	८–४–२४ „	४–८–३ „
२६–४०	६–०–० रवि	५–३–० „	८–०–० „	४–३–० „
२७–००	५–१०–६ „	५–०–२७ „	७–७–६ „	३–९–२७ „
२७–२०	५–८–१२ „	४–१०–२४ „	७–२–१२ „	३–४–२४ „
२७–४०	५–६–१८ „	४–८–२१ „	६–९–१८ „	२–११–२१ „
२८–००	५–४–२४ „	४–६–१८ „	६–४–२४ „	२–६–१८ „
२८–२०	५–३–० „	४–४–१५ ,	६–०–० „	२–१–१५ „
२८–४०	५–१–६ „	४–२–१२ „	५–७–६ „	१–८–१२ „
२९–००	४–११–१२ „	४–०–९ „	५–२–१२ „	१–३–९ „
२९–२०	४–९–१८ „	३–१०–६ „	४–९–१८ „	०–१०–६ „
२९–४०	४–७–२४ „	३–८–३ „	४–४–२४ „	०–५–३ „
३०–००	४–६–० „	३–६–० „	४–०–० „	०–०–० „

कोष्टक क्रमांक--२

कला	केतु मा. दि.	शुक्र मा. दि.	रवि मा. दि.	चन्द्र मा. दि.	मंगल मा. दि.	राहु मा. दि	गुरु मा. दि.	शनि मा. दि.	बुध मा. दि.
१	०–०३	०–९	०–०३	०–०५	०–०३	०–०८	०–०७	०–०९	०–०८
२	०–०६	०–१८	०–०५	०–०९	०–०६	०–१६	०–१४	०–१७	०–१५
३	०–०९	०–२७	०–०८	०–१४	०–०९	०–२४	०–२२	०–२६	०–२३
४	०–१३	१–०६	०–११	०–१८	०–१३	१–०२	०–२९	१–०४	१–०१
५	०–१६	१–१५	०–१४	०–२३	०–१६	१–११	१–०६	१–१३	१–०८
६	०–१९	१–२४	०–१६	०–२७	०–१९	१–१९	१–१३	१–२१	१–१६
७	०–२२	२–०३	०–१९	१–०२	०–२२	१–२७	१–२०	२–००	१–२४
८	०–२५	२–१२	०–२२	१–०६	०–२५	२–०५	१–२८	२–०८	२–०१
९	०–२८	२–२१	०–२४	१–११	०–२८	२–१३	२–०५	२–१७	२–०९
१०	१–०१	३–००	०–२७	१–१५	१–०१	२–२१	२–१२	२–२६	२–१७
११	१–०४	३–०९	१–००	१–२०	१–०४	२–२९	२–१९	३–०४	२–२५
१२	१–०७	३–१८	१–०२	१–२४	१–०७	३–०७	२–२७	३–१३	३–०२
१३	१–११	३–२७	१–०५	१–२९	१–१०	३–१५	३–०४	३–२१	३–१०
१४	१–१४	४–०६	१–०८	२–०३	१–१४	३–२३	३–११	४–००	३–१८
१५	१–१७	०–१५	१–११	२–०८	१–१७	४–०२	३–१८	४–०८	३–२५
१६	१–२०	४–२४	१–१३	२–१२	१–२०	४–१०	३–२५	४–१७	४–०३
१७	१–२३	५–०३	१–१६	२–१७	१–२३	४–१८	४–०३	४–२५	४–११
१८	१–२७	५–१२	१–१९	२–२१	१–२७	४–२६	४–१०	५–०४	४–१८
१९	१–३०	५–२१	१–२१	२–२६	२–००	५–०४	४–१७	५–१२	४–२६
२०	२–०३	६–००	१–२४	३–००	२–०३	५–१२	४–२४	५–२७	५–०३

रीति—स्पष्ट चन्द्र के राशि के नीचे और उसके अंश और कला के सामने वाले आंकड़े जिस ग्रह के नीचे दिये हुए हैं वे उस ग्रह की महादशा के भोग्यकाल हैं।

स्पष्ट चन्द्र के अंश कला होंगे उतने आंकड़े यदि कोष्टक में नहीं हों तो उसके पूर्व के अंश कला के आगे के और स्पष्ट चन्द्र के राशि के नीचे वाले आंकड़े लेकर उन आंकड़ों में से जितनी कला स्पष्ट चन्द्र से अधिक हो उतनी कला के आगे और महादशा के ग्रह के नीचे ऐसे खानों में कोष्टक क्रमांक २ में से मिलने वाला आंकड़ा (कोष्टक क्रमाक १ में से आये हुए आंकड़ों में से) ऋण करने से महादशा स्पष्ट भोग्यकाल आवेगा।

उदाहरण—१ एप्रिल १९७१ का सूर्योदय का स्पष्ट चन्द्र १।२७।४५।४६ ऐसा है। अर्थात् चन्द्रमा, मेष, राशि समाप्त होकर वृषभ राशि के २७ अंश ४६ कला के आगे ४ वर्ष—८ महिने—२१ दिन यह स्थूल भोग्यकाल मंगल महादशा का आया। अब कोष्टक क्रमांक २ में से मंगल के नीचे और शेष रहे हुए कला ६ के आगे आने वाले १९ दिन पूर्व में मिले हुए भोग्यकाल में से ऋण करने पर ४ वर्ष ८ महिने २ दिन इतना मंगल की महादशा का भोग्यकाल आया। विकलों का काल दोन कलां में के अंतपर से निकालना चाहिये।

परिशिष्ट (१०)

चन्द्रस्पष्ट तुल्य विंशोत्तरी ग्रह महादशा के भुक्त भोग्य वर्षादि की जानकारी के लिये कोष्टक—

नक्षत्र	चरण	चन्द्र स्पष्ट रा. अं. क	नक्षत्र	चरण	चन्द्रस्पष्ट रा. अं. क	नक्षत्र	चरण	चन्द्रस्पष्ट रा. अं. क	स्वांमी	भुक्त दशा व. मा. दि.	भोग्य दशा व. मा. दि.
१			१०			१९					
अश्विनी	१	०–००–०	मघा	१	४–००–००	मूला	१	८–००–००	केतु	०–००–०	७–००–००
,,		०–०१–०	,,		४–०१–००	,,		८–०१–००	,,	०–०६–०९	६–०५–२१
,,		०–०२–०	,,		४–०२–००	,,		८–०२–००	,,	१–००–१८	५–११–१२
,,		०–०३–०	,,		४–०३–००	,,		८–०३–००	,,	१–०६–२७	५–०५–०३
,,	२	०–०३–२०	,,	२	४–०३–२०	,,	२	८–०३–२०	,,	१–०९–००	५–०३–००
,,		०–०४–००	,,		४–०४–००	,,		८–०४–००	,,	२–०१–०६	४–१०–२४
,,		०–०५–००	,,		४–०५–००	,,		८–०५–००	,,	२–०७–१५	४–०४–१५
,,	३	०–०६–००	,,	३	४–०६–००	,,	३	८–०६–००	,,	३–०१–२४	३–१०–०६
,,		०–०६–४०	,,		४–०६–४०	,,		८–०६–४०	,,	३–०६–००	३–०६–००
,,		०–०७–००	,,		४–०७–००	,,		८–०७–००	,,	३–०८–०३	३–०३–२७
,,		०–०८–००	,,		४–०८–००	,,		८–०८–००	,,	४–२२–१२	२–०९–१८
,,		०–०९–००	,,		४–०९–००	,,		८–०९–००	,,	४–०८–२१	२–०३–०९
,,	४	०–१०–००	,,	४	४–१०–००	,,	४	८–१०–००	,,	५–०३–००	१–०९–००
,,		०–११–००	,,		४–११–००	,,		८–११–००	,,	५–०९–०९	१–०२–२१
,,		०–१२–००	,,		४–१२–००	,,		८–१२–००	,,	६–०३–१८	०–०८–१२
,,		०–१३–००	,,		४–१३–००	,,		८–१३–००	,,	६–०९–२७	०–०२–०३
,,		०-१३–२०	,,		४–१३–२०	,,		८–१३–२०	,,	७–००–००	०–००–००

नक्षत्र	चरण	स्पष्टचन्द्र रा. श्रं. क.	नक्षत्र	चरण	स्पष्ट चन्द्र रा. श्रं. क.	नक्षत्र	चरण	स्पष्ट चन्द्र रा. श्रं. क.	स्वामी	भुक्त दशा व. मा. दि.	भोग्यदशा व. मा. दि.
२			११			२०					
भरणी	१	०–१३–२०	पू. फा.	१	४–१३–२०	पू. षा.	१	८–१३–२०	शुक्र	०–००–००	२०–००–००
,,		०–१४–००	,,		४–१४–००	,,		८–१४–००	,,	१–००–००	१९–००–००
,,		०–१५–००	,,		४–१५–००	,,		८–१५–००	,,	२–०६–००	१७–०६–००
,,		०–१६–००	,,		४–१६–००	,,		८–१६–००	,,	४–००–००	१६–००–००
,,	२	०–१६–४०	,,	२	४–१६–४०	,,	२	८–१६–४०	,,	५–००–००	१५–००–००
,,		०–१७–००	,,		४–१७–००	,,		८–१७–००	,,	५–०६–००	१४–०६–००
,,		०–१८–००	,,		४–१८–००	,,		८–१८–००	,,	७–००–००	१३–००–००
,,		०–१९–००	,,		४–१९–००	,,		८–१९–००	,,	८–०६–००	११–०६–००
,,	३	०–२०–००	,,	३	४–२०–००	,,	३	८–२०–००	,,	१०–००–००	१०–००–००
,,		०–२१–००	,,		४–२१–००	,,		८–२१–००	,,	११–०६–००	८–०६–००
,,		०–२२–००	पू. फा.		४–२२–००	पू षा.	,,	८–२२–००	शुक्र	१३–००–००	७–००–००
,,		०–२३–००	,,		४–२३–००	,,		८–२३–००	,,	१४–०६–००	५–०६–००
,,	४	०–२३–२०	,,	४	४–२३–२०	,,	४	८–२३–२०	,,	१५–००–००	५–००–००
,,		०–२४–००	,,		४–२४–००	,,		८–२४–००	,,	१६–००–००	४–००–००
,,		०–२५–००	,,		४–२५–००	,,		८–२५–००	,,	१७–०६–००	२–०६–००
,,		०–२६–००	,,		४–२६–००	,,		८–२६–००	,,	१९–००–००	१–००–००
,,		०–२६–४०	,,		४–२६–४०	,,		८–२६–४०	,,	२०–००–००	०–००–००

नक्षत्र	चरण	चन्द्र स्पष्ट रा. अं. क	नक्षत्र	चरण	चन्द्र स्पष्ट रा. अं. क	नक्षत्र	चरण	स्पष्ट चन्द्र रा. अं. क	स्वामी	दशा भुक्त व. मा. दि	भोग्य दशा व. मा. दि.
३ कृत्तिका	१	०-२६-४०	१२ उ. फा.	१	४-२६-४०	२१ ऊषा.	१	८-२६-४०	सूर्य	०-००-००	६-००-००
,,		०-२७-००	,,		४-२७-४०	,,		८-२७-००	,,	०-०१-२४	५-१०-०६
,,		०-२८-००	,,		४-२८-४०	,,		८-२८-००	,,	०-०७-०६	५-०४-२४
,,		०-२९-००	,,		४-२९-४०	,,		८-२९-००	,,	१-००-१८	४-११-१२
,,	२	१-००-००	,,	२	५-००-००	,,	२	९-००-००	,,	१-०६-००	४-०६-००
,,		१-०१-००	,,		५-०१-००	,,		९-०१-००	,,	१-११-१२	४-००-१८
,,		१-०२-००	,,		५-०२-००	,,		९-०२-००	,,	२-०४-२४	३-०७-०६
,,		१-०३-००	,,		५-०३-००	,,		९-०३-००	,,	२-१०-०६	३-०१-२४
,,	३	१-०३-२०	,,	३	५-०३-२०	,,	३	९-०३-२०	,,	३-००-००	३-००-००
,,		१-०४-००	,,		५-०४-००	,,		९-०४-००	,,	३-०३-१८	२-०८-१२
,,		१-०५-००	,,		५-०५-००	,,		९-०५-००	,,	३-०९-००	२-०३-००
,,		१-०६-००	,,		५-०६-००	,,		९-०६-००	,,	४-०२-१२	१-०९-१०
,,	४	१-०६-४०	,,	४	५-०६-४०	,,	४	९-०६-४०	,,	४-०६-००	१-०६-००
,,		१-०७-००	,,		५-०७-००	,,		९-०७-००	,,	४-०७-२४	१-०४-०६
,,		१-०८-००	,,		५-०८-००	,,		९-०८-००	,,	५-०१-०६	०-१०-२४
,,		१-०९-००	,,		५-०९-००	,,		९-०९-००	,,	५-०६-१८	०-५-१२
,,		१-१०-००	,,		५-१०-००	,,		९-१०-००	,,	६-००-००	०-००-००

नक्षत्र	चरण	स्पष्ट चन्द्र रा. अं. क.	नक्षत्र	चरण	चन्द्र स्पष्ट रा. अं. क.	नक्षत्र	चरण	स्पष्ट चन्द्र रा. अं. क.	स्वामी	भुक्त दशा व. मा. दि.	भोग्य दशा व. मा. दि.
४			१३			२२					
रोहिणी	१	१–१०–००	हस्त	१	५–१०–००	श्रवण	१	९–१०–००	चन्द्र	०–००–००	१०–००–००
,,		१–११–००	,,		५–११–००	,,		९–११–००	,,	०–०९–००	९–०३–००
,,		१–१२–००	,,		५–१२–००	,,		९–१२–००	,,	१–०६–००	८–०६–००
,,		१–१३–००	,,		५–१३–००	,,		९–१३–००	,,	२–०३–००	७–०९–००
,,	२	१–१३–२०	,,	२	५–१३–२०	,,	२	९–१३–२०	,,	२–०६–००	७–०६–००
,,		१–१४–००	,,		५–१४–००	,,		९–१४–००	,,	३–००–००	७–००–००
,,		१–१५–००	,,		५–१५–००	,,		९–१५–००	,,	३–०९–००	६–०३–००
,,		१–१६–००	,,		५–१६–००	,,		९–१६–००	,,	४–०६–००	५–०६–००
,,	३	१–१६–४०	,,	३	५–१६–४०	,,	३	९–१६–४०	,,	५–००–००	५–००–००
,,		१–१७–००	,,		५–१७–००	,,		९–१७–००	,,	५–०३–००	४–०९–००
,,		१–१८–००	,,		५–१८–००	,,		९–१८–००	,,	६–००–००	४–००–००
,,		१–१९–००	,,		५–१९–००	,,		९–१९–००	,,	६–०९–००	३–०३–००
,,	४	१–२०–००	,,	४	५–२०–००	,,	४	९–२०–००	,,	७–०६–००	२–०६–००
,,		१–२१–००	,,		५–२१–००	,,		९–२१–००	,,	८–०३–००	१–०९–००
,,		१–२२–००	,,		५–२२–००	,,		९–२२–००	,,	९–००–००	१–००–००
,,		१–२३–००	,,		५–२३–००	,,		९–२३–००	,,	९–०९–००	०–०३–००
		१–२३–२०	,,		५–२३–२०	,,		९–२३–००	,,	१०–००–००	०–००–०

नक्षत्र	चरण	चन्द्र स्पष्ट रा. अं. क.	नक्षत्र	चरण	चन्द्र स्पष्ट रा. अं. क.	नक्षत्र	चरण	स्पष्ट चन्द्र रा. अं. क.	स्वामी	दशा भुक्त व. मा. दि.	भोग्य दशा व. मा. दि.
५ मृगसिरा	१	१–२३–२०	१४ चित्रा	१	५–२३–२०	२३ धनिष्ठा	१	६–२३–२०	मंगल	०–००–००	७–००–००
,,		१–२४–००	,,		५–२४–००	,,		६–२४–००	,,	०–०४–०६	६–०७–२४
,,		१–२५–००	,,		५–२५–००	,,		६–२५–००	,,	०–१०–१५	६–०१–१५
,,		१–२६–००	,,		५–२६–००	,,		६–२६–००	,,	१–०४–२४	५–०७–०६
,,	२	१–२६–४०	,,	२	५–२६–४०	,,	२	६–२६–४०	,,	१–०६–००	५–०३–००
,,		१–२७–००	,,		५–२७–००	,,		६–२७–००	,,	१–०११–३	५–००–२७
,,		१–२८–००	,,		५–२८–००	,,		६–२८–००	,,	२–०५–१२	४–०६–१८
,,		१–२९–००	,,		५–२९–००	,,		६–२९–००	,,	२–११–२१	४–००–०९
,,	३	२–००–००	,,	३	६–००–००	,,	३	१०–००–००	,,	३–०६–००	३–०६–००
,,		२–०१–००	,,		६–०१–००	,,		१०–०१–००	,,	४–००–००	२–११–२१
,,		२–०२–००	,,		६–०२–००	,,		१०–०२–००	,,	४–०६–१८	२–०५–१२
,,		२–०३–००	,,		६–०३–००	,,	०	१०–०३–००	,,	५–००–२४	१–११–०३
,,	४	२–०३–२०	,,	४	६–०३–२०	,,	४	१०–०३–२०	,,	५–०३–००	१–०९–००
,,		२–०४–००	,,		६–०४–००	,,		१०–०४–००	,,	५–०७–००	१–४–२४
,,		२–०५–००	,,		६–०५–००	,,		१०–०५–००	,,	६–०१–१५	०–१०–१५
,,		२–०६–००	,,		६–०६–००	,,		१०–०६–००	,,	६–०७–२४	०–०४–०६
,,		२–०६–४०	,,		६–६–४००	,,		१०–०६–४०	,,	७–००–००	०–०–००

नक्षत्र	चरण	चन्द्र स्पष्ट रा. अं. क.	नक्षत्र	चरण	चन्द्र स्पष्ट रा. अं. क.	नक्षत्र	चरण	स्पष्ट चन्द्र रा. अं. क.	स्वामी	दशा भुक्त व. मा. दि.	भोग्य दशा व. मा. दि.
६ आर्द्रा	१	२–०६–४०	१५ स्वाति	१	६–०६–४०	२४ शतभिषा	१	१०–०६–४.	राहु	०–००–००	१८–००–००
,,		२–०७–००	,,		६–०७–००	,,		१०–०७–००	,,	०–०५–१२	१७–०६–१८
,,		२–०८–००	,,		६–०८–००	,,		१०–०८–००	,,	१–०६–१८	१६–०२–१२
,,		२–०९–००	,,		६–०९–००	,,		१०–०९–००	,,	३–०१–२४	१४–१०–०६
,,	२	२–१०–००	,,	२	६–१०–००	,,	२	१०–१०–००	,,	४–०६–००	१३–०६–००
,,		२–११–००	,,		६–११–००	,,		१०–११–००	,,	५–१०–०६	१२–१–२४
,,		२–१२–००	,,		६–१२–००	,,		१०–१२–००	,,	७–०२–१२	१०–०९–१८
,,		२–१३–००	,,		६–१३–००	,,		१०–१३–००	,,	८–०६–१८	९–०५–१२
,,	३	२–१३–२०	,,	३	६–१३–२०	,,	३	१०–१३–२०	,,	९–००–००	९–००–००
,,		२–१४–००	,,		६–१४–००	,,		१०–१४–००	,,	९–१०–२४	८–०१–६
,,		२–१५–००	,,		६–१५–००	,,		१०–१५–००	,,	११–०३–००	६–०९–००
,,		२–१६–००	,,		६–१६–००	,,		१०–१६–००	,,	१२–०७–०६	५–०४–२४
,,	४	२–१६–४०	,,	४	६–१६–४०	,,	४	१०–१६–४०	,,	१३–०६–००	४–०६–००
,,		२–१७–००	,,		६–१७–००	,,		१०–१७–००	,,	१३–११–१२	४–००–१८
,,		२–१८–००	,,		६–१८–००	,,		१०–१८–००	,,	१५–०३–१८	२–०८–१२
,,		२–१९–००	,,		६–१९–००	,,		१०–१९–००	,,	१६–७–२४	१–०४–०६
,,		२–२०–००	,,		६–२०–००	,,		१०–२०–००	,,	१८–००–००	०–००–००

नक्षत्र	चरण	चन्द्र स्पष्ट रा. अं. क.	नक्षत्र	चरण	चन्द्र स्पष्ट रा. अं. क.	नक्षत्र	चरण	स्पष्ट चन्द्र रा. अं. क.	स्वामी	दशा भुक्त व. मा. दि.	भोग्य दशा व. मा. दि.
७ पुनर्वसु	१	२-२०-००	१६ विशाखा	१	६-२०-००	२५ पूर्व भाद्रपदा	१	१०-२०-००	गुरु	०-००-००	१६-००-००
,,		२-२१-००	,,		६-२१-००	,,		१०-२१-००	,,	१-०२-१२	१४-०९-००
,,		२-२२-००	,,		६-२२-००	,,		१०-२२-००	,,	२-०४-२४	१३-०७-०६
,,		२-२३-००	,,		६-२३-००	,,		१०-२३-००	,,	३-०७-०६	१२-०४-२४
,,	२	२-२३-२०	,,	२	६-२३-२०	,,	२	१०-२३-२०	,,	४-००-००	१२-००-००
,,		२-२४-००	,,		६-२४-००	,,		१०-२४-००	,,	४-०९-१८	१२-०२-१२
,,		२-२५-००	,,		६-२५-००	,,		१०-२५-००	,,	६-००-००	१०-००-००
,,		२-२६-००	,,		६-२६-००	,,		१०-२६-००	,,	७-०२-१२	८-०९-१८
,,	३	२-२६-४०	,,	३	६-२६-४०	,,	३	१०-२६-४०	,,	८-००-००	८-००-००
,,		२-२७-००	,,		६-२७-००	,,		१०-२७-००	,,	८-०४-२४	७-०७-०६
,,		२-२८-००	,,		६-२८-००	,,		१०-२८-००	,,	९-०७-०६	६-०४-२४
,,		२-२९-००	,,		६-२९-००	,,		१०-२९-००	,,	१०-९-१८	५-०२-१२
,,	४	३-४०-००	,,	४	७-००-००	,,	४	११-००-००	,,	१२-००-००	४-००-००
,,		३-०१-००	,,		७-०१-००	,,		११-०१-००	,,	१३-०२-१२	२-०९-१८
,,		३-०२-००	,,		७-०२-००	,,		११-०२-००	,,	१४-०४-२४	१-०७-०६
,,		३-०३-००	,,		७-०३-००	,,		११-०३-००	,,	१५-०७-०६	०-०४-२४
,,		३-०३-२०	,,		७-०३-२०	,,		११-०३-२०	,,	१६-००-००	०-००-००

नक्षत्र	चरण	चन्द्र स्पष्ट रा. श्रं. क.	नक्षत्र	चरण	चन्द्र स्पष्ट रा. श्रं. क.	नक्षत्र	चरण	चन्द्र स्पष्ट रा. श्रं. क.	स्वामी	भुक्त दशा व. मा. दि.	भोग्य दशा व. मा. दि.
८			१७			२६					
पुण्य	१	३–०३–२०	अनुराधा	१	७–०३–२०	उत्तरा भाद्रपदा	१	११–०३–२०	शनि	०–००–००	१९–००–००
,,		३–०४–००	,,		७–०४–००	,,		११–०४–००	,,	०–११–१२	१८–००–१८
,,		३–०५–००	,,		७–०५–००	,,		११–०५–००	,,	२–०४–१५	१६–०७–१५
,,		३–०६–००	,,		७–०६–००	,,		११–०६–००	,,	३–०९–१८	१५–०२–१२
,,	२	३–०६–४०	,,	२	७–०६–४०	,,	२	११–०६–४०	,,	४–०९–००	१४–०३–००
,,		३–०७–००	,,		७–०७–००	,,		११–०७–००	,,	५–०२–२१	१३–०९–०९
,,		३–०८–००	,,		७–०८–००	,,		११–०८–००	,,	६–०७–२४	१२–०४–०६
,,		३–०९–००	,,		७–०९–००	,,		११००९–००	,,	७–००–२७	१०–००–३
,,	३	३–१०–००	,,	३	७–१०–००	,,	३	११–१०–००	,,	९–०६–००	९–०६–००
,,		३–११–००	,,		७–११–००	,,		११–१२–००	,,	१०–११–०३	८–००–२७
,,	४	३–१४–००	,,	४	७–१४–००	,,	४	११–१४–००	,,	१५–०२–१२	३–०९–१८
,,		३–१५–००	,,		७–१५–००	,,		११–१५–००	,,	१६–०७–१५	९–०४–१५
,,		३–१६–००	,,		७–१६–००	,,		११–१६–००	,,	१८–००–१८	०–११–१२
,,		३–१६–४०	,,		७–१६–४०	,,		११–१६–४०	,,	१९–००–००	०–७–००

नक्षत्र	चरण	चन्द्र स्पष्ट रा. श्रं. क	नक्षत्र	चरण	चन्द्र स्पष्ट रा. श्रं. क	नक्षत्र	चरण	स्पष्ट चन्द्र रा. श्रं. क.	स्वामी	दशा भुक्त व. मा. दि.	भोग्य दशा व. मा. दि.
९ आश्लेषा	१	३-१६-४०	१८ ज्येष्ठा	१	७-१६-४०	रेवती	१	११-१६-४०	बुध	०-००-००	१७-००-००
,,		३-१७-००	,,		७-१७-००	,,		११-१७-००	,,	०-०५-०३	१६-०६-२७
,,		३-१८-००	,,		७-१८-००	,,		११-१८-००	,,	१-८-१२	१५-०३-१८
,,		३-१९-००	,,		७-१९-००	,,		११-१९-००	,,	२-११-२१	१४-००-०९
,,	२	३-२०-००	,,	२	७-२०-००	,,	२	११-२०-००	,,	४-०३-००	१२-०९-००
,,		३-२१-००	,,		७-२१-००	,,		११-२१-००	,,	५-०६-०९	११-०५-२१
,,		३-२२-००	,,		७-२२-००	,,		११-२२-००	,,	६-०८-१८	१०-०२-१२
,,		३-२३-००	,,		७-२३-००	,,		११-२३-००	,,	८-००-२७	८-११-०३
,,	३	३-२३-२०	,,	३	७-२३-२०	,,	३	११-२३-२०	,,	८-०६-००	८-०६-००
,,		३-२४-००	,,		७-२४-००	,,		११-२४-००	,,	९-०४-०६	७-०७-२४
,,		३-२५-००	,,		७-२५-००	,,		११-२५-००	,,	१०-०७-१५	६-०४-१५
,,		३-२६-००	,,		७-२६-००	,,		११-२६-००	,,	११-२०-२४	५-०७-०६
,,	४	३-२६-४०	,,	४	७-२६-४०	,,	४	११-२६-००	,,	१२-०९-००	४-०३-००
,,		३-२७-००	,,		७-२७-००	,,		११-२७-००	,,	१३-०२-०३	३-०९-२७
,,		३-२८-००	,,		७-२८-००	,,		११-२८-००	,,	१४-०५-१२	२-०६-१८
,,		३-२९-००	,,		७-२९-००	,,		११-२९-००	,,	१५-०८-२१	१-०३-०९
,,		४-००-००	,,		८-००-००	,,		१२-००-००	,,	१७-००-००	०-००-००

(१) अश्विनी के प्रथम चरण से	मेष राशि का प्रारम्भ होता है।
कृत्तिका के द्वितीय चरण से	वृषभ राशि का प्रारम्भ होता हैं।
मृगसिरा कें तृतीय चरण से	मिथुन राशि का प्रारम्भ होता है।
पुनर्वसु के चतुर्थ चरण से	कर्क राशि का प्रारम्भ होता है।
(२) मघा के प्रथम चरण से	सिंह राशि का प्रारम्भ होता है।
उत्तरा फाल्गुनी द्वितीय चरण से	कन्या राशि का प्रारम्भ होता है।
चित्रा के तृतीय चरण से	तुला राशि का प्रारम्भ होता है।
विशाखा के चतुर्थ चरण से	वृश्चिक राशि का प्रारम्भ होता है।
(३) मुला के प्रथम चरण से	धनु राशि का प्रारम्भ होता है।
उत्तराषाढ़ा के द्वितीय चरण से	मकर राशि का प्रारम्भ होता है।
धनिष्ठा के तृतीय चरण से	कुंभ राशि का प्रारम्भ होता है।
पूर्वाभाद्रपदा के चतुर्थ चरण से	मीन राशि का प्रारम्भ होता है।

(४) अश्विनी से प्रत्येक नववें नक्षत्र के अन्त में और दशवें नक्षत्र के प्रारम्भ में चन्द्रमा का होना जातक के लिए अनिष्टकारक माना गया है। राशि-मंडल की ये तीन अनिष्टकारक सन्धि हैं:—

(क) रेवती के अन्त के ४ दण्ड और अश्विनी नक्षत्र के प्रारम्भ के ४ दण्ड को संध्यागण्ड कहते हैं।

चन्द्र स्पष्ट—११।२६।१० से ०।०।५ तक

(ख) इसी प्रकार आश्लेषा नक्षत्र के अन्त और मघा नक्षत्र के आरम्भ में राशिगण्ड कहते हैं।

चन्द्र स्पष्ट—३।२६।१० से ४।०।५०।तक

(ग) ज्येष्ठा नक्षत्र के अन्त और मूला के प्रारम्भ की ४ घटी को दिवागण्ड अथवा अभुक्त मूल कहते हैं।

चन्द्र स्पष्ट—७।२६।१० से ८।०।५० तक

इस योग में उत्पन्न हुआ बालक सदैव पारिवारिक कष्टों से युक्त रहता है। ऐसा कहते हैं कि अभुक्तमूल में जन्म लेनेवाले बालक के माता पिता उसकी बाल्यावस्था में ही या जन्म लेते ही मृत्यु को पाते हैं।

परिशिष्ट (११)

विंशोत्तरी दशाका वैज्ञानिक और शास्त्रीय सिद्धान्त

मनुष्य प्राणी अपने भविष्य के विषय में जिज्ञासु रहते आया है और आगे

चलकर भविष्य में भी सदैव रहेगा। भावी फलों का ज्ञान होने के लिए ज्योतिष शास्त्र ही एक मात्र आधार है।

देश, काल इनके अनुसार फलित विचार धाराओं में विभिन्न प्रकार के मार्ग स्वीकारे गये हैं लेकिन ग्रह, भाव और राशि इनका उपयोग प्रायः सभी में है।

भारतीय ज्योतिष में भावफलों का प्रतिपादन करने के लिए विंशोत्तरी दशा का सर्वाधिक उपयोग किया जाता है। वैसे देखा जाये तो यह दशा सर्व प्रकार की दशाओं में वास्तविक प्रधान है और वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। इस दशा के उद्भव में जो त्रिकोण-सिद्धान्त ग्रहण किया हुआ है वह सर्वथा उपयुक्त ही है। परस्पर मित्रता भी इसी पर से निर्धारित की गई है। ज्योतिष शास्त्र का सर्वाधिक महत्व त्रिकोण याने नवम पंचम (ट्राईन ऐस्पेक्ट) को ही दिया गया है। जिस प्रकार कि "लक्ष्मीस्थानं त्रिकोणं च विष्णुस्थानं च केन्द्रम्"।

हमारे प्राचीन महर्षिगण मूलभूत सिद्धान्तों को गुप्त रखते हुए प्रकारान्तर से उसी शैली द्वारा फल प्रतिपादन का आदेश देते आये हैं। जिस प्रकार प्रतिपादन के लिए विंशोत्तरी दशा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण ऐसा कहा गया है परन्तु इसकी कल्पना का आधार क्या है, इस विषय में कहीं भी प्रदर्शित नहीं किया है।

कालान्तर में विभिन्न मतावलम्बियों के कारण अनेक उचित, अनुचित बातों का समावेश करके अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ उत्पन्न कर दी गयी हैं।

यथार्थ में विंशोत्तरी दशा का प्रादुर्भाव त्रिकोण पद्धति के द्वारा निर्धारित किया गया है। सम्पूर्ण राशि चक्र (भ–चक्र) में ३६०° अंश होते हैं, उनमें प्रत्येक त्रिकोण १२०° का होता है। इन्हीं १२०° को १ वर्ष के बराबर मानकर विंशोत्तरी दशा के १२० वर्ष निर्धारित किये हुए हैं और प्रचार इस प्रकार किया गया है चूंकि मनुष्य के पूर्ण आयुष्य का मान १२० वर्ष का होता है इसलिए विंशोत्तरी दशा का मान भी १२० वर्षों का ही होना चाहिये, जबकि यथार्थ में तथ्य कुछ दूसरा ही है। मनुष्य की पूर्णायु विंशोत्तरी दशा का आधार है यह विधान तथ्यहीन है।

पाश्चात्य विद्वान १ अंश को १ वर्ष बराबर मानकर भविष्य कथन करते हैं और त्रिकोण सम्बन्ध (ट्राइन ऐस्पेक्ट) को विशेष महत्वपूर्ण और शुभ-फलदायक ऐसा मानते हैं। उपरोक्त तथ्य को न समझते हुए आजकल के अनेक विद्वान १२० वर्ष की पूर्णायु को असम्भव मानकर उसमें ¼ एक चतुर्थांश वर्ष

की संख्या कम करके ६० वर्षों की पूर्णायु मानकर विंशोत्तरी दशा में ग्रहों की दशा अन्तर्दशादि ¾ तीन चतुर्थांश मानकर फलों का निर्देशन करने लगे हैं। नेपाल के विद्वान ज्योतिर्विद विभागीय दशा के नाम से इसे पुकारते हैं। आश्चर्य तो इस बात का है कि अनेक ज्योतिषी इस चक्कर में आ रहे हैं। ज्ञानाभाव के कारणों से दशाओं का उपयुक्त फल न मिलने के कारण अनेक प्रकार के नये ऐसे मत प्रचलित कर रहे हैं जिनको कि वैज्ञानिक आधार बिलकुल कुछ भी नहीं है। इस प्रकार की बातों द्वारा केवल भ्रांतियाँ ही अधिक बढ़ती हैं।

विंशोत्तरी दशा का आधार मात्र मानव की आयु नहीं है अपितु ग्रहों का भ्रमण पथ है। ख-मंडल के सम्पूर्ण भ्रमणकाल का उस ग्रह का दशाकाल है। उदाहरणार्थ शनि ख-मंडल में जिस बिन्दु से प्रारम्भ होता है ठीक उसी बिन्दु पर पुनः १६ वर्ष में पहुँचता है। इसी प्रकार राहु भी ठीक १८ वर्षों में उसी स्थान पर पहुँचता है। अतः यदि हम १६ वर्षों का या १८ वर्षों का २।३ भाग कर १२ वर्ष ८ महीने मानें अथवा १२ वर्ष मानें तो इस अवधि में शनि अथवा राहु को उस बिन्दु पर नहीं देख सकेंगे जहाँ से वह दूसरी आवृत्ति प्रारम्भ करेगा, अपितु पीछे रहेगा। फल स्वरूप २।३ भाग कर फलादेश करने से तो सब गड़बड़ा जायेगा। और फल कथन में किंचित भी न तो सत्यता रहेगी और न प्रामाणिकता ही। एतदर्थ विंशोत्तरी दशा के पूर्ण अवधिमान का २।३ भाग करदेना न तो युक्ति संगत ही है और न वैज्ञानिक तथा पूर्ण ही। त्रिकोण पद्धति में प्रत्येक राशि से पांचवीं और नवीं राशि उसकी अपनी त्रिकोण राशि होती है। प्रत्येक का अन्तर १२०° अंशों का है और ये राशियाँ उत्तरोत्तर बलवान मानी गयी हैं।

प्रथम राशि या प्रथम भाव यह मूल आधार है। यह द्वादश भावों का मूल केन्द्र बिन्दु है। भावों की त्रिकोण, केन्द्र, पणफर, आपोक्लिम, उपचय दुश्चिक्य, त्रिक, आदि जितनी भी संज्ञायें बनायी गयीं हैं उन सब का मूल केन्द्र विन्दु प्रथम भाव ही है इसलिए लग्न यह प्रधान आधार होता है। लग्न द्वादशभावों को व्यापकता और सक्रियता प्रदान करने वाला होता है। लग्न के बिना किसी भी भाव का कुछ भी मूल्य नहीं रहता है।

द्वादश राशियों की तीन संज्ञा होती हैं और वे चर, स्थिर और द्विस्वभाव हैं और इन तीनों का समावेश त्रिकोण में हुआ होता है इसलिए केन्द्रीय शक्ति के शुभत्व का परिवर्तित रूप त्रिकोण में ही सन्निहित है।

द्वादश राशियों में तीन-तीन राशियों को मिलाकर चार त्रिकोण वनते हैं। प्रत्येक त्रिकोण में एक चर, एक स्थिर, और एक द्विस्वभाव राशि होती है। राशि चक्र में चार-चार राशियों के तीन त्रिकोण, होते है। इनमें चर राशियों का अलग गुट (समूह) है स्थिर राशियों का अलग और द्विस्वभाव राशियों का अलग है। मेष, कर्क, तुला, मकर ये चर केन्द्र हैं। वृषभ, सिंह, वृश्चिक, कुंभ ये स्थिर केन्द्र हैं, मिथुन, कन्या, धनु, मीन ये द्विस्वभाव केन्द्र हैं। इसलिये प्रत्येक केन्द्र की स्थिति अलग-अलग होती है और उसका प्रभाव भी एक दूसरे से भिन्न ऐसा होता है।

चर राशि में अधिक ग्रह होने पर मनुष्य अधिक भ्रमणशील और जीवन परिवर्तनमय होगा। स्थिर राशि में अधिक ग्रह होने से अधिक स्थायित्व और अपरिवर्तनीय विचार धाराओं से युक्त होगा। और द्विस्वभाव राशि में अधिक ग्रह होने से उभयात्मक प्रवृत्ति वाला मनुष्य होगा। तात्पर्य यह है कि केन्द्र या तो चर हो सकते हैं या स्थिर अथवा द्विस्वभाव ही हो सकते हैं। इसलिये इनमें आपस में मेल नहीं बैठता और परस्पर मेल के अभाव में इनके द्वारा सामूहिक फलों का उपद्रव असम्भव होता है, दूसरे प्रत्येक केन्द्र परस्पर ७ वीं और शत्रु राशि का समूह है, जैसे मेष से सातवीं तुला, कर्क से मकर, इसकी शत्रु राशि है अतः केन्द्र जीवन में संघर्ष के ही प्रतीक हैं।

यदि मेष में रवि, कर्क में गुरु, तुला में शनि और मकर में मंगल हो तो ये चारों ग्रह उच्च के होते हैं इसलिये इनका संघर्ष भी उच्च कोटिका होगा और इतिहास का विषय वन जायेगा। इसके विपरीत मेष में शनि, कर्क में मंगल, तुला में सूर्य और मकर में बृहस्पति हो तो चारों ग्रह नीच के होते हैं। ऐसी स्थिति में संघर्ष भी निम्नकोटि का होगा और सम्भवतः घृणित जीवन का परिचायक भी होगा।

त्रिकोण में ऐसी बात नहीं है। इनमें तीनों स्थानों का सम्मिश्रण हो जाता है इसलिये इनमें अधिक सात्विकता और शुभत्व रहता है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक त्रिकोण में सारे गुणधर्म, स्वभाव आ जाते हैं। जिस प्रकार मेप, सिंह, धनु में मेष चर राशि है, सिंह स्थिर राशि है और धनु द्विस्वभाव राशि है और इनमें प्रत्येक राशि के स्वामी परस्पर मित्र ही होते हैं। प्रत्येक त्रिकोण में एक ही प्रकार के तत्व हैं। मेष, सिंह, धनु ये अग्नितत्व हैं। वृषभ कन्या, मकर यें पृथ्वीतत्व हैं। मिथुन, तुला, कुम्भ ये वायुतत्व हैं। और कर्क, वृश्चिक, मीन ये जलतत्व राशियाँ हैं। त्रिकोण भूत, भविष्य, वर्तमान

इन कालों का द्योतक है। लग्न या प्रथम त्रिकोण वर्तमान काल का द्योतक है। पंचम भाव (त्रिकोण) पूर्वजन्म अथवा भूतकाल का और नवम भाव (भाग्यत्रिकोण) भविष्य काल का द्योतक है। तीन ही गुण होते हैं—सात्विक, राजस, तामस। अवस्था तीन ही हैं—आदि, मध्य और अन्त। सृष्टि के क्रम भी तीन प्रकार के होते हैं—सृजन, पालन, संहार—सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, पालनकर्ता विष्णु, संहारकर्ता शिव—ये तीन त्रिदेव माने गये हैं। लोक भी तीन हैं—स्वर्ग, मृत्यु, पाताल। फलतः त्रिगुणात्मक शक्ति के प्रधान स्रोत ये त्रिकोण ही हैं।

सम्पूर्ण राशि चक्र में तीन-तीन राशियों के चार त्रिकोण होते हैं। जैसे मेष, सिंह, धनु, वृषभ, कन्या, मकर, मिथुन, तुला, कुम्भ, कर्क, वृश्चिक, मीन, इनमें मेष, सिंह, धनु तथा कर्क, वृश्चिक, मीन इन ६ छैः राशियों का एक गुट या समूह है और वृषभ, कन्या मकर और मिथुन तुला, कुम्भ इन ६ छैः राशियों का एक अलग समूह या गुट है। इस प्रकार सम्पूर्ण भूचक्र दो समूहों में याने गुटों में विभक्त है। इन राशियों के याने मेष, सिंह, धनु के स्वामी क्रमशः मंगल, सूर्य, वृहस्पति तथा कर्क, वृश्चिक, मीन राशियों के स्वामी क्रमशः चन्द्रमा मंगल वृहस्पति हैं। इनमें सूर्य चन्द्रमा एक-एक राशि के स्वामी हैं। अतः सूर्य का सम्वन्ध अपनी राशिवाले त्रिकोण से तथा चन्द्रमा का सम्वन्ध अपनी राशिवाले दूसरे त्रिकोण से है। मंगल और वृहस्पति दो-दो राशियों के स्वामी हैं अतः इनका सम्वन्ध दोनों त्रिकोणों से है क्योंकि दोनों ही त्रिकोणों में इनकी एक-एक राशि सम्मिलित है। फलतः दोनों त्रिकोणों का सम्बन्ध मंगल, गुरु, द्वारा एक दूसरे से बन जाता है। इसलिये राशि चक्र की इन ६ छैः राशियों द्वारा निर्मित दोनों त्रिकोणों के अधिपतियों का परस्पर त्रिकोण राशियों के कारण अलग गुट या समूह बन जाता है एवं इसी त्रिकोण सम्वन्ध के कारण उक्त चारों अधिकारी ग्रह, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, गुरु, परस्पर मित्र बन जाते हैं। और उक्त ६ ओं राशियां भी परस्पर मित्र राशियां ज्योतिष शास्त्र में मानी गयी हैं।

इसी प्रकार राशिचक्र की दूसरी ६ राशियों के दो त्रिकोण बनते हैं। इनमें से एक वृषभ, कन्या, मकर, और दूसरा मिथुन, तुला, कुम्भ से निर्मित हैं। इनके स्वामी क्रमशः बुध, शुक्र, शनि हैं। ये तीनों ग्रह दो-दो राशियों द्वारा ही दोनों त्रिकोण बन जाते हैं। इन त्रिकोणों में विशेषता यह है कि हर एक ग्रह की एक-एक राशि दोनों त्रिकोणों में सम्मिलित है। अतः ये ६ छैः राशियां

परस्पर मित्र हैं। अतः स्पष्ट हो जाता है कि ग्रहों की परस्पर मित्रता और शत्रुता के मूल आधार त्रिकोण हैं। अर्थात् त्रिकोण सिद्धान्त के आधार पर ही ग्रहों की मित्रता शत्रुता निर्धारित की गयी है। अन्यमत अवैज्ञानिक हैं।

त्रिकोण राशियों में एक विशेषता और भी है। मेष, सिंह, धनु और कर्क, वृश्चिक, मीन ये प्रथम त्रिकोण धनात्मक हैं और द्वितीय त्रिकोण— ऋणात्मक हैं। यह सर्व विदित वैज्ञानिक सिद्धान्त है कि धनात्मक ऋणात्मक शक्तियों के संयोग से ही विद्युत शक्ति का उत्पादन होता है। अर्थात् शक्ति के धनात्मक और ऋणात्मक दो पहलू हैं, जिनमें मेष, सिंह, धनु, धनात्मक, कर्क, वृश्चिक, मीन ऋणात्मक एवं मिथुन, तुला, कुम्भ धनात्मक और वृषभ, कन्या, मकर, ऋणात्मक हैं। इसी प्रकार राशिचक्र में ६ राशियों का धनात्मक ऋणात्मक एक अलग समूह है, जिसके अधिपति सूर्य, चन्द्र, मंगल, बृहस्पति हैं और ये परस्पर मित्र हैं। तथा एक समूह या गुट के अधिपति दूसरे समूह या गुट के शत्रु बन जाते हैं। फलतः ग्रहों के परस्पर मित्रता और शत्रुता के मूल आधार में त्रिकोण सिद्धान्त ही निहित है।

ज्योतिषशास्त्र के अनेक ग्रन्थों में प्रायः इस प्रकार के विवरण पाये जाते हैं कि सूर्य शनि और बुध चन्द्र परस्पर पिता पुत्र होने के कारण ही एक दूसरे के शत्रु बन गये हैं। गुरु, शुक्र, देव गुरु और दैत्यगुरु होने के कारण परस्पर शत्रु होते हैं। क्या विडंबना है ? दुनिया में कहीं भी पिता पुत्र की शत्रुता नहीं होती। पुत्र जन्म क्या शत्रुता के लिए ही होता है ? यदि ऐसा ही है तो चन्द्र, शनि और मंगल, शनि परस्पर शत्रु क्यों हैं ? बुध गुरु में शत्रुता क्यों है ? मंगल, बुध को शत्रु क्यों मानता है ? जब कि बुध युवराज है और मंगल सेनापति है। क्या कारण है कि चन्द्रमा बुध को मित्र माने और बुध चन्द्रमा को शत्रु माने ? मानाकि देव दैत्यों में शत्रुता है किन्तु गुरु शुक्र दोनों द्विज (ब्राह्मण) हैं सो इनमें जातीय ऐक्यता क्यों नहीं हुई ? ये मात्र शिष्यों के लिए ही परस्पर शत्रु बन गये हैं। इससे तो यही प्रामाणित होता हैं कि ये ग्रहत्व को त्यागकर सामान्य मानवीय गुणधर्माचार के प्रतीक बन गये हैं।

ग्रहों के कारकत्व भी इनकी परस्पर मित्रता वा शत्रुता के कारण नहीं हो सकते और नहीं इनके शुभत्व पापत्व के कारण इनमें परस्पर शत्रुता और मित्रता हो सकती है। गुरु शुक्र दोनों शुभ ग्रह हैं, गुरु धन कारक और शुक्र वैभवकारक है। गुरु पुत्रकारक और शुक्र स्त्री कारक है। चन्द्रमा मन मस्तिष्क

का कारक है, बुध विद्या प्रतिभा का कारक है वास्तव में ये सब कपोल कल्पना पौराणिक गल्प मात्र है जो परम्परा से किंवदन्तियों के रूप में प्रचलित है। इनमें कोई तथ्य नहीं है।

सारभूत सिद्धान्त यह है कि ग्रहों की राश्यधीश्वरता ही इनकी परस्पर मित्रता शत्रुता का कारण है और जिन गुटों की राशियों का परस्पर त्रिकोण सम्बन्ध नहीं, वे परस्पर शत्रु हैं।

केन्द्रों का निर्माण परस्पर विरोधी ग्रहों की राशियों के समन्वय से हुआ है। प्रथम चर केन्द्र १–४–७–१० राशियों का समूह है। इसके अधिपति मंगल, चन्द्रमा, शुक्र, शनि हैं। इनमें मंगल चन्द्रमा परस्पर मित्र हैं और शुक्र शनि परस्पर मित्र हैं और ये एक दूसरे के परस्पर शत्रु हैं। इसी प्रकार स्थिर केन्द्र में २–५–८–११ के स्वामी शुक्र, सूर्य, मंगल शनि हैं। सूर्य, मंगल मित्र हैं, शुक्र, शनि मित्र हैं तथा एक गुट दूसरे गुट का शत्रु है। द्विस्वभाव केन्द्र ३–६–९–१२ के स्वामी बुध गुरु हैं जो परस्पर शत्रु हैं। फलतः ग्रहों की परस्पर त्रिकोण स्थिति (ट्राइन ऐस्पेक्ट) शुभत्व और मित्रता की द्योतक हैं, श्रेष्ठ है तथा ग्रहों की केन्द्रीय स्थिति (स्क्वेअर ऐस्पेक्ट) अशुभत्व और शत्रुता की प्रतीक है और नेष्ट फलदायक है। (इसलिये पाराशरी में केन्द्र और उसके स्वामी अशुभ और त्रिकोण और उसके स्वामी शुभ माने गये हैं)।

हमारा सम्पूर्ण राशिचक्र (ZODIAC) २७ नक्षत्रों में (LUNAR MANSIONS) विभागा गया है। महर्षि पराशरने पूरे भ–चक्र को २७ नक्षत्रों तथा नौ ९ नक्षत्रों को तीन मुख्य भागों में विभक्त किया है और इनकी आवृत्ति १२० वर्षों में ही नौ ग्रहों की दशा भुक्त होती है।

२७ नक्षत्रों को तीन भागों में बांटने से प्रत्येक भाग में ९ नौ नक्षत्र स्थापित होते हैं और उन ९ नौ नक्षत्रों के स्वामी नौ ग्रह माने गये हैं। और उन ग्रहों का क्रम सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, वृहस्पति, शनि, बुध, केतु, तथा शुक्र ऐसा रखा गया है। दशा का आरम्भ कृत्तिका नक्षत्र से माना गया है और उसका स्वामी सूर्य है।

इस क्रम से प्रथम आवृत्ति में कृत्तिका, रोहिणी, मृग, आर्द्रा, पुनर्वसु, आश्लेषा, मघा और पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रों की योजना की गई है और इनके स्वामी क्रमशः सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु, और शुक्र हैं इस आवृत्ति को "जन्म नक्षत्र आवृत्ति" कहते हैं। इसके पश्चात् नक्षत्रों की दूसरी

आवृत्ति उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र से आरम्भ होकर पूर्वाषाढा नक्षत्र में समाप्त होती है। इनके स्वामी पुनः क्रमशः प्रथम आवृत्ति के अनुसार होते हैं। इस आवृत्ति को "अनुजन्म नक्षत्र आवृत्ति" ऐसा कहते हैं।

इसी प्रकार तृतीय आवृत्ति उत्तराषाढा नक्षत्र से आरम्भ होती है और भरणी नक्षत्र में समाप्त होती है। इन ९ नक्षत्रों के स्वामी उसी क्रम से होते हैं। इस तृतीय आवृत्ति को "त्रिजन्म नक्षत्र आवृत्ति" कहते हैं।

महर्षि पाराशर ने ग्रहों के दशावर्ष इस प्रकार माने हैं।

सूर्य–६ वर्ष, चन्द्रमा–१० वर्ष, मंगल ७ वर्ष, राहु १८ वर्ष, वृहस्पति १६ वर्ष, शनि–१९ वर्ष, बुध–१७ वर्ष, केतु–७ वर्ष, और शुक्र २० वर्ष, ।कुलयोग १२० वर्ष।

कृ	रो	मृ	आर्द्रा	पुनः	पुण्य	आश्ले	मघा	पूर्वाफाल्गुनी	प्रथम आवृत्ति	जन्मनक्षत्र
उ. फा.	हस्त	चित्रा	स्वाति	विशा	अनु	जेष्ठा	मूला	पूर्वाषाढा	द्वितीय आवृत्ति	अनुजन्म नक्षत्र
उ. षा.	श्रवण	धनिष्ठा	शत	पू. भा.	उ. भा.	रेवती	अ	भरणी	तृतीय आवृत्ति	त्रिजन्म नक्षत्र
सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	——	नक्षत्र स्वामी
६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२०	१२०	दशावर्ष

उपर्युक्त ९ नक्षत्रों के दशावर्षों का योग १२० वर्ष का होता है। यह १२० वर्ष का कालखंड भचक्र की आवृत्ति का तिसरा हिस्सा (भाग) है और इस प्रकार से १२० + १२० + १२० = ३६० वर्षों में भ-चक्र का पूर्ण मार्ग घेर लिया जाता है। एक भू–चक्र ३६०° अंशों का होता है।

चन्द्रमा की गति को फल ज्योतिषशास्त्रों में दशा का आधार माना है। सभी आर्षदशा पद्धतियों का सम्बन्ध चन्द्र नक्षत्र से ही है। चन्द्रमा जिस विभाग में याने जिस नक्षत्र विभाग में होता है उस विभाग द्वारा ग्रहों के दशावर्ष निश्चित किये जाते हैं। विंशोत्तरी दशा १२० वर्षों की होती है और वह १२० वर्षों का कालखंड नक्षत्र मंडल का एक-तृतीयांश भाग होता है। चन्द्रमा जब किसी एक विशिष्ट नक्षत्र से ९ नक्षत्र पूर्ण करके दशवें नक्षत्र में प्रवेश करता है तब विंशोत्तरी दशा की १२० वर्ष की एक आवृत्ति पूर्ण होती है उसके पश्चात् वह दूसरे ९ नक्षत्रों की आवृत्ति में प्रवेश करता है। और उसके बाद तीसरे ९ नक्षत्रों की आवृत्ति में। इस प्रकार उसकी तीन आवृत्ति पूर्ण होने पर ३६० वर्ष पूरे होते हैं। एक भ–चक्र ३६० अंशों का होता है। चन्द्रमा का सम्पूर्ण नक्षत्रों के एक भ–चक्र का मान भी ३६० अंशों का होता है। इस प्रकार चन्द्रमा जब १° अंश (एक अंश) चलता है तो विंशोत्तरी दशा का एक वर्ष पूरा होता है। इस वर्ष को निरयन सौरवर्ष कहा जाता है।

यद्यपि सब–ग्रहों के दशावर्षों का मान भिन्न-भिन्न है परन्तु उन सबका योग १२० वर्ष सिद्ध होता है। इस प्रकार चन्द्रमा की १ अंश की गति विंशोत्तरी दशा के एक सौर वर्ष के बराबर होती है। चन्द्रमा जब १६०५ पृथ्वी की प्रदिक्षणा कर लेता है, तब उतने ही समय में पृथ्वी सूर्य की १२० बार प्रदिक्षणा कर लेती है। इस प्रकार एक आवृत्ति के ठीक १२० वर्ष पूरे होने पर सूर्य तथा चन्द्रमा पुनः अपने-अपने उसी नक्षत्र पर आते हैं। और इस प्रकार दशारंभ की चन्द्रतिथि और दशा समाप्ति की चन्द्रतिथि एक हो जाती है। इनकी गणना इस प्रकार है।

चन्द्रमा की १६०५ आवृत्ति = ४३८२८°६ दिन; सूर्य की १२० आवृत्तियाँ ४३८ ३०·२ दिन। इस प्रकार चन्द्र और सूर्य दोनों १२० सौर वर्षों के बाद जिस नक्षत्र में आरम्भ में थे, उसी अपने-अपने नक्षत्र पर आ जाते हैं।

एक निरयन सौरवर्ष में ३७१.२ तिथियाँ होती हैं। प्रश्न उठता है कि तिथि किसे कहा जाय ? वास्तव में सूर्य और चन्द्रमा की आपस की अंशात्मक दूरी ही तिथि है। इस प्रकार १२० वर्षों में कुल तिथियाँ ४४५२० हो जाती हैं जो कि पूरे-पूरे १४८४ चान्द्रमासों में विभाजित होकर दशा के १२० वर्षों को वैज्ञानिक आधार दे देती है।

इस प्रकार निरयन १२० वर्षों के बाद सूर्य और चन्द्रमा ये एक दूसरे से या परस्पर उसी स्थिति में पुनः आ जाते हैं याने इष्ट समय की तिथि १२० वर्षों के पश्चात् पुनः वही होती है और सूर्य व चन्द्रमा का नक्षत्र भी वही होता है। इस प्रकार से विंशोत्तरी दशा यह एक प्रकार से चन्द्र नक्षत्र मंडल की त्रिकोण दशा है। जातक के जन्म समय में जो नक्षत्र होता है उसी नक्षत्र से नववें ९ वें नक्षत्र में विंशोत्तरी दशा की समाप्ति होती है। नववाँ नक्षत्र आदि नक्षत्रों का त्रिकोण है और उसका अपना वह स्थान १२०° अंशों पर होता है। इस प्रकार १२० वर्षों को वैज्ञानिक आधार है।

परिशिष्ट (१२)

विंशोत्तरी दशा में ग्रहों की क्रमगणना और उसके आधार—

ज्योतिष शास्त्र में फल प्रतिपादन करने के लिए सर्वाधिक महत्व विंशोत्तरी दशा को ही प्राप्त है। यह अपने आप में पूर्ण सत्य, निर्विवाद और सर्व सम्मत है। इस दशाक्रम में ग्रह गणना क्रम इस प्रकार है—सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, वृहस्पति, शनि, बुध, केतु, शुक्र, जबकि इनकी सीधी सामान्य गणना है सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु। इनकी सामान्य गणना की विंशोत्तरी दशा के ग्रहों की क्रम गणना में यथाविधि क्यों नहीं रहने दिया गया, इसका उत्तर आज भी अनेकों के पास नहीं है।

इस प्रश्न का उत्तर तो यह है कि विंशोत्तरी दशा नक्षत्रों पर आधारित है। और नक्षत्राधिप क्रमानुसार दशापति होते गये हैं। इसका वर्णन परिशिष्ट ११ में कोष्टक रूप में दिया गया है। यह एक तथ्य है किन्तु इसमें भी त्रिकोण सिद्धान्त के अनुसार ही दशाक्रम को आगे बढाया गया है। यथा अश्विनी नक्षत्र से आश्लेषा नक्षत्रतक एक आवृत्ति होती है। मघा नक्षत्र से जेष्ठा नक्षत्रतक द्वितीय आवृत्ति और मूला नक्षत्र से रेवती नक्षत्र तक तृतीय आवृत्ति उसी क्रम से निर्धारित की गई है। अर्थात् त्रिकोण नक्षत्र में उसी ग्रह की दशा रहेगी जैसी अश्विनी, मघा, मूला में केतु की दशा होगी। इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि नक्षत्राधिपत्य भी त्रिकोण सिद्धान्त पर ही आधारित है। और यह कि त्रिकोण पद्धति के आधार पर ही विंशोत्तरी दशा के मूल सिद्धान्त निर्धारित किये गये हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया है परिशिष्ट ११ राशिचक्र के चारों त्रिकोणों छैः छैः राशियों के २ ग्रूप या समूह बने हुए हैं। इनके स्वामी सात ग्रह हैं। राशिचक्र में राहु, केतु को

कोई आधिपत्य प्राप्त नहीं हुआ है। वैसे राहु, केतु, के आधिपत्य को इनकी ऊंच, नीच राशियों की तथा मूल त्रिकोण राशियों की भी अनेक विद्वानों ने कल्पना की है किन्तु उनमें भी परस्पर मतभेद पाये जाते हैं।

वास्तव में इनकी कोई राशि नहीं है। ये जिस राशि में स्थित होते हैं। उसी के स्वामी भी बन जाते हैं। राहु, केतु, दृश्य भी नहीं हैं। ये छाया ग्रह कहलाते हैं। इनमें राहु चन्द्रमा का नोड (NODE) माना गया है। और केतु सूर्य का नोड (NODE) कहा जाता है। इनकी स्थिति सर्वथा एक दूसरे से ७ वें स्थान में रहती है। गणित ज्योतिष में काल शुद्धि के लिए इनका उपयोग किया जाता है। नवग्रहों में इनकी स्थिति सर्वथा एक दूसरे से ७ वें स्थान में रहती है। गणित ज्योतिष में कालबुद्धि के लिए इनका उपयोग किया जाता है। नवग्रहों में इनकी गणना की जाती है और दशा विचार में भी इनको सम्मिलित किया गया है। यह खुद स्वयं ही एक महत्वपूर्ण ऐसा प्रश्न है। महर्षि पाराशर ने जिस क्रम से ग्रहों को स्थान दिया है वह यथार्थ में विज्ञान सम्मत है।

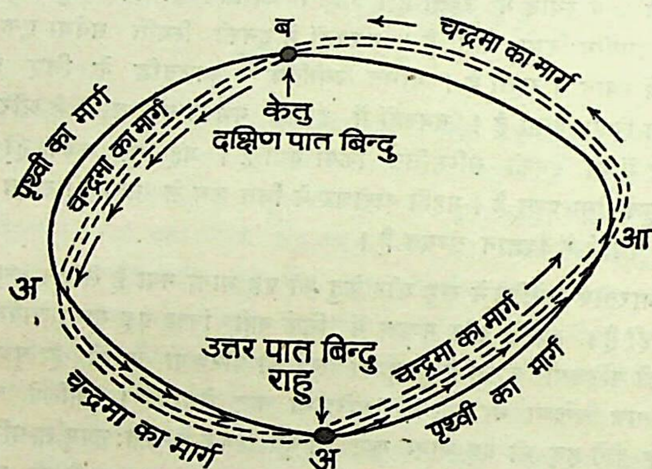
भारतीय ज्योतिष में राहु और केतु को ग्रह माना गया है लेकिन वस्तुत: वे ग्रह नहीं हैं। क्योंकि सौर मण्डल में सिर्फ वही पिण्ड ग्रह माना जायेगा, जो सूर्य की परिक्रमा करता है। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है पृथ्वी के साथ-साथ चन्द्रमा भी सूर्य की परिक्रमा कर लेता है। इसलिये चन्द्रमा उपग्रह होते हुए भी ग्रह माना गया है। सूर्य स्थिर है, अत: उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार सूर्य को ग्रह नहीं कहा जा सकता, परन्तु पृथ्वी तो सूर्य की परिक्रमा करती है अतः पृथ्वी एक ग्रह है। पृथ्वी जिस वृत्त पर चक्कर लगाती है उसी वृत्त के नक्षत्रीय क्रान्तिवृत्त पर सूर्य चलता दिखाई देता है, जो कि वास्तव में पृथ्वी की ही गति होती है। इसलिये भारतीय ज्योतिष फलित विज्ञान में पृथ्वी की जगह सूर्य को ग्रह मानकर फलित सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है, राहु और केतु केवल कल्पित ग्रह हैं, क्योंकि वे पार्थिव नहीं हैं। केवल वायवीय हैं, परन्तु इतना होने पर भी गगन-मंडल में इनका स्थान सुरक्षित है ही। वास्तविक राहु और केतु पृथ्वी तथा चन्द्रमा के कक्षावृत्तों के सम्पात बिन्दु हैं। जिस सम्पात स्थान से चन्द्रमा कान्तिवृत्त से उत्तर की तरफ चलता है उस बिन्दु को राहु तथा जिस सम्पात स्थान से चन्द्रमा क्रान्तिवृत्त से दक्षिण की ओर चलता है उस बिंदु को केतु माना गया है। इस प्रकार यह तो स्पष्ट हो गया कि राहु और केतु ठोस ग्रह नहीं हैं अपितु आकाश में

चन्द्रगमन को ठीक प्रकार से समझने के लिए दो निर्धारित विन्दु हैं जिन्हें राहु और केतु कहा जाता है।

राहु और केतु की स्थिति इस प्रकार आकाश में है।

इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि राहु और केतु ठोस ग्रह नहीं है।

राहु और केतु चन्द्रमा के उत्तर तथा दक्षिण बाजू के सम्पात विन्दु हैं, वे आकाश में कहीं भी दिखाई नहीं देते। इसलिये इनका आधार केवल ज्योतिष-



गणित-फलित ही है। प्राचीन आर्य ऋषियों ने देखा है कि नक्षत्र मण्डल में क्रान्तिवृत्त की ५०.२६" प्रतिवर्ष विलोम गति होती है। उसी प्रकार राहु और केतु के सम्पात बिन्दुओं की क्रान्तिवृत्त में विलोमतः गति १८°–४२" प्रतिवर्ष है और हर १८ वर्षों के बाद इनका पातबिन्दु पुनः फिर उसी स्थान पर दृष्टिगोचर होता है, जिस स्थान पर वह आरम्भ में था और प्रत्येक १८ वर्षों बाद उसी आकृति के सूर्य और चन्द्र ग्रहण होते रहते हैं और वे दिखाई पड़ते हैं। इसलिये सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहणों के कारण ये ही संपात बिन्दु हैं और वे इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि उनको यदि अलग किया जावे तो सही गणना सिद्ध होना असम्भव है। ऐसा देखकर ही प्राचीन ऋषियों ने (पाराशरने) इन बिन्दुओं को अर्थात राहु केतु को दशा पद्धति में समाविष्ट किया और इस प्रकार से विंशोत्तरी दशा पद्धति को वैज्ञानिक आधार दिया।

सूर्य सिद्धान्त ग्रन्थ के अनुसार—२ सितम्बर सन् ६४९ को भिन्न-भिन्न ग्रहों के वेध लिये गये और गणित करके प्रत्येक ग्रह की स्थिति जिस प्रकार से निश्चित करके उनको जिन-जिन स्थानों पर स्थापित किया गया वह जानकारी निम्न-लिखित अनुसार है। यह संशोधन के रूप में था।

ई० स० ६४९ की २ सितम्बर को गणित करके ग्रहों के वेध लेने के पश्चात स्थिति इस प्रकार थी		विंशोत्तरी दशा के लियें ग्रहों की जो स्थिति निश्चित की गयी, वह इस प्रकार थी
सूर्य	१५९°.–४८	१४६°–४० से १६०°
चन्द्रमा	३९°–४८	४०°–० से ५६–२०
मंगल	४८°–४० + २°–८	५३°–२० से ६६°–४०
राहु	६१९ (निश्चित स्थिति)	६६°–४० से ८०°
गुरु	८५°–३० + १°.०	८०°. से ९३°.२०
शनि	९३°–१० + २°–०	९३°–२० से १०६°–४०
बुध	१३८°–० + १८°–०	१०६°–४० से १२०°
केतु	१३३°–२०	१३३°–२० सें ११०°
शुक्र	१४८°–८०–४°.०	१३३°–२० से १४४°–४०

इण्डियन एफिमेरिस पुस्तक १ पर से (श्री एन० डी० स्वामी कन्नु पिस्लाई कृत)

विंशोत्तरी दशा में जैसा कि ऊपर कहा गया है कि ग्रहों की गणना सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु और शुक्र इस प्रकार है।

आकाश में सूर्य को प्रधानता देकर यदि सब ग्रहों को (राहु, केतु को छोड़कर) कक्षाक्रम के अनुसार स्थापित करें तो उनका क्रम इस प्रकार से होगा ग्रहमाला की आकृति देखिये।

सूर्य

बुध	शुक्र	पृथ्वी	चन्द्र	मंगल	गुरु	शनि

अर्थात् कक्षा क्रम से सूर्य के बाद बुध की कक्षा, फिर पृथ्वी, चन्द्र, मंगल, गुरु तथा शनि की कक्षा है, परन्तु यदि हम सूर्य की जगह पृथ्वी को प्रधानता देकर ग्रहों की कक्षाएं देखें तो उनका रूप इस प्रकार से होगा।

पृथ्वी

सूर्य	चन्द्र	मंगल	गुरु	शनि	बुध	शुक्र

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि चन्द्र भ्रमण-पथ को स्पष्टता देने के लिये ही राहु, केतु ग्रहों की कल्पना कर (कृपया ऊपर की आकृति देखिये) राहु को (सम्पात विन्दु के अनुसार) मंगल, वृहस्पति, के बीच तथा केतु को बुध, शुक्र के बीचं स्थान दिया गया है। अब यदि राहु और केतु को भी ग्रह मानकर तथा पृथ्वी को प्रधानता देकर कक्षा अनुसार ग्रहों का निर्धारण किया जाय तो उनका क्रम इस प्रकार से होगा—

पृथ्वी

सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र

इस प्रकार हम देखते हैं कि महर्षि पाराशर ने ग्रहों का जो क्रम—सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु तथा शुक्र रखा है वह पूर्णतः तथ्य संगत युक्त एवं वैज्ञानिक आधार लिये हुए है। ऊपर सूर्य सिद्धान्तका संशोधन करने के लिये गणित सिद्ध करके ग्रहों की जो स्थिति निर्धारित की गयी है, वह कोष्टक रूप से बनायी गई है। उन ग्रहों के अंशों पर से सहज ही ध्यान में आ सकता है कि हर एक ग्रह उसके निश्चित अंशों के अनुसार अपने अपने नक्षत्र में है। इसके सिवाय दशापति के क्रम के विषय में कुछ विवेंचन इस प्रकार है।

राशि चक्र की प्रथम राशि मेष है। सूर्य सम्पूर्ण विश्व का प्रकाशक ग्रह है। वह सर्वाधिक बलवान माना गया है। मेष राशि में वह उच्च का होता है। राशि चक्र का आरम्भ मेष से होता है। इसकी त्रिकोण राशियां सिंह और धनु हैं। इसकी मित्र राशियोंका दूसरा त्रिकोण कर्क, वृश्चिक, मीन राशियों से बनता है। इन छैः राशियों के स्वामी सूर्य, चन्द्र, मंगल, गुरु हैं। प्रश्न यह है कि राहु केतुको जब दशा क्रम में शामिल किया गया है तो दशा क्रममें इनका कौन सा स्थान है। दशागणना क्रममें मंगल, गुरु के बीच में राहु आता है। अतः तीन-तीन ग्रहों के बाद इनकी स्थापना दशाक्रम में की गयी है। सूर्य, चन्द्र, मंगल के बाद राहु का नम्बर आ जाता है। अब अन्य छैः राशियों के दोनों त्रिकोणोंके स्वामी बुध, शुक्र, शनि हैं बृहस्पति के बाद दशागणना में शनि के आनेके निम्नांकित कारण हैं।

(१) गुरु के बाद शनि की कक्षा है, २) शनि की राशियां मकर और कुम्भ दोनों ही धनु और मीन के मध्य में हैं, (३) कुम्भ राशि में गुरु का नक्षत्र पूर्वा भाद्रपदा है और मीन राशि में शनि का नक्षत्र उत्तरा भादप्रदा हैं, अतः इनका परस्पर राशि, नक्षत्र सम्बन्ध भी बन जाता है। अतः गुरु दशा के बाद शनि दशा आती है। मकर, कुम्भ में से शनि की मूल त्रिकोण एवं भावात्मक Positive (+ राशि) राशि कुम्भ है। कुम्भ के बाद इसकी सर्वाधिक निकट त्रिकोण राशि मिथुन है। और यह भी भावात्मक याने Positive (+ राशि) है। अतः शनि के बाद बुध आता है। मिथुन से निकटतम मूल त्रिकोण और भावात्मक (Positive= + राशि) तुला राशि है। जिसका स्वामी शुक्र है। दोनों कक्षाएँ भी पासपास ही हैं। अतः बुध के बाद दशा शुक्र की ही होनी चाहिये थी किन्तु इन दोनों के बीच केतु आ जाता है। कारण वृहस्पति, शनि, बुध इन तीनों ग्रहोंके बाद नियमानुसार केतु की स्थापना गणनाक्रम से होनी चाहिये थी।

इसमें एक कारण और भी है। वह यह है कि द्वादश राशियों के चार-चार राशियों के तीन समूह होते हैं। (१) मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क २) सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक (३) धनु, मकर, कुम्भ, मीन। इनमें प्रथम समूह में मेष और वृषभ राशि का सम्बन्ध कृत्तिका नक्षत्र द्वारा बन जाता है। जो सूर्य का नक्षत्र है। वृषभ, मिथुन का सम्बन्ध मृगशीर्ष नक्षत्र द्वारा तथा मिथुन-कर्क का सम्बन्ध पुनर्वसु द्वारा बन जाता है। कर्क से आगे इस प्रकार का सम्बन्ध नहीं चल पाता है। अतः आश्लेषा नक्षत्र पर राशिओं का सम्बन्ध भंग हो जाता है। यह बुध का नक्षत्र है। अतः बुध से आगे दूसरे समूह का आरम्भ होता है जिसके नक्षत्र मघा का स्वामी केतु है। इसलिये विंशोत्तरी दशा में बुध के बाद केतु की गणना की जाती है। इस प्रकार सूर्य, मंगल, गुरु ये ऐसे ग्रह हैं जिनके नक्षत्रों के कारण परस्पर राशियों का सम्बन्ध बनता हुआ चला जाता है। इस परसे यह पता चलता है कि सूर्य, मंगल, गुरु ये सम्बन्ध कर्ता, बुध सम्बन्ध समाप्त करने वाला और केतु हर सम्बन्ध को प्रारम्भिकता प्रदान करने वाला है। तदनुसार भी बुध के बाद दशा क्रममें केतु ही आ जाता है। केतु के बाद शुक्र की दशा आती है। राशिचक्र में प्रथम राशि का स्वामी मंगल है और अन्तिम राशि का स्वामी गुरु है। अतः आदि-अन्त के बीच मध्य स्थान राहु का ही होना चाहिये। जबकि हम राशि चक्र के प्रथम नक्षत्र वाले केतु से दशागणना करते हैं तो इससे १८०° दूरी पर राहु की स्थिति स्वयमेव प्रमाणित हो जाती

है। राहु केतु के नक्षत्र (+धन) (Positive) भावात्मक राशियों से ही हैं। राशि चक्र का मध्य भावात्मक राशियों में केवल तुला राशि से ही संभव होता है। अतः राहु की गणना दशाचक्र में मंगल के बाद ही आती है। उपरोक्त विश्लेषणका निष्कर्ष निम्नांकित है।

(१) विंशोत्तरी दशा में ग्रह गणना नक्षत्राधिपतियों के अनुसार है।

(२) विंशोत्तरी दशा का मूल आधार त्रिकोण सिद्धान्त है।

अब भारतीय ज्योतिष में नवांश को विशेष महत्त्वपूर्ण माना गया है। तदनुसार यदि नवांशपति और नक्षत्रपति ग्रहों को देखा जाय तो निष्कर्ष इस प्रकार आता है—

नवांशपति	नक्षत्रपति
मंगल, शुक्र, बुध, चन्द्र	केतु^{1}–चन्द्रमा^{4}–गुरु^{7}
सूर्य, गुरु, शुक्र, मंगल	शुक्र^{2}–मंगल^{5}–शनि^{8}
गुरु, शनि–	सूर्य^{3}–राहु^{6}–बुध^{9}

अब उक्त नक्षत्रपति ग्रहोंको उपर से नीचे क्रमानुसार देखा जाय तो वही गणना क्रमसे, शुक्र, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, गुरु, शनि, बुध आते हैं। उपरोक्त नवांशपति और नक्षत्रपति के संशोधन परसे यह स्पष्ट होता है कि शनि गुरु के नवांश किसी भी राशि के हों उनके नक्षत्रपति सदैव, सूर्य, राहु, बुध होंगे। प्रथम आवृत्तिमें नक्षत्रपति सूर्य, द्वितीय आवृत्ति में नक्षत्रपति राहु और तृतीय आवृत्ति में नक्षत्रपति बुध रहेगा। इसी प्रकार सब में समझना चाहिये। इनमें चन्द्र, मंगल, शुक्र ये तीन ग्रह ऐसे हैं जो अपने नवांश के नक्षत्रपति बन सकते है। चन्द्रमा, और मंगल के नक्षत्रों का चौथा-चरण इन्हीं का नवांश होगा। शुक्र अपने नक्षत्रों का तीसरे चरण का नवांशपति बन जायगा। इस सब का फलादेश में क्या उपयोग है और इनका महत्व क्या है? यह अलग विषय हैं और इसपर अलग से विचार हो सकता है। वैसे युति दृष्टि, राशि परिवर्तन ये तीन प्रधान सम्बन्ध माने गये हैं। किन्तु ग्रहों का परस्पर नक्षत्र परिवर्तन सम्बन्ध भी तो होता हैं और यह अधिक सूक्ष्म और प्रभावशाली है, पर देखा गया है कि इस सम्बन्ध की तरफ प्रायः आम ज्योतिषी बहुत कम ध्यान देते हैं।

परिशिष्ट (१३)

विंशोत्तरी दशा में ग्रहों के दशावर्ष का आधार और सिद्धान्त—

अब एक बड़ा और महत्वपूर्ण प्रश्न विचारणीय है कि ग्रहों की दशावर्ष किस सिद्धान्त पर निर्धारित किये गये हैं? सूर्य दशा के ६ वर्ष और

शुक्र दशा के २० वर्ष क्यों हैं ? इस प्रश्न पर अधिकार पूर्वक विचार आज तक किसी विद्वान ने व्यक्त नहीं किये हैं और यदि किसी ने किये भी हों तो वे सार्वजनिक रूप में अभी प्रकाश में नहीं आये हैं । तात्पर्य यह है कि आज तक जिस पद्धति के अनुसार फलादेश किये जाते रहे हैं. वह पद्धति किन मूलभूत सिद्धान्तों पर निर्मित की गयी है । इसका विचार अवश्यमेव होना जरूरी है । आशा है कि इस विषयपर अन्य विद्वान भी संशोधन करके प्रकाश डालेंगे ।

जहां तक लेखक का अपना अनुभव और विश्वास है, विंशोत्तरी दशा के वर्ष निर्धारण में राहु का उपयोग किया गया है । हमारे ऋषियों और मुनियों की दिव्य सूझ-बूझ और क्रियात्मक पर्यवेक्षण (Practical Observation) ने यह खोज निकाला कि राहु और केतु, जो यद्यपि (सूर्य द्वारा बनाई गई) पृथ्वी की छाया मात्र है, कोई पिण्डात्मक या भौतिक (Material) वस्तु नहीं हैं, तो भी संसारमें उत्पन्न जीवों तथा पदार्थों पर बहुत गम्भीर, दीर्घव्यापी आवश्यक एवं निश्चित प्रभाव डालते हैं । इनके प्रभाव को देखकर राहु और केतु को भी ग्रहों की श्रेणी में सम्मिलित कर लिया गया है यद्यपि इनका अस्तित्व छाया मात्र है । ऋषियों की यह खोज (Discovery) ज्योतिष में उतना ही महत्व रखती है, जितना उनकी शून्य (Zero) की खोज (Discovery) गणित शास्त्र में रखती है। छाया अथवा शून्य के प्रभाव को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता । आज के वैज्ञानिक युग में पाठशाला तथा महाविद्यालयों की प्रयोगशालाओं में प्रयोग द्वारा यह तथ्य सिद्ध हो चुका है कि "छाया" भी अपना एक परिणाम रखती है। चाहे वह दुष्परिणाम ही क्यों न हो, क्योंकि देखा गया है कि छाया में पौधे, वनस्पति आदि जीवन रूपी धूप के न मिलने के कारण पनप नहीं सकते । इसी प्रकार राहु तथा केतु का प्रभाव भी बहुत अंशों में "नकारात्मक", "जीवन शून्य", "मारक" आदि सिद्ध हुआ है। इस प्रकार ग्रह संख्या में ९ ग्रह हुए हैं ।

इस पर से विदित होगा कि राहु और केतु की गणना ९ ग्रहों में की गयी है किन्तु यह अन्य ग्रहों के समान दृश्य ग्रह नहीं हैं और न ही सर्व सम्मत रूप से इनकी कोई राशि मानी गयी है । इनकी राश्यधीशता में भी मतभेद है । इसी प्रकार इनकी उच्च, नीच, मूल त्रिकोण राशियों में भी मतभेद पाया जाता है । यह निम्नलिखित कोष्टक पर से विदित होगा ।

ग्रंथ या लेखक	राहु				केतु			
	स्व गृह राशि	मूल त्रिकोण राशि	उच्च राशि	नीच राशि	स्व गृह राशि	मूल त्रिकोण राशि	उच्च राशि	नीच राशि
सर्वार्थ चिन्तामणि	—	कर्क	वृषभ	वृश्चिक	—	मकर	वृश्चिक	वृषभ
जातकाभरण	मिथुन	—	—	—	धनु	—	—	—
संकेतनिधि	कन्या	—	मिथुन	—	मीन	—	धनु	—
जातक पारिजात	कन्या	कुम्भ	मिथुन	—	मीन	सिंह	धनु	—
उत्तर कालामृत	कुम्भ	मिथुन	वृषभ	—	वृश्चिक	—	—	—
जैमिनीय सूत्र	कुम्भ	—	वृश्चिक	वृषभ	वृश्चिक	—	—	—
मानसागरी	कन्या	कर्क	मिथुन	धनु	मीन	मकर	धनु	मीन
फलदीपिका	—	—	—	—	—	—	—	—
जातक-चंद्रिका	कन्या	तुला	मिथुन	धनु	मीन	सिंह	धनु	मिथुन
स्व.वि.गो. नवाथे (सुलभ जातक)	कन्या	कर्क मिथुन	वृषभ	वृश्चिक	धनु मीन	धनु	वृश्चिक	वृषभ
हिन्दुप्रिडीक्टीव अस्ट्रॉलॉजी (प्रो॰ रमन)	—	—	—	—	—	—	—	—
न्युटेकनिक ऑफ प्रिडीक्शन (शेशाद्रि अय्यर)	कुम्भ	—	वृश्चिक	वृषभ	मेष	—	वृश्चिक	वृषभ
बृहत् जातक	—	—	—	—	—	—	—	—
बृहत् पाराशरी होरा	कन्या	कर्क मिथुन	वृषभ	—	मीन	धनु	वृश्चिक	—
भारतीय ज्योतिष (डॉ.श्रीमाली)	कन्या	मिथुन	धनु	—	—	—	—	—
भारतीय ज्योतिष (डॉ॰ नेमिचन्द जैन)	मेष	कर्क	वृषभ	वृश्चिक	—	—	वृश्चिक	वृषभ
स्व.ह.ने काटवे "राहु विचार"	कन्या	सिंह कुम्भ	वृषभ	धनु	—	—	—	—

राहु और केतु के विषय में जो सर्वसम्मत तथ्य हैं वे निम्नांकित हैं ।

(१) ये अदृश्य ग्रह हैं। इनके रूप, रंग, आकार अज्ञात हैं ।

(२) ये दोनों सूर्य चन्द्रमा के Nodes नोड्स माने गये हैं ।

(३) राहु चन्द्रमा का नोड है (Node), केतु सूर्य का (Node) है ।

(४) ये छाया ग्रह हैं ।

(५) ये दोनों जिस राशि, भाव में होते हैं, तदनुरूप फल प्रदान करते हैं ।

(६) ये दोनों ग्रहों की अपेक्षा बलवान माने गये हैं ।

(७) राहु, केतु का राशिपति बाधक बन जाता है ।

(८) राहु केतु के साथ रहनेवाले ग्रह निर्बल बन जाते हैं ।

(९) ये सदा वक्रगति से चलते हैं ।

(१०) इनकी गति सदैव एक समान रहती है । यद्यपि सूर्य, चन्द्रमा सदैव मार्गी रहते हैं किन्तु इन दोनों की भी गति घटती-बढ़ती रहती है। जबकि ये एक गति से सर्वथा चलते रहते हैं ।

(११) इनका उपयोग कालशुद्धि के लिये भी किया जाता है ।

(१२) सूर्य, चन्द्र ग्रहण में ये परिदर्शित होते हैं । अर्थात् ग्रहण काल में सूर्य चन्द्रमा का राहु केतु के साथ रहना अनिवार्य है । सूर्य चन्द्र जब एक राशि में दोनों में से किसी के भी साथ होंगे सूर्य ग्रहण होगा तथा सूर्य चन्द्र परस्पर ७वीं राशियों में होनेपर चन्द्र ग्रहण होगा ।

(१३) राहु केतु के वार नहीं माने गये हैं । न ही इनकी राशि निश्चित है किन्तु इन्हें नक्षत्रों का स्वामी माना गया है और विंशोत्तरी दशामें इनके वर्ष भी निर्धारित किये गये हैं और इनकी दशाओं के फल भी बताये गये हैं । इसलिये दशावर्ष निर्धारण में प्रमुख रूप से राहु का ही आधार बनाया गया है । राहु को आधार मानकर दशावर्ष किस प्रकार निर्धारित किये गये हैं, इसका विवरण इस प्रकार है ।

विंशोत्तरी दशा में १२० वर्ष होते हैं। दशा नक्षत्रों के अनुसार स्पष्ट की जाती है । जैसे चन्द्रमा जिस नक्षत्र में होगा उसी नक्षत्र के स्वामी की दशा होगी । दशा मुक्त भोग्य चन्द्र स्पष्ट के अनुसार होते हैं । जितना नक्षत्र चन्द्रमा ने भोग लिया है, उतनी दशा भुक्त होती है, बाकी दशा भोग्य होती है ।

नक्षत्र का मान १३ अंश २०′ कला अथवा ८०० कला होता है । अब यदि ग्रहों की दशा वर्षों के अनुसार नक्षत्र का सूक्ष्म विभाग किया जाय तो

प्रत्येक नक्षत्र के ९ भाग होंगे और प्रत्येक भाग का मान अलग-अलग होगा। इसका नियम यह है कि केतु दशा ७ वर्ष की होती है इस नक्षत्र मान को १३ अंश २०′ कला या ८०० कला से गुणा कर दिया जाय और सम्पूर्ण दशा वर्ष का इस गुणनफल में भाग दिया जाय तो फल अंशादि में प्राप्त होंगे जैसे—

ग्रह	अंश	कला	विकला
केतु	०	४६	४०
शुक्र	२	१३	२०
सूर्य	०	४०	००
चन्द्र	१	०६	४०
मंगल	०	४६	४०
राहु	२	००	००
गुरु	१	४६	४०
शनि	२	०६	४०
वुध	१	५३	२०

केतु = ८०० × ७ = ५६०० कला ÷ १२० = ४६ कला ४० विकला केतु की ही होती है।

शुक्र = $\frac{१३^\circ-२०^\circ \times २०}{१२०}$ =

$\frac{१३^\circ-२०}{६}$ = २ अंश १३′–२०″

शुक्र की होती है।

इसी प्रकार सब में समझना चाहिये।

इसका दूसरा सरल नियम यह भी है कि दशा वर्षों में ९ का भाग देने से भी फल अंशादिक होंगे। जैसे केतु दशावर्ष ७ ÷ ९ = ७ × ६० = ४२० ÷ ९ = ४६′ शेष ६ × ६० = ३६० ÷ ९ = ४०″। इसी प्रकार शुक्र दशावर्ष २० ÷ ९ = २ अंश, शेष, ८ × ६० = १२० ÷ ९ = १३ शेष ३ × ६० = १०० ÷ ९ = २०″ अर्थात् शुक्र के २°–१३–२०″ होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक ग्रह का सूक्ष्म विभाग सार्थक कोस्टक से सिद्ध होगा।

अब इनका भी सूक्ष्म विभाग किया जाय तो उसमें राहु के नक्षत्र के उस सूक्ष्म क्षेत्र का मान कलादि में आयेगा। और वे कलादिमान ग्रहों के दशावर्षो के अनुरूप होंगे। इसका नियम इस प्रकार है कि उपरोक्त मान को ग्रह-दशावर्ष से गुणा कर १२० का भाग देने पर इस सूक्ष्म विभाग का मान कलादि में आवेगा। जैसे—सूर्य के सूक्ष्म नक्षत्र विभाग का मान ४०° कला है। इसे सूर्य के दशावर्ष से गुणा किया जाय तो ४० × ६ = २४० ÷ १२० = २ कला, यह सूर्य का अति सूक्ष्म मान है। अब सूर्य के सूक्ष्म मान ४० कला को राहु के दशावर्षो से गुणा किया जाय तो ४० × १८ = ७२० ÷ १२० = ६ कला अर्थात् यह ६ कलामान सूर्यदशा, सूर्य भुक्ति में राहु का प्रत्यन्तर माना जायगा अर्थात् चन्द्रमा जब राश्यादि ०–२६°–७′–४०″ पर आयेगा उस समय सूर्य-सूर्य राहु का आरम्भ होगा। और चन्द्र राश्यादि ०–२६°–५३′–२० तक सूर्य-सूर्य-राहु रहेगा।

अब इसी नियमानुसार राहु के दशावर्षों में अर्थात् १८ में नक्षत्र भूगोल

के सूक्ष्म भाग को गुणा करके १२० का भाग देकर कलादिमान निकालने पर प्रत्येक ग्रह के दशावर्षों का बराबर मान ग्रावेगा। यह निम्नलिखित कोष्टक पर से सिद्ध होता है—

केतु	०'–४६'–४८' × १८ ÷ २० = ७ कला
शुक्र	२°–१३'–२०" × १८ ÷ १२० = २० कला
सूर्य	०–४०'–०० × १८ ÷ १२० = ६ कला
चन्द्रमा	१'–६"–४०" × १८ ÷ १२० = १० कला
मंगल	०'–४६'–४० × १८ ÷ १२० = ७ कला
राहु	२°–०–० × १८ ÷ १२० = १८ कला
गुरु	१°–४६'–४०" × १८ ÷ १२० = १६ कला
शनि	१°–६'–४०" × १८ ÷ १२० = १९ कला
बुध	१°–५३'–२०" × १८ ÷ १२० = १७ कला
	योग—१२० कला

यहाँ १ कला १ वर्ष के बराबर मानने से १२० वर्ष होते है। राहु दशा १८ वर्ष की ही होती है ग्रौर १८ वर्षों में ही इसका राशिचक्र में पूर्ण भ्रमण भी होता है।

पाश्चात्य विद्वानों के ग्रनुसार विंशोत्तरी दशा के वर्ष ग्रहों की गति पर ग्राधारित हैं। उनका कहना है कि जैसे सूर्य ६ वर्ष में ग्रपने निर्धारित बिन्दु पर परिलक्षित होगा एवं शुक्र हर २० वर्षों में ग्रपने Fixed Point फिक्स्ड पाइंट पर निर्धारित बिन्दु पर रहेगा। जैसे शुक्र यदि मेष राशि के ०°–०'–१" पर है तो २० वें वर्ष के ग्रन्तिम दिन उसी पाइंट–बिन्दु पर ग्रावेगा। ग्रन्य वर्षों में कुछ इधर-उधर ही रहेगा।

बीस वर्षों तक लगातार शास्त्रज्ञों ने ग्रहों के स्थिति का निरीक्षण किया ग्रौर उन्हें सब ग्रहों की स्थिति खास ग्रंशों पर जो प्राप्त हुईं वह पृष्ठ ४२२ के कोष्टक में निर्देशित है।

भूगोल शास्त्रज्ञ ग्रौर तज्ञों ने पृथ्वी को मध्य मान कर गगन मण्डल में ग्रहों के वेध भिन्न वर्षों में संशोधन करने हेतु लिये थे उस समय उन्होंने ग्रश्विनी नक्षत्र के ०° शून्य ग्रंश से उन-उन ग्रहों के सम्बन्ध में ग्रध्ययन किया। जैसे १७७४ ई. स. में गुरु के, १७३३ ई. स. में शनि के, १७२९ ई. स. में मंगल के, १९३५ ई. स. में शुक्र के ग्रौर १९३२ ई. स. में बुध के वेध लिये ग्रौर

वर्ष	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र
१	३०	१३२·४	१७४·९	१९·०	२६·६	१०·०	३३३·०	१९·१	३०७·९
२	६०	२६४·६	८·६	३८·४	५३·५	२२·६	३२८·०	३८०·४	३०·०
३	९०	३६·९	२२३·७	५५·८	८३·०	३४·८	३३·८	५३·८	३३५·३
४	१२०	१६९·९	१६६·०	७७·१	११५·९	४७·६	३५३·०	७७·१	३५६·३
५	१५०	३०१.५	२४७·०	९६·५	१५०·७	६१·०	६·०	९६·१	१२·८
६	१८०	७३.८	२५·८	११५·९	१८४·९	७५·०	१०·९	११५·९	३१८·६
७		२०६·१	२०६·४	१३५·३	२१६·६	८९·५	३५०·५	१३५·३	४०·०
८		३३८·४		१५४·६	२४५·१	१०४·६	३२७·६		३५४·३
९		११०·७		१७३·९	२७२·४	११९·९	३३१·२		३०७·९
१०		२४२·९		१९३·३	२९६·०	१३४·६	३४४·४		३०·५
११				२१२·७	३२२·८	१४९·०	३५९·०		३३५·९
१२				२३२·०	३४९·८	१६२·५	१०·२		३५२·४
१३				२५१·४	१९·८	१०५·०	६·०		१४·०
१४				२७०·९	५३·८	१८७·२	३३७·१		३१९·५
१५				२९०·१	९१·८	१९८·३	३१७·०		४०·७
१६				३०९·५	१२८·०	२०८·७	३३६.३		३५५.०
१७				३२८·८	२१८·०	३५०·६			३०७·९
१८				३४८·१		२२८·४			३१·०
१९						२३८·०			३३६·५
२०									३४८·४

प्रत्येक वर्ष में उनकी स्थिति का अध्ययन किया कि वे ग्रह हर वर्ष में कौन-कौन से अंशों पर थे। ऐसा निरीक्षण शास्त्रज्ञों ने २० वर्षों तक किया और २० वर्षों के अन्त में उन सब ग्रहों की स्थिति जो खास अंशों में ज्ञात हुई वह स्थिति (पृ०४२७) कोष्टक रूप में निर्देशित है।

रात्रि के समय आकाश में देखने से ऐसा मालूम देगा कि सम्पूर्ण राशि चक्र पूर्व की तरफ से पश्चिम की तरफ सरक रहा है और ग्रह पश्चिम की तरफ से पूर्व की ओर अर्थात् राशि चक्र की विपरीत दिशा से घूमते हुए दिखाई पड़ते हैं। और सम्पूर्ण राशि चक्र ३६०° अंश पूर्ण वर्ष तक पूर्व की तरफ घूमते दिखाई पड़ते है। दूसरी महत्व की बात यह है कि ग्रह कभी-कभी आकाश में दिखाई पड़ते हैं और कभी-कभी बिलकुल दिखाई नहीं देते। उनका दिखाई देना सूर्य से वे कितने अंशों की दूरी पर हैं इस पर अवलम्बित है। जब ग्रह आकाश में दिखाई नहीं पड़ते तब वे अस्त होते हैं। सूर्य सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक ग्रह के दृश्य और अदृश्य के अंश नीचे लिखे अनुसार है।

चन्द्रमा मंगल बुध गुरु शुक्र शनि ग्रह जब अस्त होते हैं

१२ १७ १० ११ ६ १५ तब वे निर्बली होते हैं।

हिन्दू शास्त्र में १ सावन दिन ६० घटी का होता है और प्रत्येक घटी अंग्रेजी समय के अनुसार २४ मिनट की होती है। दिन सूर्योदय से लेकर दूसरे दिन के सूर्योदय तक माना गया है। वह अंग्रेजी समय के अनुसार रात्रि के १२ बजे के बाद नहीं बदलता। ३० दिन का एक महीना होता है। एक वर्ष में ३६० दिन होते हैं। इसलिए पृथ्वी से समस्त ग्रहों की स्थिति का गणित सावन दिन या सावन वर्ष पर से ही होता आया है। तीन बड़े-बड़े गोल याने मंगल, शनि, गुरु इन ग्रहों की स्थिति पृथ्वी से अश्विनी नक्षत्र के ०° शून्य अंश से प्रत्येक सावन दिन से गिनी जाती है और अन्य शेष ग्रहों की स्थिति पृथ्वी से प्रत्येक सावन दिन की सूर्य गति पर से ठहरायी जाती है। इस प्रकार भूगोल शास्त्रज्ञ और वैज्ञानिकों ने ग्रहों की जो स्थिति निश्चित की है वह उपरोक्त कोष्टक में बतायी है। इस कोष्टक पर से वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि सूर्य अश्विनी नक्षत्र के जिस बिन्दु से आरम्भ में दिखाई पड़ता है उसी बिन्दु पर फिर से हर ५ वर्ष के बाद दिखाई देता है उस बिन्दु से त्रिकोण स्थिति में पाया जाता है। चन्द्रमा १० वर्षों के पहिले फिर उसी बिन्दु पर नहीं मिलेगा। लेकिन १० वर्षों के बाद प्रारम्भ के नक्षत्र बिन्दु में या उस बिन्दु मे त्रिकोण स्थिति में दिखाई पड़ता है। और वह प्रारम्भ के जन्म नक्षत्र से मूल नक्षत्र के त्रिकोण स्थिति में दिखाई पड़ता है।

मंगल प्रत्येक वर्ष के आरम्भ अपने जन्म नक्षत्र में नहीं दिखाई पड़ता। वह मूल नक्षत्र में अपने जन्म नक्षत्र के विन्दु पर त्रिकोण में ठीक ६ वर्ष ३५० दिनों के बाद दिखाई देता है अर्थात् लगभग ७ वर्षों के बाद। यहाँ पर १० दिन का पूरक आता है। परन्तु १२० वर्षों में १० दिन का पूरक वैसा देखा जावे तो बहुत नही है क्योंकि प्रत्येक वर्ष में इस हिसाब से २ घंटों का या प्रत्येक महिनों में ५ मिनटों का पूरक आवेगा। दशाकारों ने गणित करने में सुलभ हो, इस दृष्टि से पूर्ण ७ वर्ष निर्धारित किये हैं। यदि ऐसा नहीं किया जाय तो दशान्तर्दशा का गणित करते समय पूर्णांक, अपूर्णांक के गणित में घोटाला होने की सम्भावना रहेगी। मंगल शीघ्र गति से चलने वाला ग्रह है और कदाचित वह ७ वर्ष के पूर्व अपने आरम्भ के नक्षत्र विन्दु से त्रिकोण स्थिति में आता होगा लेकिन उस समय वह दृष्टि-गोचर नहीं होता।

गुरु की गति राशि भ्रमण चक्र में हर वर्ष में वहीं रहती है और वह अपने आरम्भ के जन्म नक्षत्र में या उस नक्षत्र से त्रिकोण में हर ४–८–१२ और ७६ वर्षों के अन्त में दिखाई पड़ता है लेकिन चौथे वर्ष में वह ५ अंश पीछे रहता है, आठवें वर्ष के अन्त में वह जन्म नक्षत्र मूल में आता है तब वक्री रहता है और त्रिकोण स्थिति में ५ अंश आगे निकल जाता है। १२ वर्ष के अन्त में सूर्य के अति सान्निद्ध अश्विनी नक्षत्र में होने से दिखाई नहीं देता लेकिन १६ वर्ष के अन्त में वह अपनी भोगतारा में या उससे त्रिकोण स्थिति में आता है तब दिखाई पड़ता है।

शनि मूल नक्षत्र मे अश्विनी नक्षत्र से त्रिकोण स्थिति में १९ वर्ष के अन्त में दिखाई पड़ता है और वहां वह बक्री होता है और फिर बाद में वर्ष भर तक मार्गी रहता है।

अब दो ग्रह शुक्र और बुध ये अपनी-अपनी कक्षा में सूर्य के सान्निद्धय में होने से फिर से अपने आरम्भ के जन्म नक्षत्र में क्रमशः २० और १७ वर्षों के अन्त में दिखाई पड़ते हैं। इनकी कक्षा सूर्य के सान्निध होने से उनके दृश्य और अदृश्य का प्रश्न खड़ा होता है और यह सदैव ध्यान में रखना चाहिये क्योंकि शुक्र से ४८° से १०° अंश तक और बुध २८° से १३° अंश की दूरी पर रहता है।

शुक्र फिर से अपने आरम्भ के जन्म नक्षत्र से ७ और १९ या ८ और २० था ११ और १३ वर्षों के अन्त में सब्ध समय आता है और वह १ और १३,

२ और १४, ५ और १७ वर्षों के अन्त में सूर्योदय होने के पूर्व क्षितिज पर होता है। शुक्र या तो सूर्योदय के पूर्व अथवा सूर्यास्त के बाद अपने नक्षत्र के आसपास रहता है लेकिन २० वर्षों के अन्त में मात्र वह अपने जन्म-नक्षत्र के चतुर्थ चरण में जन होता है दिखाई पड़ता है यह निश्चित है। और इस प्रकार वह अपने बिन्दु पर आने के लिए ४५ दिन लेता है। शुक्र की गति सम नहीं रहती इसलिये २० वर्षों में ३५ से ५५ दिन कभी कम या कभी अधिक ऐसी अवधि होती है। उपर्युक्त कथन के अनुसार मंगल के लिए जिस प्रकार से पूर्णांक में वर्ष ग्राह्य किये गये हैं, उसी प्रकार शुक्र का यह पूरक १२० वर्षों में यदि विभागा जावे तो वह अधिक नहीं होगा। इसलिये गणित करने की सुगम दृष्टि से शुक्र के भी २० वर्ष निर्धारित किये गये हैं।

यही नियम और सिद्धांत बुध के सम्बन्ध में भी है। बुध अपने जन्मनक्षत्र में फिर से ११ और १३ वर्षों के अन्त में अथवा ७ और १६ या १ और १३ वर्षों के अन्त में सूर्योदय के समय रहता है। ७ वें वर्ष के अन्त में अश्विनी नक्षत्र के आखिरी चरण में होने से वह क्षितिज के बिलकुल नजदीक होता है। १७ वें वर्ष के अन्त में मात्र वह क्षितिज से ऊपर अपने जन्म नक्षत्र के आरम्भ में दिखाई पड़ता है।

राहु चन्द्रमा का उत्तरपात बिन्दु होकर अपने जन्म नक्षत्र में १८ वर्षों के अन्त में जहाँ पर आरम्भ में था वहीं पर फिर से उसी बिन्दु पर दिखाई पड़ता है।

केतु चन्द्रमा का उत्तरपात बिन्दु होकर राहु से १८० अंश के अन्त पर सदैव रहता है। किन्तु वह अपने जन्म नक्षत्र के अन्त में ७ वर्ष बाद अपने आरम्भ के बिन्दु से त्रिकोण स्थिति में चित्रा नक्षत्र में रहता है।

इस प्रकार सब ग्रह अपने निर्धारित वर्ष के अन्त में या आरम्भ में या मध्य में या जन्मनक्षत्र के द्वितीय अथवा तृतीय चरणों में या उस नक्षत्र के अन्त में उसी नक्षत्र में दिखाई देते हैं। अर्थात् वे अपनी त्रिकोण स्थिति में निश्चित किये हुए १३° – २०′ अंशों के भीतर ही रहते हैं।

परिशिष्ट (१४)

विंशोत्तरी दशा के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न—

विंशोत्तरी दशा के सम्बन्ध में कुछ महत्व के ऐसे प्रश्न सामान्यतः उपस्थित किये जाते हैं और वे यथार्थ में विचारणीय हैं। ये प्रश्न कुछ अंशों में कुछ

ऐसे प्रश्न हैं जो प्रत्येक बुद्धिजीवी के मस्तिष्क को कुरेदते हैं किन्तु खेद की बात यह है कि इन या इस प्रकार के प्रश्नों से जूझने का किसी ज्योतिषी विद्वान ने साहस ही नहीं किया। अधिकतर ज्योतिषी उसी लकीर को पीट रहे हैं जो पुरातन काल से चली आ रही है। लेकिन आज के इस तर्क-प्रधान एवं वैज्ञानिक युग में ज्योतिष शास्त्र तभी जीवित रह सकता है, जब कि उसका आधार वैज्ञानिक हो, उसका व्यवहार विज्ञान सम्मत हो।

उपस्थित किये हुए प्रश्न इस प्रकार के हैं।

(१) विंशोत्तरी दशाक्रम में नवग्रहों का क्रम सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, बृहस्पति, शनि, बुध, केतु तथा शुक्र ही क्यों रखा है? सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु क्यों नहीं?

(२) चन्द्रमा के दोनों सम्पात विन्दुओं (नोड्स Nodes) अर्थात् राहु और केतु को ग्रह न होते हुए भी विंशोत्तरी दशा पद्धति में शामिल क्यों किया गया है?

(३) दशापद्धति में राहु-केतु को जो स्थान दिया गया है क्या वह एक निश्चित क्रम में और वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित है?

(४) विंशोत्तरी दशाक्रम में राहु और केतु के जो दशावर्ष निर्धारित किये हैं, उनका आधार क्या है?

(५) क्या दशा का आधार चन्द्र-नक्षत्र के भुक्त-भोग्य पर रखना उचित एवं व्यावहारिक है?

(६) क्या विंशोत्तरी दशा प्रामाणिक एवं विश्वसनीय कही जा सकती है?

(७) केवल नौ ग्रहों को ही विंशोत्तरी दशा में क्यों मान्यता दी गयी जब कि आजकल जन्म-कुण्डली में हर्षल, नेपच्यून और प्लूटो ग्रह को भी स्पष्ट करते हैं? क्या इनको भी विंशोत्तरी दशा में स्थान नहीं दिया जा सकता है?

प्रश्न क्रमांक—१, २, ३, ४

उपरोक्त परिशिष्ट क्रमांक ११ से १३ के अन्तर्गत जो विवेचन निश्चयात्मक रूप से और विस्तारपूर्वक वैज्ञानिक, गणित और अन्य कई सिद्धान्तों के आधार पर किया गया है, उनमें प्रथम चार प्रश्नों के उत्तरों का समावेश है और वाचकों ने उन्हें अवश्य पढ़ना चाहिये, यह विवेचन शास्त्रीय और वैज्ञानिक तथ्यों पर ही आधारित है।

प्रश्न ५—क्या दशा का आधार चन्द्र-नक्षत्र के भुक्त-भोग्य पर रखना उचित है ?

इसका उत्तर इस प्रकार है।

इस सम्बन्ध में कुछ बातें शुरू में हमें जान लेना जरूरी है। सबसे पहले तो यह बात जानना जरूरी है कि वैज्ञानिक दृष्टि से सूर्य से समस्त सौर-परिवार का—मंगल का, वृहस्पति का, चन्द्रमा का जन्म हुआ है। ये सब सूर्य के ही अंग हैं। फिर पृथ्वी पर जीवन का जन्म हुआ, पौधों से लेकर मनुष्य तक और मनुष्य पुथ्वी का अंग है पृथ्वी सूर्य का अंग है। यदि हम इसे इस प्रकार समझें—एक माँ है, उसकी एक बेटी है। इन तीनों के शरीर में एक ही रक्त प्रवाहित होता है। उन तीनों के शरीर का निर्माण एक ही तरह के कोषाणु (Cells) से एक ही तरह के कोष्ठों से होता है। और वैज्ञानिक एक शब्द का उपयोग करते हैं "एम्पैथी" (Empathy) का। जो चीजें एक से ही पैदा होती हैं, उनके भीतर एक अन्तर-सहानुभूति होती है। सूर्य से पृथ्वी पैदा होती है, पृथ्वी से हम सबके शरीर निर्मित होते हैं। थोड़े ही दूर फासले का सूर्य हमारा महापिता है। सूर्य पर जो भी घटित होता है, वह हमारे रोम-रोम में स्पंदित होता है। होगा ही क्योंकि हमारा रोम-रोम भी सूर्य से ही निर्मित है। सूर्य जितनी दूरी पर दिखाई पड़ता है, उतनी दूर नहीं है। हमारे रक्त के एक-एक कण में और हड्डी के एक-एक टुकड़े में सूर्य से ही अणुओं का वास हैं। हम सूर्य के हर टुकड़े हैं और यदि सूर्य से हम प्रभावित होते हैं, तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है--यह (Empathy) ऐम्पैथी-सहानुभूति है।

सूर्य जैसा हम साधारणतः सोचते हैं ऐसा कोई निष्क्रिय अग्नि का गोला नहीं है। वह सक्रिय है और प्रतिपल सूर्य की तरंगोंमें रूपान्तरण भी पृथ्वी के प्राणों को कम्पित करता है। इस पृथ्वी पर कुछ भी ऐसा घटित नहीं होता जो सूर्य पर घटित हुए बिना घटित हो जाता हो। सूर्य का जब ग्रहण होता है, तो सारी पृथ्वी मौन हो जाती है। पक्षी, जंगल के जानवर, बन्दर वगैरह सब भयभीत हो जाते हैं। सुमेर में सबसे पहिले यह ख्याल पैदा हुआ। उसके बाद स्विस में पैरासिलीसस नाम का एक चिकित्सक पैदा हुआ, उसने एक बहुत अनूठी मान्यता स्थापित की और मान्यता आज नहीं कल, सारे मेडिकल साइन्सको बदलने वाली सिद्ध होगी। अब तक उस मान्यता पर बहुत जोर नहीं दिया जा सका क्योंकि ज्योतिष तिरस्कृत विषय है। सर्वाधिक पुराना लेकिन सर्वाधिक तिरस्कृत, यद्यपि सर्वाधिक मान्य भी। पैरासिलीसस ने एक मान्यता को गति दी और वह मान्यता यह थी कि आदमी तभी बीमार

होता है जब उसके और उसके जन्म के साथ जुड़े हुए नक्षत्रों के बीच का तारतम्य टूट जाता है। इस सम्बन्ध में उसने बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है। वह किसी मरीज को दवा नहीं देता था, जब तक उसकी जन्मकुंडली न देख ले और बड़े हैरानी की बात है कि पैरासिलीसस ने जन्मकुंडलियां देख कर दो सौ मरीजों को ठीक किया जिनकी अन्य चिकित्सक कठिनाई में पड़ गये थे, और ठीक नहीं कर पाते थे। उसका कहना था कि जब तक मैं यह न जान लूँ कि यह व्यक्ति किन नक्षत्रों की स्थितिमें पैदा हुआ है और तब तक इसके अन्त:संगति की व्यवस्था क्या है, इसे कैसे हम स्वस्थ करें।

आज से कोई २५०० वर्ष पूर्व, ईसा से छः सौ वर्ष पूर्व, यूनान में पैरासिलीसस से बहुत पहले, पाइथागोरस नाम का व्यक्ति पैदा हुआ था। इस व्यक्ति ने "प्लेनेटरी हार्मनी" (Planetary Harmony) ग्रहों के बीच एक संगीत का सम्बन्ध है, इसके सम्बन्ध में एक बहुत दड़े दर्शन को जन्म दिया था और पाइथागोरस ने जब यह बात कही थी तब वह भारत और इजिप्ट इन दो मुल्कों की यात्रा करके वापिस लौटा था। वह मानता था कि प्रत्येक नक्षत्र या प्रत्येक ग्रह या उपग्रह जब अन्तरिक्ष में यात्रा करता है, तो उसकी यात्रा के कारण एक विशेप ध्वनि पैदा होती है। प्रत्येक नक्षत्र की गति एक विशेप ध्वनि पैदा करती है और प्रत्येक नक्षत्र की अपनी व्यक्तिगत ध्वनि है। और इन सारे नक्षत्रों की ध्वनियों का एक तालमेल है, जिसे वह विश्व की संगीतबद्धता "हारमनी" कहता था। जब कोई मनुष्य जन्म लेता है तब उस जन्म के क्षण में इन नक्षत्रों के बीच जो संगीत की व्यवस्था होती है वह उस मनुष्य के प्राथमिक, सरलतम, संवेदनशील चित्त पर अंकित हो जाती है। वही उसे जीवन भर स्वस्थ और अस्वस्थ करती है। जब भी वह उस मौलिक जन्म के साथ पायी गयी संगीत-व्यवस्था के साथ तालमेल बना लेता है, तो स्वस्थ बन जाता है। जब उसका तालमेल छूट जाता है तो अस्वस्थ हो जाता है।

१९५० में एक नई सायन्स का जन्म हुआ। उस सायन्स का नाम है "कास्मिक केमेस्ट्री" (ब्रह्मरसायन)। उसको जन्म देने वाला आदमी है जियाजारजी गिआरडी। यह आदमी इस सदी के कीमती-से-कीमती थोड़े आदमियों में से एक है। इस आदमी ने वैज्ञानिक आधारों पर प्रयोगशालाओं में अनन्त प्रयोग करके यह सिद्ध कर दिया कि जगत् पूरा जगत् एक "आर्गनिक युनिटी" (Organic Unity) है। पूरा जगत एक शरीर है, अगर मेरी उंगली बीमार पड़ जाती है, तो मेरा पूरा शरीर प्रभावित होता है, शरीर का अर्थ

होता है टुकड़े-टुकड़े अलग नहीं हैं। संयुक्त है—जीवन रूप से इकट्ठे हैं। अगर मेरे आँख में तकलीफ होती है तो मेरे पैर का अँगूठा भी अनुभव करता है और अगर मेरे पैर को चोट लगती है तो मेरे हृदय को भी खबर मिलती है। और अगर मेरे मस्तिष्क को खड़े होने की जगह मिलती अगर मेरा शरीर पूरा नष्ट कर दिया जाय तो मेरे मस्तिष्क को खड़े होने की जगह मिलनी मुश्किल हो जायगी। मेरा शरीर एक "आर्गनिक युनिटी" है, एक जीवन्त एकता है। इसमे कोई भी एक चीज को छुआ तो सब अंग प्रभावित होता है। "कास्मिक केमिस्ट्री" कहती है कि पूरा ब्रह्माण्ड एक शरीर है। उसमें कोई भी चीज अलग-अलग नहीं है। सब संयुक्त है। इसलिए कोई तारा कितनी ही दूर क्यों न हो, वह भी जब बदलता है तो हमारे हृदय को, हमारे हृदय की गति को बदल जाता है। और सूर्य चाहे कितने भी फासलेपर क्यों न हो, जब वह ज्यादा उत्तप्त होता है तब हमारे खून की धाराएँ बदल जाती हैं। हर ११ ग्यारह वर्षों में जब पिछली दार सूर्य पर बहुत ज्यादा गतिविधि चल रही थी और अग्नि के विस्फोट चल रहे थे तो एक जापानी चिकित्सक तोमातो बहुत हैरान हुआ वह चिकित्सक स्त्रियों के खून पर निरन्तर काम कर रहा था, करीब-करीब बीस वर्षो से। स्त्रियों के खून की एक विशेषता है जो पुरुषों के खून की नहीं होती। उनके मासिक धर्म के समय उनका खून पतला हो जाता है और पुरुष का खून पूरे समय एक-सा रहता है। या गर्भ जब उनके पेट में होता है तब भी उनका खून पतला हो जाता है। पुरुष और स्त्री के खून में एक बुनियादी फर्क तोमातो कर रहा था लेकिन जब सूर्य पर बहुत जोर से तूफान चल रहे थे—आणविक शक्तियों के—(हर ग्यारह वर्ष में चलते हैं) वह चकित हुआ कि पुरुषों का खून भी पतला हो रहा है। जब सूर्य पर आणविक तूफान चलता है, तब पुरुष का भी खून पतला हो जाता है—यह एक बड़ी नयी घटना थी, वह इसके पहिले कभी "रेकार्ड" नहीं की गयी थी कि पुरुष के खून पर सूर्य पर चलने वाले तूफान का कोई प्रभाव पड़ेगा। और अगर खून पर प्रभाव पड़ सकता है तो फिर किसी भी चीज पर प्रभाव पड़ सकता है।

एक दूसरा अमेरिकन विचारक है—फ्रैंक ब्राऊन। वह अन्तरिक्ष यात्रियों की सुविधाएँ जुटाने का काम करता रहा है। सबसे बड़ी विचारणीय बात यह थी कि पृथ्वी को छोड़ते ही अन्तरिक्ष में न मालूम कितनी रेडियेशन की धाराएँ होंगी, किरणों की—वह आदमी पर क्या प्रभाव करेंगी। लेकिन दो हजार साल से ऐसा समझा जाता रहा है अरस्तु के बाद, पश्चिम में कि

अन्तरिक्ष शून्य है। वहाँ कुछ है ही नहीं—जो दो सौ मील के बाद पृथ्वी पर हवाएँ समाप्त हो जाती हैं, फिर अन्तरिक्ष शून्य है। लेकिन अन्तरिक्ष यात्रियों की खोज ने सिद्ध कर दिया कि वह बात गलत है। अन्तरिक्ष शून्य नहीं है, बहुत भरा हुआ है और वह न तो शून्य है तथा न मृत है, बहुत जीवन है। सच तो यह है कि पृथ्वी की दो सौ मील की हवाओंकी पर्तें सारे प्रभावों को हम तक आने से रोकती हैं। अन्तरिक्ष में तो अद्‌भुत प्रभावों की धाराएं बहती रहती हैं उनको आदमी सह पायेगा या नहीं, आप जानकर हैरान होंगे। और हंसेगे भी कि आदमी को भेजने के पहिले ब्राऊन ने अन्तरिक्ष में आलू भेजे। क्योंकि ब्राऊन का कहना है कि आलू और आदमी में बहुत भीतरी फर्क नहीं है। अगर आलू सड़ जायगा तो आदमी नहीं बच सकेगा और यदि आलू बच सकता है तो आदमी बच सकेगा। आलू बहुत मजबूत प्राणी है और आदमी तो बहुत संवेदनशील है। अगर आलू जीवित लौट आता है और उसे बोनेपर अंकुर निकल आता है तो फिर आदमी को भेजा सकता है।

ब्राऊन एक दूसरे शास्त्र का अन्वेषक है और उस शास्त्र को अभी ठीक-ठीक नाम मिलना शुरू हो रहा है। लेकिन उसे कहते हैं "प्लेनेटरी हेरिडिटी" Planetary Heredity उपग्रही वंशानुक्रम। असल में जब एक बच्चा पैंदा होता है तब उसी समय पृथ्वी को चारों ओर क्षितिजपर अनेक नक्षत्र जन्म लेते हैं, उठते हैं, जैसे सुबह सूरज उठता है। जिस प्रकार सूर्य उगता हैं, सांझ को डूबता है, ऐसे ही चौबीस घंटे अन्तरिक्षमें नक्षत्र उगते हैं और डूबते हैं, जब एक बच्चा पैंदा हो रहा है, समझो सुबह छैः बजे तो उस वक्त सूर्य भी पैंदा हो रहा है, उस वक्त कुछ और नक्षत्र पैंदा हो रहे हैं, कुछ नक्षत्र डूब रहे हैं, कुछ नक्षत्र ऊपर हैं, कुछ नक्षत्र उतार पर चले गये, कुछ नक्षत्र चढ़ाव पर हैं। वह बच्चा जब पैंदा हो रहा है तब अन्तरिक्षों की–अन्तरिक्ष में नक्षत्रों की एक स्थिति है। अब तक ऐसा समझा जाता था और अभी भी अधिक लोंग, जो बहुत गहराई से परिचित नहीं है, वह ऐसा ही सोचते हैं कि चांदतारों से आदमी के जन्म का क्या लेना देना। चाँद, तारे कहीं भी हों, इसके एक गांव में बच्चा पैंदा हो रहा है, इससे क्या फरक पड़ेगा ? फिर यह भी कहते हैं कि एक ही बच्चा पैंदा नहीं होता, एक तिथि में, एक नक्षत्र की स्थिति में लाखों बच्चे पैंदा होते हैं। उनमें से एक प्रेसिडेन्ट बन जाता है किसी मुल्क का, बाकी तो नहीं बन पाते। एक उनमें से सौ वर्ष का होकर मरता है, दूसरा दो दिनका होकर मर जाता है। एक उसमें से बुद्धिमान् होता है और एक निर्बुद्धि रह जाता है। तो साधारण देखने से पता चलता है कि इन ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति का किसी के

बच्चे पैदा होने से, पत्रिका से क्या सम्बन्ध हो सकता है। यह तर्क इतना सीधा और साफ मालूम होता है कि चांद-तारे एक बच्चे के जन्म की चिन्ता भी नहीं करते। और फिर एक ही बच्चा पैदा नहीं होता, एक स्थिति में लाखों बच्चे पैदा होते हैं, पर लाखों बच्चे एक से नहीं होते। इन तर्कों से ऐसा लगने लगा था कि कोई सम्बन्ध नक्षत्रों से व्यक्ति के जन्म का नहीं है। परन्तु ब्राउन, पिकाडी, तोमातो, इन सारे लोगों की, इन सबकी खोज का एक अद्भुत परिणाम हुआ है और वह यह है कि ये वैज्ञानिक कहते हैं कि हम यह पक्के रूप में कह सकते हैं कि नक्षत्रों से जीवन प्रभावित होता है।

आजतक ज्योतिष के लिए वैज्ञानिक सहमति में हुए नये प्रयोग सहयोगी बने हैं। एक तो, जैसे ही हमने आर्टीफिशियल सेटेलाईट कृत्रिम उपग्रह अंतरिक्ष में छोड़े वैसे ही हमें पता चला कि सारे जगत से, सारे नक्षत्रों से, सारे तारों से निरन्तर अनेक प्रकार की किरणों का जाल प्रवाहित होता है, जो पृथ्वी पर टकराता है, और पृथ्वी पर कोई ऐसी चीज नहीं है, जो उससे अप्रभावित छूट जाय। आप जानते हैं कि चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति से सागर में ज्वार–भाटा उत्पन्न होता है। उसके आकर्षण से सागर में लहरें उत्पन्न होती रहती हैं। पूर्णिमा तथा अमावस्या, ग्रहण आदि पर्वकाल से रोगियों की हालत और अधिक बिगड़ जाती है, यह बात भी देखी गई है। मानव शरीर पर चन्द्रमा का प्रभाव इसलिए मान्य करना होगा कि समुद्र में ज्वार-भाटा चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति के कारण ही उत्पन्न होता है और समुद्र के जल का विश्लेषण किया जाने पर उसमें लगभग ८० प्रतिशत सोडियम, ४ प्रतिशत कैलशियम तथा ४ प्रतिशत पोटैशियम होता है। इसी प्रकार मानव शरीर के रक्त का विश्लेषण करने पर भी ये ही द्रव्य इन्ही परिणामों में पाये जाते हैं अर्थात् समुद्र के और मानव रक्त में पर्याप्त साम्य है। अतः इस बात को स्वीकार करनेवालों को कि समुद्र के जलपर चन्द्रमा का प्रभाव पड़ता है। अगर समुद्र का पानी प्रभावित होता है तो चाँद से आदमी के भीतर का पानी क्यों प्रभावित नहीं होगा। अभी इस सम्बन्ध में जो खोजबीन हुई है, उसमें दो, तीन तथ्य ख्याल में ले लेने जैसे हैं, वह यह कि पूर्णिमा के निकट आते-आते सारी दुनियाँ में पागलपन की संख्या बढ़ती है। अमावस्या के दिन दुनिया में सबसे कम लोग पागल होते हैं और पूर्णिमा के दिन सर्वाधिक होते हैं। चाँद के बढ़ने के साथ अनुपात में पागलों का बढ़ना शुरू होता है। पूर्णिमा के दिन पागलखानों में सर्वाधिक लोग प्रवेश करते हैं। और अमावस के दिन पागलखाने से सर्वाधिक लोग बाहर जाते हैं। अब तो इसकी स्टैटीस्टिक्स

(STATISTICS) सांख्यकी उपलब्ध है। अंग्रेजी शब्द है "ल्यूनटिक" Lunatic जिसका मतलब होता है चाँदमारा "लुनारा" Lunara हिन्दी में पागल के लिए चाँदमारा शब्द है, बहुत पुराना शब्द है, और "ल्युनाटिक" भी कोई तीन हजार वर्ष पुराना शब्द है। कोई तीन हजार वर्ष पहिले भी आदमियों को ख्याल था कि चन्द्र पागल के साथ कुछ न कुछ करता है, लेकिन अगर पागल के साथ करता है तो गैर-पागल के साथ नहीं करता होगा ? आखिर मस्तिष्क की बनावट, आदमी के भीतर की संरचना तो एक जैसी है। हाँ यह हो सकता है कि पागल पर थोड़ा ज्यादा करता होगा। गैरपागल पर थोड़ा कम कर सकता होगा। यह मात्रा का भेद होगा। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता कि गैरपागल पर बिलकुल नहीं करता होगा। अगर ऐसा होता तब तो कोई पागल ही कभी न हो क्योंकि सब गैर-पागल ही पागल होते हैं पहिले तो काम गैर-पागल पर ही करना पड़ता होगा चाँद को ? चन्द्रमा का प्रभाव वनस्पतियों पर भी पड़ता है, इसका प्रमाण आयुर्वेदशास्त्र में दिया गया है। चन्द्रमा के प्रभाव पर एक वैज्ञानिक का कथन है 'फ्रान्स के एक अपराध-विज्ञान-शास्त्री ने आंकडे देकर सिद्ध किया है कि चन्द्रमा के साथ-साथ चलनेवाले २८ दिन के चक्र में उद्‌देश्यहीन हत्याएँ, आक्रमण एवं अन्य सभी प्रकार के अपराध घटते-बढ़ते देखे गये हैं। उसने यह सिद्धान्त भी सामने रखा है कि दिमाग के नाजुक सन्तुलनवाले कुछ स्त्री-पुरुष पूर्णिमा की रात्रि में अपना सन्तुलन खो देते हैं तथा उटपटांग काम करते हैं, जबकि उनका अन्य रात्रियों में व्यवहार पूरी तरह सामान्य रहता है।

इसी प्रकार वायु की वहन शक्ति (Conductivity) हर २८ दिनों के बाद बदलती रहती है। यह प्रभाव भी चन्द्रमा का ही है। वायु तथा मन दोनों ही गतिमान हैं अतः वहन शक्ति पर असर डालनेवाला चन्द्रमा ही है। यह स्पष्ट है।

एक अन्य वैज्ञानिक का कथन है-"एक मनोविज्ञान के अनुसार पूर्णिमा की रात्रि में चलने की प्रवृत्ति अधिक देखी गयी है। और मानसिक चिकित्सालय के रोगी पूर्णिमा के रोज अधिक विकल हो उठते हैं।

एक डॉक्टर ने करीब-करीब पच्चीस सौ २५०० व्यक्तियों का अध्ययन करने के बाद ऐसा साबित करने का प्रयत्न किया है कि पूर्णिमा के समय जितने भी बच्चे पैदा होते हैं, उतने अन्य समय पर नहीं होते। कुछ डॉक्टरों की राय में चन्द्रमा का प्रभाव मनुष्य के मस्तिष्क और रीढ़ पर पड़ता है।

ज्योतिषशास्त्र में चन्द्रमा को मन का कारक माना गया है और यही मन का नियंत्रक भी है। चन्द्रमा की शीतल रश्मियाँ भी काफी शुभफलदायक मानी गयी हैं। आयुर्वेद के महापंडितों ने यहाँतक स्वीकार किया है कि मानों चन्द्रमा के प्रकाश व किरणों से अमृत की वर्षा होती है। शरद् पूर्णिमा को कुछ दवाईयों का सेवन विशेष रोगियों के लिये काफी लाभप्रद सिद्ध हुआ है। अर्थात् यह मान्यता है कि ऐसे समय में दवाईयाँ शरीर के लिए काफी गुणकारक सिद्ध होती हैं।

हमारी पृथ्वी सौर मण्डल की एक सदस्या है और वह अनवरत रूप से सूर्य से आकर्षित होकर उसकी परिक्रमा कर रही है। पृथ्वी में भी आकर्षण शक्ति है, जिससे प्रभावित होकर सूर्य उसे अपनी ओर खींचने की चेष्टा में है, उसे प्रकाश, ताप, ओज आदि भट करते रहना है, जिसके फलस्वरूप पृथ्वी के जीवधारियों में प्राण और शक्ति का संचार होता रहता है। सूर्य एवं चन्द्रमा की तरह अन्य ग्रहों का भी प्रभाव पृथ्वी पर पड़ता रहता है और एक दूसरे को ओज आदि प्रदान करते रहते हैं। पृथ्वी पर रहनेवाले प्रत्येक मनुष्य का एक स्वतंत्र मनस—अस्तित्व होता है, जिसके कारण प्रत्येक मनुष्य पर भिन्न-भिन्न रूप से ग्रह अपना प्रभाव डालते रहते हैं।

पृथ्वी के सबसे निकट चंद्रमा है। इसका जलतत्त्व पर विशेष प्रभाव पड़ता है। जल यह चल (Mobile) तत्त्व है कभी स्थिर नहीं रहता, इसी प्रकार से मन के जलतत्त्व होने के फलस्वरूप चन्द्रमा का मन पर भी विशेष प्रभाव पड़ता है। चन्द्रमा द्रुतगामी होने से ही मन द्रुतगामी है। चन्द्रमा की गति नित्य कम अधिक होनेवाली रहती है और वह सब ग्रहों में अति शीघ्र चलनेवाला ग्रह है। करीब करीब मन की स्थिति भी इसी प्रकार होती है। इसलिए फल ज्योतिषशास्त्र में "मनस्तु हिमगु" ऐसा कहा है। मन और चन्द्रमा इनका पूर्ण साम्य है। जन्मकुंडली में चन्द्रमा का एक विशिष्ट स्थान होता है। चन्द्रमा जिस राशि पर होता है, वही जातक की जन्मराशि कहलाती है। जन्मराशि से ही मनुष्य के मनका स्वभाव और वृत्ति का पता चलता है। कुंडली में चन्द्रमा जिस स्थिति में हो उस प्रकार की मनस्थिति देखने को मिलती है। जातक में चन्द्रराशि का अति महत्व है क्योंकि जिस राशि में चन्द्रमा रहता है उसी राशि के स्वभावानुसार जन्म लेनेवाले प्राणी का स्वभाव, मानसिक प्रगल्भता इत्यादि बातें मालूम पड़ सकती हैं। एक पाश्चात्य ज्योतिषी और वैज्ञानिक ने थोड़े वर्ष पूर्व चन्द्रमा के सम्बन्ध में जो

संशोधन किये हैं, उसके विषय में ऐसा प्रतिपादित किया है कि उसने पाँच वर्षोंतक बराबर ४०,००० चालीस हजार कुंडलियों का सूक्ष्म रूप से चन्द्रमा के सम्वन्ध में निरीक्षण किया है और संशोधन करने के बाद उसे यह अनुभव प्राप्त हुआ कि चन्द्रमा का प्रभाव पृथ्वी पर के प्राणीमात्र पर और विशेष-कर मनुष्य प्राणियों पर अधिकांश रूप से सदैव होता रहता है। चन्द्रमा तो पृथ्वी के अति निकट है और अब तो मानव के सबल हाथ चन्द्रमा को अच्छी तरह से स्पर्श करके भी आ चुके हैं। चन्द्रमा पृथ्वी का एक उपग्रह है और पृथ्वी की परिक्रमा करता रहता है। जब वह पृथ्वी की परिक्रमा करता है तो साथ ही साथ वह सूर्य की परिक्रमा भी कर लेता है क्योंकि पृथ्वी तो सूर्य की परिक्रमा करती रहती है।

चन्द्रमा का प्रभाव पृथ्वी पर पड़ता है यह बात अब शास्त्रसिद्ध है और यदि कोई व्यक्ति इससे इन्कार करता है तो निश्चित ही वह जान-बूझकर वास्तविकता से आँख मूंदना होगा। प्रकृति पर चन्द्रमा के प्रभाव को सिद्ध करने हेतु इससे अधिक दृढ़ व स्पष्ट प्रमाण और क्या हो सकता है? चन्द्रमा तथा सूर्य, ग्रहण के समय में दूषित होते हैं तब उनका प्राणियों पर प्रभाव बुरा सिद्ध हुआ है। क्योंकि चन्द्रमा को ग्रहण लगने के बाद तेजी से जन्तुओं की उत्पत्ति होती है जो कि हानिकारक होते हैं, इसी कारण धर्मशास्त्रों में ग्रहण के वेध के समय ग्रहण के बीच में जल पीना या भोजन करना मना है और ग्रहण के बाद स्नान करना भी आवश्यक कहा है।

खगोलवेत्ताओं, भूगोलवेत्ताओं, पदार्थशास्त्रियों, रसायनशास्त्रियों, डॉक्टर आदि सभी ने स्वीकार किया है कि ग्रह सजीव और निर्जीव दोनों पर अपना प्रभाव डालते हैं। इस पर से यह स्पष्ट है कि चन्द्रमा का पृथ्वी से सबसे अधिक सम्वन्ध है। अतः अन्य ग्रहों की अपेक्षा चन्द्रनक्षत्रों को ही आधार बनाकर दशा पद्धति का विवेचन किया तो वह स्तुत्य, प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक है, इसमें संदेह नहीं है।

प्रश्न ६—

अब छठा प्रश्न ऐसा है कि विंशोत्तरी दशा प्रामाणिक और विश्वसनीय कही जा सकती है क्या?

इसके सम्वन्ध में सबसे पहिले पाश्चात्य प्रसिद्ध ज्योतिषी और ग्रन्थकार "सेफेंरियल रॅफेल" वर्तमान समय के ज्योतिषी और वैज्ञानिक, अमेरिका के

सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद बुएल, डी, हगीन्स (Buell. D. Huggins) अंग्रेजी ग्रंथों के कर्ता ज्योतिर्विद टकर इत्यादियों के विचार यहाँ पर उनके स्वयं के शब्दों में प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिनके द्वारा विंशोत्तरी दशा प्रामाणिक और विश्वसनीय कही जा सकती है क्या? इसका उत्तर उपरोक्त विचारों में समाहित है।

पाश्चात्य ज्योतिष शास्त्र के विद्वान ग्रन्थकार तथा सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद इनके अपने ही शब्दों में उनके अभिप्राय नीचे दिये हैं

VIEWS OF AN EMINENT ASTROLOGER OF U. S. A. —BUELL. D. HIGGINS.

Vimshottari results accord with the dicta of Indian Astrology.

The Secondary (day–for a–year) system of directing, so widely used in the West is based upon the assumption that the natal planets, Luminaries and House Cusps "Progress" after birth and that the Ascendant or Sun is in the first degree of Pisces, for instance at birth, then at age 30 it will be in the first degree of Aries and the native will acquire some of the traits and qualities of Aries an entirely different personality, to be sure. Yet nearly all those who use this system realise and admit the TRANSITS always apply to the natal planets and Luminaries–never to progressed, where they are admittedly ineffective. This is one of the best proofs that the horoscope of birth is fixed and unchanging in a life time of 75 years Saturn and Jupiter. Perhaps the most important planets move so little in the secondary system that their "Progressions" must be virtually valueless. For one born say, at 55 degree N. Lat with Capricorn rising the Mid–Heavan is not far from the Ascendant and in an average lifetime progresses to the conjunction of the Ascendant before

Middle Age. Yet some WESTERNERS tell us that when the Midheaven conjoints the Ascendant by progression, the native retires from his profession—which might be before he had ever been employed.

In Indian Astrology the Ascendant is always regarded as the most important part of the horoscope, because there the new–born appears. The Midheaven has a mechanical connection with the Ascendant-the two are related but the Ascendant is the more important. The simultaneous itersection of the ecliptic with the upper meridian and the Eastern Horizon produces the Ascendant. The Ascendant cannot be found trigonometrically without first finding the Midheaven, but once the Ascendant is found it becomes the more important, and for most astrological purposes the 10th House Cusp should be 270 degrees from the Ascendant.

From Chapter VII, Verse 34, of MANTRESHWARA's Phala Deepika we see that the equal house system was used by the ancients, and that the house division turmoil has been the product of modern westerners whose minds were too absorbed in mathematics and whose imaginations were too fertile. Intercepted House cusps are a fiction introduced to make the horoscope appear astronomically correct on Paper. However, there are no intercepted signs in the Heavens or Zodiac, which after all is celestial and the house cusps we see on paper are, in fact, Mundane.

Theodore Roosevelt's "Progressed horoscope" is one of many which proves two things :—

(1) The Secondary Progressions are extremely diffusive and unreliable. if not completely invalid, and

(2) The Westrn Theory of Aspects is False.

For example, Ptolemy, Father of Western Astrology, plainly stated in the "Tetrabiblos" that the quincunx aspect had no value, yet today it is receiving increasingly attention and is hailed as one of the most powerful of all aspects– along with the septile, where all genius natal or progressed lies hidden.

The System of planetary periods utilised in India is more logical than the system of Progressions in the West. After all, life does operate in cycles of periods, but the natal horoscope appears to be fixed and immovable".

We must remember that all the evidence points to the conclusion that all the ancients—Indian, Mesopotamian, Egyptian, et al–used the Sideral Zodiac, because the fixed stars and constellations rediate energy, whereas the tropical positions are mere mathematical markers of the seasons and to some extent show physical and temperamental traits. But even with regard to seasons the tropical signs do a rather poor job. On March 21, the Sun is over the Equator and this is suposed to mark the beginning of the Spring, but for those say, at 45 degree North Latitude it will probably be snowing with sping a month away when the Sun enters Sidereal Aries. The person with the Sun. Ascendant or Moon in either the 2nd or 28th degree of tropical Scorpio will exibit some of the physical and temperamental characteristics of Scorpio, although the one with 2nd degree of Scorpio will also have certain Libra traits under the surface, especially in mental outlook. **The Tropical Chart is, therefore, not very reliable.** Moreover because of the overlapping of the two zodiacs, I find that in most cases the rulerships of the houses are valid only in the Sidereal chart. The use of intercepted signs in the tropical chart further complicates matter.

× × ×

Indian Astrology lays special emphasis upon the Moon, because the Moon is the "etheric double"—ones "other Ascendant"—the etheral companion of the Ascendant (Physical body and personality) of which it is duplicate, since it relates back to Conception. Therefore, it must be read both from the Ascendant and the Moon.

"Having experimented with all the popular Ayanamsas—I have found that only Prof. RAMAṆ gives uniformly correct and logical results when using the VIMSHOTTARI DASHA SYSTEM of Directing, the system which Parashara said was one to use in this age of Kali Yuga."

"I believe both West and East are becoming increasingly aware of the fact that URANUS, NEPTUNE and PLUTO are essentially social planets and have little to do with Natal Astrology. Birth and Death certainly do not seem to depend upon them. Nor need we use Lilith, Dido, Hades, Vulcan, Ceres. It seems reasonable that if the five planets, two luminaries and the lunar Nodes discovered by the ancients could give a complete and satisfactory delineation, no further additions should be necessary. In other words the truth once discovered cannot be modified. There are many billions of fixed stars, planetoids (asteroids), comets, etc. but only the nine used by the ancient Hindus have real valadity or astrological value. Nine is the number of completion, change, termination of forces, and the material as well as the spiritual. It is the number that cannot be destroyed, because when multiplied by any other number is always reproduces itself. In the ancient Hebrew and Chaldean alphabets the number Nine was not assigned to any letter, since Nine represented God or the "Highest Sphere". In Hindu Astrology the 9th house is the most benefic, because

it relates to Jupiter with Aries rising, and Jupiter is the Divine Planet or God, and the 9th house is the house of one's spiritual guide, Father, Past life and Good fortune. The very important sub–period in the VIMSHOTTARI DASHA is based upon the number of Nine, also the Nevamsa Chart. And when we reduce the 24 hourse day to decimal values, we find that it amounts 0·0027–hence, the significance of the 27 Lunar Mansions. because 2 + 7 is (27) equals 9–the maximum number again and during the 24 hour day all the Lagnas and Chandra Lagnas embracing the 27 Lunar Mansions, ascend to the Eastern Horizon."

SEPHARIAL—in the Manual of Astrology, on page 209, in his note upon the Hindu Astrology after Parashara- states as under :—

"In going through the various effects of the periods and sub periods in our own life and others, we have been not only convinced of the truth of the Hindu Astrology—the System of 'DASHA-BHUKTI' PHALA, but actually surprised at the literal exactness of the predictions. If the inter-periods of the different sub-periods be taken into account, the above "effects" will apply equally well to those also, by counting the sub-period planet as a period planet, and the inter-period planet as a sub-period planet. In this way the prognostics serve for every period of life, from the greatest to the least, allowance being made for the relations of the significators in the minor periods. In all, cases the effects due to the "period" planet are of prior importance, the sub-periods and inter-periods following in subsidiary order."

PTOLEMY seems to have taken his astrological knowledge from the EAST and applied it to the Zodiac instituted by HIPPARCHUS in the Second Century B. C. This was putting old wine into new bottles, a perfectly safe but inadvisable proceeding. Who can say how much the wine may not have suffered in consequence? At all events the two hypothesis presented above have been proved to the satisfaction of all who have studied the Jyotisha Shastras, or Astrological Writings of the Hindus and the conclusion is of some consequence to modern astrologers.

●

SECONDARY DIRECTIONS :—This day-for a-year method has been popular and widely used in the West for the past fifty years. The Secondary System of Directing is hardly a valid system and is open to very serious objections. The Planets and Luminaries move at such different and disproportionate speeds that their value becomes meaningless. Peculiar "Progressions" at death, such as progressed Saturn opposition natal Vanus, Progressed Moon conjunction progressed Pluto, Progressed Jupiter trine natal Venus, do not make sense.

TERTIARY Directions. In this system (a "new tool") one day equals one Lunar revolution. The month becomes all-important. The Tertiary system originated with Maurice Froger, when he mentioned it in the French Astrological Magazine. Les Caltiers Astrologiques in 1948. Wisely he did

not pursue it. Later in 1952 it was taken upto E. H. Troinski of West Berlin. **It has the same type of defect as the Secondary (day for a year) system the plantes and luminaries move at such varying speeds.** The planets within the orbit of Jupiter move too swiftly while those beyond Uranus move too slowly is a life time. The thirteen-day lunation period, upon which the system depends for its rationale, it related to the periodicity in women and their ovulation, menstrual and conception cycles and is, therefore, not logically applicable to everything else.

VIMSHOTTARI DASHA—This is probably the most ancient system of directing, Originating in India, undoubtedly with Parashara, it has been thoroughly tested and used for Centuries. It is a valid method, easy to use, and does not require as much time as primary directions. Complex Mathematical camputations are not involved. It is based upon the law of cycles which operates everywhere in economics, among nations, and in individual lives. Its basis is the ideal, original life span of 120 years. Sidereal zodiac must be used and it is only in the Sidereal horoscope that the lordships take on their true meanings. Among the uniqus and valuable features of this system are Maraka (death reflecting) houses, Navamsa Chart, Chandra Lagna and various Yogas which make for an easier assessment of the horoscope.

Rahu and Ketu (which give a total of 9 planets) certainly cannot be ignored. While they may appear to be mere points or Nodes In Space, or invisible, shadowy planets they are associated with eclipses and actually control the Luminaries and planets. That there are Rahu and Ketu Dashas and that they come under the catagory of Malefics, there can be no doubt, · Of Serpentine nature and associated with eclipses (which are generally dreadful) they must be essentially malefic.



लेखक की ऐसी मान्यता है कि ज्योतिष एक विज्ञान है और इसके भी प्रयोग-परीक्षण उसी प्रकार से होने चाहिये, जिस प्रकार से विज्ञान के अन्य उपकरणों या द्रव्यों का होता है। परिश्रम और अनुभव के अन्त में करीब-करीब सब दशाओं को टटोलने से ऐसा निश्चित है कि फल-कथन में जितनी प्रामाणिक विंशोत्तरी दशा ही उपयुक्त है और उसपर से कोई भी फल प्राप्त करने के लिए काल निर्णय दशान्तर्दशाओं पर से सहज रीति से और अचूक निकालने में आ सकता है। धीरे-धीरे उनका ध्यान विंशोत्तरी दशा पद्धति की तरफ आकर्षित हो रहा है इसलिये विंशोत्तरी दशा ही प्रामाणिक, सत्य और विश्वसनीय और विज्ञान युक्त है।

प्रश्न–७

अब ७ वां और आखिरी प्रश्न यह है कि केवल नौ ग्रहों को विंशोत्तरी दशा में क्यों मान्यता दी गयी, जबकि आजकल जन्म-कुण्डलीमें हर्षल, नेपच्यून, प्लूटो-ग्रह को भी स्पष्ट करते हैं। क्या उनको भी विंशोत्तरी दशा में स्थान नहीं दिया जा सकता है ?

हर्षल ग्रह का पता १३ मार्च १७८१ में लगा इस ग्रह के कक्षा की धरातल क्रांतिवृत्त के धरातल से केवल .४६ कोणात्मक है अर्थात् पृथ्वी के मार्ग से इसका सूर्य परिक्रमा मार्ग ०.४० कोणात्मक है तथा दोनों के धरातल पास-पास हैं। परन्तु इनके मार्ग का (Orbit) अन्तर सूर्य से पृथ्वी के अन्तर की अपेक्षा १९१८ गुणा अधिक है याने पृथ्वी से शनि की कक्षा जितनी दूरीपर है उससे दुगुनें अन्तर से भी हर्षल का अन्तर है। इस ग्रहका सूर्य परिक्रमा का काल ३०६८६–८२ सौर दिन है (याने लगभग ८४ वर्ष इतना)।

इसका उत्तर है कि नेपच्यून का शोध २३ सितम्बर १८४६ ई० स० से लगा। इस ग्रह की कक्षा धरातलसे १ं–४७ं–०२' कोणात्मक है। सूर्य से इसकी कक्षा पृथ्वी के अन्तर से भी अधिक अन्तर से ३००५ वार दूरी पर है याने पृथ्वी से जितने अन्तर पर शनि है। उसके आगे लगभग छैः गुणा इतने अधिक अन्तर या दूरी पर है। इसका सूर्य परिक्रमा काल ६०१८१.४१ दिन अथवा १६४.७८ वर्ष इतने सौर वर्ष है।

प्लुटो का शोध २३ जनवरी १९३० में लगा। इस ग्रह की कक्षा का धरातल क्रान्तिवृत्त के धरातल से १७ं अंशों का कोणात्मक है। इसका सूर्य परिक्रमा काल २४८ वर्ष है।

उपरोक्त तीन ग्रहों में से हर्षल–नेपच्यून इनका मार्ग नक्षत्र मंडल के क्रान्तिवृत्त के पास है अर्थात् ये ग्रह क्रांतिवृत्त के उत्तर-दक्षिण १६ अंशों का जो पट्‌टा है उसके अन्दर आता है, परन्तु प्लूटो का वैसा नहीं है। वह नक्षत्र मण्डल से निर्धारित ७६ अंश की दूरी पर है और उसके मध्य भाग से उत्तर-दक्षिण पट्‌टा १७° सतरा अंश की दूरी पर आता है जब कि पट्‌टे की मध्यरेखा (क्रान्तिवृत्त) से बुध का मार्ग अधिक से अधिक ७°–०.–६'' इतना लम्बा एक छोर पर गिरता है। प्लूटो ग्रहको फलित ज्योतिष के नक्षत्र मंडल की सीमा में लिया गया तो राशि क्रांतिवृत्त से उत्तर-दक्षिण सीमा बहुत ही बढ़ी या चौड़ी हो जायगी और वर्तमान समय में जो राशि का स्वरूप उसमें है, वह उनका स्वरूप वैसा नहीं रहेगा। इसलिए प्लूटों ग्रह का नक्षत्रगमन का फल अन्य ग्रहों के नक्षत्रगमन की सीमा में लाना सम्भव नहीं है। इसका दूसरा अर्थ ऐसा होगा कि निरयन राशि के मान में इस ग्रह के कारण से परिवर्तन करना पड़ेगा। इसलिए इस ग्रह को निरयन फलित में शामिल करना निरयन फलादेश के प्रभाव के बाहर है। इसके सिवाय प्लूटो के राशि गमन का काल भी अतिदीर्घ है। जब तक बहुत वार राशि-प्रवेश का फल अनुभव में नहीं लिया जाता तब तक फलों का निश्चित करना दुःसाहस होगा। किसी भी एक राशि में इसका फिर से आने का काल १६५ वर्ष हैं और जब तक इसके १०-१२ आवृत्तियों का प्रभाव देखा नहीं जाता तब तक इसके फलों का निर्णय लेना अशक्य है। नवग्रहों के फलों का अध्ययन तो आज हजारों वर्ष पूर्व से चला आ रहा है इसलिए इसके विषय में बहुत कुछ कहने में आ सकता है। प्लूटो के पक्ष में या विरुद्ध में कहा जावे तो इसका शोध तो सिर्फ ४० वर्ष पूर्व में लगा है और अभीतक वह सिर्फ एक राशि में से बाहर आया है।

इसलिए इसके स्वभाव के सम्बन्ध में और उसका भिन्न-भिन्न राशियों में से भ्रमण के फल निर्धारित करना कल्पना मात्र होगा।

उपरोक्त दो ग्रह हर्षल और नेपच्यून ये नवग्रहों के अंदर आते हैं। ऐसा होते हुए भी इनको भी भारतीय फलित ज्योतिष पद्धति में क्यों नहीं लिया गया। इसके दो कारण हैं। एक तो यह है कि कदाचित प्राचीन आचार्यों को इनका पता नहीं रहा होगा। या इनकी जानकारी उन्हें नहीं होगी। और दूसरा यह है कि वे अतिदूरी पर होने के कारण त्याज्य समझे गये होंगे। इस पर यह शंका उपस्थित होती है कि पृथ्वी से ये ग्रह अत्यधिक दूरी पर होने से यदि फलित में इसका प्रभाव नगण्य ऐसा माना गया तब नक्षत्र तो पृथ्वी से इनसे भी अतिदूर हैं और फ़िर नक्षत्रों का प्रभाव क्यों मानना चाहिये? इस शंका का समाधान ऐसा है कि नक्षत्रों का प्रभाव तो उनके समूहों के अनुसार होता है जबकि ग्रह सिर्फ एक-एक पिण्ड हैं और किसी भी एक नक्षत्र की तुलना में (योगतारा) बहुत ही छोटे हैं। लेखक के मत में इन दोनों ग्रहों को दशा में शामिल नहीं किया गया, इसका कारण उनका अत्यंत दूरी पर होना और इनका राशियों में से अतिमंद गति से भ्रमण करना यह ही कारण सम्भव हैं। इसके अलावा ऐसा देखने में आता है कि विंशोत्तरी या अन्य कोई भी नक्षत्रदशा में इनको कोई भी स्थान नहीं दिया गया है और फिर भी नौंग्रहों का प्रभाव क्रमशः अपनी-अपनी दशा में अनुभव में आता ही है और इसके सिवाय नवग्रहों की दशा में अब कोई भी जगह या वर्ष देने के लिए शेष नहीं रहते हैं। सूर्य और पृथ्वी के बीच में और भी अन्य ग्रह भी तो हैं, परन्तु उनको भी फलित में कोई जगह नहीं दी गयी है और अब देने की कोई गुंजाइश भी नहीं है।

दूसरी दृष्टि से विचार करने से ऐसा मालूम पड़ेगा कि उपरोक्त तीन ग्रह शनि से अति दूर हैं और वे अति मंदगति के हैं कि उनके प्रभाव इत्यादि का शोध लगाने के लिए बहुत वर्षों के धैर्य्य की आवश्यकता है परन्तु यह बात आजकल निर्विवाद दिखाई पड़ रही है कि इनके प्रभाव तो मनुष्य प्राणी पर होते रहते हैं एवं इनके निश्चित परिणाम भी घटते हैं, ऐसा अनुभव में आता है।

कुछ आधुनिक विद्वानों का मत है कि बोड्स सिद्धान्त के अनुसार इन ग्रहों के दशावर्ष निर्धारित किये तो हर्षल को २२, नेपच्यून को २५ तथा प्ल्यूटो को २८ दशावर्ष होते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण विंशोत्तरी दशा का मान १२० वर्ष न होकर १२० + २२ + २५ + २८ = १९५ वर्ष होते हैं। फिर इस दशा

को विंशोत्तरी दशा कैसे कह सकते हैं ? यदि ऐसा किया तो इस दशा का फिर सब ग्रहों का क्रम इस प्रकार होगा—

सूर्य—६; चन्द्रमा-१०; मंगल-७; राहु-१८, गुरु १६, शनि-१९, हर्षल—२२, नेपच्यून २५ प्लूटो-२७, वुध-१७, शुक्र-२० वर्ष—इस प्रकार कुलयोग १९५ वर्ष।

कुछ आधुनिक ज्योतिषियों का कहना है कि "उन्होंने हर्षल, नेपच्यून एवं प्लूटो ग्रहों की दशा, अंतर्दशा और प्रत्यंतर दशा निकाल कर लोगों के फल कथन में परीक्षण किया था और उसमें उन्होंने तथ्यात्मक एवं निश्चयात्मकता पायी। साथ ही उनके जो परिणाम निकले वे भी शत प्रतिशत सही थे। इसलिए उनका कहना है कि ज्योतिषी विद्यार्थी कूपमण्डूकता छोड़कर सही तथ्यों पर आयें और साथ ही विंशोत्तरी पद्धति में इन नवीन ग्रहों को भी स्थान दें। वे देखेंगे कि उनके फलकथन में आश्चर्यजनक सफलता सिद्ध हो रही है। अतः वे अब निर्विवाद रूपसे यह कहने में समर्थ हैं कि इन ग्रहों को भी दशापद्धति में स्थान देकर घंटों और मिनटों तक की ठीक-ठीक भविष्यवाणी की जा सकती हैं। और वह सत्य एवं प्रमाणिक सिद्ध होती है। उन्होंने राह सुझा दी है। पुराणों एवं पुराना ही उत्तम है की प्रवृत्ति त्याग कर तथा नवीन खोजों एवं परीक्षणों के आधार पर चल कर भविष्यवाणी की जाय तो निश्चय ही सफलता के द्वार खटखटा कर विजय माला पहन सकेंगे इसमें संदेह नहीं। इन आधुनिक विद्वानों में से एक विद्वान ज्योतिषी का नाम डॉक्टर श्री नारायण दत्त श्रीमाली है, और वे जोधपुर निवासी हैं। उनका पता—सी एफ १४ हाई कोर्ट कॉलनी, जोधपुर है। अब आधुनिक पाश्चात्य विद्वान ज्योतिषी का इस सम्बन्ध में क्या कहना है वह उनकी ही भाषा में यहाँ पर प्रस्तुत कर रहा हूँ। जिस पर से इस प्रकरण पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ सकेगा।

लेखक के अपने विचार इस प्रकार हैं कि यदि हमें हर्षल, नेपच्यून, प्लूटो को विंशोत्तरी दशा में शामिल करना हो तो सबसे प्रथम इनके जन्म बिंदु का आरम्भ स्थान ढूँढ़ना होगा और वाद में देखना पड़ेगा कि ये ग्रह फिर से अपने उसी विन्दु पर या उस विन्दु के त्रिकोण स्थिति पर कितने वर्षों के वाद पुनः दिखाई पड़ते हैं। इस पर से उनके दशाकाल के वर्ष निश्चित करने पड़ेंगे और वाद में उनका दशाक्रम विंशोत्तरी दशा के नियमानुसार (परिशिष्ट १२ पृष्ठ ३२३) ठहराना पडेगा जैसा कि पृष्ठ ३२७ के कोष्टक में अन्य ग्रहों के दशावर्ष के सम्वन्ध में निरीक्षण किया गया था। इतना निश्चित

होने के बाद ही दशान्तर्दशाश्रों के फल निर्धारित करने पड़ेंगे श्रौर ऐसा करने पर ही उन्हें प्रामाणिक श्रौर वैज्ञानिक श्राधार प्राप्त होगा। यह सब एक ज्योतिषी के लिये असम्भव है।

हर्षल एक राशि में लगभग ७ वर्ष रहता है श्रौर एक वर्ष में श्रौसत ४ से ४।। अंश तक भ्रमण करता है। इसलिये लेखक के मत में राशि फल की अपेक्षा नक्षत्र फल श्रौर उसके भी अपेक्षा अंश फलों का विचार करते आना चाहिये श्रौर यदि यह विचार सही करते आया तो किस महीनें में विशिष्ट कार्य के लिये अनुकूल या प्रतिकूल बल उसको प्राप्त है, इसकी सहज ही से कल्पना करने आकर उस समय में विशिष्ट व्यक्ति किस कार्य के लिये अवतीर्ण हुआ है उसका विचार भी करते आ सकेगा।

नेपच्यून श्रौर ल्यूटो एक राशि में क्रमशः १४ श्रौर २४ वर्ष लगभग रहते हैं। इन ग्रहों का भी राशि फल की अपेक्षा स्थान फल अधिक अनुभव में आवेंगे।

उपरोक्त तीनों ग्रहों के स्थान फलादेश के सम्बन्ध में सही अंदाज ठीक से करते आये तो जन्म समय में पूर्व केन्द्र में कौन सी राशि उदय हो रही थी, इस सम्बन्ध में सहज कल्पना हो सकेगी। उसी प्रकार दीर्घ समय तक एक ही राशि में रहने वाले ग्रहों के राशि फल देखने की अपेक्षा उनके नक्षत्र फल देखना चाहिये। श्रौर बाद में इन ग्रहों के अंश फल क्या हो सकते हैं, इसका शोध भी लगाना होगा। अंश फल का ज्ञान होने पर अति सूक्ष्म फलादेश में जाकर विचार करके विशिष्ट समय पर कौन सा व्यक्ति किस कार्य के लिये अवतीर्ण हुआ है, या होगा, इसका अचूक निदान बहुत पहिले से ही करते आवेगा, श्रौर समाज में आज ज्योतिषशास्त्र का जितना उपयोग हो रहा है, उससे कहीं अधिक शतप्रतिशत उपयोग हो सकेगा।

परिशिष्ट (१५)

दशासाधन

मनुष्य प्राणी जो भी अच्छे या बुरे कर्म पूर्व जन्म में करता है उसका कौन-सा अच्छा या बुरा परिणाम इस जन्म में भुगतना पड़ेगा यह बात तो उसकी जन्मपत्रिका से ही मालूम पड़ सकती है। यदि इस जन्म में जो परिणाम भोगने हैं, वे मालूम भी पड़ जावें फिर भी जीवन में वे किस

समय में भोगने पड़ेंगे वह काल निर्णय समझना अति आवश्यक है। हमारे ज्योतिषशास्त्र के ग्रंथों में दशासाधन का वर्णन इसी लिये किया गया है। दशा अनेक प्रकार की है। बृहत पाराशरी में ४२ प्रकार की दशाओं का वर्णन है परन्तु उनमें से वर्तमान में अष्टोत्तरी, योगिनी और विंशोत्तरी प्रमुखतः प्रचलित हैं।

हर एक व्यक्ति के जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक किसी न किसी ग्रह की महादशा और उसमें अन्तर्दशा चलती ही रहती है और उनका शुभाशुभ फल जन्मकुण्डली में के उस ग्रह की इष्टानिष्ट स्थिति के अनुसार और बलाबल के अनुसार मिलता है, ऐसा फल-ज्योतिष ग्रन्थों में कहा है और उनका अधिकांश में अनुभव हरएक व्यक्ति को आया हुआ होता है। कौन-सी महादशा जन्म समय में आती है और कितनी भुक्त हुई होती है, इसका कोष्ठक विंशोत्तरी पद्धति से पत्रिका में सामान्य भाव से दिया हुआ होता है।

रसदशाद्रिपुराणमहीभृतो विधुविहीननखा अगभूमयः।
गिरिनखा रविचन्द्रकुजायु-युग्गुरुशनिज्ञककेतुसिताब्दकाः॥

रस–६; दश–१०; अद्रि–७; पुराण–१८; महीभृत–१६; विधुविहीन नख–१९; (नखाः = २०, विधु = १, २०–१ = १९) अगभूमि–१७; गिरि–७; नख–२०; इस प्रकार नौ ग्रहों की दशाओं का प्रमाण हैं। और उनके स्वामी क्रमशः सूर्य, चन्द्र, मंगल, राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु और शुक्र हैं।

दहनात्स्वर्क्षपर्यन्तं गणयेन्नवभिर्हरेत्।
सूर्येन्दुक्ष्माजतमसो वाक्पतिर्मन्दचन्द्रजौ ॥२१॥
केतुशुक्रौ क्रमादेते विज्ञेयाश्च दशाधिपाः।
रसाशामुनिधृत्यब्दा भूपतिर्धृतिवत्सराः।
सप्तेन्दवौ नगा व्योम वावहो भास्करादितः ॥२३॥

विंशोत्तरी दशा में १२० वर्ष का काल निर्णय होता है, उसमें क्रमशः सूर्य–६ वर्ष; चन्द्रमा–१० वर्ष; मंगल–७ वर्ष; गुरु–१८ वर्ष; गुरु–१६ वर्ष; शनि–१९ वर्ष; बुध–१७ वर्ष; केतु–७ वर्ष; और शुक्र–२० वर्ष ऐसे प्रत्येक ग्रह के वर्ष हैं। चन्द्रनक्षत्रानुसार इस दशा की गणना करनी होती है।

कृत्तिका नक्षत्र में चन्द्रमा ने प्रवेश किया कि विंशोत्तरी दशा का प्रारम्भ होता है। कृत्तिका नक्षत्र में रवि की दशा, रोहिणी नक्षत्र में चन्द्रमा हो तब चन्द्रमा की दशा इस प्रकार कृत्तिका नक्षत्र से, प्रत्येक नक्षत्र को उक्त क्रमानुसार प्रत्येक ग्रह की दशा रहती है। कृत्तिका से ९वाँ (नववाँ) नक्षत्र आने के बाद,

उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र से फिर रवि की दशा शुरू होती है। उत्तराफाल्गुनी से नववाँ नक्षत्र जो होता है, उससे नौ नक्षत्रों को क्रमशः नौ ग्रहों की दशा आने के पश्चात् उत्तराषाढा नक्षत्र से फिर से रवि की दशा शुरू होती है। (कोष्ठक परिशिष्ट (११) देखिये)

कृत्तिकादिनवकत्रिकक्रमात्सूर्यचन्द्रकुजराहुमन्त्रिणः ।
सौरिसोमसुतकेतुभार्गवा भप्रवर्तित दशाब्दनायकाः ।।

कृत्तिका नक्षत्र से स्वयं के जन्मनक्षत्र पर्यन्त गिनना और उस संख्या को ९ से भाग देने से क्रमशः सूर्य, चन्द्र, मंगल राहु, गुरु, शनि, बुध, केतु और शुक्र इनकी दशा आती है।

उदाहरण--जन्ममक्षत्र अनुराधा है, तो कृत्तिका नक्षत्र से गिनने से १५ संख्या हुई। इसे ९ से भाग देने पर शेष ६ बचे। इसलिये शनि की दशा है। यह स्पष्ट हुआ।

जन्म समय चन्द्रमा जिस नक्षत्र में हो, उस नक्षत्र का जो स्वामी, उस ग्रह की महादशा जन्म से जाननी चाहिये।

उदाहरण--किसी का जन्म स्वाति नक्षत्र में हो तो कोष्ठक में बताये अनुसार स्वाति का नक्षत्र स्वामी जो राहु है, उसकी महादशा जन्म समय में है ऐसा जानना। वह स्वाति नक्षत्र कुल ६० घटीका है और जन्म काल तक उस नक्षत्र की ५० घटी व्यतीत हो गई है। और शेष १० घटी बाकी बची है, ऐसी कल्पना करने पर त्रैराशिक से ६० घ० = ५० घ० = १८ मुक्तवर्ष $\frac{५१ \times १८}{६०}$ = ३

१५ वर्ष राहु की दशा भुक्त हुई है और शेष ३ वर्ष भोग्य है याने भोगना बाकी है इसके आगे गुरु की महादशा, इस क्रम से महादशाएँ भोगनी हैं ऐसा समझना।

विंशोत्तरीं दशाचक्र बनाने का नियम है कि पहले जिस ग्रह की भोग्यदशा जितनी है उसे स्थापित करें। फिर क्रम से ग्रहों को एवम् उनके दशावर्षों को स्थापित करें। बीच चक्र में एक खाना प्रारम्भ-समाप्ति की सूचना के लिए तथा अन्तिम खाने में जन्म समय के राश्यादि सूर्य स्पष्ट होगा। जन्म स्पष्ट सूर्य में भोग्य वर्षादि जोड़कर अगले खाने में लिखना चाहिये तथा संवत् के खाने में वर्ष तथा दिनांक में वर्ष, मास, दिन आदि जोड़कर आगे लिखते रहना चाहिये।

उदाहरण—इससे पूर्व भयात भभोग साधन की रीति और उदाहरण दिया गया है, वह देखिये। उस प्रकार भयात भभोग स्पष्ट होने पर पलात्मक भयात को जन्म नक्षत्र के अनुसार जिस ग्रह की दशा हो, उस ग्रह के दशा वर्षों से गुणा करना चाहिए तथा इस प्रकार जो संख्या आये उसमें पलात्मक भभोग का भाग देने से लब्धि वर्ष, शेष को १२ से गुणा कर पलात्मक भभोग का भाग देने से लब्धि मास, फिर शेष को ६० से गुणा कर पलात्मक भभोग का भाग देने से दिन, फिर शेष को ६० से गुणा कर, पलात्मक भभोग का भाग देने से लब्धि घटी आते हैं। ये जो वर्ष, मास, दिन, घटी तथा पल आयेंगे ये भुक्तदशा वर्षादि कहलायेंगे, अर्थात् इतने दशावर्ष वह बालक जन्म से पूर्व भुगत चुका है तथा उस ग्रह की पूरी दशा में से भुक्त दशा वर्षादि शेष करने पर जो बाकी बचते हैं वे भोग्यदशा वर्षादि कहलाते हैं। अर्थात् इतने समय की दशा बालक ने जन्म के पश्चात् भोगी।

उदाहरण—पिछले पृष्ठों पर भयात भभोग के उदाहरण में दिये हुओं पर से भयात ८।३३ और भभोग ५७।४६ आये हुए थे।

पलात्मक भयात ८ × ६० = ४८० + ३३ = ५१३

पलात्मक भभोग ५७ × ६० = ३४२० + ४६ = ३३६६

भयात ५१३ × १७ बुध दशावर्षों से गुणा किया और पलात्मक भभोग से भाग दिया तो २३६६)८७२१(२ वर्ष
६६३८
१७८३

१७८३ × १२
३४६६)२१२९६(६ भा.
१०८१४
५८२

५८२ × ३०
३४६६)१७४६०(५ दिन
१७३४५
११५

११५ × ६०
३४६६) ६९०० (१ घटी
३४६६
३४३१

३४३१ × ६०
३४६६)२०५८६०(५० पल
१७३४५
३१४१०
३१२२१
३१८९

इस प्रकार २ वर्ष, ६ महीने, ५ दिन, १ घटी, ५९ पल, बुध की दशा बालक जन्म के पूर्व भुगत चुका था तथा बुध के दशावर्ष १७ में से घटित करने पर—

वर्ष	मास	दिन	घटी	पल	
१७ –	० –	० –	० –	०	बुध के दशावर्ष
२ –	६ –	५ –	१ –	५६	भुक्त दशा
१४ –	५ –	२४ –	५८ –	१	

अर्थात् बालक ने जन्म लेने के पश्चात् इतनी दशा भुगती

विंशोत्तरी दशाचक्र

बुध	केतु	शुक्र	सूर्य	चन्द्र	मंगल	राहु	गुरु	शनि	
१४	७	२०	६	१०	७	१८	१६	१६	वर्ष
५	०	०	०	०	०	०	०	०	मास
२४	०	०	०	०	०	०	०	०	दिन
५८	०	०	०	०	०	०	०	०	घटि
१	०	०	०	०	०	०	०	०	पल
२०२६	२०४०	२०४७	२०६७	२०७३	२०८३	२०९०	२१०८	२१२४	संवत्
३-२-१९७०	३-८-१९८४	३-८-१९९१	३-८-२०११	३-८-२०१७	३-८-२०२७	३-८-२०३४	३-८-२०५२	३-८-२०६८	दिनांक
प्रा.	प्रा.	प्रा.	प्रा.	प्रा.	प्रा.	प्रा.	प्रा.	प्रा.	सूचक
१०	४	४	४	४	४	४	४	४	
२४	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	सूर्य स्पष्ट
४५	४३	४३	४३	४३	४३	४३	४३	४३	
४४	४५	४५	४५	४५	४५	४५	४५	४५	
नेष्ट	श्रेष्ठ	मध्य	श्रेष्ठ						दशाफल

परिशिष्ट (१६)

अन्तर्दशा

महर्षि पाराशर ने विंशोत्तरी दशा ग्राह्य की है और उसकी पाँच प्रकार की भुक्ति कही है । सूक्ष्म ज्ञान के लिए—अन्तर्दशा, विदशा (प्रत्यन्तर दशा), सूक्ष्मदशा (स्थित्यन्तर दशा) और प्राणदशा ये गणित द्वारा निकालते हैं ।

दशा चान्तर्दशा चैव तत्तदन्तर्दशा तथा।
सूक्ष्मभुक्तिः प्राणदशाप्येवं पंच दशाः स्मृताः॥

अनुभव से सर्व प्रथम अन्तर्दशा निकालने का प्रकार निम्नलिखित है।

"स्वदशा रामगुणिता तद्दशा गुणिता पुनः।
स्वरामभागतो लब्धं वर्षमासादिकं भवेत्॥

अपनी मूल दशा की संख्या को ३ से गुणा कर जो गुणाकार आवे उसे अलग स्थापित करें। उसके बाद उसे अपनी दशा की संख्या से गुणा कर उसे ३० से भाग दें। जो भागाकार आवेगा वह वर्ष, मास, दिन इत्यादि होंगे।

उदाहरण—कल्पना करो कि जन्मतः सूर्य महादशा है, उसकी दशावर्ष संख्या ६ को तीन (३ से) गुणा करें तो १८ आवेगी (यह संख्या सूर्य की दशा के सब ग्रहों की अन्तर्दशा के लिए काम आवेगी) इस संख्या को ६ से गुणा तो १०८ आवेगा और उसे ३० से भाग देने पर ३ मास १८ दिन आते हैं। आगे इस प्रकार चन्द्रमा का अन्तर निकालना हो तो १८ को १० से गुणा करें और ३० से भाग देने पर अन्तर आवेगा। मंगल का अन्तर निकालना हो तो उसी प्रकार मंगल के ७ वर्ष से गुणा कर ३० से भाग देना इत्यादि।

विंशोत्तरी महादशा और अन्तर्दशा

(१) सूर्यमहादशा वर्ष ६, कृत्तिका-उत्तरा फा० उत्तराषाढा—एक घटिका बराबर ३६ दिन।

	र.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	१
मा.	३	६	४	१०	९	११	१०	४	०
दि.	१८	०	६	२४	१८	१२	६	६	०

(२) चन्द्रमहादशावर्षे १०, रोहिणी, हस्त, श्रवण—१ घटिका बराबर ६० दिन।

	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	र.
व.	०	०	१	१	१	१	०	१	०
मा.	१०	७	६	४	७	५	७	८	६
दि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०

(५) गुरुमहादशावर्षे १६, पुनर्वसु—विशाखा, पूर्वाभाद्रपदा १ घटिका बराबर ९६ दिन।

	गु.	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.	रा.
व.	२	२	२	०	२	०	१	०	२
मा.	१	६	३	११	८	९	४	११	४
दि.	१८	१२	६	६	०	१८	०	६	२४

(६) शनिमहादशावर्षे १९, पुष्य, अनुराधा, उत्तराभाद्रपदा—१ घटिका बराबर ११४ दिन।

	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.	रा.	गु.
व.	३	२	१	३	०	१	१	२	२
मा.	०	८	१	२	११	७	१	१०	६
दि.	३	९	९	०	१२	०	९	६	१२

(३) मंगलमहादशावर्षे ७, मृग, चित्रा, धनिष्ठा—१ घटिका बराबर ४२ दिन ।

	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.
व.	०	१	०	१	०	०	१	०	०
मा.	४	०	११	१	११	४	२	४	७
द.	२७	१८	६	९	२७	२७	०	६	०

(४) राहुमहादशावर्षे १८, आर्द्रा, स्वाती, शततारका, एका घटिकेस बराबर १०८ दिन ।

	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.
व.	२	२	२	२	१	३	०	१	१
मा.	८	४	१०	६	०	०	१०	६	०
दि.	१२	२४	६	१८	१८	०	२४	०	१८

(९) शुक्रमहादशावर्षे २०, पूर्वा, पूर्वाषाढा, भरणी १ घटिका बराबर १२० दिन ।

	शु.	र.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.
व.	३	१	१	१	३	२	३	२	१
मा.	४	०	८	२	०	८	२	१०	२
दि.	०	०	०	०	०	०	०	०	०

(७) बुधमहादशावर्षे १७, आश्लेषा, ज्येष्ठा, रेवती, १ घटिका बराबर १०२ दिन ।

	बु.	के.	शु.	र.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.
व.	२	०	२	०	१	०	२	२	२
मा.	४	११	१०	१०	५	११	६	३	८
दि.	२७	२७	०	६	०	२७	१८	६	९

(८) केतुमहादशावर्षे ७, मघा, मूल, अश्विनी, एक घटिका बराबर ४२ दिन ।

	के.	शु.	र.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.
व.	०	१	०	०	०	१	०	१	०
मा.	४	२	४	७	४	०	११	१	११
दि.	२७	०	६	०	२७	१८	६	९	२७

परिशिष्ट (१७)

प्रत्यंतर दशा

अब प्रत्यंतर निकालने की रीति इस प्रकार है ।

अन्तर्दशा की संख्या को (याने जो महीने और दिन हैं उनको) दिन करके जिस ग्रह का प्रत्यंतर निकालना हो, उस ग्रह की दशा का प्रमाण वर्ष है उसके आधे करके उस संख्या को ६० से भाग देने पर प्रत्यंतर होगा ।

उदाहरण—सूर्य का अन्तर ३ महीने १८ दिन है उसके १०८ दिन हुये । उस संख्या को सूर्य की महादशा ६ वर्ष है तो उसका आधो याने ३ वर्ष इससे गुणा किया तो १०८ × ३ = ३२४ होते हैं इसे ६० से भाग देने

से (३२३ ÷ ६०) ५ दिन २४ घटी होते हैं यह सूर्य की अन्तर्दशा में सूर्य का प्रत्यंतर हुआ।

इस प्रकार चन्द्रमा का प्रत्यंतर निकालना हो तो चन्द्रमा की अन्तर्दशा ६ महीने होती है, याने ६ × ३० = १८० दिन हुए, उसमें ३ से गुणा किया तो (१८० × ३) = ५४० होते हैं, ६० से भाग देने से ९ दिन आते हैं। यह सूर्य की महादशा में, सूर्य की अन्तर्दशा में चन्द्रमा का प्रत्यन्तर ९ दिन हुआ।

इसी प्रकार मंगल की अन्तर्दशा ४ महीने ६ दिन है। अर्थात् १२६ दिन हुए। इसे ३ से गुणा किया तो ३७८ (१२६ × ३) दिन हुए। इस संख्या को ६० से भाग देने पर ६ दिन १८ घटी आते हैं। यह हुआ सूर्य की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा में मंगल का प्रत्यन्तर ६ दिन १८ घटी। इसी प्रकार अन्य ग्रहों का प्रत्यन्तर निकालना चाहिये।

प्रत्यन्तर दशा का कोष्ठक

सूर्य की महादशा में—सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर—

	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	योग ३ म. १८ दि.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०	३
दिन	५	९	६	१६	१४	१७	१५	६	१८	१८
घटी	२४	०	१८	१२	२४	६	१८	१२	०	०

सूर्य की महादशा में—चन्द्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	चं०	मं०	रा०	गु०	श०	बु०	के०	शु०	सू०	योग ६ महीने
व०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा०	०	०	०	०	०	०	०	१	०	६
दिन	१५	१०	२७	२४	२८	२५	१०	०	९	०
घटी	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०

सूर्य की महादशा में–मंगल की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	४ मास ६ दिन
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
दिन	७	१८	१६	१९	१७	७	२१	६	१०	६
घटी	२१	५४	४८	५७	५१	२१	०	१८	३०	०

सूर्य की महादशा–राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	योग १० मा. २४ दि.
व.	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मा.	१	१	१	१	०	१	०	०	०	१०
दिन	१८	१३	२१	१५	१८	२४	१६	२७	१८	२४
घटी	३६	१२	१८	५४	५४	०	१२	०	५४	०

सूर्य की महादशा–गुरु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	योग ९ म. १८ दि.
वर्ष	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
मास	१	१	१	०	१	०	०	०	१	९
दिन	८	१५	१०	१६	१८	१४	२४	१६	१३	१८
घटी	२४	३६	४८	४८	०	२४	०	४८	१२	०

सूर्य की महादशा–शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	योग ११ म. १२ दि.
मास	१	१	१	१	०	०	०	१	१	११
दिन	२४	१८	१९	२७	१७	२८	१९	२१	१५	१२
घटी	९	२७	५७	०	६	३०	४७	१८	३६	०

सूर्य की महादशा—बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	योग १० म. ६ दि.
मास	१	०	१	०	०	०	१	१	१	१०
दिन	१३	१७	२१	१५	२५	१७	१५	१०	१८	६
घटी	२१	५१	०	१८	३०	५१	५४	४८	२७	०

सूर्य की महादशा—केतु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	योग ४ म. ६ दि.
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
दिन	७	२१	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	६
घटी	२१	०	१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	०

सूर्य की महादशा—शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	योग १२ म.
मास	२	०	१	०	१	१	१	१	०	१२
दिन	०	१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१	०
घटी	०	७	०	०	०	०	०	०	०	०

चन्द्र महादशा—चन्द्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	योग १० महीने
मास	०	०	१	१	१	१	०	१	०	१०
दिन	२५	१७	१५	१०	१७	१२	१७	२०	१५	०
घटी	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०

चन्द्र महादशा—मंगल की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	योग ७ मास
मास	०	१	०	१	०	०	१	०	०	७
दिन	१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०	१७	०
घटी	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	३०	०

चन्द्र महादशा–राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	योग १ वर्ष ६ मास
मास	२	२	२	२	१	३	०	१	१	१८
दिन	२१	१२	२५	१६	१	०	२७	१५	१	०
घटी	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०

चन्द्र महादशा–गुरु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	योग १ वर्ष ४ मा.
मास	२	२	२	०	२	०	१	०	२	१६
दिन	४	१६	८	२८	२०	२४	१०	२८	१२	०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

चन्द्र महादशा–शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं,	मं.	रा.	गु.	योग १ व. ७ मा.
मास	३	२	१	३	०	१	१	२	२	१९
दिन	०	२०	३	५	२८	१७	३	२५	१६	०
घटी	१५	४५	१५	०	३०	३०	१५	३०	०	०

चन्द्र महादशा–बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	बु.	के,	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	योग १ व. ५ मा.
मास	२	०	२	०	१	०	२	२	२	१७
दिन	१२	२९	२५	२५	१२	२९	१६	७	२०	०
घटी	४५	४५	०	०	३०	४५	३०	०	४५	०

चन्द्र महादशा–केतु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	योग ७ मास
मास	०	१	०	०	०	१	०	१	०	७
दिन	१२	५	१०	१७	१२	१	२८	३	२९	०
घटी	१५	०	३०	३०	१५	३०	०	१५	४५	०

चन्द्र महादशा—शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	योग १ व. ८ मा.
मास	३	१	१	१	३	२	३	२	१	२०
दिन	१०	०	२०	५	०	२०	५	२५	५	०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

चन्द्र महादशा—सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	योग ६ मास
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	१	६
दिन	९	१५	१०	२७	२४	२८	२५	१०	०	०
घटी	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०

मंगल महादशा—मंगल की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	योग ४ म. २७ दि.
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
दिन	८	२२	१९	२३	२०	८	२४	७	१२	२७
घटी	३४	३	३६	१६	४९	३४	३०	२१	१५	०
पल	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	०

मंगल महादशा—राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	योग १ व. १८ दि.
मास	१	१	१	१	०	२	०	१	०	१२
दिन	२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१	२२	१८
घटी	४२	२४	५१	३३	३	०	५४	३०	३	०

मंगल महादशा—गुरु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	योग ११ म. ६ दि.
मास	१	१	१	०	१	०	०	०	१	११
दिन	१४	२३	१७	१९	२६	१६	२८	१९	२०	६
घटी	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	०

मङ्गल महादशा—शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	योग १ व. १ म. ९ दि.
मास	२	१	०	२	०	१	०	१	१	१३
दिन	३	२६	२३	६	१९	३	२३	२९	२३	९
घटी	१०	३१	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२	०
पल	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	०

मङ्गल महादशा—बुध की अंतर्दशा में प्रत्यन्तर

	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	योग ११ म. २७ दि.
मास	१	०	१	०	०	०	१	१	१	११
दिन	२०	२०	२९	१७	२९	२०	२३	१७	२६	२७
घटी	३४	४९	३०	५१	४५	४९	३३	३६	३१	०
पल	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	०

मंगल महादशा—केतु की अंतरदशा में प्रत्यन्तर

	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	योग ४ म. २७ दि.
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
दिन	८	२४	७	१२	८	२२	१९	२३	२०	२७
घटी	३४	३०	२१	१५	३४	३	३६	१६	४९	
पल	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	

मंगल महादशा—शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	योग १ व. २ म.
मास	२	०	१	०	२	१	२	१	०	१४
दिन	१०	२१	५	२४	३	२६	६	२९	२४	०
घटी	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०

मंगल महादशा—सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	योग ४ म. ६ दि.
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
दिन	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२१	६
घटी	१८	३०	२१	५४	४८	५७	५१	२१	०	०

मङ्गल महादशा—चन्द्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	योग ७ महीने
मास	०	०	१	०	१	०	०	१	०	७
दिन	१७	१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०	०
घटी	३०	१५	३०	३०	१५	४५	१५	०	३०	०

राहु महादशा—राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	योग २व. ८म. १२दि.
मास	४	४	५	४	१	५	१	२	१	३२
दिन	२५	९	३	१७	२६	१२	१९	२१	२६	१२
घटी	४८	३६	५४	४२	४२	०	३६	०	४२	०

राहु महादशा—गुरु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	गु.	श.	बु.	के	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	योग २व. ४म. २४दि.
मास	३	४	४	१	४	१	२	१	४	२८
दिन	२५	१६	२	२०	२४	१३	१२	२०	९	२४
घटी	१२	४८	२४	२४	०	१२	०	२४	३६	०

राहु महादशा—शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	योग २व. १०म. ६दि.
मास	५	४	१	५	१	२	१	५	४	३४
दिन	१२	२५	२९	२१	२१	२५	२९	३	१६	६
घटी	२७	२१	५१	०	१८	३०	५१	५४	४८	०

राहु महादशा—बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर

	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	योग २व.६म.१८दि.
मास	४	१	५	१	२	१	४	४	४	३०
दिन	१०	२३	३	१५	१६	२३	१७	२	२५	१८
घटी	३	३३	०	५४	३०	३३	४२	२४	२१	०

राहुमहादशा—केतु की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	केतु	शुक्र	रवि	चंद्र	मंगल	राहु	गुरु	श०	बुध	१व. योग १८दि.
मास	०	२	०	१	०	१	१	१	१	१२
दिन	२२	३	१८	१	२२	२६	२०	२९	२३	१८
घटी	३	०	५४	३०	३	४२	२४	५१	३३	०

राहु महादशा—शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	शुक्र	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	केतु	योग ३ वर्ष
मास	६	१	३	२	५	४	५	५	२	३६
दिन	०	२४	०	३	१२	२४	२१	३	३	०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

राहु महादशा—सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	सूर्य	चं.	मं.	रा.	गु.	शनि	बुध	के.	शुक्र	योग १० म. २४ दि.
मास	०	०	०	१	१	१	१	०	१	१०
दिन	१६	२७	१८	१८	१३	२१	१५	१८	२४	२४
घटी	१२	०	५४	३६	१२	१८	५४	५४	०	०

राहु महादशा—चंद्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	चंद्र	मं.	रा.	गु.	शनि	बुध	के०	शुक्र	सूर्य	योग १ व. ६ म.
मास	१	१	२	२	२	२	१	३	०	१८
दिन	१५	१	२१	१२	२५	१६	१	०	२७	०
घटी	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०

राहु महादशा—मंगल की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	मंगल	रा.	गुरु	शनि	बुध	के.	शुक्र	सूर्य	चंद्र	योग १ व. १८ दि
मास	०	१	१	१	१	०	२	०	१	१२
दिन	२२	२६	२०	२१	२३	२२	३	१८	१	१८
घटी	३	४२	२४	५१	३३	३	०	५४	३०	०

गुरु महादशा—गुरु की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	गुरु	शनि	बुध	केतु	शुक्र	सू.	चं.	मं.	श.	योग २ व. १ म. १८ दिन
मास	३	४	३	१	४	१	२	१	३	२५
दिन	१२	१	१८	१४	८	८	४	१४	२५	१८
घटी	२४	३६	४७	४८	०	२४	०	४८	१२	०

गुरु महादशा—शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	शनि	बु.	के.	शुक्र	सू.	चं.	मं.	रा.	गुरु	योग २ व. ६ म. १२ दि
मास	४	४	१	५	१	२	१	४	४	३०
दिन	२४	६	२३	२	१५	१६	२३	१६	१	१२
घटी	२४	१२	१२	०	३६	०	१२	४७	३६	०

गुरु महादशा—बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	बुध	के.	शुक्र	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	शनि	योग २ व. ३ म. ६ दि.
मास	३	१	४	१	२	१	४	३	४	२७
दिन	२५	१७	१६	१०	८	१७	२	१८	९	६
घटी	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	४८	१२	०

गुरु महादशा—केतु की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	केतु	शुक्र	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बुध	योग ११ म. ६ दि.
मास	०	१	०	०	०	१	१	१	१	११
दिन	१९	२६	१६	२८	१९	२०	१४	२३	१७	६
घटी	३६	०	४८	०	३६	२४	४८	१२	३६	०

गुरु महादशा—शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	शुक्र	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	शनि	बु.	के.	योग २ व. ८ म.
मास	५	१	२	१	४	४	५	४	१	३२
दिन	१०	१८	२०	२६	२४	८	२	१६	२६	०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

गुरु महादशा—सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	सूर्य	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के	शुक्र	योग ९ म. १८ दि.
मास	०	०	०	१	१	१	१	०	१	९
दिन	१४	२४	१६	१३	८	१५	१०	१६	१८	१८
घटी	२४	०	४८	१२	२४	३६	४८	४८	०	०

गुरु महादशा—चंद्रमा की अंन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	चंद्र	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सूर्य	योग १ व. ४ म.
मास	१	०	२	२	२	२	०	२	०	१६
दिन	१०	२८	१२	४	१६	८	२८	१०	२४	०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

गुरु महादशा–मंगल की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	मंगल	राहु	गु.	श.	बु	के.	शु.	सू.	चंद्र	योग ११ म. ६ दि.
मास	०	१	१	१	१	०	१	०	०	११
दिन	१९	२०	१४	२३	१७	१९	२६	१६	२८	६
घटी	३६	२४	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	०

गुरु महादशा–राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	राहु	गु.	श.	बुध.	के.	शुक्र	सू.	चं.	मं.	योग २ व. ४ मं. २४ दि.
मास	४	३	४	४	१	४	१	२	१	२८
दिन	९	२५	१६	२	२०	२४	१३	१२	१०	२४
घटी	३६	१२	४८	२४	२४	०	१२	०	२४	०

शनि महादशा–शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	शनि	बु.	के.	शुक्र	सूर्य	चं.	मं.	रा.	गुरु	योग ३ व ३ दि.
मास	५	५	२	६	१	३	२	५	४	
दिन	२१	३	३	०	२४	०	३	१२	२४	
घटी	२८	२५	१०	३०	९	१५	१०	२७	२४	
पल	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	

शनि महादशा–बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	बुध	के.	शुक्र	सूर्य	चं.	मं.	रा.	गु.	शनि	योग २ व. ८ म. ९. दि.
मास	४	१	५	१	२	१	४	४	५	३२
दिन	१७	२६	११	१८	२०	२६	२५	९	३	९
घटी	१६	३१	३०	२७	४५	३१	२१	१२	२५	०
पल	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	०

शनि महादशा—केतु की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	केतु	शुक्र	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	शनि	बुध	योग १ व. १ म. ९ दि.
मास	०	२	०	१	०	१	१	२	१	१३
दिन	२३	६	१९	३	२३	२९	२३	३	२६	९
घटी	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२	१०	३१	०
पल	२०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	०

शनि महादशा—शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	शुक्र	सूर्य	चं.	मं.	रा.	गु.	शनि	बु.	केतु	योग ३ वर्ष २ म.
मास	६	१	३	२	५	५	६	५	२	३८
दिन	१०	२७	५	६	२१	२	०	११	६	०
घटी	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०

शनिमहादशा—सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	सूर्य	चंद्र	मं.	रा.	गु.	शनि	बु.	के.	शुक्र	योग ११ मं. १२ दि.
मास	०	०	०	१	१	१	१	०	१	११
दिन	१७	२८	१९	२१	१५	२४	१८	१९	२७	१२
घटी	६	३०	५७	२८	३६	९	२७	५७	०	०

शनि महादशा—चन्द्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	चंद्र	मं.	रा.	गु.	शनि	बु.	के.	शु.	सूर्य	योग १ व. ७ म.
मास	१	१	२	२	३	२	१	३	०	१९
दिन	१७	३	२५	१६	०	२०	३	५	२८	०
घटी	३०	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	३०	०

शनि महादशा—मंगल की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	मंगल	रा.	गु.	शनि	बु.	के.	शुक्र	सू.	चं.	योग १ व. १ म. ९ दिन
मास	०	१	१	२	१	०	२	०	१	१३
दिन	२३	२९	२३	३	२६	१६	६	१९	३	९
घटी	१६	५१	१२	१०	३१	२३	३०	५७	१५	०
पल	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	०

शनि महादशा—राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	राहु	गु.	शनि	बु.	के.	शुक्र	सू.	चं	मं.	योग २ व १० म. ६ दि.
मास	५	४	५	४	१	५	१	२	१	३४
दिन	३	१६	१२	२५	२९	२१	२१	२५	२९	६
घटी	५४	४८	२७	२१	५१	०	१८	३०	५१	०
पल										०

शनि महादशा—गुरु की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	गुरु	शनि	बु.	के.	शुक्र	सू.	चं.	मं.	राहु	योग २ व. ६ म. १२ दि.
मास	४	४	४	१	५	१	२	१	४	३०
दिन	१	२४	९	२३	२	१५	१६	२३	१६	१२
घटी	२६	२४	१२	१२	०	३६	०	१२	४८	०

बुध महादशा—बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	बुध	के.	शु.	सूर्य.	चं.	मं.	राहु	गु.	श.	योग २ व ८ म. ९ दि.
मास	४	१	४	१	२	१	४	३	४	३२
दिन	२	२०	२४	१३	१२	२०	१०	२५	१७	९
घटी	४९	३४	३०	२१	१५	३४	३	२६	१६	०
पल	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	०

बुध महादशा—केतु की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	केतु	शुक्र	सू.	चं.	मं.	राहु	गु.	श.	बुध	योग ११ म. २७ दि.
मास	०	१	०	०	०	१	१	१	१	११
दिन	२०	२६	१७	२६	२०	२३	१७	२६	२०	२७
घटी	४६	३०	५१	४५	४६	३३	३६	३१	३४	०
पल	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	०

बुध महादशा—शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	शुक्र	सू.	चं.	मं.	राहु	गु.	श.	वु.	केतु	योग २व १०म. १०दि.
मास	५	१	२	१	५	४	५	४	१	३४
दिन	२०	२१	२५	२६	३	१६	११	२४	२६	१०
घटी	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०

बुधमहादशा—सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	वु.	के.	शु.	योग १० म. ६ दिन
मास	०	०	०	१	१	१	१	०	१	१०
दिन	१५	२५	१७	१५	१०	१८	१३	१७	२१	६
घटी	१८	३०	५१	५४	४८	२७	२१	५१	०	०

बुध महादशा—चन्द्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	वु.	के.	शु.	सू.	योग १ व. ५ म
मास	१	०	२	२	२	२	०	२	०	१७
दिन	१२	२६	१६	८	२०	१२	२६	२५	२५	०
घटी	३०	४५	३०	०	४५	१५	४५	०	३०	०

बुध महादशा—मंगल की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	योग ११ म. १७ दि.
मास	०	१	१	१	१	०	१	०	०	११
दिन	२०	२३	१७	२६	२०	२०	२९	१७	२९	१७
घटी	४९	३३	३६	३१	३४	४९	३०	५१	४५	०
पल	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	०

बुध महादशा—राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	योग २व. ६.म. १८दिन
मास	४	४	४	४	१	५	१	२	१	३०
दिन	१७	२	२५	१०	२३	३	१५	१६	२३	१८
घटी	४२	२४	२१	३	३३	०	५४	२०	३३	०

बुध महादशा—गुरु की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	योग २व. ३म. ६ दि.
मास	३	४	३	१	४	१	२	१	४	२७
दिन	१८	९	२५	१७	१६	१०	८	१७	२	६
घटी	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	०

बुध महादशा—शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	योग २व. ८म. १दि.
मास	५	४	१	५	१	२	१	४	४	३२
दिन	३	१७	२६	११	१८	२०	२६	२५	९	१
घटी	२५	१६	३१	३०	२७	४५	३१	२१	१२	०
पल	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	०

केतु महादशा—केतु की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	केतु	शुक्र	सूर्य	चं.	मं.	राहु	गुरु	श.	बु.	योग ४म.२७दि.
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
दिन	८	२४	७	१२	८	२२	१९	२३	२०	२७
घटी	३४	३०	२१	१५	३४	३	३६	१६	४९	०
पल	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	०

केतु महादशा—शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	शुक्र	सू.	च.	मं.	राहु	गु.	शनि	बु.	के.	योग १व. २म.
मान	२	०	१	०	२	१	२	१	०	१४
दिन	१०	२१	५	२४	३	२६	६	२९	२४	०
घटी	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०

केतु महादशा—सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	सू.	च.	मं	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	योग ४ म. ६ दिन
मास	०	०	०	०	०	०	०	०	०	४
दिन	६	१०	७	१८	१६	१९	१७	७	२१	६
घटी	१८	३०	२१	४४	४८	५७	५१	२१	०	०

केतु महादशा—चन्द्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	च.	मं.	रा.	गृ.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	योग ७ महिने
मास	०	०	१	०	१	०	०	१	१	७
दिन	१७	१२	१	२८	३	२९	१२	५	१०	०
घटी	३०	१५	३०	०	१५	४५	१५	०	२०	०

केतु महादशा—मंगल की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	च.	योग ४ म. २७ दि.
दिन	८	२२	१९	२३	२०	८	२४	७	१२	४ २७
घटी	३४	३	३६	१६	४९	३४	३०	२१	१५	
पल	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	

केतु महादशा—राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	रा.	गु.	श.	बु.	के	शु.	सू.	चं.	मं.	योग १ व. १८ दिन
मास	१	१	१	१	०	२	०	१	०	१२
दिन	२६	२०	२९	२३	२२	३	१८	१	२२	१८
घटी	४२	२४	५१	३३	३	०	५४	४०	३	०

केतु महादशा—गुरु की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	योग ११ म. ६ दिन
मास	१	१	१	०	१	०	०	०	१	११
दिन	१४	२३	१७	१९	२६	१६	२८	१९	२०	६
घटी	४८	१२	३६	३६	०	४८	०	३६	२४	०

केतु महादशा—शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	योग १ व. १म. ९दि.
मास	२	१	०	२	०	१	०	१	१	१३
दिन	३	२६	२३	६	१९	३	२३	२९	२३	९
घटी	१०	३१	१६	३०	५७	१५	१६	५१	१२	०
पल	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	०

केतु महादशा—बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	योग ११ म. २७ दिन
मास	१	०	१	०	०	०	१	१	१	११
दिन	२०	२०	२९	१७	२९	२०	२३	१७	२६	२७
घटी	३४	४९	३०	५१	४५	४९	३३	३६	३१	०
पल	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	०

शुक्र की महादशा—शुक्र की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	योग ३ व. ४ महिने
मास	६	२	३	२	६	५	६	५	२	४०
दिन	२०	०	१०	१०	०	१०	१०	२०	१०	०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

शुक्र की महादशा—सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	योग १ वर्ष
मास	०	१	०	१	१	१	१	०	२	१२
दिन	१८	०	२१	२४	१८	२७	२१	२१	०	०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

शुक्र महादशा—चंद्रमा की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	श.	सू.	योग १ व. ८ म.
मास	१	१	३	२	३	२	१	३	१	२०
दिन	२०	५	०	१०	५	२५	५	१०	०	०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

शुक्र महादशा—मंगल की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	मं.	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	योग १ व. २ म.
मास	०	२	१	२	१	०	२	०	०	१४
दिन	२४	३	२६	६	२९	४०	१०	२१	५	०
घटी	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०	०

शुक्र महादशा—राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	रा.	गु.	श.	बु.	कें.	शु.	सू.	चं.	मं.	योग ३ वर्ष
मास	५	४	५	५	२	६	१	३	२	३६
दिन	१२	२४	२१	३	३	०	२४	०	३	०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

शुक्र महादशा—गुरु की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	योग २ व. ८ म.
मास	४	५	४	१	५	१	२	१	४	३२
दिन	८	२	१६	२६	१०	१८	२०	२६	२४	०
घटी	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

शुक्र महादशा—शनि की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	श.	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	योग ३ व. २ म.
मास	६	५	२	६	१	३	२	५	५	३८
दिन	०	११	६	१०	२७	५	६	२१	२	०
घटी	३०	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	०

शुक्र महादशा—बुध की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	योग २ व. १० म.
मास	४	१	५	१	२	१	५	४	५	३४
दिन	२४	२९	२०	२१	२५	२९	३	१६	११	०
घटी	३०	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	०

शुक्र की महादशा—केतु की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर

	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	रा.	गु.	श.	बु	योग १ व. २ म.
मास	०	२	०	१	०	२	१	२	१	१४
दिन	२४	१०	२१	५	२४	३	२६	६	२९	०
घटी	३०	०	०	०	३०	०	०	३०	३०	०

परिशिष्ट (१८)

(स्थित्यन्तर) सूक्ष्मदशा

अब सूंक्ष्मदशा निकालने की रीति इस प्रकार है ।

अधिकांश ज्योतिषी अन्तर्दशा तक ही दशा निकालते हैं । सूक्ष्मदशा निकालने का ज्ञान बहुत थोड़े ज्योतिषियों को होता है । वाचकों के लाभार्थ यहाँ पर सूक्ष्मदशा का विवरण दिया है ।

इस दशा की जानकारी व्यापारी लोगों के लिए अति आवश्यक है । विशेष करके उन लोगों के लिये उपयोगी है जिनकी आर्थिक स्थिति दैनंदिन भावों पर निर्भर होती है । भावों के बदलने के साथ ही आर्थिक स्तर भी बदलता रहता है । ऐसे व्यापारी जो शेअर मार्केट से सम्बन्धित हैं; सोना, चांदी इत्यादि का व्यापार करने वाले, सट्टा करने वाले, क्योंकि इनके भाव ऊपर नीचे होते ही रहते हैं । इसलिए ऐसे व्यापारियों को भाव इस दशा द्वारा बताये जाते हैं । सुबह ८ बजे तेल का भाव कुछ अलग ही रहता है और वह ९ बजे बदलता है तथा ९ बजे वह ऊपर चढ़ता है या नीचे गिरता है और इस प्रकार के उतार चढ़ाव के कारण व्यापारी लोगों में लाखों के वारे न्यारे हो जाते हैं । अनुभव से ही इस दशा के द्वारा बदलने वाले भावों का ज्ञान पहिले से मालुम किया जा सकता है । किसी भी वस्तु के भाव १५-१५ मिनिट तक के बदलने वाले हों तो इनके द्वारा ज्ञात किये जा सकते हैं ।

प्रत्यंतर दशा के दिन, घटी इसकी घटी बनाकर जिस ग्रह का सूक्ष्म निकालना हो उसके प्रमाण वर्ष के आधे करके उससे गुणा करना और ६० से भाग देना तब सूक्ष्मदशा आती है । उदा० सूर्य का प्रत्यंतर ५ दिन २४ घटी है । उनकी एक दर घटी ३२४ (५ × ६० = ३०० + २४ = ३२४) । सूर्य की महादशा की वर्ष संख्या ६ है उसके आधे ३ से गुणा करना (३२४ × ३=९७२) तब ९७२ आते हैं । इस संख्या को ६० से भाग देने पर १६ घटी १२ पल आते हैं (९७२ ÷ ६० = १६ घटी १२ पल) यह काल सूर्य की महादशा में सूर्य के अन्तर में सूर्य का प्रत्यंतर जो है उसमें सूर्य का सूक्ष्म (स्थित्यंतर) है । इस प्रकार अन्य ग्रहों का भी निकालना चाहिये ।

सूर्य की महादशा में सूर्य अंतर, सूर्य प्रत्यन्तर में सूक्ष्म

	सू.	चं.	मं.	राहु	गु.	श.	बु.	के.	शु.	योग ५ दिन २४ घटी
दिन	०	०	०	०	०	०	०	०	०	५
घटी	१६	२७	१८	४८	४३	५१	४५	१८	५४	२४
पल	१२	०	५४	३६	१२	१८	५४	५४	०	०

सूर्य की महादशा में सूर्य अन्तर, चंद्र प्रत्यन्तर में सूक्ष्म

	चन्द्र	मं.	राहु.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सूर्य.	योग ९ दिन
दिन	०	०	१	१	१	१	०	१	०	९
घटी	४५	३१	२१	१२	२५	१६	३१	३०	२७	०
पल	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०

सूर्य की महादशा में सूर्य अंतर, मंगल के प्रत्यन्तर में सूक्ष्म

	मंगल	राहु	गुरु.	शनि.	बु.	के.	शु.	सू.	चं	योग ६दिन१८ घटी
दिन	०	०	०	०	०	०	१	०	०	६
घटी	२२	५६	५०	५९	५३	२२	३	१८	३१	१८
पल	३	४२	२४	५१	३३	०	०	५४	३०	०

सूर्य की महादशा में सूर्य अंतर, राहु के प्रत्यन्तर में सूक्ष्म

	राहु	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू	चं.	मं.	योग १६ दिन १२ घटी
दिन	२	२	२	२	०	२	०	१	०	१६
घटी	२५	९	३३	१७	५६	४२	४८	२१	५६	१२
पल	४८	३६	५४	४२	४२	०	३३	०	४२	०

सूर्य की महादशा में सूर्य अंतर, गुरु के प्रत्यन्तर में सूक्ष्म

	गुरु	शनि	बु.	के.	शु.	सू.	चं	मं.	राहु.	योग १४ दिन २४ घटी
दिन	१	२	२	०	२	०	१	०	२	१४
घटी	५५	१६	२	५०	२४	४३	१२	५०	६	२४
पल	१२	४७	२४	२४	०	१२	०	२४	३६	०

सूर्य की महादशा में सूर्य अंतर, शनि के प्रत्यन्तर में सूक्ष्म

	शनि	बु.	के.	शु.	सू.	चं.	मं.	राहु	गुरु	योग १७ दिन १८ घटी
दिन	२	२	०	२	०	१	०	२	२	१७
घटी	४२	२५	५९	२१	५१	२५	५९	३३	१६	१८
पल	२७	२१	५१	०	१८	३०	५१	५४	४८	०

इसी प्रकार आगे भी सुगमतापूर्वक सूक्ष्मदशा निकाल कर शुभाशुभ ज्ञात किया जा सकता है।

परिशिष्ट (१९)

प्राणदशा

सूक्ष्म दशाकाल के पल बनाकर जिस ग्रह की प्राणदशा निकालनी हो उस ग्रह के दशाप्रमाण वर्ष संख्या के आधे वर्ष करके उसे गुणा करना और उस गुणाकार को ६० से भाग देने पर प्राणदशा निकलती है। यदि सूक्ष्म दशा के एक भाग को भी ९ नौ ग्रहों में निश्चित क्रम और निश्चित अनुपात में वांटें तो वह प्राण दशा होगी।

उदा० सूर्य का सूक्ष्म १६ घटी १२ पल है। इनके पल किये तो ९७२ हुए। इनको सूर्य की दशा के आधे ३ वर्ष से गुणा किया तो २९१६ हुए। इनको ६० का भाग दिया ४८ पल आये, ३६ विपल रहे। यही सूर्य का प्राण हुआ। अथवा प्राण जो कुछ हो उसे केवल तीन गुणा कर दो तो सूक्ष्म हो जायगा।

सूर्य की महादशा, सूर्य का अंतर सूर्य का प्रत्यन्तर सूर्य की सूक्ष्म दशा में प्राणदशा

	सूर्य	चं.	मं.	राहु	गु.	श.	बु.	के.	शुक्र	योग १६घ.१२पल
घटी	०	१	०	२	२	२	२	०	२	१६
पल	४८	२१	५६	२५	९	३३	१७	५६	४२	१२
विपल	३६	०	४२	४८	३६	५४	४२	४२	०	०

चन्द्रमा की प्राणदशा

	चंद्र	मं.	राहु	गु.	शनि	बु.	के.	शु.	सू.	योग २७ घटी
घटी	२	१	४	३	४	४	१	४	१	२७
पल	१५	३४	३	३६	१६	४९	३४	३०	२१	०
विपल	०	३०	०	०	३०	३०	३०	०	०	०

मङ्गल की प्राणदशा

	मंगल	राहु	गु.	शनि	बु.	के.	शु.	सू.	चं	योग १८घ.५४प
घटी	१	२	२	२	१	१	३	०	१	१८
पल	६	५०	३१	५९	४०	७	९	५६	३४	५४
विपल	९	६	१२	३३	३९	९	०	४०	३०	०

राहु की प्राणदशा

	रा.	गु.	श.	बु.	के.	शु.	सू.	च.	मं.	योग ४८घटी ३६पल
घटी	७	६	७	६	२	८	२	४	२	४८
पल	१७	२८	४१	५३	५०	६	२५	३	५०	३६
विपल	२४	४८	४२	६	६	०	४८	०	६	०

गुरु की प्राणदशा

	गुरु	शनि	बु.	के.	शुक्र	सू.	चं..	मं	राहु	योग ४३ घ. १२ पल
घटी	५	६	६	२	७	२	३	२	६	४३
पल	४५	५०	७	३१	१२	९	३६	३१	२७	१२
विपल	३६	२४	१२	१२	०	३६	०	१२	४६	०

शनि की प्राणदशा

	शनि	बु.	के.	शुक्र	सू.	चं	मं.	रा.	गु	योग ५१ घ. १८ पल
घटी	८	७	२	८	२	४	२	७	६	५१
पल	७	१६	५९	३३	३३	१६	५९	४१	५०	१८
विपल	२१	३	३३	०	५४	३०	३३	४२	२४	०

इसी प्रकार बुध की प्राणदशा, केतु की प्राणदशा तथा शुक्र की प्राणदशा भी स्पष्ट करें तथा साथ ही अन्य ग्रहों की भी प्राणदशाओं को उपर्युक्त विधि से स्पष्ट कर सूक्ष्मातिसूक्ष्म भविष्य फल कहने के योग्य बनें।

परिशिष्ट (२०)

अन्तर्दशा आदि मालूम करने की सरल रीति

अब अन्तर्दशा आदि निकालने की बहुत सरल और सीधी रीति इस प्रकार है।

रामैर्हताश्चार्कमुखग्रहाणां दशाब्दकास्ते दिवसा भवंति।
दशासमानां खलु षष्ठभागः शुक्रस्य भुक्तिः सकलग्रहेषु।
दशेश्वरदिनैर्हीना शुक्रभुक्तिर्भवेच्छनेः।
सैव हीना दशानाथदिनैश्चागोः स्मृता हि सा॥
रहिता चैव सा ज्ञेया चन्द्रजस्य तु तैर्दिनैः।
एवं हीना च सा ज्ञेया दशानाथदिनैर्गुरोः॥
अगोस्त्रिभागं रविभुक्तिमाहुः शुक्रस्य चार्द्धं हिमगोर्भवेत्सा।
युक्ता दशानाथदिनै रवेस्तु भुक्तिर्भवेच्चैव कुजस्य केतोः।
एवं समस्तग्रहभुक्तयस्तु कार्या दिनेशादिखगेश्वराणाम्॥

सूर्यादि ग्रहों की दशा वर्षों को तिगुना करने से दिन होते हैं और दशा के वर्षों का छटा भाग सब ग्रहों का अन्तर होता है और उसमें दशानाथ के दिन घटाने से शनि का अन्तर होता है, फिर इसमें दशानाथ के दिन घटाने से राहु की अन्तर्दशा होती है फिर दशानाथ के दिन घटाने से बुध का अन्तर होता है। फिर इसमें दशानाथ के दिन घटाने से गुरु का अन्तर होता है, फिर राहु का तीसरा भाग सूर्य का अन्तर होता है; शुक्र का आधा भाग चन्द्रमा का अन्तर होता है। सूर्य में दशानाथ के दिन जोड़ देने से भौम का अन्तर होता है। भौम के समान ही केतु का होता है।

उदाहरण :—सूर्य की दशा में सूर्य का ही अन्तर मालूम करना।

६ वर्ष का छठा हिस्सा लेने पर १ वर्ष यह शुक्र की अन्तर्दशा हुई; अब इसमें दशानाथ सूर्य के १८ दिन घटाये (क्योंकि सूर्य अपने अन्तर में ३ मास १८ दिन का है) तो २१ महिने १२ दिन हुए—वे शनि की अन्तर्दशा के हुए। इसमें फिर १८ घटाये तो १० मास २४ दिन बचे वे राहु की अन्तर्दशा के हुए। फिर १८ घटाने के बाद १० मास, ५ दिन बचे वे बुध की अन्तर्दशा के हुए। फिर उसमें से १८ दिन घटानेपर ६ मास १८दिनरहे वे गुरु की अन्तर्दशा के हुए।

अब राहु के हैं १० मास २४ दिन इसका तीसरा भाग ३ मास १८ दिन का हुआ। वह सूर्य की अन्तर्दशा का है। शुक्र है १ वर्ष इसका आधा ६ मास चन्द्रमा की अन्तर्दशा के हुए।

अब सूर्य के ३ मास १८ दिन हैं इसमें सूर्य के १८ दिन जोड़ें तो ४ मास ६ दिन मंगल की अन्तर्दशा हुई और यही केतु की भी हुई।

अथवा जिसकी अन्तर्दशा निकालनी हो उसकी दशा को वर्ष संख्या से गुणा कर दो, प्रथम अंक मास होगा और दूसरा अंक बचे उसे तिगुना कर दो तो दिन होंगे।

जैसे सूर्य की दशा ६ वर्ष की है इसको ६ वर्षों से गुणा किया तो ३६ हुए। प्रथम अंक ३ मास हुए दूसरा अंक जो ६ है इसे तिगुना किया तो १८ ये दिन हुए अर्थात् ३ मास १८ दिन का सूर्य हुआ।

परिशिष्ट (२१)

निम्नलिखित कोष्टक पर से हर एक लग्न के लिए कौन-कौन से कारक ग्रह, शुभग्रह, समग्रह, अशुभग्रह तथा मारक ग्रह हैं इसका स्पष्टीकरण किया गया है। उदाहरण जो नीचे दिया गया उस पर से स्वयं की प्रत्यन्तर दशा का ज्ञान इस पर से हो सकता है।

क्रम लग्न	कारक ग्रह	शुभ	सम	अशुभ	मारक
१ मेष	गुरु सूर्य मंगल	—	चन्द्र	शुक्र बुध शनि	मंगल बुध
२ वृषभ	शनि	बुध सूर्य मंगल	शुक्र	चन्द्र गुरु	गुरु मंगल
३ मिथुन	शुक्र	शनि	बुध चन्द्र	मंगल गुरु सूर्य	गुरु चन
४ कर्क	मंगल गुरु	—	सूर्य चन्द्र शनि	बुध शुक्र	शनि सूर्य
५ सिंह	सूर्य मंगल	—	शनि चन्द्र गुरु	बुध शु	बुध गुरु
६ कन्या	शुक्र	—	सूर्य बुध शनि	मंगल गुरु चन्द्र	गुरु मंगल
७ तुला	शनि	बुध शुक्र	मंगल	सूर्य चन्द्र गुरु	शुक्र मंगल
८ वृश्चिक	चन्द्र	सूर्य गुरु	शनि मंगल	बु	शुक्र गुरु
९ धनु	सूर्य मंगल	—	चन्द्र गुरु	बुध शुक्र शनि	बुध शनि
१० मकर	शुक्र	बुध शनि	सूर्य	चंद्र गुरु मंगल	चन्द्र सूर्य
११ कुम्भ	शुक्र	सूर्य मंगल शनि	बुध	चन्द्र गुरु	गुरु बुध
१२ मीन	मंगल चन्द्र	—	गुरु	सूर्य बुध शुक्र शनि	बुध शनि

उदाहरण :—मिथुन लग्न के व्यक्ति को किसी भी ग्रह की अन्तर्दशा में शुक्र की प्रत्यंतर दशा अतिश्रेष्ठ जानी चाहिये।

परन्तु बुध और चंद्रमा इनकी दशा साधारण जावेगी। चन्द्रमा द्वितीयेश मारकेश होने से उसकी दशा में शारीरिक कष्ट भोगना पड़ेगा। मंगल और सूर्य की दशा में परेशानी या तकलीफदायक और अयशस्वी जायेंगी तथा गुरु का प्रत्यंतर मरण तुल्य कष्ट देगा। शनि की प्रत्यन्तर दशा भी उत्तम जानी चाहिये। इसी प्रकार अन्य लग्नों की कुण्डलियों में की प्रत्यन्तर दशा के बारे में विचार करना चाहिये।

परिशिष्ट (२२)

मारक प्रकरण विंशोत्तरी नक्षत्र दशा के अरिष्टप्रद तथा मारक ग्रहों का निर्णय।

(१) निम्नलिखित ग्रहों को "पापी" संज्ञा दी गयी है। ये संज्ञा सिर्फ विंशोत्तरी दशा प्रसंग के अनुसार है,

(क) द्वितीयेश तथा द्वादशेश बृहस्पति, शुक्र, बुध तथा चन्द्रमा यदि पाप-स्थान (३–६–८–११) तृतीय, षष्ठ, अष्टम और एकादश स्थानों में हों अथवा इनकी अपनी दूसरी राशि पापस्थान में पड़ती हो अथवा ये किसी त्रिषडायाधीश वा अष्टमेश के साथ हों तो,

(ख) द्वितीयेश, बृहस्पति, शुक्र, बुध, चन्द्रमा यदि द्वितीय स्थान में ही हों द्वादशेश बृहस्पति, शुक्र, बुध, चन्द्रमा यदि द्वादशस्थान में ही स्थित हों तो,

(ग) सप्तमेश बृहस्पति, शुक्र, बुध, चन्द्रमा ये यदि सप्तम स्थान में ही स्थित हों तो,

(घ) द्वितीयेश, द्वादशेश, सप्तमेश मंगल यदि त्रिषडाय अपना अष्टम स्थान में हों तो,

(ङ) सूर्य के अतिरिक्त सब षष्ठस्थानाधिपति।

(च) सब अष्टम स्थानाधिपति। यदि वह अष्टमेशाधिपति अष्टम स्थान में अथवा स्वराशि का होकर लग्न में स्थित न हो तो।

(छ) षष्ठ, अष्टम अथवा द्वादश स्थान गत चन्द्रमा,

(ज) शनि सर्वदा,

(झ) राहु अथवा केतु यदि पापस्थान में हों तो।

(२) उपरोक्त पापी संज्ञक ग्रह यदि उपरोक्त पापी ग्रहों से सम्वन्धकरें तो वह अपनी महादशा में मारक फल देगा और यदि वह किसी भी पापग्रह से सम्बन्ध न करें तो वह ग्रह अपनी महादशा में सिर्फ अरिष्टप्रद होगा।

(३) यहाँ पर "सम्वन्ध" के नियम इस प्रकार हैं :—

(क) विचाराधीन पापीग्रह पर अन्य पापीग्रह की पूर्ण दृष्टि हो और वह उसे देखता न हो,

(ख) परस्पर दृष्ट हो,

(ग) विचाराधीन ग्रह, अन्य ग्रह की राशि में हो और वह दूसरा ग्रह देखता न हो।

(घ) परस्पर एक दूसरे की राशि में हो, (यह प्रसिद्ध अन्योन्याश्रित योग) है।

(ङ) दोनों एकत्र किसी राशि में हों।

(च) दोनों एकत्र कहीं भी वैठे हों तो।

उपरोक्त सम्वन्ध में से "क" सम्वन्ध मारक दृष्टि से प्रवल सम्वन्ध है। उसके वाद 'ग' सम्वन्ध है। 'ख' तथा 'च' अति साधारण सम्वन्ध हैं परस्पर सम्बन्धित ग्रहों का मारकत्व (पापत्व) आपस में वंट जाता है इसलिए मारक प्रसंग में 'ख' और 'च' निर्वल सम्वन्ध हैं।

(४) यहाँ पर 'दृष्टि' के नियम इस प्रकार हैं :—

(क) सव ग्रह अपने स्थान से सप्तमस्थ ग्रहों को देखते हैं। यह साधारण दृष्टि सम्बन्ध है।

(ख) शनि अपने स्थान से, तृतीयस्थ तथा दशमस्थ ग्रह को विशेष रूप से देखता है।

(ग) बृहस्पति अपने स्थान से पंचमस्थ तथा नवमस्थ ग्रह को विशेष रूप से देखता है।

(घ) मंगल अपने स्थान से चतुर्थस्थ तथा अष्टमस्थ ग्रह को विशेष रूप से देखता है।

(५) उपरोक्त पापी संज्ञक ग्रह अन्य उपरोक्त पापी संज्ञक ग्रह से सम्बन्ध करे तो उसकी "मारक" संज्ञा होती है।

(६) यदि कोई मारक ग्रह चन्द्रलग्न की कुण्डली में पापीग्रह से सम्बन्ध करें अथवा चन्द्रमा से पापस्थान (३–६–८–११) हो तो वह ग्रह निश्चय-पूर्वक 'मारक' वनता है।

इस योजना में उपरोक्त नियम १ के अनुसार जिन ग्रहों को पापी संज्ञा दी गई है वे ही पापी ग्रह हैं। तृतीय, षष्ठ, अष्टम तथा एकादश स्थान भाव अथवा गृह यें पापस्थान हैं। लग्नस्थ राशि से द्वादश राशि तक द्वितीय आदि राशि हैं। वे स्थान भाव अथवा गृह हैं। यहाँ पर स्थान, भाव अथवा राशि एक ही बात है चन्द्रमा जिस राशि में हो उसे लग्न ऐसा सम्वोधन करके जो कुण्डली तैयार की जाये वह चन्द्र लग्न कुंडली है। जब तक चन्द्र कुंडली की चर्चा नहीं की जाती तव तक समस्त और सर्वत्र फल विचार से जन्म-कुंडली ही समझना चाहिये।

(७) जन्म कुंडली में एक से अधिक ग्रह मारक बनते हों तो उनमें से जिस मारक ग्रह की प्रथम विंशोत्तरी दशा आयेगी, उस दशा में जातक का निधन सम्भव है। परन्तु जब शनि अथवा अन्य ग्रह किसी भी मारक ग्रह का अतिक्रमण करता हो तब जातक की मृत्यु उस मूल के मारक ग्रह की दशा में न होकर अतिक्रमण करने वाले ग्रह की दशा में होती है। ऐसी परिस्थिति में उस मूल के मारक ग्रह की महादशा अमारक होती है। यदि कोई अतिक्रमण करनेवाले ग्रह की दशा, जिस ग्रह को वह पीछे हटाता है, उसकी दशा पहिले आती हो तो अतिक्रमण करनेवाला ग्रह ही मारक होता है।

मारक ग्रहों का अपवाद

१. (क) तृतीयेश, षष्ठेश, अष्टमेश, तथा एकादशेश यदि सूर्य अथवा चन्द्रमा हो तो वह मारक वनता है। परन्तु वह अन्य पापी ग्रहों से अथवा ग्रह से सम्बन्धित हो तो 'मारक' नहीं बनता। अर्थात् ऐसे सम्वन्ध के कारण अन्य पापी ग्रह 'मारक' होते हैं। परन्तु सूर्य अथवा चन्द्रमा मारक नहीं बनते। सप्तमेश चन्द्रमा पापी होकर अन्य पापी ग्रह से सम्वधित हो तो 'मारक' बन सकता है।

(ख) केन्द्रेश अथवा त्रिकोणेश सूर्य अथवा चन्द्रमा हो तब वे शुभसंज्ञक होते हैं। वह सूर्य अथवा चन्द्रमा षष्ठेश अथवा अष्टमेश इन दो ग्रहों से दृष्ट या सम्बन्धित हो तो 'मारक' बनते हैं परन्तु पापी संज्ञक मारक नहीं बनते अर्थात् उनसे सम्वन्ध करनेवाले अन्य पापी ग्रह 'मारक' नहीं बनते।

उदाहरणार्थ—वृश्चिक लग्न की कुण्डली में सूर्य दशमेश होने से शुभ है। वह सूर्य यदि मंगल तथा बुध षष्ठेश व अष्टमेश इन दोनों से सम्बन्ध करे तो यह सूर्य 'मारक' होता है।

२—(क) परमोच्चांशगत ग्रह स्वयं मारक नहीं बनता किन्तु परिस्थिति-वश 'पापी' बन सकता है।

(ख) कोई भी उच्चस्थ अथवा उच्चाभिलाषी पापी ग्रह किसी नीचस्थ पापी ग्रह से तथा पापी ग्रहों से सम्बन्ध नहीं करता हो तो वह 'मारक' नहीं बनता।

(ग) नीचस्थ पापी ग्रह यदि किसी उच्चस्थ ग्रह से सम्बन्धित हो फिर भी वह 'मारक' ही होता है।

(घ) नीचस्थ पापी ग्रह यदि किसी नीचस्थ पापी ग्रह से सम्बन्ध करे तो वह 'प्रबल मारक' बनता है।

(ङ) कोई भी पापी ग्रह जो स्वयं उच्चस्थ नहीं हो और वह यदि किसी उच्चस्थ पापी ग्रह से सम्बन्धित हो फिर भी वह 'मारक' ही रहता है, यदि वह उच्चस्थ पापी ग्रह परमोच्चांश-गत नहीं हो तो।

(च) पापी परमोच्चांशगत ग्रह यदि अपने 'परस्पर मित्र' पापी ग्रह से सम्बन्धित हो तो वह निश्चयपूर्वक मारक नहीं बनता परन्तु यदि परस्पर मित्र पापी ग्रह भी परमो-च्चांशगत होवे तो वह प्रथम विचाराधीन ग्रह अपने परस्पर मित्र आत्म सम्बन्धी ग्रह का बल लेकर कभी-कभी स्वयं 'मारक' होता है।

३—(क) **ग्रहों के परमोच्चांश तथा उनकी उच्च राशि—सूर्य–०।१०°; चन्द्रमा–१।३°, मंगल–९।२८°; बुध–५।१५°, बृहस्पति–३।५°, शुक्र–११।२७°, शनि–६।२०°, राहु—वृषभ, केतु-वृश्चिक। इनसे सप्तम राश्यादि तत्तद् ग्रहों के नीच स्थान हैं।**

अपनी कक्षा में भ्रमण करनेवाला कोई ग्रह जब पृथ्वी से सबसे नजदीक अवस्था में आता है तो उस समय उसकी राशि 'नीच राशि' तथा अंश परमनीचांश होते हैं। उसी प्रकार अत्यधिक दूरी पर हो तो उच्चस्थ कहलाते हैं। ये उच्च-नीच स्थान चल हैं परन्तु फलित ज्योतिष में उपरोक्त उच्च-नीच राशियां रूढ़ि बनी हुई हैं।

(ख) कोई भी ग्रह अपने परमोच्चांश से ३०° पूर्व तक हो तब वह उच्चाभिलाषी कहलाता है। उच्चाभिलाषी होने का फल उतना ही अच्छा होता है जितना कि वह परमोच्चांश के नजदीक हो। परमोच्चांश के आगे उस राशि में जब तक वह रहता है तब तक उसे उच्चस्थ कहते हैं, उच्चराशि छोड़ने पर वह उच्चाभिलाषी नहीं कहलाता है।

ग्रहों के परमनीचांश तथा नीच राशि

सूर्य—६।१०°, चन्द्रमा—७।३°, मंगल—३।२८°, बुध—११।१५°, गुरु—९।५°, शुक्र—५।२७°, शनि—०।२०°।

उच्चांशवश आयु साधन

साधारणतः जब अष्टमेश, लग्नेश तथा चन्द्रमा अपने-अपने परमोच्चांश पर होते हैं उस समय उनमें से हर एक ४० वर्ष की आयु प्रदान करता है परन्तु परमनीचांश पर आयु ० वर्ष होती है। अपने परमनीचांश से ३०° अंश तक अर्थात् एक राशि आगे तक ६ वर्ष ८ महीने प्राप्त होते हैं और उसके प्रत्येक अंश पर अनुपात आयुष्य ० वर्ष २ महीना २० दिन होता है। अपने परमनीचांश से अष्टमेश, लग्नेश तथा चन्द्रमा जितने अंश आगे उच्चांश तक व्यतीत कर चुका हो, जन्म कुण्डली में उतने अंशों को वर्षादि ०।२।२० इससे गुणा करके तीनों ग्रहों का जो गुणाकार आवे उसको जोड़ करके जातक की उच्चांशवश परम आयु होती है। परमनीचांश पर आयु शून्य ० होती है।

उदाहरण—वृषभ लग्न की कुण्डली में लग्नेश शुक्र ६।१०° अष्टमेश गुरु ११५° चन्द्रमा १०।३° है। शुक्र स्पष्ट ७।२०° परमनीच ५।२७° = शेष १ – ३३° याने ५३° अंश परमनीचांश के आगे ५३°×२ मास २० दिन = ११ वर्ष – ९ मास १० दिन।

गुरु—११०५° परमनीचांश ९।०५° = ४ – ०० राशि अपने परमनीचांश के आगे ४×६ वर्ष ८ मास = २६ वर्ष ८ महीने।

चन्द्रमा—१०।३° परमनीचांश ०।३०° = ३ – ०० राशि अपने परमनीचांश से आगे ३×६ वर्ष ८ मास = २४० महीने = २० वर्ष।

अब ११ वर्ष ६ महीना १० दिन + २६ वर्ष, ८ महीने + २० वर्ष = वर्षादि ५८ वर्ष ५ महीने १० दिन यह उक्त जातक की उच्चांशवश परम आयु होगी। अष्टमेश आदि ग्रह यदि अपने परमोच्चांश के आगे हो तो उतने अंशों को ८० से गुणा करके मूल को ४० वर्ष से ऋण करना चाहिये। यदि इस प्रकार आयुखंड में मारकेश की दशान्तर आवे तो मृत्यु होगी।

जन्म कुण्डली के निम्नलिखित योग अल्पायु कारक हैं। अल्पायु की अवधि ४० वर्ष तक है।

(१) नीचस्थ अष्टमेश पर नीचस्थ लग्नेश की दृष्टि तथा इन दोनों से नवमेश का सम्बन्ध। यहाँ पर सम्बन्ध का अर्थ लघु पाराशरी में वर्णित सम्बन्ध से है अर्थात् दृष्टि, स्थान तथा परस्पर राशिस्थ सम्बन्ध इत्यादि।

(२) नीचस्थ नवमेश तथा द्वादशेश इनका परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध अर्थात् नवमेश द्वादश भाव में तथा द्वादशेश नवम भाव में हो तो।

(३) अष्टमेश नीचस्थ हो तथा चन्द्रमा भी नीचस्थ हो और ये कुण्डली में कहीं भी बैठे हों तो।

(४) नीचस्थ लग्नेश तथा नीचस्थ अष्टमेश कहीं भी बैठा हो तो।

(५) नीचस्थ लग्नेश कहीं भी हो तथा चन्द्रमा अष्टमस्थ हो तो।

(६) नीचस्थ अष्टमेश के साथ कहीं भी बैठा हो तो।

उपरोक्त योगों का सारांश ऐसा है कि आयुर्दाय की दृष्टि से नीचस्थ लग्नेश, नीचस्थ चन्द्रमा या अष्टमस्थ चन्द्रमा—ये उत्तम नहीं होते। आयुष्यबल देखने के लिए लग्नेश, अष्टमेश तथा चन्द्रमा इन तीनों पर से विचार करना चाहिये। ये यदि उच्च के सन्निध हों तो उतना ही आयुष्य अधिक होगा। परम आयु १२० वर्ष समझनी चाहिये।

परिशिष्ट (२३)

परस्पर मित्र तथा परस्पर शत्रु ग्रह

(१) शनि-शुक्र, शुक्र-बुध, बृहस्पति-मंगल, सूर्य-चन्द्रमा, बृहस्पति-सूर्य, सूर्य-मंगल ये परस्पर मित्र ग्रह हैं।

(२) सूर्य-शुक्र, सूर्य-शनि ये परस्पर शत्रु ग्रह हैं।

उपरोक्त परस्पर मित्र ग्रहों में शनि-शुक्र अखंड अभिन्न तथा बली परस्पर मित्र ग्रह हैं उसके बाद बृहस्पति-मंगल की पारस्परिक मित्रता है। उससे न्यून क्रमशः शुक्र-बुध की सूर्य-चन्द्र की बृहस्पति-सूर्य की तथा सूर्य-मंगल की परस्पर मित्रता है।

अभिन्न परस्पर मित्र शनि-शुक्र के विषय में विशेष नियम—

(१) शनि जिस किसी पापी ग्रह से परस्पर सम्बन्ध करता हैं तब उससे सम्बन्धित ग्रह 'अमारक' होता है। यदि उसकी दशा शनि की महादशा के पूर्व आती हो। अर्थात् शनि अपने परस्पर सम्बन्धित मारक ग्रहों को पीछे हटाकर स्वयं मारक होता है परन्तु ऐसा 'अमारक' ग्रह राहु से ग्रसित हो तो वह ग्रह मारक ही बना रहता है।

(२) शनि वह फिर शुभ हो अथवा पापी जिस किसी भी पापी ग्रह से सम्बन्धित हो तो वह स्वयं 'मारक' होता है अनेक पापी ग्रहों से सम्बन्धित हो तो 'प्रबल मारक' होता है।

(३) मारक शनि से यदि शुक्र तृतीयस्थ अथवा दशमस्थ हो तो वह शनि अपना 'मारक फल' शुक्र की महादशा में देता है। फिर वह शुभ ही क्यों न हो। ऐसी दशा में शनि 'अमारक' हो तो स्वयं नहीं मारता प्रत्युत उसका अभिन्न मित्र शुक्र मारता है।

(४) अमारक शनि से यदि मारक शुक्र तृतीयस्थ अथवा दशमस्थ हो तो शनि का जो अमारक फल वह शुक्र की महादशा में अथवा शनि की अन्तर्दशा में मिलता है किन्तु शुक्र यह मारक ही रहता है, अमारक शनि अर्थात् शुक्र अथवा अशुभ शनि यदि किसी पापी से सम्बन्धित नहीं हो और अमारक शुक्र यदि तृतीयस्थ अथवा दशमस्थ हो तो वह शुक्र भी अमारक होता है।

(५) शनि शुक्र ये दोनों यदि अमारक हों और परस्पर सम्बन्ध करते हों अर्थात् परस्पर दृष्ट हों, एकत्र एक राशि में हों, एक दूसरे की राशि में हों और एक दूसरे को देखते हों तो शनि का फल शुक्र की तथा शुक्र का फल शनि की महादशा की परस्पर अंतर्दशा में मिलता है जो फलतः अमारक होता है।

(६) मारक शनि तथा मारक शुक्र यदि परस्पर सम्बन्ध करते हों तो उपरोक्त नियम ३ के अनुसार शुक्र अमारक होता है। और शनि मारक होता है। परन्तु यदि अमारक शुक्र का मारक शनि से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होवे तो शनि अपना मारक फल शुक्र में ही देता है। कारण कि ऐसी स्थिति में शनि का मारकत्व दोष शुक्र के सहयोग से नहीं हुआ प्रत्युत शनि किसी दूसरे पापग्रह से सम्बन्ध करने के कारण मारक बना। अस्तु ऐसी स्थिति में शुक्र अपने अभिन्न मित्र शनि का मारकत्व दोष अपने ऊपर लेता है। सारांश यह है कि मारक शनि तथा अमारक शुक्र यदि परस्पर दृष्ट हों, अथवा दोनों एक ही राशि में बैठे हों अथवा दोनों परस्पर एक दूसरे की राशि में बैठे हों तभी मारक शनि का मारकत्व फल शनि की महादशा में न होकर शुक्र की महादशा में होता है।

(७) मारक शनि से मारक शुक्र का कोई भी सम्बन्ध नहीं हो तो शुक्र ही मारक होता है।

(८) शनि मारक हो अथवा अमारक हो यदि वह मारक शुक्र से सम्बन्ध करे तो शुक्र अमारक होता है और शनि मारक होता है।

(९) शनि का जिस किसी पापग्रह से सम्बन्ध हो और यह सम्बन्ध करने वाले पापीग्रह शुक्र का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होवे तो शनि अपना फल शुक्र की महादशा में देता है।

(१०) उच्चस्थ मारक शनि मारता नहीं है परन्तु यदि वह अमारक शुक्र को देखता हो तो उस कारण से शुक्र मारक बनता है और शनि अमारक हो तो उस कारण से शुक्र पर उच्चस्थ शनि की दृष्टि शुक्र के लिए अमारक नहीं होती अर्थात् उच्चस्थ ग्रह की दृष्टि मात्र के कारण किसी भी ग्रह का मारकत्व दोष नष्ट नहीं होता।

(११) मारक शनि के साथ शुभ राहु अथवा केतु बैठा हो अर्थात् राहु अथवा केतु केन्द्र त्रिकोण में शनि के साथ हों तो राहु अथवा केतु

मारक नहीं बनते परन्तु यदि पापस्थान में राहु अथवा केतु शनि के साथ हों तो वे मारक बनते हैं।

परस्पर मित्र बृहस्पति मंगल इनके विषय में विशेष नियम :—

(१२) बृहस्पति की मंगल पर दृष्टि मंगल के लिए श्रेयस्कर होती है। पापी मंगल पर यदि पापी बृहस्पति की दृष्टि मात्र हो अर्थात् मंगल बृहस्पति से पंचमस्थ अथवा नवमस्थ हो, परस्पर दृष्टि नहीं हो अथवा अन्य सम्बन्ध नहीं हो तो मंगल मारक होने पर भी नहीं मारता, यदि वह अन्य पापी ग्रहों से सम्बन्ध नहीं करता हो तो।

(१३) पापी उच्चस्थ मंगल पर यदि उच्चस्थ बृहस्पति की दृष्टिमात्र हो (सप्तमस्थ नहीं) और मंगल पापी ग्रह से सम्बन्धित हो तो बलाबल के अनुसार मंगल नहीं मारता। उसका राहु के मुख में होने का दोष भी नष्ट होता है।

(१४) मंगल यदि लग्नस्थ अथवा अष्टमस्थ हो और किसी भी पापी ग्रह से सम्बन्ध करे तो मारता नहीं परन्तु मरण तुल्य अवस्था ला सकता है।

राहु और केतु के विषय में

(१५) राहु यदि जन्म लग्न से तृतीय, षष्ठ, अष्टम अथवा एकादश (त्रिषडाय अथवा अष्टम) स्थान में बैठा हो तथा वह चंद्रमा से द्वितीयस्थ अथवा अष्टमस्थ हो तो मारक होता है।

(१६) राहु लग्न से ३,६,८,११ स्थान गत होकर पापी शुक्र अथवा पापी बृहस्पति के साथ हो तो मारक होता है।

(१७) वृषभ राशि का राहु शुक्र के साथ हो अथवा उससे दृष्ट हो तो वह पापी होकर भी प्रायः मारता नहीं।

(१८) मीनस्थ राहु सदा अरिष्टप्रद होता है और यदि वह चन्द्रमा से द्वितीयस्थ अथवा अष्टमस्थ हो तो मारक होता है और उसी समय यदि वह जन्म लग्न से भी द्वितीयस्थ तृतीयस्थ अथवा षष्ठस्थ हो तो निश्चयपूर्वक मारक बनता है, सिर्फ लग्न से अष्टमस्थ अथवा एकादशस्थ हो तब अरिष्टप्रद मात्र होता है। अन्य ग्रहों के योगों के कारण उसका फल तारतम्य से होता

(५) शनि शुक्र ये दोनों यदि अमारक हों और परस्पर सम्वन्ध करते हों अर्थात् परस्पर दृष्ट हों, एकत्र एक राशि में हों, एक दूसरे की राशि में हों और एक दूसरे को देखते हों तो शनि का फल शुक्र की तथा शुक्र का फल शनि की महादशा की परस्पर अंतर्दशा में मिलता है जो फलतः अमारक होता है।

(६) मारक शनि तथा मारक शुक्र यदि परस्पर सम्वन्ध करते हों तो उपरोक्त नियम ३ के अनुसार शुक्र अमारक होता है। और शनि मारक होता है। परन्तु यदि अमारक शुक्र का मारक शनि से अन्योन्याश्रित सम्वन्ध होवे तो शनि अपना मारक फल शुक्र में ही देता है। कारण कि ऐसी स्थिति में शनि का मारकत्व दोष शुक्र के सहयोग से नहीं हुआ प्रत्युत शनि किसी दूसरे पापग्रह से सम्वन्ध करने के कारण मारक बना। अस्तु ऐसी स्थिति में शुक्र अपने अभिन्न मित्र शनि का मारकत्व दोष अपने ऊपर लेता है। सारांश यह है कि मारक शनि तथा अमारक शुक्र यदि परस्पर दृष्ट हों, अथवा दोनों एक ही राशि में बैठे हों अथवा दोनों परस्पर एक दूसरे की राशि में बैठे हों तभी मारक शनि का मारकत्व फल शनि की महादशा में न होकर शुक्र की महादशा में होता है।

(७) मारक शनि से मारक शुक्र का कोई भी सम्वन्ध नहीं हो तो शुक्र ही मारक होता है।

(८) शनि मारक हो अथवा अमारक हो यदि वह मारक शुक्र से सम्वन्ध करे तो शुक्र अमारक होता है और शनि मारक होता है।

(९) शनि का जिस किसी पापग्रह से सम्वन्ध हो और यह सम्वन्ध करने वाले पापीग्रह शुक्र का अन्योन्याश्रित सम्वन्ध होवे तो शनि अपना फल शुक्र की महादशा में देता है।

(१०) उच्चस्थ मारक शनि मारता नहीं है परन्तु यदि वह अमारक शुक्र को देखता हो तो उस कारण से शुक्र मारक बनता है और शनि अमारक हो तो उस कारण से शुक्र पर उच्चस्थ शनि की दृष्टि शुक्र के लिए अमारक नहीं होती अर्थात् उच्चस्थ ग्रह की दृष्टि मात्र के कारण किसी भी ग्रह का मारकत्व दोष नष्ट नहीं होता।

(११) मारक शनि के साथ शुभ राहु अथवा केतु बैठा हो अर्थात् राहु अथवा केतु केन्द्र त्रिकोण में शनि के साथ हों तो राहु अथवा केतु

मारक नहीं बनते परन्तु यदि पापस्थान में राहु अथवा केतु शनि के साथ हों तो वे मारक बनते हैं।

परस्पर मित्र बृहस्पति मंगल इनके विषय में विशेष नियम :—

(१२) बृहस्पति की मंगल पर दृष्टि मंगल के लिए श्रेयस्कर होती है। पापी मंगल पर यदि पापी बृहस्पति की दृष्टि मात्र हो अर्थात् मंगल बृहस्पति से पंचमस्थ अथवा नवमस्थ हो, परस्पर दृष्टि नहीं हो अथवा अन्य सम्बन्ध नहीं हो तो मंगल मारक होने पर भी नहीं मारता, यदि वह अन्य पापी ग्रहों से सम्बन्ध नहीं करता हो तो।

(१३) पापी उच्चस्थ मंगल पर यदि उच्चस्थ बृहस्पति की दृष्टिमात्र हो (सप्तमस्थ नहीं) और मंगल पापी ग्रह से सम्बन्धित हो तो बलाबल के अनुसार मंगल नहीं मारता। उसका राहु के मुख में होने का दोष भी नष्ट होता है।

(१४) मंगल यदि लग्नस्थ अथवा अष्टमस्थ हो और किसी भी पापी ग्रह से सम्बन्ध करे तो मारता नहीं परन्तु मरण तुल्य अवस्था ला सकता है।

राहु और केतु के विषय में

(१५) राहु यदि जन्म लग्न से तृतीय, षष्ठ, अष्टम अथवा एकादश (त्रिषडाय अथवा अष्टम) स्थान में बैठा हो तथा वह चंद्रमा से द्वितीयस्थ अथवा अष्टमस्थ हो तो मारक होता है।

(१६) राहु लग्न से ३,६,८,११ स्थान गत होकर पापी शुक्र अथवा पापी बृहस्पति के साथ हो तो मारक होता है।

(१७) वृषभ राशि का राहु शुक्र के साथ हो अथवा उससे दृष्ट हो तो वह पापी होकर भी प्रायः मारता नहीं।

(१८) मीनस्थ राहु सदा अरिष्टप्रद होता है और यदि वह चन्द्रमा से द्वितीयस्थ अथवा अष्टमस्थ हो तो मारक होता है और उसी समय यदि वह जन्म लग्न से भी द्वितीयस्थ तृतीयस्थ अथवा षष्ठस्थ हो तो निश्चयपूर्वक मारक बनता है, सिर्फ लग्न से अष्टमस्थ अथवा एकादशस्थ हो तब अरिष्टप्रद मात्र होता है। अन्य ग्रहों के योगों के कारण उसका फल तारतम्य से होता

है। केतु की परिस्थिति राहु के अनुसार ही है परन्तु प्रवल मारक नहीं होता।

परिशिष्ट (२४)

मारक ग्रह की महादशा में मारक ग्रह की अन्तर्दशा के विषय में निर्णय

(१) मारक महाधीश से किसी भी प्रकार का सम्वन्ध रखने वाला पापग्रह यदि महादशाधीश का आत्म सम्बन्धी हो अथवा उसका निज सहधर्मी हो तो उसकी अन्तर्दशा में मारक महादशाधीश का मारक फल मिलता है। उसका अभाव होवे तो मारक ग्रह अपनी स्वयं की अन्तर्दशा में मारक फल देता है।

(२) आत्मसम्बन्धी ग्रह यह हैं:—

(क) परस्पर मित्र ग्रह (ख) यदि कोई नीचस्थ हो तो दूसरा ग्रह भी नीचस्थ होना चाहिये उच्चस्थ हो तो दूसरा भी ग्रह उच्चस्थ स्वराशिस्थ ग्रह होना चाहिये। (ग) एक उच्चस्थ दूसरा शुभ केन्द्राथिपति योगकारी।

(३) निज सहधर्मी ग्रह ये हैं:—

(क) त्रिषडायाधीश दूसरा अष्टमेश

(ख) समस्त केन्द्रेश (ग) समस्त त्रिकोणेश

(घ) द्वितीयेश–द्वादशेश

(४) प्रत्येक ग्रह की दो राशियां होती हैं (सूर्य चंद्रमा को छोड़कर), प्रत्येक ग्रह दो राशियों का स्वामी होता है। यदि विचाराधीन ग्रह की एक राशि त्रिषडाय में तथा दूसरी राशि त्रिकोण में हो तो उसका निज सहधर्मी ग्रह वही होगा। जिसकी भी एक राशि त्रिषडाय में तथा उसकी दूसरी राशि त्रिकोण में हो।

(५) (क) मारक ग्रह का आत्मसम्बन्धी यदि उसका सधर्मी नहीं हुआ तो उसकी अन्तर्दशा में मारक फलों में न्यूनता होती है; परन्तु यदि आत्मसम्बन्धी ग्रह मारक ग्रह का सहधर्मी भी हो तो मारक दशाधीश की दशा में और अपनी अन्तर्दशा में मारक फल अवश्य देता है।

(ख) बुध-शुक्र ये आत्मसम्बन्धी हैं। यदि वे पापी होकर परस्पर सम्बन्ध करें तो मारक बुध की महादशा में तथा शुक्र की अन्तर्दशा में

मारक फल मिलेगा। परन्तु यदि मारक अथवा अमारक शुक्र अमारक शनि से दृष्ट हो तो शुक्र को शनि का फल प्राप्त होगा। जो अमारक होगा, इसलिये ऐसी परिस्थिति में शुक्र का अन्तर मारक न होकर बुध में शनि का अन्तर मारक बनेगा।

(६) मारक शनि का सम्बन्धी चंद्रमा यदि राहु से ग्रसित हो तो शनि की महादशा और राहु की अन्तर्दशा में शनि का मारक फल मिलेगा।

(७) मारक शनि की राशि में उसके साथ बैठनेवाला राहु शनि की दशा में तथा अपनी अन्तर्दशा में मारता है।

(८) मारक राहु-केतु की अन्तर्दशा में नहीं मारता।

(९) मारक शनि अपनी दशा में तथा अपने परस्पर दृष्टादि सम्बन्ध करनेवाले ग्रह में नहीं मारता।

(१०) परस्पर मित्र मारक ग्रह अपनी दशा में तथा परस्पर मित्र की अन्तर्दशा में मारता है।

(११) परस्पर शत्रु ग्रह आत्मविरोधी होते हैं। ये अपनी दशा में तथा शत्रु ग्रह की अन्तर्दशा में मारक फल नहीं देते। यदि वे सहधर्मी होवें तो तारतम्य से फल मिलेगा।

(१२) शनि यदि अष्टमेश हो और मारक चंद्रमा अष्टमस्थ हो तो मारक शनि की दशा में चंद्रमा की अन्तर्दशा में मारक फल मिलेगा।

(१३) अष्टमस्थ चंद्रमा सदा पापवत् होता है।

परिशिष्ट (२५)

विंशोत्तरी दशा के अरिष्टप्रद ग्रह

(१) लग्नेश तथा अष्टमेश, इन दोनों के साथ बैठने वाला ग्रह••• अरिष्ट प्रद होता है।

(२) लग्नेश तथा षष्ठेश इन दोनों के साथ बैठने वाला ग्रह••••• अरिष्ट-प्रद होता है।

(३) षष्ठेश तथा अष्टमेश इन दोनों के साथ बैठनेवाला ग्रह•• अरिष्टप्रद होता है।

(४) षष्ठेश तया अष्टमेश इन दोनों के साथ बैठनेवाला केन्द्रेश सूर्य···
अरिष्टप्रद होता है।

(५) वृषभ तथा तुला लग्न की कुण्डली में मंगल (यदि उच्चस्थ न हो)···
अरिष्टप्रद होता है।

(६) जो ग्रह लग्नेश तथा अष्टमेश इन दोनों से (क) केन्द्र में (ख) आपोक्लिम में, (ग) एक से केन्द्र में, दूसरे से पणफर में; (घ) एक से आपोक्लिम में, दूसरे से पणफर में, (ङ) दोनों से पणफर में··हो तो अरिष्टप्रद होते हैं।

इनमें से योग संख्या 'क' तथा 'ख' विशेष अरिष्टप्रद है। इसी प्रकार लग्नेश तथा षष्ठेश से भी देखना चाहिये। दोनों प्रकार से फल यदि एक ही आता हो तो वह ग्रह निश्चय ही अरिष्टप्रद होता है। यदि मारक हुआ तो निश्चय ही मारता है।

उपरोक्त योग की जानकारी के लिए सुलभ कोष्ठक

	केन्द्र में	आपोक्लिम में	केन्द्र में, आपोक्लिम में
ग्रह लग्नेश से	१-४-७-१०	३-६-६-१२	१-४-७-१० वा ३-६-६-१२
यदि वही ग्रह अष्टमेश से	१-४-७-१०	३-६-६-१२	३-६-६-१२ वा २-५-८-११
यदि वही ग्रह षष्ठेश से	१-४-७-१०	३-६-६-१२	३-६-६-१२ वा २-५-८-११

(७) जो ग्रह लग्न से केन्द्र में तथा चन्द्रमा से पणफर अर्थात् २-५-८-११ इन स्थानों में होता है तो वह शुभ होता है।

(८) जो ग्रह लग्न से जितने स्थान पर हो और वही षष्ठेश से जितने स्थान पर हो—इन दोनों संख्या का अन्तर ०, १, २, ३ अथवा ७ हो तो; वह ग्रह अरिष्ट प्रद हो सकता है। यदि अन्तर १० या १२ हो तो वह ग्रह शुभ होता है। यदि मारक नहीं बनता हो तो!

परिशिष्ट (२६)

बृहत् पाराशरी होराशास्त्र में विंशोत्तरी दशाधीशों के सम्बन्ध में जो संज्ञाएँ और उनके फल कहे हैं, वे संक्षिप्त में इस प्रकार हैं।

लग्न	ग्रह	फल	ग्रह	फल	ग्रहों का योग	फल	मारकेश	फल
मेष	शनि शुक्र बुध	पापी	बृ. चं.	शुभ	श. + बृ.	अशुभ	शुक्र	निहन्ता
वृषभ	वृश्चिक शुक्र, चन्द्र	पापी	सू. मं. बु.	शुभ	शनि	राजयोगकर्त्ता	×	×
मिथुन	मंगल, वृश्चिक सूर्य	पापी	शुक्र	शुभ	श. + बृ.	राजयोगकर्त्ता शुभ	चन्द्र	निहन्ता
कर्क	शुक्र, बुध	पापी	मं. – बृ.	शुभ	मंगल मं. + बृ.	योगकर्त्ता शुभ	शनि	निहन्ता
सिंह	बुध, शुक्र	पापी	मं. + बृ.	शुभ	बृ. + बु.	अशुभ		
कन्या	मंगल, वृश्चिक, चन्द्र	पापी	शुक्र	शुभ	शु. + बु.	योगकारक शुभ	शुक्र	निहन्ता

लग्न	ग्रह	फल	ग्रह	फल	ग्रहों का योग	फल	मारकेश	फल
तुला	वृश्चिक मंगल, शुक्र	पापी	शनि, बुध	शुभ	चं. + बु.	योगकारक शुभ	मं. + वु.	निहन्ता
वृश्चिक	बुध, मंगल, शुक्र	पापी	वृ. + चं.	शुभ	सू.. + चं.	योगकारक शुभ	वृ. + शु.	निहन्ता
धनु	शुक्र	पापी	बुध, चन्द्र, वृश्चिक	शुभ	सू. + बु.	योगकर्ता शुभ	शनि	निहन्ता
मकर	मंगल वृश्चिक, चन्द्र	पापी	शु. + बु.	शुभ	शुक्र बु. + शु.	स्वयंकारक शुभ		×
कुम्भ	वृश्चिक चन्द्र, मंगल	पापी	शुक्र	शुभ	मं. + शु.	योगकर्ता शुभ	वृहस्पति	निहन्ता
मीन	शनि, शुक्र, सूर्य	पापी	बु. मं. चं.	शुभ	मं. + वृ.	योगकर्ता शुभ	मं. बु.	निहन्ता

उपरोक्त सारिणी में दिये हुए शुभ अशुभ ग्रह विंशोंत्तरी दशा के साधारणतः शुभ अशुभ ग्रह हैं। परन्तु लघुपाराशरी में जो विवेचन किया गया है उसके अनुसार कुण्डली के ग्रहों के योगज फलों में अन्तर है। उपरोक्त सारिणी के अनुसार कुण्डली के क्रूर द्वितीयेश, सप्तमेश, इनको भी मारक ग्रह माना है. जबकि लघुपाराशरी के अनुसार क्रूर ग्रह मारक नहीं होते।

लघुपाराशरी के ग्रन्थकर्ता ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि उसने पाराशरी होराशास्त्र का अनुकरण किया है और उसी के अनुसार ही इस ग्रन्थ की रचना की है। इसलिये विंशोत्तरी दशा प्रसंग में उपरोक्त सारिणी को भी ध्यान में लेना आवश्यक है।

परिशिष्ट (२७)

लघुपाराशरी ग्रन्थ में शुभ और अशुभ ग्रहों के विषय में जो विवेचन किया गया है उस बारे में विभिन्न मत इस प्रकार है।

लग्नेश:—(१) लग्नेश सदैव शुभ होता है।

❀ (२) लग्नेश यदि अष्टमेश हो तो भी शुभ होता है।

❀ (३) लग्नेश यदि षष्ठेंश हो तो किंचित् दोषयुक्त होता है।

❀ (४) लग्नेश यदि द्वादशेश हो तो किंचित् दोषयुक्त होता है।

❀ (५) लग्नेश शुभ ग्रह क्यों न हो, वह यदि निकृष्ट स्थान का स्वामी हो तो कुछ अंशों में उसमें पाप फल आ ही जाता है।

लग्नेश के सम्बन्ध में ये पाँच मत हैं। इनमें से (१) और (२) सर्व मान्य है।

द्वितीयेश-व्ययेशः—

ये स्वयं शुभ या पापी नहीं होते। इनकी अन्य राशि (सूर्य और चन्द्रमा को छोड़कर अन्य सब ग्रहों की दो-दो राशि होती हैं) जिस प्रकार हो उसके स्वामित्व के अनुसार तथा जैसे ग्रह (शुभ वा पापी स्थानाधिप–वश) होंगे इस प्रकार फल मिलता है। परन्तु द्वितीयेश तथा द्वादशेश यह मारक भी होते हैं। **इसमत में विभिन्नता नहीं है।**

त्रिकोणेश:—

(१) त्रिकोणेश सदैव शुभ होते हैं।

(२) त्रिकोणेश यदि अष्टमेश भी हो तो दोषयुक्त होता है।

(३) त्रिकोणेश–अष्टमेश भी हो और पंचम स्थान में स्थित हो, तो वह पापी नहीं होता।

(४) त्रिकोणेश, व्ययेश भी हो तो वह शुभ भी होता है।

(५) त्रिकोणेंश यदि द्वितीयेश हो तो मारक भी होता है; परन्तु भाग्योदय कारकत्व उसमें होता है।

(६) त्रिकोणेश यदि केन्द्रेश भी हो तो वह योगकारक होता है।

(७) त्रिकोणेश यदि षष्ठेश भी हो तो वह दोषयुक्त होता है। परन्तु यदि वह पंचम स्थान में बैठा हो तो दोषयुक्त नहीं होता।

यह सात सिद्धान्त त्रिकोणेश के बारे में है। इनमें से (१) और (६) सर्वमान्य हैं। २, ३, ४, ५, ७, इनमें मतान्तर है।

केन्द्रेश :—

❀ (१) शुभग्रह केन्द्र के स्वामी हों तो शुभ, पापग्रह केन्द्र के स्वामी हों तो पापी; परन्तु सप्तमेश हमेशा मारक होता है।

(२) शुभग्रह यदि केन्द्र के स्वामी हों तो वे शुभ नहीं होते। पापग्रह केन्द्र के स्वामी हों तो वे अशुभ फल नहीं देते। किन्तु सप्तमेश मारक होता है।

❀ (३) शुभग्रह यदि केन्द्र के स्वामी हों तो पाप फल देते हैं। पापग्रह यदि केन्द्र के स्वामी हों तो वे अशुभफल नहीं देते। किन्तु सप्तमेश मारक होता है।

केन्द्रेश के वारे में ये तीन विभिन्न मत हैं।

अष्टमेश :—(१) अष्टमेश घोर पापी होता है; परन्तु अष्टमेश यदि लग्नेश भी हो तो, वह पापी नहीं होता।

❀ (२) सूर्य और चन्द्रमा यदि अष्टमेश हो तो उन्हें अष्टमेश होने का दोष नहीं रहता।

❀ (३) सूर्य अथवा चन्द्रमा अष्टमेश होकर अष्टमस्थ ही हों तो दोष नहीं होता।

❀ (४) सूर्य अथवा चन्द्रमा अष्टमेश हो तो वह पूर्ण रूप से दोषयुक्त नहीं होता, और पूर्णरूप से दोषहीन भी नहीं होता। किंचित दोषयुक्त होता है।

❀ (५) यदि त्रिकोणेश, अष्टमेश भी हो और अष्टम स्थान में बैठा हो तो वह दोषयुक्त नहीं होता। किन्तु शुभ होता है।

ये पाँच मत अष्टमेश के वारे में है। (१) सर्वमान्य है, अन्यों में मतान्तर है।

त्रिषडायाधीश :—

❀ (१) तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थानों के स्वामी पापी होते हैं।

❀ (२) तृतीय, षष्ठ और एकादश स्थानों के स्वामी शुभग्रह हों तो शुभ और पापग्रह हों तो पापी।

❀ (३) तृतीय स्थान का स्वामी तृतीय स्थान में हो तो शुभ, षष्ठ स्थान का स्वामी षष्ठ स्थान में हो तो शुभ, एकादश स्थान का स्वामी, एकादश स्थान में हो तो शुभ होता है। फिर वह शुभ ग्रह हो या अशुभ (पाप) ग्रह हो।

त्रिषडायाधीश के बारे में ये तीन मत हैं।

उपरोक्त सब विभिन्न मत जो दिये गये हैं वे सब उद्भट विद्वानों के मत हैं।

जो मत सामान्यतः मान्य नहीं है उनको ❀ ऐसा चिन्ह दिया है।

परिशिष्ट (२८)

जातक-पारिजात ग्रन्थ के १८ अठारहवें अध्याय में वर्णन किया हुआ विंशोत्तरी फलादेशों का सारांश

(१) दशापति यदि शुभग्रह के साथ लग्न में हो अथवा दशापति लग्नस्थ हो, अथवा लग्न से ३–६–१०–११ इन स्थानों में से किसी भी स्थान में दशाधीश का मित्र ग्रह बैठा हो तो उस दशाधीश की दशा शुभ होती है।

(श्लोक ६.)

(२) दशाधीश की उच्च राशि में अथवा उसके मित्रग्रह की राशि में अथवा दशाधीश से ३–५–७–९–१०–११ स्थानों में से किसी भी एक स्थान में चन्द्रमा हो तो दशाधीश की दशा शुभफल देती है। ऐसी स्थिति में चन्द्रमा जिस भाव में हो दशाधीश की दशा में उस भाव के अनुसार फल देता है।

(श्लोक ७–८)

(३) दशाधीश लग्न में अथवा अपने मित्र ग्रह की राशि में हो और वह षष्ठ, दशम वा लाभ स्थान में हो और उसके मित्र राशि में अथवा उच्च राशि में अथवा उससे ५–७–९ स्थान में अथवा उपचय (३–६–१०–११) स्थान में चन्द्रमा हो तो दशाधीश की दशा में शुभफल प्राप्त होता है (श्लोक १४)

(४) शुभ ग्रह से अथवा मित्र ग्रह से युक्त अथवा दृष्ट ग्रह यदि स्वगृह में, मित्र क्षेत्र में अथवा उच्चस्थ हो तो उसकी दशा शुभ होती है।

(श्लोक १५)

(५) परस्पर मित्र ग्रहों की परस्पर दशा, अन्तर इनमें शुभ फलों की प्राप्ति होती है। परस्पर शत्रु ग्रहों की परस्पर दशा और अन्तर इनमें अनिष्ट होता है। (श्लोक १६)

(६) दशाधीश जिस भाव में हो, वह यदि शुभफलद हो तो उस भाव के सम्बन्ध में शुभ फल देता है। पाप फलद हो तो उस भाव का नाश करता है। शुभ ग्रहों में शुभ, पापग्रहों में पाप फल मिलता है। शुभ पाप योग के कारण मिश्र फल मिलता है। (श्लोक १८)

(७) ग्रह जिस कार्य का कर्ता है, जिस भाव का वह कारक है। जिस धातु का वह अधिपति है, ग्रह की शुभ दशा में तत्तद् सम्बन्धों में शुभ फल देता है। पापी हो तो हानि होती है (श्लोक १९, २०, २१)

(८) षष्ठेश, अष्टमेश अस्तग्रह, राशि संधिगत ग्रह कोई भी राशि का ३०° गत ग्रह, नीचस्थ ग्रह, नीचस्थ ग्रह, भुक्त ग्रह, राहु राशिपति ग्रह से युक्त ग्रह, अधि शत्रु ग्रह की राशि में स्थित ग्रह, बाध स्थान स्थित ग्रह अथवा बाधक स्थानाधिपति युक्त ग्रह, परस्पर अष्टम, षष्ठ स्थान गत ग्रह, पीडित, खल ग्रह अपनी-अपनी दशा में अशुभ फल देते हैं। (श्लोक २५ से ३५)

(९) शीर्षोदय राशिस्थ ग्रह का शुभाशुभ फल दशा के आरम्भ में, पृष्टोदय राशिस्थ ग्रह की दशा के शुभाशुभ फल दशा के अन्त में तथा उभोदय राशि स्थित ग्रह की दशा के फल दशा के सम्पूर्ण समय तक सर्वत्र बराबर मिलता है।

शीर्षोदय राशि :—मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ }
पृष्टोदय राशि :—मेष, वृषभ, कर्क, धनु, मकर } है
उभोदय राशि :—मीन }

(१०) जातक का अल्पायु योग हो तो उसके जन्म नक्षत्र से तृतीय नक्षत्र के स्वामी की दशा में, मध्यमायु योग हो तो पंचम नक्षत्र के स्वामी की दशा में; पूर्णायु योग हो तो उसके जन्म नक्षत्र से आठवें नक्षत्र के स्वामी की दशा में निधन होता है। (श्लोक ३५)

(११) दिन में जन्म हो तो सूर्य स्पष्ट + शनि स्पष्ट = जो राश्यादि स्पष्ट हो तत्तुल्य नक्षत्र के स्वामी की दशा, और रात्रि में जन्म हो तो चंद्रस्पष्ट + राहु स्पष्ट = राश्यादितुल्य नक्षत्र के स्वामी की दशा में निधन होता है।

(श्लोक ३६)

(१२) लग्नेश की महादशा में अन्तर्दशा आने पर धननाश, इष्ट बंधु विरोध आवश्यक होता है। इसी प्रकार जिस भाव का अधिपति (यदि पापी हो) हो, उसकी दशा में पापी ग्रह की अन्तर्दशा आने पर उस भाव का अनिष्ट होता है (श्लोक ४२)

(१३) षष्ठेश व अष्टमेश की परस्पर दशान्तर्दशा में पदच्युति होती है। यदि ये दोनों एकत्र बैठे हों तो परस्पर दशान्तर्दशा में निधन की सम्भावना रहती है। तथा जिस भाव में बैठे हों उन भावों का अनिष्ट करते हैं। आयुष्य की दृष्टि से इनकी दशान्तर्दशायें अच्छी नहीं होती।

(१४) राहु की दशा में शुभ ग्रहों का अन्तर शुभफलद होता है। सूर्य को छोड़कर अन्य पापान्तर पापफलद होता है। कर्क, वृषभ, मेष इन राशियों में राहु हो तो लाभ, विद्या विनोद, राजमान्यता, स्त्री, नौकर-चाकर, इनका सुख प्राप्त होता है। कन्या, मीन, धनु राशियों में स्त्री पुत्र लाभ होता है परन्तु दशा के अन्त में सर्वनाश होता है।

वृषभ, सिंह, कर्क, कन्या राशिस्थ राहु की दशा में राजा के समान सुख प्राप्त होता है। राहु की दशा में चन्द्रमा का अन्तर शुभ होता है परन्तु ग्रंथान्तरों में स्त्री लाभ के आन्तरिक अन्य विषयों को अशुभ होता है।

(श्लोक १०३–१०६)

राहु की दशा में आरम्भ में दुःख, मध्यम में सुख व अन्त में पिता का नाश और पदच्युति होती है।

विशेष :—जातक पारिजात में जो ग्रहों का उपरोक्त फल कहा है वह साधारण फल है। यहाँ पर सूर्य, मंगल, पापयुत बुध, क्षीण चन्द्र, शनि, राहु और केतु—ये पापीग्रह हैं और चन्द्रमा, बुध, गुरु, शुक्र ये शुभ ग्रह हैं। यहाँ पर लघु पाराशरी की ग्रहों की शुभ, पापी संज्ञाएँ लागू नहीं होती।

परिशिष्ट (२९)

भावकुतूहल ग्रन्थ में वर्णित विंशोत्तरी दशा।

अष्टमर्क्षं तृतीयं च बुधैरायुरुदाहृतम्।
द्वितीयं सप्तमं स्थानं मारकस्थानमुच्यते ॥७६॥

जन्म लग्न से अष्टम स्थान तथा तृतीय स्थान ये आयुस्थान हैं। तथा जन्मलग्न से द्वितीय एवम् सप्तम मारक स्थान माने गये हैं।

मारकेश दशांष्मके मारकस्थस्य पापिनः।
पाके पापयुजो पाके संभवे निधनं दिशेत् ॥७७॥

मारकेश पापग्रह होकर अष्टम स्थान में हों अथवा मारकेश पापग्रहयुक्त अथवा पापग्रह भाव ३–६–८–११ इनके स्वामियों से सम्बन्धित हो, अथवा पापग्रहों की दशा में पापग्रहयुक्त मारकेश सम्बन्ध रखता हो तो उसकी दशा या अन्तर्दशा में मृत्यु होती है।

असंभवे व्ययाधीशदशायां मरणं नृणाम् ।
अभावे व्ययभावेशसम्बन्धग्रहभुक्तिषु ॥

मारकेश अथवा मारकग्रह इनकी दशा में सम्भव नहीं हो यानि मारक दशा भुक्त हो गई हो अथवा बहुत लम्बे समय के बाद आनेवाली हो, तो द्वादश-भाव के स्वामी की दशा में मनुष्य का मरण जानना। व्ययभावेश का भी अभाव हो तो उससे सम्बन्धित हो अथवा मारकेश से जो सम्बन्ध करता हो, उसकी दशा में मृत्यु जानना।

तद्भावेष्टमेशस्य दशायां निधनं पुनः।
दुष्टतारापतेः पाके निर्याणं कथितं बुधैः॥

उपरोक्त कहे हुए सब योगों का अभाव हो तो अष्टमेश की दशा में मरण जानना अथवा षष्ठ, अष्टम, द्वादश स्वामी की दशा में अथवा पापग्रह की दशा में पंडितों ने मृत्युयोग कहा है।

स्पष्टीकरण—

उपर्युक्त श्लोकों में अभाव शब्द का तात्पर्य ऐसा दिखाई पड़ता है कि यदि कोई भी आयुखण्ड में उक्त मारक ग्रहों से जिनकी दशा मारक खंड में प्राप्त होती हो, तो उस मारक ग्रह की दशा में मृत्यु होती है। परन्तु इस सिद्धांत से लेखक सहमत नहीं है। लघुपाराशरी में स्पष्ट लिखा हुआ है कि "कल्पनीयं बुधैर्नृणां मारकाणामदर्शने" कुंडली में मारक ग्रह प्राप्त नहीं हो तो मारकेश से सम्बन्धित ग्रहों की दशा में निधन होता है। कर्क लग्न की कुंडली में द्वितीयेश सूर्य तथा सप्तमेश शनि मारक नहीं होते। वहाँ बुध मारक होता है। कारण वह पापी है।

दूसरी स्थिति ऐसी है कि जातक के जन्म से पूर्व ही मारक की दशा समाप्त हो गयी हो तब दूसरा मारक सोचना पड़ता है-(ढूँढना पड़ता है)। मेष लग्न से शुक्र डबल मारक है (अर्थात् वह द्वितीय और सप्तम इन दोनों मारक स्थानों का स्वामी होता है)। किसी का जन्म कृत्तिका नक्षत्र में हुआ हो तो उसे शुक्र की दशा प्राप्त होगी ही नहीं। यहाँ पर वृहस्पति मारक होगा, यदि वह अन्य किसी भी पापग्रह से सम्बन्धित हो तो। यदि वही वृहस्पति नवम-स्थान में सूर्य के साथ हो तो मारक नहीं बनता। यहाँ पर (मेष लग्न में) मंगल यदि लग्नस्थ तथा अष्टमस्थ हो और अन्य किसी भी पापग्रह से सम्बन्धित नहीं हो तो वह भी मारक नहीं होगा। यहाँ पर बुध (षष्ठेश है) पापी है, यदि वह शुक्र के साथ हो अथवा वृहस्पति शुक्र के साथ द्वितीय या सप्तम स्थान में हो तो वृहस्पति मारक बन सकता है। इसी प्रकार मारक का निर्णय

लेने में अनेक परिस्थिति के बारे में (नियमों पर) विचार करना पड़ता है। जहाँ "अलाभे", "असंभवे" शब्दों का प्रयोग हुआ वहाँ लेखक के मत में ऐसा ही भावार्थ लेना चाहिए कि यदि कुंडली में कोई मारकेश संज्ञक ग्रह मारक गुणों से संपन्न नहीं हो तो उसकी दशा में परिस्थितिवश मृत्यु होती है। कारण मारक स्थान अथवा द्वादश, अष्टम स्थान का अधिपति सिर्फ (केवल) होने से कोई भी ग्रह मारक नहीं बनता। इसलिये कोई ग्रह मारक गुणों से युक्त हो तो भी उसकी दशा जन्म के पूर्व में भुक्त हो गयी, इस कारण से उसे "अलाभे" ऐसा ही कहना पड़ा, आयुष्य बल होने पर संदिग्ध मारक ग्रह अरिष्टप्रद मात्र होते हैं।

मन्दश्चेत्पापसंयुक्तो मारकग्रहयोगतः।
तिरस्कृत्य ग्रहान् सर्वान् निहन्ता पापकृद्यदा॥

शनि यदि पापग्रह से युक्त होकर मारकेश के साथ सम्बन्ध करे तो सब ग्रहों को तिरस्कृत करके स्वयं मारक बनता है।

यद्यद्भावगतो राहुः केतुश्च जनने नृणाम्।
यद्यद्भावेशसंयुक्तस्तत्फलं प्रदिशेदलम्॥

जन्म समय में राहु और केतु जिन स्थानों में होते हैं और जिन भावों के स्वामियों से युक्त होते हैं, उनभावों के फल वे करते हैं।

विंशोत्तरी मारक ग्रहों के सम्बन्ध में भावकुतूहल ग्रंथ का मत

"अल्पमध्यमपूर्णायुः प्रमाणमिह योगजम्।
विज्ञाय प्रथमं पुंसां ततो मारकचिन्तना॥

मारकेश का निर्णय लेने के पूर्व अर्थात् कौन से मारक ग्रह की दशा में जातक का निधन होगा—इसका निर्णय करने के पूर्व ज्योतिषी को जातक की कुंडली में के ग्रहों पर से अल्प, मध्यम तथा दीर्घायु योग इनकी जानकारी आवश्यक है। कारण आचार्यों का मत है कि आयुखंड (आयुकक्षा) के अन्दर ही जातक का निधन होता है। (प्रथम जातक के उत्पन्न योगों पर से अल्प, मध्य और पूर्ण आयु की जानकारी करके फिर मारक का विचार करना चाहिये। जैसे पूर्णायु योग हो तो मारक योग केवल अरिष्टप्रद होगा अर्थात् मारक दशा पूर्वोक्त आयुतुल्य होने से मृत्युकारक समझना)।

स्पष्टीकरण—

इस सिद्धांत के अनुसार तीन प्रश्न उपस्थित होते हैं—

(१) आयुष्य के निर्णय के सम्बन्ध में जो रीतियां है, उनके अनुसार यदि जातक का आयुखंड अल्प हो और अल्पआयु खंड में मारक ग्रह नहीं आता

हो तो उस खंड में शुभ ग्रहों की भुक्ति में ही निधन होगा क्या ? लघु-पाराशरी में एक जगह ऐसा कहा हुआ है कि—"क्वचित् शुभानां च दशा अष्टमेशदशासु च" यहां पर क्वचित् शब्द का अर्थ ऐसा है कि वहुत ही कम स्थिति में शुभदशा में निधन होता है। अल्पायुखंड वाली कुंडलियां ऐसी बहुतसी होंगी जिनके आयुखंड में मारकेश नहीं आता।

(२) यदि योगज (योगकारक) अथवा अन्य आयुर्दाय की रीति के अनुसार किसी की आयु दीर्घायु आती हो और उसकी अल्पावस्था में अथवा मध्यावस्था में प्रवल मारकेश आता हो तो मारकेश अरिष्टप्रद होगा क्या ?

जिस जातक के मध्यावस्था के बाद दीर्घायु खण्ड में मारक नहीं आता हो तो उसका निधन दीर्घखंड में आने वाले शुभ ग्रह की दशा में आवेगा क्या ?

(३) किसी की मध्यमायु का अनुमान किया गया हो और उसकी अल्पा-वस्था में अथवा दीर्घावस्था में मारक आते हों तो क्या स्थिति होगी ?

लेखक के अनुभव से ऐसा देखने में नहीं आया है कि प्रवल मारक ग्रहों का फल जो अनुमान किया जाता है, वह अल्प, मध्य तथा दीर्घाग्रु खंड पर ही आश्रित है। परंतु ऐसा देखने में आया है कि दीर्घायु योग होने पर मध्य खंड में आने वाले साधारण मारकेश अरिष्टप्रद मात्र होते हैं। परंतु यदि अल्पावस्था में कोई असंदिग्ध प्रवल मारक ग्रह आता है तो उसकी दशा में मारक फल ही होता है। उदा० मारकेश के साथ शनि जव कभी भी होवे तव उसकी दशा में निधन होगा ही, फिर उसकी दशा जातक के अल्प भाग में मध्य भाग में, दीर्घ भाग में क्यों न पड़ती हो। जहां मारकेश अकेला होता है वहां आयु बल का काम करता है।

आयुष्य की सीमा के सम्वन्ध में आचार्य के तीन मत हैं।

(१) ३० वर्ष तक अल्पायु, ३०-६० वर्षतक मध्यायु तथा ६० से ९० वर्ष तक दीर्घायु बाद अपरिमित आयु।

(२) ३६ वर्ष तक अल्प; ३६ से ७२ तक मध्यमायु, ७२ से १०८ वर्ष तक दीर्घायु। १०८ वर्ष उपरान्त अपरिमित आयु।

(३) ४० वर्ष तक अल्पायु, ४० से ८० वर्ष तक मध्यायु, ८०-१२० वर्ष तक दीर्घायु, १२० वर्ष के बाद अपरिमित आयु।

अधिकांश १०८ वर्ष पर्यन्त ही आयुष्य की सीमा मानी जाती है।

आयुष्य का निर्णय करने के लिए भी तीन प्रधान रीति हैं।

(१) ग्रहों का योगबल (२) राशि की परिस्थिति (३) ग्रहों की उच्चादि अवस्था।

आयु निर्णय करने के लिए जैमिनीय पद्धति की चर-स्थिर-द्विस्वभाव राशियों की स्थिति का उपयोग करते हैं। इस रीति से विचार करने के नियमों में बहुत से अपवाद हैं। ग्रहों के उच्च बल पर से लेखक ने अपना एक नियम लिखा है। इस आधार पर कई एक कुंडली का आयु बल सही बैठा है, परंतु ऐसा दावा करते नहीं आता कि इस रीति द्वारा निश्चित किया गया आयु फल इत्थंभूत है। उसमें भी अपवाद हैं। परंतु साधारणतः वह रीति सरल, सुलभ, उपयोगी सिद्ध हुई है। ग्रहों की योगावली बहुत ही बड़ी है। ग्रंथों में अल्पायु, मध्यायु, दीर्घायु योगों की भरमार है परंतु लेखक की दृष्टि में अधिकांश योग तो ऐसे हैं कि उनमें से योग किसी की कुंडली में क्वचित ही दिखायी पड़ते हैं। भावकुतूहल ग्रंथ में अल्पादि आयुष्य का निदान करने की एक सोधी और सरल रीति दी है। वहां कहा गया है कि, लग्नेश यदि सूर्य का मित्र हो तो जातक दीर्घायु होता है। इस कथन के अनुसार, मेष, कर्क, वृश्चिक, धनु, मीन लग्न में जन्म लेने वाले सभी व्यक्ति दीर्घायु होने चाहिये। यह बात तर्क तथा प्रत्यक्ष अनुभव के विरुद्ध होने से मान्य नहीं हो सकती। लेखक का अपना अनुभव है कि फलित ज्योतिष में किसी एक बंधे हुए नियम के द्वारा आयुर्दाय का सही निदान अथवा निर्णय करना एक भगीरथ प्रयत्न है। उसी प्रकार मारकेश का निर्णय करना अति बड़े और दीर्घकाल के अनुभव का काम है। कुछ कुंडलियों में मारक स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं और कई कुंडलियों में मारक की ऐसी कांट-छाट होती है कि उनमें से कौनसा ग्रह मृत्यु देगा ऐसा निर्णय करना कठिन होता है। लघु पाराशरी का मनन करने के बाद उसके आधार पर विंशोत्तरी ग्रहों के मारक ग्रहों में से जो असंदिग्ध मारक दशा अल्पावस्था में आती हो और उस समय कालचक्र दशा में भी मारक राशि की आती हो तो जातक की मृत्यु निश्चय पूर्वक होती है, ऐसा लेखक का अपना अनुभव है। फिर जातक की कुंडली में कुछ ग्रह असंदिग्ध मारक होते हैं और कुछ संदिग्ध। संदिग्ध के विषय में आयु बल काम में आता है। जिस प्रकार साध्यरोगी वैद्य द्वारा बचाया जाता है, उसी प्रकार कुंडली का संदिग्ध अथवा अकेला मारक ग्रह (किसी से सम्बन्ध नहीं करने वाला मारक ग्रह) कुंडली के दीर्घायु बल के कारण मृत्यु नहीं दे सकता। असाध्य रोगी का सुख पूर्वक अन्त करने के अलावा वैद्य उसे जीवन प्रदान नहीं कर सकता, उसी प्रकार दीर्घायु कुंडली में यदि कोई असंदिग्ध प्रबल मारक ग्रह अल्प अथवा मध्य काल खंड में पड़ता हो तो दीर्घायु कुंडली का बल जातक की जीवन शक्ति की वृद्धि करने का असफल

प्रयास करता रहता है। फिर दैववशात् प्रबल मारक में यदि जातक बच जावे तो फिर उसकी मृत्यु शुभ ग्रह की दशा में होगी ऐसा समझना चाहिये। यहां पर "क्वचित् शुभानां" मानना चाहिये।

विंशोत्तरी दशा विचार-दशाफल

दशाप्रवेश विचार

महादशा तथा अन्तर्दशा के प्रवेश समय में अर्थात् दशा अन्तर्दशा जिस समय प्रवेश हो—उस समय के स्पष्ट ग्रह लग्न और भावचलित आदि करना और उस पर से दशान्तर्दशा शुभाशुभ फल का ज्ञान करना।

दशा प्रवेश समय की लग्न कुंडली में दशेश (जिस ग्रह की दशान्तर्दशा प्रवेश हो वह) अथवा शुभ ग्रह लग्न में तथा उपचय ३।६।१०।११ स्थान में गया हो तो वह दशा श्रेष्ठ फल देने वाली होती है।

दशा प्रवेश समय के लग्न में यदि जिस ग्रह की दशा प्रवेश हुई हो उस ग्रह का और उसके मित्र ग्रह का वर्ग हो अथवा शुभ ग्रहों का वर्ग हो तो वह प्रवेश हुई दशा शुभ फल देने वाली समझनी चाहिये।

जिस दिन जिस समय दशा प्रवेश हो उस समय का चन्द्रमा यदि स्वराशि (कर्क) का हो तो मान, धन और सुख का लाभ होगा। यदि सिंह राशि का हो तो अन्न का सुख होगा; मंगल की मेष-वृश्चिक का हो तो कलह (लड़ाई-झगड़ा) और ऋण (कर्जा) बढ़ेगा, बुध की राशि मिथुन-कन्या का हो तो विद्या की और धन की प्राप्ति होगी; गुरु की राशि धनु-मीन का हो तो कृषि (खेती) मान, धन, और सुख की वृद्धि होगी, शुक्र की राशि वृषभ-तुला का हो तो कुदार (खराब स्त्री) से संग और मान यश, धनादिक प्राप्ति होगी। शनि की राशि मकर और कुम्भ का हो तो सेवा से सुख होगा (सेवा करने, कराने का सुख मिलेगा)।

दशा प्रवेश समय का चन्द्रमा बलवान होकर यदि प्रवेश समय लग्न कुंडली में त्रिकस्थान ६।८।१२ को छोड़कर अन्य स्थान १।२।३।४।५।७।९।१०।११ में गया हो तो वह दशा श्रेष्ठ फल देने वाली जाननी चाहिये।

जिस ग्रह की दशा प्रवेश हो वह मुख्य दशा का स्वामी यदि दशा प्रवेश समय में अपनी उच्च राशि, मित्र राशि तथा स्वराशि में स्थित होकर दशा प्रवेश कुण्डली में जिस भाव में गया हो, उस भाव स्थित राशि से उपचय ३।६।१०।११ तथा त्रिकोण ५।९ स्थान में तथा सप्तम भाव में चन्द्रमा गया हो तो चन्द्रमा

दशा का फल (जिस ग्रह की दशांतर्दशा प्रवेश हो उसका फल) शुभ देगा और इसके विपरीत (१।२।४।५।८।६।१२ स्थान में गया हो) तो नेष्ट कल होगा ।

दशा प्रवेश के समय चन्द्रमा जिस राशि में गया हो, वह राशि जन्म-कुंडली में जिस भाव में गई हो इस भाव जनित जो शुभ अथवा अशुभ फल चन्द्रमा का है, उसी के समान शुभाशुभ फल जानना ।

उदाहरण—कल्पना करो वह चन्द्रमा धन भाव में गया है और धन भाव में चन्द्रमा शुभ फल दाता है । तो दशाप्रवेश समय में भी वह चन्द्रमा शुभ फल दाता होगा । एवम् वह चन्द्रमा अशुभ फल दाता है तो दशा प्रवेश में भी अशुभ फल देगा ।

विपत्ति करने वाली (अशुभ फल देने वाली) दशा प्रवेश हो उस समय यदि कोई ग्रह सर्व ग्रहों से अधिक बलवान होकर शुभ ग्रहों के वर्ग में गया हो और शुभ तथा अपने दृष्ट हो तो विपत्ति नहीं होगी (अशुभ फल नहीं होगा) एवम् उपरोक्त लक्षण वाला सर्वाधिक बली ग्रह अशुभ फलदायक दशा के स्वामी को देखता हो तो अवश्य अशुभ फल नहीं होगा ।

गोचरवशात्-दशा अन्तर्दशानाथ–इनके भ्रमण के फल

(१) जिस ग्रह की दशा हो और वह दशानाथ गोचर से अपनी स्वराशि या अपनी उच्च राशिमें से भ्रमण करेगा या अपनी नीच या शुभ राशिमें से भ्रमण करेगा तब अच्छे या बुरे फल देता है ।

(२) जब दशानाथ गोचर से किसी गोचर शुभ ग्रह जैसे गु. बु. शु. इनसे गोचर में युति करे तब अच्छा फल मिलेगा ।

(३) दशानाथ की स्वराशि या उच्च राशि में गोचर शुक्र या सूर्य भ्रमण करता है तब अच्छा फल मिलता है ।

(४) जब दशानाथ गोचर से दशम या लग्न में से भ्रमण करता है तब अच्छा फल मिलता है ।

(५) जब दशानाथ शुभ ग्रह हो और वक्री हो तब अच्छा फल मिलता हैं । किन्तु वह दशानाथ अस्तंगत नहीं होना चाहिये ।

(६) जब दशानाथ से तीसरा, छठा, ग्यारहवां राहु या शनि गोचर से भ्रमण करे तब अच्छा फल मिलता है ।

(७) कुंण्डली में दशानाथ जिस भाव में हो, उस भाव से द्वितीय, पंचम, सप्तम और नवम भाव में गुरु आता है तब अच्छा फल मिलता है ।

(८) जब दशानाथ कुंडली से या गोचर से गोचरी के दो शुभ ग्रहों के बीच में आता है तब अच्छा फल मिलता है ।

इन अनुभवों का विचार दशा फल विचार के समय करना श्रेयस्कर होता है।

जिस ग्रह की दशा चल रही हो उस दशानाथ की उच्च राशि में से गुरु भ्रमण करता हो तब जातक का समय अच्छा व्यतीत होता है और जब भ्रमणवशात बृहस्पति उस दशानाथ की नीच अथवा शत्रुराशि में से भ्रमण करता है, तब दशा के फल अच्छे नहीं प्राप्त होते।

ऐसे समय में गोचर से जो ग्रहों के फल मिलने वाले होते हैं वे फल उपरोक्त फलों के कारण लुप्त हो जाते हैं—याने ऐसे समय गोचर फलों की अपेक्षा गुरु के गोचर के फल ही अनुभव में आते हैं।

दशा के लिए और ग्रहों की अंतर्दशा के लिए भी गुरु, रवि के गोचर से भ्रमण के फल यहाँ लागू हो सकते हैं।

दशातत्त्वम्

(१) जब ऐसे ग्रह की दशा हो जो राहु के साथ बैठा हो। उस दशा में अरिष्ट होता है।

(२) जब लग्नेश अष्टम स्थान में हो तो उसकी दशा में बहुत दुःख होता है।

(३) जब ग्रह दिग्बल से युक्त हो तो उसकी दशा में बड़ी प्रतिष्ठा उसी दिशा में मिलती है, जिसका वह स्वामी हो।

(४) जब पाप ग्रह की महादशा हो, शुभ ग्रह की अन्तर्दशा हो तो आरंभ में कष्ट होता है और अंत में सुख मिलता है।

(५) जब शुभ ग्रह की महादशा हो, पाप ग्रह की अन्तर्दशा हो तो आरंभ में सुख होता है और अंत में भय होता है।

(६) जब क्रूर ग्रह की महादशा हो, उसमें क्रूर ग्रह की अन्तर्दशा, यदि वे दोनों आपस में शत्रु हों तो जीवन में संदेह होता है।

(७) जब दो ग्रह एक दूसरे से छठे अथवा आठवें स्थान में स्थित हों तो उनके दशांतर में बड़ा भय होता है!

(८) जब मंगल की महादशा में शनि की अन्तर्दशा हो तो मनुष्य की मृत्यु संभव है।

(९) जब पाप ग्रह क्रूर राशि में स्थित होकर छटे अथवा आठवें स्थान में हों, शुक्र अथवा सूर्य की उस पर दृष्टि हो तो अपनी दशा में मृत्यु करता है।

(१०) जब लग्नेश की दशा में, लग्नेश के शत्रु की अन्तर्दशा हो तो अकस्मात् मृत्यु हो जाती है। ऐसा सत्याचार्य कहते है।

(११) जिस ग्रह की महादशा हो उससे ६।८।१२ स्थानों में स्थित ग्रह की अन्तर्दशा शुभ नहीं होती है। शेष स्थानों में स्थित शुभ ग्रह की महादशा तथा पाप ग्रह की अन्तर्दशा कष्ट देने वाली होती है।

(१२) जब कर्म, लग्न, लाभ, पराक्रम सुख तथा त्रिकोण स्थित शुभ ग्रह हो और वह स्वगृही हो अथवा उच्च का हो, अथवा मित्र घर का हो, अथवा मित्र नवांश का हो तो उस ग्रह की दशा शुभ होती है। परन्तु जो ग्रह ८-१२-६-७-२ स्थानों में अथवा अष्टमेश हो अथवा शत्रु के घर का हो, पाप ग्रह हो, अथवा नीच का हो अथवा अस्तंगत हो उसकी दशा शुभ नहीं होती है!

(१३) जब मित्र ग्रह की महादशा में, मित्र ग्रह की अन्तर्दशा हो, अथवा शुभ ग्रह की महादशा में शुभ ग्रह की अन्तर्दशा हो तो वह शुभ होती है। परंतु जब शत्रु ग्रह की महादशा में शत्रु ग्रह की अन्तर्दशा हो, अथवा पाप ग्रह की महादशा में, पाप ग्रह की अन्तर्दशा हो तो शुभ नहीं होती है। यदि शुभ तथा पाप ग्रह अथवा शत्रु तथा मित्र ग्रहों की दशा तथा अन्तर्दशा मिश्रित हो तो मिश्रित फल होता है।

(१४) जिस ग्रह की दशा तथा अन्तर्दशा हो, जिस भाव में वह ग्रह बैठा हो अथवा जिस ग्रह की उस पर दृष्टि हो, उस ग्रह का जैसा द्रव्य हो, जैसा धातु हो, जैसी प्रकृति हो इन सब बातों को विचार कर, उसकी दशा में वैसा ही फल कहना चाहिये। जब पाप ग्रह की महादशा में पापग्रह की अन्तर्दशा हो तो बड़ी विपत्ति होती है। परंतु उस समय में बलवान शुभ ग्रह मित्र के घर में बैठा हो अथवा मित्र ग्रह उसको देखता हो तो पूर्वोक्त विपत्ति का नाश हो जाता है।

(१५) जब शुभ ग्रह की दशा हो तो अंतरात्मा प्रसन्न रहता है, मनुष्य को नाना प्रकार के सुख मिलते हैं, तथा द्रव्य की प्राप्ति होती है। एवम् अशुभ दशा में आपत्ति होती है। पूर्वोक्त सुख तथा दुःख तथा स्वप्न—आदि का विचार कर के दशा का फल कहना चाहिये।

दशा देखने के नियम

(१) उच्चगतग्रह दशाफल :—जब उच्च ग्रह की दशा होती है तो संसार में यश फैलता है। नये वस्त्र आभूषणों से सुख मिलता है। सुन्दरी स्त्री से समागम होता है, इन्द्र के समान ऐश्वर्य मिलता है। वाहन सुख मिलता है तथा शत्रुओं का नाश होता है।

(२) स्वक्षेत्रगतग्रह दशाफल :—यदि स्वक्षेत्री ग्रह की दशा हो तो नये वस्त्र, नया घर तथा विहार का सुख मिलता है। भूमि लाभ होता है। यश फैलता है तथा शत्रुओं का नाश होता है।

(३) मित्रक्षेत्रगतग्रह दशाफल :—यदि मित्रराशि का ग्रह हो तो उसकी दशा में स्त्री, पुत्र तथा मित्रों से अत्यंत सुख मिलता है। राज्य से विशेष आदर प्राप्त होता है।

(४) रिपुराशिस्थ ग्रह दशाफल :—जब शत्रुराशि स्थित ग्रह की दशा आती है तो कामदेव का वेग बढ़ता है। शत्रु भय होता है। शरीर कृश हो जाता है। धन का नाश होता है। लाभ में बाधा होती है तथा चंचल प्रकृति होती है।

(५) अवरोहिणी दशाफल :—जो ग्रह अपनी उच्चराशि को छोड़कर नीच राशि के तरफ जाने वाला है, अर्थात अपनी उच्च राशि के आगे की नीच राशिपर्यंत छः राशि में हो तो उसकी दशा अवरोहिणी नाम की होती है। यह दशा कष्ट देनेवाली होती है। इस दशा में जातक को, रोग, परेशानी, मानसिक व्यथा, धनहानि आदि होते हैं। अवरोहणी ग्रह विवरण इस प्रकार है :—सूर्य–वृषभ, चंद्र–मिथुन; मंगल–कुंभ, बुध-तुला; गुरु–सिंह; शुक्र–मेष; शनि–वृश्चिक, राहु–कर्क; केतु–मकर।

(६) आरोहिणी दशाफल :—जो ग्रह अपनी नीचराशि को छोड़कर उच्च-राशि की ओर जाने वाला है, अर्थात् अपनी नीच राशि के आगे की उच्चराशि पर्यन्त की छः राशि में गया हो तो उसकी दशा आरोहिणी नाम की होती है। यह दशा शुभफल देने वाली जानना। धनधान्य वृद्धि, तथा आर्थिक दृष्टि से संपन्नता आती है।

आरोही ग्रह इस प्रकार हैं :—

सूर्य–मीन; चन्द्रमा–मेष; मंगल–धनु; बुध–सिंह; गुरु–मिथुन; शुक्र–कुम्भ; शनि–कन्या; राहु–वृषभ; केतु–वृश्चिक।

(७) यदि अवरोहिणी दशा अपने मित्र तथा उच्च राशि के अथवा स्वराशि के नवांश में गये हुए ग्रह की हो तो मध्यम फल देने वाली जाननी चाहिए।

यदि आरोहिणी दशा अपने नीच तथा शत्रु राशि के नवांश में गये हुए ग्रह की हो तो अधमा और अल्प शुभफल देने वाली होती है।

(८) रोगेश दशाफल—जब रोगेश की दशा आती है तो स्त्रियों से कलह होता है, रोग का आगमन होता है, आधि-व्याधि होती है। शत्रुओं से कष्ट पहुँचता है। दुष्ट आदमी भी कलंक लगाते हैं। आदर का नाश होता है। बुद्धि नाश होता है। ज्ञान तथा धन का नाश होता है। पाप के वश से चित्त व्याकुल होता है तथा प्रायः धातु (वीर्य) का नाश होता है।

(६) सप्तमेश दशाफल--जब सप्तमेश की दशा आती है तो रोग होते हैं। शत्रुबाधा होती है। धन का नाश तथा राजभय होता है।

(१०) अष्टमेश दशाफल--जब अष्टमेश की दशा आती है तो राजभय, रोगभय होते हैं। स्वजन का नाश होता है अथवा मृत्यु भी होती है।

(११) व्ययेश दशाफल--जब व्ययेश की दशा आती है तो राजा के द्वारा धन का नाश होता है। आधि, व्याधि, मृत्यु के समान कष्ट, कुत्सित सवारी वा वाहन तथा कुसंग होता है।

(१२) अस्तंगत ग्रह दशाफल--जब अस्तंगत ग्रह की दशा आती है तो बलवान आदमी से विरोध होता है, छाती अथवा पेट में सदा रोग रहता है, शत्रु से आधिव्याधि से दुःख होता है। मान भंग होता है तथा राजकोप के कारण धन का नाश होता है।

(१३) वक्रग्रह दशाफल--वक्री ग्रह की दशा में धन, सुख और इज्जत की हानि होती है। स्थान नाश होता है। परदेश में जाना पड़ता है तथा कोई नये-नये रोगों से पीड़ा होती है।

(१४) मार्गीग्रह दशाफल--मार्गी ग्रह की दशा में जातक सन्मान, सुख और द्रव्य प्राप्त करता है। ऐसे समय में वह चुनाव जीतकर नेता बनता है। तथा उसके हरएक कार्य सिद्ध होते हैं। यश की वृद्धि होती है। यदि वह ६-८-१२ स्थान में नहीं हो तो अभीष्ट सिद्धि होती है।

(१५) नीच शत्रु वक्रीग्रह दशाफल--इस दशा में कुकर्म में मनुष्य की प्रीति होती है। परदेश में निवास होता है। अपने बांधवों से वह त्यक्त होता है। व्यापार में हानि होती है तथा मुकदमे में हार होती है। वह दुराग्रही होता है और नीच कार्यों से लाभ उठाता है।

(१६) राहुयुक्त ग्रह दशाफल--जब राहु युक्त ग्रह की बलवान दशा हो तो अरिष्ट होता है। दशा के अंत में दुःख हानि तथा परदेशगमन होता है।

(१७) जन्मराशि जन्मलग्न-शत्रुदशाफल--जब जन्मराशि अथवा जन्म लग्न के स्वामी के शत्रु की दशा आती है तो बुद्धि में भ्रम होता है। शत्रुभय होता है। राज्य से च्युति होती है। खलों के साथ कलह होता है तथा बल की हानि होती है।

(१८) अष्टमस्थ लग्नेश दशाफल--जब अष्टम भाव में स्थित लग्नेश की दशा आती है तो अतिपीड़ा होती है। जब दशा का अंत होता है तो जीवन भी समाप्त होता है।

(१९) एकस्थ पापानां अन्तर्दशाफल—यदि एक स्थान में स्थित पापग्रहों की अन्तर्दशा आवे तो रोग, विवाद, शत्रु अथवा राज्य से भय, दारिद्रय तथा धनहानि होती है।

(२०) संधिगत ग्रह दशाफल—जो ग्रह संधिगत हो, उस ग्रह की दशा अनिश्चयप्रधान ही होती है तथा अन्ततः पतन की ओर ही ले जाती है।

(२१) यदि दशा के प्रवेश समय में ग्रह, उच्च, मूल त्रिकोण में अथवा स्वक्षेत्री हो तो शुभफल देता है।

(२२) पापग्रहों का उच्च आदि फल पहिले होता है, दृष्टि का फल उसके पश्चात् होता है। स्थान का फल मध्य में होता है।

(२३) जो ग्रह जन्म से अच्छे भाव में हो, अपने उच्चका, मित्र क्षेत्री, अच्छे ग्रह से दृष्ट, अस्तगत रहित हो, तो गुरु की दशा आदि में भी अच्छा फल देनेवाली होती है। अन्यथा अशुभ फल देती है।

(२४) क्षीण चन्द्रमा तथा पापयुक्त बुध अशुभ फल देते हैं।

(२५) लग्न से जिस राशि में पापग्रह हो, उस वर्ष, मास अथवा दिन में कष्ट होता है।

(२६) मांदि जिस स्थान में हो उस स्थान के स्वामी की दशा रोगवर्धक होती है। जो ग्रह मांदि के साथ या उससे दृष्ट हो तो उस ग्रह की दशा श्रेष्ठ नहीं कही जा सकती।

(२७) शीर्षोदय राशि में स्थित ग्रह अपनी दशा के आदि में फल देते हैं। शुभोदय राशि में स्थित ग्रह दशा के मध्य में फल देते हैं। पृष्ठोदय राशि में स्थित ग्रह दशा के अन्त में फल देते हैं।

(२८) यदि दशानाथ जन्म कुण्डली में, लग्नेश, नवांशेश, होरेश, द्रेष्काणेश तथा द्वादशांशेश हो तो निश्चय ही उसकी दशा जीवन में मोड़ देनेवाली होती है।

(२९) पंचमेश क्रूर ग्रह भी हो तब भी सुख देता है।

(३०) ३–६–८–११ के स्वामी दुःखदायक होते हैं।

(३१) तुला लग्न तथा मेष लग्न में अष्टमेश का दोष नहीं होता। वृश्चिक तथा तुला राशि का क्रमशः ८।६ स्थानों में दोष नहीं है।

(३२) जिसके चौथे स्थान में उच्च के ग्रह हों, शुभ स्वामी अथवा शुभ ग्रह हों तो वाहन तथा ग्राम का लाभ होता है। स्थावर इस्टेट बनती है। ग्राम का आधिपत्य प्राप्त होता है।

(३३) परम उच्च, उच्च, वलवान की दशा अनेक प्रकार का ऐश्वर्य देती है तथा अति नीच, दुर्वल ग्रह की दशा व्याधि अनर्थ तथा मृत्यु देती हैं।

(३४) जिस ग्रह से चतुर्थ स्थान में क्रूर ग्रह हो, उसकी दशा आने पर भूमि, क्षेत्र तथा गृह का नाश होता है। शनि हो तो हृदय में शूल होता है। सूर्य हो तो राजकोप होता है। राहु हो तो सर्वस्व हरण, विष, चोर आदि का भय होता है। मंगल हो तो पशु हानि तथा घर का दाह होता है।

(३५) जिस स्थान से ५–७–६ स्थानों में शुभ ग्रह उच्च के हों तो उसके स्वामी की दशा में स्त्री, पुत्र आदि की प्राप्ति तथा बड़ी राजपूजा होती हैं।

(३६) जिस राशि में भावेश हो उस राशि का स्वामी यदि ६।८।१२ में हो तो उस भाव का नाश होता है।

(३७) लग्नेश, कर्मेश, भाग्येश के उच्चस्थ शुभ योग होने से सव लोगों में श्रेष्ठता, वड़ा ऐश्वर्य तथा साम्राज्यादि फल मिलता है। १०।११।६।४।१ स्थानों के स्वामी जिस भाव में स्थित हों उस भाव की अर्थसिद्धि होती है तथा योग के अनुसार फल होता है।

(३८) पंचमेश से युक्त ग्रह की दशा शुभ फल देनेवाली होती है। पंचमेश, नवमेश, सुखेश की दशा, अन्तर्दशा, शुभ फल देनेवाली होती है।

(३९) जिस भाव में शुभ स्वामी का सम्बन्ध हो अथवा शुभ ग्रह हो तो उस भाव की दशा में अत्यन्त ऐश्वर्य मिलता है। जिस छठे, आठवें भाव में क्रूर, नीच आदि ग्रह स्थित हो, उसके स्वामी की दशा में रोग भाव के, शत्रु अथवा राज से वार-वार दुःसह पीड़ा होतो है।

(४०) जिस भाव से दशम स्थान में राहु हो, उसके स्वामी की दशा में पुण्य तीर्थ की यात्रा होती है।

(४१) जिस भाव से १०–११–६ स्थानों में शुभ ग्रह हों उसके स्वामी की दशा में विद्या, दान, धर्म, सत्कर्म, प्रख्याति तथा पौरुष की सिद्धि होती है।

भावेश दशाफल

लग्नेश—लग्नेश की दशा में जातक को द्रव्य प्राप्ति होती है तथा शारी-रिक सुख विशेष मिलता है। ऐशो आराम के पदार्थ एकत्र होते हैं।

यह दशा जातक के लिए सौभाग्य सुचक होती है । परन्तु स्त्री की ओर से चिन्तित रहता है। लग्न बलवान हो तो लग्नेश की दशा में जातक संसार में उच्चता के शिखर पर पहुंचता है। और उसके जीवन में सुखदायक परिस्थिति निर्माण होती है। वह शरीर से प्रमुखतः हृष्ट, पुष्ट, निरोगी और देखने में बुद्धिमान तथा चमकदार होता है। शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह दिन पर दिन समृद्धि होती रहती है। उसका प्रभाव एवं ख्याति बढ़ जाती है तथा उसमें इतना उत्साह निर्माण होता है जिससे वह कठिन से कठिन काम करने को उद्यत रहता है।

लग्न में स्थित शुभग्रहों की दशा में शरीर सौख्य, आरोग्य, रोगों का नाश, स्थिर बुद्धि, सत्कृत्य और सत्वगुण के कार्य होते रहते हैं। उसे द्रव्य लाभ होता है और सुख प्राप्त होता है।

पापग्रह यदि लग्न में हो तो उसकी महादशा में पापग्रह की अन्तर्दशा आने-पर बड़ा दुःख और रोग उत्पन्न होता है। धनक्षय राजा और शत्रु से भय उत्पन्न होता है। शुभग्रह की अन्तर्दशा हो तो मिश्रफल प्राप्त होता है।

लग्नेश की दशा में पापग्रह की अन्तर्दशा आवे तो बड़ा भय, रोग, मृत्यु और स्थाननाश होता है। लग्नेश की दशा में शनि की अन्तर्दशा आवे तो धन की हानि होती है। परिवार में वैमनस्य, झगड़ा, जायदाद का बटवारा तथा शत्रुता होती है। अन्य पापग्रह की अन्तर्दशा में, अस्वस्थता रहती है, मन अति चंचल होता है। हमेशा दौड़धूप करनी पड़ती है। किसी न किसी कारण से खटपट करते रहना, उलटा पुलटा काम करना और अतिश्रम करना पड़ता है। शरीर को विविध कष्ट भोगनें पड़ते हैं।

लग्नेश यदि खराब (अशुभ) स्थान में हो या अशुभ हो तो जातक को कारागृहवास होता है, उसे परदेश में जाकर रहना पड़ता है और अज्ञातवास में रहने के कारण नाम बदलकर रहना पड़ता है। भय से पीड़ित होता है। रोग से पीड़ित होता है। और मानसिक परेशानी युक्त रहता है। अवनति, अप्रतिष्ठा पदभ्रष्टता तथा अन्य दुर्भाग्य का शिकार होना पड़ता है। किसी मृत मनुष्य का क्रिया कर्म करने का प्रसंग आता है।

द्वितीयेश

द्वितीयेश की दशा में जातक शारीरिक कष्ट भोगता है। घोर बीमारी से वह व्यथित होता है।। मान हानि धन हानि एवं पदावनति होती है। द्विती-येश की महादशा जातक के लिए अशुभ सूचक रहती है। परन्तु इस दशा में अकस्मात द्रव्य प्राप्ति होती है। धनस्थान में स्थित शुभग्रहों की दशा में या

शुभ धनाधिपति की दशा में वक्तृत्व के कारण प्रसिद्धि, और सबके उपर वक्तृत्व का प्रभाव, जोरदार साम्पत्तिक स्थिति, द्रव्यलाभ, स्थावर इस्टेट, मकान, जायदाद में वृद्धि, सब प्रकार का सौख्य और कार्य में सिद्धि, कुटुम्ब-वृद्धि, राजसम्मान, उद्योग धन्धे में यश, संतान सुख, इत्यादि फल प्राप्त होते हैं। सफलता कुटुम्ब प्राप्ति वाणी का विकास संतति प्राप्ति, सुभोजन प्राप्त होता है। भाषण करने की वजह से सभा में प्रशंसा होती है।

धन स्थान का स्वामी पापग्रह हो, पापग्रह के साथ हो, पापग्रह से दृष्ट हो अथवा धनस्थान स्थित पापग्रहों की दशा में प्रापंचिक सौख्य नहीं मिलता। न्याय, अन्याय को न देखने या किसी भी प्रकार का विचार न करते द्रव्य-संपादन करना, किन्तु अनेक कार्यो में धन का व्यय और फिजूल खर्चा होता है। द्रव्य संचय न होकर हाथ में पैसा नहीं टिकता, स्थावर जमीन जुमला और मकान से हानि और अविचार से द्रव्य का व्यय होगा। मस्तिष्क में विकार पैदा होगा। भाषण कटु और लोगों के दिलपर आघात करने वाला होता है। द्वितीयेश की महादशा होकर शनि की अन्तर्दशा आवे तो धनक्षय, आप्त व बुध जनों से विरोध ये बाते निश्चित रूप से होती हैं। द्वितीयेश पापग्रह होकर इसकी दशा में शनि, मंगल, राहु और सूर्य की अन्तर्दशा आती है तब धननाश होता है। राजकोप होकर मानहानि तथा कैद या कारागृहवास, स्थानच्युति और मित्रों से विरोध होता है। भीषण आर्थिक क्षति उठानी पड़ती है और कभी कभी दिवाला भी निकलता है। बंधु की मृत्यु स्वजन विछोह और जातक की मृत्यु भी होती है।

द्वितीयेश निर्बल या अशुभ हो तो समाज में मूर्खतापूर्वक व्यवहार करता है। अपने वचन पर दृढ नहीं रहता। अपने कुटुम्बियों के साथ सहयोग नहीं करता और बुरा व्यवहार करता है। अश्लील बोलता है और फिजुल और अतिखर्च करता है। राजकोप, मान हानि, जीवन में चढ उतार होते रहते हैं।

तृतीयेश

तृतीयेश यदि बलवान हो और तृतीय स्थान में हो तो उसे अपने बंधुजनों से सहायता और सहयोग प्राप्त होता है। और शुभ समाचार सुनने को मिलते हैं। अपना सामर्थ्य प्रकट करने का मौका प्राप्त होता है। उसे फौज में अग्रस्थान प्राप्त होता है और प्रतिष्ठा भी प्राप्त होती है। उसे लोगों से समर्थन प्राप्त होता है। और उसके अच्छे गुणों की प्रशंसा होती है।

तृतीयेश शुभ ग्रह हो या शुभ ग्रह के साथ बैठा हो तो तृतीयेश की दशा शुभकारक मानी गयी है। तृतीयेश की दशा में व्यक्ति साधारण आय कर सकता है। बांधवों की ओर से पीड़ा पहुंचती है।

जब तृतीयेश पाप ग्रह हो अथवा तृतीय स्थान पाप ग्रह से युक्त हो, उसकी महादशा में पाप अथवा शुभ ग्रह की अन्तर्दशा हो तो अग्नि, शस्त्र अथवा चोर से दुःख मिलता है। जब तृतीयेश पाप ग्रह हो तो उसकी दशा में कलह तथा क्रोध होते हैं। अग्नि; चोर अथवा राजा से दुःख प्राप्त होता है। चित्त जड़ हो जाता है। अत्यंत कष्ट मिलता है। परन्तु उसपर शुभ ग्रह की दृष्टि हो तो पूर्वोक्त दुष्ट फल नहीं होते है। जब तृतीयेश की महादशा हो, पाप-ग्रह की अन्तर्दशा हो तो सहोदरों का नाश होता है। विशेषतः भाईयों से वैर होता है।

पाप ग्रह होकर पाप युक्त या शुभ युक्त हो तो उसकी महादशा में पाप ग्रहों की अन्तर्दशा आती है, तो शत्रु, शस्त्र, चोर, धन क्षय, झूटा कलंक लगना, मान हानि इत्यादि फल मिलता है।

तृतीयेश की दशा का फल प्रायः खराव होता है वह चाहे पापी ग्रह हो या सौम्य ग्रह, तो भी उसकी महादशा में पापी ग्रह की अन्तर्दशा आने पर स्वजनों से विछोह होता ही है। तृतीयेश की दशा में शनि, मंगल, राहु, केतु या सूर्य इनकी अन्तर्दशा आती है तब बहन, भाई, वगैरे की मृत्यु होती है या उनसे विरोध होता है। बंधुओं से विछोह मानहानि एवं घर से दूर स्थानांतर होता है।

तृतीयेश यदि दुःस्थान में हो तो भाई का निधन होता है। अपने कार्य में गलत सलाह के कारण अड़चनें अंतस्थ छुपे हुए दुश्मनों के द्वारा शत्रुता की काररवाई, अपमान व्यथा, पीड़ा और मानभंग वगैरे वातें होती हैं।

चतुर्थेश

चतुर्थेश की दशा सुख कारक मानी गयी है। उसकी दशा में जातक मां के सुख का लाभ उठाता है, नूतन वाहनादि का भी योग बनता है, विशेषतः शुभ की अन्तर्दशा में सुख प्राप्त होता है। विद्या का विशेष योग बनता हे तथा जातक पीएच्डी जैसी डिग्री प्राप्त करने में सफल होता है। जातक इस दशा में नया मकान बनवानें में सफल होता है, कृषि से लाभ होता है। यह विशेषतः मंगल की अन्तर्दशा में होता है। चतुर्थेश वलवान शुभ ग्रह हो तो चतुष्पद, माता, मित्रादि तथा देह का सुख होता है। मन को शांति प्राप्त होती है। रिश्तेदारों की सहायता, कृषि में सफलता, वाहन प्राप्ति, नई जमीन, नया मकान नये—व्यवसाय का आरंभ, धनार्जन के मार्ग खुलना इत्यादि वातें होती हैं। ये विशेष कर के लाभेश की अन्तर्दशा में प्राप्त होती हैं। यदि सूर्य की अन्तर्दशा हो तो तरक्की उन्नति, नौकरी में लाभ होता है। दूसरों पर

प्रभाव गिरता है। सुभोजन, सत्कार्य होना और अच्छे लोगों द्वारा, गुणों की प्रशंसा इत्यादि फल मिलते हैं। परन्तु पिता को शरीर कष्ट होता है।

जब चतुर्थेश पाप ग्रह हो, उसकी महादशा हो, उसमें पाप ग्रह की अन्तर्दशा हो तो मनुष्य स्थान भ्रष्ट होता है। आप्तजनों से विरोध होता है। कृषि की हानि, चतुष्पद पालतू जानवरों की हानि, अर्थक्षय, इत्यादि बातें होती हैं। बांधवों का नाश होता है।

चतुर्थेश निर्बली हो तथा नीच ग्रह तथा अस्तंगत ग्रहों की अन्तर्दशा हो तब भी उक्त फल मिलते हैं। जातक की माता को कष्ट होता है। प्रियजनों को बीमारी, जमीन का नुकसान होने का भय, पशुनाश, इत्यादि फल मिलते हैं। पानी से खतरा (भय) होता है।

चतुर्थेश शुभ ग्रह हो उसकी महादशा में सौम्य ग्रह की अन्तर्दशा हो तो घर में मंगल कार्य होते हैं। जातक की उन्नति होती है। घर वाहन आदि की वृद्धि होती है।

पंचमेश

पंचमेश की दशा में व्यक्ति समाज में सम्मान प्राप्त करता है। घर में मंगल कार्य होते हैं। बुद्धि निर्मल बनती है। विद्या का विशेष लाभ पहुँचता है। विद्या प्राप्ति, सुबुद्धि की वृद्धि, उच्च श्रेणी की परीक्षा में सफलता तथा प्रतियोगिता में विजय प्राप्त होती हैं।

शुभ ग्रह की अन्तर्दशा आती हो तो पुत्र और धन की प्राप्ति होती है। राज्य सम्मान वृद्धि, समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों का भोग, कुटुंबियों के साथ विनोद, मेल मिलाप, राज्य मंत्री अथवा सलाहकार पद की प्राप्ति होती है। राजा और आप्तजनों से प्रेम होता है। ईश्वराराधन में मन लगता है। हाथ में लिये हुए कामों में सफलता प्राप्त होती है। पंचमेश पुरुष ग्रह हो तो पुत्र संतति, स्त्री ग्रह हो तो कन्या संतति का योग बनता है।

पंचमेश पाप ग्रह हो, उसकी दशा हो, पाप ग्रहों की अन्तर्दशा हो तो बुद्धि में भ्रम पैदा होता है। खाने को अच्छा भोजन नहीं मिलता। राज्य से भय, मित्र और पुत्रों (संतति) को परेशानी व कष्ट होता है। अधिकारी वर्ग के साथ मतभेद निर्माण होते हैं। घर में कलह होता है। भाता की मृत्यु तथा माता को पीड़ा होती है।

पंचमेश निर्बल हो या पाप युक्त हो, या पंचम में क्रूर ग्रह हो तो जातक को पुत्र शोक होता है, और उसका चित्त भ्रष्ट होता है। पेट में दर्द, अरोचकता या अन्य विकार होते हैं। धोखा, भटकना, शरीर में निर्बलता तथा राज्य से कोप—ये बातें होती है।

षष्ठेश

छटे घर के स्वामी की दशा में व्यक्ति को शत्रुओं की ओर से हानि पहुँचती है। मुकदमे में अपयश प्राप्त होता है। जातक का संचित धन वैद्य और डाक्टर के घर पहुँचता है, संतति की ओर से भी हानि उठानी पड़ती है। षष्ठेश की दशा रोग निर्माण करने वाली तथा शारीरिक पीड़ा करने वाली होती है, मानसिक चिंता बढ़ती है। आर्थिक कष्ट उठाने पड़ते हैं, कर्जा लेना पड़ता है तथा भाई बंधुजनों से कोर्ट कचहरी के मामलों में जायदाद के लिए व्यर्थ में द्रव्य का नाश होता है।

जब षष्ठेश की महादशा हो उसमें पाप ग्रह की अन्तर्दशा हो तो राज्य से, अग्नि से तथा चोरों द्वारा भय तथा पीड़ा होती है। प्रमेह, फोड़ा, फुन्सी, प्लीहा, गुल्म, क्षय, पित्तरोग इत्यादि से कष्ट प्राप्त होता है। इस दशा में नये-नये शत्रु उत्पन्न होते हैं। तथा उनके द्वारा निर्मित जाल में फंस कर, उलझ कर परेशान होना पड़ता हैं। अधिकारियों तथा जातक के बीच में विवाद, मतभेद बढ़ते हैं और नौकरी में पदावनति देखने का मौका आता है।

षष्ठेश निर्बली हो तो चोरों से भय होता है। कार्यों में असफलता प्राप्त होती है। अपयश प्राप्त होता है। बीमारी आती है। व्रण पीड़ा होती है। हाथ से निंदनीय कृत्य होते हैं। लोग जातक से घृणा करते हैं, उसकी निंदा करते हैं। दूसरों का दासत्व करने का मौका आता है।

षष्ठ स्थान में स्थित पाप ग्रह की अन्तर्दशा में शारीरिक गंडांतर, बीमारी, लंबे मुदत की बीमारी, मस्तिष्क की पीड़ा, बुद्धि भ्रंश, मनोभंग, द्रव्य की कमी तथा नुकसान, झूठा आरोप, अपमान तथा राजकीय संकट वा दारिद्र ये फल मिलते हैं। बड़े बड़े संकट और भयंकर आपत्ति इनकी वजह से दशाकाल बड़े तकलीफ का व्यतीत होता है। इन स्थानों में शुभ ग्रह होकर उसकी दशा आती है तब आगे फल कुछ कम होते हैं और लोगों से सहानुभूति और सहायता प्राप्त होती है। अत्यंत कष्ट सहन करने के बाद संकटों से छुटकारा मिलता है।

दशानाथ नीच राशि का या वक्री होकर इस स्थान में होता है तो बहुत ही तकलीफ उठानी पड़ती है। बहुत दुःखों का सामना करना पड़ता है। और सुख नाम मात्र का भी नहीं मिलता।

षष्ठेश की शुभ दशा में जातक अपने साहस का प्रदर्शन करके शत्रुओं पर विजय पाता है। उसका स्वास्थ्य निरोगी रहता है। वह बड़ा दिलदार

तथा उदार हृदय वाला होता है। वह बड़ा बलवान, वैभवशाली और समृद्धि से युक्त होता है।

सप्तमेश

सप्तमेश की दशा में साधारणतः शारीरिक कष्ट उठाने पड़ते हैं और मृत्यु की भी सम्भावना रहती है। उसे मित्रों के द्वारा विश्वास घात होता है, द्रव्य की विशेष हानि होती है, तथा आर्थिक कष्ट उठानें पड़ते हैं। इनके द्वारा उसे मानसिक चिंताओं से ग्रस्त रहना पड़ता है। नौकरी में अवनति के द्वार देखने पड़ते हैं।

सप्तमेश निर्बली हो (अस्तंगत, वक्री, नीच राशि में इत्यादि) तो जातक के जमाई को क्लेश होते हैं, पत्नी से बिछोह होता है तथा स्त्रियों के द्वारा आवांछित घटनाएँ होती हैं। जातक का अन्य खराब स्त्रियों से सम्पर्क होता है और उसे लैंगिक बीमारी होने की सम्भावना रहती है। व्यर्थ भटकना पड़ता है। भागीदारों से नुकसान उठाना पड़ता है तथा भागीदारों से विरोध होता है। और व्यापार से हानि होती है। आशातीत तथा अभागी घटनाएँ होती हैं।

सप्तमेश पापग्रह हो तो स्त्री की मृत्यु होने की सम्भावना रहती है अथवा स्त्री से विरोध होता है। परदेश में जाना पड़ता है। मूत्रकृच्छ्र रोग होता है तथा राज्य से कोप का भय रहता है।

सप्तमेश पापग्रह हो और उसमें पापग्रह की अन्तर्दशा हो तो जातक को स्त्री के सम्बन्ध में बदनामी का शिकार होना पड़ता है। घर से दूर स्थानांतरण होता है। तथा गुर्दे में रोग की सम्भावना रहती है। सप्तमेश पापग्रह हो पापग्रहों के मध्य में हो तो स्त्री को विशेष शारीरिक कष्ट उठाने पड़ते हैं और सप्तमेश क्रूर ग्रह हो तथा उसमें पापीग्रह की अन्तर्दशा हो तो स्त्री सुख से वंचित होना पड़ता है। हो सकता है कि स्त्री की मृत्यु हो जावे तथा स्त्री से तलाक या घटस्फोट हो अथवा स्त्री घर छोड़कर चली जावे।

सप्तमेश की शुभ दशा में नयें वस्त्रों की प्राप्ति, आभूषण, और नयी शयन शय्या की प्राप्ति होती है। जातक अपने प्रियजनों के साथ सुखी रहता है, तथा आनंद भोगता है। वह सामर्थ्यवान होता है, बलवान तथा प्रौढ़, शक्तिमान और विवाहित होते हैं। अथवा उसके कुटुंब में मंगल कार्य (विवाह के समान) होते हैं। संतति प्राप्ति भी होती है। जातक कोई आनंदमय तथा सुखमय यात्रा करता है। इस दशा में विदेश गमन भी होता है। भागीदारी बनती है तथा भागीदारी व्यवसाय में लाभ होता है। कोर्ट कचहरी के

कामों में सफलता प्राप्त होती है। व्यवसाय के प्रीत्यर्थ उसे यात्रा करनी पड़ती है।

अष्टमेश

अष्टमेश की दशा में व्यक्ति को मरण तुल्य कष्ट पहुंचता है। पत्नी का वियोग सहने को भी उसे बाध्य होना पड़ता है। एवम् कन्या विवाह का योग प्रस्तुत होता है। इसकी दशा में जातक को स्त्री पुत्रादिकों की ओर से काफी हानि उठानी पड़ती है। तथा स्त्री चिररोगिणी बन जाती है।

अष्टमेश की दशा में राहु, मंगल, शनि की अन्तर्दशा आती है तब आयुष्य, धन कीर्ति, मानसम्मान, स्त्री, मित्र, बांधव, यश, तथा सहोदर इनका नाश होता है। अष्टमेश पापग्रह हो तथा उसमें पापग्रह की अन्तर्दशा हो तथा अष्टम-स्थान में स्थित पापग्रह की दशान्तर्दशा में शारीरिक गंडांतर बीमारी, लम्बे मुद्दत की बीमारी, मस्तिष्क की पीड़ा, बुद्धिभ्रंश, मनोभंग, द्रव्य की कमी, नुकसान, झुठा आरोप, अपमान और राजकीय संकट व दारिद्रय ये फल मिलते हैं। बड़े-बड़े संकट और भयंकर आपत्ति इनकी वजह से दशाकाल बड़े परेशानी तथा कष्टमय व्यतीत होता है। सिरपर कर्जा होता है। दशानाथ नीच का, वक्री, निर्बली हो तो बहुत ही तकलीफ भोगनी पड़ती है। तथा उपरोक्त बहुत दुःखों का सामना करना पड़ता है और सुख नाममात्र का भी नहीं मिलता।

इस स्थान में शुभ ग्रह हो तथा उसकी दशान्तर्दशा हो तो उपरोक्त अनिष्टफल कम होकर लोगों से सहानुभूति तथा सहायता प्राप्त होती है। अति कष्ट सहन करने के बाद संकटों से छुटकारा प्राप्त होता है। सारांश अष्टमेश की दशा हर प्रकार से जातक को हानिकारक सिद्ध होती है।

अष्टमेश यदि बलवान हो तो कर्ज से मुक्ति मिलती है। जातक को उत्तम अवस्था प्राप्त होती है। लड़ाई झगड़े से मुक्ति मिलती है। मृत्यु पत्र द्वारा तथा बीमा के द्वारा अकस्मात धनलाभ होता है। तथा पूर्वार्जित जमीन जायदाद की प्राप्ति होती है। गाय, भैंस, भेड़, नौकर वगैरे की प्राप्ति होती है। कभी-कभी जमीन से धन प्राप्त होता है।

नवमेश

नवमेश की दशा में जातक का भाग्योदय होता है, तथा अच्छे कार्य होते हैं। तीर्थयात्रा, देवदर्शन, यज्ञ तथा कन्या दानादि धर्म कार्य होते हैं। हाथ से सत्कर्म होते हैं। ब्राह्मण, देवता की तरफ श्रद्धा व भक्ति बढ़ती है।

यह दशा भाग्योदय करती है। नये-नये व्यापार धंधे की शुरूग्रात होती है। नौकरी में पदोन्नति तथा विदेश जाने के शुभ प्रसंग प्राप्त होते हैं। दूर-दूर की यात्रा पर जाने का संयोग बनता है। ग्रार्थिक दृष्टि से श्रेष्ठ लाभ होता है। विद्या के क्षेत्र में उसे विशेषलाभ होता है। तथा घर में मंगल कार्य होते हैं। संतति की प्राप्ति होती है। ऐसी योजना जो उसके जीवन का लक्ष्य है, पर उसके पूर्ण होने में व्याघात उपस्थित होते रहते हैं, इस दशा में वह योजना कार्यान्वित होकर पूर्णता प्राप्त करती है। किसी महत कार्य करने से उसकी ख्याति होती है।

इस दशा में यश, मान, धन, एवम् कीर्ति प्राप्त होती है ग्रौर भाग्योदय से सभी वस्तुग्रों एवम् पदार्थों के ग्रभाव की पूर्ति हो जाती है। राज्य पक्ष से उसे विशेष लाभ मिलता है तथा राज्य सेवा में उन्नति, वेतन वृद्धि एवम् मनोवांछित पद की प्राप्ति होती है।

नवमेश यदि निर्बली हो तो ऐसे देवता जिनकी पूजा, ग्रर्चना, पूर्व में की गयी होती है उनके क्रोध या रुष्ट होने से कष्ट भोगने पड़ते हैं। माता-पिता को कष्ट होता है। जातक स्वयं दुष्ट कर्म करता है।

नवमेश पापग्रह हो तथा उसमें पापग्रह शनि, मंगल, राहु की ग्रन्तर्दशा हो तब ग्रधर्म की तरफ मन की प्रवृत्ति होती है। जातक धर्मांतर करता है। ग्रपमान भोगना पड़ता है, धनक्षय तथा कैद या कारागृहवास भोगना पड़ता है। व्यापार व्यवसाय में हानि, यात्रा में विघ्न तथा विद्यार्जन में बाधा उपस्थित होती है।

नवमेश शुभ ग्रह होकर उसकी दशा में पापग्रह की ग्रन्तर्दशा ग्राती है, तब बंधु ग्रौर ग्राप्तजन से विछोह तथा विरोध होता है। माता तथा पिता इनमें किसी एक की मृत्यु होती है संतति को कष्ट तथा संतति की मृत्यु तथा गर्भावरोध होता है। द्रव्य हानि तथा ग्रपमान भोगना पड़ता है। भाग्योदय में ग्रनेक रुकावटें पैदा होती हैं, जिससे मन में चिंता ग्रौर परेशानी बनी रहती है।

साधारणतः नवमेश की दशा शुभ होती है। तथा विरले लोगों के भाग्य में ही लिखी होती है। क्यों कि यह दशा व्यक्ति को उच्चस्तर पर पहुंचाती है। विद्यार्जन के लिए उत्कृष्ट दशा होती है।

दशमेश

दशमेश की दशा जातक के लिये उन्नतिकारक होती है। व्यक्ति को नौकरी में पदोन्नति होती है। उसके सम्मान की वृद्धि होती है। इस दशा में

नौकरी की प्राप्ति होती है। अधूरे कार्य पूरे होते हैं। व्यापार व्यवसाय में वृद्धि और उनके द्वारा धनलाभ होता है। राजाश्रय की प्राप्ति होकर धन का लाभ तथा मानवृद्धि, सुखोदय होता है। समाज में प्रतिष्ठा बढ़ती है तथा पदवृद्धि व सन्मान वृद्धि के योग बारम्बार आते रहते हैं। समाज में किसी प्रकार का पद ग्रहण करने का आग्रह होता है तथा धर्म संस्थानों का कारोबार देखना पड़ता है तथा नागरिक संस्था का सभासद, पार्षद इत्यादि बनता है। दूर की यात्रा होती है। यदि दशमेश नीच ग्रह हो, पापग्रह (खल संज्ञक) हों तो उसकी दशा में पापग्रह की अन्तर्दशा आती है तब मित्रों को दुःख, स्थान-च्युति, माता का विछोह, यश, सुख और धन की हानि होती है। मनुष्य को कारागृह में जाना पड़ता है। अनेक प्रकार के दुःख झेलने पड़ते हैं। दुस्वप्न आते हैं। माता को पीड़ा होती है। मानसिक चिन्ता घेरे रहती है। व्यापार व्यवसाय में हानि, धन्धे में बदल या धंदा बंद करने की नौबत आती है।

परन्तु शुभ दशमेश की दशा में पापग्रह की अन्तर्दशा आती है, तब मित्रों से विछोह, द्रव्यहानि और अपमानजनक बातें होती हैं।

एकादशेश

इस दशा में जातक की आय बढ़ती है। उसकी ख्याति फैलती है और व्यापार में प्रचुर लाभ होता है। तथा आय के नये-नये स्रोत खुलते हैं। जातक अतिरिक्त भोगापभोग भोगता है। स्वजनों से मिलाप होता है। नौकरों से सुख प्राप्त होता है। इस दशा में पिता की मृत्यु होती है।

लाभस्थान में स्थित शुभ ग्रहों की दशा में जोरदार सांपत्तिक स्थिति, द्रव्य लाभ, स्थावर इस्टेट की वृद्धि, सब प्रकार का सौख्य और कार्यसिद्धि होती है। कुटुम्ब में वृद्धि, राजसन्मान, उद्योग धन्धे में यश—ये बातें होती हैं।

लाभस्थान में स्थित पापग्रहों की दशा में प्रापंचिक सौख्य मिलता है। न्याय अन्याय को न देखते या किसी भी प्रकार का विचार किये बिना द्रव्य सम्पादन होता है। लेकिन कार्यों द्वारा धन का व्यय और फिजूलखर्ची भी होती है। द्रव्य संचय नहीं होता है और हाथ में पैसा नहीं टिकता। स्थावर जमीन, जुमला और मकान की खरेदी होती है। अविचार से द्रव्य का व्यय होता है। मस्तिष्क में विकार पैदा होता है। कटुभाषण और लोगों के दिलपर आघात करने वाला होता है। भीषण आर्थिक क्षति उटानी पड़ती है।

लाभेश की दशा में शनि, मंगल, सूर्य, राहु इनकी अन्तर्दशा आती है तब प्रव्य का नाश होता है। काम करने में तथा द्रव्य उपार्जन करने में बाधा तथा

कष्ट होते हैं। कृषि कार्य में नुकसान होता है। राज्यभय तथा राजकोप के कारण सन्मान हानि होती है।

द्वादशेश

जातक को इस दशा में शरीर कष्ट उठाना पड़ता है। नित्य नयी चितायें उसके लिए परेशानी उत्पन्न कर देती हैं और घर में बीमारियों से वह असहिष्णु बन जाता है। सम्बन्धियों के द्वारा हानि पहुँचती है।

द्वादशेंश की दशा में शनि, मंगल, राहु, सूर्य की अन्तर्दशा आती है, तब स्त्री, बंधु, पुत्र इनसे शत्रुता, शक्ति का ह्रास, मान और धन का नाश होता है। कष्टदायक स्थिति आती है और इसके कारण चिन्ताओं और विपत्तियों का सामना करना पड़ता है।

दशानाथ निर्बल हो तो कई बीमारियों का शिकार होना पड़ता है। मानहानि और कभी-कभी बंधन होता है। जातक के धन का सर्वनाश होता जाता है।

द्वादश स्थान में पापग्रह स्थित हो तो उसकी दशा में शारीरिक गंडांतर, बीमारी, लम्बे अरसे की बीमारी, मस्तिष्क को पीड़ा, बुद्धि भ्रंश, मनोभंग, द्रव्य की कमी, नुकसान, झूठा आरोप, अपमान, राजकीय संकट और दारिद्र ये फल मिलते हैं। बड़े-बड़े संकट और भयंकर आपत्ति इनकी वजह से दशाकाल बड़े तकलीफ का जाता है। द्वादशेश शुभ ग्रह हो, द्वादश में शुभ ग्रह हो तो उनकी दशान्तर्दशा में उपरोक्त संकट और विपत्तियों का अनिष्ट फल कुछ कम होता है तथा लोगों से सहानुभूति और सहाय्य प्राप्त होता है। फिजूलखर्ची तथा धन का खर्च अच्छे काम में होता है। हाथ से कुछ सत्कार्य भी होते हैं। जिनके द्वारा पूर्व में किये हुए पाप नष्ट होते हैं। राज्य से सम्मान भी मिलता है।

द्वादशेश की दशा में अष्टमेश की अंतर्दशा आने पर विदेशयात्रा होती है।

अन्तर्दशा फल

(१) नवांश बल से युक्त ग्रह जातक को तेजस्वी, अतिसुखी, स्थिर, ऐश्वर्यवान, राजा से प्राप्त धन, अन्य धन से युक्त और ख्यात करता है।

(२) षष्ठेश अष्टमेश की परस्पर दशा अर्थात् एक की दशा, दूसरे की अन्तर्दशा में राज्य से भय रहता है। सेवक जनों से विरोध, स्त्री से विरोध तथा पुत्र-दार का नाश होता है। चोर, अग्नि, बन्धुजनों से पीड़ा या वाहन से अपघात इत्यादि बातें होती है।

(३) दशेश से बारहवें ग्रह की अन्तर्दशा में स्थान हानि, बन्धुजनों से विरोध, विदेश गमन, अपने स्वजनों से विरोध, पैर, नेत्र, हृदय में रोग इत्यादि बातें होती हैं।

(४) दशेश से युक्त ग्रह की अन्तर्दशा में स्त्री, पुत्र भृत्य, धन कृषि का नाश, उद्यमभंग, अपने मनुष्यों से विरोध, अचानक दोषारोपण इत्यादि बातें होती हैं।

(५) दशेश से दूसरे स्थान में ग्रह हो तो उसकी अन्तर्दशा में मृदु अन्न, पान, वस्त्र, चन्दन, पुष्प वगैरे प्राप्त होते हैं। पराया उपकार होता है। कुटुम्ब में वृद्धि होती है। स्त्री, पुत्र, वन्धुजन, सुख, मन के विलास इत्यादि प्राप्त होते हैं।

(६) दशेश से तीसरे स्थान में ग्रह हो तो उसकी अन्तर्दशा में राजा से धन, सख्यता, सुगंधित द्रव्यों का लाभ, पुष्प, वस्त्र, भूषण आदिका लाभ होता है। मित्रों के द्वारा भोजन प्राप्त होता है। सुख और पुष्टि इत्यादि प्राप्त होते हैं।

(७) दशेश से चतुर्थ स्थान में ग्रह हो तो उसकी अन्तर्दशा में स्त्री, पुत्र, धन, गृह के धर्म, वाहन, मीठे अन्न, पान तथा वस्त्र आभूषण मिलते हैं।

(i) यदि वह शुभ ग्रह होवे तो फल विपरीत होता है।

(ii) यदि वह अपनी राशि उच्च बलादि से युक्त हो तो पापग्रह होने पर भी शुभफल देता है।

(iii) यदि वह राशिबल, उच्च बलादिहीन होवे तो दशेश से शुभ ग्रह होने पर भी अशुभ फल देता है।

(८) दशेश से पंचम स्थान में ग्रह हो तो उसकी अन्तर्दशा में (i) शुभ ग्रह हो तो पुत्र आदि की प्राप्ति होती है और (ii) अशुभ ग्रह हो तो पुत्रक्षय होने की सम्भावना रहती है।

(९) दशेश से षष्ठ स्थान में ग्रह हो और वह पापग्रह हो तो उसकी अन्तर्दशा में चोर आदि का भय, ऋण भय, देह पीड़ा और पदभ्रष्टता प्राप्त होती है।

यदि शुभ ग्रह हो तो उक्त बातों से सुख प्राप्त होता है।

यदि उच्च मूल त्रिकोण में हो तो पुत्र, मित्र मिलते हैं।

(१०) दशेश से सप्तम स्थान में ग्रह हो और वह पापग्रह हो तो अन्तर्दशा में स्त्री, धन, पुत्र, बंधुनाश तथा राज्य से भय प्राप्त होता है।

यदि वह शुभग्रह हो तो सुख देता है।

यदि नीच, शत्रु आदि राशि में नहीं हो तो रत्न, वस्त्र, आभूषण मिलते हैं।

(११) दशेश से अष्टम स्थान में ग्रह हो और वह शुभ ग्रह हो तो उसकी अन्तर्दशा में आरम्भ में शुभफल, सुख और अन्त में कष्ट फल प्राप्त होते हैं।

यदि पापग्रह हो तो उसकी अन्तर्दशा में भय, मृत्यु निद्य अन्न, चोर, अग्नि, राजा से भय प्राप्त होता हैं।

(१२) दशेश से नवम स्थान में ग्रह हो और वह पापग्रह हो तो उसकी अन्तर्दशा में अशुभ फल प्राप्त होते हैं। स्थान हानि, मानसिक रोग, अशुभ कर्म आदि होते हैं।

यदि वह बलवान शुभग्रह हो तो विवाह, यज्ञ, दान दीक्षा आदि फल होते हैं।

(१३) दशेश से दशम स्थान में ग्रह हो और वह पापग्रह हो तो उसकी अन्तर्दशा में कर्म का नाश, दुष्कीर्ति तथा अनेक प्रकार की आपत्तियाँ भोगता है।

यदि वह ग्रह शुभ हो तो उसकी अन्तर्दशा में सौख्य, तालाब, नहर नगर, द्वार, मन्दिर आदि पुण्य कर्मादियों का संग्रह इत्यादि बातें होती है।

(१४) दशेश से एकादश स्थान में ग्रह हो और वह पापग्रह हो तो, उसकी अन्तर्दशा में धन प्राप्त होता है। पुत्र, मित्र, आदि से भी धन प्राप्त होता है। और नित्य स्थायी स्थान की प्राप्ति होती है।

यदि वह शुभ ग्रह हो तो उसकी अन्तर्दशा में सुख ऐश्वर्य वृद्धि, राज्य से प्रशंसा, स्त्री, पुत्रादियों की वृद्धि होती है।

(१५) दशेश से बारहवें स्थान में ग्रह हो और वह पापग्रह हो तो उसकी अन्तर्दशा में दुःख धननाश, राज्यकोप, स्थान नाश और बुद्धि भ्रंश होता है।

यदि शुभग्रह हो तो, उसकी अन्तर्दशा में वाहन, भोग, ऐश्वर्य, वस्त्र, भूषण, आदि प्राप्त होते हैं।

(१६) सब दशा तथा अन्तर्दशाओं में, उच्च,स्वक्षेत्री, मित्र क्षेत्री आदि विचार करके फल कहना चाहिये।

(१७) दशेश से १,२,३ स्थानों में स्थित, पापग्रहों की अन्तर्दशाओं में दुःख मिलता है। शुभग्रह की अन्तर्दशा में शुभ होता है।

(१८) पापग्रह की अन्तर्दशा होने पर बड़ा भय होता है। स्थान, नेत्र, बंधु, पुत्र, धन, स्त्री का नाश तथा राजभय होता है।

(१९) शुभग्रह की महादशा में शुभग्रह की अन्तर्दशा हो तो स्थान, वाहन, तथा भूषण आदि की प्राप्ति होती है। पापग्रह की महादशा में शुभ-ग्रह की अन्तर्दशा हो तो आदि में सुख और अंत में भय होता है।

(२०) शुभ ग्रह की महादशा में पापग्रह की अन्तर्दशा हो तो आदि में कष्ट तथा अंत में सुख मिलता है।

महादशा फल

हम लोग पूर्व जन्म को मानते हैं। फलित इस बात को बतलाता है कि हमने पूर्व जन्म में शुभाशुभ कर्म जो कुछ किये हैं उनका फल हमें इस जन्म में कब और कैसा मिलेगा। उसके फल के परिपाक समय को ज्योतिष शास्त्र दशाओं के द्वारा प्रगट करता है। इसलिए ज्योतिष की सत्यता उसके फलादेश पर निर्भर है और फलादेश की सत्यता दशाफल पर निर्धारित है। फल कथन का आधार दशायें हैं। ग्रह अपना शुभाशुभ फल कब देगा यह दशा पर ही निर्धारित है और ग्रहों की स्थितियों पर से ही उस ग्रह का शुभाशुभत्व जाना जा सकता है।

दशा अन्तर्दशा का ज्ञान प्राप्त करना और उनका फल कहना इतना सरल और सुगम नहीं है क्योंकि दशान्तर्दशा में महादशा एक ग्रह की होती है और अन्तर्दशा दूसरे ग्रह की होती है। इसलिए इन दोनों का आनुपातिक फल निर्धारण कर फलों को कहना अति कठिन समस्या है।

जिस प्रकार दूध और खटाई ये दोनों अलग-अलग पदार्थ हैं पर इन दोनों के संयोग से तीसरे ही पदार्थ की सृष्टि हो जाती है, जिसमें उपर्युक्त दोनों पदार्थों के न्यूनाधिक गुण होते हुए भी वह अपने आपकी अलग ही विशेषता रखता है। ठीक यही प्रकार दशा अन्तरदशा का है।

महादशा की अवधि लम्बी होती है और किसी भी ग्रह का सम्पूर्ण महादशा में एक समान फल नहीं मिलता। फिर भी जिज्ञासु को यह जानने की उत्सुकता रहती है कि महादशानाथ का शुभ या अशुभ फल कब मिलेगा। इसको जानने की रीति यह है कि—"राशित्रिभागे यतमे ग्रह : स्याद्दशा-त्रिभागेऽपि फलं तु तस्मिन्।"

राशि के तीन भाग १०।१० अंश करके इन तीनों भागों में जिस भाग में ग्रह स्थित हो, उसी भाग में दशा के फल को देता है। द्रेष्काण १०° अंश का होता है और वह पत्रिका में दिया हुआ होता है। यदि महादशानाथ

प्रथम द्रेष्काण में हो तो दशा के प्रारम्भ में, द्वितीय द्रेष्काण में हो तो दशा के मध्य में तथा तृतीय द्रेष्काण में हो तो दशा के अन्त में शुभाशुभ फल प्रदान करते हैं ।

ग्रहों के महादशा के फल स्पष्ट किये जा रहे हैं और वे इस प्रकार है ।

सूर्य की महादशा वर्ष ६

सूर्य अपनी उच्च राशि में परमांश १० अंश पर हो तो उसकी दशा में भूमि, धन, स्त्री, कीर्ति, शौर्य प्राप्त होते हैं । राजा से सम्मान प्राप्त होता है । यात्रा के योग बनते हैं । मंत्रणा की गोष्ठी में (सभा) प्रवेश मिलता है ।

सूर्य अपनी मूल त्रिकोण राशि में हो, उच्च का हो, अपने क्षेत्र में हो, केन्द्र में हो, त्रिकोण में हो, लाभ स्थान में हो भाग्य के अधिपति तथा कर्म के अधिपति से युक्त हो, शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो बुद्धि, ज्ञान, अधिकार, द्रव्य, कीर्ति, पराक्रम प्रदान करता है । सुख की प्राप्ति तथा ईश्वरानुग्रह आदि प्राप्त होते हैं ।

यह दशा जातक को यात्रायें कराती है । विदेश यात्राओं के भी यह दशा कई प्रसंग उपस्थित करती है तथा राज कार्य में पदोन्नति एवं धन की वृद्धि का अवसर देती है । ऊँचे और प्रभावशाली अधिकारियों के बीच तथा अन्य ऐसे व्यक्तियों के बीच परिचय क्षेत्र बढ़ता है तथा जातक तंत्र, मंत्र, यंत्रादि में पहले से अधिक रुचि लेता है । वाहनों का सुख प्राप्त होता है । पंचम स्थान के स्वामी से युक्त हो तो पुत्र लाभ वगैरह फल मिलते हैं । सूर्य का यदि धनेश से सम्बन्ध हो तो वाहनों का सुख प्राप्त होता है । चतुर्थ स्थान के स्वामी से युक्त हो तो जातक को तीन प्रकार के वाहनों का लाभ होता है । उसकी उत्तम दशा में द्रव्य, सेनापतित्व, राज्य कृपा, वस्त्र तथा उनके द्वारा उत्तम सुख प्राप्त होता है ।

व्यापारिक कार्यों में सफेद वस्तुओं के व्यापार से अच्छा लाभ होता है । मसाले, बाघ के नाखून, हाथी दाँत, जंगली पशुओं की खालें तथा सुवर्ण (सोना) से लाभ होता है । समाज में जातक की प्रतिष्ठा बढ़ती है । धर्म कार्य हाथ से होते हैं । अच्छे कामों में बुद्धि का उपयोग होता है । ज्ञान की वृद्धि होती है । यश प्राप्त होता है । पुरुषार्थ होता है और शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है ।

सूर्य की पापदशा में जातक को उद्योग में निष्फलता प्राप्त होती है । अर्थात् मनुष्य जो कुछ उद्योग करता है वह व्यर्थ हो जाता है । द्रव्य की

हानि होती है, रोग होते हैं तथा राज कोप होता है। पिता को अरिष्ट होता है, मानसिक चिंता बराबर बनी रहती है। बन्धु जनों से विरोध, स्त्री से कलह, पुत्रों को कष्ट तथा पिता की मृत्यु जैसे अवसर भी जातक के सामने उपस्थित होते हैं। मंगल होता है तथा अग्नि से पीड़ा वगैरह होती है। जातक के चित्त में बड़ा उद्वेग होता है। प्रवास में (विदेश में) पीड़ा के कारण किसी प्रकार का अभिघात लगता है। मन में क्षोभ होता है। बन्धु वर्गों से वियोग तथा राजदरवार से भी अचानक भय उपस्थित होता है। नौकरी में पदावनति होती है।

जातक अपने स्त्री, पुत्र, मित्र, बांधव तथा शत्रुओं से घृणा करता है और इस प्रकार उनके द्रव्य का अपव्यय करता है, पाप कर्म करता है और अपने भृत्य तथा आधीनों से लड़ाई झगड़ा करता है। उसे छाती की बीमारी, आंतड़ों में रोग, बल की हानि, लोगों में अपमान, पिता तथा पितृ सम्बन्धी बांधवों को अरिष्ट होता है।

यदि सूर्य नीच का हो, षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश भाव में गया हो या पापग्रह से युक्त वा दृष्ट हो, राहु तथा केतु से सम्बन्धित हो या अरिष्ट स्थान के स्वामी से युक्त हो तो उपर्युक्त पापदशा के फल प्राप्त होते हैं, और मस्तिष्क पीड़ा, शूल पीड़ा, उदर पीड़ा, दाँतों का विकार एवम् नेत्र रोगों से भी दुःख होता है। महापीड़ा होती है। धनधान्य का नाश होता है। ज्वर कीर्ति नाश, चोर, सर्प तथा व्रण से भय, गुरु या पिता का वियोग, पुत्र, स्त्री का वियोग, नौकर, पशुधन का नाश तथा अपमृत्यु का भय होता है।

घर में अशुभ, पितृ वर्ग में उद्वेग तथा अग्नि बाधा ये फल होते हैं।

षष्ठ स्थान में—धन हानि, अति दुःख, गुल्म क्षय, अतिसार रोग, मूत्रकृच्छ्र अथवा प्रमेह आदि रोग होते हैं। मस्तिष्क पीड़ा, शूल पीड़ा, उदर पीड़ा, छाती के रोग, नेत्र पीड़ा, ज्वर पीड़ा ये रोग होते हैं।

अष्टम स्थान में—शरीर कष्ट, अग्नि से भय, मलेरिया (चौथाई ज्वर) नेत्र विकार, कास ज्वर सहित, अतिसार, पद हानि, अवनति इत्यादि फल होते हैं।

द्वादश स्थान में—क्लेश, धन हानि, कृशता, स्त्री, वधू, पुत्र, भूमि का नाश, माता-पिता की हानि, कलह, एक स्थान से दूसरे स्थान का भ्रमण, विष से भय, राजभय, पैरों में रोग, जानवरों से पीड़ा, विद्या के शास्त्रार्थ में विनोद, घर में कलह इत्यादि बातें होती हैं।

सूर्य महादशा के आरम्भ में पिता को रोग और धन नाश। मध्य समय में—पशु धन हानि और सब प्रकार की पीड़ा और अन्त में विद्या, बड़प्पन, सुख आदि प्राप्त होता है।

कई विद्वानों के मत के अनुसार—

यदि ग्रह उच्चादि में हो, दृष्टि वलयुक्त हो तो प्रथम उच्चादि फल प्रवल होगा, बाद में दृष्टि आदि का होगा। इसी प्रकार से पाप ग्रहों के फल की विधि लगाते हैं।

चन्द्रमा की महादशा के फल (वर्ष १०)

चन्द्रमा उच्च का या स्वराशि का हो तथा केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभ भवन में, शुभ ग्रह से युक्त वा दृष्ट हो, कर्म और भाग्य के अधिपति से युक्त हो या बलवान अधिपति से युक्त हो तथा वह भाग्येश हो, तो अपनी दशा में, माता का कल्याण, तालाब, क्षेत्र, बगीचा, मकान, आसन, ब्राह्मणों का सत्कार तथा सुन्दर वस्तुओं की प्राप्ति देता है। चन्द्रमा की दशा साधारणतः जातक के लिए सौभाग्य सूचक ही होती है। इस दशा में जातक तीर्थयात्राएं करता है। धार्मिक कार्यों में उसकी रुचि वढ़ती है तथा घर में विवाहादि मंगल कार्य होते हैं। राज्य सम्बन्धी कार्यों में उसे सन्मान मिलता है तथा नौकरी में उन्नति के योग बनते हैं। समाज में अनेक प्रकार का सन्मान मिलता है। जातक चुनाव जीत कर विधान सभा तथा लोक सभा का सदस्य चुना जाता है। मंत्री होने का योग बनता है। परीक्षा आदि कार्यों में वह पूर्ण सफलता प्राप्त करता है। इस दशा में स्कालरशिप भी मिल सकती है तथा विद्या का उच्च शिक्षण देश विदेश में प्राप्त करने का उत्तम सुयोग बनता है। यत्न तथा कार्यों में सिद्धि होती है। मुकदमे आदि में जीत निश्चित होती है, और धन का लाभ होता है। उपनयन, विवाह, विभूतित्व, स्त्री सुख, इस्टेट की प्राप्ति, फल, श्वेतवस्त्र, अलंकार, सुगन्धी पदार्थ तथा अनेक प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त होती है। वैसे ही धन, पुत्र, स्त्री सुख, भोग, ऐश्वर्य तथा उत्तम अन्न, सुन्दर वाहन, छत्र, अच्छे स्थान की यात्रा, कल्याण प्रताप वृद्धि, बलवृद्धि एवं सुख, मिष्ठान्न, शयन, आसन, धन, सुवर्ण, जमीन आदि की प्राप्ति होती है। जातक खूब शानदारी के साथ जीवन सुख का उपयोग करता है। इस दशा में कन्या की प्राप्ति और भ्रमण विशेष होता है। पुण्य जल का लाभ मिलता है।

चीनी तथा सुगन्धित पदार्थों से लाभ, दूध, दही, घी की प्रशस्तता, मोती, माणिक्य, सुवर्ण आदि से लाभ होता है।

यदि चन्द्रमा धन स्थान में उच्च राशि में हो तो जातक को पुत्र लाभ वगैरे से सन्तोष, गोधन की प्राप्ति, अनेक प्रकार के धन की प्राप्ति, भाग्यवृद्धि सुख, खजाना, राजसन्मान, विद्या आदि की प्राप्ति होती है।

चन्द्रमा के पूर्व भाग में भावजन्य फल, मध्य भाग में राशि जन्य फल और अन्त में वह जिस राशि में हो तद्द्योतक अवयव सम्बन्धी फल—इस प्रकार के फल प्राप्त होते हैं। चन्द्रमा १।५।६।१०।११ भावों में हो तो अच्छा फल देता है। २।३।४।१२ भाव में मध्यम फल। अन्य स्थान में खराब फल देता है।

यदि चन्द्रमा अपनी नीच राशि में हो, क्षीण हो, सूर्य से अस्त हो, पाप कर्तरी में हो, पाप ग्रहों से युक्त हो—या पापग्रहों के बीच हो—शत्रु की राशि में हो तो जातक चन्द्रमा की दशा में घोर दुःख पाता है। घर में हर समय कलह होता है और सिर के अनेक प्रकार के रोग होते हैं। विभिन्न नीच कृत्यों द्वारा धन का व्यय होता रहता है तथा वाहनादि से शारीरिक क्षति होने की सम्भावना रहती है। बांधवों से कलह होता है। सन्तति का जन्म, सुस्ती, अपयश, चित्त में अधर्म की प्रवृत्ति, धनहानि, अपने साथी तथा अधिकारी वर्ग से अप्रसन्नता, विरोध, मामा आदि के कारण चित्त में उद्वेग, आत्म हत्या करने की तरफ प्रवृत्ति, उदासीनता, बहुनिर्बलता, असंख्य छोटे-छोटे दुःख इत्यादि बातें होती हैं। खाने को अच्छा भोजन नहीं मिलता। बुद्धि नष्ट होती है। माता को मृत्यु का भय होता है। शीतज्वर, से पीड़ा, मातृवर्ग की तरफ से मृत्यु का भय, चित्त में खिन्नता, दारिद्र, व्यापार में हानि, चोर का भय, कृषि, व अन्न का नाश तथा बात रोग—ये बातें होती हैं।

चन्द्रमा यदि अनिष्ट स्थान में होते हुए बलवान अधिपति से युक्त हो, तो क्वचित लाभ तथा क्वचित सुख भी मिलता है।

चन्द्रमा यदि षष्ठ, अष्टम तथा व्यय स्थान में दुर्बल होकर पाप ग्रहों से युक्त हो तो राजद्वेष, मानसिक व्यथा, धनधान्यादिक का नाश, माता को क्लेश, व्याधि, जडदेह मानसिक रोग इत्यादि फल होते हैं।

षष्ठ में चन्द्रमा हो तो :—महादशा में दुःख, कलह, वियोग चोर अग्नि तथा राज्य से भय, जल से हानि, मूत्रकृच्छ्र आदि रोग तथा धन नाश होता है।

अष्टम में चन्द्रमा हो तो :—महादशा में माता की मृत्यु, स्त्री की मृत्यु योग, नौकरी छुटना, धननाश, कृशता, जल से

भय, दुःख, विदेश गमन, सबके साथ विरोध, कु-भोजन, माता को कष्ट होता है। अष्टम चन्द्रमा की दशा आजीवन का नाश, राजद्वार में झूठापन, ऐश्वर्य का नाश और परम दुःख देती है।

द्वादश में चन्द्रमा हो तो :—महादशा में राजद्वेष, मानसिक व्यथा, धन-हानि, आजीविका का नाश, ऐश्वर्य का नाश तथा बड़ा कष्ट और दुःख पहुंचाती है। बाहर के विषय, व्यसन में पैसा खर्च होता है।

मंगल की महादशा के फल (वर्ष ७)

मंगल परमोच्च स्थान में हो, अपने उच्च स्थान में हो मूल त्रिकोण में हो, स्वक्षेत्र में हो, केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभ स्थान में, धनस्थान में हो, सम्पूर्ण बल से युक्त हो, शुभग्रहों से दृष्ट हो तथा शुभ अंश में हो—तो अपनी महादशा में स्त्री, पुत्र का विशेष सुख प्राप्त करता है। इस दशा में जातक को भूमि से विशेष लाभ होता है। मकान बनवाने, जमीन खरीदने, गड़ा हुआ धन प्राप्त होने का योग बनता है। समाज में व्यक्ति सन्मान प्राप्त करता है। और अपने जाति का सिरमौर बनता है। इस दशा में आन्तरिक (आय से) धन प्राप्ति होती है। मंगल की दशा धनयोग बनाती है किन्तु वह शुभ कार्यों की अपेक्षा क्रूर कार्यों से ही धनागम के योग बनाती है। भूमि की प्राप्ति, बुद्धि का विकास, पराक्रम, युद्ध कुशलता, बन्धु वर्ग से सुख तथा सहयोग, कृषि कार्यों द्वारा लाभ, मानसिक शांति तथा आय के कई स्रोत उपस्थित करता है। राज्य से लाभ होता है। धनधान्यादिक का लाभ होता है। अधिक राज्य सन्मान, वाहन, वस्त्र, आभूषण प्राप्त होते हैं। और विदेश में अच्छा स्थान प्राप्त होता है।

यदि मंगल केन्द्र में हो, तीनों बलों से युक्त हो, तो पराक्रम से द्रव्यलाभ तथा शत्रु पर विजय पाता है। स्त्री-पुत्र वैभव तथा राजसन्मान प्राप्त होता है।

मंगल अपनी नीच राशि में होकर उच्च नवांश में हो तो अपनी दशा में कृषि भूमि, धनधान्यादि का सुख देता है।

मंगल की अशुभ दशा में जातक बांधवों से विरोध करता है तथा मकान बंटवारा या भूमि सम्बन्धी मामलों में वह कोर्ट में मुकदमेबाजी से उलझता है। मुकदमेबाजी होती है और उसमें विजय पाता है। इस दशा में शस्त्रभय

तथा चोरभय भी बना रहता है। शत्रुओं से, शस्त्रों से एवं झगड़े से जातक अर्थ लाभ करता है।

मंगल नीच राशि में हो, वक्री हों, असंगत हो, दुष्ट स्थान में हो, वलावल से रहित हो, पापग्रहों से युक्त तथा दृष्ट हो, उच्च का होकर, अपने नीच नवांश में हो तो उसकी दशा में पुत्र-बंधु इनकी मृत्यु होती है। पत्नी से कलह भाईयों से वैमनस्य तथा अधिकारियों से उग्र मतभेद हो जाते हैं तथा जातक को नई-नई चिन्ताएं घेरे रहतीं हैं।

शस्त्र, अग्नि, पित्त प्रकोप, रुधिर सम्बन्धी वीमारी या ज्वर, पक्षाघात, मूर्च्छा इनका भय होता है।

जातक को शस्त्र का आघात, राजा की तरफ से पीड़ा, घर के सामान की चोरी तथा अग्नि से घर जले तथा धन की हानि, ये बातें होती हैं। हथियारों से चोट के दाग, आग से जलने के दाग, छाती में दर्द, आंखों में पित्त, वायु आदि रोगों से कष्ट, ज्वर से प्यास, राजयोग वगैरे ये बातें होती हैं। उसका संचित धन रोगों से जूझने में व्यय होता है।

इस दशा में स्त्री पुत्रादि से दूर रहने को विवश होता है और इन दिनों जातक की शक्ति, झगड़ों में भी लग सकती है। तथा कर्जा दिनों दिन चढ़ता है। जातक के कई अभिलषित कार्य भी सिद्ध नहीं होते तथा उसे और प्रकार से दीनता घेरे रहती है। स्त्री, सन्तान वंधुवर्ग, अवस्था में अपने से बड़े आदमी अथवा पुरोहित—इनसे बैर होता है। चित्त में बुरे विचार या विकार, अधर्म के विकार या विचार। अपने भला चाहने वालों के साथ झगड़ा करने के विचार उत्पन्न होते हैं। जातक पेट भरने में तथा मैथुन सुख में तत्पर रहता है और शील से वर्जित हो जाता है। उसे राजा से दण्ड तथा बंधन या कारागृहवास होता है। सदा नीच स्त्री का सेवन, पत्नी से कलह, अधिकारियों से उग्र मतभेद आत्म गुरुजनों से द्वेष तथा शरीर को अपायकारक अन्न का सेवन, मानहानि, वधू तथा पुत्र की मृत्यु ये बातें होती हैं।

राजा, युद्ध, झुठाई, ठकवाजी, चालाकी, अनेक प्रकार के क्रूर कर्मो द्वारा धन सम्पादन करता है।

द्वादश स्थान स्थित मंगल की दशा में धन का हरण, राज्य से भय, स्थान, पुत्र स्त्री का नाश तथा बंधुवर्ग का परदेशवास होता है।

अष्टम स्थान स्थित मंगल की दशा में दुःख, वड़ा भय, विस्फोटक रोग, अन्न में अरुचि, स्थान हानि, विदेश गमन, इत्यादि बातें होती है।

भौम की दशा के शुरुआत में कुछ सुख, मानहानि, धनहानि होती है। दशा के मध्य में राजभय तथा चोर आदि का भय रहता है और दशा के अन्त में भाईयों से वियोग, पुत्र, धन, स्त्री आदियों कों कष्ट, गुल्म रोग, मूत्रादि रोग होते हैं।

यदि गोचर में भी भौम उक्त अवस्था में आवे तो उपरोक्त फल विशेष रूप से होते हैं।

राहु की महादशा के फल (वर्ष १८)

राहु की उत्कृष्ट दशा में सब प्रकार से कल्याण, राज्यवैभव, धर्मार्थ की प्राप्ति, तीर्थयात्रा, ज्ञान का उदय वगैरह प्राप्त होता है। राहु केतु की उच्च राशि क्रमशः वृषभ और वृश्चिक है। मूल त्रिकोण राशि कर्क तथा मिथुन है और स्वराशि कन्या और मीन है। राहु उच्च का हो, शुभ ग्रह के साथ हो, शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तथा योग कारकयुक्त हो, केन्द्र, त्रिकोण तथा लाभस्थान में हो तो जातक को अटूट सम्पत्ति मिलती है। मुकदमे में जीत होती है। चुनाव लड़ने पर विजय होती है, तथा मंत्रीपद प्राप्त होता है। मित्र तथा अपने स्वामी या सेठ के द्वारा इष्ट वाहन की प्राप्ति होती है। पुत्रजन्म, नूतन गृह का निर्माण, धर्म चिंतन तथा महोत्सव होता है। राज्य में सन्मान, वस्त्रालंकारादि, भूषण तथा राज्य की कृपा द्वारा संपत्ति प्राप्त होती है। राहु की दशा में विदेश गमन, ज्ञानार्जन के लिए विदेशयात्रा होती है। म्लेच्छ या यवन व्यक्ति द्वारा सन्मान तथा कल्याण प्राप्ति होती है। राहु आठवें तथा बारहवें हों तो इष्टकारक होता है। नये-नये कार्यों का आरम्भ होता है। तथा मध्यम वर्ग के लोगों को विशेष सुख पहुँचता है। बड़ा अधिकार, बहुत साहस, अधिकारपद पर नियुक्ति, मित्रों के द्वारा सफलता, सब प्रकार के दानों से लाभ, स्त्री, पुत्र तथा भृत्यों से सुख, पवित्र तीर्थों की यात्रा, ज्ञान तथा प्रभाव की वृद्धि इत्यादि बातें होती हैं।

राहु की दशा में साधारणतः माता, पिता, स्त्री की मृत्यु, पुत्र वियोग, धनहानि, व्यापार में पतन तथा नौकरी में पदावनति होते देखी गयी है। जातक का तबादला घर से बहुत दूर होता है। उसका स्वभाव चिड़चिड़ा होता है और नये-नये रोग उत्पन्न होते हैं।

राहु की पापदशा में सर्प से भय, जानवर से भय, सर्वांग में रोग, शस्त्रघात, विरोध, झाड़ पर से गिरना, दुष्मनों से परेशानी—ये बातें होती हैं। जातक की बुद्धि बिगड़ जाती है। महाविभ्रम याने पागल की तरह इधर-उधर घूमना पड़ता है। चारों तरफ शून्य मालूम देता है, अर्थात् कहीं पर भी कोई सहारा नहीं

मिलता है। डर के मारे बड़ी कठिनता से जीवन की नौका पार करता है। कष्ट इतना होता है कि प्राणांतिक समझना चाहिए। बड़ी कठिन व्याधि भी आसन जमा सकती है। अपने परिवार जनों से वियोग होता है। धनहानि एवं अन्यान्य उपद्रव भी होते हैं। सारांश राहु की दशा जीवनान्त तक पहुँचा देती है। बंधन, कारागृहवास, दरिद्रता, सब प्रकार के दुःख तथा पाप, चिंता से व्याकुलता इत्यादि बातें होती हैं।

नीच या नीच राशिगत राहु हो, पापग्रह से युक्त हो, मारक ग्रहों से संबंध रखता हो तो सर्प से भय, स्थान भ्रष्टता, सौख्य और द्रव्य का नाश, स्त्री-पुत्रों से वियोग तथा उनकी वजह से दुःख, अतिशय रोग, परदेशगमन, विवाद वृद्धि, घरेलू झगड़ों से परेशानी, भाइयों के साथ विरोध, प्रेम के क्षेत्र में समाज में अपमानित तथा व्यसनों से युक्त—ये बातें होती हैं। नीच कार्यों में जातक को प्रेम होता है और उसके द्वारा साधारण आय भी कर लेता है। सिर में रोग, वातरोग तथा अन्य रोग होते हैं। आर्थिक संकट से वह तथा उसके परिवार के लोग पीड़ित होते हैं। और समाज से विरोध तथा झगड़े बढ़ते हैं।

छाती में दर्द, शत्रुभय, अग्निभय, विषभय, स्त्री, संतान, माता, पिता, पितामह, पितामही, मातामही अथवा मातामह की मृत्यु, मित्र तथा बांधवों का नाश, चोरभय तथा राज्य से भय इत्यादि बातें होती हैं।

कर्क, वृषभ, मेष—इन राशियोंका राहु हो तो उसकी दशा में धन-धान्य का लाभ, विद्या, विनोद, राजा से मान, स्त्री और नौकरी द्वारा सुख प्राप्त होता है।

कन्या, मीन, धनु—इन राशियों का राहु हो तो, उसकी दशा में पुत्र व स्त्री की प्राप्ति, देशाधिपत्य और नरवाहन प्राप्ति होती है। दशा के अन्त में सर्वनाश होता है।

सिंह, वृषभ, कन्या व कर्क—इन राशियों में राहु हो तो उसकी दशा में राजा, या राजसन्मान, वैभवशाली होता है। हाथी, घोड़े, सेना, वाहन, इन पर अधिकार प्राप्त होता है। सब प्रकार के जीवों पर उपकार करनेवाला, बहुत धन और सुख से परिपूर्ण और पुत्र, स्त्री इनमें अनुरक्त होता है।

(ये राशिफल—शुभ दशा में प्राप्त होते हैं।)

राहु की दशा के पूर्व काल में—दुःख, देहपीड़ा, मध्यम भाग में बहुत सुख, स्वदेश में धनलाभ होता है। दशा के अन्त में द्रव्यनाश तथा कष्ट पाता

है। स्थानभ्रष्ट, पितृनाश, पदच्युति, इत्यादि बातें होती हैं। राहु के दशावर्ष १८ होते हैं। उनमें से छठाँ तथा आठवाँ वर्ष अनिष्टकारी होता है।

१२वें भाव में राहु गया हो तो—देशत्याग, मानसिक रोग उत्पन्न करता है। स्त्री पुत्रों से विछोह होता है। कृषिधन, अन्न, सम्पत्ति का नाश होता है।

९वें स्थान में राहु गया हो तो—चोर, अग्नि, राजा से भय, लाभ का नाश, अपने हितैषी का नाश, प्रमेह, गुल्म, क्षय, पित्तरोग, त्वचा के रोग अथवा मृत्यु ये बातें होती हैं।

८वें स्थान में राहु गया हो तो—पुत्र, धन की हानि होती है। चोर, अग्नि, राजा से भय, तथा अपने कुलवालों से भय होता है। मृग, सिंह, भेड़िया आदि जंगली जानवरों से भय होता है।

गुरु की महादशा के फल (वर्ष १६)

गुरु की उत्कृष्ट दशा में, गुरु उच्च स्थान में, स्वक्षेत्र में, केन्द्र में, लाभस्थान में त्रिकोण में हो तो उसकी दशा में जातक को बहुत से ग्रामों में अधिकार प्राप्त होता है। जातक को किसी राजा के यहाँ पूर्ण सन्मान, धनधान्य, पुत्र, स्त्री, मित्र—इनकी प्राप्ति होती है। द्रव्यप्राप्ति के विशेष योग बनते हैं। नये-नये ग्रंथों का जातक निर्माण करता है। नौकरी में पदोन्नति होती है। इस दशा में व्यक्ति ख्याति प्राप्त करता है। बड़े-बड़े वरिष्ठ अधिकारियों से उसके मित्रतापूर्ण संबंध स्थापित होते हैं। एवम् विदेश जाने का अवसर बनता है। चुनाव में विजयी होकर उच्चपद भी प्राप्त कर सकता है। राज्य में अधिकार प्राप्त होता है। बुद्धि का विकास, आदर, साहस, नम्रता, विजय, सबको लाभ पहुँचाने वाले कार्यों की ओर प्रवृत्ति, राजकार्यों में चतुरता, अच्छी सलाह देना, न्यायपरायणता, सोना, वाहन, वस्त्र प्राप्ति, राजा तथा बड़े महात्माओं से आदर तथा उत्तम विचारों से प्रसन्नता इत्यादि बातें प्राप्त होती हैं। देवार्चन, तीर्थाटन एवम् धार्मिक कृत्यों में संलग्न होता है, शरीर में पूर्ण निरोगता, रत्नलाभ, शत्रुओं से विवाद में विजय, पर्याप्त सौख्य तथा मनोभिलषित कामों में सिद्धि—ये बातें होती हैं। परीक्षाएँ देना, परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना, उच्च श्रेणी की प्रतियोगिताओं में जातक सफल होता है। चित्त की शुद्धि, विभूतित्व,

ज्ञानाचार, ज्ञानादि कर्म की परिपूर्णता वेदान्तश्रवण, इष्ट सिद्धि, अन्नदान, इत्यादि फलों की प्राप्ति होती है। राज्य से पुरस्कार मिलता है। समाज में सन्मान होता है।

गुरु नीच राशि में होकर उच्च नवांश में हो तो राजा की कृपा, सुख, विद्या, बुद्धि, कीर्ति, धन इत्यादि वैभव देवाधिपत्य इनकी प्राप्ति होती है।

गुरु अपनी उच्च राशि में होकर नवांश में नीच राशि में गया हो तो भय, चोर, शत्रु, राजा के द्वारा निर्धनत्व, स्त्री पुत्र-इनसे द्वेष—ये बातें होती हैं।

गुरु की पापदशा हो, गुरु नीच, अस्त, वक्री पापग्रहों से युक्त, अष्टम, द्वादश स्थानगत या व्यभिचार राशिगत हो तो उसकी दशा में राजा से भय होता है, धैर्य छूट जाता है, भूमि तथा धन का नाश होता है, सम्वन्धियों से उसका विरोध बढ़ता है तथा मतिभ्रम से प्रत्येक कार्य में असफलता ही हाथ लगती है। गुप्त स्थानों पर रोग होने से व्यक्ति पीड़ित होता है एवं आय से खर्च अधिक होता है। चित्त में व्याकुलता, पापी तथा वुरे लोगों की तरफ से घृणा, दुष्ट स्वामियों की सेवा, मित्रों से झगड़ा खेती से हानि, नौकरों द्वारा चोरी, पुत्र, स्त्री तथा अपने से वूढ़े सम्वन्धी की मृत्यु, राजा की अप्रसन्नता, विना कारण द्वेष, अपनी सन्तान से झगड़ा, दिखलावट के लिये लोगों का भला चाहता है और इस प्रकार से उनको ठगकर पाप करना, धैर्यनाश, घात से नुकसान, पिता से क्षोभ, परीक्षा में असफलता प्राप्त होना, स्थानभ्रंश, तीर्थयात्रा में विघ्न, महान भय, पशुहानि, इत्यादि वातें होती हैं। व्याधि होना, पुत्र को रोग होना, प्लीहा, गुल्म रोग, कंटरोग, मतिभ्रम, दाह इत्यादि रोग होते हैं।

इतने पर भी कुल मिला कर गुरु की दशा जातक के जीवन में श्रेष्ठ ही सिद्ध होती है।

गुरु षष्ठ स्थान में हो तो उसकी दशा में	—प्रथम निरोगता, पुत्र-स्त्री लाभ और अन्त में स्त्री, धन हानि तथा चोर आदि से भय होता है।
गुरु अष्टम स्थान में हो तो उसकी दशा में	—सुख तथा अपने वन्धुओं की हानि, स्थान हानि, विदेशगमन, अनेक स्त्री, राजसन्मान, पुत्रादि लाभ, राजपुत्र से सन्मान इत्यादि।
गुरु द्वादश स्थान में हो तो उसकी दशा में	—वाहन आदि मिलते हैं तथा अनेक प्रकार के क्लेशों से दबकर विदेश गमन होता है।

गुरु की १६ वर्ष की महादशा में प्रथम—राजपूज्यता तथा धन प्राप्त होता है। मध्य में—पुत्रादि लाभ होते हैं और अंत में—कष्ट होते हैं।

शनि की महादशाके फल (वर्ग १९)

शनि की उत्कृष्ट दशा में वैभव, बुद्धि, नीति, यज्ञसिद्धि, क्षेत्र, नगर का आधिपत्य, व्यापार में दक्षता, तथा उत्सुकता, विभव, ज्ञान, यज्ञ, आदि फल मिलते हैं। अनेक प्रकार के व्यापार होते हैं।

शनि अपनी उच्च राशि में हो, स्वक्षेत्र में हो, मित्र क्षेत्र में हो, बलवान हो मूल त्रिकोण में हो, भाग्य स्थान में हो, तुंगांश में हो, शुभग्रहों से युक्त हो, केन्द्र में हो, त्रिकोण में हो, लाभ स्थान में हो, मीन राशि में, तथा धनु राशि में हो, तो राजसम्मान, वैभव, सत्कीर्ति, विद्यावाद का विनोद, महाराज प्रसाद द्वारा वाहन, आभूषण, राजयोग, सेनाधीश के अधिकार की प्राप्ति, अत्यन्त सुख, लक्ष्मी की कृपा कटाक्ष के चिन्हों के द्वारा विविध वैभव, घर में कल्याण, संपत्ति रूपी पुत्रादिक लाभ, महोत्साह, वस्त्रों की प्राप्ति, खच्चर, गधा, भेड़, बकरी, ऊँट, वृद्ध स्त्री, पक्षी, कुधान्य का लाभ, किसी संस्था शहर या गाँव के अधिकारकत्व से द्रव्य प्राप्ति, जंगली या आदिवासी लोगों का आधिपत्य इत्यादि फल प्राप्त होते हैं।

क्रय विक्रय से लाभ होता है। नीच एवं निम्न स्तर के कार्यों से धन संचय होता है। जातक नैतिकता एवं इमानदारी को तिलांजलि दे देता है। और येन केन प्रकारेण धन संचय में लग जाता है।

शनि की दशा भाग्योदय में भी पूर्ण समर्थ होती है। इस दशा में जातक अपने कुल तथा वंश के नाम उजागर करता है, तथा उसकी चतुर्दिक कीर्ति फैलती है। राजनीति के कार्यों में शनि की दशा सहायक होती है।

इस दशा में जातक को द्रव्य की विशेष प्राप्ति होती है। विदेश भ्रमण के योग भी बन सकते हैं। परन्तु इससे लाभ नहीं होता। मुकदमे में दशा के समय जीत होती है। जातक विलास और ऐशो-आराम का ज्यादा सुख भोगता है। और भोगोपभोग की कई वस्तुओं का संग्रह करता है। जनता में व्यक्ति की ख्याति फैलती है और स्त्री लाभ होता है। तथा वृद्ध स्त्री से संगम होता है। व्यक्ति की उन्नति तीव्रता से अग्रसर होती है। काम करने वालों के ऊपर प्रभुता मोटे अन्न से लाभ प्राप्त होता हैं।

नीच राशि में बैठे शनि की महादशा में, अस्त शनि की दशा में, छठे, आठवें, व्ययस्थान में स्थित शनि की महादशा में जातक को विष, शस्त्रादि से पीड़ा होती है। मनुष्य स्थानभ्रष्ट होता है। जातक को कोई भी झूठा अपवाद कलंक लगता है। उसे बंधन योग तथा जेल में जाने तक का योग बनता है। मित्रों से शत्रुता होती है, और मृत्यु का भी भय होता है। धनधान्य या स्त्री के

कारण महाशोक प्राप्त होता है। जातक जिस व्यक्ति से किसी चीज की आशा करे तो सब निष्फल हो जाती है। सारांश में चारों ओर शून्य प्रतीत होता है। अर्थात् जातक की खबर लेनेवाला उस समय कोई नहीं दिखाई पड़ता है।

जातक को मर्मस्थान की पीड़ा से दुःख भोगना पड़ता है। चर्मरोग होने के कारण कष्ट होता है। बन्धु बांधवों का वियोग भी सहना पड़ता है। कई प्रकार की विपत्तियाँ उसपर आती हैं और दिनों दिन ग्रहण उसपर बढ़ता ही है। बुरे लोगों की संगति होने से भी जातक का संचित धन नष्ट हो जाता है। उसे अपने मित्र, पुत्र, या स्त्री के द्वारा विश्वासघात भी होता है। इससे उसका हृदय सदैव चिंता से ग्रस्त रहता है। इस दशा में मृत्यु होती है अथवा मृत्युदायक पीड़ा होती है। दुःख, कफरोग, सिर में चक्कर, बड़ी शत्रुता, सुस्ती, मलिनता, सदा शराब के नशे में डुबा हुआ, नीच लोगों से स्त्री अथवा संतान से कलह, अंगों में चोट, प्रहार, पशु तथा भूमि का नाश, अपयश तथा अनेक प्रकार के दुःख—ये फल प्राप्त होते हैं।

राजकोप होता है। समय निष्फल होता है, विपरीत कार्य होते हैं। जो काम सिद्ध हो जाते हैं उनका भी नाश होता है। वध तथा बंधन होता है। माता पिता से वियोग होता है, स्त्री संग में विरक्ति भी होती है, कफ वातादि, पित्तादि रोग से कष्ट होता है।

शनि अपनी उच्च राशि में होकर नवांश में नीच राशि में गया हो तो उसकी दशा में पूर्वार्द्ध में सुख कारक फलों की प्राप्ति होती है और उत्तरार्द्ध में कष्ट कारक फल प्राप्त होते हैं।

शनि अपनी नीच राशि में होकर उच्च नवांश में गया हो तो दशा के अंत में सुख प्राप्त होता है। पूर्वार्द्ध में शत्रु और चोर इनसे भय, दुःख, परदेश गमन इत्यादि फल होते हैं।

शनि षष्ठ स्थान में गया हो तो—शत्रुपीड़ा, रोग, चोर और विष से पीड़ा, मकान, खेती का नाश होता है।

शनि अष्टम स्थान में गया हो तो—पुत्र, धन स्त्री का नाश, भृत्य हानि, पालतू पशुओं की हानि, भूमि का नाश होता है।

शनि द्वादश स्थान में गया हो तो—चोर अग्नि तथा राजा से भय, नाना प्रकार की आपत्ति, दुःख, परदेश गमन, बन्धु विनाश आदि फल प्राप्त होते हैं।

शनि की महादशा में—पूर्व में अति दुःख, स्त्री माता-पिता का नाश
मध्य में—विदेश गमन
अन्त में—पराये घर में निवास, पराया अन्न भोजन कराती है।

बुध की महादशा के फल (वर्ष १७)

बुध की दशा में आनन्द के प्रसंग, मकान तथा वाहन सुख, विजय प्राप्ति, इन वस्तुओं का लाभ, विद्या का लाभ इत्यादि प्राप्त होते हैं।

बुध अपनी उच्च राशि में हो, स्वक्षेत्र में हो, केन्द्र में हो, त्रिकोण में हो, लाभ स्थान में हो, मित्र क्षेत्र में हो तो जातक दिव्य (परम रमणीय) कन्याओं के अनेक प्रकार विलासादि से स्वर्गीय सुख का अनुभव करने वाला होता है। कई तरह से उसे धन का आगमन होता है। खजाने की वृद्धि होती है। इस अवसर पर जितनी कामनायें करें सब अनायास ही सिद्ध हो जाती हैं। इसमें संदेह नहीं। दिव्य स्त्रियों से संगम होने से सुख मिलता है। अनेक प्रकार के विलास होते हैं। चित्त प्रसन्न रहता है। सुवर्ण, रत्नादिक की प्राप्ति होती है। ईश्वर भक्ति में मन रमता है।

जातक विद्या तथा विज्ञान में निपुण होता है। नये-नये आविष्कार. हल, और उपाय सोचता है। कृषि में विशेष लाभ होता है। पुत्रों से सुख मिलता है और पुत्र की कीर्ति से वह सन्मानित होता है। धर्म सम्बन्धी सभाओं में, जुवा खेलने से मित्र से या अपने से बड़े बूढ़ों से लाभ, पढ़े लिखे तथा बुद्धिमान लोगों से आदर प्राप्त होता है। वस्त्र आदि लाभ; सोना, पीतल, कांसा, वाहन तथा भूमि से लाभ। लोगों में आदर, हर्ष, बुद्धिमत्ता, हंसी, दिल्लगी करना वगैरह प्राप्त होते हैं। धान्य का लाभ होता है तथा कल्याण और आनन्द होता है। अपने घर का सुख मिलता है। बाँधवों की विजय होती है तथा अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है।

जातक की व्यापार में वृद्धि होती है। दूर-दूर तक व्यापार फैलता है, तथा नये-नये सम्बन्ध स्थापित होते हैं। घर में पुत्रोत्सव होता है। परिवार में शुभ समाचार प्राप्त होते हैं, तथा लक्ष्मी का स्थाई निवास घर में होता है। गुरु, आप्तजन, मित्र इनके द्वारा धन प्राप्ति, कीर्ति तथा सुख प्राप्त होता है। इसी प्रकार दूतकर्म, द्यूतकर्म, अच्छे कर्म और चाँदी सुवर्ण के व्यापार से धन प्राप्ति होती है। बेरोजगार आदमी को भी नौकरी मिल जाती है। कारीगरी के कार्यों में रुचि उत्तरोत्तर बढ़ती है, तथा अधिक उद्यम, उद्योग होते हैं। जिसकी वजह से आय के एकाधिक स्रोत बढ़ते हैं।

बुध यदि नीच राशि में होकर, उच्च नवांश में हो तो उसकी दशा में प्रथम काल में फल नहीं मिलता, किन्तु दशा के अन्त में शुभ फल प्राप्त होते हैं।

धन धान्यादिक का लाभ, सत्कीर्ति, राजा की प्रीति, सत्कर्म तथा गुणों की अभिवृद्धि, स्त्री तथा पुत्रों का सुख, आरोग्य, दूध और भोजन का सुख प्राप्त होता है।

बुध यदि उच्च राशि में होकर नीच नवांश में गया हो तो दारिद्र्य तथा कर्म-ह्रास ये फल प्राप्त होते हैं।

बुध अपनी नीच राशि में हो, पापग्रह से युक्त हो तथा दृष्ट हो, वक्री तथा पापग्रहों के बीच निर्वली, अनिष्ट भाव में स्थित हो तो राजद्वेष, मन में क्लेश, साथियों से विरोध, विदेशगमन, वगैरे फल प्राप्त होते हैं। दूसरों की नौकरी करनी पड़ती है। वात, कफ, पित्तादि से पीड़ा होती है। उसके संचित द्रव्य का नाश होता है। वायु पीड़ा, पांडुरोग, राजा चोर तथा अग्निभय, खेतीवाड़ी, ढोरडंगर, भूमि का नाश इत्यादि बातें होती हैं।

मानसिक चिन्ता से जातक व्यथित होता है। छल-कपट युक्त कार्यों में लिप्त होने को विवश होता है। गुप्त रोग की सम्भावना रहती है तथा शस्त्र आदि से घायल, पीड़ित अथवा परेशान हो सकता है। झगड़े दुःख, वन्धन, चित्तपरिताप, कारागृह, सन्निपात आदि की बीमारी, मामा के द्वारा हानि, चित्तभ्रम तथा पागलपना, पाप प्रवृत्ति, बोलने के कारण लोगों में अप्रसन्नता इत्यादि बातें होती हैं।

परदेश गमन होता है, चित्त चलायमान रहता है। बुद्धि की हानि होती है। बुद्धि भ्रंश अथवा मतिष्क में किसी भी प्रकार विकार हो जाता है। लोगों से झगड़ा होता है। क्षेत्र तथा धन हानि और आपत्तियां आती हैं।

षष्ठ स्थान में बुध स्थित हो तो उसकी दशा में	—त्वचा के रोग, बुद्धिभ्रंश, वमन, विरेक, पित्तजन्य रोग, पांडुरोग इत्यादि होते हैं।
अष्टम स्थान में बुध स्थित हो तो उसकी दशा में	—राजा, अग्नि चोर तथा शस्त्र भय होता है। कृशता तथा मृत्यु होती है।
द्वादश स्थान में बुध स्थित हो तो उसकी दशा में	—राजद्वेष, मन में क्लेश, साथियों से विरोध, विदेश गमन, धन-हानि चित्तभ्रम आदि बातें होती हैं।

दशा के आरम्भ में—धनधान्यादि समृद्धियों का लाभ, विद्यालय, अति-सुख, पुत्र का कल्याण, सम्पत्ति, सन्मार्ग द्वारा धन का लाभ होता है।

दशा के मध्य में——राजसन्मान प्राप्त होता है।

दशा के अन्त में——दुःख प्राप्त होता है।

केतु की महादशा के फल (वर्ष ७)

केतु उच्च का होवे तो अपनी दशा में विजय, क्रूर विद्या द्वारा द्रव्य प्राप्ति, म्लेच्छ राजा द्वारा भाग्य की वृद्धि, कविता का आरंभ तथा शत्रु का क्षय होता है।

केतु केन्द्र में हो, त्रिकोण में हो, शुभ राशि में हो, शुभ ग्रहों से दृष्ट हो, अपनी उच्च राशि में हो, शुभ वर्ग में हो तो राज प्रीति, और मन की चिंता दूर करता है। देश तथा ग्राम पर सत्ताधिकार, वाहन सुख, पुत्र संभव, परदेश गमन या प्रवास, अन्य देशों में सुख, पुत्र तथा स्त्री का सुख, पशु लाभ इत्यादि बातें होती हैं। केतु तृतीय, षष्ठ तथा लाभ स्थान में स्थित हो तो सुखी करता है। ऐसा केतु वाहनों से युक्त करवाता है, राजवैभव दिलाता है। तथा मित्र सुख देता है। धन प्राप्ति भी करता है।

शुभ दृष्ट हो तो विशेष अर्थ की प्राप्ति, घर में शांति, राज्य में उन्नति, पदोन्नति तथा परम सुख प्राप्त होते हैं।

जातक को अचानक द्रव्य प्राप्ति होती है। पुत्र लाभ तथा स्त्री लाभ होता है और साधारण रूप से आय बढ़ती है। मनुष्य साहसी बनता है। उसे राष्ट्रीय कामों में सफलता प्राप्त होती है। सद्विद्या मिलती है। मित्र गृह तथा उच्च पद से लाभ। धर्म संवन्धी वादानुवाद, तीर्थ यात्रा, योगी तथा महात्माओं के दर्शन—ये बातें होती हैं, यदि केतु अच्छे स्थान में हो तो मनुष्य को मोक्ष प्राप्त होता है।

राहु की अपेक्षा केतु की दशा अधिकतर शुभ होती है। फिर भी इस दशा में जातक अपने कार्यों पर पछताता रहता है। जो भी योजनाएँ बनाता है वे असफल रहती हैं।

केतु पाप युक्त हो, द्वितीय, अष्टम तथा द्वादश में हो, पाप दृष्ट हो, तो दुष्ट लोगों द्वारा पीड़ा देता है। कृत्रिम रोगों से पीड़ा, संकट, धन नाश कराता है। शारीरिक कष्ट, राज कार्य में वार-वार स्थानांतर, मित्रों से बिगाड़, व्यर्थ का व्यय, धन हानि, बंधन, वंधुनाश, स्थानच्युति, मनोरोग, शूद्रों से मिलाप, लाभ की शून्यता तथा नाना प्रकार के रोग इत्यादि वातें होती हैं।

केतु की महादशा, जातक को अनेक प्रकार के विषाद, धनधान्य का नाश, करीब-करीब सब विपत्तियों का आगमन, कई अनर्थों की प्रवृत्ति, चारों तरफ

से भय, रोग, विपत्ति की वृद्धि तथा अन्ततः शरीर का भी अवसान हो जाता है। जातक कष्ट उठाता है एवं बंधुओं से विरोध सहने को विवश हो जाता है। व्यसनों से अपने आप को पतित कर देता है। उसके शिर तथा नेत्रों में रोग उत्पन्न होते हैं, एवं व्यापारों से लाभ प्राप्त होता है तथा स्त्री से हानि पहुँचती है।

शूल रोग—हड्डिओं के रोग, ज्वर, कम्प, चोर, वन्य पशु, संग्रहणी से दुःख, फोड़ा, फुन्सी, तथा अनेक रोगों से पीड़ा होती है।

ब्राह्मणों से द्वेष, मूर्खता के कर्म, कारागृह, विश्वास-पात्र मित्र तथा बांधवों से हानि, स्त्री वियोग से दुःख, द्रव्य हानि, कष्ट पर कष्ट तथा परदेश वास होता है।

षष्ठ स्थान में स्थित केतु की दशा में—राज कोप, वड़ाभय, चोर, अग्नि, विष से भय, फटे वस्त्र पहनने को मिलें।

अष्टम स्थान में स्थित केतु की दशा में—बड़ा भय, पिता की मृत्यु, श्वास, कास, संग्रहणी, क्षयरोग, इत्यादि।

द्वादश स्थान में स्थित केतु की दशा में—विशेष कष्ट, स्थान हानि, परदेश वास राजा से पीड़ा, नेत्र नाश इत्यादि।

दशारंभ में—वृद्ध जन, आप्तजन इनको बिमारी होती है।

दशामध्य में—द्रव्य प्राप्त होता है।

दशा अंत में—सौख्य प्राप्त होता है।

शुक्र की महादशा के फल (वर्ष २०)

शुक्र उच्च का, अपनी राशि का, वलवान, परमोच्च स्थान में हो, स्वोच्च स्थान में हो, केन्द्र में, पंचम नवम स्थान में, मीन राशि में हो, और उसकी शुभ दशा हो तो—मित्रों द्वारा बहुत आनन्द दायक पदार्थों का उपचार होता है। महासुन्दरी स्त्रियों के साथ संभोगादि विलास प्राप्त होते हैं। देश भर का परम यशस्वी राजा वनता है। जिसमें समस्त प्रजा की राजभक्ति अटल रहती है और उसे कई देशों का लाभ होता है। जातक को वाहन मोटर आदि के मनोरथ से परिपूर्ण करता है और बहुत समय तक उसकी राजलक्ष्मी खूब देदीप्यमान होकर विराजमान रहती है।

गाना, वजाना, नाचना, शिल्प कलाओं की तरफ प्रवृत्ति, सुगंधित पदार्थ, स्वादिष्ट भोजन, अच्छे-अच्छे वाहन, अच्छी पीने की चीजें, अच्छे वस्त्र, अच्छी स्त्रियाँ, विषय भोग, बड़ा असबाव, कोमल शय्या तथा तकिये, फूल, चन्दन,

पान की (ताम्बूल) प्राप्ति, दान देने की प्रवृत्ति, मित्र तथा आपसी लोगों से प्रेम, व्यापार में सफलता, निक्षिप्त धन का लाभ, खेती से लाभ, जायदाद वगैरे का लाभ तथा अनेक प्रकार के धन की प्राप्ति ये बातें होती है।

जातक इस दशा में विदेश भ्रमण करता है संतान में कन्या रत्न की प्राप्ति होती है और काव्य की नई पुस्तक रचने में सफल होता है। उसके व्यवसाय में उन्नति होती है, तथा व्यापारियों में साख जमती है। पशुओं से लाभ होता है। नेता, एम० पी० तथा एम० एल० ए० बनने का योग भी इस दशा में आता है। उद्यान, बाग बगीचे बनते हैं। शरीर सुख मिलता है। ध्वज, धन, धान्य की समृद्धि होती है। पुत्रपौत्रों से सुख मिलता है तथा द्रव्यलाभ होता है।

सुख, सौभाग्य वगैरे आठ प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। मण्डल का आधिपत्य, राजसन्मान तथा वैभव, मृदंग, वाद्यों का घोष, विद्यालाभ, संगीत में रुचि, ललित कलाओं में सम्मान प्राप्त होता है। तथा संगीत, चित्रकलादि में उच्चस्तरीय पुरस्कार प्राप्त होता हैं। व्यापारिक कार्यों के लिये यह दशा उत्तम कोटि की मानी जाती है। गृह, सम्पत्ति, विवाहादि मंगल कार्यों के उत्सव, सेनापतित्व, इष्ट वन्धुओं से मिलाप, नष्ट हुई सम्पत्ति फिर से प्राप्त होना, घर में गोधन का लाभ, पितृधन, आय के विविध स्रोत खुलना, राजा के समान भाग्य तथा यश प्राप्ति--ये बातें होती हैं।

इस दशा में जातक की काम चेष्टायें प्रवल होती हैं तथा घर में नये प्राणी का जन्म होता है।

शुक्र यदि नीच राशि में हो, पापग्रहों के साथ हो, निर्बली हो, पापग्रहों के बीच में हो तो शुक्र की दशा में जातक कई नये प्रकार के व्यसन पाल लेता है। मदन पीड़ा से सदैव पीड़ित रहता हुआ स्त्री से विशेष हानि उठाता है। इस योग में स्त्री से भी धनलाभ होता है तथा बन्धुओं से झगड़े होने के कारण मुकदमें बाजी में संचित द्रव्य की हानि होती रहती है। स्त्री पुत्रों से विरोध होता है। लोगों से घृणा, राज्य से अप्रसन्नता, दुष्ट आदमियों से झगड़ा, मित्रों के द्वारा दुःख, कन्या तथा स्त्री का नाश अथवा उनके द्वारा इंद्रियों का बलहीन होना, नीच जाति कीं स्त्रियों से संगम तथा कलह स्वयं की चिन्ता से हृदय पर भी बुरा असर पड़ना इत्यादि बातें होती हैं। चाँदी वस्त्र तथा मोती इनकी हानि, पशुहानि, गिरने से चोट, अथवा आकस्मिक भय, शस्त्र भय, नीच मनुष्य के द्वारा धन हानि, नीच जन्तु से दुःख तथा स्त्री को रोग--इत्यादि बातें होती हैं। बात कफ, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, आदि नई-नई व्याधियाँ आ घेरती हैं।

शुक्र षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश स्थान में, शत्रु की राशि में, निर्बल तथा नीच का हो तो बन्धुजनों के साथ द्वेष, स्त्री वर्ग से पीड़ा, व्यापार में निष्फलता, जानवरों की हानि, स्त्री तथा पुत्रों को पीड़ा, स्वबंधु वियोग होता है। गुप्ताङ्ग में रोग (गरमी, पामा, मूत्रकृच्छ्र), चित्त संताप, मित्रों का विरोध, स्त्री से कलह तथा धन हानि होती है।

शुक्र यदि द्वितीय, तथा सप्तम का स्वामी हो तो देहपीड़ा होती है।

शुक्र यदि अपनी नीच राशि में होकर उच्च नवांश में हो तो उसकी दशा में कृषि, व्यापार, इनकी वृद्धि होती है, द्रव्य प्राप्ति होती है।

शुक्र यदि अपनी उच्च राशि में होकर नीच नवांश में हो तो उसकी दशा में धन नाश तथा स्थानच्युति होती है।

शुक्र यदि भाग्य अथवा कर्म का अधिपति होकर लग्न अथवा चतुर्थ स्थान में गया हो तो, उसकी दशा में महान् सुख, देश या ग्रामपर अधिकार, देवालय तथा तालाब का निर्माण करना, पुण्य कर्म का संग्रह इत्यादि बातें होती हैं। अन्नदान, महासुख, नित्य मिष्ठान्न भोजन, उत्साह, कीर्ति, सम्पत्ति, स्त्री पुत्र धन वगैरे की प्राप्ति होती है।

अपनी अन्तर्दशा में इस प्रकार के फल मिलते हैं, अन्य फल दूसरी अन्तर्दशा में मिलते हैं।

द्वादश स्थान में शुक्र हो तो उसकी दशा में--अन्न, धन, राजासे सन्मान मिलता है तथा स्थान हानि, परदेश गमन, माता का वियोग, और मन का विलास--ये बातें होती हैं।

अष्टम स्थान में शुक्र हो तो उसकी दशा में--शस्त्र, अग्नि, चोर से भय प्राप्त होता है। कार्य में विघ्न होता है। कभी सुख, कभी धन, कभी राज्य से यश मिलता है।

अष्टम स्थान में शुक्र हो तो उसकी दशा में--अन्न, धन, पुत्र, भाई का नाश होता है। कोई बड़ा रोग उत्पन्न होता है। कार्य हानि होती है। शत्रु, राजा, अग्नि तथा चोर से भय होता है।

अन्तर्दशा फल

सूर्य की महादशा में सभी ग्रहों की अन्तर्दशा का फल

सूर्य की महादशा में सूर्य का अन्तर (३ माह १८ दिन)

यदि सूर्य उच्च क्षेत्र में गया हुआ हो, केन्द्र में हो, त्रिकोण तथा लाभस्थान में हो तो, उसकी अन्तर्दशा में धनधान्यादि का लाभ होता है। सन्मान, उन्नति,

पदोन्नति, धनलाभ, विवाह और कार्य सिद्धि होती है। ब्राह्मण, राजा, शस्त्र, वगैरे से धन प्राप्ति होती है। किसी राजा या राज्य से आर्थिक लाभ होता है। अन्यथा-विपरीत फल होता है।

देह रोग, जातक के मन में द्वंद्व, अशांति, खिन्नता एवं चिंता रहती है। परदेश में अथवा जंगल में भटकना पड़ता है। पित्त बिगड़ जाने से शरीर में पीड़ा होती है। जातक के परिवार को भी कई आपत्तियाँ आ घेरती हैं तथा चारों तरफ केवल खर्च ही खर्च दिखाई पड़ता है। कहीं से भी आय की आशा नहीं होती। नौकरी में स्थानभ्रष्टता स्थानांतर तथा राजकीय संकट और पदावनति के योग आते हैं।

सूर्य की महादशा में चन्द्रमा का अन्तर (६ मास)

चन्द्रमा लग्न स्थान से केन्द्र वा त्रिकोण में स्थित हो, तो धनधान्यादि समृद्धि करने वाली सम्पत्ति मिलती है, अन्यथा मकान खेत, पशु, वाहन वगैरे सम्पत्ति प्राप्त होती है।

चन्द्रमा उच्च का या स्वगृह का हो, तो जातक को स्त्री की तरफ से सुख, धनलाभ, पुत्र लाभ का सुख, राजसमागम, राजा की प्रसन्नता से इष्ट कार्य सिद्धि तथा सुख मिलता है।

चन्द्रमा महादशा स्वामी से लाभ स्थान में, भाग्य स्थान में, केन्द्र तथा शुभग्रहों से संयुक्त यदि हो तो उत्तम वैभव, सुख, भाग्योदय, सन्तोष, स्त्री तथा पुत्र की वृद्धि, राज्य से लाभ महान सुख, स्थायी नेमजूक, विवाह, यज्ञादि, वस्त्राभूषण, वाहन, धान्य, वस्त्रालंकार लाभ, पुत्रपौत्रादि लाभ, सुख वृद्धि वगैरह प्राप्त होते हैं।

चन्द्रमा की शुभ दशा में रोगी व्यक्ति रोग से मुक्त हो जाता है। आप्त-मित्रों से धन प्राप्ति होती है। जातक को किसी बड़े मुकदमे में विरुद्ध पार्टी से सन्धि होगी। विदेश यात्रा होगी एवम् हर तरह से उन्नतिकारक अन्तर्दशा का काल होगा।

यदि लग्न में चन्द्रमा क्षीण अथवा पापग्रहों से युक्त हो तो स्त्री तथा पुत्र को पीड़ा. विषमता, लोगों से तकरार, चाकर वर्ग का नाश, विरोध, राजद्वार —कोर्ट में कर्ज्जा, धनधान्य, पशु का क्षय होता है। यदि चन्द्रमा ६।८।१२वें भाव में गया हो तो जल से भय, मन में क्लेश, बन्धन, रोगपीड़ा, स्थानच्युति, खराब स्थान में वास, भागीदारों के साथ विरोध, निर्धनता, कुत्सित अन्न की प्राप्ति, चोर और राजा की तरफ से पीड़ा, मूत्रकृच्छ्र वगैरह रोग तथा देह पीड़ा होती है।

सूर्य की महादशा में मंगल की अन्तर्दशा (४ मास ६ दिन)

मंगल स्वयं उच्च स्थान में और लाभ स्थान में हो अथवा त्रिकोणस्थान में लग्न से केन्द्र वा त्रिकोण में हो ,तो शुभकार्य होता है । अन्यत्र जमीन का लाभ, खेतीबाड़ी से लाभ, धनधान्यादि की वृद्धि गृह (मकान) तथा क्षेत्र वगैरह की प्राप्ति तथा रक्तवस्त्रों का लाभ होता है

मंगल लग्नाधिपति से युक्त हो तो सुख, राजा की प्रसन्नता वगैरह होती है । भाग्य और लाभ के अधिपतियों से युक्त हो तो जरूर लाभ होता है । अन्यत्र बहुत-सी सेना का आधिपत्य, शत्रु का नाश, मन की दृढ़ता, स्वयं के बन्धुओं का सुख, भाई-बन्धु की वृद्धि होती है । मंगल की शुभ अन्तर्दशा में नया मकान बनता है । व्यापार से लाभ तथा मुकदमे में जीत होती है । रत्न, सुवर्ण की प्राप्ति, राजा से स्नेह व पित्त रोग की पीड़ा होती है। किसी धनाढ्य व्यक्ति के यहाँ से सुवर्ण, मोती, बहुमूल्य मूँगा आदि का लाभ होता है । जहाँ कहीं भी जाये वहीं पर पूरा आदर प्राप्त करता है ।

महादशा स्वामी से मंगल ६।८।१२वें स्थान में हो तथा पापग्रहों से युक्त हो वा दृष्ट हो तथा वह आधिपत्य और बलरहित हो, क्रूर बुद्धि , मन में चिंता, कारागार में प्रवेश, बेड़ी का बन्धन, बन्धुओं का नाश, भाई-बन्धुओं से विरोध अथवा कार्य में निष्फलता होती है।

मंगल यदि नीच स्थान में गया हो तो राजा द्वारा धन का क्षय होता है । द्वितीय सप्तम स्थान का अधिपति होवे तो देह की जड़ता तथा मानसिक चिन्ता होती है । पित्त रोग की पीड़ा होती है ।

सूर्य की महादशा में राहु की अन्तर्दशा (१० मास २४ दिन)

सूर्य के अन्तर्गत राहु यदि लग्न से केन्द्र, त्रिकोण में गया हो तो प्रथम दो मास तक धननाश तथा अतिभय रहता है । अन्यत्र चोर, सर्प, फोड़ा-फुन्सी की पीड़ा का भय तथा स्त्री-पुत्रादि को पीड़ा होती है । उसके बाद शेष समय में सुख की प्राप्ति होती है ।

राहु यदि शुभ ग्रह से युक्त तथा शुभग्रह के नवांश में हो तो आरोग्य, मन में सन्तोष, राजा से सुख देता है ।

लग्न से उपचय स्थान (३–६–१०–११) में हो, कारक ग्रहों के साथ हो अथवा महादशा के स्वामी से नवम राशि में आया हो तो राजसन्मान और कीर्ति प्राप्त होती है । भाग्यवृद्धि, कीर्तिलाभ, स्त्री-पुत्रादिकों को पीड़ा, पुत्रोत्सव वगैरह, राज्योन्नति, धनलाभ एवम् विदेश यात्रा होती है । घर में मंगल होता है ।

महादशा स्वामी से ६-८-१२ स्थान में हो तो बन्धन, स्थाननाश, कारागृह में प्रवेश, चोर, सर्प, व्रण का भय, स्त्री तथा पुत्र की चिन्ता, पालतू जानवरों का नाश, मकान, खेती-वाड़ी, का नाश, पेट में शूल, क्षय तथा अतिसार रोग से पीड़ा होती है ।

राहु की अन्तर्दशा में अकाल मृत्यु, पीड़ा, आप्तवर्ग, और शत्रु से दुःख, पदच्युति होती है । हर काम करते समय मन में एक प्रकार की शंका उपस्थित हो जाती है । प्रायः व्याधित रहने के कारण कार्य मात्र से अनवसर क्रोध आता है । (यह दुर्भाग्य का लक्षण है) धन एवम् आत्मीय परिजनों का नाश होता है । इस दशा में बहुधा अशुभ ही होते रहता है । कभी शुभ वार्ता की झलक तक नहीं दिखाई पड़ती ।

राहु द्वितीय तथा सप्तम स्थान में हो या उनके स्वामियों से युक्त हो तो अपमृत्यु का भय तथा सब प्रकार का भय सम्भव होता है ।

सूर्य की महादशा में गुरु की अन्तर्दशा (९ मास १८ दिन)

गुरु लग्न से केन्द्र, त्रिकोण में गया हो, स्वयं की उच्च राशि में अथवा मित्र वर्ग में स्थित हो, तो विवाह तथा राजा के साथ मिलाप होता है । अन्यत्र धनधान्यादि लाभ, पुत्र लाभ, अति सुख महाराज की प्रसन्नता इष्ट कार्य में लाभ, ब्राह्मण तथा विप्रस्वजन वर्ग की तरफ से सम्मान, प्रियवस्त्रों का लाभ वगैरे फलोत्पत्ति होती है । गुरु यदि भाग्य अथवा कर्म का अधिपति हो तो राज्यलाभ तथा महोत्सव होता है । मनुष्य, वाहन, स्थान की वृद्धि तथा अतिसुख प्राप्त होता है ।

महादशा स्वामी से गुरु नवम राशि में स्थित हो तो सुखावह, भाग्यवृद्धि होती है । अन्यत्र दान, कर्म क्रिया देवताराधन, अत्यन्त भक्ति, मन कामना की सिद्धि, पुण्य कर्मों का संग्रह वगैरे फल मिलते हैं ।

गुरु की शुभ अन्तर्दशा में पुत्र प्राप्ति, मंगल कार्य, पुत्र-पुत्री का विवाह, धनलाभ, पदोन्नति एवं शुभ कार्य होते हैं । सर्वत्र पूज्यता, पुत्र से धनप्राप्ति, देवता, ब्राह्मणों की सेवा, सदाचार, सत्कथा श्रवण—यें वातें होती हैं ।

जातक के शरीर में जितनी व्याधियाँ रहें, वे सब जल्द दूर हो जाती है । दारिद्रय हटकर लक्ष्मी का शुभागमन होता है । धर्म सम्बन्धी वातों में दत्तचित्त होने से किसी धार्मिक संस्था की तरफ से कोई उच्च पदवी मिलती है ।

महादशास्वामी से ६।८।१२ अथवा अन्य स्थान में नीच का अथवा पापग्रह-युक्त हो तो स्त्री तथा पुत्र को पीड़ा, देह पीड़ा तथा महाभय उत्पन्न

होता है। राजकीय और इष्ट वस्तु का नाश होता है। पाप के रास्ते धननाश, देहभ्रष्टता और मानसिक रोग होता है। मानसिक चिन्ता बढ़ी चढ़ी रहती है।

सूर्य की महादशा में शनि की अन्तर्दशा (११ मास १२ दिन)

शनि लग्न से केन्द्रस्थ वा त्रिकोणस्थ हो तो उसकी अन्तर्दशा में शत्रुनाश, अतिसुख, स्वल्प धान्य तथा द्रव्यलाभ, विवाह, उत्सव तथा मंगल कार्य होते हैं।

शनि उच्च स्थान में अथवा स्वक्षेत्र में या मित्रग्रह से युक्त हो तो घर में कल्याण, सम्पत्ति, विवाह वगैरे सत्कार्य, राजसन्मान, कीर्ति, विविध वस्त्र तथा धन प्राप्ति होती है। कोर्ट कचहरी के कामों में विजय प्राप्त होती है, तथा पुत्रोत्सव होता है।

महादशानाथ से ६।८।१२ वें स्थान में हो अथवा पापयुक्त हो तो, वायु, शूल वगैरे महाव्याधि, ज्वर तथा अतिसार की पीड़ा, बन्धन, कार्य में विफलता, द्रव्यनाश, महाभय, अकस्मात संत्रास, पितृगणों के साथ विरोध होता है, जातक पापकर्म करने में रत, वातरोग, कलह तथा कफादि रोग होते हैं। सर्वत्र शत्रुत्व, आलस्य, हलके काम करने की तरफ प्रवृत्ति, मन को दुःख राजा या चोर से भय, यह बातें होती है। जातक को राजसंग हो, सारे शक्तियों का नाश हो, मित्र मंडल एवं अपने परिवार से वर्जित हो तथा हर तरह से विफलता आ जावे—ये बातें होती हैं। शनि द्वितीय और सप्तम का अधिपति हो तो अपमृत्यु होती है।

शनि की अन्तर्दशा में प्रारम्भ में मित्रहानि, मध्य में कई एक सुख और अन्त में क्लेश, माता-पिता का वियोग, दौड़ धूप वगैरे फल होते हैं।

सूर्य की महादशा में बुध की अन्तर्दशा (१० मास ६ दिन)

बुध उच्च स्थान में वा नक्षत्र में गया हो और बुध लग्न से त्रिकोण वा लाभ स्थान में अपने वर्ग बल से युक्त होकर रहा हो तो राज्यलाभ, अति उत्साह, स्त्री पुत्र का सुख, महाराज की कृपा से वाहन, वस्त्र तथा आभूषणों की प्राप्ति, पवित्र तीर्थ यात्रादि फल की प्राप्ति, घर में गौरूपी धन की वृद्धि होती है।

बुध यदि भाग्य या लाभ स्थान में हो, लाभेश से युक्त हो तो लाभ में वृद्धि करता है।

बुध यदि भाग्य तथा पंचम स्थान में, या कर्म स्थान में हो तो सन्मान, स्वकर्म करने में मति, धर्म बुद्धि, गुरु तथा ब्राह्मणों की पूजा, धनधान्यादि से परिपूर्ण, विवाहोत्सव पुत्र जन्म वगैरे फल देता है।

महादशास्वामी के स्थान से शुभ राशि में हो तो बुध की अन्तर्दशा में अति सुख, विवाह सम्बन्ध, यज्ञकर्म, दान धर्म, जप, स्वयं की नाम वाली कविता या ग्रंथ की रचना द्वारा कीर्ति, भोजन, वस्त्र, आभूषण वगैरे फल प्राप्त होते हैं, तथा मनुष्य इन्द्र के समान वैभव वाला होता है। यह अन्तर्दशा सुखदायक, सौभाग्य वर्धक एवं व्यापार में उन्नति करने वाली होती है।

दशानाथ से बुध यदि ६।८।१२ स्थान में, अपनी नीच राशि में हो तो देह पीड़ा, मनस्ताप, स्त्री पुत्र को पीड़ा वगैरे होती है। आंतों को पीड़ा, मन को पीड़ा, निरुत्साह, धननाश, किंचित सुख—ये बातें होती हैं। जातक को विसूचिका आदि महासंक्रामक रोगों द्वारा क्लेश, कष्ट एवं दारिद्रय प्राप्त होता है। दवाई, पथ्य करते-करते धन का भी अन्त हो जाता है। तथा शरत्कालीन धान्य (धान) की उपज एकदम कम हो जाती है।

बुध यदि द्वितीय या सप्तम स्थान का स्वामी हो तो उसकी अन्तर्दशा में देह जड़ता, ताप तथा धननाश होता है।

अन्तर्दशा के शुरुआत में दुःख, मध्य में कई एक सुख तथा अन्त में राज-भय बार-बार आना जाना होता है।

सूर्य की महादशा में केतु की अन्तर्दशा (४ मास ६ दिन)

केतु की अन्तर्दशा में देह पीड़ा, मनोव्यथा, खर्च, राजा का कोप और स्वजनों से उपद्रव होता है। लग्नेश से युक्त हो तो प्रथम सुख और धनप्राप्ति होती है। मध्य में क्लेश, मृत्यु की खबर, मुसाफरी वगैरे फल प्राप्त होते हैं।

महादशा नाथ से पापग्रह युक्त केतु ६।८।१२ वें स्थान में हो तो अन्तर्दशा में गाल में या दाँतों में रोग और मूत्रकृच्छ्र की सम्भावना रहती है। इसके अलावा स्थान भ्रष्टता, अर्थ हानि, पिता की मृत्यु, विदेश गमन, शत्रु पीड़ा और महान भय होता है।

इस अन्तर्दशा में मनःस्ताप, कुटुम्बियों में वैमनस्य, शत्रु भय, पदच्युति, अथवा नेत्ररोग होता है। कंठ रोग, मन को पीड़ा तथा अकाल मृत्यु प्राप्त होती है। जातक अपना देश छोड़कर विदेश के लिये भाग जाता है, परिवार के अधिक लोग मर जाते हैं। धन सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। तथा चारों तरफ से अशुभ होता है।

द्वितीय या सप्तम स्थान में केतु हो तो अपमृत्यु का भय होता है।

लग्न स्थान से कारक योग वाला केतु, उपचय स्थान में गया हो, शुभांश में हो तथा शुभवर्गी हो तो शुभ कर्म में फल देने वाला होता है।

स्त्री पुत्रादि का सुख, सन्तोष, आनन्दवृत्ति, रंगी बेरंगी वस्त्र लाभ और सुख कारक यश की वृद्धि करता है।

सूर्य की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा (१२ मास = १ वर्ष)

शुक्र लग्न से त्रिकोण में, चन्द्रमा के साथ, अपने उच्च स्थान में, मित्र स्थान में, अपने वर्ग में हो तो, मन के लायक स्त्री की प्राप्ति तथा उपभोग सम्पत्ति, दूसरे ग्राम में प्रयाण, ब्राह्मण जाति के राजा से मिलाप, राज्यलाभ, महान उत्साह, छत्रचामर का राजवैभव, घर में मांगलिक सम्पत्ति, नित्य मिष्ठान्न भोजन, रत्नलाभ, मोती तथा वस्त्रलाभ, पशुप्राप्ति, बहुत धनधान्य की प्राप्ति, उत्साह की वृद्धि, कीर्ति तथा नौकर चाकर तथा वाहन वाली सम्पत्ति रूपी फल होता है।

जलोद्भव पदार्थों से द्रव्य प्राप्ति, सम्पत्ति लाभ, राजसम्मान, यश लाभ एवं विविध सुख प्राप्त होते हैं। शुक्र छठे तथा बारहवें भी हो तो भी धन दाता ग्रह बन जाता है आठवें शुक्र की अन्तर्दशा बदनामी कराती है।

महादशानाथ से ६।८।१२ में निर्बली शुक्र हो तो राजा का कोप, मन में क्लेश, पुत्र, स्त्री तथा धन का नाश होता है।

अन्तर्दशा के आरम्भ में वाहन प्राप्ति, मध्य में शुभकारक लाभ, अन्त में यश का नाश, स्थान भ्रष्टता, बन्धुओं के साथ द्वेष, अपने कुल के लोगों की सामग्री का नाश वगैरे होता है।

अन्तर्दशा में सिर में पीड़ा, नेत्ररोग, ज्वर, अतिसार एवं शूल इन बीमारियों के कारण शरीर में बड़ा क्लेश होता है। अतिश्रम, बुरी चालचलन वाली स्त्री से भोग तथा निरर्थक सम्भाषण, ये बातें होती हैं।

द्वितीय सप्तम स्थान का स्वामी हो तो शुक्र अपनी अन्तर्दशा में देह पीड़ा करता है। अष्टम या द्वादश स्थान से युक्त हो तो अपमृत्यु कराता है।

चंद्रमा की महादशा में सभी ग्रहों की अन्तर्दशा का फल

चंद्रमा की महादशा में चंद्रमा की अंतर्दशा (१० मास)

अपने उच्च स्थान में, स्वक्षेत्र में, लग्न से त्रिकोण में या लाभ स्थान में चन्द्रमा गया हो और वह भाग्य और कर्म स्वामिओं से युक्त हो तो अपनी अन्तर्दशा में गाय, बकरा, हाथी, घोड़ा, भूमि, बहुधन और वैभव वगैरे की प्राप्ति होती है। देवता तथा गुरुभक्ति, कीर्तिप्रसार, राज्यलाभ, महान सौख्य तथा सुख कारक यश की वृद्धि होती है। यदि चन्द्रमा पूर्ण हो तो अपनी अन्तर्दशा में परिपूर्ण बल, सेनाधिपतित्व और अति सुख प्राप्त होता है।

यश, लाभ, अक्षय कीर्ति, पुस्तक लेखन, राज्योन्नति, कन्या का जन्म, कन्या विवाह एवं मंगल कार्य सम्पन्न होते हैं। इस दशा में उत्तम व्यक्तियों से परिचय होता है। विद्या, स्त्री, गायन वादन में अभिरुचि, उच्च वस्त्रों की प्राप्ति, साधु समागम, देह सौख्य, राजा प्रधान सेनापति इनको पूज्य ये बातें होती हैं। स्त्री पुत्र का लाभ, आभूषणों की प्राप्ति, अपने पक्षपातियों के द्वारा कल्याण की वृद्धि होती है। परन्तु अनवसर में निद्रा की अधिक इच्छा होती है।

पापग्रहों से युक्त चन्द्रमा हो, अपनी नीच राशि में ६–८–१२ के भाव में गया हो तो तत्काल धन नाश, स्थान भ्रष्टता शरीर में आलस्य, राजा या मन्त्री तथा वरिष्ठ अधिकारियों से नौकरी में विरोध, माता को क्लेश, मन में दुःख, वन्धन, वेड़ी पड़ना तथा बंधुनाश होता है। व्यर्थ का भ्रमण होता है। स्थानान्तर होता है, व्यर्थ व्यय, खिन्नता एवं राज्य विरोध होता है।

माता को दारुण कष्ट अथवा माता की मृत्यु भी होती है।

द्वितीय, सप्तम स्थान का स्वामी होकर ८।१२ स्थान से युक्त हो तो देह जड़ता, बड़ी हानि, पराभव तथा अपमृत्यु भी सम्भव होती है। दुर्घटना होती है।

चन्द्रमा की महादशा में मंगल की अन्तर्दशा (७ मास)

मंगल लग्न से केन्द्र में अथवा त्रिकोण में हो तो उसकी अन्दर्दशा में, सौभाग्य, राजसम्मान, वस्त्राभरण तथा आभूषण, यत्न सिद्धि, कार्य सिद्धि, निःसंशय होती है। मकान, खेत आदि की वृद्धि और व्यवहार में जय होती है।

उच्च स्थान में, स्वगृह में हो तो उसकी अन्तर्दशा में कार्य लाभ तथा अति सुख प्राप्त होता है।

मंगल ३–६–११ वें स्थान में गया हो तो अपनी अन्तर्दशा में, राज्यवृद्धि, पदवृद्धि, समाज में सम्मान तथा विजय प्राप्त करता है।

मंगल ६–८–१२ स्थान में गया हो, पापग्रहों से युक्त हों, महादशानाथ से अशुभ स्थानों में हो, नीच, वक्री तथा अस्तंगत हो तो जातक को अग्नि चोर से हमेशा भय रहता है। स्थान च्युति के प्रसंग आते हैं। रोग, विरोध बुद्धि, स्थाननाश, धनक्षय, मित्र और भाइयों से क्लेश होता है। खेतीबाड़ी में नुकसान होता है तथा व्यवहार में हानि होती है। इसके सिवाय नौकर वर्ग से रहित, राजा से विरोध, स्वबन्धुओं से वियोग, नित्य कठोर भाषण वगैरे फल होता है।

द्वितीय, सप्तम स्थान का स्वामी हो, अथवा अष्टम, नवम स्थान में ही पड़ा हो तो भी उपरोक्त फल मिलते हैं।

चन्द्रमा की महादशा में राहु की अन्तर्दशा (१८ मास = १ व. ६ मा.)

लग्न से केन्द्र में अथवा त्रिकोण में हो तो प्रारम्भ में स्वल्प फल देता है। इसके सिवाय शत्रुपीड़ा महाभय, चोर, सर्प तथा राजभय, चतुष्पादों से पीड़ा, बन्धुनाश, मित्र हानि, मानहानि तथा मनोव्यथा होती है।

शुभ ग्रह से युक्त, शुभग्रह से दृष्ट, लग्न से उपचय स्थान में, अथवा योग कारक से सम्बन्ध करता हो तो कार्यसिद्धि होती है। नैर्ऋत्य दिशा और पश्चिम दिशा में किसी उत्तम पुरुष से समागम होता है। वाहन तथा वस्त्रलाभ और इष्टकार्य की सिद्धि होती है।

महादशा नाथ से केन्द्र में त्रिकोण में, तृतीय और लाभ स्थान में हो तो पवित्र तीर्थ के फल की प्राप्ति, देवदर्शन तथा परोपकार, वगैरे पवित्र धर्म का संग्रह होता है।

महादशानाथ से ६।८।१२ में बल रहित राहु हो तो स्थानभ्रष्टता, मन में दुःख, पुत्र का क्लेश, अत्यन्त भय, राजकार्य में नुकसान, स्त्री को पीड़ा तथा बिच्छू, चोर सर्प और राजा की तरफ से पीड़ा होती है। मनस्ताप, अर्थक्षय एवं चिन्तायें बढ़ती हैं। शत्रु और रोग से क्लेश, आप्तजनों का नाश होता है। थोड़ा भी सुख नहीं मिलता है। अग्नि द्वारा भय प्राप्त होता है। जातक के मन में उद्वेग आता है।

द्वितीय, अष्टम स्थान में राहु हो तो अन्तर्दशा में देह पीड़ा होती है।

चन्द्रमा की महादशा में गुरु की अन्तर्दशा (१६ मास = १ व. ४ मा.)

गुरु लग्न से केन्द्र में अथवा त्रिकोण में गया हो, स्वराशि में लाभस्थान में अथवा अपने उच्च स्थान में गया हो तो राज्य से लाभ, महोत्सव, वस्त्र, अलंकार, भूषण, राजप्रीति, धनप्राप्ति, राज्य से सन्मान, कीर्ति, इष्टदेव की प्रसन्नता से गर्भ धारणादि फल, सत्कार्य, घर में लक्ष्मी की कृपा, पृथ्वी, हाथी, घोड़े से युक्त, राजाश्रय से धन, तथा महाराज की प्रसन्नता द्वारा सुखदायक इष्ट सिद्धि वगेरे फल की प्राप्ति होती है।

महादशानाथ में केन्द्र, त्रिकोण, तृतीय तथा लाभ स्थान में, गुरु गया हो भोजन, वस्त्र, पशु लाभ, महोत्सव, भाई बन्धुओं वगैरे का आनन्द, धैर्य, पराक्रम बल, यज्ञकार्य, विवाह, राज्यलक्ष्मी, धन सम्पत्ति, वाहन आदि फलों की प्राप्ति होती है।

गुरु ६।८।१२ में, नीच स्थान में, अस्तंगत हो पापयुक्त हो तो पिता तथा पुत्र का नाश, स्थान भ्रष्टता, मानसिक व्यथा, अकस्मात् कलह, मकान तथा खेती-बाड़ी का नाश, वाहन तथा वस्त्रों का नाश होता है।

महादशानाथ से ६।८।१२ वें स्थान में गुरु हो, बलहीन हो, नीच राशि में हो। अस्तंगत हो, वक्री हो तो पदच्युति, अर्थनाश, दुःख, खराब अन्न प्राप्त होता है विदेश गमन सूचित करता है।

अन्तर्दशा के प्रारम्भ में अच्छा फल, परन्तु मध्य में क्लेश कारक ोता है।

सप्तम स्थान का स्वामी हो तो मृत्यु होती है।

चंद्रमा की महादशा में शनि की अन्तर्दशा (१९ मास = १ व. ७ मास)

लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, स्वक्षेत्र में, अपने उच्च नवांश में शुभग्रह से युक्त वा दृष्ट, स्थानबली शनि हो तो अपनी अन्तर्दशा में धनधान्य की वृद्धि एवं धन स्रोत बनते तथा अपने व्यापार में बड़ा लाभ, बाग-बगीचे की वृद्धि इत्यादि फल मिलते हैं। पुत्र लाभ, कल्याण तथा राज्य के अनुग्रह से वैभव की प्राप्ति होती है।

शनि ६।८।१२ में गया हो तो अन्तरदशा के प्रारम्भ में पवित्र तीर्थ में स्नान तथा दर्शन होता है। और जातक को शस्त्र से पीड़ा होती है।

शनि की अन्तर्दशा में उदर पीड़ा, मस्तिष्क में शूल, मातृ वियोग, स्वजन विछोह तथा कई कष्टों का सामना करना पड़ता है। माता को पीड़ा होती है। मन में दुःख, बात पित्तात्मक पीड़ा- मूकत्व और शत्रु के साथ वाद-विवाद होता है। जातक को अपने परिवार के सम्बन्ध में उद्वेग लगा रहता है। शोक एवं भय प्राप्त होता है। हानि, व्यसन (नशा) तथा अन्य कई दोष उसे घेरे रहते हैं और जो कुछ भी काम करता है सब में महासंदेह उपस्थित होता है।

द्वितीय, सप्तम तथा अष्टम में हो तो अन्तर्दशा में देह पीड़ा करता है।

महादशा नाथ से केन्द्र में, त्रिकोण में अथवा बलवान हो तो कभी भी सुख और धन की प्राप्ति अन्तर्दशा में होती है। धनधान्य की वृद्धि होती है।

चन्द्रमा की महादशा में बुध की अन्तदशा (१७ मास = १ व. ५मास)

बुध लग्न से केन्द्र में, लाभ स्थान में, त्रिकोण में, स्वक्षेत्र में, स्वनवांश में हो, उच्च स्थान में अथवा बलयुक्त हो तो अपनी अन्तर्दशा में धन की प्राप्ति, राजमान, प्रियजनों से समागम तथा वस्त्र वगैरे से लाभ, विद्या, विनोद, अच्छे

लोगों से वार्तालाप, सुखाप्ति, ज्ञान की वृद्धि, संतान प्राप्ति, सन्तोष, व्यापार से धन लाभ, वाहन, छत्र, अलग-अलग किस्म के अलंकार, पशु लाभ, धन लाभ आदि मिलते हैं। मातृ वर्ग से धन प्राप्ति, विद्वानों का आश्रय, किसी भी काम करने की प्रवृत्ति, पुस्तक लेखन, उत्तम कार्य, विद्यालय, परीक्षा में सफलता तथा प्रतियोगिता में विजय लाभ होता है।

महादशानाथ से केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान में, धनस्थान में गया हो तो विवाह, यज्ञ दीक्षा, दान, धर्मादिक शुभ परिणाम, राजा को प्रिय, विद्वानों के साथ समागम, मोती, वाहन, वस्त्र, आभूषण वगैरे मिलते हैं। आरोग्य, आनन्द, महायज्ञ करने का सुख मिलता है।

महादशानाथ से ६।८।१२ स्थान में गया हो, नीच स्थान में हो तो शुरुआत में देह पीड़ा, खेती-वारी, ढोर तथा भूमि का नाश, कारागृह में प्रवेश तथा स्त्री-पुत्रादिक को पीड़ा होती है।

द्वितीय, सप्तम भाव का स्वामी हो तो अन्तर्दशा में ज्वर पीड़ा और महाभय रहता है।

चन्द्रमा की महादशा में केतु की अन्तर्दशा (७ मास)

केतु लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, तृतीय स्थान में, लाभस्थान में, बलयुक्त ऐसा हो तो धनलाभ, अति सुख, स्त्री-पुत्र सुख आदि प्राप्त होते हैं। अन्तर्दशा की शुरुआत में धनहानि तथा मध्यकाल में सुख प्राप्त होता है।

महादशानाथ से केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभस्थान में, बलयुक्त हो तो क्वचित अन्तर्दशा में केतु अल्पसुख, धनलाभ, गौ, भैंस वगैरे का लाभ तथा अन्त में द्रव्यनाश करता है।

केतु पापयुक्त हो अथवा पाप दृष्ट हो, महादशानाथ से ८।१२ वें स्थान में गया हो तो नीच तथा शत्रुत्व वाला कार्य होता है तथा अकस्मात् कलह होता है। स्त्री को रोग, बंधुनाश, कुक्षि रोग की पीड़ा, द्रव्यनाश—ये बातें होती हैं। जातक को चंचलता अधिक रहती है। मन में उद्वेग होता है। परिवार में कई आदमियों की अचानक मृत्यु होती है।

द्वितीय, सप्तम स्थान में केतु गया हो तो अन्तर्दशा में अनारोग्य तथा अत्यन्त भय होता है।

चन्द्रमा की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा (२० मास = १ व. ८ मास)

लग्न से शुक्र केन्द्र में, लाभस्थान में, त्रिकोण में, अपने उच्च स्थान में, स्वक्षेत्र में गया हो तो अपनी अन्तर्दशा में राज्यलाभ, महाराज की प्रसन्नता से वाहन, वस्त्र तथा आभूषण, गाय, भैंस वगैरे प्राणियों का लाभ, स्त्री-पुत्रादिक

वृद्धि, नये मकान का निर्माण, सदैव मिष्ठान्न भोजन, सुगन्धित पुष्प, वारसा वगैरे, सुन्दर स्त्रीलाभ, स्त्री सुख तथा भोग, बहुत स्त्रियों के साथ संभोग, कन्या जन्म, मोती, हीरा, मणि की प्राप्ति, सम्पत्ति आदि फलों की प्राप्ति होती है।

शुक्र दशानाथ से युक्त हो तो अपनी दशा में शरीर सुख, अति सुख, सुकीर्ति तथा मकान, बाग-बगीचा, खेत की वृद्धि एवं सुख-सम्पत्ति प्राप्त होती है।

शुक्र यदि धनस्थान में, स्वक्षेत्र में, अपनी उच्च राशि में हो तो खजाने की प्राप्ति, अति सुख, भूमि लाभ, पुत्र सम्भव वगैरे फल अपनी अन्तर्दशा में देता है।

शुक्र यदि भाग्येश तथा लाभेश से युक्त हो तो अपनी अन्तर्दशा में, भाग्य वृद्धि, महाराज की प्रसन्नता से सुखदायक इष्ट सिद्धि, देवता, ब्राह्मणों की भक्ति तथा मोती परवाले जवाहिरात का लाभ होता है। राज्य में उच्च पद प्राप्ति, चुनाव में सफलता प्राप्त होती है। यदि शुक्र ६ वां १२ वें हो तो भी विशेष अर्थलाभ देता है।

महादशानाथ के स्थान से लाभस्थान में, त्रिकोण में, केन्द्र में यदि शुक्र गया हो तो अपनी अन्तर्दशा में घर, खेत वगैरे की वृद्धि, द्रव्यलाभ तथा अत्यन्त सुख देता है।

महादशानाथ से ६।८।१२ वें शुक्र गया हो, पापयुक्त हो तो, परदेश वास, दुःख, पीड़ा, मृत्यु का भय, चोर तथा सर्प से पीड़ा तथा अपमृत्यु के भय की सम्भावना रहती है। व्याधि, असत्य दोषारोपण, मानसिक संताप उत्पन्न होता है।

द्वितीय, सप्तम स्थान का स्वामी हो तो अपमृत्यु का भय रहता है।

चन्द्रमा की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा (६ मास)

सूर्य उच्च का स्वस्थान में, लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभस्थान में, भ्रातृ स्थान में अथवा बलवान स्थान में हो तो नष्ट हुआ राज्य तथा धन की प्राप्ति, घर में कल्याण, मित्र या राजा की कृपा से ग्राम तथा जमीन का लाभ, गर्भ धारण फल की प्राप्ति, घर में लक्ष्मी का वास वगैरे फल प्राप्त होते हैं। अन्तर्दशा के अन्त में आलस्य तथा ताप की पीड़ा होती है।

सूर्य की अन्तर्दशा में धन लाभ, व्यापार वृद्धि, राज्य से गौरव, सुख एवं उन्नति के सुयोग की प्राप्ति, राजा के समान वैभव, रोग का नाश, शत्रु क्षय, सुख और कल्याण की प्राप्ति--ये बातें होती हैं। जातक का समाज के ऊपर

प्रभाव अधिक होता है एवं उससे पूर्ण सौख्य प्राप्त होता है। व्याधि का नाश, शत्रु की पराजय, ऐश्वर्य तथा स्वर्गीय सुख का अनुभव करने वाला होता है। सूर्य ६।८।१२ वें भाव में गया हो तो नेत्र पीड़ा, पिता की मृत्यु तथा परदेश गमन होता है। दशानाथ के स्थान से ६।८।१२ वें स्थान में सूर्य गया हो पापयुक्त हो तो राजा, चोर, सर्प, ज्वर रोग वगैरे की सम्भावना रहती है। परदेश गमन तथा दुःख प्राप्त होता है। द्वितीय, सप्तम भाव का स्वामी हो तो ज्वर पीड़ा होती है।

मंगल की महादशा में सभी ग्रहों की अन्तर्दशा का फल

मंगल की महादशा में मंगल की अन्तर्दशा (४ मास २७ दिन)

मंगल लग्न में, केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभ स्थान में तृतीय स्थान में हो, बलवान अधिपति से तथा धनस्थान के अधिपति से युक्त हो तथा लग्नाधिपति से युक्त हो तो राजा का अनुग्रह, लक्ष्मी की रेल पेल, वैभव, नष्ट हुआ राज्य अथवा धन का लाभ, पुत्रलाभ एवं सुख सुविधाएँ मिलतो हैं। इसके साथ ही भूमि मकान सम्बंधी क्रय-विक्रय, कृषि में लाभ और यदि जातक पुलिस या फौज की सेवा में हो तो श्रेष्ठ पद लाभ होता है। पुत्र जन्मोत्सव का संतोष, घर में गाय का दूध, मिष्ठान्न भोजन वगैरे मिलते हैं।

मंगल उच्च स्थान में, स्वक्षेत्र में, स्व नवांश में गया हो अथवा बलवान हो तो मकान, खेती बाड़ी में वृद्धि, गाय, भैंस वगैरे पशुओं का लाभ, तथा महाराज की कृपा से सुखदायिनी इष्ट सिद्धि प्राप्त होती है।

यदि मंगल ६।८।१२ वें भाव में गया हो पाप दृष्ट या पापयुक्त हो तो, मूत्र कृच्छ वगैरे रोग से कष्ट होता है। जखम से पीड़ा, व्रण, चोर, सर्प, राज्य की तरफ से पीड़ा, धन, धान्य, पशु वगैरे का नाश, शत्रुओं की तरफ से उपद्रव, अपने परिवार के लोगों के बीच झगड़ा, रक्त पित्त, विकारों से पीड़ित रहे तथा पर स्त्रियों के साथ संभोग मिले, परिवार में विरोध, घर में कलह, राज्य चिंता, नौकरी से मुअत्तली या पदावनति, बना बनाया काम बिगड़ जाना, शरीर में गर्मी से संबंधित रोग, क्रोध की अधिकता तथा मानसिक चिंता, ये बातें होती हैं। अति उष्णता, मित्रों से द्वेष तथा सब कार्यों का नाश होता है। मंगल यदि द्वितीय सप्तम स्थान का स्वामी हो तो शरीर में जड़ता तथा मानसिक रोग होता है।

मंगल की महादशा में राहु की अन्तर्दशा (१ वर्ष १८ दिन)

राहु अपने उच्चस्थान में, मूल स्थान में, केन्द्र में, त्रिकोण में, तीसरे स्थान में तथा छठे स्थान में गया हो तो राज सम्मान, मकान, भूमि वगैरे का लाभ

होता है। स्त्री पुत्र का लाभ तथा व्यवसाय में अधिक फल प्राप्ति होती है। विशेष वीरता का प्रदर्शन होता है। शत्रुओं का संहार, कृषि लाभ, मुकदमें में जीत होती है। गंगास्नान के फल की प्राप्ति तथा विदेश गमन होता है।

राहु ६।८।१२ में गया हो, पाप ग्रह से युक्त वा दृष्ट हो, शत्रु क्षेत्र में हो तो शस्त्र, अग्नि तथा चोर इनसे भय प्राप्त हो, धन का नाश हो, किसी प्रबल रोग के कारण शरीर में पीड़ा हो, जेल यात्रा तथा बंधन हो, सर्प बाधा, भय, रोग, राज भय, धन धान्य का नाश हो, दुष्कृत्य में जय प्राप्त हो, जख्म का भय हो, चतुष्पद प्राणियों की हानि, वायु तथा पित्त से पीड़ा, इत्यादि बातें होती हैं। राहु धनस्थान में गया हो तो धन नाश तथा महा भय होता है। द्वितीय सप्तम स्थान में गया हो तो अपमृत्यु का भय होता है।

मंगल की महादशा में गुरु की अन्तर्दशा (११ मास ६ दिन)

. गुरु लग्न से त्रिकोण में, केन्द्र में, लाभस्थान में, धन स्थान के स्वामी से युक्त हो, उच्चांश में गया हो, अपने नवांश में हो तो सत्कीर्ति, राज सम्मान, धनधान्य की वृद्धि, घर में कल्याण, संपत्ति, स्त्री तथा पुत्र का लाभ होता है। जातक तीर्थयात्रा अधिक करता है, देवता, ब्राह्मण की पूजा अर्चना में दत्तचित्त होता है। इस अन्तर्दशा में उच्च कोटि का ग्रंथ लेखन, यश प्राप्ति, धनलाभ, अविवाहित होने पर विवाह होता है। इसके साथ ही परिवार तथा जाति में सम्मान, आरोग्य घर में प्रसन्नता तथा सम्मान प्राप्त होता है।

महादशानाथ के स्थान से उपरोक्त स्थानों में से किसी एक स्थान में तथा भाग्य अथवा दशम स्थान के स्वामी से युक्त अथवा चतुर्थ स्थान के स्वामी से युक्त, लग्नाधिपति से युक्त, शुभांश में या शुभ वर्ग में गया हुआ गुरु हो तो अपनी अंतर्दशा में मकान, भूमि की वृद्धि, घर में कल्याण, सम्पत्ति, आरोग्य, अति कीर्ति, घर में गौ का संग्रह, चतुष्पदों का लाभ, व्यापार में लाभ, स्त्री पुत्रादिकों का वैभव तथा राज सम्मान होता है। ब्राह्मणों द्वारा धन, जमीन की प्राप्ति, पूज्यता, जय व सुख की प्राप्ति होती है।

यदि गुरु ६।८।१२ वें स्थान में गया हो, नीच राशि में हो, अस्तंगत हो तथा निर्बल या पापी ग्रह के साथ हो या उनसे दृष्ट हो तो राजभय, घर में चोरी, राज क्षय, पदावनति, संतान बाधा एवं भ्रातृ नाश होता है। चोर, सर्प, पित्तादि रोग से पीड़ा, भूत प्रेत की पीड़ा, नौकर वर्ग का नाश होता है।

द्वितीय, सप्तम भाव का स्वामी हो तो अपमृत्यु, ज्वर, वगैरे रोग होता है।

मंगल की महादशा में शनि की अंतर्दशा (१३ मास ९ दिन = १ वर्ष १ मास ९ दिन)

शनि स्वगृह में होकर लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, मूल त्रिकोण में अथवा अपने स्व नवांश में लग्नेश के साथ हो अथवा शुभ दृष्टि युक्त हो या बलवान स्थान में हो तो उसकी अंतर्दशा में राज्य सुख, यश की वृद्धि, स्वग्राम में धान्य की वृद्धि, पुत्र पौत्र से युक्त, घर में गौरूपी धन का संग्रह, स्वयं के दिन (शनिवार) राज सम्मान तथा स्वमास में पुत्रवृद्धि करता है ।

शनि नीच वगैरे खराब स्थान में गया हो, ६।८।१२ वें स्थान में हो म्लेच्छ वर्ग के स्वामी से भय, धन धान्य का नाश, बेड़ी का बंधन, रोग तथा खराब तीर्थ में निवास होता है । जातक को एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा इस तरह लगातार हजारों दुःख आकर तंग करते हैं । एवं जातक के परिवार का भी नाश होता है । स्त्री बाधा, संतान पीड़ा, शरीर कष्ट, मुकदमें में पराजय (हार), धनहानि एवं स्थानांतरण होता है । बड़ी दुःखदायक व्याधि, शत्रु, चोर तथा राजा से भय होता है ।

शनि द्वितीय तथा सप्तम स्थान का स्वामी हो और पापग्रह से युक्त हो तो महाभय, धननाश, पर्यटन, राजा का द्वेष, मानसिक रोग, चोर, अग्नि राज्य वगैरे से पीड़ा तथा भाईयों का नाश होता है । बंधुद्वेष, प्राणियों की हानि, अकस्मात् मृत्युभय, स्त्री पुत्रादिकों को पीड़ा, कारागृह का भय, राजदंड होता है ।

शनि यदि महादशानाथ के स्थान से केन्द्र राशि में, लाभ स्थान में, त्रिकोण में गया हो तो, परदेश गमन, दुष्कीर्त्ति, पापकर्म में प्रीति, जीव हिंसा, बेचने (विक्रय) में हानि, खेती से नुकसान, स्थान भ्रष्टता, मनोव्यथा, वाद विवाद में पराजय तथा मूत्रकृच्छ्र की बड़ी पीड़ा होती है ।

महादशा स्वामी के स्थान से ६।८।१२ वें स्थान में गया हो, पाप ग्रह से युक्त हो तो शनि अपनी अंतर्दशा में मृत्यु, राजा से तथा चोर से पीड़ा, वायु तथा शूल की पीड़ा ज्ञाति तथा शत्रु भय देता है ।

मंगल की महादशा में बुध की अंतर्दशा (११ मास २७ दिन)

बुध लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में गया हो तो उसकी अंतर्दशा में सत्कथा, जलदान, धर्म बुद्धि तथा यश की प्राप्ति होती है । सुन्दर कन्या का जन्म, धार्मिक यशलाभ, प्रेम तथा न्याय मिलता है । वैश्य वर्ग की तरफ से धनप्राप्ति, मकान, गाय, धान्य आदि का लाभ होता है । राजनीति का प्रसंग, नित्य मिष्ठान्न भोजन, वाहन, वस्त्र, पशुओं का लाभ, राज्य का कार्य तथा उसके द्वारा सुख, खेती बाड़ी, हाथी, आभूषण वगैरे प्राप्त होते हैं ।

महादशा स्वामी के स्थान से केन्द्र में अथवा त्रिकोण में, अपने उच्च स्थान में गया हो तो योग्य द्रव्य का लाभ होता है। अनेक प्रकार के धन का स्वामित्व, राजसन्मान, भूपाल समागम, धन, वस्त्र तथा आभूषणों की प्राप्ति, मृदंग वगैरे अनेक प्रकार के वाद्यों का भोज, सेनाधिपतित्व, महत्सुख, विद्या का विनोद, विमल वस्त्र तथा आभूषण, स्त्री पुत्रादिकों का वैभव, घर में लक्ष्मी की वृद्धि वगैरे फल होते हैं।

यदि बुध अपनी नीच राशि में हो, अस्त तथा वक्री हो, ६।८।१२ वें स्थान में गया हो तो उसकी अंतर्दशा में शस्त्र से, चोर से, अग्नि से भय होता है। जातक की सारी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है तथा किसी महाक्रूर (पूरा दुष्ट) आदमी के द्वारा बड़ी पीड़ा होती है। पैरों में पीड़ा, मानसिक असंतोष, गृह कलह तथा नाश की सूचना मिलती है। बुध दशा स्वामी से युक्त हो तो शत्रु-वृद्धि, महाभय, विदेश गमन, भिन्न-भिन्न प्रकार के रोग, राजद्वार में कलह तथा विरोध-ये बातें होती हैं।

महादशास्वामी के स्थान से ६।८।१२ वें स्थान में बुध गया हो अथवा पाप ग्रहों से युक्त हो तो मानहानि, क्रूरवाणी, चोर, अग्नि तथा राजा से पीड़ा, मुसाफिरी में चोरी का भय, वगैरे फल होते हैं।

द्वितीय सप्तम स्थान का स्वामी हो तो अंतर्दशा में महाव्याधि होती है।

मंगल की महादशा में केतु की अंतर्दशा (४ मास २७ दिन)

केतु लग्न से त्रिकोण में, तृतीय में, लाभ स्थान में, शुभग्रह से युक्त तथा दृष्ट हो तो अपनी अंतरदशा में राजा के अनुग्रह द्वारा सुख, शांति, अति सुख तथा धन प्राप्ति होती है। दशा के आरंभ में भूमि का लाभ, पुत्र लाभ, राज्य से लाभ कारक कार्य, चतुष्पद प्राणियों का लाभ होता है। यदि केतु योग कारक ग्रह के साथ हो, बल तथा वीर्य से युक्त हो तो पुत्र लाभ, कीर्त्ति की वृद्धि, घर में लक्ष्मी की कृपा, नौकर वर्ग तथा धन की प्राप्ति, सेनापतित्व और अतिसुख प्राप्त होता है। राज मैत्री, तथा वाहन, वस्त्र और आभूषण वगैरे फल होते हैं।

केतु की अशुभ अन्तर्दशा में जातक को बादल, बिजली आदि का बड़ा घोर भय हो, शस्त्र का आघात लगे, अग्नि से घर भस्म हो जावे, सम्पत्ति चोर ले जावे एवं अन्यान्य कई प्रकार के क्लेशों का सामना करना पड़े। पेट सम्बन्धी रोग, बांधवों से विग्रह, दुष्टों से शारीरिक क्षति होती है। कुक्षि रोग से पीड़ा, आप्त और बन्धुओं से दुःख, दुष्टों से शत्रुत्व आदि बातें हो जाती हैं।

महादशानाथ के स्थान से केतु ६।८।१२वें स्थान में हो, पापग्रह से युक्त हों तो दांत का रोग, चोर, बाघ वगैरह से पीड़ा, ज्वर, अतिसार तथा कोढ़ वगैरह रोग तथा स्त्री-पुत्रादिक को पीड़ा होती है।

द्वितीय, सप्तम स्थान में केतु गया हो तो उसकी अन्तर्दशा में देह पीड़ा, सन्तान से सन्ताप, धन-धान्य की हानि वगैरह होती है।

मंगल की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा (१४ मास = १ वर्ष २ मास)

शुक्र लग्न से केन्द्र में, लाभ स्थान में, त्रिकोण में, अपने उच्च स्थान में, स्वक्षेत्र में गया हो अथवा शुभ स्थान का स्वामी हो तो अपनी अन्तर्दशा में राज्य लाभ, अति सुख, हाथी, घोड़े, वाहन तथा वस्त्राभूषण आदि प्राप्त होते हैं। राजा से सम्मान मिलता है। इस दशा में प्रेम सम्बन्ध भी बढ़ते हैं तथा जातक अधिक भावुक, कल्पनाशील एवं मनमौजी तथा शानशौकत पर जरूरत से ज्यादा व्यय करने वाला वन जाता है। स्त्री के अलंकार तथा वस्त्रों की प्राप्ति, आप्तजनों से धन प्राप्ति, स्त्रियों के साथ सहवास ये बातें होती हैं। शुक्र यदि लग्नेश के साथ सम्बन्ध में आया हो तो स्त्री-पुत्रा-दिकों की वृद्धि, आयुष्य की वृद्धि, ऐश्वर्य, भाग्य वृद्धि, तथा सुख की प्राप्ति होती है।

महादशा स्वामी के स्थान से केन्द्र में, लाभ स्थान में या धन स्थान में गया हो तो शुक्र अपनी अन्तर्दशा में तत्काल लक्ष्मी की प्राप्ति, पुत्र लाभ अत्यन्त सुख, अपने स्वामी द्वारा अत्यन्त सुख, श्वेत वस्त्रादिकों का लाभ तथा महाराजा की कृपा से ग्राम तथा भूमि का लाभ होता है। अन्तर्दशा के अन्त में फल तरीके गीत, नृत्य, पवित्र तीर्थ में स्नान का लाभ प्राप्त होता है।

यदि शुक्र दशम स्थान के स्वामी से युक्त हो तो धार्मिक, दया के कार्य, कुआं, तालाव निर्माण करना वगैरह शुभ कार्य होते हैं।

महादशा स्वामी के स्थान से शुक्र ६।८।१२वें भाव में गया हो अथवा पापग्रह से युक्त हो तो उसकी अन्तर्दशा में अत्यन्त दुःख, देह पीड़ा, शस्त्र से किसी राजा के क्रोध का भय हो, व्याधि हो, धन का नाश हो और कई उपद्रव हो जावें तथा अन्त में विदेश में जाकर जीवन व्यतीत करे। बन्धु नाश, स्त्रियों से बैर, परेशानियाँ होती हैं। चोर से भय रहता है। घर में कब्जा, स्त्री-पुत्रादिकों को पीड़ा, पशुओं का नाश होता है।

शुक्र द्वितीय सप्तम भाव का स्वामी हो तो अन्तर्दशा में देह पीड़ा करता है।

मंगल की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा (४ मास ६ दिन)

सूर्य अपने उच्च स्थान में, स्वक्षेत्र में, लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभ स्थान में गया हो अथवा भाग्य और कर्म स्थान के स्वामी से युक्त हो तो अन्तर्दशा में वाहन, कीर्ति, पुत्र लाभ, धनधान्य की समृद्धि, घर में कल्याण, सम्पत्ति, आरोग्य, कुशलता, धैर्य, राज्य की तरफ से मान-सम्मान, व्यापार में अधिक फल की प्राप्ति तथा परदेश में राजा के साथ समागम होता है। जातक के ऊपर किसी कारण से राज्य की शासन पद्धति बड़ी कठिन होती है तथापि समय पाकर राजा से जय प्राप्त होता है, वाहन मिलता है। सूर्य कारक ग्रह हो तो वाहन लाभ, पद वृद्धि. धन लाभ आदि होते हैं।

महादशानाथ से सूर्य ६।१२वें स्थान में गया हो अथवा पापग्रह से युक्त हो तो अन्तर्दशा में देह पीड़ा, मन को सन्ताप, अपवाद, गुरु द्वेष, कलह, रोग पीड़ा, आप्तवर्ग से दुःख, कार्य हानि, अत्यन्त भय, मस्तिष्क का रोग, ताप अथवा अतिसार वगैरह फल होते हैं।

द्वितीय, सप्तम स्थान का अधिपति हो तो अन्तर्दशा में सर्प, ताप तथा चोर भय रहता है। पुत्र को पीड़ा रहती है।

मंगल की महादशा में चंद्रमा का अन्तर (७ मास)

चन्द्रमा उच्च स्थान में, स्वक्षेत्र में, लग्न से केन्द्र में गया हो अथवा नवम, चतुर्थ या दशम अथवा लग्न के स्वामी से युक्त हो तो उसकी अन्तर्दशा में जातक को अनेक प्रकार के धन मित्र आदि से सौख्य मिले, किसी धनाढ्य व्यक्ति की तरफ से उपहार स्वरूप हीरा, मोती की प्राप्ति हो। वस्त्र, अलंकार प्राप्त हो। उच्च पद पर प्राप्ति, आकस्मिक धन लाभ, रत्नप्राप्ति, सम्मान तथा व्यापार में वृद्धि होती है।

महान राज्य, सुगन्ध, हार तथा वस्त्र वगैरह प्राप्त हो। तालाब खोदना तथा किला बांधना, पवित्र धर्म का संग्रह, विवाह उत्सव वगैरह मांगलिक कार्य, स्त्री तथा पुत्र का सुख, पिता तथा माता का सुख, घर में लक्ष्मी की कृपा तथा महाराज द्वारा इष्ट सिद्धि वगैरह प्राप्त होते हैं।

यदि चन्द्रमा पूर्ण हो तो पूर्ण फल तथा क्षीण हो तो स्वल्प फल की प्राप्ति होती है। चन्द्रमा नीच का, शत्रु क्षेत्र में, ६।८ भाव में गया हो अथवा दशापति से षष्ठ भाव में और अष्टम भाव में गया हो तो उसकी अन्तर्दशा

में स्त्री, पुत्र का मरण, कष्ट, राजकोप, धननाश, कलह तथा स्वयं की अकाल मृत्यु होती है। पशु का क्षय, चोर से भय होता है। द्वितीय तथा सप्तम का अधिपति हो तो अन्तर्दशा में अपमृत्यु होती है। देह जड़ता तथा मानसिक दुःख होता है।

राहु की महादशा में सभी ग्रहों की अंतर्दशा का फल

राहु की महादशा में राहु की अंतर्दशा (३२ मास ११ दिन = २ वर्ष ८ मास १२ दिन)।

कर्क, वृश्चिक, कन्या अथवा धन राशि में राहु की अन्तर्दशा हो तो राज सम्मान, वस्त्र, वाहन, आभूषण, चतुष्पदों का लाभ, पश्चिम दिशा में प्रयाण होता है।

लग्न में, उपचय स्थान में (३–६–१०–११) राहु गया हो अथवा शुभ दृष्टि से युक्त हो, मित्रांश में हो, उच्च स्थान में अथवा लग्न से लाभ स्थान का स्वामी हो अथवा योगकारक ग्रह के साथ हो तो अपनी अन्तर्दशा में राज्य लाभ, अत्यन्त उत्साह, शुभप्रदायिनी राजा की प्रीति, घर में कल्याण तथा सम्पत्ति तथा स्त्री-पुत्रादिक की वृद्धि––ये फल होते हैं।

षष्ठ, अष्टम, द्वादश भाव में गया हुआ राहु, पाप ग्रह से युक्त हो या दृष्ट हो तो अन्तर्दशा में जातक के भाई का मरण हो, चोर तथा जख्म की पीड़ा, सर्वत्र मनुष्यों से पीड़ा, राजद्वार में द्वेष, इष्ट बन्धुओं का विनाश तथा स्त्री-पुत्रादि को पीड़ा होती है। विदेश की यात्रा करनी पड़ती है। लोगों के बीच प्रभाव कम पड़ जाता है। स्वास्थ्य में गिरावट, मानसिक तनाव, चिन्ताएँ, अकाल मृत्यु, स्थानान्तरण, पदावनति, स्त्री को रोग, विवाद, बुद्धिनाश, दूर देशों में भ्रमण इत्यादि बातें राहु की अन्तर्दशा में होती हैं।

द्वितीय सप्तम स्थान का स्वामी हो और सप्तम स्थान में ही बैठा हो तो ऐसा राहु अपनी अन्तर्दशा में सदा रोगी और महादुःखी होता है तथा उसकी स्त्री का मरण होता है। द्वितीय भाव में स्थित राहु अपनी अन्तर्दशा में प्रबल धनक्षय का कारण बनता है।

राहु की महादशा में गुरु की अन्तर्दशा (२८ मास २४ दिन = २ वर्ष ४ मास २४ दिन)

गुरु लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, उच्च राशि में, स्वक्षेत्र में, तुंग स्थान में, अपने नवमांश में गया हो तो अपनी अन्तर्दशा में स्थान लाभ, धैर्य, शत्रु का

नाश, अति सुख, राजा की प्रीति, धनप्राप्ति, पुत्र लाभ और अति उत्साह होता है। जातक व्याधि दुःख से रहित होकर देवता और ब्राह्मण की आराधना करनेवाला धनी होता है। स्वास्थ्य का लाभ होता है। पुस्तक लेखन तथा यश प्राप्त होता है। जातक ईश्वराधन करता है। शुक्ल पक्ष में जैसे चन्द्रमा वृद्धि पाता है उस प्रकार उसकी दिन पर दिन वृद्धि (उदय) होती है। वाहन, धन, घर में गौरूपी धन, नैऋत्य और पश्चिम में प्रयाण, राजा के साथ समागम, कार्य सिद्धि, स्वदेशों में पुनरागमन, ब्राह्मणों के लिए धर्मशाला की रचना, तीर्थयात्रा, वाहन तथा ग्राम का लाभ, देव तथा ब्राह्मणों का पूजन, पुत्र जन्मोत्सव वगैरे आनन्द तथा नित्य मिष्ठान्न भोजन प्राप्त होता है।

महादशानाथ से केन्द्रों में, त्रिकोण में, लाभ स्थान में, धन स्थान में, दुश्चिक्य में (तृतीय भाव में) गुरु गया हो अथवा बलयुक्त हो तो अपनी अन्तर्दशा में मकान, खेती की वृद्धि, वस्त्र तथा पशु प्राप्ति, दान-धर्म, जपकार्य वगैरे बातें होती हैं। अन्तर्दशा के अन्त में, राजकोप, दो मास तक शरीर पीड़ा, ज्येष्ठ भ्राता का नाश, भाई तथा पितृ वर्ग को पीड़ा होती है।

गुरु नीच का, अस्तंगत, ६।८।१२ वें भाव में गया हो, शुभ राशि में हो, पाप ग्रहों से युक्त हो तो अपनी दशा में धनहानि करता है। कार्य में विघ्न, मनोव्यथा, सम्पत्ति नाश, स्त्री-पुत्रादि की पीड़ा, हृदय रोग, राजकार्य में चिन्ता वगैरे फल होते हैं।

महादशानाश से ६।८।१२ वें भाव में गुरु गया हो अथवा पापग्रह से युक्त हो तो अन्तर्दशा में धनहानि, देह पीड़ा होती है।

द्वितीय, सप्तम स्थान का स्वामी हो तो अपमृत्यु होती है।

राहु की महादशा में शनि की अन्तर्दशा (३४ मास, ६ दिन = २ वर्ष, १० मास, ६ दिन)

शनि लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, अपने उच्च स्थान में, मूल त्रिकोण में, तृतीय स्थान में, लाभ स्थान में हो तो अपनी अन्तर्दशा में वाहन, राजा की प्रीति, विवाहोत्सव, बाग-बगीचा, तालाब वगैरे का निर्माण, शूद्र स्वामी के द्वारा इष्ट सिद्धि, गौरूपी धन का संग्रह, पश्चिम दिशा को गमन, स्वयं स्वामी हो तो धन क्षय, देह से परिश्रम करना और फल थोड़ा, पुनः स्वदेश में आगमन वगैरे बातें होती हैं। त्रिकोणस्थ शनि शुभ ग्रहों से दृष्ट हो तो लाभ, सम्मान तथा राजनीतिक कार्य में सफलता देता है। साधारणतः शनि की अन्तर्दशा रक्त पित्त के दोष से अनेक प्रकार की पीड़ाएँ, बन्धु वर्ग में झगड़ा, देह का भंग होना तथा समुचित दैनिक क्रिया या निश्चित कर्तव्य से च्युत होकर अधर्मी तथा

आलसी कहलाता है। दूर जगह स्थानान्तरण, अफसरों से विरोध तथा पुत्रों से कलह, ये फल देता है। वात, पित्तजन्य रोग, आप्त व मित्र इनसे पीड़ा देता है।

शनि नीच स्थान में, शत्रु राशि में, ६।८।१२ वें स्थान में गया हो तो अपनी अन्तर्दशा में राजभय, स्त्री-पुत्रादिक को पीड़ा, स्वयं को सन्ताप, पितृ वर्ग के साथ तकरार, व्यापार में कलह, आकस्मिक अपकीर्ति वगैरे देता है।

महादशानाथ से ६।८।१२ वें भाव में हो, पापयुक्त हो तो शनि अन्तर्दशा में, हृदय रोग, मानहानि, विवाह में शत्रु द्वारा पीड़ा, परदेश गमन, पेट शूल वगैरे व्याधि, कनिष्ठ धान्य का भोजन, स्वजाति से दुःख भय वगैरे देता है।

द्वितीय, सप्तम स्थान का स्वामी शनि हो तो अपनी अन्तर्दशा में अपमृत्यु को देता है।

राहु की महादशा में बुध की अन्तर्दशा (३० मास, १८ दिन = २ वर्ष, ६ मास १८ दिन)

बुध लग्न से भाग्य स्थान में, उच्च स्थान में, केन्द्र राशि में, पुत्र स्थान में अथवा तृतीय स्थान में गया हो तो राजयोग, घर में कल्याण वृद्धि, व्यापार में धन प्राप्ति, उत्तम विद्या तथा वाहन, विवाहोत्सव और चतुष्पद प्राणियों की प्राप्ति—ये फल अपनी अन्तर्दशा में देता है। जातक को अपने प्रिय मित्र, बन्धु वर्ग से सहानुभूति बढ़ती है, धनका अनेक उपायों से आगमन होता है तथा अन्यान्य तरीके से शरीर में तथा चित्त में क्लेश होता है। व्यापार की वृद्धि होती है। राजकीय ठेके से यश लाभ तथा शुभ समाचारों की प्राप्ति होती है। मित्र, आप्त, स्त्री इनकी संगति, धन प्रीति तथा राजा की प्रीति प्राप्त होती है।

शुभ अथवा सम मास में अति सुख प्राप्त होता है तथा बुधवार को राज-दर्शन, सुगन्धयुक्त पुष्पों की शैय्या स्त्री सुख, राजा की कृपा द्वारा धनलाभ तथा यश प्राप्त होता है।

महादशानाथ से केन्द्र में, लाभस्थान में, तृतीय स्थान में भाग्य तथा कर्म स्थान से बुध गया हो तो देह आरोग्य, मन में उत्साह, सुखदायक इष्ट सिद्धि, पवित्र कीर्ति, पुराणोक्त श्रवण, विवाह, यज्ञदीक्षा, दान-धर्म वगैरे फल प्राप्त होते हैं।

६।८।१२ वें भाव में गया हुआ बुध शनि से दृष्ट और महादशास्वामी के स्थान से ६।८।१२ वें स्थान में गया हो अथवा पाप ग्रहों से युक्त हो तथा दृष्ट हो तो राजारोप, पुत्रवियोग, हानि, कलह वृद्धि, देव तथा ब्राह्मणों की निन्दा, भोग तथा भाग्य की हानि, सत्यहीनता, दुष्ट वृद्धि, चोर, राजा तथा सर्प पीड़ा,

अकस्मात् कलह, गुरु का नाश, द्रव्य का व्यय तथा पुत्रादिक को पीड़ा—ये बातें होती हैं।

द्वितीय, सप्तम स्थान का स्वामी बुध हो तो अपनी अन्तर्दशा में दरिद्रता तथा अपमृत्यु देता है।

राहु की महादशा में केतु की अन्तर्दशा (१२ मास, १८ दिन = १ वर्ष, १८ दिन)

केतु की अन्तर्दशा में ज्वर तथा अग्नि के कारण तथा शत्रु के शस्त्रों द्वारा मृत्यु होती है। चौर्य, मानहानि, पुत्रनाश, पशुक्षय और सब प्रकार के उपद्रव होते हैं। स्वजनों से विछोह होता है तथा शारीरिक रोग होते हैं। पर्यटन, राजद्वार में कब्जा, वात ज्वर वगैरे रोग होते हैं। केतु यदि अष्टम स्थान के स्वामी से युक्त हो तो शरीर में जड़ता और मानसिक रोग होता है।

केतु शुभ ग्रह से युक्त वा दृष्ट हो तो शरीर सुख, धन प्राप्ति, राज सम्मान, आभूषणों की प्राप्ति, भूमि लाभ, कृषि लाभ तथा घर में मंगल कार्य होता है।

केतु का लग्न के स्वामी से सम्बन्ध हुआ हो तो सुखदायक इष्टसिद्धि होती है। लग्न के स्वामी से युक्त हो तो निश्चय लाभ होता है। गाय, भैंस वगैरे प्राणियों की प्राप्ति होती है। केतु लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, रन्ध्र स्थान वा व्यय स्थान में गया हो, बलहीन हो तो अनेक रोग, चोर, सर्प तथा जख्म से पीड़ा, माता-पिता का वियोग, भाइयों के साथ द्वेष, मन में व्याधि, अपने स्वामी द्वारा महाकष्ट, विषमता, वैमनस्य वगैरे फल होते हैं। द्वितीय सप्तम में हो तो देह पीड़ा होती है।

राहु की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा (३६ मास = ३ वर्ष)

शुक्र लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभस्थान में गया हो, बलयुक्त हो तो यह प्रबल योग बनता है। ब्राह्मण द्वारा धन प्राप्ति, पशु लाभ, पुत्रोत्सव, वगैरे सन्तोष, घर में कल्याण, सम्मान, राजसम्मान, राज्य प्राप्ति तथा अत्यन्त सुख प्राप्त होता है।

शुक्र अपने उच्च स्थान में, स्वक्षेत्र में, उच्च में, स्वांश में गया हो तो नवगृह का निर्माण, नित्य मिष्ठान्न भोजन, स्त्री-पुत्रादिक वैभव, मित्र के साथ भोजन वगैरे का आनन्द, अन्नदान, दान वगैरे द्वारा धर्म का संचय, महाराज की कृपा द्वारा वाहन, वस्त्र तथा अलंकारों की प्राप्ति, व्यापार में अधिक फल की प्राप्ति, विवाह, उपनयन वगैरे मांगलिक कार्य, पुत्रोत्पत्ति, वैभव प्राप्ति, परदेश में वाहन प्राप्ति वा छत्र-चामरादि का वैभव इत्यादि फल होते हैं।

महादशा स्वामी से केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभ स्थान में, नवम राशि में हो तो खेती बाड़ी का स्वामित्व, अतिसुख, सुगंधित वस्त्र, सुन्दर शैया, गाने-बजाने का आनन्द, विद्या में परिश्रम, छत्र-चामर तथा सुगंधित पुष्पों का आनन्द प्राप्त होता है।

इस अन्तर्दशा में मित्रों के कारण ताप, काम की अधिक चिन्ता, धन का पूरा संचय तथा अपने पारिवारिक लोगों के साथ कलह होता है।

शुक्र ६।८।१२ वें स्थान में, अपने नीच स्थान में, शत्रु स्थान में, अस्त, वक्री, पापाचारी हो (मंदार और फणि (सर्प) नाम के द्रेष्काण से युक्त हो), तो अपनी अन्तर्दशा में पत्नी का मरण, बंधुनाश, धनहानि, बदनामी, रोग, अकस्मात् कलह, पिता तथा पुत्र का वियोग, स्वजन की हानि, सर्वत्र मनुष्यों से पीड़ा, भाइयों तथा रिश्तेदारों से विरोध, अपने स्वामी की तथा स्वयं की मृत्यु, स्त्री पुत्रादिक को पीड़ा तथा शूल वगैरे रोग, ये फल देता है।

यदि महादशा स्वामी के स्थान से ६।८।१२ वें स्थान में गया हो, पापग्रह से युक्त हो तो अपनी अन्तर्दशा में वैर, सर्प, चोर तथा मूत्रकृच्छ्र वगैरे रोगों से अत्यन्त भय होता है। प्रमेह रोग के कारण, रुधिर स्राव, कुभोजन, कारागृह में प्रवेश, राजा द्वारा दण्ड तथा धन क्षय होता है।

द्वितीय सप्तम स्थान का स्वामी हो तो दुर्घटना की आशंका रहती है। स्त्री पुत्रादिक का नाश होता है। पीड़ा, भय तथा अल्पमृत्यु होती है।

राहु की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा (१० मास २४ दिन)

सूर्य स्वयं उच्च स्थान में, स्वक्षेत्र में, लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभ स्थान में, तुंगांश में या स्वनवांश में, शुभग्रहों से दृष्ट हो तो राज प्रीतिकारक शुभ की प्राप्ति, धनधान्य समृद्धि तथा अल्पसुख वगैरे फल होते हैं। कई गाँवों का स्वामित्व और स्वल्प लाभ होता है। यदि लग्न या भाग्य स्थान के स्वामी से युक्त हो और दशमेश की दृष्टिवाला हो तो राजा का आश्रय, अत्यन्त कीर्ति, विदेश गमन, देश पर अधिकार, हाथी, घोड़ा, वाहन, वस्त्र तथा आभूषणों की प्राप्ति, मन सरीखा दान तथा पुत्र कल्याण—ये फल मिलते हैं।

धन की वृद्धि, परदेश गमन, राज्य से लाभ होता है। दान धर्म में रुचि, प्रीति, सब प्रकार के उपद्रवों का नाश, संसार रूपी रोग—ये फल होते हैं।

सूर्य ६।८।१२ वें भाव में गया हो तो जातक को शस्त्र, रोग का भय, धन की क्षति, राजा से भय तथा अग्नि और चोर, इनसे भी किसी अवसर पर भय की अवस्था आ जाती है। नेत्र पीड़ा तथा ऑपरेशन (शस्त्र क्रिया) होता है।

महादशा के स्वामी के स्थान से ६।८।१२ में गया हो, नीच स्थान में हो तो अन्तर्दशा में ज्वर, अतिसार, वरिष्ठ अधिकारियों के साथ कलह, प्रयाण, शत्रुओं की वृद्धि तथा राजा, चोर अथवा अग्नि से पीड़ा होती है।

द्वितीय सप्तम स्थान का स्वामी हो तो महारोग होता है।

महादशा स्वामी के स्थान से केन्द्र में, त्रिकोण में, तृतीय तथा लाभ स्थान में सूर्य गया हो तो अपनी अन्तर्दशा में विदेश में राज द्वारा सन्मान तथा कल्याण—ये फल होते हैं।

राहु की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा (१८ मास = १ वर्ष ६ मास)

चन्द्रमा स्वक्षेत्र में, उच्च स्थान में, लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभ-स्थान में, मित्र क्षेत्र में, शुभग्रह युक्त हो तो अपनी अन्तर्दशा में नृपत्व, राज्य में मान, धनलाभ, आरोग्य, अलंकार, मित्र, स्त्री, पुत्र प्राप्त होते हैं। पूर्ण चन्द्रमा हो तो पूर्ण फल की प्राप्ति, राज प्रीति, अश्व, वाहन का लाभ, मकान भूमि की वृद्धि होती है। नित्य भोग प्राप्त होते हैं, धान्य की वृद्धि तथा धन लाभ होता है। आप्तजनों के साथ वार्तालाप होता है। अन्यत्र इस अन्तर्दशा में कलह, बंधुवियोग, अन्नलाभ, सुख सुविधाएँ प्राप्त होती हैं। स्त्री का लाभ, समाज के साथ मुकदमा, धन का नाश, हर प्रकार की चित्त की विकलता तथा अपने परिवार के साथ भी विवाद होता है। मुकदमे में यह दशा हानि प्रदान करती है।

महादशा स्वामी के स्थान से चन्द्रमा सुखस्थान में, भाग्यस्थान में, केन्द्र में, लाभस्थान में गया हो तो लक्ष्मी की कृपा तथा घर में कल्याण, सम्पत्ति प्राप्त होती है। सकल कार्यों की सिद्धि, धनधान्य का सुख, सत्कीर्ति, सन्मान, देवी की आराधना वगैरे फल प्राप्त होते हैं।

महादशा स्वामी के स्थान से ६।८।१२ वें भाव में चन्द्रमा गया हो अथवा खल अधिपति से युक्त हो तो भूत, पिशाच बाधा वगैरे से व्यथा, घर, खेत तथा द्रव्य का नाश होता हैं। मार्ग में चोर का भय, जख्म से पीड़ा, बड़ा पेट होने से व्यथा—ये फल मिलते हैं।

द्वितीय या सप्तम स्थान का स्वामी चन्द्रमा हो तो अपनी अन्तर्दशा में अपमृत्यु करता है।

राहु की महादशा में मंगल की अन्तर्दशा (१२ मास १८ दिन = १ वर्ष १८ दिन)

मंगल लग्न से लाभस्थान में, त्रिकोण में केन्द्र में, शुभग्रह से युक्त हो तो अन्तर्दशा में रक्त वस्त्र वगैरे का लाभ होता है। प्रयाण तथा राजा का दर्शन

होता है। पुत्रों का कल्याण, अपने स्वामी के तरफ से अत्यन्त सुख, सेनापतित्व, अति उत्साह तथा भाईयों द्वारा धन की प्राप्ति होती है।

मंगल की अन्तर्दशा में जातक शत्रु मण्डल, शस्त्र, अग्नि तथा चोर इनसे हमेशा त्रस्त रहता है। नाना प्रकार के उपद्रव, थकावट, मानसिक चिन्ता, वाधाएँ, स्मरणशक्ति का ह्रास, परीक्षा में असफलता तथा पदावनति ये फल होते हैं। सब प्रकार के उपद्रव एक ही समय में आते हैं। सब कार्यों में मूढ़ता और चित्त को विस्मरण जैसी अवस्था हो जाती है।

महादशा स्वामी के स्थान से ६।८।१२ वें स्थान में मंगल गया हो, पाप से युक्त हो तो अपनी अन्तर्दशा में पुत्र तथा स्त्री की हानि, भाइयों को पीड़ा, स्थान भ्रष्टता, भाई, स्त्री तथा पुत्र के साथ विरोध होता है। चोर, सर्प का भय, जख्म का भय होता है।

दशा का प्रारम्भ क्लेशकारक और मध्य तथा अन्त सुखकारक होता है।

द्वितीय सप्तम स्थान का स्वामी हो तो आलस्य तथा अत्यन्त भय होता है।

गुरु की महादशा में सभी ग्रहों की अन्तर्दशा का फल

गुरु की महादशा में गुरु की अन्तर्दशा

(२५ मास १८ दिन = २ वर्ष १ मास १८ दिन)

गुरु उच्च स्थान में, स्वक्षेत्र में, लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में हो तो उसकी अन्तर्दशा में अनेक राज्यों का स्वामित्व तथा राजा की तरफ से मान, सम्मान, पशुलाभ, वस्त्र, वाहन, आभूषण वगैरे का लाभ होता है। महलनुपा निवास स्थान की भव्य रचना, हाथी, घोड़ा वगैरे सम्पत्ति, कार्य में उत्तम भाग्य की प्राप्ति, ब्राह्मण तथा वरिष्ठों की तरफ से मान तथा सम्मानपूर्वक मिलाप, अपने स्वामी से फलों की अधिकता प्राप्त होती है और स्त्री पुत्रादिक को लाभ पहुँचता है।

जातक को पुत्र की उत्पत्ति होती है, धन, धर्म की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है, सुवर्ण वस्त्र का लाभ होता है तथा सब वर्णों के लोगों से जातक को आर्थिक संचय पर्याप्त होता है। राज्यकृपा, नौकरी में तरक्की, जीवन के सभी कार्यों में सफलता, विद्याध्ययन व उसमें सफलता, नौकरी के सम्बन्ध में साक्षात्कार (इण्टरव्ह्यू), में सफलता, पुस्तक लेखन, सन्मान प्राप्ति, विवाह, धनलाभ, वड़ा उत्साह, सब कार्यों में सिद्धि, विद्या तथा ज्ञान की प्राप्ति होती है।

गुरु अपनी नीच राशि में गया हो, वक्री वा अस्त हो, ६।८।१२ वें भाव में गया हो, नीच अंश में गया हो, तो अपनी अन्तर्दशा में नीच पुरुषों

का संग, अति दुःख, पितृ वर्ग के साथ कलह, अपने प्रभु की मृत्यु, स्त्री पुत्रों से वियोग, धनधान्य की हानि, स्त्री चिन्ता तथा परेशानी—ये सब फल देता है।

गुरु सप्तम स्थान का स्वामी हो तो अन्तर्दशा में शरीर पीड़ा देता है। (गुरु की श्रेष्ठ स्थिति होने पर भी गुरु की महादशा में गुरु का अन्तर ठीक नहीं रह पाता)

गुरु की महादशा में शनि की अन्तर्दशा (३० मास १२ दिन = २ वर्ष, ६ मास, १२ दिन)

शनि अपने उच्चस्थान में, स्वक्षेत्र में, मित्र स्थान में, लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभस्थान में, बल से युक्त ऐसा हो तो अपनी अंतर्दशा में राज्य-लाभ, अत्यंत सुख, वस्त्राभरण, धनधान्यादि लाभ, स्त्रीलाभ और बहुत सुख प्राप्त होता है। सम्मान प्राप्त होता है तथा चुनाव में विजय और मुकदमें में जीत होती हैं। शत्रुओं का पराजय होता है, स्वास्थ्यलाभ होता है और शुभ-फलदायक फल प्राप्त होते हैं। वाहन, वस्त्र तथा पशुलाभ, भूमिलाभ, स्थानलाभ, पुत्र तथा मित्र का सुख, पालकी के वाहन का योग, काले वस्त्रों के धंधे में लाभ, काले रंग के घोड़ों का लाभ, पश्चिम दिशा में गमन, राजा का दर्शन तथा अनेक जात के वाहनों का लाभ होता है।

महादशा स्वामी के स्थान से शनि केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभस्थान में अथवा धनस्थान में गया हो तो अंतर्दशा में जमीन का लाभ, द्रव्यलाभ, पुत्र-प्राप्ति, पशुलाभ, हलके लोगों की तरफ से धनलाभ होता है।

शनि लग्न से ६।८।१२ वें भाव में, नीच स्थान में, शत्रु राशि में तथा अस्तंगत हो तो जातक को वेश्याओं के साथ व्यभिचार और मद्यपान अनिवार्य होता है। फलतः वह हर हालत में सुख से वर्जित होता है। यहाँ तक कि उसके पास वस्त्र भी नहीं रहते, सब धर्म-कर्म से रहित होकर काल व्यतीत करनेवाला पुरुषाधम होता है। ज्वर, रक्तबाधा, वेश्यागमन, मद्यातिरेकता, फोड़ा, फुंसी, व्रण, जख्म से दुःख इत्यादि रोग होते हैं। शरीर दौर्बल्य, व्यय अधिक होता है। मन में द्वेष बुद्धि, मन को दुःख, पुत्र के सम्बन्ध में धन का व्यय तथा कर्मनाश होता है। धनधान्य का नाश होता है, मन में चिंता, स्त्री-पुत्र को पीड़ा, घर में अशुभ कर्म, नौकर वर्ग को पीड़ा, पशुहानि तथा बंधु-द्वेष ये फल होते हैं।

महादशा के स्वामी के स्थान से शत्रु स्थान में, अष्टम में, व्यय में, पापग्रह से युक्त हो तो धननाश, धान्य का नाश, बंधु, मित्रों से विरोध, उद्योग धंधों में

पीछे हाट और निष्फलता, देह की पीड़ा तथा स्वजनों से अत्यंत भय प्राप्त होता है।

द्वितीय सप्तम स्थान का अधिपति हो तो अपमृत्यु होती है।

गुरु की महादशा में बुध की अन्तर्दशा
(२७ मास ६ दिन = २ वर्ष, ३ मास, ६ दिन)

बुध लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, अपने उच्च स्थान में, स्वक्षेत्र में आया हो, दशाधिपति से युक्त हो तो द्रव्यलाभ, आरोग्य, राज्यलाभ, अत्यंत सुख तथा महाराज की प्रसन्नता द्वारा सुखकारक इष्टसिद्धि प्राप्त होती है। वाहन, वस्त्र, चतुष्पद तथा गौरूपी धन की वृद्धि होती है।

बुध शुभग्रह से युक्त तथा दृष्ट हो तो स्त्री का सुख तथा धन प्राप्ति होती है। दशा के प्रारंभ में शुभफल होता है। शरीर सुख, वाहन और वस्त्रों का लाभ होता है। दशा के अंत में धन हानि तथा आत्म सुख होता है।

इस अंतर्दशा में जातक स्वस्थ होता है। मित्रों के साथ सम्मेलन होता है, भोग करता है, गुरु देवता विशेषतः अग्नि देवता में भक्ति रखता है, सदैव धर्म के आचरण में लगा रहता है। धन-धान्य की वृद्धि होती है, सम्मान लाभ, सुयश, कीर्ति, धनलाभ, व्यापारिक प्रसार, व्यापारिक सफलताएँ तथा शारीरिक निरोगता प्राप्त होती है। यदि बुध अस्त वा वक्री हो तो विलम्ब से कार्यसिद्धि, प्रयत्न करने पर सफलता तथा उच्चाधिकारियों से मित्रता होती है। वैश्य वर्ग से धनप्राप्ति, राजा से स्नेह और सत्कर्मों में सिद्धि—ये बातें होती हैं।

यदि बुध के ऊपर मंगल की दृष्टि पड़ती हो तो शत्रु वृद्धि तथा सुख का क्षय होता है। व्यापार धंधे में फल का नाश तथा ज्वर, अतिसार की पीड़ा होती है।

महादशा स्वामी के स्थान से त्रिकोण में, केन्द्र में, अपने उच्च नवांश में हो तो बुध की अंतर्दशा में स्वदेश में धनलाभ, माता-पिता को सुख, हाथी, घोड़े, वाहन की प्राप्ति तथा राजा के साथ मित्रता और राजा की कृपा होती है।

महादशास्वामी के स्थान से बुध ६।८।१२ वें भाव में गया हो, पापग्रहों से युक्त हो, शुभग्रहों से दृष्टिरहित हो तो धनधान्य का नाश, विदेशगमन, मुसाफिरी में विदेश में चोट का भय, व्रण तथा दाह की पीड़ा, आँख की पीड़ा और भिन्न-भिन्न देशों में भटकना इत्यादि फल होते हैं।

वुध लग्न से ६।८।१२ वें भाव में हो, पापग्रह से युक्त हो तो अपनी अंतर्दशा में अकस्मात कलह, घर में कठोर भाषण, चतुष्पद प्राणियों की हानि, व्यापार में नुकसान, अपमृत्यु का भय तथा शत्रुओं के साथ कलह होता है।

द्वितीय सप्तम स्थान का स्वामी हो तो अपमृत्यु का भय होता है।

गुरु की महादशा में केतु की अन्तर्दशा (११ मास ६ दिन)

केतु शुभग्रह से युक्त हो तो अपनी अंतर्दशा में दूसरों से सुख और धन की प्राप्ति, खराव अन्न का भोजन, परान्न तथा श्राद्ध का भोजन तथा पापकर्मों द्वारा धन प्राप्ति होती है। मोती, प्रवाल इनके अलंकार, तीर्थयात्रा, धन प्राप्ति, गुरु और राजा की तरफ से दुःख होता है। यदि केतु शुभ स्थान में याने केन्द्र, त्रिकोण, लाभस्थान में हो तो।

महादशास्वामी के स्थान से ५।९।४।१० स्थानों में केतु गया हो तो अंतर्दशा में नौकर तथा वाहन योग, हाथी, घोड़ा तथा वस्त्र प्राप्ति, महाराज की प्रसन्नता से इष्टकार्य में लाभ, व्यापार में अधिक फल की प्राप्ति, पशु वगैरह का लाभ तथा यवन जाति के महाराज द्वारा लाभ तथा वस्त्रलाभ—ये फल होते हैं।

महादशास्वामी के स्थान से केतु ६।१२ वें गया हो अथवा पापग्रहों से युक्त हो तो राजा का कोप, धननाश, कारागृहवास, रोग की पीड़ा, बल की हानि, पितृद्वेष और मन को क्लेश होता है।

केतु की अंतर्दशा में जातक पुत्र एवं बंधुवर्ग के द्वारा तकलीफ पाता है, भोग से वर्जित रहता है, अपनी जगह से च्युत होकर व्यर्थ जहां-तहां भ्रमण करता है। राजकोप, बंधन, धननाश होता है। शुभ दशा में तीर्थयात्रा, मांगलिक कार्य, भूषणादि का निर्माण, वाहन प्राप्ति एवं देवाराधन होता है।

द्वितीय, सप्तम स्थान में हो तो देहपीड़ा होती है।

गुरु की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा
(३२ मास = २ वर्ष ८ महीने)

शुक्र भाग्य तथा केन्द्र के स्वामी से युक्त हो, नवम स्थान में, केन्द्र में, लाभस्थान में, स्वराशि में, शुभग्रह से युक्त हो तो पालकी में बैठने का योग, हाथी,घोड़े, वस्त्र का लाभ, राज्यलाभ, प्रिय या प्रिया मिलन, अवैध सम्बन्धों में दृढ़ता, पत्नीप्रेम, विवाह, कन्या संतान का जन्म, सौंदर्यप्रियता, ऐश आराम की वस्तुओं पर व्यय तथा घर में नवीन कार्य संपन्न होते हैं। वाहन, धन की प्राप्ति, धन, चामरादि वैभव, महाराज की प्रसन्नता से अधिक देश

की प्राप्ति, अत्यंत सुख, काले वस्त्र, शस्त्रों से लाभ, पूर्वदिशा में प्रयाण, धनलाभ, कल्याण, माता-पिता का सुख, देवता तथा गुरुभक्ति, अत्यन्त अन्नदान, तालाव, कुआं, किला आदि का निर्माण, वहु पुण्योपार्जन—ये फल प्राप्त होते हैं।

महादशास्वामी के स्थान से शुक्र केन्द्र राशि में, धनस्थान में, भाग्य स्थान में गया हो तो अपनी अंतर्दशा में धनधान्यादिक लाभ, राजदर्शन, वाहन, पुत्र-लाभ, पशु वृद्धि, अतिसुख, गीतवाद्य वगैरे का आनंद, विद्वान जनों का समागम, दिव्य अन्न का भोजन, अपने साथियों का पोषण करनेवाला—इत्यादि फल प्राप्त होते हैं।

महादशास्वामी के स्थान से शुक्र ६।८।१२ में पड़ा हो तथा नीच का हो तो अपनी अंतर्दशा में कलह से वंधुओं में टंटा और वादविवाद कराता है। स्त्री, संतान को पीड़ा होती है।

यदि शुक्र शनि, मंगल राहु से युक्त हो तो राजद्वार में विरोध, स्त्री के कारण कलह और श्वशुर से कलह, सगे भाई के साथ तकरार धनधान्य की हानि होती है।

इस अंतर्दशा में जात के लोगों से झगड़ा होता है, शत्रुओं के साथ वैर भाव अधिक वढ़ता है, धन के सम्वन्ध से चित्त अलग होता है। तथा अपनी स्त्री से आघात पाकर पीड़ित होता है।

शुक्र यदि अस्त, वक्री, पापग्रह से युक्त या दृष्ट हो तो स्थानांतरण, पर-देशगमन, कष्ट, वंधु विरोध पत्नी पीड़ा आदि फल होते हैं।

शुक्र द्वितीयेश अथवा सप्तमेश हो तो अपनी अंतर्दशा में व्यक्ति निरंतर परेशानियों से ग्रस्त रहता है। तथा दशापति से युक्त वा दृष्ट हो तो औषधि द्वारा अकाल मृत्यु का भय होता है।

गुरु की महादशा में सूर्य की अंतर्दशा (९ मास १८ दिन)

सूर्य अपने उच्चस्थान में, स्वक्षेत्र में, लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, तृतीय स्थान में, लाभस्थान में वलयुक्त हो तो अपनी अंतर्दशा में धनलाभ, राजसम्मान, वैभव, वाहन, स्त्री, वस्त्र, पशु, आभूषण, पुत्र की उत्पत्ति तथा मित्र और स्वामी द्वारा सब कार्यों में मंगल होता है।

सूर्य की अंतर्दशा में तत्काल लाभ, राज्य से उन्नति, वाहन प्राप्ति, पराक्रम, प्रभुता, ऐश्वर्य वृद्धि तथा पुत्रलाभ होता है। जातक को शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है, सुख होता है, कई राजाओं से आदर मिलता है एवं सभी कामों में कठिन से कठिन साहस कर सफलता का लाभ होता है। शत्रु नाश,

जय, सौख्य, महाउत्साह, धनप्राप्ति, राजा की कृपा और आरोग्यप्राप्ति होती है। परन्तु यदि सूर्य ६।८।१२ वें भाव में हो तो अपनी अंतर्दशा में दृष्टि में न्यूनता, रोग तथा आपरेशन (शस्त्रक्रिया) में मदद करता है।

दशास्वामी के स्थान से ६।८।१२ वें भाव में गया हो तो अपनी अंतर्दशा में चिंता, रोग वगैरे से पीड़ा, ज्वर, पीड़ा, सत्कर्म में अनादर, पापकर्म, सर्वत्र लोगों के साथ द्वेष, अपने वंधुओं से कलह, वियोग और अस्कमात कलह होता है।

द्वितीय, सप्तम स्थान का स्वामी हो तो देह पीड़ा करता है।

गुरु की महादशा में चंद्रमा की अंतर्दशा
मास =(१६ = १ वर्ष ४ मास)

चंद्रमा लग्न से, केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभस्थान में, उच्चस्थान में, स्वराशि में, पूर्ण चंद्रमा बलयुक्त हो तथा महादशास्वामी के स्थान से शुभ राशि में गया हो तो अपनी अंतर्दशा में राजसम्मान, वैभव, स्त्री, पुत्रादि का सुख, दूध का भोजन, सत्कर्म तथा कीर्ति, पुत्र-पौत्रादिकों की वृद्धि, महाराज की प्रसन्नता द्वारा सब प्रकार का सुख, धनप्राप्ति, अनेक जनों का सुख तथा दान, धर्म, वगैरे का संचय ये फल प्राप्त होते हैं।

चन्द्रमा की अन्तर्दशा में जातक वहुत स्त्रियों के साथ उपभोग करनेवाला होगा। उसके सारे शत्रु लोग भोग से रहित होकर पूरी तकलीफ उठाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्यान्य सुखों के उपभोग से वस्तुतः वह राजा के समान हो जाता है। घर में श्रेष्ठ मांगलिक कार्य होते हैं, सम्मान वृद्धि होती है, पुत्र-पौत्र जन्म तथा सत्कार्य होते हैं। वैद्यक में प्रतिष्ठा तथा जाति में सम्मान होता है। इस दशा में उच्चपद भी प्राप्त होने की सम्भावनाएँ होती हैं। स्त्री से आनन्द प्राप्त होता है। कीमती वस्त्र तथा अलंकार प्राप्त होते हैं।

चन्द्रमा ६।८।१२वें स्थान में, त्रिकोण में तथा महादशास्वामी से ६।८।१२वें भाव में गया हो बलहीन हो तो अपनी अन्तर्दशा में मान, द्रव्य, बंधु की हानि, विदेश में भ्रमण और स्थानभ्रष्टता राजा तथा चोरों से पीड़ा, पितृवर्ग के साथ झगड़ा, मामा का वियोग तथा मातृ पीड़ा होती है।

चन्द्रमा सप्तम का स्वामी हो तो अंतर्दशा में देह पीड़ा करता है।

गुरु की महादशा में मंगल की अन्तर्दशा (११ मास ६ दिन)

मंगल केन्द्र में, त्रिकोण में, उच्चस्थान में, स्वनक्षत्र में, स्वनवांश में हो तो अपनी अंतर्दशा में विद्या, विवाह-कार्य, ग्राम, जमीन का लाभ होता है। सब

कार्यों में सिद्धि प्राप्त होती है और जातक को जनबल प्राप्त होता है। जातक महाबली शत्रु को भी जीतकर धन एवं कीर्ति का लाभ करता है तथा सुख सौभाग्य एवं शरीर में नैरुज्य प्राप्त होता है। जातक को तत्काल सिद्धि तथा कार्य में सफलता, भूमि क्रय-विक्रय, कृषि में उन्नति, मिलों के व्यापार से लाभ तथा तीर्थयात्रा एवं नवीन आविष्कारों से राज्य अथवा देशव्यापी प्रसिद्धि प्राप्त होती है।

दशापति से केन्द्र में, लाभ तथा धनस्थान में, शुभ ग्रह से युक्त हो तथा दृष्ट हो तो ऐसा मंगल अपनी अंतर्दशा में धन-धान्य सम्पत्ति, मिष्ठान्न भोजन, दान, पुण्य, वैभव, राजप्राप्ति, स्त्रीसुख, संतानप्राप्ति, पुण्य, तीर्थयात्रा वगैरह फल प्राप्त होते हैं।

मंगल यदि ८वें तथा १२वें भाव में गया हो तो अपनी अंतर्दशा में उत्साह-हीनता, ज्वर, गुदा रोग, रक्त सम्बन्धी बीमारियाँ तथा परेशानियाँ उत्पन्न करता है। कर्मनाश, ज्वरबाधा, महाभय, धननाश, निरुत्साह आदि फल होते हैं।

महादशास्वामी के स्थान से ६।८।१२वें भाव में मंगल गया हो, अपनी नीच राशि में हो, पापग्रहों से युक्त हो तथा दृष्ट हो तो धान्य, द्रव्य तथा मकान का नाश होता है। नाना प्रकार के रोगों का भय, दुःख, नेत्र रोग वगैरह होता है।

द्वितीय, सप्तम का स्वामी हो तो मंगल अपनी अंतर्दशा में देह जड़ता और मन में चिन्ता कराता है।

दशा के पूर्वार्ध भाग में अधिक क्लेश होता है तथा आखिरी भाग में अत्यन्त सुख मिलता है।

गुरु की महादशा में राहु की अन्तर्दशा (२८ मास २४ दिन = २ वर्ष ४ मास २४ दिन)

राहु अपने उच्च स्थान में, लग्न से केन्द्र में, मूल त्रिकोण में, भाग्यस्थान में अथवा केन्द्र के अधिपति से युक्त हो, शुभग्रह से युक्त अथवा दृष्ट हो तो अपनी अंतर्दशा में योगाभ्यास में प्रीति, अंतर्दशा के प्रारम्भ में पाँच महीने तक धनधान्य का लाभ, देश तथा ग्राम पर अधिकार, यवन महाजन या स्वामी से मिलाप, घर में कल्याण, सम्पत्ति, बहुसेना का आधिपत्य, दूरयात्रा, पवित्र धर्मकार्य, रामेश्वर सेतुबंध के स्नानफल की प्राप्ति तथा इष्टसिद्धि और सुख होता है।

राहु की अंतर्दशा में वन्धुवर्गों को सर्वांशतः क्लेश होगा, लोगों के साथ झगड़ा, मरण का भी भय तथा अपने निश्चित स्थान से भी हट जाने का अवसर उपस्थित होता है। पीड़ा, गत्यवरोध, ज्वर तथा विविध बाधाएँ आती हैं। सब प्रकार के क्लेश और भय, रोग, सब प्रकार के उपद्रव और धननाश होता है।

राहु यदि कारक ग्रह हो तो अपनी अंतर्दशा में विदेशयात्रा, ख्याति, सम्मान तथा विद्यालाभ होता है।

राहु द्वितीय, सप्तम स्थान में गया हो तो शरीर पीड़ा होती है।

राहु दशा स्वामी के स्थान से ६।८।१२ वें भाव में गया हो, पापग्रह से युक्त हो तो अपनी अंतर्दशा में चोट, सर्प तथा जख्म का भय, राजा के साथ विषमता, घर में अनेक कामों में आधी व्याकुलता, सगे भाई से विरोध, भागीदारी में टंटा, घर में अशुभ कार्य, दुःस्वप्नों से निश्चित भय, अकस्मात् कलह तथा शूल रोग वगैरह होते हैं।

शनि की महादशा में सभी ग्रहों की अन्तर्दशा का फल

शनि की महादशा में शनि की अन्तर्दशा (३६ मास, ३ दिन = ३ वर्ष ३ दिन)

शनि मूल त्रिकोण में, स्वर्क्ष में, तुला राशि में, लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभस्थान में हो राजयोगकारक से युक्त हो तो अपनी अंतर्दशा में राज्यलाभ अतिसुख, स्त्री पुत्रादिक की वृद्धि, तीन प्रकार के वाहनों से युक्त, हाथी-घोड़े की प्राप्ति, महाराज की कृपा से घोड़े, नौकरों की प्राप्ति, चतुष्पाद प्राणियों का लाभ तथा ग्राम, जमीन का लाभ—ये फल प्राप्त होते हैं। शत्रुओं पर सफलता, मुकदमे में जीत, ख्याति, उच्चपद की प्राप्ति, विदेशगमन, विदेश सम्पर्क तथा पुत्र-प्राप्ति होती है। शनि की अंतर्दशा में जातक को शरीर में पीड़ा होती है। पुत्र एवं स्त्री से झगड़ा होता है। स्त्री के कारण इतनी चिन्ता होगी कि उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। तथा अन्त में घर छोड़कर विदेश चला जाता है। नाना प्रकार की बाधाएँ, अधिकारियों से मतभेद, गृहकलह, दमा नाड़ी सम्बन्धी बीमारियाँ स्वजन विछोह तथा राज्य में पदावनति होने की प्रबल सम्भावना रहती है। कष्टसाध्य, व्याधि, मत्सर, घमंड (अभिमान) इनके द्वारा दुःख होता है। राजा तथा चोर द्वारा धनधान्य का नाश होता है; वैर, राजकोप, वृद्ध दासी की प्राप्ति, पशु और विष से भय, पुत्र स्त्री को पीड़ा वातकफात्मक व्याधि और शूल रोग—इत्यादि फल प्राप्त होते हैं।

शनि ६।८।१२वें भाव में गया हो, पापग्रह से युक्त हो तो अपनी अन्तर्दशा के शुरुआत में राजा से भय. विष तथा शस्त्रों से पीड़ा, रक्तस्राव, गोला

(पेट) रोग, तथा अतिसार की पीड़ा होती है। दशा के मध्य में चोर का भय, देशत्याग तथा मन में चिन्ता होती है। और इस अन्तर्दशा के अन्त में शुभफल की प्राप्ति ग्राम-जमीन का लाभ होता है।

द्वितीय, सप्तम स्थान का स्वामी शनि हो तो अपनी अंतर्दशा में अपमृत्यु देता है।

शनि की महादशा में बुध की अन्तर्दशा (३१ मास ९ दिन=२ वर्ष ७ मास ९ दिन)

बुध लग्न से त्रिकोण में केन्द्र में गया हो तो अपनी अंतर्दशा में सम्मान, यश, विद्या का लाभ, धन प्राप्ति, स्वदेश में सुख, वाहनादि की प्राप्ति, यज्ञादिक कर्म की परिपूर्णता, राजयोग, शरीर सुख, मानसिक उत्साह, घर में कल्याण, तीर्थयात्रादि कर्म द्वारा सेतु स्नान फल की प्राप्ति, व्यापार द्वारा धनलाभ, पुराणों का श्रवण, अन्न दान तथा नित्य मिष्ठान्न भोजन वगैरह फल मिलते हैं।

बुध की अन्तर्दशा में सौभाग्य एवं सुख-प्राप्ति, शत्रुमंडल से विजय प्राप्ति, स्थान-मान की वृद्धि, मित्र दलों की तरफ से धन-लाभ, धनधान्य की वृद्धि, सुयश, कीर्ति, व्यापारिक प्रसार तथा व्यापारिक सफलताएँ तथा शरीर की निरोगता, सत्कर्मचार से सम्पत्ति की प्राप्ति, खेतीबाड़ी और दुकानदारी से लाभ इत्यादि फल होते हैं।

बुध लग्न से अगर दशापति से ६।८।१२वें भाव में गया हो, नीच स्थान में हो, अस्तव्यस्त हो, सूर्य, मंगल, राहु से तथा दशानाथ से युक्त हो तो अंतर्दशा में राज्याभिषेक, द्रव्यप्राप्ति तथा ग्राम पर अधिकार—ये फल अंतर्दशा के प्रारम्भ में मिलता है। तथा मध्य और अन्त में रोग, पीड़ा सब कार्यों का नाश (निष्फलता) व्याकुलता तथा अत्यन्त भय होता है।

द्वितीय सप्तम स्थान का स्वामी हो तो अंतर्दशा में बुध देह की पीड़ा देता है।

शनि की महादशा में केतु की अन्तर्दशा (१३ मास ९ दिन=१ वर्ष १ मास ९ दिन)।

केतु शुभ ग्रह से दृष्ट, शुभ युक्त, अपने उच्च स्थान में, शुभ राशि में हो तथा योगकारक ग्रह से युक्त हो तो उसकी अंतर्दशा में स्थानभ्रष्टता, अत्यन्त भय, दारिद्रय, बन्धनभय, पुत्र तथा स्त्री का नाश, अपने स्वामी से महाक्लेश तथा विदेशगमन होता है।

यदि केतु लग्न स्वामी से युक्त हो तो प्रारम्भ में सुख, धन की प्राप्ति, गंगादि सर्व तीर्थों में स्नान तथा देवदर्शन होता है। महादशास्वामी के स्थान से केन्द्र में, त्रिकोण में, ६।८।१२वें राशि में गया हो तो अंतर्दशा में सामर्थ्य, बुद्धि सुख तथा राजा से समागम होता है।

केतु की अंतर्दशा में जातक शोणित और पित्त बिगड़ जाने से पीड़ा, वातपित्तात्मक रोग, नीच और दुर्जन लोगों से टंटा वखेड़ा राज्य भंग, स्थानान्तरण, पदच्युति, वंधुवियोग, स्त्री को पीड़ा कुख्याति इत्यादि फल प्राप्त होते हैं। जातक इच्छानुकूल धन का संचय करता है, रात्रि के समय बुरे स्वप्न दिखाई पड़ते हैं। सम्भवतः किसी विवाद के आवेश में आकर जेल की यात्रा करनी पड़े तो आश्चर्य नहीं।

केतु शुभ ग्रहों से युक्त वा दृष्ट हो तो उपर्युक्त फलों में कुछ न्यूनता जरूर आती है।

महादशास्वामी के स्थान से ६।८।१२वें भाव में गया हो तो अंतर्दशा में अपमृत्यु का भय. कुत्सित अन्न का भोजन, शीतज्वर, अतिसार, व्रण तथा चोट का भय, स्त्रीपुत्रादि वियोग अवश्य होता है।

केतु द्वितीय सप्तम स्थान में हो तो अंतर्दशा में देह पीड़ा करता है।

शनि की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा (३८ मास=३ वर्ष २ महीने)

शुक्र अपने उच्च स्थान में, स्वक्षेत्र में, केन्द्र में गया हो, शुभ ग्रह से युक्त हो, त्रिकोण में या लाभ स्थल में गया हो तो अंतर्दशा में स्त्री, पुरुष तथा धन की प्राप्ति, आरोग्य, उत्सव, घर में कल्याण, सम्पत्ति, राज्यलाभ तथा अत्यन्त सुख होता है।

महाराज की प्रसन्नता से सुखावह इष्टसिद्धि, सम्मान, स्वामी की तरफ से सम्मान, पोषाख, पसंदगी के वस्त्र वगैरे का लाभ। दूसरी भेंट में वस्त्रलाभ, श्वेत घोड़े तथा भैंसों का लाभ होता है। गुरु का सम्बन्ध हो तो भाग्य सुख तथा धन सम्पति प्राप्त होती है।

शनि से सम्बन्ध हो तो निश्चय ही योग की प्राप्ति होती है।

इस अंतर्दशा में मित्र, वंधु एवं अन्यान्य निजाधीन लोगों के साथ बड़ी सहानुभूति होती है। स्त्री खूब प्रसन्नवदना रहती है। विवाद में प्रायः सर्वत्र विजय होती है। सौभाग्य होता है। परिचित लोगों के बीच में अपने वात्सल्य का अनुयायी होता है। उन्नति, राज्य से (प्रमोशन) पदोन्नति, उच्चपद की प्राप्ति, प्रसन्नता एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

यदि शुक्र द्वादशस्थ हो तो विदेशयात्रा होती है। तथा अतुल धन मिलने की सम्भावना होती है। अपनेजनों से स्नेह, लोगों का प्रेम, खेती वाड़ी से सुख प्राप्त होता है।

महादशास्वामी के स्थान से ६।८।१२ वें भाव में हो तो अंतर्दशा में नेत्र-पीड़ा, ज्वर का भय, स्वकुलाचार का त्याग, गाल में, हृदय में, गुह्य भाग में तथा दाँत में पीड़ा होती है। तदुपरान्त जल का भय, मन को संताप, वृक्ष पर से पतन का संभव, राजद्वार के मनुष्यों से द्वेष तथा भाइयों के साथ विरोध होता है।

महादशास्वामी के स्थान से भाग्य स्थान में, केन्द्र में, लाभस्थान में हो तो अंतर्दशा में राजा से प्रीति प्राप्त होती है। तथा मनोवांछित फल की प्राप्ति, दया, दान, धर्म, तीर्थ वगैरे सत्कर्म होते हैं।

शास्त्रार्थ, काव्यरचना, वेदान्त का श्रवण स्त्री-पुत्रादिकों से सुख वाहन तथा छत्र का लाभ।

द्वितीय सप्तम स्थान का स्वामी हो तो देह कष्ट होता है ८वें स्थान में हो तो स्त्रीमरण, बन्धु वियोग, रोग तथा नाना प्रकार का कष्ट भोगना पड़ता है।

[इस विषय में पीछे दिया हुआ सविस्तार वर्णन अवश्य पढ़िये।]

शनि की महादशा में सूर्य की अंतर्दशा (११ मास १२ दिन)

सूर्य अपने उच्चस्थान में, स्वक्षेत्र में, लाभस्थान में, त्रिकोण में गया हो, भाग्य के स्वामी से युक्त हो अथवा शुभ दृष्टि से युक्त हो तो अपनी अंतर्दशा में स्वस्वामी द्वारा अत्यंत सुख, घर में कल्याण, सम्पत्ति सुख, पुत्रादि सुख की वृद्धि, वाहन, वस्त्र, पशु वगैरे तथा गौ के दूध से युक्त—ये फल मिलते हैं।

पुत्र प्राप्ति, पद वृद्धि, राज्य से सम्मान, जीवन के रहन-सहन में परिवर्तन तथा यश की प्राप्ति होती है।

सूर्य की अंतर्दशा में जातक के स्त्री, पुत्र तथा धन सभी का नाश होता है। वाद में वड़ी कठिनाई से काल यापना करता है। यहाँ तक कि संभवतः घोर तकलीफ से शरीर का भी अवसान हो जाता है।

सूर्य ६।८।१२वें भाव में गया हो तो अंतर्दशा में घर में क्लेश, बँटवारा, भाइयों में प्रबल विरोध, नये-नये शत्रु उत्पन्न होना, जठराग्नि तथा नेत्र रोग होता है। पुत्र व स्त्री का नाश, राजा व चोर से पीड़ा तथा मन में भय होता है। हृदयरोग, मानहानि, स्थानभ्रष्टता, मन में चिंता, इष्ट बंधुओं से वियोग,

उद्योग का नाश, ताप से पीड़ा, व्याकुलता, अपने सम्बन्धियों का मरण ये फल होते हैं।

सूर्य द्वितीय सप्तम का स्वामी हो तो अंतर्दशा में देह पीड़ा देता है।

शनि की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा (१९ मास = १ वर्ष ७ मास)

चन्द्रमा गुरु की दृष्टि से युक्त हो, अपने उच्चस्थान में, स्वक्षेत्र में, लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभस्थान में, अथवा पूर्ण चन्द्रमा हो, शुभग्रह से युक्त हो, तो अपनी अंतर्दशा में राज्य की प्राप्ति, आरोग्य लाभ, सौभाग्यवृद्धि, कारोबार की वृद्धि, पूर्ण धनलाभ, राजा से समागम, राजा की कृपा से वाहन, वस्त्र तथा आभूषण, सुख की वृद्धि, नौकरों का पोषण, पिता तथा माता के कुल का सुख तथा सुखप्रदायक पशुओं की वृद्धि होती है।

महादशास्वामी के स्थान से चन्द्रमा केन्द्र में, राशि में, त्रिकोण में अथवा अन्य लाभस्थान में गया हो तो वाहन, वस्त्र, पशु तथा भाइयों की सुखावह वृद्धि होती है। पिता व माता के सुख की प्राप्ति, स्त्री का सुख तथा धन प्राप्ति होती है।

चन्द्रमा क्षीण हो, पापग्रह से युक्त हो अथवा दृष्ट हो, नीच का हो, पापग्रहों के नवांश में गया हो अथवा पापग्रहों की राशि में गया हो तो अत्यंत कष्ट, राजकोप, धन का क्षय, माता-पिता का वियोग, पुत्र तथा पुत्रियों को रोग, व्यवसाय में निष्फलता, भिन्न-भिन्न मार्गों से धन का व्यय, अकाले भोजन, नाना प्रकार की औषधियों का सेवन (अर्थात् तबीयत नादुरुस्त रहे) वगैरे फल होते हैं।

जातक को भारी कष्ट होता है, कदाचित् बच जाए तो पुनर्जन्म समझना चाहिए, तिस पर भी स्त्री का वियोग अनिवार्य है। अपने बंधु वर्ग के बीच उद्वेग होता है, बराबर तकलीफ उठानी पड़ती है, अनवसर में भी व्यर्थ क्रोध की मात्रा बढ़ती जाती है जो कि वस्तुतः वैसी अवस्था प्राकृतिक है। कई कठिन रोगों से भी जातक पीड़ित रहता है।

धननाश, पुत्रविरोध, माता की मृत्यु तथा पेट सम्बन्धी रोग होते हैं। गुरु की स्त्री का मरण, दुःख, आप्तजनों से द्वेष, वातात्मक रोग—ये बातें होती हैं।

अंतर्दशा के प्रारम्भ में सुख तथा धन की प्राप्ति होती है। मित्र तथा स्वामी द्वारा इष्ट सर्वसुख की प्राप्ति होती है।

महादशा के स्वामी के स्थान से ५।८।१२ भाव में गया हो और बलरहित हो तो खाट पर पड़ा रहे, रोग, आलस्य, स्थानभ्रष्टता, शत्रु की वृद्धि तथा इष्ट बंधुओं का वियोग होता है।

द्वितीय सप्तम स्थान का स्वामी हो तो शरीर में आलस्य रहता है।

शनि की महादशा में मंगल की अन्तर्दशा
(१३ मास ९ दिन = १ वर्ष १ मास ९ दिन)

मंगल लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभस्थान में, अपने उच्च में, स्वक्षेत्र में हो अथवा दशा के अधिपति से युक्त हो तो अपनी अंतर्दशा में शुरुआत में राजा की प्रीति के कारण सुख, वाहन, वस्त्र तथा आभूषण, सेनापतित्व, राजा की प्रीति, खेती, गाय तथा धान्य सम्पत्ति, नये घर का निर्माण तथा भ्रातृ वर्ग में इष्ट सुख की प्राप्ति—ये फल होते हैं। इस दशा में जातक विविध भोगों को भोगता है। नौकरी में पदवृद्धि तथा बकाया धनराशि की प्राप्ति होती है। भूमि की खरीद विक्री द्वारा लाभ होता है। नये-नये कारखानों की स्थापना एवं व्यापार में वृद्धि होती है।

यदि मंगल अकारक हो, नीच का हो, अस्तंगत हो, ६।८।१२वें भाव में हो, पापग्रह से युक्त वा दृष्ट हो तो धनहानि होती है, रोग की वृद्धि, गुप्तांग में पीड़ा, सर्प, जखम, शस्त्र की पीडा होती है। भाइयों को तथा पितृवर्ग को पीडा होती है। भागीदारों तथा साझीदारों से विरोध, पशुहानि, कुत्सित अन्न की प्राप्ति, परदेशगमन, भिन्न-भिन्न मार्गों द्वारा धन का खर्च होता है। स्थान-च्युति, महारोग, अनेक प्रकार का मन में भय, भाई-वंधु और मित्रों को पीड़ा, नाना शत्रुओं द्वारा उत्पन्न भय, मित्रों का वियोग, मरणान्तक कष्ट, देश छोड़कर विदेश जाना पड़े, बुद्धि में बिगाड़-इत्यादि फल होते हैं।

अष्टम तथा सप्तम स्थान का स्वामी हो अथवा द्वितीय में बैठा हो तो अपमृत्यु का भय, नाना प्रकार की पीड़ा तथा पराभव होता है।

शनि की महादशा में राहु की अन्तर्दशा
(३० मास १० दिन = २ वर्ष ६ मास १० दिन)

राहु की अंतर्दशा हो तो कलह, मन को संताप, देह पीड़ा तथा वात विकार, ज्वर तथा अतिसार से शरीर में अधिक पीड़ा हो, सर्वांग में रोग के कारण पीड़ा हो, पुत्रद्वेष, मानसिक रोग, कलह, रक्त दूषितता, विविध प्रकार की चिंताएँ, परदेशगमन, धननाश, शत्रु से भंगप्राप्ति, द्रव्य का व्यय, राजा का भय, स्वजनों से उपद्रव, मकान तथा खेती का नाश—ये फल होते हैं। चोर, शत्रु तथा राजा इनसे दुःख तथा धनक्षय होता है।

राहु लग्न के स्वामी से युक्त हो, योग कारक हो, अपने उच्चस्थान में, स्वक्षेत्र में, केन्द्र में अथवा महादशास्वामी के स्थान से लाभस्थान में हो तो सुख, धन की प्राप्ति, मकान, खेत वगैरे सम्पत्ति, देव तथा ब्राह्मण की भक्ति,

तीर्थयात्रा का लाभ, गाय, भैंस, घोड़ा वगैरह प्राणियों का लाभ तथा कल्याण की वृद्धि होती है। अंतर्दशा के मध्य में राजा का भय तथा पुत्र, मित्र वगैरे के साथ विरोध होता है। मेप, कर्क, वृषभ, मीन, धन अथवा सिंह राशि में राहु गया हो तो अपनी अंतर्दशा में हाथी रखने समान ऐश्वर्य प्राप्त होता है। राजसन्मान, आभूषण, रेशमी वस्त्र वगैरे का सुख मिलता है।

राहु द्वितीय सप्तम स्थान के स्वामी से युक्त हो तो देहपीड़ा देता है।

शनि की महादशा में गुरु की अन्तर्दशा

(३० माह १२ दिन = २ वर्ष ६ मास १२ दिन)

गुरु लग्न से केन्द्र में, लाभ में तथा त्रिकोण में गया हो, लग्नेश से युक्त हो, अपने उच्चस्थान में, स्वक्षेत्र में हो तो अपनी अन्तर्दशा में मनोरथ सिद्धि सर्व कार्यों में सिद्धि, आनन्द, महाराज की कृपा से धन, वाहन, आभूषण, सम्मान प्राप्ति, पुत्रलाभ, अपने स्वामी के तरफ से सम्मान- मनपसंद वस्त्र- पुस्तक लेखन तथा नवीन कार्य, द्रव्यप्राप्ति, देवता ब्राह्मण इनकी भक्ति, राजा की प्रीति, उच्च प्रकार का सौख्य, स्थावर जंगम प्राप्ति का लाभ होता है। गुरु-भक्ति, जातक देवता ब्राह्मण वगैरह की पूजा-अर्चा में रहता है, सौख्य का भागी होता है, अनेक नौकरों एवं अपने प्रशंस्य गुणों से हमेशा युक्त रहता है तथा किसी उच्च स्थान की प्राप्ति भी होती है। विद्वान पुरुषों से समागम, स्त्री-पुत्रादि लाभ, पुत्र का कल्याण तथा वैभव प्राप्त होता है।

महादशा स्वामी के स्थान से केन्द्र में, त्रिकोण में, धनस्थान में अथवा लाभस्थान में हो तो अन्तर्दशा में वैभव, स्त्री, सौभाग्य, राजलक्ष्मी, धनसम्पत्ति, भोजन, वस्त्र तथा दान-धर्मादिक पुण्य का संचय प्राप्त होता है। तदुपरान्त ब्राह्मणों में प्रतिष्ठा (अथवा ब्रह्मनिष्ठता), यज्ञकर्म का फल, अन्नदान, अत्यन्त कीर्ति और वेदान्त श्रवण का फल वगैरह फल मिलते हैं।

महादशास्वामी से ६।८।१२वें भाव में गुरु गया हो, अस्तङ्गत हो, नीच राशि में गया हो, वक्री हो या बल रहित हो या अकारक ग्रह हो तो कुष्ठरोग, सन्तान बाधा, पत्नी से वियोग या पदच्युत होने की सम्भावना रहती है। बन्धुओं से द्वेप, मानसिक दुःख, पदभ्रष्टता, कुभोजन, कर्महानि, राजदण्ड से धनक्षय, कारागृहबास, पीड़ा वगैरह तथा पुत्र व स्त्री के द्वारा पीड़ा होती है।

गुरु लग्न से ६।८।१२वें गया हो, पाप युक्त हो, नीच का हो तो अन्तर्दशा में सगे-सम्बन्धियों का मरण, धन धान्य का नाश, राजद्वार में द्वेष, धनहानि तथा कर्महानि होती है। विदेश गमन, कोढ़ और चमड़ी के रोग होते हैं।

द्वितीय सप्तम स्थान का स्वामी गुरु हो तो अन्तर्दशा में शरीर को पीड़ा, मन में चिन्ता तथा स्वसम्बन्धी जनों में किसी का निधन नक्की होता है।

बुध की महादशा में सभी ग्रहों की अन्तर्दशा का फल

बुध की महादशा में बुध की अन्तर्दशा
(२८ मास २७ दिन = २ वर्ष ४ माह २७ दिन)

बुध की अन्तर्दशा हो तो मोती तथा परवालों का लाभ, ज्ञानप्राप्ति के लिए कर्म, सुख, विद्या की वृद्धि, नये सेठ से मिलाप, स्त्री पुत्रादिक तथा माता-पिता का सुख प्राप्त होता है। जातक की बुद्धि धर्म सम्बन्धी बातों में अवश्य लगती है। अधिक समय तक इष्ट मित्रों का समागम होता है। विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति होती है किन्तु शारीरिक पीड़ा का प्रकोप कुछ बढ़ जाता है। व्यापार की विशेष वृद्धि होती है। परदेश से सम्पर्क स्थापित होता है तथा चतुर्दिक कीर्ति एवं प्रशंसा फैलती है। इस दशा में श्रेष्ठ विद्यालाभ, प्रतियोगिता में सफलता एवं वैभव की प्राप्ति होती है। विचित्र गृह तथा वस्त्रों की प्राप्ति होती है।

लेकिन बुध अकारक, नीच राशि में, अस्त या वक्री हो, उग्र ग्रह से युक्त हो, ६-८-१२वें भाव में गया हो, पापग्रह से युक्त अथवा दृष्ट हो तो विविध कष्ट, स्थानान्तरण एवं हानि होती है। धन धान्य तथा पशुओं का क्षय होता है। स्व बन्धुओं से विरोध होता है। शूल रोग तथा राजकाज कोर्ट कर्ज्जा में धन गँवाना पड़ता है और उससे व्याकुलता प्राप्त होती है।

द्वितीय सप्तम स्थान का स्वामी हो तो अन्तर्दशा में स्त्री को क्लेश होता है। अपने सम्बन्धियों में से किसी का मरण और वातशूल वगैरे का रोग सम्भव होता है।

बुध की महादशा में केतु की अन्तर्दशा (११ मास २७ दिन)

केतु लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, शुभयुक्त, शुभदृष्टि, लग्नेश से युक्त, कारक योग वाला हो अथवा महादशा स्वामी के स्थान से केन्द्र में, त्रिकोण में गया हो तो शरीर सुख, अल्प धनलाभ एवं बन्धुओं से स्नेह और अपने बन्धुओं को सहायता करने वाला होता है। चतुष्पाद प्राणियों का लाभ होता है। संसार में सन्ताप, विद्या तथा कीर्त्ति के प्रसंग में सन्मान, प्रभु के दर्शन (समागम), भोजन तथा वस्त्र वगैरह का सुख प्राप्त होता है।

केतु यदि दूसरे भाव में हो तो विशेष धन प्राप्ति होती है।

केतु की अन्तर्दशा हानिकारक है अर्थात् सदैव दुःख शोक की अधिकता से जातक व्याकुल रहता है। अनेक शारीरिक क्लेश होते हैं। अल्प लाभ होता

है, नवीन चिन्ताएँ घेरे रहती हैं, शारीरिक बाधा, मानसिक परेशानियाँ होती हैं। आप्तजनों से पीड़ा, मन को दुःख, सुख की हानि, शत्रु से भय तथा कार्यनाश होता है।

इस अन्तर्दशा के शुरुआत में तथा मध्य में सुख प्राप्त होता है।

महादशा स्वामी के स्थान से ६।८।१२वें भाव में हो तो केतु अपनी अन्तर्दशा में वाहन पर से गिरना, पुत्रक्लेश, चोर तथा राजा से भय, पापकर्म में प्रीति, बिच्छू वगैरह से भय, नीच लोगों के साथ कलह, शोक, रोग वगैरह का दुःख होता है।

द्वितीय सप्तम भाव का स्वामी या उन स्थानों में केतु हो तो अन्तर्दशा में शरीर में जड़ता, आलस्य आदि देता है।

बुध की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा (३४ मास = २ वर्ष १० मास)

शुक्र लग्न से केन्द्र में, लाभस्थान में या त्रिकोण में गया हो तो अपनी अन्तर्दशा में सत्कथा. पुण्य तथा धर्म वगैरह का संचय, मित्र और स्वामी द्वारा इष्टलाभ, क्षेत्रलाभ तथा सुख होता है। जातक को किसी बड़े दरबार में आदर के साथ उत्तम-उत्तम वस्त्र, आभूषण तथा धर्म के सम्बन्ध में धन भी पर्याप्त मिलेगा, अर्थात यह धन न्याय संगत होगा। विविध वाहनों की उपलब्धि, सम्पत्ति लाभ, विद्या द्वारा ख्याति, बँटवारे से लाभ, समृद्धि पूर्ण जीवन बनता है। गुरु, देव,अग्नि और ब्राह्मण (द्विज) इनको दान, धर्म पर श्रद्धा, तपाचरण, धन व अलंकार और वस्त्रों की प्राप्ति होती है।

महादशास्वामी के स्थान से केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभस्थान में शुक्र गया हो तो अन्तर्दशा में तत्काल लक्ष्मी, राज्यलक्ष्मी, धन-सम्पत्ति, कुआं, तालाब वगैरह खोदना तथा दान वगैरह करने से धर्म का संचय, व्यापार में अधिक फल की प्राप्ति और धन-धान्य की समृद्धि प्राप्त होती है।

यदि शुक्र ८वें हो तो पत्नी का मरण, नाना प्रकार की झंझटें तथा शारीरिक कष्ट होता है। लेकिन यदि शुक्र द्वितीयेश अथवा अष्टमेश हो तो एक्सीडेण्ट (अपघात) का खतरा रहता है।

महादशास्वामी से ६।८।१२ में गया हो अथवा बलरहित हो तो ऐसा शुक्र अपनी अन्तर्दशा में हृदय का रोग, मानहानि, ज्वर तथा अतिसार की पीड़ा, स्वबन्धुओं से वियोग, संसार में तथा देह में अशान्ति, आवक की अपेक्षा अधिक खर्च तथा भागीदारी से मन में चिन्ता वगैरह फल प्राप्त होते हैं।

शुक्र यदि द्वितीय सप्तम का स्वामी हो तो अपनी अन्तर्दशा में अपमृत्यु कराता है।

बुध की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा (१० मास ६ दिन)

सूर्य अपने उच्च में, स्वक्षेत्र में, लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, धनस्थान में, लाभस्थान में, अथवा स्वनवांश में गया हो तो अपनी अन्तर्दशा में राजा की प्रसन्नता से सद्भाग्य तथा मित्र और स्वामी द्वारा सुख प्राप्त होता है। यदि ऐसे सूर्य पर मंगल की दृष्टि हो तो प्रारम्भ में भूमि का लाभ होता है। लग्न के अधिपति की सूर्य पर दृष्टि हो तो अत्यंत सुख, धन प्राप्ति, ग्राम तथा जमीन का लाभ, भोजन तथा वस्त्रों का सुख—ये फल होते हैं।

सूर्य की अन्तर्दशा में जातक को सोना, चाँदी एवं अपने प्रान्त में चारों तरफ निर्मल यश प्राप्त होता है। एवं अपनी स्त्री के द्वारा किसी बात की फिक्र में आकर बड़ा उद्वेग लग जाता हैं। यह अन्तर्दशा श्रेष्ठ रहती है। यदि लग्नेश + सूर्य की युति हो तो अन्तर्दशा में पद की वृद्धि, सन्मान की वृद्धि, राज्य में लाभ तथा पुस्तक द्वारा विशेष पुरस्कार मिलता है। यदि सूर्य + मंगल की युति हो तो नवीन गृह का निर्माण होता हैं। वस्त्रालंकार की प्राप्ति राजप्रेम, महासुख तथा धर्म पुराणादि का श्रवण—ये फल होते हैं।

सूर्य ६।८।१२वें भाव में, शनि, मंगल राहु से युक्त हो; महादशास्वामी के स्थान से ६।८।१२ स्थान में अथवा बलरहित हो तो अपनी अन्तर्दशा में चोर, अग्नि तथा शस्त्र से पीड़ा, पित्त की अधिकता, मस्तक रोग, दृष्टि क्षीणता का शिकार मन में सन्ताप तथा इष्ट बन्धुओं का वियोग होता है।

सूर्य द्वितीय, सप्तम स्थान का स्वामी हो तो अन्तर्दशा में अपमृत्यु होती है।

बुध की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा (१७ मास = १ वर्ष ५ मास)

चन्द्रमा लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, अपने उच्चस्थान में, स्वर्क्ष में गया हो अथवा गुरु की दृष्टि से युक्त हो तो अपनी अन्तर्दशा में योग और स्थान के आधिपत्य के अनुसार योग की प्रबलता, स्त्री का लाभ, पुत्रलाभ, वस्त्र, वाहन तथा आभूषणों की प्राप्ति, नये मकान का लाभ, नित्य मिष्टान्न भोजन, गीत-वाद्यों का प्रसंग तथा शास्त्र विद्या में परिश्रम होता है। दक्षिण दिशा में प्रयाण, अन्य द्वीप में गमन (दरियाई मुसाफिरी) तथा वस्त्रों का लाभ, मोती, परवाले रत्न तथा सफेद वस्त्रों का लाभ होता है।

इस दशा में जातक को विशेष आर्थिक लाभ, व्यापार वृद्धि, सामाजिक सफलताएँ, कन्या प्राप्ति तथा राज्य से तरक्की होती है।

महादशास्वामी के स्थान से केन्द्र में, त्रिकोण में, तृतीय स्थान में, लाभस्थान में चन्द्रमा गया हो तो अन्तर्दशा के प्रारम्भ में पवित्र तीर्थ में स्नान, देवदर्शन, धैर्य, उत्साह तथा विदेश में धन का लाभ होता है।

यदि चन्द्रमा क्षीण हो, अष्टम भाव में हो, पाप युक्त हो, ६।८।१२वें भाव में गया हो तथा महादशा स्वामी से भी उक्त स्थानों में हो तो, अपनी अन्तर्दशा में जातक को कुष्ठ, गण्डमाला (घेघा), क्षय रोग, भगन्दर आदि महाभयानक रोगों से कष्ट होता है। हाथी, घोड़ा, मोटर वगैरह पर से गिरने का भय रहता है। जातक को सहयोगी द्वारा धोखा होने से धनहानि की प्रबल चिन्ता वहन करनी पड़ती है। रोग, शत्रु से पीडा होती है। सब कार्यों का नाश तथा चतुष्पाद प्राणियों से भय होता है। चोर, अग्नि, राजा का भय होता है। दुष्कर्म, धनहानि, खेती तथा पालतू जानवरों का नाश होता है। चन्द्रमा नीच का वा शत्रु क्षेत्र में हो तो देह पीड़ा होती है।

द्वितीय सप्तम स्थान का स्वामी हो तो अन्तर्दशा में देह पीड़ा होती है।

बुध की महादशा में मंगल की अन्तर्दशा (११ मास २७ दिन)

मंगल लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, अपने उच्च स्थान में, स्वर्क्ष में गया हो, लग्नेश से युक्त हो तो अपनी अन्तर्दशा में राजा का अनुग्रह होता है, सुख, शांति तथा घर में कल्याण होता है। लक्ष्मी की कृपा से चिह्न, वैभव, समृद्धि वगैरे नजर पड़ते हैं। गुमा हुआ राज्य तथा धन इनका लाभ कराता है। तदुपरान्त पुत्रोत्सव वगैरे का सन्तोष, घर में गाय वगैरे धन का लाभ, मकान तथा खेतों का लाभ, घोड़ा तथा हाथियों की प्राप्ति, वाहन प्राप्ति, राजा की प्रीति, उसी प्रकार अच्छी रीति से स्त्री सुख वगैरे प्राप्त होता है।

इस अन्तर्दशा में कृषि से लाभ होता है। भूमि लाभ, नवीन गृह का निर्माण, पुस्तक लेखन द्वारा यश प्राप्ति तथा मुकदमे में जीत होती है। रोग और शत्रु भय निरस्त होता है, पुण्य संचय तथा राजप्रेम होता है।

महादशास्वामी से मंगल केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभ में, शुभ दृष्ट हो तो अन्तर्दशा में जातक को देहसुख, धन प्राप्ति, पुत्रलाभ, कीर्ति की वृद्धि तथा भाइयों से अत्यन्त प्रेम होता है।

मंगल अपनी नीच राशि में हो, वक्री हो, ८।१२ वें स्थान में हो, पाप से युक्त वा दृष्ट हो तो सिर में कई रोग होते हैं। गले में भी ऐसी-ऐसी बीमारियाँ हों जिनके कारण अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं। चोरों के द्वारा धननाश की आशंका सदैव बनी रहती है अपितु कभी-कभी अपनी जान का भय भी उपस्थित हो जाता है। जातक शत्रुओं से पराजित होता है, उसके मन में हीनता की वृत्ति का उदय होता है। मुकदमे में हार होती है तथा दुर्घटना होती है। पीड़ा, मनोव्यथा, उद्योग का नाश, अपने स्थान

में धान्य का नाश, गाँठ का रोग, शस्त्र, जख्म तथा ताप ज्वर का भय होता है।

महादशास्वामी से मंगल ६।८।१२ वें भाव में हो, पापयुक्त हो तो अन्तर्दशा के आरम्भ में महाक्लेश, भ्रातृवर्ग से अत्यन्त भय, राजा, अग्नि, चोर का भय, पुत्र तथा मित्रों से विरोध, स्थानभ्रंश तथा धैर्यहीनता वगैरे फल मिलते हैं। दशा के मध्य में सुख, धनप्राप्ति होती है। दशा के अन्त में राजा का भय, स्थानभ्रष्टता होती है।

द्वितीय सप्तम स्थान का स्वामी हो तो अन्तर्दशा में अपमृत्यु का भय रहता है।

बुध की महादशा में राहु की अंतर्दशा
(३० मास १८ दिन = २ वर्ष ६ मास १८ दिन)

राहु लग्न से केन्द्र में, लाभ स्थान में, त्रिकोण में, कर्क, कन्या अथवा वृषभ राशि में गया हो तो अपनी अन्तर्दशा में राजसन्मान, कीर्ति तथा समयानुसार राजा के समान अधिकार प्राप्त होता है। पवित्र तीर्थ में स्नान की प्राप्ति, देवदर्शन, यज्ञ-यागादि करना, कुआं, बावड़ी खुदवाना वगैरे पुण्य संचय (इष्टापूर्त) के काम होते हैं, मानपूर्वक वस्त्रादिक की प्राप्ति होती है। लग्न से उपचय स्थान में राहु गया हो अथवा शुभग्रह से युक्त हो तो राज्यप्राप्ति, सन्तोष एवं नए स्वामी के साथ मिलाप होता है। यदि राहु कारक होकर षष्ठ में, अष्टम भाव में गया हो तो धनलाभ, राज्य सन्मान एवं चुनाव में विजयश्री प्राप्त होती है। मित्र और आप्तजनों से द्रव्यलाभ, सौख्यलाभ, विद्या में यश, राजप्रीति—ये फल होते हैं।

राहु ६।८।१२ वें भाव में गया हो तो धननाश तथा दशा की शुरुआत में अजीर्ण और वात ज्वर होता है। दशा के प्रारम्भ में शारीरिक पीड़ा और और अन्त में सुख प्राप्त होता है।

इस अन्तर्दशा में कभी तो शत्रुओं द्वारा भय उपस्थित होता है, कभी धन की क्षति होती है एवं कभी मकान अग्नि से भस्म होने की सम्भावना रहती है। ये उपाधियाँ अक्सर चोरों के द्वारा होती हैं।

महादशास्वामी के स्थान से राहु ६।८।१२ वें भाव में गया हो, पापग्रह से युक्त हो तो अन्तर्दशा में राजकाज में कठोरता, स्थानभ्रंश, महान भय, बन्धन, रोग की पीड़ा होती है। अपने बन्धुओं तथा मन की व्यथा, हृदय रोग और धन का नाश—ये बातें होती हैं।

द्वितीय सप्तम भाव में राहु गया हो तो अपनी अन्तर्दशा में अपमृत्यु होती है।

बुध की महादशा में गुरु की अन्तर्दशा
(२७ मास ६ दिन=२ वर्ष ३ मास ६ दिन)

गुरु लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, अपने उच्चस्थान में, स्वर्क्ष में, लाभ स्थान में, धन स्थान में गया हो तो शरीर सुखकारी, धनप्राप्ति, राजा की प्रीति, विवाहोत्सव, नित्य मिष्ठान्न भोजन, पशुलाभ, पुराण श्रवण, देवता तथा गुरु भक्ति, दान तथा यज्ञादिक धर्म का संचय, यज्ञकर्म की वृद्धि तथा शिवपूजा वगैरे फलों की प्राप्ति होती है। जातक व्याधि, शत्रु इनके भय से एकदम मुक्त रहता है। याने कभी ये उसके करीब न जाएं। ब्रह्मज्ञानी होता है। किसी राजा का परम-प्रेम-प्रात्र बना रहता है। पवित्र आत्मा रहती है। जिससे कि कभी किसी की बुराई करने की दुर्भावना नहीं आती एवं जातक परम धर्म करनेवाला श्लाघ्य होता है।

जातक को विशेष आर्थिक लाभ होता है तथा उसके व्यापार का प्रसार दूर-दूर तक हो जाता है। नये-नये सम्बन्ध स्थापित होते हैं जो आगे चल कर विशेष लाभदायक बनते हैं। इसी दशा में पुत्रलाभ, ग्रन्थलेखन, ग्रन्थ-प्रकाशन आदि कर्म भी होते हैं।

महादशास्वामी के स्थान से गुरु केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभस्थान में गया हो, अथवा षड्वर्गादि बलयुक्त हो तो बन्धु तथा पुत्र के मन में उत्साह, कल्याण, पशुवृद्धि, यश का लाभ तथा पुत्रादिकों की प्राप्ति होती है।

गुरु नीच राशि में हो, अस्तंगत हो, ८।१२ वें भाव में हो, शनि, मंगल, राहु से युक्त हो तो कलह, राजा के साथ विरोध, चोर वगैरे से देह पीड़ा, पिता-माता का नाश, मानहानि, राजदण्ड, धनक्षय, इष्ट-मित्र और आप्त-जनों का द्वेष, शारीरिक कष्ट, सर्पभय, ज्वर की पीड़ा, खेती, गौ, भूमि का नाश होता है।

महादशास्वामी के स्थान से ६।८।१२ वें भाव में गया हो, बलरहित हो तो अंगताप, विकलता, देह पीड़ा, स्त्री तथा बन्धुओं के साथ विषमता, राजकोप, धनक्षय, अकस्मात कलह का भय, प्रमाद तथा राजा के साथ विरोध—ये बातें होती हैं।

गुरु द्वितीय, सप्तम भाव में गया हो तो अन्तर्दशा में देह पीड़ा होती है। गुरु नीच का या आठवें भाव में गया हो तो अन्तर्दशा में मरणात्मक कष्ट भोगता है।

बुध की महादशा में शनि की अन्तर्दशा
(३२ मास, ९ दिन = २ वर्ष, ८ मास ९ दिन)

शनि उच्च का, स्वराशिस्थ, मूल त्रिकोण में, लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभस्थान में गया हो तो घर में कल्याण की वृद्धि होती है। राज्यलाभ, महोत्सव, पदवृद्धि, राज्य सम्मान, चतुर्दिक प्रशंसा, घर में गौरूपी धन की वृद्धि, शत्रु को निराशा और तीर्थ, धर्म, सत्कर्म होना, द्रव्यप्राप्ति, छोटे-छोटे अधिकारियों द्वारा सुख की प्राप्ति किन्तु खेती बाड़ी का नाश—ये बातें होती हैं।

शनि ६।८।१२ वें भाव में हो, अस्त, शत्रु वक्र या शत्रु क्षेत्र में हो तो अन्तर्दशा में शत्रुओं की ओर से अतिदुःख, स्त्री, पुत्रादिकों से पीड़ा, बुद्धिभ्रंश, बन्धुओं का नाश, कर्म का नाश, चिन्ताएं, व्याधियाँ, विदेश गमन, दुःखों की प्राप्ति तथा स्वप्नों में भी सम्पत्ति प्राप्त नहीं होती—ये बातें होती हैं।

मनुष्य धर्म एवं धन का उपभोग करनेवाला होता है, गम्भीरतापूर्वक विचार करनेवाला होता है। नपुंसकता आने की सम्भावता रहती है। जातक अपने मित्रों की तरफ से धनप्राप्त करने की कोशिश में लगा रहता है तथा सभी कामों में अनुत्साह दिखाने वाला होता है।

द्वितीय, सप्तम स्थान का स्वामी हो तो शनि अपनी अन्तर्दशा में अपमृत्यु देता है।

केतु की महादशा में सभी ग्रहों की अन्तर्दशा
केतु की महादशा में केतु की अन्तर्दशा (४ मास २७ दिन)

केतु लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभ स्थान में, अथवा लग्न स्वामी से युक्त हो, भाग्य व कर्म के स्वामी से अथवा चतुर्थ स्थान के स्वामी से युक्त हो, तो अपनी अन्तर्दशा में प्रारम्भ से धन, धान्य तथा चतुष्पद प्राणियों का लाभ देता है। स्त्री पुत्रादिकों का सुख, राजप्राप्ति, आनन्द ग्राम तथा जमीन का लाभ देता है। घर में गौरूपी धन की प्राप्ति होती है। केतु यदि द्वितीय स्थान में बैठा हो तो अन्तर्दशा में जातक को पदोन्नति के द्वारा धनलाभ देता है।

केतु नीच का हो (अस्तंगत हो), ८।१२ वें भाव में गया हो तो स्त्री और सम्पत्ति की हानि, सुख न मिलना, धननाश, शत्रुभय, कन्यापुत्र का नाश, रोग तथा अग्नि से भय, लोगों के साथ विवाद बढ़ता है। शासन विभाग से दंड भी हो तथा किसी दुष्ट स्वभाववाली स्त्री से झगड़ा भी हो। जातक का स्थानान्तरण

होता है। वह चारों ओर से परेशान हो जाता है। आर्थिक दृष्टि से उसे कई चिन्ताएँ आ घेरती हैं तथा भाइयों से विग्रह एवं राज्य से बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। मानहानि, धन-धान्य तथा पशुओं का क्षय, स्त्री-पुत्रादिक की पीड़ा, मन की चंचलता—ये फल होते हैं।

सप्तम भाव के स्वामी से केतु युक्त हो अथवा उस स्थान में हो तो अपनी अन्तर्दशा में अतिकष्ट अनारोग्य तथा स्वबंधुओं से वियोग—ये फल देता है।

केतु की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा (१४ मास = १ वर्ष २ मास)

शुक्र स्वगृह में उच्चस्थान में, लग्न से केन्द्र त्रिकोण में, तथा दशमेश से युक्त हो तो अपनी अन्तर्दशा में राजप्रीति, सौभाग्य, राज्य के तरफ से वस्त्रादिक की प्राप्ति तथा तत्काल लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। शुक्र भाग्य तथा कर्म स्थान के स्वामी से युक्त हो तो अन्तर्दशा में नष्ट हुआ राज्य तथा धन की प्राप्ति, सुख तथा उत्तम वाहन की प्राप्ति, सेतु स्नान वगैरे तथा देवदर्शन रूपी धार्मिक कार्य, महाराज की प्रसन्नता से ग्राम तथा जमीन वगैरे का लाभ होता है।

व्यापार में लाभ नौकरी में मनोवांछित स्थान पर स्थानांतरण, राज्य में बाधाएँ मानहानि एवं पुत्रों की तरफ से कष्ट प्राप्त होता है। शुक्र यदि द्वादश स्थान में हो तो अन्तर्दशा में लेखन, प्रकाशन यशलाभ एवं सम्मानवृद्धि करता है।

महादशास्वामी के स्थान से केन्द्र में, त्रिकोण में, तृतीय स्थान में, लाभ स्थान में गया हो तो आरोग्य, घर में कल्याण, संपत्ति, भोजन, वस्त्र तथा आभूषणों की प्राप्ति, घोड़े वगैरे वाहन का सुख-साधन–ये फल प्राप्त होते हैं।

शुक्र नीच राशि में गये हुए ग्रहों से युक्त हो अथवा लग्न से ६।८ में गया हो तो स्वबंधुजन के साथ विषमता, मस्तिष्क तथा नेत्र पीड़ा, व्रणपीड़ा, हृदय का रोग, मानहानि, धनधान्य का नाश तथा पशुओं का नाश, स्त्री-पुत्रों से पीड़ा तथा मुसाफिरी में पीड़ा–ये फल होते हैं। अपनी स्त्री से झगड़ा, अग्निदाह से मकान का नाश, कठिन ज्वर की पीड़ा—ये फल होते हैं। संभवतः कुछ दिनों तक स्त्री से अलग रहना, और उसी प्रकरण में एक कन्या का पैदा होना इत्यादि बातें होती हैं। स्त्री-पुत्र को बीमारी, कलह, आप्तजन तथा मित्रों से किसी की मृत्यु, ज्वर, अतिसार इन रोगों से स्वयं को परेशानी—ये बातें होती हैं।

महादशास्वामी के स्थान से ६।८।१२ वें भाव में शुक्र हो तो अंतर्दशा में शुक्र अकस्मात् कलह, पशु धनधान्य का नाश होता है।

द्वितीय सप्तम का स्वामी हो तो शुक्र अपनी अंतर्दशा से देह में जड़ता तथा मानसिक रोग देता है।

केतु की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा (४ मास ६ दिन)

सूर्य उच्चस्थान में, स्वक्षेत्र में, लग्न से त्रिकोण में, शुभग्रह से युक्त अथवा दृष्ट हो तो अपनी अंतर्दशा में, धनधान्यादिक का लाभ, राजा का अनुग्रह, वैभव, अनेक प्रकार के शुभ कार्य तथा सुखावह इष्टसिद्धि देता है। महादशास्वामी के स्थान से केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभ में, धन स्थान में गया हो तो अपनी अंतर्दशा में सूर्य शरीर सुख, द्रव्यलाभ, पुत्रलाभ मन की दृढ़ता, मुसाफिरों में कार्यसिद्धि और नाना ग्रामों का अधिकार देता है।

यह अन्तर्दशा साधारण होती है इस अन्तर्दशा में मनोभंग, शरीर कष्ट, परदेशगमन, सब प्रकार का भय, किसी भी काम में अड़चनें—ये बातें होती हैं। जातक को किसी राजा या राज्य से बड़ी तकलीफ पहुँचती है और शत्रुओं से विवाद बढ़ता है। अग्निदाह होता है तथा अवसर पाकर ज्वर का प्रकोप इसे विवश करता है तथा इससे बच जाने पर घर छोड़कर विदेश जाना पड़ता है। स्थानभ्रष्टता, अधिकारियों से विरोध, गलतफहमियाँ, स्थानांतरण, शारीरिक कष्ट—ये बातें होती हैं।

सूर्य ६।८।१२ वें भाव की राशि में गया हो, पापयुक्त हो, द्वितीयेश हो तो अपनी अंतर्दशा में राजा से भय, माता-पिता का वियोग, विदेशगमन चोर सर्प भय, कई रोगों से ग्रस्त होने पर दुखी, राजा तथा मित्रों से विरोध, राजदण्ड द्वारा धनक्षय, शोक तथा रोग का भय, गर्मी की अधिकता से पीड़ा—ये बातें होती हैं।

महादशास्वामी से ६।८।१२ वें भाव में गया हो पापग्रह से युक्त हो तो सूर्य अपनी अंतर्दशा में अन्न में विघ्न, मन में भय, धनधान्य तथा पशु का क्षय —ये फल देता है।

अंतर्दशा के प्रारम्भ में तथा मध्य में अतिक्लेश तथा अन्त में सुख होता है।

सूर्य द्वितीय, सप्तम स्थान का स्वामी हो तो अंतर्दशा में अपमृत्यु होती है।

केतु की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा (७ मास)

चन्द्रमा उच्चस्थान में, स्वगृह में, स्वराशि में, लग्न से केन्द्र में त्रिकोण में, लाभ स्थान में, धनस्थान में सुखेश से युक्त हो तो अपनी अंतर्दशा में राजा की प्रीति, मन में उत्साह, कल्याण, अतिसुख, महाराज की कृपा से घर तथा जमीन का लाभ, भोजन, वस्त्र, पुत्र प्राप्ति, व्यापार में अधिक फल की प्राप्ति, घोड़ा तथा वाहन का लाभ, वस्त्राभरण की प्राप्ति, देवालय, तालाब तथा स्त्री-पुत्रादिकों का सुख—ये फल होते हैं। पूर्ण चन्द्रमा हो तो उपरोक्त अनुसार अच्छे फल प्राप्त होते हैं।

यह अंतर्दशा सर्वसुखकर होती है। जातक को समाज में विशेष सम्मान मिलता है तथा वह चतुर्दिक ख्याति प्राप्त करता है। इस दशा में कन्या का लाभ, घर में मांगलिक कार्य, भूमिलाभ, नये-नये उद्योगों की स्थापना एवं धन संचय में सहायता मिलती है। स्त्री का लाभ, धनलाभ वगैरे होता है।

महादशास्वामी के स्थान से केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभस्थान में, षडवर्ग बलयुक्त चन्द्रमा हो तो अपनी अंतर्दशा में, खेती, गौ तथा भूमि का लाभ, इष्ट बन्धुओं का समागम, तपस्वी की दया से सिद्धि, घर में गाय का दूध वगैरे का भोजन, विदेशगमन, दूर की यात्रा करने के सम्बन्ध में समाज में पूजन वगैरे बातें होती हैं।

चन्द्रमा क्षीण हो, नीच का हो, लग्न से ६।८।१२ वें भाव में गया हो तो अपनी अंतर्दशा में जातक को धन की क्षति, दुःख, आर्थिक हानि, संताप, कार्य में विघ्न, माता-पिता का वियोग, देह की जड़ता, मनोव्यथा, व्यापार में निष्फलता, गाय, भैंस, वगैरे पशु का नाश, स्त्री-पुत्र के विषय में उदासीनता मानसिक परेशानी, धनधान्य का नाश, वगैरे बातें होती हैं।

महादशास्वामी से ६।८।१२ वें भाव में चन्द्रमा गया हो, बलरहित हो तो अंतर्दशा में धनधान्य की हानि, मन में व्याकुलता, अपने बन्धुजनों को द्रव्यादिक देना तथा भाइयों से पीड़ा––ये बातें होती हैं।

चन्द्रमा २।७।८ स्थानों के अधिपतियों से युक्त हो तो अपमृत्यु होती है।

केतु की महादशा में मंगल की अंतर्दशा (४ मास २७ दिन)

मंगल लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, उच्चस्थान में, स्वक्षेत्र में, शुभग्रह से दृष्ट हो तो अपनी अंतर्दशा में प्रारम्भ में शुभफल, गाय, भूमि का लाभ, धन-धान्य का लाभ, चतुष्पद प्राणियों की प्राप्ति, मकान, बाग बगीचा तथा खेत का लाभ, और राजा के अनुग्रह से वैभव–ये फल प्राप्त होते हैं। भाग्य तथा कर्म के स्वामी के साथ सम्बन्ध हो तो मंगल जमीन का लाभ तथा सुख की प्राप्ति देता है। इस अंतर्दशा में जातक अपना मकान बनाता है तथा उसे भूमि क्रय विक्रय द्वारा लाभ होता है और कृषि कार्य में उन्नति होती है। मंगल यदि योगकारक ग्रह हो तो मुकदमे में विजय, व्यापार में वृद्धि एवं श्रेष्ठ धनलाभ होता है।

मंगल ६।८।१२ वें गया हो तथा महादशास्वामी के स्थान से धनस्थान में गया हो तो निर्विलम्ब से मृत्यु, परदेशगमन, आपत्ति तथा भ्रम, मूत्रकृच्छ्र, चोर, राजा वगैरे की तरफ से पीड़ा, कलह, शुरुआत में दारिद्र्य, दुःख, बाद में कई एक सुखों की वृद्धि होती है।

इस अंतर्दशा में पुत्र, स्त्री, बन्धुजनों से द्वेष, रोग, शत्रु, राजा, इससे पीड़ा, आप्तजनों की मृत्यु, बन्धु के साथ विवाद, चोरों का भय, शरीर में किसी प्रकार की कठिन पीड़ा, ये फल मिलते हैं। मंगल अकारक, अस्तंगत, नीच, वक्री हो तो अंतर्दशा में पागलपन, हिस्टीरिया, जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोग, तथा कारोबार में हानि—ये फल होते हैं।

द्वितीय, सप्तम स्थान का स्वामी हो तो ताप, ज्वर, स्त्री को पीड़ा, मन में क्लेश तथा अपमृत्यु का भय मंगल अपनी अंतर्दशा में देता है।

केतु की महादशा में राहु की अंतर्दशा (१२ मास १८ दिन = १ वर्ष १८ दिन)

राहु उच्चस्थान में, मित्रस्थान में, स्वराशि में, लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, तृतीय तथा लाभस्थान में, धनस्थान में गया हो तो अपनी अंतर्दशा में तत्काल धनलाभ, संसार सुख, म्लेच्छ स्वामी द्वारा सुख, धन, धान्य, चतुष्पद प्राणियों (गाय, भैंस वगैरे) का ग्राम तथा भूमि का लाभ होता है। अंतर्दशा शुरुआत में क्लेश कराती है और मध्य तथा अन्त में सुख देती है। यह अंतर्दशा निकृष्ट होती है। स्वास्थ्य की दृष्टि से मरणान्तक कष्ट देती है। शीत ज्वर, कलह आदि से जातक घबरा जाता है। व्यापार में हानि, नौकरी में पदानवति एवं अर्थप्राप्ति में कई प्रकार की बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं। जातक को चोरों द्वारा शरीर में बड़ा आघात पहुँचता है (जान किसी तरह बच जाती है) तथा कई दुर्जनों के साथ विवाद करने की बारी आती है। राजभय होता है, अंगीकृत कार्य का नाश होता है, बहुत दुःख भोगना पड़ता है। ८।१२ वें स्थान में राहु गया हो, पापग्रहों से दृष्ट हो तो बहुमूत्र, कृश शरीर, शीत ज्वर, चतुर्थक ज्वर की पीड़ा, क्षुल्लक उपद्रवों से पीड़ा, अकस्मात् कलह, प्रमेह तथा शूल रोग—ये फल प्राप्त होते हैं।

राहु द्वितीय, सप्तम स्थानों में हो तो क्लेश तथा अतिभय होता है।

केतु की महादशा में गुरु की अन्तर्दशा (११ मास ६ दिन)

गुरु लग्न से केन्द्र में, लाभ में, त्रिकोण में, अपने उच्च स्थान में, स्वगृह में हो, लग्नेश से युक्त हो, कर्म और भाग्य के अधिपति से युक्त हो, तो अपनी अन्तर्दशा में धन धान्य, सम्पत्ति की वृद्धि करता है। राज्य प्राप्ति, मनोत्साह, घोड़े वगैरे चतुष्पदों का लाभ, घर में कल्याण, सम्पत्ति, पुत्रलाभ, महोत्सव, मन में उत्साह, पवित्र तीर्थ में गमन, सुखदायक सत्कर्म, इष्ट देवता की कृपा से कार्यों में लाभ और विजय, यश, राजा से लाभकारक कार्य, नये स्वामी का दर्शन आदि फल देता है।

इस अन्तर्दशा में देव, ब्राह्मण, गुरु इनकी प्राप्ति, राजप्रीति, स्थावर प्राप्ति पुत्रलाभ, परदेशगमन, स्त्री वियोग, सन्मान क्षति होने की सम्भावना होती है। कुछ दुर्जन लोगों के साथ सहानुभूति, अथवा ऐसे लोगों के साथ मित्रता होगी जो राजदरबार में मान्य पुरुष कहलाते हों, कुछ जमीन का लाभ हो। शुभ अन्तर्दशा में सन्मान, ख्याति, लाभ, ग्रंथ लेखन, धनागम के विविध स्रोत बनते हैं।

महादशास्वामी के स्थान से गुरु केन्द्र में, तृतीय अथवा लाभस्थान में गया हो, शुभग्रह से युक्त हो तो अपनी अन्तर्दशा में राजा की प्रीति, विचित्र वस्त्र तथा आभूषणों की प्राप्ति, दूर देश में प्रयाण, स्वबंधुजनों का पोषण तथा भोजन, वस्त्र, पशुप्राप्ति इत्यादि फल होते हैं।

गुरु ६।८।१२ वें भाव में गया हो, नीच स्थान में हो तो अन्तर्दशा में चोर, सर्प तथा जख्म का भय हो, धनधान्य का नाश, पुत्र तथा स्त्री वियोग और अतिक्लेश—ये फल होते हैं।

अन्तर्दशा के आरम्भ में देह पीड़ा, अन्त में स्थान और अधिकार भ्रष्ट होता है तथा अकस्मात कलह होता है।

द्वितीय, सप्तम स्थानों का अधिपति हो तो अपमृत्यु होती है।

केतु की महादशा में शनि की अन्तर्दशा (१३ मास ९ दिन = १ वर्ष १ मास ९ दिन)

शनि की अन्तर्दशा में अपने देश के शत्रु से पीड़ा, भाइयों को क्लेश, मन में संताप, चतुष्पद प्राणियों का लाभ, राजकार्य, व्यवसाय अथवा कोर्ट कचहरी में दावे वगैरे से असफलता, धननाश, अत्यन्त भय, धन का नाश, स्थानभ्रंश, प्रवास, मार्ग में चोर का भय, आलस्य, मन का उद्वेग, बात पित्त बिगड़ने से बड़ी पीड़ा, अपने बंधुवर्गों के साथ मुकदमा हो, अन्त में घर छोड़कर विदेश गमन, मन में सर्वदा भय और परेशानी, आप्तजनों से झगड़े और देशान्तर—इत्यादि फल होते हैं। शनि को मारकेश का अधिकार हो तो शनि की अन्तर्दशा में मृत्यु की सम्भावना रहती है।

शनि अष्टम तथा द्वादश स्थान में हो, मीन राशि में हो, मूल त्रिकोण में, तुला राशि में, स्वक्षं में हो तो उपरोक्त फल मिलते हैं।

शनि लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, तृतीय, एकादश स्थान में गया हो, शुभांश में हो शुभ दृष्ट हो तो अपनी दशा में सर्वकार्य सिद्धि, स्वस्वामी से परमसुख (वस्त्रों का लाभ), अपने ग्राम में सुख सम्पत्ति की प्राप्ति, अपने

वर्ग में राजतुल्यमान, साधारण सुख मनोकामनापूर्ति एवं सन्मान वृद्धि—ये फल होते हैं।

शनि अकारक, नीच राशिगत हो तो अन्तर्दशा में बन्धुओं से विरोध, स्वदेश त्याग, विरोधियों से अनबन, शारीरिक क्षति एवं धनहानि होती है।

महादशास्वामी के स्थान से शनि ६।८।१२ वें भाव में गया हो पापग्रह से युक्त हो तो अन्तर्दशा में देह को दुःख, मन में संताप, कार्य में विघ्न, महान्-भय आलस्य, मान हानि तथा माता पिता का नाश होता है।

शनि द्वितीय सप्तम स्थान का स्वामी हो तो अपनी अन्तर्दशा में अपमृत्यु का भय होता है।

केतु की महादशा में बुध की अन्तर्दशा (११ मास २७ दिन)

बुध लग्न से केन्द्र में, लाभ में, त्रिकोण में उच्च स्थान में गया हो, स्वक्षेत्र में हो तो अपनी अन्तर्दशा में राज्य से लाभ, अतिसुख, सत्कथा श्रवण, दान तथा धर्म की सिद्धि, जमीन का लाभ, पुत्रलाभ, अच्छे वार्तालाप, धनप्राप्ति, यत्न किये बिना धर्म प्राप्ति तथा विवाह होता है। घर में मांगलिक कार्य तथा वस्त्र आभरण प्राप्त होते हैं।

भाग्य तथा दशम के स्वामी से युक्त हो तो सुखावह भाग्यवृद्धि, विद्वानों के साथ गोष्ठी से सन्तोष, (पाठान्तर-सन्तान प्राप्ति) तथा आभूषणों की प्राप्ति होती है।

इस अंतर्दशा में, आप्तजनों से भेंट या मिलाप, पुत्र, धन, स्त्री की प्राप्ति, विद्या और सौख्य प्राप्त होते हैं। मित्रमंडल तथा बन्धुवर्ग इनका शुभागमन होता है, बुद्धिकी वृद्धि होती है तथा किसी प्रकार से कष्ट नहीं भोगना पड़ता। बान्धवों से प्रीति, धनागम एवं विद्या, व्यापार से सुयश, सफलता एवं कीर्ति प्राप्त होती है।

महादशास्वामी से केन्द्र में, त्रिकोण में तथा लाभस्थान में गया हो तो अन्तर्दशा में आरोग्य, बड़ा लाभ, पुत्र का कल्याण, वैभव, भोजन, वस्त्र तथा पशुओं की प्राप्ति और व्यापार से लाभ होता है।

लग्न से ६।८।१२ वां बुध गया हो, शनि, मंगल, राहु की दृष्टि से युक्त हो तो अन्तर्दशा में राजकार्यों से विरोध, पराये घर में रहने का योग, वाहन, वस्त्र, पशु तथा धनधान्य का नाश होता है। दशा के आरम्भ में अच्छा फल, मध्य में सुख तथा धन, अन्त में क्लेश, स्त्री-पुत्रादिक को पीड़ा होती है।

महादशास्वामी से ६।८।१२ वें बुध गया हो, बलरहित हो, तो अन्तर्दशा के प्रारम्भ में महाक्लेश, स्त्री पुत्रादिकों को पीड़ा, राजभय होता है। दशा के मध्य में तीर्थयात्रा का योग आता है।

द्वितीय, सप्तम स्थान का स्वामी बुध हो तो अन्तर्दशा में अपमृत्यु देता है।

शुक्र की महादशा में सभी ग्रहों की अन्तर्दशा

शुक्र की महादशा में शुक्र की अन्तर्दशा (४० मास = ३ वर्ष, ४ मास)

शुक्र लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभ स्थान में, षडवर्गादिबल से युक्त हो तो योग की प्रबलता समझनी चाहिये। इस प्रकार शुक्र हो तो अपनी अन्तर्दशा में विप्र द्वारा धन की प्राप्ति, पशुलाभ, पुत्रोत्सव, घर में कल्याण, सन्मान, राजसन्मान, राज्यलाभ और अत्यन्त सुख प्राप्त होता है। शुक्र यदि उच्च में, स्वर्क्ष में, अपने नवांश में उच्चराशि में हो तो नये मकान की रचना, नित्य मिष्ठान्न भोजन, स्त्री-पुत्रादिक वैभव, मित्र के साथ भोजन, अन्नदान तथा नित्य दानधर्म का संग्रह, महाराज की प्रसन्नता से वाहन, वस्त्र तथा आभूषणों की प्राप्ति होती है। व्यापार में लाभ, पशुलाभ, पश्चिम दिशा में प्रयाण और उसके द्वारा वाहन तथा वस्त्रलाभ होता है।

लाभस्थान से शुक्र उपचय स्थान में हो, शुभ दृष्टि से युक्त हो, मित्रांश में हो, उच्चराशि में अथवा लाभेश हो, योगकारक हो तो राज्यलाभ, अत्यन्त उत्साह, राजा की प्रीति, घर में कल्याण, सम्पत्ति तथा स्त्री-पुत्रादिक की वृद्धि—ये बातें होती हैं।

इस अन्तर्दशा में शैय्या, स्त्री, द्रव्य और वस्त्रों की प्राप्ति, धर्मादि का सौख्य, शत्रुनाश और यश प्राप्त होता है। जातक विविध भोगों का भोग करता है। उसकी कई इच्छाएँ इस अन्तर्दशा में पूर्ण होती हैं। जातक को कन्या संतति, लेखन कार्य में सफलता, पुरस्कार तथा राजव्यापी कीर्ति भी प्राप्त होती है। स्त्री संभोग पर्याप्त मात्रा में एवं पूर्णसुखप्रद प्राप्त होता है। कई वस्तुओं का लाभ होता है। धर्म एवं काम की पूर्ति होती है। जातक कार्य मात्र में कुशलता दिखाता है कोई बड़ी कीर्ति उसके हाथों से होती है और कहीं पर निधि (गड़े हुए धन) का भी मिलना सम्भव होता है।

शुक्र ६।८।१२ वें भाव में हो, नीच, अस्त, वक्री, पापग्रह से युक्त वा दृष्ट हो तो अन्तर्दशा में राजभय आर्थिक चिन्ता, बन्धुविरोध, स्त्री का मरण, सन्तान बाधा उपस्थित होती है। चोट से, जखम से भय, सर्वत्र मनुष्यों से पीड़ा, राजद्वार में मनुष्यों से द्वेष, खास मित्र तथा बन्धुनाश तथा स्त्री पुत्रादिक को पीड़ा—ये बातें होती है।

शुक्र द्वितीय, सप्तम भाव का स्वामी हो तो अन्तर्दशा में मरण होता है।

शुक्र की महादशा में सूर्य की अन्तर्दशा (१ वर्ष = १२ मास)

सूर्य की अन्तर्दशा में सन्ताप, वरिष्ठों से तकरार, राजद्वार में कलह, माता पिता को भय, भाई का नाश, पैसा तथा मिलकियत में नुकसान, व्यापार में हानि होती है। सिर में रोग, पेट व नेत्र में रोग, खेती, पशु धन इनका नाश, राजा का रोष---ये फल अनुभव में आते हैं। कलह, असन्तोष एवं दरिद्रता से घिरा रहता है नित्य नई समस्याएँ उसके सामने उपस्थित होती हैं और वह उसका निराकरण करते-करते थक जाता है। गण्ड रोग, क्षयरोग, (तपेदिक) होते हैं और राजदण्ड में कहीं जेल जाने का कारण यश का अधःपतन हो जाता है।

सूर्य ६।८।१२ वें भाव में, पापवर्ग में गया हो तो अन्तर्दशा में सन्ताप, मनोरोग, स्वजनों को क्लेश, नित्य निष्ठुर भाषण, पिता को पीड़ा, भाई-बन्धुओं की हानि, राजद्वार में विरोध, जखम की पीड़ा, सर्प से पीड़ा होती है। सूर्य यदि स्वर्क्ष में गया हो तो भी भय, नाना प्रकार के रोग तथा मकान, खेत वगैरह का नाश होता है।

सूर्य यदि उच्च का, स्वक्षेत्र में, मित्र क्षेत्र में, लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में गया हो, कारक ग्रह हो तथा महादशास्वामी से केन्द्र में, त्रिकोण में, लाभ में, धन स्थान में हो तो अन्तर्दशा में धनलाभ, विदेशयात्रा, व्यापार वृद्धि, पितृ सुख एवं मांगलिक कार्य होता है। धनलाभ राज्य, स्त्री तथा धन का सुख, अपने स्वामी से अतिसुख, इष्टबंधुओं का समागम, माता-पिता के सुख की प्राप्ति, भाइयों को सुखावह लाभ, सत्कीर्ति, सुख, सौभाग्य तथा पुत्रलाभ होता है।

शुक्र की महादशा में चन्द्रमा की अन्तर्दशा
(२० मास = १ वर्ष, ८ माह)

चन्द्रमा लग्न से, केन्द्र में, लाभस्थान में, त्रिकोण में, अपने उच्चस्थान में, स्वक्षेत्र में तथा भाग्य व कर्म के स्वामी से युक्त, शुभग्रहों से युक्त हो, पूर्ण हो, दशमेश से युक्त हो तो अपनी अन्तर्दशा में बहुत वाहन, पुत्र द्वारा सुख, महाराज की प्रसन्नता से हाथी, घोड़े वगैरे का सुख, महानदी में स्नान का पुण्य, देवता ब्राह्मणों का पूजन, गीतवाद्यों का प्रसंग, विद्वज्जनों से मान, पशुवृद्धि, व्यापार में अधिक लाभ, भोजन तथा वस्त्रों का सुख तथा संगवालों के साथ भोजन का आनन्द इत्यादि फल मिलते हैं। यह दशा सौभाग्यदायक होती है। जातक मान सम्मान का अधिकारी बनता है। घर में कन्या का जन्म होता है। व्यापार में वृद्धि, डाक्टरी या वैद्य के कार्य में पूर्ण सफलता तथा उच्चपद प्राप्त होता है।

महादशास्वामी से केन्द्र में, लाभ में, त्रिकोण में, व्यय में गया हो तो अन्तर्दशा में राजा की प्रीति, देश तथा ग्राम पर आधिपत्य, धैर्य, यश, सुख, कीर्ति, वाहन, वस्त्र तथा आभूषणों की प्राप्ति, कुआं, बावड़ी तालाब वगैरह निर्माण कार्य तथा धन संग्रह—ये फल मिलते हैं।

चन्द्रमा नीच का हो अस्त का हो, ६।८।१२ वें स्थान में तथा ३-४ वें स्थान में हो तथा महादशास्वामी से ६।८।१२ और व्यय राशि में हो तो अपनी अन्तर्दशा में धन का नाश, महाभय, देह को परिश्रम, पीड़ा, सन्ताप, राजद्वार पर विरोध. विदेशगमन, तीर्थयात्रादिक फल, स्त्री-पुत्रों को पीड़ा तथा स्वबन्धुओं से वियोग, प्रत्येक काम में असफलता—ये फल मिलते हैं।

मस्तिष्क उष्णता के कारण तप्त रहता है। कामादि षट्रिपुओं की पीड़ा और थोड़ा सा सुख प्राप्त होता है। नाखून, हड्डी और सिर में कोई रोग अवश्य होता है। इसके अतिरिक्त कामला रोग भी आक्रमण करता है। जिससे शरीर को महाक्लेश होता है और जातक रोगी होकर परम तकलीफ से युक्त होता है। दशा के प्रारम्भ में देहसुख तथा अन्त में क्लेश होते हैं।

शुक्र की महादशा में मंगल की अन्तर्दशा
(१४ मास = १ वर्ष २ महीने)

मंगल लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, अपने उच्चस्थान में, स्वक्षं में, षड्बल से युक्त, लग्नेश से युक्त, कर्मेश और भाग्य के स्वामी से युक्त हो तो अपनी अन्तर्दशा में उत्तम राजयोग, सम्पत्ति, वस्त्राभरण तथा जमीन की प्राप्ति तथा सुखावह इष्टसिद्धि प्राप्त कराता है। स्त्री, स्थावर की प्राप्ति, बड़ा उत्साह, द्रव्य प्राप्ति होती है। जातक नये मकान का निर्माण करता है। उसे कृषिकार्यों में सफलता मिलती है तथा पुलिस, मिलिट्री में हो तो उच्चपद प्राप्त होता है।

मंगल क्षीण हो, ६।८।१२ में हो, दशापति से ६।८।१२ वें भाव में हो तो शीतज्वर की पीड़ा, माता-पिता को भय तथा पीड़ा, ताप की अधिकता, स्थान-भ्रष्टता, मानसिक चिन्ता, स्वबन्धुजन की हानि, राजकोप, राजद्वार के मनुष्यों के साथ द्वेष, धनधान्य का अधिक व्यय, व्यापार में निष्फलता, पशु व जमीन की हानि होती है। पित्त के दोष तथा क्षय रोग से जातक पीड़ित रहता है। मद के आवेश में आकर किसी भी काम को करने में उत्साहित होता है। नेत्र रोग होता है।

चन्द्रमा द्वितीय, सप्तम स्थान का स्वामी हो तो अन्तर्दशा में देह पीड़ा होती है।

शुक्र की महादशा में राहु की अन्तर्दशा (३६ मास = ३ वर्ष)

राहु लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, अपने उच्चस्थान में, शुभयुक्त, योगकारक ग्रह से युक्त हो तो अपनी अंतर्दशा में बहुत सुख, वस्त्र वगैरह का लाभ, प्रवास द्वारा कार्यसिद्धि, धनधान्यादिक का लाभ, इष्ट बन्धुओं के लिये अच्छा, इष्टजनों के साथ भोजन का सुख, पशु खेत वगैरे का लाभ ये फल होते हैं। राहु उपचयस्थान में गया हो तो वह अंतर्दशा सुख देनेवाली होती है। इस दशा में शत्रुओं का नाश, महान उत्साह, राजा की प्रसन्नता, नीले रंग की वस्तुओं द्वारा धनलाभ, आप्तजनों से विरोध, चुनाव में जातक विजयी होता है। सफलता उसके चरण चूमती है तथा मन्त्रीपद या उच्चपद प्राप्त करने में सफल होता है। अन्तर्दशा के आरम्भ में पांच महीने तक श्रेष्ठफ़ल तथा अन्त में अजीर्ण करनेवाला ताप होता है। काम में विघ्न, परिभ्रमण, मनोव्यथा होती है। दशा के अन्तभाग में सौख्य तथा सौभाग्य, नैऋत्य दिशा में प्रयाण, स्वामी से समागम, यात्रा में कार्यसिद्धि होकर स्वदेश में पुनरागमन होता है। ब्राह्मणों का सत्कार, करके तीर्थयात्रा का फल प्राप्त होता है।

क्षीण तथा पापग्रहों से राहु युक्त हो या दृष्ट हो तो मुसलमानों के साथ विवाद बढ़ने से बड़ी तकलीफ होती है। बन्धुवर्ग में उद्वेग, कई मित्रों को फाँसी या और तरीके से मृत्यु होना तथा कहीं से अचानक महाभय उपस्थित होना--ये बातें होती हैं। मित्रों से भय तथा अग्नि भय होता है।

यदि दशास्वामी से ६।८।१२ वें राहु गया हो, पापग्रह से युक्त हो तो अंतर्दशा में माता-पिता को सब कार्य में असफलता तथा अशुभ फल, सर्वत्र मनुष्यों के साथ द्वेष तथा अनेक प्रकार की चिंता, पीड़ा उपाधि--ये फल होते हैं।

राहु द्वितीय, सप्तम स्थान में हो तो अन्तर्दशा में देह में आलस्य होता है।

शुक्र की महादशा में गुरु की अन्तर्दशा (३२ मास = २ वर्ष ८ मास)

गुरु उच्चराशि में, स्वक्षेत्र में लग्न से, केन्द्र में, महादशास्वामी से शुभ-राशि में, भाग्यस्थान में अथवा कर्मस्थान में हो तो अंतर्दशा में नष्ट हुआ राज्य और धन की प्राप्ति, मनोवांछित फल, वस्त्रों की सम्पत्ति, मित्र तथा स्वामी द्वारा सम्मान, धनधान्य की बहुप्राप्ति, राजसम्मान तथा कीर्ति घोड़े आदि चतुष्पदों का लाभ, विद्वान स्वामी से समागम तथा शास्त्र की परिपूर्णता को पहुँचने के लिए परिश्रम, पुत्रोत्सव आदि से संतोष, इष्ट बन्धुओं से समागम, माता-पिता के सुख की प्राप्ति, भाईयों तथा पुत्रों से सुख--ये फल प्राप्त होते हैं।

इस अंतर्दशा में नित्य नये सुखद समाचार सुनने को मिलते हैं। रत्न सुवर्ण, अलंकार आदि की प्राप्ति, भूमि, पुत्र इनके सहारे बहुत सुख प्राप्त होता है, समाज में प्रतिष्ठा तथा धर्माचरण का सुख और लक्ष्मी का आगमन इत्यादि फल होते हैं।

गुरु ६।८।१२ वें भाव में हो अथवा महादशास्वामी से ६।८।१२ में गया हो अंतर्दशा में पापयुक्त हो तो, अंतर्दशा में कष्ट, चोरभय, रोग, पीड़ा, वैषम्यता, राजभय, देहपीड़ा तथा स्वयं को दुःख प्राप्त होता है। भाइयों को दुःख होता है। मन में कलह के कारण दुःख, स्थानभ्रंश, प्रवास, भिन्न प्रकार के रोग—ये फल मिलते हैं।

द्वितीय, सप्तम स्थान का स्वामी हो तो अंतर्दशा में देहपीड़ा होती है।

शुक्र की महादशा में शनि की अंतर्दशा (३८ मास = ३वर्ष २ मास)

शनि अपने उच्चस्थान में, परमोच्चस्थान में, स्वर्क्ष में, लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, तुंगांश में, स्वांश में गया हो तो अंतर्दशा में अत्यंत सुख, इष्ट बंधुओं के साथ आनन्द, सम्मान, अत्यन्त सम्मान, पुत्री का जन्म, पुण्यतीर्थ के फल की प्राप्ति, दानधर्म आदि पुण्यकर्मों का आचरण—ये फल होते हैं।

इस अंतर्दशा में वृद्ध स्त्री के साथ संग, गृह और स्थावर सम्पत्ति की प्राप्ति द्रव्यलाभ, शुभनाश, जातक वृद्ध स्त्री के साथ संभोग करे, पुत्र का मरण, पद-पद में विपत्तियाँ, आलस्य क्लेश, व्याधियाँ, प्रगति के मार्ग में व्याधियाँ एवं धन-हानि होती है।

लग्न से ६।८।१२ वें भाव में शनि गया हो तथा महादशास्वामी से भी ६।८।१२ वें भाव में गया हो तो दशा के शुरुआत में माता-पिता को आरोग्य प्राप्त होता है अन्त में स्त्री-पुत्रादिक को पीड़ा, देहस्वास्थ्य का नाश, व्यवसाय करने से नुकसान, पशुहानि आदि फल मिलते हैं। अपने स्वामी तथा वरिष्ठ अधिकारियों के साथ विरोध तथा अतिशय क्लेश की प्राप्ति, शरीर में आलस्य तथा आवक से व्यय अधिक ये फल होते हैं।

कभी-कभी शनि की अंतर्दशा सुखप्राप्त कराती है राजा के समान वैभव कराती है। तथा कल्याण, यश, विजय, बहुत राज्यों का लाभ तथा अति भाग्य रूपी फल देती है।

द्वितीय, सप्तम स्थान का स्वामी शनि हो तो अंतर्दशा में देहपीड़ा करता है।

शुक्र की महादशा में बुध की अंतर्दशा (३४ मास = २ वर्ष १० मास)

बुध लग्न से केन्द्र में, त्रिकोण में, अपने उच्चस्थान में, अथवा स्वर्क्ष में गया हो तो अंतर्दशा में राजा की प्रसन्नता, सौभाग्य, पुत्रलाभ, सम्मान द्वारा

धनलाभ, पुराण श्रवण, शृंगारीजनों के साथ समागम, इष्ट-बन्धुओं का आनंद ब्राह्मण स्वामी से समागम। स्वस्वामी द्वारा अत्यंत सुख तथा नित्य मिष्ठान्न भोजन वगैरे फल प्राप्त होते हैं।

साहित्यक कार्यों द्वारा धनप्राप्ति, कीर्तिलाभ यशागम तथा जीवन के प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त होती है। मनोरथों की पूर्ति होती है, यश की वृद्धि लक्ष्मी या देहकान्ति का विकास होता है। किसी राजा के साथ परम अन्तरगत बनकर रहना तथा शारीरिक बलवृद्धि, सौख्य, मित्रसुख, द्रव्यप्राप्ति, समाधान, अरोग्यादि—ये शुभफल होते हैं।

बुध अस्त, वक्री, नीच राशि में, अकारक हो, दशास्वामी से ६।८।१२ वें गया हो, बलहीन हो, पापयुक्त हो तो अपकीर्ति, कुख्याति, अल्पलाभ, चतुष्पदों की हानि, दूसरों के घर में निवास, मन की व्याकुलता, कब्ज आदि—ये रोग होते हैं।

अंतर्दशा के शुरुआत में अच्छा फल, मध्य में सुख तथा अंत में क्लेश, शीत-ज्वर आदि की पीड़ा होती है।

बुध को सप्तमेश का दोष हो तो देहपीड़ा होती है।

शुक्र की महादशा में केतु की अंतर्दशा (१४ मास = १ वर्ष २ महीने)

केतु अपने उच्चस्थान में, स्वर्क्ष में, योगकारक से युक्त, स्थान के बल से युक्त हो तो अपनी अंतर्दशा में प्रारम्भ में शुभ घटनाएं, नित्य मिष्ठान्न भोजन, व्यापार में अधिक लाभ की प्राप्ति, गाय, भैंस, पशुओं की वृद्धि, धनधान्य समृद्धि तथा अपने ग्राम में विजय प्राप्त होती है अन्तर्दशा के अन्त में सुख प्राप्त होता है, मध्य में अति कष्ट और उसके बाद आरोग्य प्राप्त होता है। जातक विविध स्रोतों द्वारा धनसंचय करता है। कीर्ति, लाभ, प्राप्त होता है।

इस अंतर्दशा में कलह, आप्तजनों की मृत्यु, शत्रुपीड़ा, मन सदैव भय ग्रस्त रहना, बन्धुवर्गों से मुकदमा, पुराने शत्रुओं का नाश, एवं नये बने हुए शत्रुओं के साथ कड़ा झगड़ा और उसके सम्बन्ध की सब बातें उलट-पुलट हो जाना, कभी भी स्थिर होकर निद्रा में भी सुख नहीं मिलना, कलह, बन्धु वियोग, संतान बाधा, मांगलिक कार्यों में रुकावटें तथा धननाश, ये बातें होती हैं। महादशास्वामी से केतु ६।८।१२ वें भाव में गया हो, पापग्रह से युक्त हो तो अंतर्दशा में चोर, सर्प तथा जख्म से पीड़ा, व्याज की आमदनी में घाटा, बड़ा भय, शिररोग, संताप, कार्य में कलह प्रमेह वगैरे रोग, भिन्न-भिन्न भागों से धन व्यय, स्त्री-पुत्रादिओं को पीड़ा तथा उन से विरोध, मुसाफिरी (यात्रा) होना और उसके द्वारा कार्य नाश होना—ये फल मिलते हैं।

द्वितीय, सप्तम स्थान का स्वामी केतु हो या उस स्थान में हो तो अपनी अन्तर्दशा में देहपीड़ा देता है।

प्रत्यन्तर दशाफल (विदशा फल विचार)

सूर्य की महादशा, सूर्य की अन्तर्दशा में सब ग्रहों का प्रत्यंतर (विदशा)

सूर्य महादशा, सूर्य की अन्तर्दशा में सूर्य का प्रत्यन्तर (५ दिन, २४ घटी)

यदि सूर्य की महादशा हो, सूर्य की ही अन्तर्दशा हो और सूर्य का ही प्रत्यन्तर आता हो तो उसकी उपदशा में उद्वेग, धननाश, स्त्री को पीड़ा, ब्राह्मणों से विवाद होता है। जातक के सिर में पीड़ा होती है तथा लोगों के साथ झगड़ा होता है और मन में एक प्रकार का उद्वेग लगा रहता है।

सूर्य की अन्तर्दशा में चन्द्रमा का प्रत्यन्तर (९ दिन)

इस प्रत्यन्तर दशा में धननाश, पेट में किसी प्रकार का रोग, उद्वेग, कलह, मानसिक चिन्ता, रोगकारक एवं चौपायों द्वारा बीमारी होती है। भोजन में भी पूरी तकलीफ उठानी पड़ती है। दूध, दही, घी का दर्शन भी अलभ्य हो जाता है, केवल किसी प्रकार सूखा, रूखा खाना मिलता है और उससे अधिक मानसिक कष्ट होता है।

सूर्य की अन्तर्दशा में मंगल का प्रत्यन्तर (६ दिन, १८ घटी)

इस प्रत्यन्तर दशा में राजा से भय, शस्त्र से भीति, बन्धन आदि बहुत संकट प्राप्त होते हैं। शत्रु तथा अग्नि से पीड़ा होती है। मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न होता है। उपद्रव तथा शत्रुओं का आक्रमण बढ़ जाता है और खराब पदार्थ भोजन में प्राप्त होते हैं। कभी-कभी शत्रुओं का नाश होता है तथा रोगकारक बातें होती हैं।

सूर्य की अन्तर्दशा में राहु का प्रत्यन्तर (१६ दिन १२ घटी)

इस प्रत्यन्तर दशा में शरीर में रोग उत्पन्न होता है; श्लेष्म व्याधि, वात विकार की बीमारी होती है। शत्रुओं की तरफ से भय, तीखा, कड़ुआ भोजन-पदाथ मिलता है। राजदरबार में भी तकलीफ तथा भय होता है। शस्त्र से भय तथा धन हानि होती है। महाभय तथा राजभंग योग याने पद-भ्रष्टता, पदावनति वगैरे योग बनते हैं।

सूर्य की अन्तर्दशा में गुरु का प्रत्यन्तर (१४ दिन, २४ घटी)

इस प्रत्यन्तर दशा में शत्रुओं का नाश होता है। जय प्राप्त होता है। सुवर्ण वस्त्रादि अलंकार की प्राप्ति होती है। अश्व, वाहन आदि की तथा

गोधन की प्राप्ति होती है। धर्म की वृद्धि होती हैं। पूर्ण सुख प्राप्त होता है, मिष्ठान्न भोजन मिलता है।

सूर्य की अन्तर्दशा में शनि का प्रत्यन्तर (१७ दिन ६ घटी)

इस प्रत्यन्तर दशा में स्त्री से भय तथा कलह होता है। बन्धन आदि दुःखदायक प्रसंग आते हैं। धन हानि होती है। पशुओं को पीड़ा होती है। महाउद्वेग तथा राजभय प्राप्त होता है। सब प्रकार से अशुभ ही होता है तथा अनेक प्रकार के रोगों द्वारा देह पीड़ा होती है।

सूर्य की अन्तर्दशा में बुध का प्रत्यन्तर (१५ दिन ८ घटी)

इस प्रत्यन्तर दशा में विद्या का लाभ, बन्धुओं के साथ भोजन प्राप्ति, धनलाभ, धर्मलाभ, राजा से सम्मान प्राप्त होता है। कीर्ति की वृद्धि होती है। मनुष्य विद्वान बनता है। कई बन्धुवर्ग उसके साथ होते हैं तथा भोजन में भी उसे अच्छी-अच्छी चीजें मिलती हैं। बुध अशुभ फल देनेवाला हो तो कुष्ठ रोग आदि करनेवाला होता है।

सूर्य की अन्तर्दशा में केतु का प्रत्यन्तर (६ दिन, १८ घटी)

इस प्रत्यन्तर दशा में मृत्यु का भय, राजभय, महाभय, राजद्वार में विग्रह, शत्रुओं के साथ बड़ा विवाद होता है। सन्तति नाश का भय रहता है। दीनता, पराये अन्न का भोजन, अन्यान्य भी कई भय तथा शत्रुओं से भी वैराग्य खूब जटिल होता है।

सूर्य की अन्तर्दशा में शुक्र का प्रत्यन्तर (१८ दिन)

इस प्रत्यन्तर दशा में दिन साधारण व्यतीत होते हैं और स्वल्प लाभ होता है। सुख सम्पत्ति भी स्वल्प प्राप्त होती है। ज्वर, रोग आदि होते हैं। शुक्र शुभ या कारक हो तो सुख खूब होगा, धन का भी लाभ होगा। जातक के घर में अधिक उत्सव होते हैं और वह स्त्रियों के साथ विलासिता में निमग्न रहता है तथा सर्वत्र सुख का अनुभव करता है।

चन्द्रमा की महादशा, चन्द्रमा की अन्तर्दशा में सब ग्रहों का प्रत्यंतर

चन्द्रमा की महादशा—चन्द्रमा की अन्तर्दशा में चन्द्रमा का प्रत्यन्तर (२५ दिन)

इस प्रत्यन्तर दशा में भूमि, भोजन, धन प्राप्त होता है तथा राजा से सम्मान तथा महासुख प्राप्त होता है। महालाभ होता है और स्त्रियों के साथ भोग-विलास होता है। जातक पुत्र एवं सम्पत्तिवाला तथा वस्त्र, अन्न, पान आदि का लाभ प्राप्त होता है।

चन्द्रमा की अन्तर्दशा में मंगल का प्रत्यन्तर (१७ दिन, ३० घटी)

इस प्रत्यन्तर दशा में ऐश्वर्य, धन का आगम होता है, बुद्धि का विकास होता है। अपने बन्धुवर्ग एवं पक्षपातियों के बीच में सौहार्द भाव बढ़ता है। लाल वस्तु की खरीद-बिक्री से विशेष लाभ होता है। शत्रु का भय तथा शरीर पीड़ा भी होती है।

चन्द्रमा की अन्तर्दशा में राहु का प्रत्यन्तर (१ मास, १५ दिन)

इस प्रत्यन्तर दशा में राजा से आदर, महासुख, ऐश्वर्य एवं कल्याण की वृद्धि तथा शत्रुओं को स्वयं भय हो जाना, ये बातें होती हैं।

अनिष्ट राहु के प्रत्यन्तर में अशुभ तथा मृत्यु की सम्भावना होती है। बांधवों से पैतृक सम्पत्ति हरण का भय उत्पन्न होता है।

चन्द्रमा की अन्तर्दशा में गुरु का प्रत्यन्तर (१ मास, १० दिन)

इस प्रत्यन्तर दशा में वस्त्रों का लाभ, ब्रह्मज्ञान, महातेज, सद्गुरु की प्राप्ति, राज्य, अलंकार आदि की प्राप्ति, ये बातें होती हैं। धन-धर्म की बढ़ती होती है। समाज में बड़ा प्रभावशाली होना, कई नये मित्र बनाना, अच्छे-अच्छे पदार्थ भोजन के लिए प्राप्त होना, पूर्ण सुख मिलना तथा देव वस्त्रादि का लाभ होना इत्यादि बातें होती हैं।

चन्द्रमा की अन्तर्दशा में शनि का प्रत्यन्तर (१ मास, १७ दिन, ३० घटी)

इस प्रत्यन्तर दशा में पुत्र एवं परिवार के द्वारा कुछ ऐसा उद्वेग जातक के मन में लगा रहता है कि उसे कभी शान्ति नहीं रहती है। यहाँ तक कि वह अपना स्थान छोड़कर विदेश चला जाता है जहाँ भोजन के लिए भी अपरिष्कृत ही अन्न मिला करता है। शब्दान्तर में यह समय बड़ा कष्टकारक होता है। दुर्दिन आना, शरीर पीड़ा होना, वात पित्त की विशेषता होना, धन, धान्य, यश इनकी हानि, स्त्री का भय तथा शत्रु से झगड़े का भय इत्यादि बातें होती हैं।

चन्द्रमा की अन्तर्दशा में बुध का प्रत्यन्तर (१ मास, १२ दिन, ३० घटी)

इस प्रत्यन्तर दशा में पुत्र का जन्म, घोड़े या वाहन की प्राप्ति, विद्या का लाभ, महाउन्नति, श्वेत वस्त्र तथा अन्न का लाभ, स्त्री का लाभ इत्यादि फल मिलते हैं। जातक के घर में मंगल कार्य होते हैं। रत्नप्राप्ति, पुत्र तथा सम्पत्ति काफी मात्रा में रहती है। घोड़े तथा जमीन का लाभ भी होता है।

चन्द्रमा की अन्तर्दशा में केतु का प्रत्यन्तर (१७ दिन ३० घटी)

इस प्रत्यन्तर दशा में जातक सब धर्मों से विरोध कर स्वतन्त्र धर्म स्थापित करता है फलतः उसका जीवन सन्देहमय हो जाता है। इतना ही नहीं सर्प, जल, विष इनसे भय हमेशा बना रहता है अर्थात् इनमें से किसी के कारण मृत्यु होना भी आश्चर्य नहीं है। सर्वत्र क्लेश, ब्राह्मणों के समान व्यक्तियों से युद्ध, अपमृत्यु का भय, सुख का क्षय तथा धन-नाश इत्यादि बातें होती हैं।

चंद्रमा की अंतर्दशा में शुक्र का प्रत्यंतर (१ मास २० दिन)

इस प्रत्यन्तर दशा में धन का लाभ, महासौख्य, कन्या सन्तति का जन्म, अच्छा भोजन, सब लोगों से प्रीति, सुखदायक स्थिति इत्यादि फल मिलते हैं। यदि शुक्र अशुभ हो तो जातक जलोदर वगैरह रोग के कारण बहुत पीड़ित रहता है। शत्रु एवं चोरों द्वारा धन का नाश होता है। तकलीफ ऐसी आ पड़ती है कि उसे रूखा-सूखा भोजन प्राप्त होता है।

चन्द्रमा की अन्तर्दशा में सूर्य का प्रत्यन्तर (१५ दिन)

इस प्रत्यन्तर दशा में पुत्र तथा विजय प्राप्त होता है। अन्न वगैरह का आगम, वस्त्र पात्र, शत्रु की हानि, सुख का आगम, सर्वत्र विजय प्राप्ति, ये फल होते हैं। मुकदमा वगैरह में जातक को विजय प्राप्त होता है।

मंगल की महादशा, मंगल की अन्तर्दशा में सब ग्रहों का प्रत्यंतर

मंगल की महादशा में, मंगल की अन्तर्दशा में मंगल का ही प्रत्यन्तर (८ दिन, ३४ घटी)

इस प्रत्यंतर की दशा में जातक को शत्रु की तरफ से या राजा की ओर से बड़ी पीड़ा आती है। शरीर से शोणित का गिरना आरम्भ होता है इसी के कारण कुछ दिनों के बाद भगन्दर सरीखी बीमारी अपना आसन जमा देती है तथा और भी कई उपद्रव होते हैं। स्त्री को रोग, शत्रुनाश तथा नेत्र रोग होता है। अकस्मात भय, रक्तस्राव तथा अपमृत्यु का भय होता है।

मंगल की अन्तर्दशा में राहु का प्रत्यन्तर (२२ दिन ३ घटी)

इस प्रत्यंतर दशा में अग्नि तथा शत्रुभय, बंधन योग, राजभय राज भंग, पदावनति, पद भ्रष्टता, धनहानि, कुभोजन, कलह, प्रतिदिन झगड़ा, जेल-यात्रा, रोग, राजा की तरफ से दंड, अपमृत्यु एवं शत्रु मंडल की तरफ से पीड़ा-इत्यादि फल प्राप्त होते हैं।

मंगल की अन्तर्दशा में गुरु का प्रत्यन्तर (१९ दिन ३६ घटी)

इस प्रत्यंतर दशा में जातक की बुद्धि खराब हो जाती है। वह समाज में दूषित समझा जाता है। रोगी हो जाता है। हमेशा देश विदेश में भ्रमण करता रहता है। भाग्यहीन इतना रहता है कि सोने को छूने पर मिट्टी हो जाता है तथा वह बड़ा दरिद्र बन जाता है दुःख, संताप, कलह, तथा चिंतित कार्य विफल हो जाता है।

मंगल की अन्तर्दशा में शनि का प्रत्यन्तर (२३ दिन, १६ घटी, ३० पल)

इस प्रत्यंतर दशा में जातक को लालवस्त्र धारण करना चाहिये। कई तरह के आनेवाले भय से त्रस्त रहता है। जेलखाने जाना पड़ता है, कमर, घुटनों में पीड़ा होती है। भोजन में कोदो, तिल के सिवाय और चीज मिलना असम्भव हो जाता है। धनहानि, महाभय, स्वामी का नाश, कलह, वैकल्य, इत्यादि फल प्राप्त होते हैं।

मंगल की अन्तर्दशा में बुध का प्रत्यन्तर (२० दिन, ४९ घटी, ३० पल)

इस प्रत्यन्तर दशा में ज्वर पीड़ा होती है। मित्र के यहाँ जाकर रहना पड़ता है। कुछ देर से धन का नाश होता है तथा अन्नवस्त्र का भी अभाव रहता है। चोर तथा अग्निभय रहता है। सर्वथा बुद्धि का नाश होता है।

मंगल की अन्तर्दशा में केतु का प्रत्यन्तर (८ दिन ३० पल)

इस प्रत्यन्तर दशा में आलस्य, सिर में पीड़ा, रोग, अपमृत्यु, राजभय, शस्त्राघात इत्यादि फल मिलते हैं। तन्द्रा, कार्य मात्र में आलस्य एवं खराब भोजन मिलता है।

मंगल की अन्तर्दशा में शुक्र का प्रत्यन्तर (२४ दिन ३४ घटी ३० पल)

इस प्रत्यन्तर दशा में चांडाल व्यक्ति से संकट प्राप्त होता है, राजा तथा शस्त्र से भय प्राप्त होता है। अतिसार, वमन (क्षय) इत्यादि रोग होते हैं। शत्रु से त्रस्त रहता है।

मंगल की अन्तर्दशा में सूर्य का प्रत्यन्तर (७ दिन २१ घटी)

इस प्रत्यन्तर दशा में भूमि का लाभ, धन लाभ, मित्रों से पूर्ण सुख, सम्मान प्राप्ति, सब प्रकार से शुभ कारक, मणि का लाभ एवं तीखा और मधुर पदार्थ भोजन के लिए प्राप्त होता है—ये फल मिलते हैं।

मंगल की अन्तर्दशा में चन्द्रमा का प्रत्यंतर (१२ दिन १५ घटी)

इस प्रत्यंतर दशा में दक्षिण दिशा में लाभ, वस्त्र, आभूषण, मोती आदि का लाभ, सब कार्यों में सिद्धि प्राप्त होती है। मुकदमा वगैरे में जय, धन, सुख, अन्न पान अभीष्ट सिद्धि, आदि की प्राप्ति होती है।

राहु की महादशा, राहु की अन्तर्दशा में सब ग्रहों का प्रत्यंतर

राहु की महादशा, राहु की अन्तर्दशा में राहु का प्रत्यन्तर (४ मास, २५ दिन, ४८ घटी)

इस प्रत्यंतर दशा में जातक को जेल जाना पड़े (बंधन योग), स्त्रीनाश, शरीर में अनेक व्याधियां, धननाश, कई रोग भी हो जिनके कारण एकाएक बड़ी पीड़ा प्रतीत हो, पदावनति या पद भ्रष्टता एवं खराब भोजन की प्राप्ति–ये फल मिलते हैं। जल से तथा अग्नि से भय होता है। बंधुओं से घात तथा भय उत्पन्न होता है।

राहु की अन्तर्दशा में गुरु का प्रत्यन्तर (४ मास, ६ दिन, ३६ घटी)

इस प्रत्यन्तर दशा में सर्वत्र लाभ होता है। गज, धन, अश्व इनका आगमन होता है। राज्य से सम्मान तथा राज्य प्राप्ति होती है। धर्म-धन प्राप्ति होती है। गुरु अशुभ हो तो ज्ञान, धर्म तथा धन का नाश होता है।

राहु की अन्तर्दशा में शनि का प्रत्यन्तर (५ मास, ३ दिन, ५४ घटी)

इस प्रत्यन्तर दशा में कष्टकारक परिस्थिति उत्पन्न होती है। बंधन योग अर्थात जेल जाने का प्रसंग आता है। सुख की हानि होकर महाभय उत्पन्न होता है। जातक वात पीड़ा से ग्रस्त रहता है। जातक को समुद्र या बड़ी नदी का लंघन करना पड़ता है। घर का नाश होता है तथा उसके हाथ, पांव, नेत्र–इनमें पीड़ा होती है। यद्यपि आयु बड़ी है किन्तु सुखमय जीवन की आशा हमेशा दूर रहती है।

राहु की अन्तर्दशा में बुध का प्रत्यन्तर (४ मास, १७ दिन, ४२ घटी)

इस प्रत्यन्तर दशा में सर्वत्र बहुधा लाभ होता है, विशेष करके स्त्री से लाभ होता है। परदेश में जाने से सिद्धि अर्थात कार्य सिद्धि प्राप्त होती है तथा धनलाभ होता है। बुध अशुभ फलदायक हो तो धन, वस्त्र, आभूषणों का नाश होता है तथा स्थान एवं बुद्धि की विकलता रहती है। कन्द, मूल, शाक, पात इनके अलावा अच्छे पदार्थ मिलना दुर्लभ होता है।

राहु की अन्तर्दशा में केतु का प्रत्यन्तर (१ मास, २६ दिन, ४३ घटी)

इस प्रत्यन्तर दशा में बुद्धि का नाश होता है। भय, विघ्न तथा धन हानि होती है और महाभय उपस्थित होता है। सर्वत्र कलह, उद्वेग आदि होते रहते हैं। विदेश की यात्रा करनी पड़ती है। मृत्यु का भय तथा चोर और शस्त्र से भय समय-समय पर हुआ करता है। बंधन योग का प्रसंग आता है। आपसी व्यक्ति के साथ भी वैमनस्य पैदा होता है।

राहु की अन्तर्दशा में शुक्र का प्रत्यन्तर (५ मास, १२ दिन)

इस प्रत्यन्तर दशा में जातक की स्त्री का नाश होता है, कुल का भी अव-सान होता है, योगिनी, भूत, प्रेत, षोडशमाता, इनके बिगड़ने के कारण से सर्वतः पीड़ा हुआ करती है तथा खाने के लिए कभी अच्छे पदार्थ नहीं मिलते हैं। राज्य से तथा चतुष्पदों की हानि होती है।

राहु की अन्तर्दशा में सूर्य का प्रत्यन्तर (१ मास, १८ दिन, ३६ घटी)

इस प्रत्यन्तर दशा में जातक को मित्र, पुत्रों द्वारा पीड़ा होती है। ज्वर तथा रोग होता है। अन्न की हानि होती है। धननाश होता है। जातक के हाथ से प्रमाद घटता है। पुत्र-पौत्रादिकों से पीड़ा होती है। महाभय तथा अपमृत्यु होती है।

राहु की अन्तर्दशा में चन्द्रमा का प्रत्यन्तर (२ मास, २७ दिन)

इस प्रत्यन्तर दशा में चित्त का विभ्रम, मानसिक -शक्ति का भंग, उद्वेग, झगड़ा, कलह, चिन्ता, मानहानि का भय तथा पिता के देह में विकलता–ये फल मिलते हैं क्लेश तथा धननाश होता है।

राहु की अन्तर्दशा में मंगल का प्रत्यन्तर (१ मास, २६ ढिन, ४२ घटी)

इस प्रत्यन्तर दशा में जातक को भगन्दर होने से पीड़ा रहती है। रक्त, पित्त के विकारों से पीड़ा होती है, धननाश तथा महाउद्वेग प्राप्त होता है। मृत्यु के समान पीड़ा हो, (रक्त पित्त बिगड़ने के कारण भगन्दर बीमारी होती है) प्रमाद (पागलपन) आता है, भोजन में खराब अन्न प्राप्त होता है तथा मानहानि होती है।

गुरु की महादशा. गुरु की अन्तर्दशा में सब ग्रहों का प्रत्यंतर

गुरु की महादशा, गुरु की अन्तर्दशा में गुरु का प्रत्यन्तर (३ मास, १२ दिन, २४ घटी)

इस प्रत्यन्तर दशा में जातक के यश का उदय, भाग्योदय, वस्तु मात्र में पूरी वृद्धि, धन सुवर्ण का लाभ, धान्य की वृद्धि, कल्याण, बुद्धि का विकास, घर में शांतता, सुख, पुत्रलाभ तथा भोजन में मिष्ठान्न प्राप्त होता है।

गुरु की अन्तर्दशा में शनि का प्रत्यन्तर (४ मास, १ दिन, ३६ घटी)

इस प्रत्यन्तर दशा में घोड़े, जमीन एवं अन्य चतुष्पदों का लाभ होता है, वाहन मिलता है। जहां कहीं भी जावे वहां पर सर्वत्र सुख का अनुभव करता है। द्यूत कर्म के तरफ प्रवृत्ति होती है। अनेक प्रकार के धान्यों से उसका घर परिपूर्ण रहे तथा उसे स्वादिष्ट भोजन प्राप्त होता है।

गुरु की अन्तर्दशा में बुध का प्रत्यंतर (३ मास, १८ दिन, ४८ घटी)

इस प्रत्यंतर दशा में विद्या का लाभ, वस्त्रों का लाभ, ज्ञान का लाभ, मोतियों का तथा शास्त्रों का लाभ होता है। अच्छे स्नेही तथा सज्जनों की संगति का लाभ होता है। प्रायः करके मित्रों के द्वारा भय की आशंका बनी रहती है। उत्तम चीजें तथा मिष्ठान्न खाने को मिलते हैं। यह दशा सुखकारक होती है।

गुरु की अन्तर्दशा में केतु का प्रत्यन्तर (१ मास, १४ दिन, ४८ घटी)

इस प्रत्यंतर दशा में जल से भय तथा चोरों से भय होता है। बंधन योग की सम्भावना होती है। कलह होता है। अपमृत्यु का भय होता है। भ्रमण करना पड़ता है तथा अपने बंधुवर्ग से झगड़ा हमेशा बना रहता है तथा खराब चीजों का भोजन प्राप्त होता है।

गुरु की अन्तर्दशा में शुक्र का प्रत्यन्तर (४ मास ८ दिन)

इस प्रत्यंतर दशा में जातक को सुवर्ण, वस्त्र, धन की प्राप्ति होती है। कल्याण की वृद्धि होती है। शरीर पर आभूषण पर्याप्त मात्रा में रहते हैं अथवा अच्छे २ गुणों का इस तरह समावेश होता है कि वह समाज में आभूषण के समान बन जावे। नाना प्रकार की विद्यायें प्राप्त होती हैं। मन में संतोष बना रहता है तथा उनको बढ़िया भोजन, मिष्ठान्न वगैरः पदार्थ खाने को मिलते हैं।

गुरु की अन्तर्दशा में सूर्य का प्रत्यंतर (१ मास, ८ दिन, २४ घटी)

इस प्रत्यंतर दशा में राजा से लाभ तथा सम्मान प्राप्त होता है। तथा माता-पिता के धन का उपयोग करने के लिए पर्याप्त अवसर मिलता है। उसकी सर्वत्र पूजा होती है अर्थात् जातक राजगुरु बनकर रहता है।

गुरु की अन्तर्दशा में चन्द्रमा का प्रत्यंतर (२ मास ४ दिन)

इस प्रत्यन्तर दशा में सब दुःखों का हरण होता है; तथा मोती, अश्व वगैरे का लाभ होता है। सब कार्यों में सफलता प्राप्त होती है। दही, मधु, घृत, मणि एवं मोती इनकी खरीद-बिक्री से जातक को बड़ा लाभ होता है तथा कुक्षि (कोख), पांव में पीड़ा होती है।

गुरु की अन्तर्दशा में मंगल का प्रत्यंतर (१ मास १४ दिन, ४८ घटी)

इस प्रत्यंतर दशा में जातक को शास्त्र एवं शत्रु के द्वारा बड़ी पीड़ा प्राप्त होती है। गण्ड रोग होता है। पाचन शक्ति कम पड़ जाती है (जिसे मन्दाग्नि कहते हैं) अजीर्णता अधिक समयतक हो जाती है। गुर्दा में पीड़ा होती है।

गुरु की अन्तर्दशा में राहु का प्रत्यन्तर (३ मास, २१ दिन, १२ घटी)

इस प्रत्यंतर दशा में जातक को व्याधि, अपमृत्यु स्थान भ्रष्टता प्राप्त होती है। चाण्डाल एवं शत्रुओं के कारण अधिक पीड़ा होती है। उनके साथ विरोध होता है। वमन (कै होना) तथा भय की आशंका बनी रहती है। इतना ही नहीं कडवी, खार वस्तु खाने को मिलती है।

शनि की महादशा, शनि की अन्तर्दशा में सब ग्रहों का प्रत्यन्तर

शनि की महादशा, शनि की अन्तर्दशा में शनि का प्रत्यंतर (५ मास २१ दिन २८ घ० ३० पल)

इस प्रत्यंतर दशा में स्त्री पुत्र को रोग होता है। देह को पीड़ा होती है। जलौका (एक प्रकार की बिमारी होती है) से देह में बड़ी पीड़ा रहती है। घर छोड़कर विदेश की यात्रा करनी पड़ती है। अत्यंत (नीच) लोगों से भय होता है या उनके द्वारा बध होने की सम्भावना रहती है। भोजन में खराब, सूखा, अन्न प्राप्त होता है।

शनि की अन्तर्दशा में बुध का प्रत्यन्तर (५ मास, ३ दिन, २५ घटी, ३० पल)

इस प्रत्यंतर दशा में बुद्धि का नाश होता है। नीच (अंत्यज) लोगों से कलह होता है और उनसे भय प्राप्त होता है। शत्रुओं से भय तथा धनहानि होती है। जातक धन कमाने की ओर ही निमग्न रहता है। अन्नपान को हानि पहुँचती है। और भोजन में भी घी, तेल, वगैरे चीजें खाने को मिले।

शनि की अन्तर्दशा में केतु का प्रत्यन्तर (२ मास ३ दिन, १० घटी, ३० पल)

इस प्रत्यंतर दशा में शत्रु से हमेशा चित्त में भय रहता है तथा बड़ा त्रास होता है। दरिद्रता की पराकाष्ठा तक जातक पहुँच जाता है तथापि उसे भूख सदैव बनी रहती है। कभी उसकी शान्ति होने की सम्भावना नहीं दिखाई पड़ती। जातक नीच श्रेणी के लोगों से सदैव सहानुभूति रखता है। वर्ण की हानि तथा बन्धुओं से शत्रुत्व और खराब वस्तु खाने को मिलती है। शनि मारकेश हो तो मृत्यु की सम्भावना होती है।

शनि की अन्तर्दशा में शुक्र का प्रत्यंतर (६ मास ३० घटी)

इस प्रत्यंतर दशा में धन तथा अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है। जो भी चिंता की जाये उसमें सफलता प्राप्त होती है स्वजनों द्वारा लाभ होता है। कल्याण होता है। जुआ और वेश्या द्वारा धन की प्राप्ति होती है। भैंस तथा खेती से विशेष लाभ होता है। उसे कन्या संतति होती है।

शनि की अन्तर्दशा में सूर्य का प्रत्यन्तर
(१ मास, २४ दिन, ९ घटी)

इस प्रत्यंतर दशा में जातक के अपने घर में कलह की वृद्धि होती है। ज्वर आदि की व्याधि से पीड़ा होती है। जातक के तेज की हानि होती है अर्थात् समाज में उसका प्रभाव कम होता है। राज्य से अधिकार कम हो जाता है अर्थात् पदावनति के अवसर आते हैं। सिर में पीड़ा होती है; मन में किसी बात का उद्वेग सदा लगा रहता है। सभी अवस्था में उसका स्वभाव चंचल रहता है अर्थात् विचार पुरस्सर काम करने की शक्ति नहीं रहती। नेत्रों में विकार उत्पन्न होता है तथा जुखाम, सर्दी होती है। इस प्रकार सर्वत्र अनिष्ट दिखाई पड़ता है।

शनि की अन्तर्दशा में चन्द्रमा का प्रत्यन्तर (३ मास १५ घटी)

इस प्रत्यंतर दशा में जातक की बुद्धि बहुत प्रमाणित समझी जाती है। परायी स्त्रियों के साथ तथा अपनी स्त्री के साथ अधिक संभोग करनेवाला होता है। उसका तेज मन्द पड़ जाता है तथा बहुत खर्चा होता है। धनवान होता है तथा दूध, घी, मधु आदि दिव्य पदार्थों का उपभोग करनेवाला महा भाग्यशाली पुरुष होता है। यह प्रत्यंतर दशा रोगकारक भी होती है तथा अपने भागीदारों के साथ मतभेद तथा विरोध होकर नुकसान भी होता है।

शनि की अन्तर्दशा में मंगल का प्रत्यंतर (२ मास, ३ दिन, १० घटी, ३० पर्व)

इस प्रत्यंतर दशा में जातक के तेज तथा पराक्रम की हानि होती है और पुत्रघात होता है। शत्रु, शस्त्र तथा अग्नि का भय रहता है। वात तथा पित्त के विकार होने से पीड़ा होती है। वायु एवं रक्त के विकारों से पीड़ा होती है। किन्तु भोजन में नित्य घृत, मधु आदि मिलते हैं।

शनि की अन्तर्दशा में राहु का प्रत्यंतर
(५ मास, १२ दिन, २७ घटी)

इस प्रत्यंतर दशा में धन, जमीन तथा पशुओं का नाश होता है। वस्त्रों की हानि होती है। विदेश में भ्रमण करना पड़े, मृत्यु का भय हो तथा कडुआ तीखा, अम्ल पदार्थ खाने को मिलते हैं।

शनि की अन्तर्दशा में गुरु का प्रत्यंतर
(४ मास,२४ दिन, २४ घटी)

इस प्रत्यंतर दशा में जातक के घर का नाश स्त्री द्वारा होता है। अधि.. क्लेशजनित पीड़ा होने से स्वयं उद्यमहीन हो जाता है। मन में उद्वेग उत्पन्न

होता है। नाममात्र के लिये थोड़ा सुख मिलता है। शुभदशा में पुत्र प्राप्ति तथा अभीष्टदायक बातें होती हैं।

बुध की महादशा, बुध की अन्तर्दशा में सभी ग्रहों का प्रत्यंतर

बुध की महादशा, बुध की अन्तर्दशा में बुध का प्रत्यंतर
(२ म० २ दि० ४९ घ०)

इस प्रत्यंतरदशा में जातक को विद्या, बुद्धि (अच्छा बुरा समझने की शक्ति), एवं धन की प्राप्ति होती है। सोना, चांदी, मणि इनका लाभ होता है तथा वस्त्रों का लाभ होता है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के धान्य और रत्न का भी आगम होता है।

बुध की अन्तर्दशा में केतु का प्रत्यन्तर
(१ मास, २० दिन, ३४ घटी, ३९ पल)

इस प्रत्यंतरदशा में जातक को शोणित, रक्त पित्त के विकारों से बड़ी पीड़ा होती है। लोगों में निंद्य समझा जाता है। पेट में पीड़ा होती है। धन, वस्त्र, शस्त्र की हानि होती है। इसके अतिरिक्त और भी कई खराबियां होती हैं।

बुध की अन्तर्दशा में शुक्र का प्रत्यन्तर
(४ मास, २४ दिन, ३० घटी)

इस प्रत्यंतरदशा में उत्तर दिशा में आने-जाने से या व्यापार से लाभ होता है। कहीं पर कोई स्थान प्राप्त हो, बड़ा सुख प्राप्त हो। राज्य से अधिकार प्राप्ति, पदोन्नति होती है। लेकिन चतुष्पदों की हानि होती है। स्त्री को दुःख होता है। मिष्ठान्न भोजन प्राप्त होता है।

बुध की अन्तर्दशा में सूर्य का प्रत्यन्तर
(१ मास, १३ दिन, २१ घटी)

इस प्रत्यन्तरदशा में जातक के तेज की हानि होती है अर्थात् लोगों में प्रभाव कम पड़ जाता है। सिर में पीड़ा होती है। मन में किसी प्रकार का उद्वेग सदा लगा रहता है। सभी अवस्था में उसका मन चंचल होता है। अर्थात् विचार पुरस्सर काम करने की शक्ति नहीं रहती। नेत्र में विकार होता है, सर्दी होती है। सूर्य शुभ फलदायी हो तो आदर प्राप्त होता है, धन प्राप्ति होती है।

बुध की अन्तर्दशा में चन्द्रमा का प्रत्यंतर
(२ मास, १२ दिन, १५ घटी)

इस प्रत्यंतरदशा में जातक को लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। घर में कन्या संतान का योग बनता है। सत्कर्म में व्यय होनेवाले धन का आगम होता है। स्त्री का लाभ होता है। अर्थलाभ तथा सर्वत्र सौख्यलाभ होता है। जातक पुत्र, पौत्र आदि से वेष्टित रहता है तथा अन्न-वस्त्र से परिपूर्ण रहता है। चन्द्रमा अशुभफलदायी हो तो रुधिर का विकार होता है।

बुध की अन्तर्दशा में मंगल का प्रत्यन्तर
(१ मास, २० दिन, ३४ घटी, ३० पल)

इस प्रत्यंतरदशा में धर्म, धन आदि की प्राप्ति होती है। चोर अथवा अग्नि से मृत्युदायक पीड़ा होती है। शस्त्र से पीड़ा होती है। अतिसार भी होता है। धन, धर्म एवं विशेष ज्ञान की प्राप्ति होती है।

बुध की अन्तर्दशा में राहु का प्रत्यंतर
(४ मास, १० दिन, ३ घटी)

इस प्रत्यंतरदशा में जातक को राज्य से तथा शत्रुओं की तरफ से आने वाला भय रहता है। बातरोग तथा ज्वर रोग होने का भय रहता है। स्त्री से कलह होता है। नित्य परिवार में झगड़ा होता है। इन्हीं कारणों से जातक त्रस्त रहता है। जातक की स्त्री सदा उत्साहहीन रहती है। स्वयं भी दूध, घी के बिना भोजन पाता है।

बुध की अन्तर्दशा में गुरु का प्रत्यन्तर
(३ मास, २५ दिन, ३६ घटी)

इस प्रत्यंतरदशा में जातक किसी राज दरबार में प्रधान पुरुष बनता है (राज्य से भी कुछ मिले), सरकारी नौकरी में पदोन्नति होती है। राज्य से सम्मान प्राप्त प्रोता है। विद्या एवं बुद्धि—इनकी वृद्धि होती है। खाने-पीने का सुख पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

बुध की अन्तर्दशा में शनि का प्रत्यन्तर
(४ मास, १७ दिन, घटी, ३० पल)

इस प्रत्यंतरदशा में जातक को वात, पित्त से बड़ी पीड़ा होती है तथा देहघात की संभावना बनी रहती है। धन का नाश होता है। जातक विकल रहता है कहीं, से आघात लगता है; ऊँचे स्थान से पतन की आशंका रहती है। पदावनति संभव होती है। अन्न-पान की तकलीफ उठानी पड़ती है।

केतु की महादशा, केतु अन्तर्दशा में सब ग्रहों का प्रत्यंतर

केतु की महादशा, केतु की अन्तर्दशा में केतु का प्रत्यंतर
(८ दिन, ३४ घटी, ३० पल)

इस प्रत्यंतरदशा में स्त्री को रोग होता है तथा शत्रु भयकारक बनता है। पुत्र बीमार रहने से भी दुःख होता है। अपने गोत्र (स्वजन) में विषमता उत्पन्न होती है। दरिद्रता के कारण भिक्षुवृत्ति पैदा होती है। धन का नाश तथा शरीर को आघात पहुँचता है। विदेश में जाकर पूरी तकलीफ के साथ समय बिताना पड़ता है। वातविकार से शरीर में पीड़ा का भय तथा सब कामों में विफलता प्राप्त होती है।

केतु की अंतर्दशा में शुक्र का प्रत्यंतर (२४ दिन ३० घटी)

इस प्रत्यंतरदशा में धन, चतुष्पदों की हानि होती है तथा नेत्रों में विकार उत्पन्न होता है। सिर में दर्द वगैरे की व्यथा होती है। श्लेष्म (कफ) से विकार का भय बना रहता है। धन की क्षति होती है। शुक्र योगकारक हो तो रोग का नाश होता है, अर्थलाभ होता है। गुरु तथा विप्रजनों से समागम होता है। स्वजनों से मिलाप होता है।

केतु की अन्तर्दशा में सूर्य का प्रत्यन्तर (७ दिन, १५ घटी)

इस प्रत्यन्तरदशा में राजभय उत्पन्न होता है। युद्ध में पराजय, भूमि की हानि होती है। मित्रवर्ग तथा अपने परिजनों के कारण मन में उद्वेग बना रहता है। मृत्यु के समान किसी अवसर पर कष्ट होता है। शत्रुओं के साथ मुकदमें में हार होती है। स्वदेश में ही दीन अवस्था में रहना पड़ता है। पुत्रादिक को विपत्ति देखनी पड़ती है तथा घी, दूध, दही रहित मामूली भोजन प्राप्त होता है।

केतु की अन्तर्दशा में चन्द्रमा का प्रत्यन्तर
(१२ दिन १५ घटी)

इस प्रत्यन्तरदशा में दास, दासियों की समृद्धि होती है। युद्ध में विजय प्राप्त होता है। ललितकला द्वारा कीर्त्ति प्राप्त होती है। यदि चन्द्रमा अशुभ फलदायक हो तो जातक के अन्न पान का नाश होता है, व्याधि होती है। जातक विक्षिप्त (पागल) की तरह घूमा करता है। उसकी स्मरणशक्ति नष्ट हो जाती है, किन्तु भोजन में किसी प्रकार से निर्वाह होता है।

केतु की अन्तर्दशा में मंगल का प्रत्यन्तर
(८ दिन, ३४ घटी, ३० पल)

इस प्रत्यन्तरदशा में अग्नि से, शत्रु से या रणक्षेत्र में जाने से भय होता है। मित्रों से विरोध होता है। चोर तथा दुष्टजनों से पीड़ा होती है। गुल्म रोग की पीड़ा तथा सिर में रोग उत्पन्न होता है। बात के प्रकोप से भी कष्ट होने की सम्भावना होती है। राजभय होता है। भोजन में खराब अन्न प्राप्त प्राप्त हो इसी से मत्स्य मांस खाने की अभिरुचि बढ़ती है।

केतु की अन्तर्दशा में राहु का प्रत्यन्तर (२२ दिन ३ घटी)

इस प्रत्यन्तर दशा में स्त्री, गुरुजनों का नाश होता है तथा दुष्ट स्त्री से समागम होता है। कलह होता है। वमन (कै), रुधिर, पित्त के विकार आदि होते हैं। शत्रुओं से भय होता है तथा नीच श्रेणी की स्त्रियों द्वारा पीड़ा पहुंचती है अथवा नीच श्रेणी के लोगों द्वारा स्त्रियों को पीड़ा पहुंचती है। अधिक समय तक अन्न न मिलने के कारण भूखा रहता है तथा सदैव पराये आधीन में अगत्या रहा करता है।

केतु की अन्तर्दशा में गुरु का प्रत्यन्तर (१९ दिन, ३६ घटी)

इस प्रत्यन्तरदशा में समाज के साथ विवाद होता है, धन [की क्षति होती है, वस्त्र की हानि होती है, विचार शक्ति नष्ट होती है। गुरु योग-कारक हो तो पुत्र लाभ होता है। पशु तथा क्षेत्र की हानि होती है, सहसा राजवैभव तथा सम्पत्ति मिलती है। वैर तथा विरोध होता है।

केतु की अन्तर्दशा में शनि का प्रत्यन्तर
(२३ दिन, १६ घटी, ३० पल)

इस प्रत्यन्तर दशा में अन्न, वस्त्र की हानि होती है, पूरी तकलीफ उठानी पड़ती है। आश्रम के भार से और पीड़ित रहता है तथा गाय, भैंस वगैरह पशुओं का नाश होता है। लंघन करना पड़ता है, स्त्री से विरोध होता है। सत्य की हानि होती है। शरीर रोगी होता है।

केतु की अन्तर्दशा में बुध का प्रत्यन्तर
(२० दिन, ४९ घटी, ३० पल)

इस प्रत्यन्तर दशा में शत्रु से पीड़ा होती है। मन में बड़ा उद्वेग होता विद्या, बन्धु वर्ग तथा धन इनका नाश होता है। बुध शुभ योगकारक हो तो नाना प्रकार के लोगों के साथ विप्रों के साथ मिलाप होता है। अर्थ सम्पत्ति की समृद्धि होती है।

शुक्र की महादशा, शुक्र की अन्तर्दशा में सब ग्रहों का प्रत्यन्तर

शुक्र की महादशा, शुक्र की अन्तर्दशा में शुक्र का प्रत्यन्तर
(६ मास, २० दिन)

इस प्रत्यन्तर दशा में शत्रु की हानि तथा महासौख्य प्राप्त होता है। शंकर के मन्दिर की स्थापना होती है। तालाब, कुआं आदि का निर्माण कार्य होता है। स्त्री, धन, कर्म, भोग तथा वस्त्र प्राप्त होते हैं। मणि तथा सुन्दर स्त्री का लाभ होता है। मधु, घृत, दूध का भोजन प्राप्त होता है। कहीं से उत्तम श्वेत वस्त्रों की प्राप्ति होती है।

शुक्र की अंतर्दशा में सूर्य का प्रत्यंतर (२ मास)

इस प्रत्यंतर दशा में राजा से, शत्रु से तथा ज्वर होने के कारण पीड़ा हो। हृदय में, जंघा में तथा शिर में व्यथा होती है। हृदय ताप तथा भ्रम पैदा होता है। कभी लाभ होता है तो कभी हानि होती है। भोजन में थोड़ा अन्न पचता है या थोड़ा ही मिलता है तथा इस दशा में लाभ भी कम हुआ करता है। राजभय उत्पन्न होता है।

शुक्र की अंतर्दशा में चंद्रमा का प्रत्यंतर (३ मास १० दिन)

इस प्रत्यंतर दशा में आरोग्य, धन, सम्पत्ति तथा कार्य लाभ प्राप्त होता है। जातक की अपने राज्य में शासन पद्धति मजबूत हो, वस्त्र तथा सुवर्ण की प्राप्ति होती है। कन्या संतान की संभावना रहती है।

शुक्र की अंतर्दशा में मंगल का प्रत्यंतर (२ मास १० दिन)

इस प्रत्यंतर दशा में लाभ की जगह हानि होती है, अनवसर में ही मारपीट से तललीफ पाता है। सर्वतः क्लेश होता है। रक्त पित्त बिगड़ने से बड़ी पीड़ा होती है तथा खाने-पीने का भी कष्ट समझना चाहिए। देह में जड़ता, शत्रु से वैषम्य देशभ्रंश का महाभय होता है, व्याधि से दुःख होता है। पित्त के विकार होते हैं।

शुक्र की अंतर्दशा में राहु का प्रत्यंतर (६ मास)

इस प्रत्यंतर दशा में राजा एवं शत्रुओं से पीड़ा होती है। स्त्री से कलह होता है। शत्रु से कलह जटिल होता है। राजा, अग्नि, सर्प इनसे भय उत्पन्न होता है। बंधु का नाश होता है तथा गुरु को व्यथा होती है। स्थानच्युति होती है। भोजन में कड़वा, रूखा के सिवाय कुछ भी नहीं मिलता। बन्धु से विरोध होता है।

शुक्र की अंतर्दशा में गुरु का प्रत्यंतर (५ मास १० दिन)

इस प्रत्यंतर दशा में वज्र (मणिविशेष), मोती तथा कोई स्थान की प्राप्ति होती है । हाथी, घोड़े, वाहन एवं गौ वगैरह का लाभ होता है । कपूर कां उपयोग अधिक करता है ताकि शरीर सुगन्धमय रहे तथा इच्छा के अनुकूल पदार्थ का भोजन करता है । सब कार्यों में लाभ होता है। क्षेत्र, अर्थ या वैभव की उन्नति होती है । व्यापार में बड़ा लाभ होता है ।

शुक्र की अन्तर्दशा में शनि का प्रत्यंतर (६ मास १० दिन)

इस प्रत्यंतर दशा में जातक को गौ, ऊँट, गधा एवं कुछ लोह वगैरे धातुओं का भी लाभ होता है परन्तु रुपये पैसे की आमदनी कम जाननी चाहिये तथा भोजन में तिल, उर्द के सिवाय और चीजों का मिलना कठिन होता है ।

शनि अशुभ फलदायक हो तो शत्रु से पीड़ा तथा महादुःख होता है । चतुष्पदों की हानि होती है । स्वजन तथा गुरुजनों की हानि होती है । वृद्धा स्त्री से समागम होता है।

शुक्र की अन्तर्दशा में बुध का प्रत्यंतर (५ मास २० दिन)

इस प्रत्यंतर दशा में बुद्धि, विज्ञान (साइन्स), राज्य, लक्ष्मी एवं खदान इनमें अधिकार का लाभ होता है। भोजन में घी, दही पर्याप्त मिलता है । बंधुओं की संपत्ति का तथा व्यवहार में धन की उन्नति होती है । पुत्र-स्त्री वगैरों का सुख प्राप्त होता है ।

शुक्र की अन्तर्दशा में केतु का प्रत्यंतर (२ मास २० दिन)

इस प्रत्यंतर में देश, विदेश, गाँव-घर में खूब भ्रमण करता है । रोग तथा मृत्यु का भय अधिक रहता है तथा द्रव्य, धान्य, मान आदि की भी प्राप्ति आवश्यक समझनी चाहिये । इस अशुभ दशा में अग्नि, रोग से महापीड़ा होती है । मुख में, नेत्रों में, सिर में व्यथा होती है । शत्रु का भय होता है । संचित अर्थ तथा आत्मज की पीड़ा होती है ।

शुद्धिकरण

"लघुपाराशरी सिद्धान्त"

पृष्ठ क्रमांक	अध्याय	पंक्ति क्रमांक नीचे से	पंक्ति क्रमांक ऊपर से	आवश्यक शुद्धिकरण
७	,,	–	१	ज्येष्ठा नक्षत्र—शतमुख के स्थान पर शतमख चाहिये ।
८	,,	–	१	भावों के प्रसिद्ध नाम—प्रथम पंक्ति—जातक परिणाम के स्थान पर 'जातक पारिजात' शब्द चाहिये ।
२६	,,	४	–	भभोग–५३।३९ के स्थान पर ५७।४९ चाहिये ।
२९	,,	८	–	चन्द्र स्पष्ट करने की रीति—'रीति के अनुसार इसे' इन शब्दों के वाद '६० से' शब्द चाहियें ।
३१	,,	–	११	लग्न-साधन–'मार्क' के स्थान पर 'मार्च' शब्द चाहिये ।
३१	,,	५	–	,, '$\frac{३२३९}{१४२}$' चाहिये ।
३२	,,	–	१८	,, इष्टकाल के वाद 'निकालना' शब्द चाहिये ।
३३	,,	–	१९	प्रथम के वाद तृतीय शब्द नहीं चाहिये ।
			२०	द्वितीय के बाद 'तृतीय' शब्द चाहिये ।
१	संज्ञाध्याय	१	१	प्रथम श्लोक–मोपविषदं के स्थान पर 'मोपनिषदं' शब्द चाहिये ।
५	,,	–	९	'बवल' के स्थान पर 'ववूल' शब्द चाहिये ।

पृष्ठ क्रमांक	अध्याय	पंक्ति क्रमांक नीचे से	पंक्ति क्रमांक ऊपर से	आवश्यक शुद्धिकरण
८	,,	–	–	विंशोत्तरी, अष्टोत्तरी, योगिनी दशा-चक्र–अंग्रेजी में नाम के नीचे— ५ मृगशीर्ष—सावडा के स्थान पर 'लांव्‌डा' शब्द चाहिये । ८ पुष्य—काक्री के स्थान पर 'क्राक्रि' शब्द चाहिये । ११ पू.फा.—'थिटालियोनिस' शब्द चाहिये ।
१६	,,	–	८	द्रष्टा के स्थान पर 'दृष्ट' शब्द चाहिये
२५	,,	५	–	भरवदत्त के स्थान पर 'भैरवदत्त' शब्द चाहिये ।
३७	,,	,,	१२	'नहीं' के स्थान पर 'न ही' शब्द चाहिये ।
४१	,,	५	–	स्टेट के स्थान पर 'इस्टेट' शब्द चाहिये ।
४२	,,	–	११	प्रकारका: के स्थान पर 'प्रचारका' शब्द चाहिये ।
४६	,,	१४	–	'न ही' के स्थान 'नहीं शब्द चाहिये ।
६०	,,	१२	–	भयाराम के स्थान पर 'मयाराम' शब्द चाहिये ।
६४	,,	–	१०	इतलिये के स्थान पर 'इसलिये' शब्द चाहिये ?
६५	,,	७	–	की के स्थान पर 'को' चाहिये ।
७६	,,	–	४	पापत्व के बाद 'उसके क्षणीत्व और अक्षणीत्व' शब्द छूट गये हैं ।
७७	,,	–	५	नया के स्थान पर 'गया' शब्द चाहिये
७९	,,	–	७	दशन के स्थान पर 'दशम' शब्द चाहिये ।

पृष्ठ क्रमांक	अध्याय	पंक्ति क्रमांक नीचे से	पंक्ति क्रमांक ऊपर से	आवश्यक शुद्धिकरण
,,	,,	–	१७	'कुण्डलियों में मङ्ग' के स्थान पर 'कुण्डलियों में मंगल' शब्द चाहिये ।
१०२	राजयोगाध्याय	–	१३	'अस्त' के स्थान पर 'अन्तर' शब्द चाहिये ।
१०४	,,	–	१	'द्वितीयेश' 'शुक्र' इन दोनों के नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये (मेष लग्न)
१०४	,,	–	७	'द्वितीयेश' 'बुध' के नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये (वृषभ लग्न)
१०४	,,	–	९	'सप्तमेश' 'गुरु' इनके नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये (मिथुन लग्न) ।
१०४	,,	–	१६	चतुथश के स्थान पर 'चतुर्थेश' शब्द चाहिये और 'सप्तमेश'–'गुरु' के नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये । उसी प्रकार 'द्वितीयेश' 'शुक्र' इनके नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये (कन्या लग्न)
१०४	,,	–	२३	'द्वितीयेश' 'गुरु' इनके नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये । 'सप्तमेश' 'शुक्र' इनके नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये (वृश्चिक लग्न) ।
१०५	,,	–	३	'सप्तमेश' 'बुध' इनके नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये (धनु लग्न)।
१०५	,,	–	९	'सप्तमेश' 'चन्द्रमा' इनके नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये (मकर लग्न) ।

पृष्ठ क्रमांक	अध्याय	पंक्ति क्रमांक नीचे से	पंक्ति क्रमांक ऊपर से	आवश्यक शुद्धिकरण
१०५	,,	—	१४	'सप्तमेश' 'बुध' इनके नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये (मीन लग्न)।
१११	राजयोगाध्याय	—	१६	'अशुभफल = +१०' के स्थान पर 'शुभफल = +१०' चाहिये।
१११	,,	१०	—	'अशुभफल = +५' और 'अशुभफल = +५' दोनों के स्थान पर 'शुभ-फल = +५' एवं 'शुभफल = +५' चाहिये।
११२	,,	,,	१०	'रत्नेश्वर' के स्थान पर 'मंत्रेश्वर' चाहिये।
११४	,,	६	—	'देणारा' के स्थान पर 'देने वाला' चाहिये।
१२०	,,	—	१३	मिथुन लग्न–'अष्टमेश' = शनि इनके नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये।
,,	,,	—	१४	सप्तमेश के नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये।
,,	,,	—	१७	'गु' (कर्क लग्न) के नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये।
,,	,,	आखिरी पंक्ति—		मकर लग्न–'बुध + शु = + ६' चाहिये
१२१	,,	—	१६	शुभलदायक के स्थान पर 'शुभफल-दायक' चाहिये।
१२७	,,	—	२	'मैं' के स्थान पर 'में' चाहिये।
१२७	,,	—	—	तृतीय कुंडली के दशम स्थान में '१२ शुगु' के स्थान पर '१२ शगु' चाहिये।
१३५	,,	—	२०	श्लोक 'लग्नेशेनाथवा' के स्थान पर 'लग्नेशे नाथता' चाहिये।
१३५	,,	—	२६	'तिकोणेश' के स्थान पर 'त्रिकोणेश' चाहिये।

पृष्ठ क्रमांक	अध्याय	पंक्ति क्रमांक नीचे से	पंक्ति क्रमांक ऊपर से	आवश्यक शुद्धिकरण
१३७	,,	–	६	बलवान शब्द के बाद 'माना गया है और इस नियम के अनुसार बलवान' जोड़िये ।
१३७	,,	–	१२	परिणाम के स्थान पर 'पारिजात' शब्द चाहिये ।
१३६	,,	–	१२	'सौर' के स्थान पर 'और' शब्द चाहिये ।
१३६	,,	–	१६	'तो भी' के आगे 'परस्परों में संयुक्त हो तो' ये शब्द होने चाहियें ।
,,	,,	१०	–	गो के स्थान पर 'तो' चाहिये ।
१४१	,,	–	६	और शब्द के बाद 'उनका' शब्द चाहिये (उनका योगफल = ±१० है)
१४१	,,	–	१३	'नं करके' के स्थान पर 'न करके' चाहिये ।
१४१	,,	–	१५	नवमेश-सप्तमेश योग—मेष लग्न—'गु + शु = ±१' के स्थान पर '१०' चाहिये (गु + शु = ±१०) ।
१४२	,,	–	४	कन्या लग्न—शुक्र, गुरु के नीचे — प्रकार की लकीर चाहिये एवं गु + शु = के आगे गुं + शु = +१० चाहिये ।
१४२	,,	–	८	वृश्चिक लग्न-शुक्र के नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये ।
१४२	,,	–	१०	धनु लग्न-'बुध' के नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये; एवं 'ब' के स्थान पर 'बु' चाहिये ।
१४३	,,	–	७	कर्क लग्न-'शुरु' के स्थान पर 'गुरु' चाहिये ।
१४३	,,	–	१६	वृश्चिक लग्न-'चं + श = +१' के स्थान पर 'चं + श = +२' चाहिये।

पृष्ठ क्रमांक	अध्याय	पंक्ति क्रमांक नीचे से	पंक्ति क्रमांक ऊपर से	आवश्यक शुद्धिकरण
१४५	,,	–	५	तुला लग्न–'=१३' के स्थान पर '+१३' चाहिये।
१४७	,,	–	१४	'मं' के स्थान पर 'गु' होना चाहिये।
१४७	,,	–	१७	'नप्ट' के स्थान पर 'नेष्ट' शब्द होना चाहिये।
१४७	,,	२	–	पंचमेश-चतुर्थेश के योग––वृषभ लग्न 'बुध' के नीचे इस प्रकार की — लकीर चाहिये।
१४८	,,	–	७	कन्या लग्न–शनि और गुरु के नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिए।
१४८	,,	–	९	वृश्चिक लग्न–'गुरु' के नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये।
१४९	राजयोगाध्याय	–	२	मीन लग्न—'बुध' के नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये।
१४९	,,	–	११,१३,१४	वृषभ लग्न 'बुध' के नीचे; मिथुन लग्न—'शुक्र, गुरु' के नीचे इस प्रकार की लकीर चाहिये।
१५०	,,	–	५,८	वृश्चिक लग्न—'गुरु' के नीचे एवं धनु लग्न–'बुध' के नीचे—इस प्रकार की लकीर चाहिये।
१५२	,,	१	–	मिथुन लग्न–'गुरु' के नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये।
१५३	,,	–	११	धनु लग्न–'बुध' के नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये।
१५४	,,	–	७	मेष लग्न–'शुक्र' के नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये।
१५४	,,	–	११	मिथुन लग्न–'गुरु' के नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये।

पृष्ठ क्रमांक	अध्याय	पंक्ति क्रमांक नीचे से	पंक्ति क्रमांक ऊपर से	आवश्यक शुद्धिकरण
१५४	,,	३	–	कन्या लग्न–'गुरु' के नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिए ।
१५५	,,	–	२	वृश्चिक लग्न–'शुक्र' के नीचे; मकर लग्न–'चन्द्रमा' के नीचे; एवं मीन लग्न–'बुध' के नीचे इस प्रकार की — लकीर चाहिये ।
१५६	,,	–	७	कंन्या लग्न–चतुथश के स्थान पर 'चतुर्थेश' शब्द चाहिये एवं 'गुरु' के नीचे इस प्रकार की — लकीर चाहिये ।
१५७	,,	–	२	मीन लग्न–'बुध' के नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये ।
१६०	,,	–	११	(णुभ) के स्थान पर (शुभ) शब्द चाहिये ।
१६०	,,	३	–	'कटे' शब्द के स्थान पर 'कहे' शब्द चाहिये ।
१६१	,,	–	३	'ले' शब्द के स्थान पर 'हो' शब्द चाहिये ।
१६१	,,	–	८	'आनी' शब्द के स्थान पर 'आती' शब्द चाहिये ।
१७०	,,	–	२	'इ' के स्थान पर 'इनका' शब्द चाहिये ।
१७०	,,	–	१०	'कोष्ट' के स्थान पर 'कोष्टक' शब्द चाहिये ।
१७०	,,	–	१८	श्लोक ॥२०॥ 'योगकारिता' के स्थान पर 'योगकारकौ' शब्द चाहिये ।
२०१	राजयोगाध्याय	–	१६	AXCEPTION शब्द के स्थान पर 'EXCEPTION' शब्द चाहिए ।

पृष्ठ क्रमांक	अध्याय	पंक्ति क्रमांक नीचे से	पंक्ति क्रमांक ऊपर से	आवश्यक शुद्धिकरण
२०५	आयुर्दायाध्याय	–	२	'सं यूताः' के स्थान पर 'संयुताः' चाहिये।
२०५	,,	–	१७	'गुणों' के स्थान पर 'गणों' चाहिये।
२०६	,,	–	१८	'की' के स्थान पर 'को' चाहिये।
२१२	,,	–	१५	'मा' के स्थान पर 'मारक' चाहिये।
२१५	,,	७	–	'चाहिहये' के स्थान पर 'चाहिये' शब्द चाहिये।
२३६	,,	–	१४	'चन्द्रमा' शब्द के बाद 'को' शब्द चाहिये।
२३६	,,	१२	–	'लगता' शब्द के स्थान पर 'लगाता' चाहिये।
२४४	आयुर्दायाध्याय	–	–	कुंडली जन्म लग्न–में 'गुरु' के बाद 'व' शब्द चाहिये।
२४६	,,			नक्षत्र स्थिति के नीचे शनि = 'उत्तरा' के स्थान पर 'उत्तराषाढ़ा' चाहिये।
२४६	,,	–	१६	'शनि उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में' के स्थान पर 'शनि उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में' चाहिये।
२४७	,,	–	२	'स' के स्थान पर 'स्' चाहिये।
२४७	,,	–	१४	'दिग्वक्री' के स्थान पर 'दिग्बली' चाहिये।
२५०	,,	६	–	'Consussien' के स्थान पर 'Concussion' चाहिये।
२५६	अन्तर्दशाध्याय	–	४	'पद्धति' के स्थान पर 'पति' चाहिये।
२८२	,,	१३	–	'करते हैं' के स्थान पर 'किया है' चाहिये।
२८७	,,	५	–	'योगकारक' के स्थान पर 'योग' चाहिये।

पृष्ठ क्रमांक	अध्याय	पंक्ति क्रमांक नीचे से	पंक्ति क्रमांक ऊपर से	आवश्यक शुद्धिकरण
३०३	,,	६	–	वृश्चिक लग्न–'चन्द्र शुक्र' के स्थान पर 'चन्द्र गुरु' चाहिये।
३०३	,,	३	–	मकर लग्न–पापी ग्रह के नीचे 'शनि' के स्थान पर 'बुध' चाहिये (सूर्य, मंगल, बुध)
३०४	,,	–	५	'गुणों' शब्द के स्थान पर 'शुभों' शब्द चाहिये।
३०४	अन्तर्दशाध्याय	–	७	मेष लग्न–'ग' के नीचे 'सूर्य शुक्र' के स्थान पर 'सूर्य गुरु' चाहिये।
३०४	,,	१	–	मिथुन लग्न– 'ङ' के नीचे 'बुध' के नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये।
३०५	,,	१	–	'ग' के नीचे 'शनि' के स्थान पर 'शुक्र' चाहिये (शुक्र, शुक्र)
३०६	,,	–	६	तुला लग्न–आखिरी कॉलम 'ङ'— 'शनि' के नीचे — इस प्रकार की लकीर चाहिये।
३०८	,,	१०	–	'होना' शब्द के स्थान पर 'लेना' चाहिये।
३२४	मेषादि लग्न	४	–	'मित्र है' इसके बाद से और वे याने मकर और कुंभ आदि से लेकर पृष्ठ ३२५ पर नीचे से १३ वीं पक्ति में 'से' तक—वृषभ लग्न में चाहिये और
३२७	वृषभलग्न	८	–	'त्रिकोणाधिपति है' से लेकर ३२८ पृष्ठ पर नीचे से ११ वीं पंक्ति का राजयोग होता है' ये सब मेष लग्न में होना चाहिये। एवं 'से' शब्द को निकाल देना चाहिये।

पृष्ठ क्रमांक	अध्याय	पंक्ति क्रमांक नीचे से	पंक्ति क्रमांक ऊपर से	आवश्यक शुद्धिकरण
३३३	कर्कलग्न	–	१६	'समझसा' के स्थान नर 'समझना' चाहिए।
३३६	सिंहलग्न	१२	–	स्पष्टीकरण के नीचे, नीचे से १२ वीं पंक्ति में 'चन्द्रमा की' स्थान पर 'चन्द्रमा को' चाहिये।–एवं 'से' शब्द निकाल देना चाहिए।
३४७	धनुर्लग्न	८	–	२रा पाठ ४७ श्लोक, 'ज्ञातप्यानि' के स्थान पर 'ज्ञातव्यानि' चाहिये।
३४८	,,	–	३	'प्रसी' के स्थान पर 'इसी' शब्द चाहिये।
३५८	परिशिष्ट (१)	–	१०	'कारण के स्थान पर 'करण' चाहिए।
३५९	,, (१)	–	१३	'बछल' के स्थान पर 'बद्दल' चाहिये।
३६०	,, (१)	–	१३	'के' शब्द के स्थान पर 'का' चाहिये।
३६०	,, (१)	५	–	'ल्पष्टतः' के स्थान पर 'स्पष्टतः' चाहिये।
३६०	,, (१)	४	–	'सूर्योदव' के स्थान पर 'सूर्योदय' चाहिये।
३६१	,,	८	–	'भोगह में' के स्थान पर 'भोग हमें' चाहिये।
३६३	परिशिष्ट	४	–	२५ पूर्वाभाद्रपदा—'माकवि' के स्थान पर 'मार्काव' शब्द चाहिये।
३६४	,,	१३	–	'से' के स्थान पर 'में' चाहिए।
३६५	,,	–	९	जिस नक्षत्र के आगे 'विभाग में' शब्द चाहिए।
३६५	,,	–	११	'में' के स्थान पर 'से' चाहिये।
३६८	परिशिष्ट (२)	–	८	'बुध' के स्थान पर 'बंधु' चाहिये।
३६९	,,	२	–	'इतने' के स्थान पर 'इतना' चाहिये।
३६९	,,	१	–	'कोई भी' के बाद 'व्यक्ति' शब्द चाहिये।

पृष्ठ क्रमांक	अध्याय	पंक्ति क्रमांक नीचे से	पंक्ति क्रमांक ऊपर से	आवश्यक शुद्धिकरण
३७०	,,	–	१२	'पुण्य' के स्थान पर 'पुष्य' चाहिये।
३७८	परिशिष्ट (४)	–	१०	'तुल्य' के बाद '१२ विभाग' चाहिये। (१ रवि-भाग) के स्थान पर।
३७९	परिशिष्ट (४)	–	३	'लाभदायक' के स्थान पर 'क्षयकारक' चाहिये।
३७९	परिशिष्ट (४)	१०	–	'आन' के स्थान पर 'मान' चाहिये।
३७९	परिशिष्ट (४)	१	–	'अंतर्गत' के बाद 'ने' शब्द चाहिये।
३८०	,,	–	१३	'मातर्' के स्थान पर 'माता' चाहिये।
३८०	,,	–	१५	'सुखभ्' के स्थान पर 'सुखम्' चाहिये।
३८०	,,	१	–	'बाव के स्थान पर 'बाद' चाहिये।
३८२	परिशिष्ट (५)		कुंडली में	प्रथम स्थान में 'शु' के स्थान पर 'गु' चाहिये एवं एकादश स्थान में 'बृ.शु' चाहिये।
३८८	परिशिष्ट (६)		कोष्टक–१	अंश-कला–१-४० भोग्यकाल '६-१-१९' के स्थान पर '६-१-१५' चाहिये।
३८८	,,		,,	अंश-कला-४-४० भोग्यकाल-'१-११-३' के स्थान पर '१-०-१८' चाहिये।
३८८	,,		,,	अंश-कला-९-०० भोग्यकाल '१०-३-११' के स्थान पर '१०-११-३' चाहिये।
३८८	,,		,,	अंश कला-५-४० भोग्यकाल '०-६-०' के स्थान पर '०-६-९' चाहिये।
३८९	,,		,,	अंश-कला-१०-२० भोग्यफल '१-६-२०' के स्थान पर '१-६-२७' चाहिये।
३८९	,,		,,	अंश-कला १६-२० भोग्यकाल '०-५-१२' के स्थान पर '०-५-२१' चाहिये।
३९०	,,		,,	अंश कला २६-२० भोग्यकाल '५-४-३' के स्थान पर '५-५-३' चाहिये।
३९१	,,		कोष्टक २	कला १५–शुक्र के नीचे '०-१५' के स्थान पर '४ मा. १५ दिन' चाहिये।

पृष्ठ क्रमांक	अध्याय	पंक्ति क्रमांक नीचे से	पंक्ति क्रमांक ऊपर से	आवश्यक शुद्धिकरण
३६१	,,		,,	कला २०–शनि के नीचे '५-२७' के स्थान पर ५ मास २१ दिन चाहिये ।
३६४	परिशिष्ट (१०)	कोष्टक	१२	उ. फा.–१– '४-२७-०४' के स्थान पर '४-२७-०' चाहिये । '४-२८-४०' के स्थान पर '४-२८-०' चाहिये । '४-२६-४०' के स्थान पर '४-२६-०' चाहिये ।
३६४	,,	–	१२	भोग्यदशा सूर्य–'१-०६-१०' के स्थान पर '१-०६-१८' चाहिये ।
३६८	,,	–	१३	पुनर्वसु-४—'३-४०-००' के स्थान पर '३–००–००' चाहिये ।
३६८	,,	–	२	गुरु भोग्यदशा—'१४-०६-००' के स्थान पर '१४-०६-१८' चाहिये ।
३६६	परिशिष्ट (१०)	–	१०	पुष्य ३ चरण ३-११-० के बाद— ३–१२–०० ३–१३–०० ३–११–२० चाहिये
३६६	,,	–	१०	अनुराधा ३ चरण ७–११–० के बाद ७–१२–०० ७–१३–०० ७–१३–२० चाहिये
३६६	,,	–	१०	उत्तरा भाद्रपदा ३ चरण ११-१०-०० के बाद— ११–११–०० ११–१२–०० ११–१३–०० ११–१३–२० चाहिये
३६६	,,	–	१०	शनि भुक्तदशा भोग्यदशा १२–०४–०६ ६–७–२४ १३–०६–०६ ५–०२–२१ १४–०२–०० ४–०६–०० चाहिये ।

पृष्ठ क्रमांक	अध्याय	पंक्ति क्रमांक नीचे से	पंक्ति क्रमांक ऊपर से	आवश्यक शुद्धिकरण
४००	परिशिष्ट(१०)	–	७	बुध दशाभुक्त के नीचे '६-०८-१८' के स्थान पर '६-०९-१८' चाहिये ।
४००	,,	–	१२	बुध दशाभुक्त के नीचे '११-२०-२४' के स्थान पर '११-१०-२४' चाहिये ।
४००	,,	–	१२	बुध भोग्य दशा के नीचे '५-०७-०६' के स्थान पर '५-०१-०६' चाहिये ।
४००	,,	–	१३	रेवती–४ चरण '११-२६-००' के स्थान पर '११-२६-४०' चाहिये ।
४०६	परिशिष्ट(११)	३	–	'नहीं' के स्थान पर 'न ही' चाहिए ।
४११	परिशिष्ट(१२)	–	१०	'काल वृद्धि' के स्थान पर 'कालशुद्धि' चाहिये ।
४१३	,,	–	१२	(निश्चित तिथि) के नीचे—'४°-०' चाहिये ।
४३४	परिशिष्ट(१३)	१	–	'सॅफेरियल', 'रॅफेल एवं' चाहिये ।
४४१	,,	३	–	'REFLECTING' के स्थान पर 'INFLICTING' चाहिये ।
४४१	,,	४	–	'UNIQUS' के स्थान पर 'UNIQUE' चाहिये ।
४४९	परिशिष्ट(१५)	–	१६	३३६९ के स्थान पर '३४६९' चाहिये।
४४९	,,	–	१८	२३६९) के स्थान पर '३४६९)' चाहिये।
४४९	,,	–	१९	२१२९६ के स्थान पर '२१३९६' चाहिये।
				१०८१४ के स्थान पर '२०८१४' चाहिये।
४४९	,,	४	–	३१८९ के बाद 'छोड़ दिये' शब्द चाहियें।

पृष्ठ क्रमांक	अध्याय	पंक्ति क्रमांक नीचे से	पंक्ति क्रमांक ऊपर से	आवश्यक शुद्धिकरण
४५३	परिशिष्ट(१७)	–		प्रत्यन्तर दशा कोष्टक—सूर्य की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर 'के' नीचे घटी १२ के स्थान पर '१८' चाहिये ।
४५७	,,	–		मंगल महादशा—राहु अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर योग के नीचे घटी ०० चाहिए ।
४५९	,,	–		मंगल महादशा—सूर्य अन्तर्दशा में प्रत्यंतर— 'घटी मं' के नीचे २१ के स्थान पर '३१' चाहिये । 'बु' के नीचे ५१ के स्थान पर '३१' चाहिये । 'के' के नीचे २१ के स्थान पर '३१' चाहिये ।
४५९	,,	–		राहु महादशा—राहु की अन्तर्दशा में प्रत्यन्तर— 'सू' के नीचे दिन–१९ के स्थान पर '१८' दिन चाहिये ।
४६१	,,	–		राहु महादशा—मंगल की अंतर्दशा में प्रत्यंतर । शनि के नीचे २१ के स्थान पर '२९' दिन चाहिये ।
४६१	,,	–		गुरु महादशा—गुरु की अन्तर्दशा में प्रत्यंतर । 'बुध' के नीचे ४७ के स्थान पर '४८' घटी चाहिये ।
४७३	परिशिष्ट(१८)	–		सूर्य की महादशा में सूर्य अन्तर, मंगल के प्रत्यन्तर में सूक्ष्म । 'के' के नीचे ० के स्थान पर '३' पल चाहिये ।

पृष्ठ क्रमांक	अध्याय	पंक्ति क्रमांक नीचे से	पंक्ति क्रमांक ऊपर से	आवश्यक शुद्धिकरण
४७४	,,	–		सूर्य की महादशा में सूर्य अन्तर, गुरु के प्रत्यंतर में सूक्ष्म । 'शनि' के नीचे ४७ के स्थान पर '४८' पल चाहिये ।
४७६	परिशिष्ट(१६)	–		गुरु की प्राणदशा—राहु के नीचे २७ पल ४६ विपल के स्थान पर '२८ पल ४८ विपल' चाहिये ।
४७८	परिशिष्ट(२१)	–	१३	कोष्टक-वृश्चिक—'अशुभ' के नीचे 'बु' के स्थान पर 'शुक्र, बुध' चाहिये ।
४९१	परिशिष्ट(२६)	–		इस कोष्टक में जहाँ जहाँ 'वृश्चिक' शब्द आया है। उसके स्थान पर 'वृहस्पति' शब्द चाहिये ।
४९६	परिशिष्ट(२८)	३	–	'आवश्यक' के स्थान पर 'अवश्य' चाहिये ।
५००	परिशिष्ट(२९)	१२	–	'काम' के स्थान पर 'कम' शब्द चाहिये
५०२	दशा प्रवेश विचार	–	८	दशान्तर्दशा के बाद 'का' शब्द चाहिये ।
५०२	,,	१०	–	धनादिक के बाद 'की' शब्द चाहिये ।
५०३	,,	–	२२	शुक्र के स्थान पर 'गुरु' चाहिये ।
५०३	,,	२	–	'से' के स्थान पर 'में' चाहिये ।
५०४	दशातत्त्वम्	१०	–	(६) 'आपस में शत्रु हों तो' के बाद 'मृत्यु होती है। परन्तु जब वे आपस में मित्र हों तो जीवन में सन्देह होता है' इस प्रकार चाहिये ।
५०८	दशा प्रवेश विचार	–	११	(२३) 'गुरु' के स्थान पर 'उसे' शब्द चाहिये ।
५०८	,,	–	२०	(२०) शुभोदय के स्थान पर 'उभोदय' चाहिये ।

पृष्ठ क्रमांक	अध्याय	पंक्ति क्रमांक नीचे से	पंक्ति क्रमांक ऊपर से	आवश्यक शुद्धिकरण
५११	द्वितीयेश	—	१४	'बुध' के स्थान पर 'बंधु' चाहिये।
५१२	तृतीयेश	१३	—	'काररवाई' शब्द में से एक 'र' कम करना चाहिये।
५१४	षष्ठेश	८	—	'आगे' के स्थान पर 'अनिष्ट' शब्द,
५१५	सप्तमेश	४	—	'होते हैं' शब्द के स्थान पर 'होता है' चाहिये।
५१५	,,	१	—	भागीदारी शब्द के बाद 'के' चाहिये।
५२३	सूर्य की महादशा	—	८	'भूमि के बाद' तथा 'नौकरी में उच्च पद प्राप्त होता है' ये शब्द चाहियें।
५२४	,,	—	४	मंगल के स्थान पर 'अमंगल' शब्द चाहिये।
५२५	,,	—	६	'होगा' शब्द के बाद बीच में 'स्थान फल होगा' चाहिये।
५२६	चन्द्रमा की महादशा	—	१४	सन्तति के पहले 'कन्या' शब्द चाहिये।
५२७	,,	—	१८	'आन्तरिक' के स्थान पर 'अतिरिक्त' चाहिये।
५२८	मंगल की महादशा	८	—	'आत्म' के स्थान पर 'आप्त' शब्द चाहिये।
५४१	सूर्य की महादशा में	१४	—	'नेमजूक' के स्थान पर 'नेमणूक' चाहिये।
५४१	चन्द्रमा का अन्तर	५	—	'कर्ज्जा' के स्थान पर 'कज्जा' चाहिये।
५४१	,,	३	—	'बात' के स्थान पर 'वास' चाहिये।
५४३	सूर्य की महादशा में गुरु का अन्तर	—	१९	'मनुष्य' शब्द के पहले 'सिवाय' शब्द चाहिये।
५४४	,,	—	१७	'राजसंग' के स्थान पर 'राजभंग' चाहिये।

पृष्ठ क्रमांक	अध्याय	पंक्ति क्रमांक नीचे से	पंक्ति क्रमांक ऊपर से	आवश्यक शुद्धिकरण
५४४	सूर्य की महादशा में बुध का अन्तर	६	—	'थुक्त' के स्थान पर 'युक्त' चाहिये।
५४८	चन्द्रमा को महा-दशा में राहु की अन्तर्दशा	—	१७	'वढ़ती' के स्थान पर 'बढ़ानेवाली होती है' चाहिये।
५४९	चन्द्रमा की महा-दशा में शनि की अन्तर्दशा	—	१३	'बनते' के स्थान पर 'बनते हैं' चाहिये। उसके बाद 'पुत्र, मित्र तथा द्रव्य की संपत्ति, क्षुद्र स्वामी से समागम तथा' ये शब्द चाहियें।
५४९	,,	—	१६	'गया हो' के बाद 'नीच स्थान में, धनस्थान में गया हो' ये शब्द चाहियें।
५४९	,,	—	२०	'बात' के स्थान पर 'वात' चाहिये।
५६८	गुरु की महादशा में शुक्र की अंतर्दशा	—	१६	'जात' के स्थान पर 'जाति' चाहिये।
६०१	मंगल की अंतर्दशा गुरु का प्रत्यंतर	—	४	'जाता' के स्थान पर 'जाती' चाहिये।
६०१	,,	—	५	'दरिद्र' के स्थान पर 'दरिद्री' चाहिये।
६०५	गुरु की अन्तर्दशा में मंगल का प्रत्यंतर	—	५	'खार' के स्थान पर 'खारी' चाहिये।







